



किरंतन

श्री तारतम वाणी किरंतन

टीका व भावार्थ
श्री राजन स्वामी

प्रकाशक
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ
नकुड़ रोड, सरसावा, सहारनपुर, उ.प्र.
www.spjin.org

सर्वाधिकार सुरक्षित (चौपाई छोड़कर)
© २००७, श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा
पी.डी.एफ. संस्करण — २०१९

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना	14
1 पेहेले आप पेहेचानो रे साधो	18
2 बिंद में सिंध समाया रे साधो	25
3 साधो भाई चीन्हो सब्द कोई चीन्हो	34
4 साधो हम देख्या बड़ा तमासा	41
5 सुनो रे सत के बनजारे	50
6 भाई रे बेहद के बनजारे	59
7 हो मेरी वासना तुम चलो अगम के पार	73
8 हो भाई मेरे वैष्णव कहिये वाको	81
9 कहा भयो जो मुखथें कह्यो	87
10 सुनो भाई संतो कहूं रे महंतो	95
11 रे हूं नाहीं रे हूं नाहीं	102

12	वचन विचारो रे मीठड़ी वल्लभाचारज वाणी	110
13	आज सांच केहेना सो तो काहू ना रुचे	125
14	धनी न जाए किनको धूतयो	142
15	पतित सिरोमन यों कहें	150
16	दुख रे प्यारो मेरे प्रान को	163
17	सखी री आतम रोग बुरो लगयो	173
18	मैं तो बिगड़या विश्व थें बिछुरया	197
19	तुम समझ के संगत कीजो रे बाबा	203
20	साधो या जुग की ए बुध	212
21	चल्यो जुग जाए री सुध बिना	218
22	रे हो दुनियां बावरी	226
23	रे हो दुनियां को तूं कहां पुकारे	233
24	रे मन भूल ना महामत	239

25	रस मगन भई सो क्या गावे	247
26	खोज बड़ी संसार	252
27	कहो कहो जी ठौर नेहेचल (किरंतन वेदांत के)	259
28	मैं पूछों पांड़े तुम को	284
29	संत जी सुनियो रे जो कोई हंस परम	301
30	चीन्हे क्यों कर ब्रह्म को	315
31	कलि में देख्या ग्यान अचम्भा	329
32	भाई रे ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म दिखलाओ	340
33	रे जीव जी जिन करो नेहड़ा	350
34	रे जीव जी तुमें लागी दाझ मुझ बिछुड़ते (अब देह की तरफ का जवाब)	369
35	वालो विरह रस भीनों	394
36	हारे वाला रल झलावियो	399

37	हांरे वाला बंध पड़या	404
38	केम रे झंपाय अंग ए रे झालाओ	409
39	हांरे वाला कांरे आप्या दुख अमने अनघटतां	415
40	हांरे वाला अगिन उठे	420
41	करनी तुमारी मेरी मैं तौली	424
42	मीठडा मीठा रे	437
43	विनता विनवे रे	441
44	म्हारा वस कीधल वाला रे	445
45	आवोजी वाला म्हारे घेर	450
46	प्रीत प्रगट केम कीजिए	453
47	खोज थके सब खेल	459
48	खिन एक लेहु लटक भंजाए	466
49	बाई रे वात अमारी हवे कोण सुणें	471

50	बाई रे गेहेलो वालो गेहेली वात करे रे	478
51	आज वधाई वृज घर घर	483
52	सतगुर मेरा स्याम जी	492
53	धनी जी ध्यान तुमारे रे	524
54	हो साथ जी वेगे न वेगे	536
55	आए आगम बानी इत मिली	563
56	भई नई रे नवों खंडों आरती (आरती)	590
57	कृपा निध सुन्दरवर स्यामा (भोग)	607
58	राजाने मलो रे राणें राए तणो	614
59	ऐसा समे जान आए बुध जी	632
60	कुली बल देखो रे	641
61	साहेब तेरी साहेबी भारी	667
62	मांगत हों मेरे दुलहा	697
63	जिन सुध सेवा की नहीं	714

64 तमें वाणी विचारी न चाल्या रे वैष्णवो 737

65 ए माया आद अनाद की 756

66 सैयां मेरी सुध लीजियो 774

67 वाटडी विसमी रे साथीडा बेहदतणी 798

68 अटकलें ए केम पांमिए 806

69 सुन्य मंडल सुध जो जो मारा संमंधी 827

70 हवे वासना हसे जे वेहदनी 837
(मूलगी चाल)

71 लाडलियां लाहूत की 848
(किरंतन आखिर के)

72 जंजीरां मुसाफ की 867

73 जो कोई सास्त्र संसार में 871
(सास्त्रों की प्रनालिका)

74 भवजल चौदे भवन 913

75	मेरे धनी धाम के दुलहा	944
76	निजनाम सोई जाहेर हुआ	959
77	वतन बिसारिया रे	980
78	सखी री जान बूझ क्यों खोइए	992
79	साथ जी पेहेचानियो	1004
80	मेरे मीठे बोले साथ जी	1032
81	सुन्दरसाथ जी ए गुन देखो रे	1046
82	सखी री मेहेर बड़ी मेहेबूब की	1056
83	धन धन ए दिन साथ आनन्द आयो	1075
84	धन धन सखी मेरे सोई रे दिन	1087
85	ए जो कही जागन (तीन विध का चलना)	1100
86	साथ जी जागिए	1116
87	आग परो तिन कायरों	1131

88	सैयां हम धाम चले	1142
89	चलो चलो रे साथ	1157
90	साथ जी सोभा देखिए	1170
91	आगूं आसिक ऐसे कहे	1190
92	अब हम धाम चलत हैं	1207
93	अब हम चले धाम को	1220
94	सुनो साथ जी सिरदारो	1237
95	साईं सोहागिन धाम में	1276
96	तो भी घाव न लग्या रे कलेजे	1296
97	इन धनी के बान मोको ना लगे	1327
98	तो भी चोट न लगी रे आत्म को	1343
99	धिक धिक पड़ो मेरी बुध को	1352
100	धनी एते गुन तेरे देख के	1362
101	साथ जी सुनो सिरदारो	1372

102	बुजरकी मारे रे साथ जी	1386
103	जो तूं चाहे प्रतिष्ठा	1397
104	कयामत आई रे साथ जी	1402
105	मैं पूछत हों ब्रह्मसृष्ट को	1413
106	ए सुच कैसे होवहीं	1425
107	झूठ सब्द ब्रह्मांड में	1438
108	फुरमान मेरे मेहेबूब का	1447
109	मासूक मेरे रूह चाहे सिफत करूं	1484
110	कारी कामरी रे	1505
111	फरेबी लिए जाए	1517
112	सरूप सुन्दर सनकूल सकोमल	1529
113	चतुर चौकस चेतन अति चोपसों	1536
114	नूर को रूप सरूप अनूप है	1540
115	हुब मेहेबूब की आसिक प्यास ले	1551

116	नूर नगन चेतन भूखन रचे	1558
117	मिली मासूक के मोहोल में माननी	1563
118	मोमिन लिखे मोमिन को	1569
119	वारी रे वारी मेरे प्यारे	1586
120	साथजी ऐसी मैं तुमारी गुन्हेगार	1592
121	सिफत तो सारी सब्द में	1601
122	ब्रह्मसृष्टि बीच धाम के	1617
123	स्यामाजी स्याम के संग	1623
124	हम चडी सखी संग रे	1627
125	वृथा कां निगमो रे	1635
126	तमें जो जो रे मारा साध संघाती	1670
	(किरंतन पुराने)	
127	पर न आवे तोले एकने	1774

128	माया कोहेडो अंधेर केहेवाय (हांरे मारा साध कुलीना सांभलो)	1781
129	हांरे मारा साध कुली ना जो जो	1821
130	धोरीडा मा मूके तारी धूसरी	1846
131	आवो अवसर केम भूलिए	1855
132	अंदर नाहीं निरमल	1872
133	विसराई गिन्यो वंजे (किरंतन हुकाको सिंधी भाखा में)	1877

प्रस्तावना

प्राणाधार श्री सुन्दरसाथ जी! अक्षरातीत श्री राज जी के दिल में इल्म के अनन्त सागर हैं। उनकी एक बूँद महामति के धाम-हृदय में आयी, जो सागर का स्वरूप बन गई, इसलिये कहा गया "नूर सागर सूर मारफत, सब दिलों करसी रोसन" अर्थात् ज्ञान के सागर के रूप में यह तारतम वाणी है जो मारिफत के ज्ञान का सूर्य है। यह ब्रह्मवाणी सबके हृदय में ब्रह्मज्ञान का उजाला करती है।

"हक इलम से होत है, अर्स बका दीदार" का कथन अक्षरशः सत्य है। इस ब्रह्मवाणी की अलौकिक ज्योति सुन्दरसाथ के हृदय में माया का अन्धकार कदापि नहीं रहने देगी। इस ब्रह्मवाणी की थोड़ी सी अमृतमयी बूँदों का भी रसास्वादन करके जीव अपने लिये ब्रह्म-साक्षात्कार एवं अखण्ड मुक्ति का दरवाजा खोल सकता है।

इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये यह आवश्यक है कि अनेक भारतीय भाषाओं में अवतरित इस ब्रह्मवाणी का टीका सरल भाषा में प्रस्तुत हो। यद्यपि वर्तमान में अनेकों सम्माननीय मनीषियों की टीकायें प्रचलित हैं, किन्तु ऐसा अनुभव किया जा रहा था कि एक ऐसी भी टीका हो, जो विश्लेषणात्मक हो, सन्दर्भ, भावार्थ, स्पष्टीकरण एवं टिप्पणियों से युक्त हो।

मुझ जैसे अल्पज्ञ एवं अल्प बुद्धि वाले व्यक्ति के लिये यह कदापि सम्भव नहीं था, किन्तु मेरे मन में अचानक ही यह विचार आया कि यदि कबीर जी और ज्ञानेश्वर जी जैसे सन्त अपने योगबल से भैसे से वेद मन्त्रों का उच्चारण करवा सकते हैं, तो मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत मेरे से टीका की सेवा क्यों नहीं करवा सकते ? इसी आशा के साथ मैंने अक्षरातीत श्री जी के चरणों में

अन्तरात्मा से प्रार्थना की।

धाम धनी श्री राजश्यामा जी एवं सद्गुरु महाराज श्री रामरतन दास जी की मेहर की छाँव तले मैंने यह कार्य प्रारम्भ किया। सरकार श्री जगदीश चन्द्र जी की प्रेरणा ने मुझे इस कार्य में दृढ़तापूर्वक जुटे रहने के लिये प्रेरित किया। इन सबका प्रतिफल यह टीका है।

सभी सम्माननीय पूर्व टीकाकारों के प्रति श्रद्धा –सुमन समर्पित करते हुए मैं आशा करता हूँ कि यह टीका आपको रुचिकर लगेगी। सभी सुन्दरसाथ से निवेदन है कि इसमें होने वाली त्रुटियों को सुधार कर मुझे भी सूचित करने की कृपा करें, जिससे मैं भी आपके अनमोल वचनों से लाभ उठा सकूँ एवं अपने को धन्य – धन्य कर सकूँ।

आप सबकी चरण-रज

राजन स्वामी

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा

जिला- सहारनपुर, उ० प्र०

श्री कुलजम सरूप

निजनाम श्री कृष्ण जी, अनादि अक्षरातीत।

सो तो अब जाहिर भए, सब विध वतन सहीत॥

॥ श्री किरंतन ॥

किरंतन का तात्पर्य "कीर्तन" से है। विक्रम सम्वत् १७१२ में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्तर्धान होने के पश्चात् युगल स्वरूप श्री मिहिरराज जी के तन में विराजमान हो गये और वाणी का अवतरण गोपनीय रूप से प्रारम्भ हो गया। उस समय के उतरे हुए किरंतनों में "मिहिरराज" की छाप है।

विक्रम सम्वत् १७१५ से हब्से में प्रत्यक्ष रूप से ब्रह्मवाणी का अवतरण प्रारम्भ हुआ, जिसमें "इन्द्रावती" की छाप है और विक्रम सम्वत् १७३२ से "महामति" के

नाम से ब्रह्मवाणी उतरनी प्रारम्भ हो गयी। किरन्तन ग्रन्थ का प्रकटन काल विक्रम सम्वत् १७१२-१७५१ तक है। विक्रम सम्वत् १७४८ में मारफत सागर ग्रन्थ के अवतरण के पश्चात् भी किरन्तन ग्रन्थ के छुटपुट प्रकरण उतरते रहे, जो धाम चलने (चितवनि) से सम्बन्धित हैं। वस्तुतः यह किरन्तन ग्रन्थ सम्पूर्ण श्रीमुखवाणी का एक लघु रूप कहा जा सकता है।

राग श्री मारु

पेहेले आप पेहेचानो रे साधो, पेहेले आप पेहेचानो।

बिना आप चीन्हें परब्रह्म को, कौन कहे मैं जानो॥१॥

श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर अक्षरातीत परब्रह्म उनके श्री मुख से कहलवा रहे हैं कि हे सन्त जनों! परब्रह्म की कृपा की छत्रछाया में अपने निज स्वरूप की पहचान करो कि मैं कौन हूँ ? इन्द्रिय, अन्तःकरण, जीव, ईश्वरी सृष्टि, और ब्रह्मसृष्टि में मेरा निज स्वरूप क्या है? इसे जाने बिना यदि कोई यह कहता है कि मैंने सच्चिदानन्द परब्रह्म को जान लिया है, तो वह भ्रम का शिकार है।

भावार्थ— निज स्वरूप तथा परब्रह्म को जानने के सम्बन्ध में दो प्रकार की विचारधाराएँ हैं। एक वर्ग कहता

है कि पहले आत्मतत्त्व का ज्ञान होगा, तत्पश्चात् ही परब्रह्म को जाना जा सकेगा। दूसरा वर्ग कहता है कि पहले परब्रह्म का साक्षात्कार होगा, उसके पश्चात् उनकी कृपा दृष्टि से ही निज स्वरूप का बोध होगा। कठोर से कठोर साधना करने के पश्चात् भी श्री देवचन्द्र जी अपने निज स्वरूप को तब तक नहीं जान पाये, जब तक स्वयं अक्षरातीत ने उन्हें पहचान नहीं दी।

वस्तुतः परब्रह्म की कृपा के बिना न तो निज स्वरूप को जाना जा सकता है और न परमात्म स्वरूप को। कठोपनिषद् का कथन है— "यमः एव एषः वृणुते तेन लभ्यः" अर्थात् परमात्मा जिसका वर्णन करता है वही उसको यथार्थ रूप से जान पाता है। यह किरन्तन भी वेदान्त के विद्वानों को प्रबोधित करने के लिये उतरा है। इसमें यह बताया गया है कि परब्रह्म की कृपा के प्रकाश

में ही अपने निज स्वरूप तथा परब्रह्म के स्वरूप का साक्षात्कार होता है।

पीछे ढूँढो घर आपनों, कौन ठौर ठेहरानो।

जब लग घर पावत नहीं अपनों, सो भटकत फिरत भरमानो॥२॥

इसके पश्चात् अपने "निज घर" की पहचान करो कि मैं कहाँ से आया हूँ तथा इस संसार को छोड़ने के पश्चात् मेरा निवास कहाँ होगा? जब तक अपने मूल घर की पहचान नहीं होगी, तब तक इस मायावी जगत को ही अपना घर समझ कर भटकते रहना पड़ेगा।

पांच तत्व मिल मोहोल रच्यो है, सो अंतीख क्यों अटकानो।

याके आस पास अटकाव नहीं, तुम जाग के संसे भानो॥३॥

हम जिस ब्रह्माण्ड में रह रहे हैं, वह पाँच तत्वों का बना

हुआ है। यह आकाश में बिना किसी आधार के ही कैसे लटका हुआ है? ज्ञान के द्वारा जाग्रत होने के बाद ही इन सारे संशयों से छुटकारा मिल पायेगा।

भावार्थ- अनन्त ब्रह्माण्डों को ब्रह्म की शक्ति ने ही धारण कर रखा है। हम जिस ब्रह्माण्ड में रह रहे हैं, वह इस जगत का अति अल्प अंश है।

नींद उड़ाए जब चीन्होगे आपको, तब जानोगे मोहोल यों रचानो।
तब आपै घर पाओगे अपनों, देखोगे अलख लखानो॥४॥

जब तुम अपनी अज्ञान रूपी नींद का परित्याग कर निज स्वरूप की पहचान कर लोगे, तब तुम्हें यह पता चलेगा कि यह ब्रह्माण्ड क्यों बना है? तब तुम्हें अपने निजघर की भी पहचान हो जाएगी तथा उस अलख अगोचर परब्रह्म का भी साक्षात्कार हो जायेगा।

भावार्थ- इस चौपाई से यह स्पष्ट विदित होता है कि अज्ञान रूपी नींद के समाप्त होने पर पहले आत्म-साक्षात्कार होगा, तत्पश्चात् ब्रह्म-साक्षात्कार, परन्तु इसके लिये परब्रह्म की कृपा होना अनिवार्य है।

बोले चाले पर कोई न पेहेचाने, परखत नहीं परखानों।
महामत कहे माहें पार खोजोगे, तब जाए आप ओलखानो॥५॥

केवल आत्म-तत्त्व की वार्ता तथा कर्मकाण्ड और प्रकृति सम्बन्धी उपासना की राहों से ही उस परब्रह्म की पहचान नहीं हो सकती। उसका साक्षात्कार भी इन मार्गों से नहीं हो सकता। श्री महामति जी कहते हैं कि जब इस ब्रह्माण्ड से परे तुम खोजोगे, तभी तुम्हें निज स्वरूप तथा परब्रह्म के स्वरूप की पहचान होगी।

प्रकरण ॥१॥ चौपाई ॥५॥

राग श्री मारु

बिंद में सिंध समाया रे साधो , बिंद में सिंध समाया।

त्रिगुन सरूप खोजत भए विस्मय, पर अलख न जाए लखाया॥१॥

हे सन्त जनों! अति सूक्ष्म बिन्दु रूपी ब्रह्माण्ड में अनन्त परब्रह्म रूपी सागर अपनी सत्ता से विराजमान है। सत्व, रज तथा तम के प्रतीक ब्रह्मा, विष्णु, और शिव भी उसे खोजते-खोजते आश्चर्य में पड़ गये , लेकिन वह अलख (अज्ञेय) किसी को भी प्राप्त नहीं हो सका।

भावार्थ- इस जगत में ब्रह्म अपने स्वरूप से नहीं , बल्कि सत्ता से विराजमान है। इसलिये त्रिदेव भी इस जगत् में उसका साक्षात्कार न कर सके। इस चौपाई में ब्रह्मा, विष्णु, और शिव को त्रिगुन इसलिये कहा गया है कि उनमें एक-एक गुण की प्रधानता है, अन्यथा संसार

के प्रत्येक प्राणी में सत्व, रज, और तम कम या अधिक मात्रा में अवश्य रहते हैं। मन, चित्त, बुद्धि, तथा इन्द्रियों से परे होने के कारण ब्रह्म को अलख कहा जाता है।

वेद अगम केहे उलटे पीछे, नेत नेत कर गाया।

खबर न परी बिंद उपज्या कहां थे, तार्थें नाम निगम धराया॥२॥

वेदों ने जब ब्रह्म को मन-वाणी से परे पाया तो "नेति-नेति" के रूप में वर्णन किया। जब यह भी पता नहीं चल पाया कि यह ब्रह्माण्ड रूपी "बिन्दु" कहाँ से पैदा हुआ है, तो उन्होंने स्वयं का नाम "निगम" रखा।

भावार्थ- चारों वेदों में कहीं भी "नेति" शब्द नहीं है। श्रीमुखवाणी में "वेद" शब्द से केवल मूल संहिता भाग का ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण हिन्दू धर्मग्रन्थों का आशय है। वस्तुतः वेद के व्याख्यान ग्रन्थों ब्राह्मण, आरण्यक,

उपनिषद, तथा दर्शन ग्रन्थों में ब्रह्म के लिये "नेति" शब्द का प्रयोग किया गया है। इन्हीं ग्रन्थों को "निगम" भी कहा गया है। मनुस्मृति के छठे अध्याय में कहा गया है— "निगमांश्चैव वैदिकान्"। इससे यह स्पष्ट होता है कि "निगम" शब्द वेदों के व्याख्यान ग्रन्थों के लिये ही प्रयुक्त होता है, मूल संहिताओं के लिये नहीं। श्रीमुखवाणी में प्रयुक्त— "जो नेत नेत कहया निगमें, सब लगे तिन सब्द" (खुलासा २/३३), "निगमें गम कही ब्रह्म की, सो क्यों समझे ख्वाबी दम ", "फिरे जहां थे नारायन, नाम धराया निगम" (सनन्ध) से भी स्पष्ट है कि निगम शब्द वेदों के व्याख्यान ग्रन्थों के लिये ही है। "हकें आसिक नाम धराइया, वाको भी अर्थ ए" (सिनगार) से यह स्पष्ट है कि "नाम धरने" का तात्पर्य स्वयं के सम्बोधन से है।

असत मंडल में सब कोई भूल्या, पर अखंड किने न बताया।
नींद का खेल खेलत सब नींद में, जाग के किने न देखाया॥३॥
इस झूठे जगत् में सभी भूले रहे। किसी भी व्यक्ति
(अक्षर की पञ्चवासनाओं को छोड़कर) को अखण्ड धाम
की पहचान नहीं हो पाई। यह सारा जगत मोह-अज्ञान-
नींद का है और सभी लोग इसी में भटक रहे हैं। कोई भी
व्यक्ति इस मायावी नींद को छोड़कर जाग्रत नहीं हो पा
रहा है।

सुपन की सृष्ट वैराट सुपन का, झूठे सांच ढपाया।
असत आपे सो क्यों सत को पेखे, इन पर पेड़ न पाया॥४॥
यह सम्पूर्ण जगत स्वप्न के समान अस्थिर
(परिवर्तनशील) और नश्वर है। इसमें निवास करने वाली
जीव सृष्टि भी स्वप्नमयी है, किन्तु ब्रह्मसृष्टि भी इस

जगत में अपने को भूल गयी है। मायावी जीव महाप्रलय में लय को प्राप्त हो जाने वाले हैं। भला वे अखण्ड ब्रह्म का साक्षात्कार कैसे करें? इन्हें जगत के मूल कारण का पता नहीं है।

खोजी खोजे बाहेर भीतर, ओ अंतर बैठा आप।

सत सुपने को पारथीं पेखे, पर सुपना न देखे साख्यात॥५॥

ब्रह्म की खोज करने वालों ने पिण्ड (शरीर) और ब्रह्माण्ड में बहुत खोजा, लेकिन वह मिल नहीं सका। परब्रह्म का अखण्ड स्वरूप तो इस पिण्ड-ब्रह्माण्ड से परे परमधाम में है, जहाँ ब्रह्मसृष्टियों के भी मूल तन हैं और वे वहाँ से ही सुरता (आत्म-दृष्टि) द्वारा इस खेल को देख रही हैं, किन्तु स्वप्न के जीव उस परब्रह्म को साक्षात् नहीं देख पाते।

भरम की बाजी रची विस्तारी, भरमसों भरम भरमाना।

साध सोई तुम खोजो रे साधो, जिनका पार पयाना॥६॥

यह सम्पूर्ण जगत भ्रम का ही विस्तार है। भ्रम के स्वरूप से भ्रम का स्वरूप भ्रमित हो रहा है, अर्थात् आदिनारायण अव्याकृत का स्वप्नमयी स्वरूप है और सभी जीव आदिनारायण के अंश रूप हैं। इस मायावी जगत में जीव प्रकृति से परे की शुद्ध अवस्था को प्राप्त नहीं कर पाते, इसलिये वे सर्वथा भटकते ही रहते हैं। हे सन्त जनों! आप उस परब्रह्म की खोज कीजिए, जो माया से सर्वथा परे अनादि परमधाम में विराजमान हैं।

भावार्थ— अव्याकृत अक्षर ब्रह्म का मन स्वरूप है। अव्याकृत के महाकारण में स्थित सुमंगला-पुरुष स्वयं को स्वप्न में आदिनारायण के रूप में पाता है। जब तक चिदानन्द-लहरी-पुरुष के व्यक्त स्वरूप सुमंगला-पुरुष

का स्वप्न समाप्त नहीं होगा, तब तक आदिनारायण और उनके अंशीभूत जीवों का भी भ्रम समाप्त नहीं होगा।

मृगजलसों जो त्रिखा भाजे, तो गुर बिना जीव पार पावे।

अनेक उपाय करे जो कोई, तो बिंद का बिंद मे समावे॥७॥

जिस प्रकार मृग-तृष्णा के जल से प्यास नहीं बुझ सकती, उसी प्रकार बिना सद्गुरु की कृपा-दृष्टि के जीव भी भवसागर से पार नहीं हो सकता। सद्गुरु के द्वारा अखण्ड का ज्ञान पाए बिना भले ही कोई बहुत से ग्रन्थों को पढ़ लेवे तथा तरह-तरह की साधनाएँ भी कर लेवें, तो भी वह स्वर्ग-वैकुण्ठ या निराकार से आगे नहीं जा सकता।

देत देखाई बाहेर भीतर, ना भीतर बाहेर भी नाहीं।

गुर प्रसादे अंतर पेख्या, सो सोभा बरनी न जाई॥८॥

पिण्ड ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी दिखायी पड़ रहा है, वह सब स्वप्नवत् मिथ्या है। इनके अन्दर सच्चिदानन्द परब्रह्म नहीं है। सद्गुरु की कृपा से जब आत्मिक दृष्टि से त्रिगुणातीत परमधाम में देखा जाता है, तो परब्रह्म का साक्षात्कार होता है। साकार-निराकार से भिन्न उनकी अनन्त शोभा को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

सतगुर सोई मिले जब सांचा, तब सिंध बिंद परचावे।

प्रगट प्रकास करे पार ब्रह्म सों, तब बिंद अनेक उड़ावे॥९॥

जब अखण्ड का ज्ञान देने वाले सच्चे सद्गुरु मिल जायेंगे, तब इस मायावी जगत् तथा परब्रह्म की पहचान हो जायेगी। जब हृदय में परब्रह्म के ज्ञान का प्रकाश फैलेगा,

तो आत्मिक दृष्टि अनन्त ब्रह्माण्डों से परे निजधाम में पहुँचेगी।

महामत कहे बिंद बैठे ही उड़या, पाया सागर सुख सिंध।

अक्षरातीत अखण्ड घर पाया, ए निध पूरब सनमंध॥१०॥

श्री महामति जी कहते हैं कि इस संसार में रहते हुए भी जब आत्मिक दृष्टि नश्वर ब्रह्माण्डों तथा निराकार – बेहद से परे परमधाम में पहुँचती है, तो वह आनन्द के अनन्त सागर में विहार करने लगती है। अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत तथा निजघर की प्राप्ति मूल सम्बन्ध से ही होती है।

प्रकरण ॥२॥ चौपाई ॥१५॥

राग केदारो

साधो भाई चीन्हो सब्द कोई चीन्हो।

ऐसो उत्तम आकार तोकों दीन्हों, जिन प्रगट प्रकास जो कीन्हों॥१॥

हे सन्त जनों! अलौकिक ब्रह्मज्ञान के शब्दों की पहचान करो। तुम्हें ऐसे उत्तम मानव तन की प्राप्ति हुई है, जिसमें परब्रह्म के ज्ञान का प्रकाश प्रकट होता है।

मानखें देह अखण्ड फल पाइए, सो क्यों पाए के वृथा गमाइए।

ए तो अधखिन को अवसर, सो गमावत मांझ नींदर॥२॥

इसी मानव तन से अखण्ड परमधाम तथा परब्रह्म का साक्षात्कार होता है। इसे पाकर संसार के झूठे सुखों में गँवाना नहीं चाहिए। यह जीवन तो आधे क्षण की तरह है। तुम इस अनमोल समय को अज्ञान में भटकते हुए गँवा

रहे हो।

भावार्थ- मनुष्य का जीवन वर्षों में होता है, लेकिन उसे आधे क्षण वाला कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार पानी का बुलबुला आधे क्षण में समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार जीवन भी क्षणभँगुर है। पञ्चभौतिक तन की नश्वरता को देखते हुए ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना ही जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य होना चाहिए।

सब्दा कहे प्रगट प्रवान, सब्दा सतगुर सों करावे पेहेचान।
सतगुर सोई जो अलख लखावे, अलख लखे बिन आग न जावे॥३॥

शब्दों से ही यथार्थ सत्य की पहचान होती है। शब्दों से ही विदित होता है कि वास्तविक सद्गुरु कौन है? सद्गुरु वही है, जो उस इन्द्रियातीत परब्रह्म का साक्षात्कार कराये। जब तक उस परब्रह्म का साक्षात्कार नहीं होता,

तब तक हृदय की दाझ नहीं मिटती अर्थात् शान्ति नहीं मिलती।

सास्त्र ले चले सतगुर सोई, बानी सकल को एक अर्थ होई।

सब स्यानों की एक मत पाई, पर अजान देखे रे जुदाई॥४॥

सद्गुरु वही है, जो धर्मग्रन्थों के द्वारा वास्तविक सत्य को प्रकट करे। सभी धर्मग्रन्थों का मूल आशय एक ही होता है। सभी मनीषियों के कथनों में एकरूपता होती है, लेकिन अज्ञानी लोग अलग-अलग समझते हैं।

भावार्थ- वेद, उपनिषद, दर्शन, सन्त वाणी, कुरआन, तथा बाइबल इत्यादि में एक ही परब्रह्म को अनेक प्रकार से बताया गया है। छः शास्त्रों के रचनाकारों ने सृष्टि बनने के छः कारणों की अलग-अलग व्याख्या की है। उसमें तत्त्वतः कोई भेद नहीं है, किन्तु अल्पज्ञ लोग भेद

मानकर लड़ते रहते हैं। सत्य दृष्टा मनीषियों का कथन सभी कालों में समान होता है।

सास्त्रों में सबे सुध पाइए, पर सतगुर बिना क्यों लखाइए।
 सब सास्त्र सब्द सीधा कहे, पर ज्यों मेर तिनके आड़े रहे॥५॥
 शास्त्रों में परब्रह्म की पहचान तो अवश्य लिखी है ,
 लेकिन वह इतने गोपनीय तरीके से लिखी है कि बिना
 सद्गुरु की कृपा के उसे जाना नहीं जा सकता। यद्यपि
 शास्त्रों में ब्रह्मज्ञान की बातें गोपनीय किन्तु सीधे ढंग से
 कही गयी हैं, फिर भी सत्य का बोध उसी प्रकार नहीं हो
 पाता, जिस प्रकार आँख के आगे यदि छोटा सा तिनका
 भी आ जाये, तो सुमेरु जैसा ऊँचा पर्वत भी नहीं
 दिखायी पड़ता।

सो तिनका मिटे सतगुर के संग, तब पारब्रह्म प्रकासे अखंड।

सतगुर जी के चरन पसाए, सब्दों बड़ी मत समझाए॥६॥

सद्गुरु की संगति से ही धर्मग्रन्थों के छिपे हुए रहस्य खुलते हैं और अखण्ड परब्रह्म का बोध होता है। सद्गुरु के चरणों की कृपा से ही धर्मग्रन्थों में छिपे हुए तत्त्व ज्ञान को समझा जा सकता है।

तब खोज सब्द को लीजे तत्व, तौल देखिए बड़ी केही मत।

जासों पाइए प्रान को आधार, सो क्यों सोए गमावे रे गमार॥७॥

तब धर्मग्रन्थों में निहित परम तत्त्व का ज्ञान ग्रहण करना चाहिए और यह समीक्षा (ज्ञान दृष्टि से देखना) करनी चाहिए कि किसका ज्ञान किस मन्जिल तक पहुँचा रहा है। जिस मानव तन के द्वारा अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत को पाया जाता है, उसे अज्ञानतावश विषय सुखों में

फँसाकर उम्र को खोना गँवारपन (मूर्खता) है।

यामें बड़ी मत को लीजे सार, सतगुरु याहीं देखावें पार।

इतहीं बैकुंठ इतहीं सुन्य, इतहीं प्रगट पूरन पारब्रह्म॥८॥

इस नश्वर जगत में जाग्रत बुद्धि का ज्ञान देने वाले सद्गुरु की शरण लेनी चाहिए, जो यहीं पर बैठे-बैठे बेहद और परमधाम की अनुभूति करा सकें। वे यहीं पर ही वैकुण्ठ-निराकार के साथ-साथ उस पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द का भी साक्षात्कार करा देंगे।

ए बानी गरजत मांझ संसार, खोजी खोज मिटावे अंधार।

मूढ़मती न जाने विचार, महामत कहें पुकार पुकार॥९॥

श्री महामति जी यह बात पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि जाग्रत बुद्धि की यह श्रीमुखवाणी संसार में गर्जना

करते हुए सबको परमधाम की राह दिखा रही है। प्रियतम परब्रह्म की खोज में रहने वाले, ब्रह्मवाणी को आत्मसात कर, अपने हृदय की अज्ञानता के अन्धकार को मिटा देते हैं, किन्तु अत्यधिक मूर्खता का शिकार होने वाले लोग इसको ग्रहण ही नहीं करते।

प्रकरण ॥३॥ चौपाई ॥२४॥

साधो हम देख्या बड़ा तमासा।

विश्व देख भया मैं विस्मय, देख देख आवत मोहे हासा॥१॥

हे सन्त जनों! मैंने इस जगत में बहुत विचित्र तमाशा देखा है। इस संसार की हालत को देखकर मुझे बहुत आश्चर्य होता है तथा हँसी भी आती है।

मेरी मेरी करते दुनी जात है, बोझ ब्रह्मांड सिर लेवे।

पाउ पलक का नहीं भरोसा, तो भी सिर सरजन को न देवे॥२॥

यह मेरा है, यह मेरा है, कहते हुए सभी लोग अपना तन छोड़ते जाते हैं। उनके साथ कुछ भी नहीं जाता। लेकिन जब तक वे जीवित रहते हैं, तब तक इतने चिन्तित रहते हैं, जैसे सारे संसार को चलाने की जिम्मेदारी उनकी ही हो। एक पल के चौथाई हिस्से में भी शरीर छूटने की सम्भावना बनी रहती है, फिर भी वे सच्चिदानन्द परब्रह्म

के प्रति समर्पित नहीं होते।

सिर ले काम करे माया को, निसंक पछाड़े आप अंग।

न करे भजन दोष देवें साईं को, कहे दया बिना न होवे साध संग॥३॥

सारे परिवार का बोझ अपने शरीर पर लेकर वे माया के कामों में लगे रहते हैं और इसी में अपने शरीर को जर्जर कर देते हैं। स्वयं तो परमात्मा का भजन करते नहीं, किन्तु कर्म-फल के कारण जब कष्ट मिलता है तो परमात्मा को ही दोषी ठहरा देते हैं। भजन न करने के बहाने बनाते हुए कहते हैं कि हम क्या करें , बिना परमात्मा की दया के तो सत्संग भी नहीं मिलता, उसके बिना हम भजन कैसे करें?

बांधत बंध आपको आपे, न समझे माया को मरम।

अपनों कियो न देखे अंधे, पीछे रोवें दोष दे दे करम॥४॥

वे लोग इस धूर्तनी माया के मर्म को नहीं समझते , बल्कि स्वयं को सांसारिक मोह के बन्धनों में इतना अधिक बाँध लेते हैं कि उससे अलग नहीं हो पाते। मोह और अज्ञान में अन्धे वे लोग उस समय तो अपने दुष्कर्मों की ओर ध्यान देते नहीं, किन्तु बाद में दण्ड के रूप में जब दुःख भोगना पड़ता है, तो उसे याद कर-कर रोते हैं।

समझे साध कहावें दुनी में, बाहेर देखावें आनन्द।

भीतर आग जले भरम की, कोई छूट न सके या फंद॥५॥

कुछ लोग अपने को बहुत बड़ा साधु-सन्त समझ लेते हैं और इस रूप में संसार में उनकी प्रसिद्धि भी हो जाती

है। ऐसे लोग स्वयं को परमानन्द में डूबा हुआ सिद्ध करते हैं, किन्तु उनके हृदय में भ्रम रूपी अज्ञानता की अग्नि जल रही होती है। सच ही कहा गया है कि इस माया के फन्दे से कोई भी क्यों न हो, गृहस्थ या विरक्त, छूट नहीं पाता।

परत नहीं पेहेचान पिंड की, सुध न अपनों घर।

मुखथें कहे मोहे संसे मिटया, मैं देखे साध केते या पर॥६॥

तथाकथित ऐसे कितने ही साधुओं को मैंने देखा है, जिन्हें न तो अपने शरीर में स्थित जीव तत्त्व की पहचान है और न अपने अखण्ड घर की। वे मुख से दिखावे के लिये कहा करते हैं कि मुझे ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो गया है और अब किसी प्रकार का संशय नहीं है।

साध सुने मैं देखे केते, अगम कर कर गावें।

नेहेचे जाए करें निराकार, या ठौर चित ठेहेरावें॥७॥

मैंने बहुत से ऐसे साधु-सन्तों के बारे में सुना है और उन्हें देखा भी है, जो परब्रह्म को मन-वाणी से परे निराकार के रूप में वर्णन किया करते हैं और उसी में अपने चित्त की वृत्तियों को एकाग्र करते हैं।

जो न कछू गाम नाम न ठाम, सो सत सांई निराकार।

भरम के पिंड असत जो आपे, सो आप होत आकार॥८॥

जिस अविनाशी ब्रह्म के स्वरूप, नाम, या धाम का बोध नहीं है, उसे ही निराकार परमात्मा कहते हैं और माया के नश्वर तनों को धारण करने वाले ये ज्ञानीजन अपने को आकार वाला मानते हैं, जबकि मृत्यु होने के पश्चात् उनके शरीर का कोई भी आकार रहता ही नहीं है।

जिन मंडल ए मांडे मंडप, थोभ न थंभ न बंध।

वाको नाहीं केहेत क्यों साधो, ए रच्यो किन कौन सनंध॥९॥

हे सन्त जनों! जिस परमात्मा ने आकाश मण्डल में इस ब्रह्माण्ड रूपी मण्डप का निर्माण किया है, जिसमें कोई भी दीवार, स्तम्भ (खम्भा), या बन्धन नहीं है, उसे आप निराकार क्यों कहते हैं? आप विचार कीजिए कि इस प्रकार की अद्वितीय रचना दूसरा कौन कर सकता है या किस प्रकार से कर सकता है?

जिन सायर खनाए पहाड़ चुनाए, रवि ससि नखत्र फिराए।

फिरत अहनिस रंग रुत फिरती, ऐसे अनेक वैराट बनाए॥१०॥

जिस ब्रह्म के द्वारा गहरे सागरों और ऊँचे पर्वतों का निर्माण हुआ, जिसकी सत्ता में सूर्य, चन्द्रमा, और असंख्य नक्षत्र भ्रमण कर रहे हैं, दिन-रात्रि तथा ऋतुओं

का चक्र परिवर्तित होता रहता है, वनस्पतियों में रंगों का परिवर्तन होता है, वह स्वयं कैसा है? ऐसा केवल इसी ब्रह्माण्ड में ही नहीं, बल्कि अनन्त ब्रह्माण्डों में हो रहा है।

जिन खिनमें तत्व पांच समारे, नास करे खिन मांहीं।

ए कहां से उपाय कहां ले समाए, ए विचारत क्यों नांहीं॥११॥

हे सन्त जनों! जो एक क्षण में पाँच तत्वों का यह विस्तृत ब्रह्माण्ड खड़ा कर देता है तथा क्षण भर में ही महाप्रलय में लीन भी कर देता है, उसके विषय में आप क्यों नहीं सोचते कि ब्रह्म इन पाचों तत्व को कहाँ से प्रकट करता है और कहाँ पर लीन करता है?

भावार्थ— वस्तुतः मोह तत्व ही निराकार का मण्डल है, जिसमें ब्रह्म के संकल्प से क्षोभ पैदा होता है। परिणाम स्वरूप महत्तत्व और अहंकार की रचना होती है। इससे

पाँचों तत्व प्रकट होते हैं और पुनः उसी में लीन हो जाते हैं। ब्रह्म का स्वरूप इस मोहमयी निराकार से परे है।

सतगुर साधो वाको कहिए, जो अगम की देवे गम।

हृद बेहृद सबे समझावे, भाने मन को भरम॥१२॥

हे सन्त जनों! सद्गुरु वही है, जो उस परब्रह्म का साक्षात्कार कराये, जिसे आज तक कोई भी मन-बुद्धि से प्राप्त नहीं कर सका है। वह ही हृद-बेहृद का ज्ञान दे सकता है तथा मन के सभी संशयों को समाप्त कर सकता है।

महामत कहे गुर सोई कीजे, जो अलख की देवे लख।

इन उलटीसे उलटाए के, पिया प्रेमें करे सनमुख॥१३॥

श्री महामति जी कहते हैं कि एकमात्र उसी को सद्गुरु के

रूप में स्वीकार करना चाहिए, जो उस इन्द्रियातीत परब्रह्म की पहचान कराये तथा इस झूठी माया से चित्त को हटाकर प्रियतम के प्रेम में डुबोए एवं प्रत्यक्ष अनुभव करा देवे।

प्रकरण ॥४॥ चौपाई ॥३७॥

राग श्री केदारो

यह किरन्तन ठड्डानगर में श्री चिन्तामणि जी को जाग्रत करने के लिये उतरा था, किन्तु इसका सिखापन (शिक्षा) सभी के लिये है।

सुनो रे सतके बनजारे, एक बात कहूं समझाई।

या फंद बाजी रची माया की, तामें सब कोई रहया उरझाई॥१॥

सत्य के व्यापारियों अर्थात् परब्रह्म को पाने की राह पर कदम बढ़ाने वालों! मैं आपको एक बात समझाकर कह रहा हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनिए। यह संसार बाजीगर के खेल की तरह माया का ऐसा फन्दा है, जिसमें हर कोई उलझा हुआ है।

आंटी आन के फांसी लगाई, वे भी उलटीएँ दर्ई उलटाई।

बंध पर बंध दिए बिध बिध के, सो खोली किनहूँ न जाई॥२॥

इस माया ने जीव को तृष्णा की गाँठ देकर मौत की फाँसी लगा रखी है, साथ ही विषयों में उल्टा लटका रखा है। काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, तथा मत्सर (ईर्ष्या) के अनेक बन्धनों से इस प्रकार बाँध दिया गया है, जिसे कोई भी खोल नहीं पाता है।

भावार्थ- मायावी सुखों की तृष्णा ही समस्त दुःखों का मूल है, जिसके कारण जीव जन्म-मरण के चक्र में भटकता रहता है। विषयों में फँसने के बाद दलदल में फँसने जैसी स्थिति बन जाती है, इसलिये इसे उल्टा लटकाने के प्रसंग में कहा गया है। तृष्णा से काम, क्रोध आदि षड् विकार उत्पन्न होते हैं, जिनके बन्धनों में जीव फँसा रहता है। इस चौपाई में माया के द्वारा जीव को

फाँसी के बन्धन में डालने का प्रसंग है, परब्रह्म के द्वारा नहीं।

चौदे भवन लग एही अंधेरी, झूठे को खेल झुठाई।

प्रगट नास व्यास पुकारे, सुकदेव साख पुराई॥३॥

पाताल से वैकुण्ठ तक माया का अन्धकार छाया हुआ है। माया के जीवों को संसार का यह झूठा खेल अच्छा लगता है। वेदव्यास जी ने स्पष्ट रूप से इन चौदह लोकों का महाप्रलय में नाश होना लिखा है तथा शुकदेव जी ने भी ऐसी ही साक्षी दी है।

लोक लाज मरजादा छोड़ी, तब ग्यान पदवी पाई।

एक आग ज्यों छोटी बुझाई, त्यों दूजी मोटी लगाई॥४॥

तुमने लोक-लज्जा तथा कर्मकाण्ड की मर्यादाओं को

छोड़कर ज्ञानी कहलाने की शोभा पाई है। गृहस्थी की छोटी आग को तो तुमने बुझा दिया, किन्तु महन्ती (गद्दी) की दूसरी बड़ी आग को गले से लिपटा लिया।

भावार्थ- गृहस्थ जीवन में सामाजिक मर्यादाओं तथा धर्म के नाम पर होने वाले कर्मकाण्डों का पालन करना पड़ता है। सच्चा विरक्त एवं ज्ञानी वही है, जो इन सबका परित्याग कर दे।

महन्त बनने के बाद सांसारिक प्रतिष्ठा एवं शिष्यों की संख्या बढ़ाने का मोह और अधिक बढ़ जाता है, जो गृहस्थी की जिम्मेदारियों से भी अधिक बन्धन वाला होता है। इसे ही "बड़ी आग" कहा गया है।

कोट सेवक करो नाम निकालो, इष्ट चलाओ बड़ाई।

सेवा कराओ सतगुर केहेलाओ, पर अलख न देवे लखाई॥५॥

भले ही तुम्हारे करोड़ों सेवक बन जायें, बड़ी-बड़ी उपाधियों से सुशोभित तुम्हारा नामकरण हो, अपने नाम का पन्थ भी चला लो, तथा संसार में सद्गुरु कहलाकर सेवा भी कराओ, फिर भी इन चीजों से सच्चिदानन्द परब्रह्म मिलने वाले नहीं हैं।

**अब छोड़ो रे मान गुमान ग्यान को, एही खाड़ बड़ी भाई।
एक डारी त्यों दूजी भी डारो, जलाए देओ चतुराई॥६॥**

हे चिन्तामणि! अब तुम प्रतिष्ठा की चाहना तथा ज्ञान के अभिमान को छोड़ दो। यह बहुत बड़ी खाई है। जिस प्रकार तुमने गृहस्थी के मोह को छोड़ दिया है, उसी प्रकार अपने शिष्यों में मान-मर्यादा की भावना को भी छोड़ दो। उस प्रियतम को पाने के लिये अपनी बुद्धि की चतुराई को भी जलाकर राख कर दो।

सास्त्र पुरान भेख पंथ खोजो, इन पैडों में पाइए नहीं।

सतगुर न्यारा रहत सकल थें, कोई एक कुली में कांही॥७॥

तुम भले ही शास्त्रों और पुराणों के विद्वानों, तरह-तरह की वेश-भूषा धारण करने वाले महात्मा, और विभिन्न पन्थों में खोजते रहो, लेकिन सद्गुरु का स्वरूप नहीं मिलेगा। सद्गुरु का स्वरूप इन सबसे अलग ही होता है। वास्तविक सद्गुरु तो इस कलियुग में कहीं एक ही होगा।

सत चाहो सो सब्दा चीन्हो, सो आप न देवे देखाई।

जिन पाया तिन मांहें समाया, राखत जोर छिपाई॥८॥

यदि तुम परम सत्य को पाना चाहते हो, तो ज्ञान के अमृतमयी शब्दों को पहचानो। शब्दों से ही उनके वास्तविक स्वरूप की पहचान होती है। सद्गुरु का स्वरूप किसी प्रचलित वेश-भूषा के बन्धनों में बँधा हुआ नहीं

दिखायी देता। सद्गुरु के जिस स्वरूप ने प्रियतम परब्रह्म को पा लिया होता है, वह उनके प्रेम में ही डूबा होता है। ऐसे सद्गुरु अपनी अध्यात्म-सम्पदा को मायावी लोगों से छिपाकर ही रखते हैं, वे किसी भी प्रकार का सिद्धि-प्रदर्शन नहीं करते।

सुध सबे पाइए सब्दों से, जो होवे मूल सगाई।

खिन एक बिलम न कीजे तब तो, लीजे जीव जगाई॥९॥

यदि परमधाम का मूल सम्बन्ध है, तो सद्गुरु के शब्दों से ही परम सत्य की पहचान हो जाती है। ऐसी स्थिति में एक क्षण की भी देरी किए बिना अपने जीव को जाग्रत कर लेना चाहिए।

पर मनुआ दिए बिन हाथ न आवे, सत की बड़ी ठकुराई।

और उपाय याको कोई नहीं, जिन देवे आप बड़ाई॥१०॥

सद्गुरु तथा प्रियतम परब्रह्म की बड़ी महिमा है। मन का समर्पण किये बिना न तो सद्गुरु को ही रिझाया जा सकता है और न अपने प्रियतम को ही पाया जा सकता है। समर्पण के अतिरिक्त अन्य कोई भी मार्ग नहीं है। यदि तुम उस लक्ष्य को पाना चाहते हो, तो अपनी बड़ाई के चक्कर में न पड़ो।

महामत कहें सावचेत होइयो, मिल्या है अंकूरो आई।

झूठी छूटे सांची पाइए, सतगुर लीजे रिझाई॥११॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे चिन्तामणि जी ! सावधान हो जाओ। तुम्हारे अन्दर परमधाम का अँकुर होने के कारण ही तुम्हें सद्गुरु स्वरूप में प्रियतम परब्रह्म

मिले हैं। तुम झूठी माया को छोड़कर अखण्ड ब्रह्मज्ञान प्राप्त करो और अपने सद्गुरु को रिझा लो।

प्रकरण ॥५॥ चौपाई ॥४८॥

राग गौड़ी

भाई रे बेहद के बनजारे, तुम देखो रे मनुए का खेल।

ए सब आग बिना दीया जले, याको रुई न बाती तेल॥१॥

बेहद की राह पर चलने वाले भाइयों! मन के इस विचित्र खेल को देखो। इस खेल में ऐसा दीपक जल रहा है, जिसमें न तो ज्योति है, न रुई की बत्ती, और न तेल।

भावार्थ- यह संसार अक्षर ब्रह्म के मन अव्याकृत का स्वप्न है। उनका स्वाप्निक स्वरूप ही आदिनारायण हैं, जिनके संकल्प "एकोऽहम् बहुस्याम्" से असंख्य ब्रह्माण्ड प्रकट होते हैं। उन ब्रह्माण्डों के जीव भी आदिनारायण की चेतना के प्रतिबिम्बित रूप होते हैं। उनके हृदय में जो ज्ञान रूपी दीपक जलता है, उसमें अक्षरातीत के प्रति अटूट श्रद्धा रूपी रुई की बाती नहीं होती। अखण्ड प्रेम

रूपी तेल नहीं होता, इसलिये उस दीपक से परमधाम के ज्ञान का प्रकाश नहीं होता।

चारों तरफों चौदे लोकों, बैकुंठ लग पाताल।

फूल पात फल नहीं या द्रखत को, काष्ठ त्वचा मूल न डाल॥२॥

पाताल से लेकर वैकुण्ठ तक चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड भी एक ऐसा स्वप्नमयी वृक्ष है, जिसमें चारों तरफ कहीं भी खोजने पर न तो उसकी डालियाँ दिखायी पड़ती हैं और न फल, फूल, पत्ते, लकड़ियाँ, छाल, और न ही जड़।

भावार्थ— जिस प्रकार स्वप्न देखते समय एक सुन्दर वृक्ष में फल, फूल, पत्तों, तथा डालियों की विचित्र शोभा होती है और सपना टूटते ही वृक्ष का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड भी

एक खूबसूरत स्वप्नमयी वृक्ष है। चौदह लोक के मनोरम दृश्य इसके फूल और पत्ते आदि हैं। जिस प्रकार स्वप्न टूटने के बाद वृक्ष का कुछ भी अस्तित्व नहीं होता, उसी प्रकार महाप्रलय में इस सुन्दर दिखायी देने वाले ब्रह्माण्ड का भी कोई नामोनिशान नहीं रहता।

देत देखाई तत्व पाँचों, मिल रचियो ब्रह्मांड।

जिनसे उपजे सो कछुए नाहीं, आप न पोते पिंड॥३॥

यह सारा ब्रह्माण्ड पाँच तत्व का बना हुआ दिखायी दे रहा है। जिस निराकार से यह पाँचों तत्व उत्पन्न हुए हैं, उसका स्वयं का कुछ भी रूप नहीं है।

नहीं पिंड पोते हाथ पांउ भी नाहीं, नाटक नाच देखावे।

मुख न जुबां कछू नहीं याको, और बानी विविध पेरे गावें॥४॥

इस निराकार का न तो कोई शरीर है और न हाथ-पैर। फिर भी संसार में जो कुछ नाटक आदि दिखायी पड़ रहा है, सब इसी का है। निराकार का न तो मुख है और न वाणी है, फिर भी संसार में अनेक धर्मग्रन्थों का गायन हो रहा है।

भावार्थ- निराकार (मोह तत्व, अहंकार) से पाँच तत्वों की उत्पत्ति होती है। इन्हीं पाँच तत्वों से सभी प्राणियों के शरीर बनते हैं। इनके अन्दर की चेतना उसी आदिनारायण का प्रतिबिम्ब है, जिनका प्रकटन मोह तत्व में ही होता है। इस प्रकार सृष्टि में दिखायी पड़ने वाले सभी क्रियाकलापों का आधार वह निराकार है, जिसका कोई भी रूप, रंग, हाथ, पैर, मुख, या वाणी नहीं है। वस्तुतः निराकार ही साकार रूप में परिवर्तित होकर सारे कार्य कर रहा है।

आतम नारायन नाचत बुध ब्रह्मा, निस दिन फिरे नारद मन।

वैराट नटवा नाचत विध विध सों, नचवत व्यास करम॥५॥

इस संसार के प्राणियों में चेतना आदिनारायण की है, स्वप्नमयी बुद्धि चारों वेदों के ज्ञाता ब्रह्मा जी की है, तथा नारद जी की तरह हमेशा चलायमान रहने वाला मन है। इस प्रकार यह सारा ब्रह्माण्ड ही नाटक की नृत्य लीला में संलग्न है। वेद व्यास जी के नाम से बने हुए कर्मकाण्ड के ग्रन्थों के जाल में सभी फँसे हुए हैं।

भावार्थ- जीव की बुद्धि को ब्रह्मा जी की बुद्धि कहने का आशय यह है कि ब्रह्मा जी ब्रह्माण्ड में सर्वोपरि ज्ञानी हैं। मन को नारद कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार नारद जी कहीं भी एक स्थान पर अधिक समय तक नहीं रहते, उसी प्रकार मन भी सामान्यतः अधिक समय तक कहीं भी स्थिर नहीं रहता। पौराणिक लोगों ने कर्मकाण्ड

के ग्रन्थ वेद व्यास जी के नाम से बनाये हैं, इसलिये इस प्रसंग में उनका नाम आया है।

ए मनुए की बाजी बाजी में मनुआ, जुदे जुदे खेल खेलावे।
बरना बरन खेलत सब ऐसे, नए नए स्वांग बनावे॥६॥

अक्षर ब्रह्म के मन (अव्याकृत) के स्वाप्निक रूप आदिनारायण सृष्टि में तरह-तरह के खेल कर रहे हैं। उनके बनाये हुए इस खेल में सभी वर्गों के लोग नये-नये स्वांग बनाकर नाटक की लीला कर रहे हैं।

पारब्रह्म तो पूरन एक है, ए तो अनेक परमेश्वर कहावें।

अनेक पंथ सब्ड सब जुदे जुदे, और सब कोई सास्त्र बोलावें॥७॥

पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द तो एक ही हैं, किन्तु इन लोगों ने अलग-अलग अनेक परमात्मा की कल्पना कर ली है।

सबके अपने-अपने पन्थ और ग्रन्थ हैं, तथा सभी अपने ही ग्रन्थ को धर्मशास्त्र मानते हैं।

रब्द करे औरन को निंदे, आपको आप बढ़ावे।

ग्यान कथे गुन गाए आपके, होहोकार मचावे॥८॥

ये लोग दूसरों की निन्दा करते हैं तथा अपने मुख से अपने को सबसे श्रेष्ठ मानते हैं। इस प्रकार आपस में हमेशा ही लड़ते-झगड़ते रहते हैं। ज्ञान की बातें कहकर तथा अपनी महिमा सुनाकर ऊँची आवाज में जय – जयकार करवाते हैं।

दुबधा दिल में अवगुन ढूँढे, गुन चित सों न लगावें।

भटकत फिरे भरम में भूले, अंग में आग धखावें॥९॥

उनके दिल में हमेशा दुविधा की स्थिति बनी रहती है।

दूसरों में केवल अवगुण ढूँढने में ही उन्हें रस आता है। दूसरों की अच्छाई को वे कभी दिल में नहीं रखते। इस प्रकार के लोग हमेशा ही संशय में डूबकर संसार में भटकते रहते हैं और ईर्ष्या की अग्नि में जलते रहते हैं।

केते आप कहावें परमेश्वर, केते करत हैं पूजा।

साध सेवक होए आगे बैठे, कहें या बिन कोई नहीं दूजा॥१०॥

इनमें से तो कई ऐसे भी हैं, जो स्वयं को पूर्ण ब्रह्म परमात्मा के रूप में घोषित कर देते हैं और कुछ लोग उनको परमात्मा का स्वरूप मानकर पूजने भी लगते हैं। कुछ साधु उनकी सेवा में हमेशा लगे रहते हैं और इस प्रकार का प्रचार करते हैं कि हमारे गुरुदेव के समान इस ब्रह्माण्ड में कोई दूसरा श्रेष्ठ व्यक्ति नहीं है।

सास्त्र सब्द को अर्थ न सूझे, मत लिए चलत अहंकार।

आप न चीन्हें घर न सूझे, यों खेलत मांझ अंधार॥११॥

इन लोगों को शास्त्रों के कथनों का अभिप्राय मालूम नहीं होता है, किन्तु अहंकार में मग्न होकर अपने सम्प्रदाय विशेष का ही पोषण करते हैं। उन्हें यथार्थ सत्य से कुछ भी लेना-देना नहीं होता है। न तो उन्हें अपने निज स्वरूप की पहचान होती है और न ही घर की। इस प्रकार के लोग हमेशा ही अज्ञानता के अन्धकार में भटकते रहते हैं।

बाजी एक देखाऊं दूजी, खेलत हैं उजियारे।

भेख बनाए के नाचत सनमुख, एक ठाट लिए चारे॥१२॥

यह तो उन सामान्य लोगों की बात हुई, जो अज्ञानता के अन्धकार में माया में खेल रहे हैं। अब मैं उनकी लीला

दिखा रहा हूँ, जो ज्ञान के उजाले में होकर अलग-अलग रूपों में खेल कर रहे हैं, और संसार में उनकी शोभा भी बहुत अधिक है।

आतम विष्णु नाचत बुध सनत जी, गोकुल ग्रह्यो सिव मन।

करम सुकदेव नाचत नचवत, गावत प्रगट वचन॥१३॥

इनमें प्रमुख हैं— स्वयं विष्णु भगवान तथा अत्यधिक तीक्ष्ण प्रतिभा वाले सनक, सनन्दन, सनातन, और सनत्कुमार। अखण्ड ब्रज लीला को अपने हृदय में बसाने वाले भगवान शिव भी हैं। प्रेम में डूबकर कर्मों के बन्धन से मुक्त होने का उपदेश देने वाले शुकदेव जी भी इस खेल में हैं, जो दूसरों को भी अपने राह पर चलने के लिये प्रेरित करते हैं। ऐसा भागवत आदि ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से लिखा है।

भावार्थ- इस चौपाई में नाचने का अभिप्राय लौकिक नृत्य से नहीं, बल्कि इस मायावी खेल में भाग लेने से है। शुकदेव जी ने कभी भी कर्मकाण्ड का प्रतिपादन नहीं किया है, बल्कि प्रेम और ज्ञान द्वारा कर्मों के बन्धन से मुक्त होने का मार्ग दर्शाया है।

ए सब खेल करत है मनुआ, भांत भांत रिझावे।

ब्रह्मवासना कोई पारथीं पेखे, सो भी दृष्ट मुरछावे॥१४॥

अक्षर ब्रह्म के मन अव्याकृत का स्वाप्निक रूप ही आदिनारायण हैं, जो अनेक प्रकार से इस मायावी खेल में लीला कर रहे हैं। परमधाम की ब्रह्मसृष्टि मूल मिलावे में बैठे-बैठे इस खेल को नजरों से देख रही है, किन्तु वह भी इस खेल में स्वयं को भूली हुई है।

भावार्थ- यह सारा संसार मन का ही खेल है और इस

खेल की दृष्टा ब्रह्मसृष्टि भी तारतम ज्ञान के अभाव में स्वयं को भूली रहती है, जिस प्रकार मूर्छित अवस्था में स्वयं का बोध नहीं होता।

इस मनुए को कोई न पेहेचाने, जो तुम सकल मिलो संसार।

सब कोई देखे यामें मनुआ, या मनुआ में सब विस्तार॥१५॥

यदि इस संसार के सभी लोग मिल जायें, तो भी मन के वास्तविक स्वरूप को पूर्ण रूप से नहीं पहचान सकते, क्योंकि अव्याकृत के सपने के मन आदिनारायण के मन से ही सारी सृष्टि का विस्तार है, जबकि मनुष्य आदि जिस मन से सारा कार्य करते हैं, वह मन माया से प्रकट हुआ होता है।

भावार्थ— मन कारण शरीर (अन्तःकरण) का अंग है। जीव की चेतनता से ही मन आदि में चेतन प्रक्रिया होती

है। आदिनारायण की चेतना का प्रतिबिम्ब ही जीव है। इस प्रकार बिना तारतम ज्ञान के अक्षर ब्रह्म के अखण्ड मन अव्याकृत तथा उसके भी स्वाप्निक मन को पूर्ण रूप से नहीं समझा जा सकता।

बोहोत पुकार करुं किस खातिर, ए सब सुपन सरूप।

बेहद बनज का होणा साथी, सो एक लवे होसी टूक टूक॥१६॥

यह सारा संसार स्वप्नवत् मिथ्या एवं जड़ है। मैं किसके लिये इतनी अधिक पुकार करूँ? जो भी निराकार से परे बेहद की राह पर चलने वाला होगा, वह ब्रह्मवाणी के एक शब्द को भी सुनकर अपने प्राणवल्लभ पर न्योछावर हो जायेगा।

महामत ए सनमंधे पाइए, ऐसा अखंड सुख अपार।

गुर प्रसादे नाटक पेख्या, पाया मन मन का प्रकार॥१७॥

श्री महामति जी कहते हैं कि माया के क्षणिक और नश्वर सुखों से परे परमधाम का जो अखण्ड और अनन्त आनन्द है, वह मूल सम्बन्ध से ही प्राप्त होता है। सद्गुरु की कृपा से ही इस संसार रूपी नाटक को द्रष्टा होकर देखा जाता है, और अखण्ड मन अव्याकृत, तथा उसके स्वाप्निक रूप आदिनारायण के मन, एवं जीव के मन, को यथार्थ रूप से जाना जाता है।

प्रकरण ॥६॥ चौपाई ॥६५॥

राग मारू

हो मेरी वासना, तुम चलो अगम के पार।

अगम पार अपार पार, तहां है तेरा करार।

तूं देख निज दरबार अपनो, सुरत एही संभार॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा! तुम अगम कहे जाने वाले इस निराकार से परे चलो। निराकार मण्डल से परे बेहद है, जिसके परे परमधाम है। वहाँ पहुँचने पर ही तुम्हें सुकून (वास्तविक शान्ति) मिलेगा। तुम अपने निजघर में मूल मिलावे की शोभा में अपनी सुरता एकाग्र करो।

भावार्थ- वासना, सुरता, आत्मा, रूह, इत्यादि समानार्थक शब्द हैं। निराकार को कोई पार नहीं कर पाता, इसलिये इसे अगम कहते हैं। मूल मिलावे में

विराजमान युगल स्वरूप तथा परात्म की शोभा को देखे बिना परम शान्ति की आशा करना व्यर्थ है।

तू कहा देखे इन खेल में, ए तो पड़यो सब प्रतिबिंब।

प्रपंच पाँचों तत्व मिल, सब खेलत सुरत के संग॥२॥

हे मेरी आत्मा! तू इस झूठे खेल में क्या देख रही है? यह सारा ब्रह्माण्ड तो अखण्ड अव्याकृत का प्रतिबिम्ब है। मायाजन्य पाँचों तत्व झूठे हैं। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तथा शरीर पाँच तत्वों का है, जिसमें जीव के ऊपर विराजमान होकर आत्मा इस खेल को देख रही है तथा जीव सुख-दुःख, जन्म-मरण का खेल खेल रहा है।

भावार्थ- अव्याकृत के महाकारण में स्थित सुमंगला पुरुष की चेतना ही प्रतिबिम्ब में आदिनारायण की चेतना (महाकारण) है और आदिनारायण का बाह्य रूप

"प्रणव" (ॐ) का प्रतिबिम्ब है, इसलिये आदिनारायण को प्रणव, हिरण्यगर्भ, आदि भी कहते हैं। अव्याकृत के सूक्ष्म और कारण में जो भी स्थित है, वह प्रतिबिम्ब रूप में हृद में भी है।

यामें गुनी ग्यानी मुनी महंत, अगम कर कर गावें।

सुनें सीखें पढ़ें पंडित, पार कोई न पावें॥३॥

इस संसार में शील आदि गुणों से सुशोभित महापुरुष, ज्ञानीजन, धर्म और परम तत्त्व का मनन करने वाले मुनि, तथा अपनी श्रेष्ठता को दर्शाने वाले महन्त आदि, उस ब्रह्म को मन-बुद्धि से परे अगम कहकर वर्णन करते हैं। पण्डित लोग धर्मग्रन्थों का श्रवण एवं स्वाध्याय करते हैं तथा भक्ति की राह पर भी चलने का प्रयास करते हैं, किन्तु उस ब्रह्म का बोध नहीं कर पाते।

तू देख दरसन पंथ पैडे, करें किव सिध साध।

चढ़ी चौदे सुन्य समावें, तहां आड़ी अगम अगाध॥४॥

हे मेरी आत्मा! तू जरा इस दुनिया के मत-पन्थों के दार्शनिक ज्ञान को तो देख। उस परमात्मा के बारे में साधु-महात्मा और सिद्ध लोग कविताओं के रूप में तरह-तरह के ग्रन्थों की रचना करते हैं। इस संसार के लोग जब अपने ज्ञान और साधना के बल से १४ लोकों को पार करते हैं, तो आगे निराकार का अनन्त मण्डल आ जाता है, जिसको पार न कर पाने के कारण उन्हें उस शून्य-निराकार में ही भटकना पड़ता है।

ए भरम बाजी रची रामत, बहु विधें संसार।

ए जो नैन देखे श्रवन सुने, सब मूल बिना विस्तार॥५॥

इस संसार में अनेक प्रकार के जो भी झूठे खेल दिखायी

पड़ रहे हैं, सभी मिथ्या एवं अज्ञानता के अन्धकार से परिपूर्ण हैं। आँखों से जो कुछ भी देखा जाता है, या कानों से जो कुछ भी सुना जाता है, सब कुछ मृग-तृष्णा के जल के समान काल्पनिक एवं निराधार है।

भावार्थ- दृश्यमान जगत को निराधार एवं मिथ्या कहने का भाव यह है कि महाप्रलय में जब कुछ बचेगा ही नहीं, तो वर्तमान में दिखायी देने वाला पदार्थ निराधार क्यों नहीं? महाप्रलय में तो मोह तत्व (निराकार) भी नहीं रहता, जिससे अनन्त ब्रह्माण्डों का सृजन होता है। जब तक आदिनारायण का सपना चल रहा है, तभी तक यह जगत् प्रतीत हो रहा है।

वैराट सब हम देखिया, वैकुंठ विष्णु सेखसाईं।

सुन्यथें जैसे जल बतासा, सो सुन्य मांझ समाई॥६॥

शेषशायी नारायण तथा वैकुण्ठ में विराजमान विष्णु भगवान सहित इस विराट् जगत को मैंने देखा, जो महाशून्य (निराकार) से उसी प्रकार उत्पन्न हुआ है जैसे महासागर से पानी का बुलबुला। अन्ततोगत्वा यह महाशून्य में ही लीन हो जाने वाला है।

भावार्थ— शेष कहते हैं, शून्य को। शून्य से तात्पर्य निराकार या मोह तत्त्व से है। मोह तत्त्व में शयन करने वाला ही शेषशायी नारायण है। बिना पञ्चभूतों के नाग की उत्पत्ति कहाँ से हो गयी? शेषशायी नारायण को विराट् जगत् के स्थूल में पाताल के अन्दर मानना युक्तिसंगत नहीं है। वैदिक दृष्टिकोण से शेषशायी नारायण , आदिनारायण, प्रणव, महाविष्णु, हिरण्यगर्भ, आदि सभी शब्द एकार्थवाची हैं।

ए तूं देख नाटक निमख को, अब करे कहा विचार।

पाउ पल में उलंघ ले, ब्रह्मांड सुन्य निराकार॥७॥

हे मेरी आत्मा! पल भर में ही लीन हो जाने वाले इस संसार रूपी नाटक को तू सावधानी से देख। इस सम्बन्ध में अब तू क्या सोच रही है? अपने प्रियतम को पाने के लिये तुम एक पल के चौथाई हिस्से में ही इस ब्रह्माण्ड और निराकार को पार कर लो।

भावार्थ- निराकार से उत्पन्न होने वाला केवल एक ही ब्रह्माण्ड नहीं है, बल्कि अनन्त ब्रह्माण्ड हैं। यहाँ एक ब्रह्माण्ड का कथन प्रकृति मण्डल को सीमित क्षेत्र में समझाने के लिये है।

तेरे बीच बाट घाट न तत्व कोई, तूं करे पाउं बिना पंथ।

निरंजन के परे न्यारा, तहां है हमारा कंथ॥८॥

निराकार से परे उस अनन्त परमधाम में प्रियतम विराजमान हैं। वहाँ तक पहुँचने के मार्ग में अब कोई भी बाधा नहीं है। तू तो बिना पैरों के ही अपनी मन्जिल पूरी कर लेगी, अर्थात् नवधा भक्ति और कर्मकाण्ड की राह छोड़कर इश्क-ईमान के पँखों से विहँगम मार्ग द्वारा पहुँच जायेगी।

अब पार सुख क्यों प्रकासिए, ए है अपनो विलास।

महामत मनसा मिट गई, सब सुपन केरी आस॥९॥

श्री महामति जी कहते हैं कि परमधाम अपने प्रियतम के प्रेम और आनन्द का स्थान है। वहाँ के त्रिगुणातीत अनन्त सुख को शब्दों में कैसे कहा जाये ? वहाँ के सुख की अनुभूति होते ही माया की सारी इच्छायें समाप्त हो गयीं।

प्रकरण ॥७॥ चौपाई ॥७४॥

राग विलावर

हो भाई मेरे वैष्णव कहिए वाको, निरमल जाकी आतम।
नीच करम के निकट न जावे, जाए पेहेचान भई पारब्रह्म॥१॥

मेरे प्रिय भाइयों! वैष्णव कहलाने का अधिकार उसी को है, जिसका हृदय ज्ञान एवं प्रेम से निर्मल हो चुका हो, जो किसी भी प्रकार के बुरे कर्म न करे, एवं जिसे सच्चिदानन्द अक्षरातीत की पहचान हो गयी हो।

इस्क लगाए पिया सों पूरा, खेले अबला होए अहनिस।
ओ अंधे अग्यानी भरम में भूले, पर या ठौर प्रेम को रस॥२॥

वह अपनी आत्मा को प्रियतम अक्षरातीत की अर्धांगिनी मानकर दिन-रात अनन्य प्रेम में डूबा रहता है। सच्चे वैष्णव का लक्षण यही है कि वह प्रेम के रस में डूबा रहता

है। इसके विपरीत कर्मकाण्डी वैष्णव अहंकार में अन्धे और अज्ञानता के अन्धकार में भटकने वाले होते हैं।

भावार्थ- यद्यपि विष्णु भगवान के उपासक को ही वैष्णव कहा जाता है, किन्तु इस प्रकरण में सच्चा वैष्णव उसे माना गया है, जो उस अनन्त और सर्वव्यापक सत्ता वाले अक्षरातीत परब्रह्म को अपना प्रियतम माने।

शब्दों से परे उस अक्षरातीत का कोई भी लौकिक नाम नहीं है, किन्तु दिव्य गुण, कर्म, और लीला भेद से परब्रह्म के अनेक नामों की कल्पना की जाती है। कल्याणकारी होने से उसे शिव कह सकते हैं, किन्तु वे कैलाशवासी शिव नहीं है। वैकुण्ठवासी विष्णु और कैलाशवासी शिव महापुरुष मात्र हैं, और ये भी उसी परब्रह्म की आराधना करते हैं। इनको मानने वाले वैष्णव और शैव ही कहे जायेंगे।

जब आत्म दृष्ट जुड़ी परआत्म, तब भयो आत्म निवेद।
 या विध लोक लखे नहीं कोई, कोई भागवंती जाने ए भेद॥३॥

जब आत्मा ध्यान में अपने मूल तन परात्म को देखती है, तो उसे आत्म-निवेदन कहा जाता है, अर्थात् आत्मा का प्रियतम के प्रति प्रेम-निवेदन। इस बात को संसार के लोग नहीं समझ पाते। आत्मा और परात्म के इस गुझ (गुह्य) भेद को केवल ब्रह्मसृष्टि ही वास्तविक रूप से जानती है।

जब वैष्णव अंग किए री अपरस, और कैसी अपरसाई।
 परस भयो जाको परसोतम सों, सो बाहेर न देवे देखाई॥४॥

जब सच्चे वैष्णव ने प्रियतम अक्षरातीत के प्रेम में डूबकर अपने हृदय को पवित्र कर लिया, तो उसे कर्मकाण्डों

और जल आदि से अपनी पवित्रता को प्रमाणित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उत्तम पुरुष अक्षरातीत से जिसकी आत्मा का मिलन हो जाता है, वह संसार के लोगों के सामने प्रदर्शन नहीं किया करता।

अहनिस आवेस हुअडा अंग में, जैसे मद चढ़यो महामत।

वाकों आसा और न उपजे तृष्णा, वह एकै सों एक चित॥५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि उसके हृदय में दिन – रात प्रियतम की छवि बसी रहती है तथा प्रेम की मस्ती चढ़ी रहती है। उसे संसार की कोई भी इच्छा या तृष्णा नहीं सताती, बल्कि उसका चित्त हमेशा अपने प्राणवल्लभ में ही लगा रहता है।

उतपंन प्रेम पारब्रह्म संग, वाको सुपन हो गयो संसार।
 प्रेम बिना सुख पार को नहीं, जो तुम अनेक करो आचार॥६॥
 जिसको प्रियतम से प्रेम हो जाता है, उसके लिये सारा
 संसार सपने जैसा झूठा लगने लगता है। भले ही तुम
 कितने ही कर्मकाण्डों का पालन करो, किन्तु जब तक
 तुम्हारे हृदय में प्रेम नहीं होगा, तब तक अखण्ड धाम का
 सुख नहीं मिल सकता।

सांचा री साहेब सांचसों पाइए, सांच को सांच है प्यारा।
 या वैष्णव की गत देखो रे वैष्णवो, महामत इनसे भी न्यारा॥७॥
 परब्रह्म परम सत्य है। उसे सच्चे ज्ञान और सच्चे प्रेम से
 ही पाया जाता है। सत्य को सत्य ही प्रिय होता है। श्री
 महामति जी कहते हैं कि हे वैष्णवों ! जरा अपनी दशा
 (अवस्था) तो देखिए कि किस तरह आप लोग अज्ञान में

भटकते हुए प्रियतम परब्रह्म के चरणों से दूर हैं? मेरी राह तो आप सबसे अलग (परमधाम की) है।

प्रकरण ॥८॥ चौपाई ॥८१॥

राग विलावर

कहा भयो जो मुखथें कहयो, जब लग चोट न निकसी फूट।

प्रेम बान तो ऐसे लगत हैं, अंग होत हैं टूक टूक॥१॥

मुख से निकलने वाले उन शुष्क शब्दों से क्या लाभ जिनकी चोट हृदय में मीठे घाव न कर दे? प्रेम के शब्द रूपी बाण तो इस प्रकार चुभ जाते हैं कि हृदय प्रेम में टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, अर्थात् स्वयं का अस्तित्व भुला दिया जाता है।

मुख के सब्द मैं बोहोत सुने, इन भी कोई दिन किया पुकार।

पर घायल भई सो तो कोईक कुली में, सो रहत भवसागर पार॥२॥

धर्मग्रन्थों के विद्वानों के मुख से मैंने बहुत अधिक ज्ञान की चर्चा सुनी है। इन्होंने काफी समय तक अपने ज्ञान

का प्रचार किया है, लेकिन उनके शब्दों से इस कलियुग में केवल उन्हीं के हृदय को चोट लगी जो भवसागर से परे रहने वाली ब्रह्मसृष्टि है।

भावार्थ- ज्ञान के शब्दों का प्रभाव उसी प्रकार सब पर नहीं होता, जिस प्रकार उत्तम से उत्तम बीज भी ऊसर भूमि में नहीं उगता। इस कलियुग में प्रकट होने वाली ब्रह्मसृष्टियाँ ही ब्रह्मज्ञान की महत्ता को समझती हैं।

वाको आग खाग बाघ नाग न डरावे, गुन अंग इन्द्री से होत रहित।
 डर सकल सांमी इनसे डरपत, या विध पाइए प्रेम परतीत॥३॥

ऐसी ब्रह्मसृष्टि को अग्नि, भयानक पक्षी, बाघ, और नाग आदि भी नहीं डरा पाते हैं। वह अपने गुण, अंग, और इन्द्रियों से रहित प्रतीत होती है। प्रेम में डूबी हुई आत्मा की यही पहचान है कि जिन भयावनी वस्तुओं से सभी

लोग डरते हैं, वे वस्तुएँ स्वयं ही इन ब्रह्ममुनियों से डरती हैं।

भावार्थ- ऐसी मान्यता है कि एक ऐसा भयानक पक्षी है, जो अपने चोंच में हाथी को भी उठा सकता है। इसी प्रकार नाग तथा बाघ आदि भी सबको डराने वाले हैं।

गुण का तात्पर्य है- सत्व, रज, और तम। इसी प्रकार अंग से अभिप्राय है- हृदय अर्थात् मन, चित्त, बुद्धि, और अहंकार। प्रेम में डूबी हुई आत्मा की स्थिति इस प्रकार की हो जाती है कि वह तीनों गुणों से परे त्रिगुणातीत अवस्था में विहार करती है। उसकी सारी क्रियायें प्रियतम से प्रेरित होती हैं, अर्थात् मन के मनन, चित्त के चिन्तन, बुद्धि की विवेचना, तथा अहंकार के अहंभाव से परे स्वाभाविक प्रक्रिया होती है। इन्द्रियाँ भी निर्विकार हो जाती हैं। इसी को कहते हैं- गुण, अंग,

और इन्द्रियों से रहित होना।

लगी वाली और कछु न देखे, पिंड ब्रह्मांड वाको है री नहीं।
 ओ खेलत प्रेमे पार पियासों, देखन को तन सागर माहीं॥४॥
 जिसको प्रियतम के प्रेम की लगन लग जाती है, उसे न
 तो शरीर दिखायी देता है और न ही संसार। भले ही
 उसका शरीर इस संसार में दिखायी देता है, लेकिन
 उसकी सुरता हृद-बेहृद से परे परमधाम में अपने
 प्रियतम से प्रेम-क्रीड़ा कर रही होती है।

जो कोई ऐसे मगन होए खेले प्रेम में, तो या बिध हमको है री सेहेल।
 पर पीवना प्रेम और मगन न होना, ए सुख औरों है मुस्किल॥५॥
 यदि कोई संसार में रहते हुए इस तरह प्रियतम के प्रेम
 में मग्न हो जाये, तो यह मार्ग हमें बहुत सरल लगता है,

किन्तु प्रियतम का प्रेम-रस पीना और उसमें मग्न भी न होना बहुत कठिन है। ब्रह्मसृष्टियों के सिवाय अन्य कोई इस राह पर नहीं चल पाता।

भावार्थ- जिस प्रकार धनवान व्यक्ति बहुत अधिक धन मिलने पर भी सामान्य मानसिक अवस्था में ही रहता है, और कंगाल आदमी अधिक धन प्राप्त करते ही अपना मानसिक संतुलन खो देता है, उसी प्रकार प्रेम स्वरूपा ब्रह्मसृष्टि प्रेम-रस पीकर भी संसार में सामान्य रूप से रहती हैं, किन्तु जीव सृष्टि इस बोझ को अच्छी तरह नहीं उठा पाती।

ए जिन कारन किया है कारज, सो ढूँढ़ों सैयां जो पिया ने कही।
न तो अबहीं मगन होए खेलों प्रेम में, तब तो देखन कहन सुनन तैं रही॥६॥
प्रियतम ने मुझसे कहा है कि तुम उन ब्रह्मसृष्टियों को

ढूँढो, जिनको मायावी खेल दिखाने के लिये यह संसार बनाया गया है। यदि ऐसा नहीं होता तो मेरी आत्मा भी धनी के प्रेम में मग्न हो जाती और संसार को देखने तथा ज्ञान की बातों को कहने-सुनने से अलग रहती।

देखन को हम आए री दुनियां, हमहीं कारन कियो ए संच।
पार हमारे न्यारा नहीं, हम पार में बैठे देखे प्रपंच॥७॥

हम इस संसार को देखने के लिये आये हुए हैं और हमें दिखाने के लिये ही यह ब्रह्माण्ड बनाया गया है। हमसे परमधाम अलग नहीं है, बल्कि परमधाम में ही धनी के चरणों में बैठे-बैठे सुरता द्वारा हम इस झूठे खेल को देख रहे हैं।

जिन बांधे हैं भवन चौदे, सो नार हमसे रहत है न्यारी।

दुःख में बैठी सुख लेवे महामति, पार के पार पिया की प्यारी॥८॥

जिस माया से इन नश्वर चौदह लोकों की उत्पत्ति हुई है, वह माया हमसे अलग रहती है। श्री महामति जी कहते हैं कि परमधाम की ब्रह्मसृष्टि अपने धनी की लाडली अँगना है। वह इस दुःख के संसार में बैठकर भी परमधाम के अखण्ड सुखों की लज्जत लेती है।

भावार्थ- इस चौपाई में कहा गया है कि आत्मा इस दुखमय संसार में बैठी हुई है, जबकि इसके पूर्व की चौपाई में कहा गया है कि ब्रह्मसृष्टि परमधाम में बैठे-बैठे इस खेल को देख रही है। क्या इन दोनों चौपाइयों के कथनों में विरोधाभास है? नहीं, कदापि नहीं।

वस्तुतः परात्म का नूरी तन इश्क के सागर और वाहेदत में है। उसका एक कण भी इस नश्वर जगत में नहीं आ

सकता। वहाँ वाहिदत होने के कारण सभी का दिल श्री राज जी के दिल से जुड़ा हुआ है। सभी की नजर को अपनी नजर में लेकर धनी अपने दिल रूपी परदे पर यह खेल दिखा रहे हैं, किन्तु हुक्म की कारीगरी से ब्रह्मसृष्टियों की सुरता इस संसार के जीवों पर बैठ कर खेल को देख रही हैं। उस सुरता को ही यहाँ आत्मा, वासना, या ब्रह्मसृष्टि की शोभा प्राप्त है , क्योंकि वह परात्म का प्रतिबिम्ब है।

इस प्रकार श्री मुखवाणी के किसी भी कथन में कहीं भी कोई विरोध नहीं है।

प्रकरण ॥९॥ चौपाई ॥८९॥

राग श्री केदारो

सुनो भाई संतो कहूं रे महंतो, तुम अखंड मंडल जान पाया।
 वैष्णव बानी पूछों गुर ग्यानी, ऐसा अंधेर धंधा क्यों ल्याया॥१॥
 हे वैष्णव भाइयों! सन्तों और महन्तों! क्या अब तक
 आपने अखण्ड धाम का ज्ञान प्राप्त किया है? आप अपने
 धर्मग्रन्थों को पढ़कर चिन्तन कीजिए तथा ज्ञानियों एवं
 गुरुजनों से यह बात पूछिए कि आपके पन्थ में इस तरह
 की अन्धकार भरी राह क्यों चल रही है?

जिन गोकुल को तुम अखंड कहत हो, सो तुमारी दृष्टि न आया।
 सुकजी के वचन में प्रगट लिख्या है, पर तुमको किने न बताया॥२॥
 आप जिस गोकुल को अखण्ड मानते हैं, उसके बारे में
 आपको यह भी पता नहीं है कि वह कहाँ है? यद्यपि

शुकदेव जी के वचनों में यह बात स्पष्ट रूप से लिखी है, फिर भी आपको किसी ने बताया नहीं है।

जाको तुम सतगुर कर सेवो, ताको इतनी पूछो खबर।
 ए संसार छोड़ चलेंगे आपन, तब कहाँ है अपनो घर॥३॥
 जिसे आप सद्गुरु मानकर सेवा करते हैं, उनसे जाकर केवल इतनी सी बात पूछिए कि महाप्रलय या शरीर छोड़ने के बाद हमारा मूल घर कहाँ होगा?

सब्द की वस्तु सो तो महाप्रले लीनी, और ठौर बताओ मोही।
 जाको सुध न आप और घर की, क्यों पार पावेगा सोई॥४॥
 जिसका वर्णन पाताल से वैकुण्ठ और निराकार तक किया जाता है, वह तो महाप्रलय में लीन हो जाने वाला है। इससे भिन्न जो अखण्ड मण्डल है, उसके बारे में

बताइए। जिसे स्वयं न तो अपने स्वरूप की पहचान है और न अपने घर की, वह भला इस भवसागर से पार कैसे हो सकता है?

कोई आप बड़ाई अपने मुख थें, करो सो लाख हजार।
परमेश्वर होए के आप पुजाओ, पर पाओ नहीं भव पार॥५॥
भले ही कोई अपने मुख से अपनी प्रशंसा लाखों-हजार बार करे तथा स्वयं को परमात्मा के रूप में घोषित करके पूजा करवाये, फिर भी वह भवसागर से पार नहीं हो सकता।

कोई सुध न पावे याकी, ऐसी माया सपरानी।
आपे प्रभु आपे सेवक, मांझे-मांझ उरझानी॥६॥
यह माया ऐसी छल वाली है, जिसकी वास्तविकता को

कोई भी समझ नहीं पाता। इसके जाल में सभी लोग आपस में इस प्रकार उलझे पड़े हैं कि कभी तो अपने को सेवक मानते हैं और कभी प्रभु मानते हैं।

बाहेर भेख देख भुलाने, तुम भीतर खोज न कीनी।

भागवत वचन वल्लभी टीका, तुम याकी सुध न लीनी॥७॥

आपने अपने गुरुजनों की उस बाहरी वेश-भूषा को ही देखा, जो त्याग का प्रदर्शन करने वाले होते हैं। आप उसी में आकर्षित होकर भ्रम-जाल में फँस गए। आपने यह जानने का प्रयास नहीं किया कि उनके अन्दर ब्रह्मज्ञान है या नहीं। श्रीमद्भागवत् के वचनों तथा उस पर श्री वल्लभाचार्य जी द्वारा लिखी गयी सुबोधिनी टीका का भी आपने चिन्तन नहीं किया।

ए तो हाथ में वस्त कहूं दूर न देखाऊं, तुम देखो खोज विचारी।
 सांच झूठ को प्रगट पारखो, कोई निकसो इन अंधारी॥८॥

तुम्हें कहीं दूर जाने अर्थात् कई ग्रन्थों में खोजने की आवश्यकता नहीं है। वल्लभाचार्य जी द्वारा रचित इस सुबोधिनी टीका में ही सत्य की खोज की इच्छा से विचारपूर्वक चिन्तन कीजिए। सत्य (अखण्ड ब्रज मण्डल) और झूठ (मायावी जगत) की स्पष्ट पहचान इस टीका से हो सकती है। इस मायावी जगत के अन्धकार से कोई तो निकले।

भवसागर और भागवत, याकी कुंजी एक समारी।
 ए दोऊ ताले दोऊ दरवाजे, कोई खोल न सके संसारी॥९॥

भवसागर और भागवत रूपी दरवाजों पर लगे हुए तालों को खोलने की चाबी एकमात्र तारतम ज्ञान है। तारतम

ज्ञान से रहित कोई भी हृद का वासी इन तालों को नहीं खोल सकता।

भावार्थ- तारतम ज्ञान के बिना न तो भागवत के गुह्य रहस्यों को जाना जा सकता है और न इस संसार की वास्तविकता को ही जाना जा सकता है कि यह संसार क्यों बना, कैसे बना, और इससे पार कैसे हुआ जाएगा?

ए संसार बड़ा है कोहेड़ा, और कोहेड़ा भागवत।

ए दोऊ एक कुंजी से खोलूँ, जो कोई देखूँ आगे संत॥१०॥

यह संसार बहुत अधिक कुहरे (धुँध) से भरा हुआ है, जिसमें किसी को पास की भी वस्तु नहीं दिखायी पड़ती, अर्थात् संसार अज्ञानता के कोहरे सदृश अन्धकार में भटक रहा है। यही स्थिति श्रीमद्भागवत् की भी है। यदि मैं किसी ऐसे जिज्ञासु सन्त को देखूँ, जो इन दोनों के

अन्धकार से पार जाना चाहता है, तो मैं तारतम ज्ञान की ज्योति से इस अन्धकार को दूर कर दूँगा।

जो कोई खप करे या निध की, सो नाखे आप निघात।
महामत कहे ताए अखंड सुख दीजे, टालिए संसारी ताप॥११॥
श्री महामति जी कहते हैं कि जो कोई भी इस तारतम ज्ञान रूपी निधि की इच्छा करता है, उसे अपने अहं का परित्याग करके समर्पण का भाव लाना चाहिए। ऐसा करने वाले को मैं संसार के सभी प्रकार के कष्टों से मुक्त करके अखण्ड धाम का सुख दूँगा।

प्रकरण ॥१०॥ चौपाई ॥१००॥

राग श्री नट

रे हूं नहीं रे हूं नहीं सिध साध संत री भगत, नाहूं वैष्णव अपरस आचार।

जात कुटम कुल नीच ना ऊंच, ना हूं बरन अठार ॥१॥

श्री महामति जी वैष्णवों को अपने निज स्वरूप तथा स्वलीला अद्वैत सिद्धान्त का बोध कराते हुए कहते हैं कि हे वैष्णव भाइयों! मैं कोई योग-सिद्ध, साधु, सन्त, भक्त, वैष्णव या शुद्धता के नियमों का पालन करने वाला कर्मकाण्डी नहीं हूँ। मैं किसी जाति विशेष, कुटुम्ब, ऊंचे या नीचे वंश, तथा अठारह वर्णों के भी बन्धन में नहीं हूँ।

रे हूं नहीं व्रत दया संझा अगिन कुंड, ना हूं जीव जगन।

तंत्र न मंत्र भेख न पंथ, ना हूं तीरथ तरपन ॥२॥

भिन्न-भिन्न प्रकार के व्रतों के पालन, प्राणियों पर दया,

सन्ध्या-हवन, जीव के द्वारा आत्मबोध होने से जो लोग ब्रह्म-प्राप्ति मानते हैं, मैं उनमें नहीं हूँ। विभिन्न प्रकार के तन्त्रों तथा मन्त्रों की साधना करने, अनेकों प्रकार की वेशभूषा तथा सम्प्रदाय धारण करने, तीर्थों में वास करने एवं तर्पण आदि की क्रियाओं से परब्रह्म प्राप्ति की आशा करने वालों में मैं नहीं हूँ।

रे हूं नाहीं करामात मत अगम निगम, धरम न करम उनमान।

सुपन सुषुप्त जाग्रत न तुरिया, तप न जप न ध्यान॥३॥

योग साधना से प्राप्त होने वाले चमत्कारों के प्रदर्शन, वेद शास्त्रों के सिद्धान्तों के ग्रहण, अनुमानपूर्वक धर्म एवं कर्मयोग को ही ब्रह्म साक्षात्कार मानने वालों से मैं अलग हूँ। जीव के जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा समाधि की तुरीय अवस्था में होने वाली अनुभूतियों, जप, तप, तथा

साकार एवं निराकार के ध्यान को भी मैं परब्रह्म-प्राप्ति नहीं मानता।

रे हूं नहीं अंग इंद्री ग्यान ब्रह्मचारी, ब्रह्मांड न लगत वचन।

रूप रंग रस धात में नहीं, गुन पख दिवस ना रैन॥४॥

मैं अन्तःकरण तथा इन्द्रियों से प्रकट होने वाले ज्ञान, एवं शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य के पालन को ही ब्रह्म-साक्षात्कार मानने वालों के सिद्धान्त में नहीं हूँ। मेरे प्रियतम तक तो इस ब्रह्माण्ड के शब्द पहुँचते ही नहीं हैं। इस संसार के किसी भी रूप, रंग, रस तथा धातुओं की तेजोमयी शोभा से भी परब्रह्म के अखण्ड स्वरूप का आंकलन नहीं किया जा सकता। प्रियतम परब्रह्म तीनों गुणों, दोनों पक्षों, दिन तथा रात्रि की परिधि से सर्वथा परे है।

रे हूं नाहीं सब्द सोहं जो तत्व पांच में, न खट चक्र सिर पवन।
 त्रिकुटी त्रिवेनी तीनों ही काल में, न अनहद अजपा आसन॥५॥

कुछ लोग सुरति शब्द योग के द्वारा सोऽहम् शब्द की अनुभूति या पांच तत्वों के साक्षात्कार को ही परमात्म साक्षात्कार मान लेते हैं। इसी प्रकार कुछ लोग छः चक्रों को जाग्रत करने तथा सिर में प्राणवायु को चढ़ाकर जड़ समाधि में चले जाने को परम गति मानते हैं, जो मुझे स्वीकार नहीं। इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना के मिलन स्थान को त्रिकुटी या त्रिवेणी कहते हैं। यहां पर संयम करने से होने वाली अनुभूति भी काल के अधीन है। दस अनहदों (ताल, मृदंग, झांझ, सिंह गर्जन, बांसुरी, वीणा, बादल की गर्जना, शहनाई, किंकिण तथा डम्फ), अजपा जाप तथा आसनों की सिद्धि को परम पद मानना बहुत बड़ी भूल है। मैं इन सभी मतों में नहीं हूँ।

रे हूं नाहीं नवधा में मुक्त में भी नाहीं, न हूं आवा गवन।

वेद कतेब हिसाब में नाहीं, न मांहे बाहेर न सुन॥६॥

जो लोग नवधा भक्ति में पारंगत हो जाने, चारों प्रकार की मुक्तियों को पाने तथा सृष्टि कल्याणार्थ मोक्ष से पुनः तन धारण करने को सर्वोपरि पद मानते हैं, मैं उसमें नहीं हूँ। मेरा प्राणवल्लभ अक्षरातीत तो चारों वेदों तथा कतेब ग्रन्थों (तौरेत, इन्जील, जंबूर और कुरआन) में वर्णित तथ्यों की सीमा, पिण्ड, ब्रह्माण्ड तथा शून्य-निराकार से भी परे है।

भावार्थ- नवधा भक्ति इस प्रकार है – श्रवण, कीर्तन, अर्चन, स्मरण, पाद सेवन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन। चार प्रकार की मुक्ति है – सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य। इस चौपाई में आवागमन का तात्पर्य चौरासी लाख योनियों में भटकना

नहीं, बल्कि गीता के उस कथन "यदा यदा हि धर्मस्य
 युगे-युगे" से है, जिसमें महापुरुष
 संसार के कल्याण के लिए बार-बार तन धारण करते हैं।

रे हूं नाहीं न्यारा जहां हूं तहां नजीक में, न हूं उनमुनी आकार।
 न हूं दृष्टें किन सुनिया री सृष्टें, न हूं निराकार॥७॥

यह नहीं समझना कि प्रियतम परब्रह्म केवल सबसे परे
 ही है। जिस परमधाम में अक्षरातीत का स्वरूप है, वहाँ
 लीला रूप प्रत्येक पदार्थ के वह नजदीक से भी नजदीक
 है, अर्थात् केवल वह ही है, अन्य नहीं। वह स्वलीला
 अद्वैत है। उन्मुनी मुद्रा से भी वह प्राप्त नहीं होता है। इस
 सृष्टि में किसी भी जीव ने न तो उसे अपने चर्म चक्षुओं से
 देखा है और न ही किसी ने कानों से अच्छी तरह सुना
 है। वह निराकार भी नहीं है।

भावार्थ- सच्चिदानन्द परब्रह्म इस मायावी जगत से परे अवश्य है, किन्तु उसका अखण्ड नूरी स्वरूप परमधाम से अलग नहीं हो सकता। वहाँ के कण-कण में उसी का स्वरूप लीला कर रहा है। उन्मुनी मुद्रा वह अवस्था है, जिसमें दसवें द्वार (सहस्रार चक्र) में समाधिस्थ हुआ जाता है। यह प्रकृति के अन्दर की अवस्था है और इसे ब्राह्मी अवस्था नहीं कहते हैं।

तुम सांचे सिध साध भगवत तुमको वैष्णवो, सांच सकल संसार।
 भनत महामत तुम अमर होउ याही में, मैं न कछू यामें निरधार॥८॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे वैष्णवो ! तुम तो सच्चे पुरुष, सिद्ध, साधु और भगवान के भक्त हो। तुम्हारे लिये तो यह संसार ही परम सत्य है, इसलिये इसी में तुम अमर होकर रहो। मेरा तो इस संसार से कोई भी सम्बन्ध

नहीं है।

प्रकरण ॥११॥ चौपाई ॥१०८॥

राग श्री गौड़ी

वैष्णवों को प्रबोधित करने के लिये यह किरन्तन सूरत में उतरा है।

वचन विचारो रे मीठड़ी, वल्लभाचारज बानी।

अर्थ लिए बिना ए रे अंधेरी, करत सबों को फानी॥१॥

हे वैष्णवों! श्री वल्लभाचार्य जी द्वारा की हुई श्रीमद्भागवत् की सुबोधिनी टीका के अति मीठे वचनों का विचार करो। तुमने इसका वास्तविक अर्थ नहीं समझा है, इसलिये अज्ञानतावश तुम इस नश्वर जगत में ही भटक रहे हो।

बानी गाऊं श्री वल्लभाचारज, ज्यों वैष्णव को सुख होए।

सत वचन बोहोत तो न कहूं, जानो दुख पावे दुष्ट कोए॥२॥

मैं श्री वल्लभाचार्य जी की सुबोधिनी टीका की प्रशंसा कर रहा हूँ, जिससे वैष्णव लोगों के हृदय में प्रसन्नता हो।
वैसे तो मैं कड़वे सच को ज्यादा नहीं कहूँगा, अन्यथा दुष्ट बुद्धि वाला व्यक्ति दुःखी होगा।

ए बानी को टेढ़ा कहावो, ए कौन तुमारा धरम।
वैष्णव कहाए के उलटे चलिए, ए नहीं तिनके करम॥३॥
ऐसी दिव्य वाणी को भी तुम झूठा सिद्ध करने में लगे रहते हो। क्या यही तुम्हारा धर्म है? स्वयं को वैष्णव कहलाकर उल्टी राह पर चलना तुम्हारे लिये शोभनीय नहीं है।

देखीते वैष्णव अति सुंदर, नीके बनावत भेख।
माला तिलक धोए धोती पेहेरे, एक दूजे के देख॥४॥

हे वैष्णवों! देखने में तो तुम बहुत अच्छे लगते हो क्योंकि तुम्हारा अधिकतर ध्यान सजने-सँवरने में ही रहता है। एक-दूसरे की देखा-देखी तुम साफ-सुथरी धोतियाँ और वस्त्र पहनते हो, तथा मालायें एवम् सुन्दर तिलक धारण करते हो।

कौन तुम और कहां तें आए, और कहां तुमारा घर।

ए कौन भोम और कहां श्री कृष्ण जी, पाओगे कौन तर॥५॥

लेकिन ब्रह्मज्ञान के क्षेत्र में तुम कोरे हो। तुम्हें यह भी पता नहीं है कि तुम कौन हो, कहाँ से आये हो, तुम्हारा अखण्ड घर कहाँ है, जिस संसार में रह रहे हो वह कैसा है, और श्री कृष्ण जी अखण्ड रूप से कहाँ पर लीला कर रहे हैं, तथा तुम उन्हें कैसे पाओगे?

उत्तम भेख धरो वैष्णव के, और वैष्णव आप कहावो।

जो वैष्णव बस करे नव अंग, सो वैष्णव क्यों न जगावो॥६॥

सच्चे वैष्णवों की नकल करते हुए तुम उत्तम वेशभूषा धारण कर लेते हो और स्वयं को भी श्रेष्ठ वैष्णव मानने लगते हो। सच्चा वैष्णव वही है जो नौ अंगों को वश में कर लेवे। ऐसे वैष्णव बनकर तुम अपने जीव को जाग्रत क्यों नहीं करते हो?

भावार्थ- नौ अंगों को वश में करने का तात्पर्य गीता के उस कथन से है- "नव द्वाराणि संयम्य" अर्थात् ध्यान से पूर्व इन्द्रियों के नव द्वारों को संयमित करना। इसमें इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर अन्तर्मुखी किया जाता है।

तुम पांच के बांधे पांच देखत हो, पांच के चौदे भवन।

ए पांचों प्रले हो जासी, पीछे कब ढूँढोगे अपना वतन॥७॥

यह बात तुम स्पष्ट रूप से देख रहे हो कि तुम्हारा यह शरीर भी पाँच तत्वों का ही बना हुआ है तथा यह चौदह लोक भी इन्हीं पाँच तत्वों के बने हुए हैं। जब महाप्रलय में पाँचों तत्व ही समाप्त हो जाएंगे, तब तुम अपने अखण्ड घर को कैसे खोजोगे?

ए बानी तो अपरस करे आतम, तुम अपरस करो बाहेर अंग।

आकार अपरस किए कहा होए, इने आतम सों कैसो सनमंध॥८॥

श्री वल्लभाचार्य की वाणी तो आत्मा को निर्मल करती है और तुम जल आदि से केवल बाह्य शरीर को ही स्वच्छ रखते हो। बाहरी शरीर को स्वच्छ रखने से भला क्या लाभ? इसका आत्मा की स्वच्छता से कोई भी सम्बन्ध

नहीं है।

भावार्थ- जीव के ऊपर आत्मा दृष्टा होकर विराजमान है। जीव अन्तःकरण (मन, चित्त, बुद्धि, तथा अहंकार) के द्वारा ही कोई कार्य कर सकता है। विकारों का सृजन अन्तःकरण से प्रारम्भ होता है, जो इन्द्रियों द्वारा प्रकट होता है। यदि अन्तःकरण स्वच्छ हो, तो जीव और आत्मा भी स्वच्छ माने जायेंगे, अन्यथा नहीं। इस चौपाई में आत्मा को निर्मल किये जाने का यही अभिप्राय है।

तुम झूठ को साजो समारो, जो झूठा होए जासी।

सांचे सुख देवे जो सांचा, सो कबे ओलखासी॥९॥

तुम अपने जिस झूठे शरीर को सजाते-सँवारते हो, एक दिन वह नष्ट हो जाएगा। सच्चा सुख तो आत्म-जाग्रति से ही मिलेगा। उसकी पहचान तुम कब करोगे?

मांहें अंधेर और वैष्णव कहावो, ए तो बातें सब फोक।

ज्यों धूरत नाम धरावे धनवंत, पासे नहीं दमड़ी रोक॥१०॥

तुम्हारे हृदय में तो अज्ञानता का अन्धकार फैला हुआ है, फिर भी तुम अपने को वैष्णव कहते हो। इस प्रकार का व्यवहार तो वैसे ही झूठा है, जैसे कि कोई धूर्त व्यक्ति अपना नाम धनवन्त (धनवान) रख लेता है, किन्तु उसके पास एक पैसा भी नहीं होता है।

बिध न लहो विवाद करो, ना देखो वचन विचारी।

वल्लभ बानी समझे बिना, खोवत निध तुमारी॥११॥

न तो तुम श्री वल्लभाचार्य जी के वचनों का विचार करते हो और न ही वास्तविकता को ग्रहण करते हो। तुम्हारी रुचि केवल झगड़ा करने में ही रहती है। वल्लभाचार्य जी की वाणी को समझे बिना तुम अपनी आत्मा के अखण्ड

धन को खो रहे हो।

अहंकारें कई जुलम करो, ना त्रास सील संतोख।

गुन अंग इंद्री के बस परे, ना देखो नजरों दोख॥१२॥

अपने अहंकार में मग्न होकर तुम दूसरों पर अत्याचार करते हो। तुम्हें इस बात का जरा भी भय नहीं होता कि इन बुरे कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ेगा। तुम्हारे अन्दर शील और सन्तोष आदि गुण खोजने पर भी नहीं मिलते। तुम तीनों गुणों (सत्त्व, रज, और तम), अन्तःकरण, तथा इन्द्रियों के पूर्णतया वशीभूत हो गये, लेकिन पक्षपातपूर्ण तरीके से तुम अपने आन्तरिक दोषों को नहीं देखते हो।

धूरत करके ल्याओ धन, खरचो मुख करो उनमाद।

मेले मेलो मुख भाखो उछव, पातलिऐं डालो प्रसाद॥१३॥

धर्म के नाम पर लोगों को ठगकर तुम धन इकट्ठा करते हो और अपनी सनक में जी भरकर खर्च करते हो। लोगों की भीड़ इकट्ठी करके बड़े-बड़े उत्सव-भण्डारे तो करते हो, किन्तु श्री कृष्ण जी के प्रसाद को पत्तलों में भरकर बेचते हो।

एक सीत जूठ को ब्रह्मा जैसा, जल में मीन होए आया।

ए जूठ को महामत बानी देखावे, ग्वालों को चल्लू न कराया॥१४॥

श्री वल्लभाचार्य जी की वाणी बताती है कि श्री कृष्ण जी के प्रसाद की महत्ता क्या है। उनके प्रसाद का एक कण पा लेने की इच्छा से स्वयं ब्रह्मा जी यमुना जी में मछली बनकर आये, लेकिन वे प्राप्त नहीं कर सके, क्योंकि श्री

कृष्ण जी ने ग्वाल-बालकों को कुल्ला करने से मना कर दिया था।

ओ हांसी ठठोली करे हरामी, ताए ले बैठो मंडली मुख।

ए नीच करम डबोवे नरक में, पीछे छूट पाओगे कब सुख॥१५॥

जो अपनी ऊँची ब्राह्मण जाति के अभिमान में श्री कृष्ण जी की जाति की हँसी उड़ाते हैं कि हम ब्राह्मण होकर यादव जाति में जन्मे श्री कृष्ण जी की जूठन कैसे खाएंगे, ऐसे हरामी लोगों को तुम अपने दल का मुखिया (प्रधान) बनाते हो। जाति के नाम पर अपने इष्ट के भी प्रसाद की हँसी उड़ाने वालो! तुम सभी नरक में जाओगे। अपने मन में विचार करो कि नरक के बन्धनों से छूटकर तुम कब अखण्ड सुख को पाओगे?

भावार्थ- वर्ण व्यवस्था कर्म के आधार पर होती है ,

जन्म के आधार पर नहीं। यह कैसा कलियुग है, जिसमें जातीय श्रेष्ठता का दावा करके मूर्ख लोग श्री कृष्ण जी का प्रसाद भी नहीं लेते, जबकि दूसरी तरफ वे उनको अपना परमात्मा भी मानते हैं। प्रश्न यह है कि क्या वे अपने को परमात्मा से भी श्रेष्ठ मानते हैं? पाखण्ड और आडम्बर की यह पराकाष्ठा है।

ए बानी उत्तम चढ़ावे ऊंचे, ए उलटे अधम स्वादे।

कठिन पंथ चढ़ाए नहीं ऊंचे, पीछे नीचे दौड़े नीच वादे॥१६॥

वल्लभाचार्य जी की वाणी अति उत्तम है जो सबको अध्यात्म की ऊँची मन्जिलों पर ले जाने वाली है, लेकिन तुम लोग तो विषयों के झूठे सुखों में पड़े हुए हो। बेहद के प्रेम की राह कठिन है। उस पर सभी लोग ऊँचाई तक नहीं चढ़ पाते। ऐसे ही लोग कर्मकाण्ड और

आडम्बरों का निम्न मार्ग अपना लेते हैं।

कुकरम करो कुटिल गत चालो, आगे पीछे चींटी हार।

वल्लभ कुंअर कितने को बरजे, कई उलटे सेवक संसार॥१७॥

तुम एक-दूसरे की देखा-देखी चींटी हार की तरह छल-कपट की राह चलते हो और धर्म की ओट में कुकर्म करते हो। आखिर, श्री वल्लभाचार्य जी कितनों को मना करें? इस संसार में उल्टी बुद्धि वाले कई सेवक भी तो हैं, जो हमेशा धर्म से विपरीत आचरण करते हैं।

भावार्थ- चींटियों की प्रवृत्ति ऐसी होती है कि वे बिना दायें-बायें देखे एक ही सीध में एक -दूसरे के पीछे चलती जाती हैं। इस चौपाई में वैष्णवों के बारे में भी यही बात कही गयी है कि वे विवेक से सत्य-असत्य का निर्णय किये बिना अनुचित राह अपना लेते हैं।

दोष नहीं इन बानी केरो, ए तो दुष्ट दासी की कमाई।

अधम सिष्य गुर को बुरा कहावे, पर सोने न लगत स्याही॥१८॥

इस विकृति में वल्लभाचार्य जी की वाणी का कोई भी दोष नहीं है। यह तो उस छलनी माया का असर है, जिसके कारण मन में मलिनता आ जाती है। अधम शिष्यों के कारण ही गुरुजनों की भी बुराई होती है, किन्तु शुद्ध सोने में कभी भी कालिख नहीं लगा करती अर्थात् वैष्णवों के अधर्माचरण के कारण ही वल्लभाचार्य जी का मत बदनाम है, किन्तु इसमें अनुयायियों का ही दोष है, वल्लभाचार्य जी का नहीं। उनकी छवि तो शुद्ध सोने की तरह बेदाग है।

ए बानी तुम नाहीं पेहेचानी, यामें बिध बिध के प्रकास।

इन प्रकास में खेलें श्रीकृष्ण जी, रमें अखंड लीला रास॥१९॥

हे वैष्णवों! तुम्हें वल्लभाचार्य जी की इस वाणी की महत्ता का आभास नहीं है। इसमें अनेक प्रकार के ज्ञान के रत्न छिपे पड़े हैं। उनके स्पष्ट होने से ही यह विदित होता है कि बेहद में श्री कृष्ण जी महारास की अखण्ड लीला कर रहे हैं।

तुम पनधारी आतम निवेदी, बानी न देखो विचारी।

अजूं न मानो तो इत आओ, मैं देखाऊं लीला तुमारी॥२०॥

हे वैष्णवों! तुम तो गोपी भाव से श्री कृष्ण जी के प्रति एकनिष्ठ प्रेम की प्रतिज्ञा एवं आत्म-निवेदन करने वाले हो, लेकिन तुम वल्लभाचार्य जी की वाणी का चिन्तन नहीं करते हो। यदि तुम अभी भी मेरी बातों को मानने के लिये तैयार नहीं हो, तो आओ! मैं तुम्हें उस बेहद का ज्ञान दूँगा, जहाँ तुम्हारे इष्ट श्री कृष्ण जी अखण्ड ब्रज-

रास की लीला में संलग्न हैं।

वैष्णव होए सो वचन मानसी, और जो वल्लभ बानी से टलिया।

महामत कहे सो काहे को जनम्या, गर्भ मांहे क्यों न गलिया॥२१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि जो सच्चा वैष्णव होगा, वह तो श्री वल्लभाचार्य जी के वचनों को मानेगा और जो नहीं मानेगा, उसके लिये तो यही कहा जा सकता है कि उसे इस पृथ्वी को कलंकित करने के लिये जन्म ही नहीं लेना चाहिए, अपितु माता के गर्भ में ही गल जाना चाहिए था।

भावार्थ- इतने कठोर शब्दों के प्रयोग का यही आशय है कि सत्य को अंगीकार करने से ही अध्यात्म की राह प्रशस्त होती है। जानबूझकर झूठ एवं पक्षपात की राह पर चलने से सारे समाज का विनाश हो जाता है।

प्रकरण ॥१२॥ चौपाई ॥१२९॥

राग श्री

आज सांच केहेना सो तो काहू ना रुचे, तो भी कछुक प्रकासूं सत।
 सत के साथी को सत के बान चूभसी, दुष्ट दुखासी दुरमत।
 अखंड सुख लागियो॥१॥

आज के युग में सत्य बात कहने पर वह किसी को अच्छी नहीं लगती, तो भी कुछ सत्य का प्रकाश तो करना ही पड़ेगा। सत्य की राह पर चलने वालों को सत्य बातें बहुत प्यारी लगेंगी, किन्तु दुष्ट बुद्धि वालों का मन दुःखी होगा। यद्यपि सबका लक्ष्य तो अखण्ड सुख की प्राप्ति ही होता है।

वेद ने पुरान सास्त्र सब उपजे, पीछे भारथ पर्व अठार।
 दाझ न मिटी तिन व्यास की, पीछे उदयो भागवत सार॥२॥

सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वप्रथम चारों वेदों का प्रकटन हुआ। उसके पश्चात् सृष्टि रचना के छः कारणों की व्याख्या में छः शास्त्र रचे गये। तदन्तर १८ पर्व वाले महाभारत एवं पुराणों की रचना हुई। वेद व्यास जी के हृदय में संसार को सत्य एवं शान्ति के मार्ग पर चलाने की अग्नि धधक रही थी। महाभारत जैसे विशाल ग्रन्थ की रचना करने पर भी उनके हृदय में शान्ति नहीं हुई। तत्पश्चात् अखण्ड ब्रह्मलीला का वर्णन करने वाले भागवत ग्रन्थ की रचना हुई।

भावार्थ— छः शास्त्रों में केवल वेदान्त शास्त्र ही वेद व्यास जी की रचना है, शेष अन्य शास्त्र सांख्य, योग, न्याय, मीमांसा, और वैशेषिक क्रमशः कपिल, पतन्जलि, गौतम, जैमिनि, और कणाद ऋषि द्वारा रचे गये हैं।

चारों वेद सृष्टि के प्रारम्भ में ही चार ऋषियों के हृदय में प्रकट हुए। यह साक्षी वेद में स्पष्ट रूप से वर्णित है—

"तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्दासि ह जज्ञिरे तस्मात् यजुः तस्मादजायत्।" यजु.

वेद व्यास जी ने उनका विभाग नहीं किया, अपितु प्रारम्भ से ही उनका प्रकटन अलग-अलग हुआ।

महाभारत के अठारह पर्व इस प्रकार हैं— १. आदि पर्व, २. सभा पर्व, ३. वन पर्व, ४. विराट पर्व, ५. उद्योग पर्व, ६. भीष्म पर्व, ७. द्रोण पर्व, ८. कर्ण पर्व, ९. शल्य पर्व, १०. सौप्तिक पर्व, ११. स्त्री पर्व, १२. शान्ति पर्व, १३. अनुशासन पर्व, १४. आश्वमेधिक पर्व, १५. आश्रमवासिक पर्व, १६. मौसल पर्व, १७. महाप्रस्थानिक पर्व, १८. स्वर्गरोहण पर्व।

इसी प्रकार व्यास जी की उपाधि धारण करके सभी

पुराण रचे गये हैं। उनके नाम हैं- १. मत्स्य २. भविष्य ३. मार्कण्डेय ४. ब्रह्माण्ड ५. ब्रह्मवैवर्त ६. ब्रह्म ७. वामन ८. वायु ९. विष्णु १०. नारद ११. लिंग १२. गरुण १३. पद्म १४. कूर्म १५. शिव १६. स्कन्द १७. देवी भागवत १८. श्रीमद्भागवत्।

सामान्य रूप से इस चौपाई को पढ़ने से ऐसा लगता है कि अकेले वेद व्यास जी ने ही वेदों का विभाग किया तथा सभी छः शास्त्रों एवं १८ पुराणों सहित महाभारत ग्रन्थ की रचना की, किन्तु यह कथन श्रीमद्भागवत् के अन्दर वर्णित है। यह कथन अक्षरातीत स्वयं का नहीं है। यहाँ भागवत के कथनों को मात्र उद्धृत किया गया है।

ए सुख की सागर सत बानी प्रगटी, सो लई साधो विचार।
अधिक अमृत सुके सींचिया, तिन देखाए दरवाजे पार॥३॥

श्रीमद्भागवत् की यह वाणी सत्य है और सुख का सागर है। बहुत से साधु पुरुषों ने इसका विचार किया। शुकदेव जी ने अखण्ड ब्रह्मलीला के वर्णन द्वारा इसमें और अधिक प्रेम रस का संचार किया, तथा सबको बेहद लीला की एक मनोरम सी झलक दिखायी।

भावार्थ— श्रीमद्भागवत् का महत्व दशम् स्कन्ध में वर्णित अखण्ड व्रज एवं रास की लीलाओं से है। ये लीलाएं १४ लोक एवं निराकार से परे बेहद भूमिका का ज्ञान देती हैं, इसलिये इसे सत्य वाणी कहते हैं। अक्षर ब्रह्म की पञ्चवासनाओं में से एक माने जाने वाले शुकदेव जी ने महारास के वर्णन द्वारा बेहद की अनुभूति करायी है।

भले या जुग में आचारज प्रगटे, जिन चरची सुक जी की बान।
धन धन टीका श्री वल्लभी, इन प्रेम प्रकास्यो परमान॥४॥

सौभाग्यवश इस कलियुग में वल्लभाचार्य जी प्रगट हुए। शुकदेव जी द्वारा वर्णित ब्रज-रास की लीला का वर्णन बहुत ही अच्छा लगा। वल्लभाचार्य जी द्वारा की गयी सुबोधिनी टीका धन्य-धन्य है, जिसमें अक्षरातीत परब्रह्म द्वारा की गई ब्रह्म लीला का वर्णन है।

आए मिलो रे वैष्णव पारखी, तुम देखियो विचारी सब अंग।
टीका वल्लभी बानी शुकदेव की, ताके एक अखर को न कीजे भंग॥५॥
सत्य-असत्य की परख करने वाले हे वैष्णवों! तुम सभी मिलकर मेरे पास आओ और अपने हृदय में इन विषयों पर विचार करके देखो। शुकदेव जी की वाणी के ऊपर होने वाली सुबोधिनी टीका के एक अक्षर में भी हेर-फेर नहीं करना चाहिए।

इत वृन्दावन रास लीला रातडी अखंड, खेलें पिउ गोपी जन।

तो ऊधव संदेसे किन पर लाइया, कहो किनने किए रुदन॥६॥

इस टीका के अनुसार नित्य वृन्दावन में अखण्ड रात्रि में महारास की लीला हो रही है, जिसमें श्री कृष्ण जी गोपियों के साथ रास कर रहे हैं। प्रश्न यह है कि जब गोपियाँ अखण्ड महारास में हैं, तो कौन सी गोपियों के लिये उद्धव जी सन्देश लेकर आये तथा किन गोपियों ने किस श्री कृष्ण जी के विरह में रुदन किया?

भावार्थ- उद्धव जी १२००० वेद ऋचा सखियों तथा २४००० प्रतिबिम्ब की सखियों के लिये सन्देश लेकर आये। इन्हीं सखियों ने श्री कृष्ण जी का विरह किया।

इत रात अखंड सो तो टाली न टले, भी कहा आगे ऊग्या रे दिन।

सखियां पिउ उठे सब घर से, ए घर कौन रे उत्पन॥७॥

नित्य वृन्दावन में तो अभी भी अखण्ड रात्रि है जो कभी भी समाप्त नहीं होगी, किन्तु श्रीमद्भागवत् में यह भी कहा गया है कि रात्रि बीतने के पश्चात् प्रातःकाल भी हुआ, जिसमें श्री कृष्ण जी एवं गोपियाँ अपने-अपने घरों में उठे। प्रश्न यह है कि यह नया घर कौन है, जिसमें अखण्ड रात्रि बीत जाने के बाद सवेरा भी होता है?

भावार्थ- यह दृश्य उस नये ब्रह्माण्ड का है, जिसमें महाप्रलय के पश्चात् वेद ऋचा एवं प्रतिबिम्ब की सखियाँ प्रकट हुईं। वेदों ने अखण्ड रास की अनुभूति के लिये १२००० सखियों का रूप धारण किया तथा कुमारिकाओं के जीव, जिन्हें रास लीला का वरदान मिल चुका था, वे भी सखी रूप में अवतरित हुए। इन्हें प्रतिबिम्ब की सखियाँ कहते हैं।

बृज अखंड ब्रह्मांड में हुआ, विचार देखो रे बुधवंत।

एक रंचक न राखी चौदे लोक की, महाप्रले कह्यो ऐसो अंत॥८॥

हे ज्ञानी जनों! इस बात पर विचार करके देखो कि ब्रज की लीला तो बेहद में अखण्ड हो गयी। उस महाप्रलय में चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड का एक कण भी नहीं बचा था।

बृज ने रास अखंड कहे प्रगट, सो तो नित नित नवले रंग।

एक रंचक रहे जो ब्रह्मांड की, तो टीका को होवे रे भंग॥९॥

इस टीका में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ब्रज और रास की लीला अभी भी अखण्ड रूप से विद्यमान है, जिसमें नित्य ही लीला की नवीनता बनी रहती है। यदि महाप्रलय के पश्चात् इस ब्रह्माण्ड का एक कण भी बचा रह जाये, तो टीका का कथन झूठा हो जायेगा।

रात दिन अखंड कहे बृज में, दिन नहीं वृन्दावन रास।

रात अखंड लीला खेलहीं, दोऊ कैसे अखंड विलास॥१०॥

अखण्ड ब्रज में दिन तथा रात्रि की लीला है, जबकि नित्य वृन्दावन में अखण्ड रात्रि की लीला है, जो कभी भी समाप्त नहीं हो सकती। प्रश्न यह है कि ये दोनों लीलायें कहाँ पर एवं कैसे अखण्ड हैं?

भावार्थ— दोनों ही लीलाएँ अलग-अलग ब्रह्माण्डों में हैं। ब्रज की लीला सबलिक के कारण में है, जबकि महारास की लीला सबलिक के महाकारण में है। इस प्रकार दोनों ब्रह्माण्डों में अखण्ड रूप से रास तथा ब्रज की लीला चलती रहती है।

बृज रास लीला दोऊ नित कही, खेलें दोऊ लीला बाल किसोर।

तो मथुरा आए कंस किनने मारया, ए कौन भई तीसरी लीला और॥११॥

ब्रज तथा रास की दोनों ही लीलायें अखण्ड कही गयी हैं— ब्रज में बाल लीला है तथा रास में किशोर लीला। प्रश्न यह है मथुरा आकर कंस को मारने वाले श्री कृष्ण जी कौन हैं? यह तीसरे प्रकार की लीला कौन सी है?

भावार्थ— ब्रज और रास की लीलाएँ तो अक्षरातीत के आवेश द्वारा की गयीं, किन्तु इस नये ब्रह्माण्ड में सात दिन गोकुल तथा चार दिन मथुरा की लीला श्री कृष्ण जी के जिस स्वरूप द्वारा की गई थी, उसमें अखण्ड रास विहारी की शक्ति थी तथा तन धारण किया था विष्णु भगवान ने। राजसी वस्त्र धारण करते ही रास विहारी की शक्ति मथुरावासी श्री कृष्ण जी के तन को छोड़कर ब्रज में राधा जी के हृदय में विराजमान हो गयी थी।

कहो के भूल्या टीका करता, के भूले तुम अर्थ।

सो जुबां काटिए जो टीका को टेढ़ा कहे, तुम भूले करत अनर्थ॥१२॥

हे वैष्णवों! यदि तुम यह कहो कि वल्लभाचार्य जी ने भूलवश टीका में इस तरह से मिथ्या लिख दिया है, तो इतना ही कहा जा सकता है कि जो टीका को झूठा कहे उसकी जिह्वा ही काट देनी चाहिए। वस्तुतः तुम्हें ही भागवत के कथनों का अभिप्राय समझ में नहीं आ रहा है, इसलिये अज्ञानतावश अनर्थ कर रहे हो।

भावार्थ— असत्य के प्रतिकार के लिये सच्चाई के आवेश में ही जिह्वा को काटने जैसी कठोर बात निकली है, अन्यथा प्रेम के सागर एवं अति कोमल हृदय महामति जी के लिये इसे व्यवहारिक रूप देना सम्भव नहीं था।

तुम आंकडी न पाई इत अखंड कहया, तोए न खुले रे द्वार।
 तुम समझे नहीं बानी सुकदेव की, तो हिरदे रह्यो रे अंधकार॥१३॥

अखण्ड ब्रज-रास की लीला के गुह्य भेद न समझ पाने
 के कारण ही तुम बेहद धाम की जानकारी नहीं कर पाए।
 शुकदेव जी द्वारा कही हुई वाणी के रहस्यों को न जानने
 के कारण ही तुम्हारे हृदय में अज्ञानता का अन्धकार
 छाया हुआ है।

अर्थ टीका का जो तुम पाया होता, तो अंधेर को होत नास।
 अनेक ब्रह्माण्ड जाके पल थें उपजे, ताको देखत इत उजास॥१४॥

यदि तुमने वल्लभाचार्य जी की टीका का रहस्य पाया
 होता, तो तुम्हारे हृदय में इस प्रकार भ्रान्ति का
 अन्धकार नहीं होता। अनेक ब्रह्माण्ड जिस अक्षर ब्रह्म के
 एक पल में उत्पन्न होते हैं, उस ब्रह्म के लीला धाम की

पहचान भी इस टीका के ज्ञान से हो सकती है।

भावार्थ- सुबोधिनी टीका में वर्णित योगमाया के प्रसंग (योगमाया उपाश्रितः) में गोपियों द्वारा रास के लिए त्रिगुणातीत तन धारण किये जाने से यह विदित हो जाता है कि अक्षर ब्रह्म का स्वरूप इस मायावी जगत से सर्वथा परे है।

तुमको बल जो खुल्या होता इन बानी का, तो भटकत नहीं रे भरम।
इतथें देखो अखंड लीला प्रगट, तब समझत माया को मरम॥१५॥

यदि तुम्हें वल्लभाचार्य जी के कथनों का अभिप्राय समझ में आ गया होता, तो तुम अन्धकार में नहीं भटकते होते। तुम इस संसार में रहते हुए भी ब्रज-रास की अखण्ड लीलाओं की प्रत्यक्ष अनुभूति कर सकते थे तथा माया की वास्तविकता को भी पहचान जाते।

तुम सब मिल दौड़े अखंड सुखको, सुन प्रेम टीका के वचन।

अर्थ पाए बिना प्रेमें ले पटके, कहूं उलटाए दिए रे अगिन॥१६॥

वल्लभाचार्य जी की टीका में अखण्ड ब्रज-रास की प्रेम लीला का वर्णन सुनकर तुमने अखण्ड सुख पाने के लिये बहुत प्रयास किया, किन्तु टीका के रहस्यों को न समझ पाने के कारण तुम्हें प्रेम की पूरी पहचान नहीं हुई और कर्मकाण्डों के बन्धन में पड़कर माया की अग्नि में जल रहे हो।

इन बृज रैन को ब्रह्मा बोहोत तलफया, पर पाई नहीं रे निरवान।

सो सुखे तुम कैसे पाओगे, देखो अपनी चाल के निसान॥१७॥

इस अखण्ड ब्रज की धूलि पाने के लिये ब्रह्मा जी बहुत तड़पे, लेकिन वे प्राप्त नहीं कर सके। तुम्हारा आचरण ब्रह्मा जी के समक्ष कहीं भी नहीं ठहरता। यदि तुम अपने

आचरण को देखो तो तुम्हें यह स्पष्ट रूप से विदित हो जायेगा कि जिस अखण्ड सुख को ब्रह्मा जी भी प्राप्त नहीं कर सके, उसे तुम कैसे प्राप्त कर लोगे?

ए झूठा भवजल अथाह कहा, ताको पार न पायो किन क्याहें।
याको गौपद बच्छ गोपी कर निकसी, सो पार जाए मिलियां अखंड माहें॥१८॥

मृगतृष्णा के समान दिखायी पड़ने वाला यह झूठा भवसागर अथाह है, जिसका अन्त आज तक किसी भी जीव ने नहीं पाया। किन्तु इसी भवसागर को गोपियाँ उसी प्रकार सरलता से पार कर गयीं, जिस प्रकार गाय के छोटे बछड़े के खुर के निशान से बने जल वाले गड्ढे को पार किया जाता है। इस भवसागर को पार करने के बाद, गोपियों ने योगमाया में जाकर अपने प्रियतम से मिलन किया।

अब केता कहूं तुमको जाहेर, ए अर्थ प्रगट कह्यो न जाए।

निघात डारे छोड़ लज्या अहंकार, नेहेचल सुख दीजे रे ताए॥१९॥

अब इससे अधिक तुम्हें और प्रत्यक्ष रूप से क्या कहूँ? यह रहस्य स्पष्ट रूप से कहा भी नहीं जाता। जो अपने अहंकार तथा लोक लज्जा का परित्याग करके समर्पित हों, उन्हें ही अखण्ड सुख का ज्ञान देना चाहिए।

ए प्रकास विचार तुम देख्या नाहीं, तुम वैभवे लगे रे विलास।

अब महामत कहे जोत उद्योत भई, ताको इत आए देखो रे उजास॥२०॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे वैष्णवों! तुमने ज्ञान के इन वचनों पर विचार नहीं किया। तुम तो मायावी सुखों में ही डूब गये। अब तो तारतम ज्ञान का उजाला हो गया है, इसलिये आकर इस ज्ञान सागर में डुबकी लगाओ।

प्रकरण ॥१३॥ चौपाई ॥१४९॥

राग सोरठ

धनी न जाए किनको धूत्यो, जो कीजे अनेक धुतार।
 तुम चैन ऊपर के कई करो, पर छूटे न क्यों ए विकार॥१॥
 भले ही कोई कितने ही प्रपञ्च क्यों न रच ले, लेकिन
 उस प्रियतम परब्रह्म को वह कभी भी धोखा नहीं दे
 सकता। तुम धर्म के नाम पर भले ही कितने दिखावे क्यों
 न करो, लेकिन इससे मनोविकार तुम्हारा पीछा छोड़ने
 वाले नहीं हैं।

कोई बढ़ाओ कोई मुड़ाओ, कोई खँच काढ़ो केस।
 जोलों आतम न ओलखी, कहा होए धरे बहु भेस॥२॥
 चाहे कोई अपने बालों को बढ़ाये या मुड़वाये या खींच-
 खींचकर निकाल देवे, किन्तु जब तक आत्म-तत्त्व की

पहचान नहीं होती, तब तक अनेक प्रकार की वेशभूषा धारण करने से कोई भी लाभ नहीं है।

चार बेर चौका देओ, लकड़ी जलाओ धोए जल।

अपरस करो बाहेर अंग को, पर मन ना होए निरमल॥३॥

तुम अपनी पाकशाला (रसोईघर) में चार बार चौका दो (पवित्र करो) तथा लकड़ी को भी धोकर जलाओ, जल से अपने शरीर को बार-बार धोकर साफ करो, लेकिन इससे मन निर्मल नहीं हो पाएगा।

सात बेर अस्नान करो, पेहेनो ऊंन उत्तम कामल।

उपजो उत्तम जात में, पर जीवड़ा न छोड़े बल॥४॥

तुम जल से सात बार स्नान करो या ऊनी वस्त्रों एवं शुद्ध कम्बल इत्यादि का प्रयोग करो। जन्म भी तुम्हारा

ऊँची जाति में हुआ हो, फिर भी इन कर्मकाण्डों से जीव माया को नहीं छोड़ सकेगा।

सौ माला वाओ गले में, द्वादस करो दस बेर।

जोलों प्रेम न उपजे पिउ सों, तोलों मन न छोड़े फेर॥५॥

अपने गले में एक-दो नहीं, बल्कि सौ मालाएँ डाल लो।
केवल एक जगह नहीं, बल्कि १२ अंगों (१. मस्तक २. ललाट ३. नासिका ४. नेत्र प्रान्त ५. कण्ठ ६. हृदय ७. कुक्षि (कांस) ८. भुजा मूल ९. भुजा का अग्र भाग १०. कर्ण भाग ११. पीठ १२. गला) में १० बार तिलक लगा लो, लेकिन जब तक प्रियतम से प्रेम नहीं होता, तब तक यह मन माया में फँसना नहीं छोड़ेगा।

तान मान कई रंग करो, अलापी करो किरंतन।

आप रीझो औरों रिझाओ, पर बस न होए क्यों ए मन॥६॥

भिन्न-भिन्न स्वरों में तान छेड़ते हुए आनन्द मनाओ ,
रागों का आलाप करते हुए कीर्तन करो, स्वयं रीझो तथा
दूसरों को भी रिझाओ, लेकिन इन चीजों से यह मन वश
में होने वाला नहीं है।

उच्छव करो अन्नकूट का, विविध करो प्रसाद।

पर निकट न आवें नाथ जी, पीछे सब मिल करो स्वाद॥७॥

अन्नकूट का उत्सव मनाने के लिये अच्छे-अच्छे व्यञ्जन
बनाओ, लेकिन तुम्हारा प्रेम इतना परिपक्व नहीं है कि
भोजन करने के लिये स्वयं श्री कृष्ण जी आ जायें। बाद
में तो सारे पकवानों को तुम्हीं खा जाते हो।

सीखो सबे संस्कृत, और पढ़ो सो वेद पुरान।

अर्थ करो द्वादस के, पर आप न होए पेहेचान॥८॥

तुम सभी लोग संस्कृत सीखकर वेद-शास्त्र और पुराणों का अध्ययन कर लो। प्रत्येक मन्त्र और श्लोक के बारह प्रकार के अर्थ भी कर लो, लेकिन तुम्हें अपने निज स्वरूप की पहचान नहीं हो सकती।

साधो सबे जोगारंभ, अनहद अजपा आसन।

उड़ो गड़ो चढ़ो पांच में, आखिर सुन्य न छोड़ी किन॥९॥

योग साधना करके दस अनहदों को सुन लो, सोऽहम् (अजपा) जप तथा आसनों की सिद्धि प्राप्त कर लो, आकाश में उड़ने लगो, पाताल में भी चले जाओ, पाँच तत्वों के इस ब्रह्माण्ड में घूम आओ, लेकिन तुममें से कोई भी शून्य-निराकार से परे नहीं जा सकता।

भावार्थ- "सोऽहम्" के मानसिक जप का अभ्यास अजपा जप में परिवर्तित हो जाता है, जिसमें यह प्रक्रिया स्वतः चलती रहती है। शरीर शोधन कर प्राणायाम की सिद्धि तथा रुई आदि हल्की वस्तुओं में संयम कर पक्षी की तरह आकाश में उड़ा जा सकता है।

आगम भाखो मन की परखो, सूझे चौदे भवन।

मृतक को जीवित करो, पर घर की न होवे गम॥१०॥

तुम इतने सिद्ध बन जाओ कि भविष्य की सारी बातें जानने लगो, दूसरों के मन की बात भी जान जाओ, चौदह लोकों का सारा दृश्य भी देखने लगो, तथा मरे हुए व्यक्तियों को जीवित करने लगो, फिर भी तुम्हें अखण्ड घर की पहचान नहीं हो सकती।

भावार्थ- जिसकी आन्तरिक सुषुम्ना प्रवाहित हो जाती

है, वह त्रिकालदर्शी हो जाता है। अपने मन को वश में कर लेने पर दूसरों के मन की सारी बातें मालूम हो जाती हैं। नाभि चक्र या सहस्रार में समाधिस्थ होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की बातें मालूम की जा सकती हैं। अपने योगबल द्वारा सूक्ष्म शरीरधारी जीव को पुनः मृतक शरीर के अन्दर प्रविष्ट कराकर जीवित किया जा सकता है। ये सारी सिद्धियाँ ब्रह्मज्ञान में बाधक हैं। इनके द्वारा संसार में झूठा सम्मान तो पाया जा सकता है, किन्तु ब्रह्मज्ञानी नहीं बना जा सकता।

सतगुरु सोई जो आप चिन्हावे, माया धनी और घर।

सब चीन्ह परे आखिर की, ज्यों भूलिए नहीं अवसर॥११॥

सद्गुरु वही है जो आत्मस्वरूप का बोध कराये तथा माया, धाम धनी, एवं निज घर की भी पहचान कराये।

ऐसे सद्गुरु की कृपा से ही वक्त आखिरत (महाप्रलय) की पहचान हो जाती है, जिससे जीव अक्षरातीत के चरणों में आकर अखण्ड मुक्ति पाने का अवसर नहीं गँवाता।

ए पेहेचाने सुख उपजे, सनमंध धनी अंकूर।

महामत सो गुर कीजिए, जो यों बरसावे नूर॥१२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि उसे ही सद्गुरु रूप में धारण करना चाहिए, जो इस प्रकार तारतम ज्ञान की वर्षा करे जिससे अक्षरातीत धाम धनी तथा उनसे अपने मूल सम्बन्ध का बोध हो जाये। ऐसा होने पर ही हृदय में आनन्द पैदा होता है।

प्रकरण ॥१४॥ चौपाई ॥१६१॥

राग श्री

पतित सिरोमन यों कहे।

जो मैं किए हैं बज्रलेप, मेरे साहेब सों द्वेष॥टेक॥१॥

परमधाम के प्रेम की राह पर चलने वाले पतितों में शिरोमणि मैं "महामति" एक बात कह रहा हूँ— मुझसे यह अमिट गुनाह हो गया कि मैंने अपने प्रियतम से ही होड़ बाँध ली थी।

भावार्थ— सामान्य रूप से "पतित" का अर्थ पापी माना जाता है, किन्तु इस प्रकरण में "पतित" का वास्तविक भाव है— संसार से उल्टी राह अपनाना, तभी वह संसार वालों की दृष्टि में पतित कहलायेगा। कर्मकाण्डों के बोझ तले दबा हुआ यह संसार प्रेम की राह नहीं अपना सकता। जो संसार से अलग होकर प्रियतम अक्षरातीत

से प्रेम करता है, वही पतित है। यह बात इसी प्रकरण की चौथी चौपाई में कही गयी है—

उल्टा एक चलत हो यामें, मैं छोड़ी दुनिया की राह।

तोड़ी मरजाद बिगड़या विश्व थें, मैं तो पतितन को पातसाह॥

इसी प्रकार संसार निराकार के पार नहीं जा सकता।

जो निराकार एवं बेहद को उलंघकर परमधाम की राह अपनाये, वह भी पतित ही कहलायेगा।

या जग में ए क्या रे पतीती, कोई न पोहोंच्या पार।

बोहोत दौड़े सो सुन्य तोड़ी, आड़ी पड़ी निराकार॥

इस प्रकरण की पहली चौपाई में श्री महामति जी ने स्वयं को "पतित सिरोमन" अर्थात् प्रेम की राह अपनाने वालों में शिरोमणि (सर्वोपरि) मानते हुए भी अमिट गुनाह वाला इसलिये माना है क्योंकि प्रेम कोई चाहत नहीं रखता, वह केवल समर्पण की ही भाषा जानता है।

लेकिन श्री महामति जी से यह भूल हुई कि उन्होंने सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी से यह होड़ बाँध ली कि जब आपको परमधाम दिखता है, तो मैं क्यों नहीं देख पाता।

पतित मेरे आगे कौन कहावे, मैं कोई न देख्या रे पतीत।

ए सब कोई साध चलत हैं सीधे, जो देखिए अपनी रीत॥२॥

इस संसार में मुझसे अधिक पतित अर्थात् प्रेम की राह पर चलने वाला और कौन हो सकता है? मैंने इस संसार में किसी को भी अक्षरातीत का प्रेमी देखा ही नहीं। जब मैंने अपने से दुनिया के साधु-महात्माओं की तुलना की तो यही पाया कि ये लोग तो अपने गुरुजनों के बताए हुए कर्मकाण्ड के मार्ग पर सीधे चले जा रहे हैं।

भावार्थ- संसार के लोग वैकुण्ठ-निराकार की राह छोड़कर परमधाम की राह अपना नहीं पाते, इसलिये वे

प्रेम की राह पर चलने वाले पतित नहीं कहला सकते।

दुनियां सकल चलत है पैडे, जो साध बड़ों ने बताया।

उलटा कोई नहीं रे यामें, पतित किने न केहेलाया॥३॥

बड़े-बड़े सन्त-महात्माओं ने वैकुण्ठ-निराकार की जो राह बतायी है, सारी दुनिया उसी पर चल रही है। कोई भी उस मार्ग का उल्लंघन नहीं करता, इसलिये किसी को भी पतित कहलाने का प्रश्न ही नहीं होता।

उल्टा एक चलत हों यामें, मैं छोड़ी दुनियां की राह।

तोड़ी मरजाद बिगड़या विश्व थें, मैं तो पतितन को पातसाह॥४॥

मैंने इस संसार की वैकुण्ठ-निराकार वाली राह को छोड़ दिया और उससे अलग बेहद-परमधाम की राह अपना ली। इस तरह संसार की मर्यादा तोड़ने से मैं

सबकी नजरों में बिगड़ा हुआ पतित हो गया। किन्तु यह मार्ग तो परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों (पतितों) का है। मैं उनमें सिरताज बन गया।

भावार्थ- जिस प्रकार मद्यपान करने वाले लोगों के बीच कोई ऐसा भी हो जो मद्यपान न करे, तो सभी लोग उसे हेय (घृणा, हीन भावना) दृष्टि से देखते हैं। उसी प्रकार निराकार से परे बेहद या परमधाम की अनन्य प्रेम लक्षणा भक्ति की राह अपनाने वाले, जीवों की दृष्टि में पतित ही माने जायेंगे।

सूर जैसे पतित कहावे, और की सोभा आप देवे।

ओ अंधा रांक गरीब साध जो, सो क्या रे पतीती लेवे॥५॥

श्री कृष्ण जी की मधुर-प्रेममयी लीलाओं का वर्णन करने वाले सूरदास जी ने अपने को पतित कहा है

क्योंकि उनकी राह संसार से कुछ अलग दिखती है, लेकिन यह शोभा तो ब्रह्मसृष्टियों की है। वे भला उसे कैसे ले सकते हैं। बेचारे अन्धे, भिक्षुक, और गरीब सूरदास कैसे ब्रह्मसृष्टियों की तरह पतित (अनन्य प्रेमी) कहला सकते हैं।

भावार्थ- "अन्धा" कहने का तात्पर्य यह है कि सूरदास जी के पास तारतम ज्ञान की दृष्टि नहीं होने से उन्हें परमधाम की राह दिखायी नहीं पड़ी। उन्हें "भिक्षुक" इसलिये कहा गया है कि परमधाम की निसबत उनके पास नहीं थी, और तारतम का तारतम अर्थात् खिलवत, परिक्रमा, सागर, और श्रृंगार का ज्ञान न होने से वे "गरीब" माने गये।

नामधारी पतित जो हुते, जिन जुध जगपति सों किए।

जगपति जग में बड़ा जोरावर, तिन मार चरन तले लिए॥६॥

इस संसार में महान यश वाले बड़े-बड़े योगी, यति, ज्ञानी, और भक्त हो गये हैं, जिन्होंने अखण्ड की अनुभूति करने के लिये आदिनारायण की माया से युद्ध किया। महामाया (प्रकृति) की शक्ति बहुत अधिक है। अन्ततोगत्वा महामाया से हारकर कोई भी संसार से बाहर नहीं निकल सका।

भावार्थ- आदिनारायण से युद्ध करने का तात्पर्य है - परब्रह्म के साक्षात्कार के लिये उनकी माया से युद्ध करना। "नामधारी पतित" उन महान पुरुषों को कहा गया है, जिन्होंने बड़ी-बड़ी तपस्यायें एवं साधनायें की। माया द्वारा उन्हें मारकर चरणों में लेने का अर्थ है - अखण्ड धाम में नहीं जाने देना तथा १४ लोक एवं

निराकार में भटकाते रहना।

या जग में ए क्या रे पतीती, कोई न पोहोंच्या पार।

बोहोत दौड़े सो सुन्य तोड़ी, आड़ी पड़ी निराकार॥७॥

इस संसार में जब कोई (पञ्चवासनाओं को छोड़कर) निराकार के परे जा ही नहीं सका, तो उनका "पतित" कहलाना व्यर्थ है। इन्होंने बहुत प्रयास भी किया तो महाशून्य में भटक गये। महाशून्य को कोई भी उलंघ नहीं सका।

मैं उलटाए आतम जुगतें जगाई, पार की तरफ फिराई।

सुन्य निराकार पार परआतम, मैं तापर दृष्ट चढ़ाई॥८॥

मैंने परमधाम के ज्ञान से अपनी आत्मा को युक्तिपूर्वक जाग्रत किया तथा इन पूर्व कथित महापुरुषों से अलग

हटकर अपनी नजर परमधाम की ओर की। शून्य-
निराकार, बेहद के परे परमधाम में जो मेरी परात्म का
स्वरूप है, मैंने अपना ध्यान उसमें केन्द्रित किया।

अगम के पार जो अलख कहावे, मैं तिनसों जाए जुध लिया।

इहां लग और सब्द नहीं सीधा, सो प्रगट पकड़ के किया॥९॥

अगम (निराकार) के परे जो अलख, अगोचर,
अविनाशी अक्षर ब्रह्म हैं, मैंने उनसे जाकर युद्ध किया,
अर्थात् उनका साक्षात्कार किया। यहाँ तक संसार के
शब्द नहीं पहुँच सकते, फिर भी मैंने उनकी पूर्ण अनुभूति
की।

भावार्थ- इस प्रकरण में तीनों पुरुषों क्षर, अक्षर ब्रह्म,
तथा अक्षरातीत से युद्ध करने में लौकिक बड़ाई नहीं,
बल्कि साक्षात्कार के प्रयास का वर्णन है। छठवीं चौपाई

में आदिनारायण से, नवीं चौपाई में अक्षर ब्रह्म से, तथा ग्यारहवीं चौपाई में अक्षरातीत से युद्ध का उल्लेख है। इन प्रसंगों को ही युद्ध की संज्ञा दी गयी है।

इन आत्म को घर एही अछर है, ए तो पारब्रह्म परखाया।

ए जुध जीत्या मैं सेहेजे, सतगुर जी की दया॥१०॥

मेरे अक्षरातीत प्रियतम ने यह पहचान दे दी कि इन पञ्चवासनाओं का स्थान अक्षर ब्रह्म ही है। सद्गुरु स्वरूप श्री राज जी की कृपा से अक्षर ब्रह्म की अनुभूति का युद्ध मैंने बहुत ही सरलता से जीत लिया।

भावार्थ— अक्षर ब्रह्म परमधाम के अन्दर अक्षर धाम में रहते हैं, लेकिन उनकी लीला का धाम बेहद मण्डल है। इस बेहद में ही अक्षर ब्रह्म की पञ्चवासनाओं का स्थान है, मूल अक्षर धाम में नहीं।

अब अछर के पार मैं जुध बनाऊं, सकल आउध अंग साजुं।

प्रेम की सैन्या प्रगट चलाऊं, कंठ अक्षरातीत मिलाऊं॥११॥

अब मेरे मन में यह इच्छा हुई कि अक्षर ब्रह्म से भी परे परमधाम की अनुभूति के लिये मुझे प्रेम की सेना तैयार करनी होगी। प्रियतम अक्षरातीत से गले मिलने के लिये मुझे अपने हृदय में सभी अस्त्र-शस्त्र अर्थात् अटूट श्रद्धा, समर्पण, विरह, प्रेम को भरना पड़ेगा।

भावार्थ- अक्षरातीत के दीदार के लिये हृदय को वासनाओं से रहित करके विरह और प्रेम का रस भरना पड़ेगा। वस्तुतः प्रियतम की तरफ विरह की राह अपनाते ही विषय-वासनायें समाप्त हो जाती हैं।

पतित ऐसी पुकार न कीजे, पर मोको इन चोटें अग्नि लगाई।

बोहोत बरस मैं राखी अंदर, अब तो ढांपी न जाई॥१२॥

यद्यपि मुझे अपने प्रियतम के प्रेम को इस तरह सार्वजनिक रूप से पुकार-पुकार कर नहीं कहना चाहिए था, लेकिन जब सूरदास जी जैसे भक्तों ने अपने को "प्रेमी" कहा तो मेरे हृदय में यह चोट लगी कि जब संसार के भक्त इस तरह का दावा करते हैं, तो एक ब्रह्मांगना को क्या करना चाहिए? मेरे हृदय में धनी को पाने की जो अग्नि लगी, उससे व्याकुल होकर मैंने अपने प्राणवल्लभ को पा लिया। अनेक वर्षों तक मैंने इस बात को छिपाये रखा, लेकिन अब छिपाना सम्भव नहीं।

पार के पार पार जाए पोहोंच्या, जीवत अखंड सुख पाया।
 पतितन के सिर महामत मुकुट मनि, जिन ए जुध जग में लखाया॥१३॥
 श्री महामति जी कहते हैं कि मैं निराकार, बेहद, और अक्षर के परे अक्षरातीत के धाम में पहुँच गया तथा जीते

जी अखण्ड सुख को प्राप्त किया। अपने प्रियतम के प्रेम में "पतित" कहलाने वाली ब्रह्मसृष्टियों के सिर पर जो अनन्य प्रेम (इश्क) का मुकुट है, उसमें अनमोल मणि के रूप में मेरी शोभा है। धाम धनी ने मेरे ही तन से अक्षरातीत को प्रत्यक्ष पाने का प्रसंग संसार में जाहिर किया।

प्रकरण ॥१५॥ चौपाई ॥१७४॥

राग श्री

दुख रे प्यारो मेरे प्रान को।

सो मैं छोड़यो क्यों कर जाए, जो मैं लियो है बुलाए॥१॥टेक॥

इस प्रकरण में दुःख की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए श्री महामति जी कहते हैं कि इस संसार में जो दुःख मिलता है, वह मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारा है। उस दुःख को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ, जिसे मैंने स्वयं अपने धनी से माँगा था।

इन अवसर दुख पाइए, और कहा चाहियत है तोहे।

दुख बिना चरन कमल को, सखी कबहूँ न मिलिया कोए॥२॥

इस जागनी ब्रह्माण्ड में जब दुःख मिल रहा है, तो और क्या चाहिए? आज दिन तक प्रियतम के चरणकमल

बिना दुःख पाये किसी को भी नहीं मिले हैं।

भावार्थ— "महामति" शब्द का प्रयोग स्त्रीलिंग एवं पुल्लिंग दोनों में ही होता है। वस्तुतः इन्द्रावती की आत्मा की शोभा का नाम ही महामति है। जब महामति के सम्बोधन में आत्मपरक भाव लिया जायेगा, तब स्त्रीलिंग का प्रयोग होगा, जैसे— "अब मिल रही महामति, पिऊ सो अंगों अंग" (किरंतन ४६/७)। किन्तु जब महामति के सम्बोधन में श्री मिहिरराज के तन को लक्ष्य करके "शरीर परक" भाव लिया जायेगा, वहाँ पुल्लिंग का प्रयोग होगा, जैसे— "साहेब के हुकमें, ए बानी गावत है महामत" (किरंतन ५९/८)।

इस चौपाई में "सखी" शब्द का सम्बोधन इन्द्रावती की आत्मा द्वारा किया गया है।

जिन सुख पिउजी न मिले, सो सुख देऊं रे जलाए।

जिन दुख मेरा पिउ मिले, मैं सो दुख लेऊं बुलाए॥३॥

माया के जिन सुखों में फँसने से प्रियतम के मिलने का मार्ग अवरुद्ध हो जाये, मैं उन सुखों को आग में जला देना चाहूँगा तथा जिन दुःखों से आत्मा विरह में डूबकर अपने प्राणवल्लभ को पा लेवे, मैं उन दुःखों को खुशी-खुशी बुलाऊँगा।

दुख तो हमारो आहार है, औरन को दुख खाए।

दुख के भागे सब फिरें, कोई विरला साध निबाहे॥४॥

दुःख ही हम ब्रह्मसृष्टियों का आहार है, जबकि संसार के जीवों को दुःख खाने को दौड़ता है। लाखों में कोई एक ही ऐसा महान साधू-सन्त होगा, जो दुःख को अपने इष्ट का प्रसाद समझकर ग्रहण करता होगा, शेष सारी दुनिया

तो दुःख के नाम से ही भागती फिरती है।

दुख को निबाहू न मिले, और सुख को तो सब ब्रह्मांड।

इन झूठे दुख थें भाग के, खोवत सुख अखंड॥५॥

इस ब्रह्माण्ड में सुख की चाहना तो सभी करते हैं, लेकिन दुःख को निभाने वाला कोई भी नहीं मिलता। माया में जो दुःख मिलता है, वह थोड़े समय के लिये होता है। उससे दूर रहने पर विरह की अनुभूति नहीं हो पाती, जिससे प्रेम नहीं आता और अखण्ड सुख से वंचित होना पड़ता है।

दुख की प्यारी प्यारी पिउ की, तुम पूछो वेद पुरान।

ए दुख मोही को भला, जो देत हैं अपनी जान॥६॥

यदि तुम वेदों और पुराणों में देखो, तो यह स्पष्ट विदित

होगा कि दुःख में पड़ी रहने वाली आत्मा धनी की लाडली होती है। धाम धनी मुझे अपनी अर्धांगिनी समझकर जो दुःख देते हैं, वह मुझे बहुत ही अच्छा लगता है।

भावार्थ- इस चौपाई में कहा गया है कि धनी मुझे अपनेपन की भावना से दुःख देते हैं, जबकि अन्यत्र कहा गया है- "धनी न देवे दुख तिल जेता, जो देखिए वचन विचारी जी।" यहाँ यह जिज्ञासा हो सकती है कि क्या श्रीमुखवाणी के कथनों में विरोधाभास है?

अक्षरातीत के कथनों में रंच मात्र भी विरोधाभास नहीं है। कोई भी तथ्य प्रसंग के अनुकूल ही होता है। ब्रह्मसृष्टि को जो दुःख दिखाया जाता है, उसका उद्देश्य होता है उसे माया से निकालकर परमधाम के अनन्त सुखों का स्वाद देना। जबकि माया के बन्धनों में फँसा हुआ जीव

जब तृष्णा के वशीभूत होकर अशुभ कर्म करता है, तो दुःख भोगना ही पड़ेगा। इस दुःख को माया द्वारा दिया गया मानना चाहिए, धनी द्वारा नहीं। इसलिये कहा गया है – "दुख आपन को जो होत है, सो माया करत है भारी जी।"

ता कारन दुख देत हैं, दुख बिना नींद न जाए।

जिन अवसर मेरा पिउ मिले, सो अवसर नींद गमाए॥७॥

दुःख भोगे बिना माया की नींद नहीं जाती है, इसलिए धाम के धनी हमें दुःख की अनुभूति कराते हैं। दुःख का मिलना एक सुनहरा अवसर है, जिसमें संसार से ध्यान हट जाता है और विरह-प्रेम के रस में आत्मा डूब जाती है। इससे प्रियतम के मिलने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। ऐसे सुनहरे अवसर को भी हम अज्ञानतावश खो देते हैं

और धनी के मिलन से वंचित हो जाते हैं।

नींद बुरी या भ्रम की, भ्रम तो भई आड़ी पाल।

वह दुख देत जलाए के, जो आड़ी भई अपने लाल॥८॥

संशय या भ्रम की यह निद्रा बहुत ही बुरी होती है। भ्रम तो अपने और धनी के बीच दीवार का कार्य करता है। प्रियतम की कृपा से मिलने वाला दुःख उस संशय की दीवार को ही जलाकर राख कर देता है, जो अपने और प्रियतम के बीच में बाधक बनी होती है।

भावार्थ— संसार में दुःख मिलने पर विरह की अनुभूति होती है। विरह की अवस्था में पल-पल प्रियतम की निकटता का अहसास होता है। ऐसी अवस्था में किसी भी प्रकार का संशय मन में रह ही नहीं सकता।

नींद निगोड़ी ना उड़ी, जो गई जीव को खाए।

रात दिन अगनी जले, तब जाए नींद उड़ाए॥९॥

जीव को खा जाने वाली अर्थात् माया में पूरी तरह डुबोने वाली अज्ञान रूपी बेशर्म नींद जीव को आसानी से नहीं छोड़ती है। दिन-रात जब प्रियतम के विरह में तड़पा जाता है, तभी यह अज्ञान रूपी निद्रा जीव का साथ छोड़ती है।

इन सुपने के दुख से जिन डरो, दुख बदले सत सुख।

अपने मासूक सों नेहड़ा, तोको देयगो बनाए के दुख॥१०॥

हे सुन्दरसाथ जी! इस संसार में मिलने वाले झूठे दुःखों से जरा भी मत डरो। इन दुःखों का अनुभव होने पर ही हृदय में विरह का रस प्रवाहित होगा, जिससे अपने प्राणवल्लभ का प्रेम भी मिलेगा तथा परमधाम के अखण्ड

सुख की अनुभूति भी होगी।

ता सुख को कहा कीजिए, जो देखलावे धरमराए।

मैं वह दुख मांगों पिउपें, पिउ सों पल पल रंग चढ़ाए॥११॥

माया के उन झूठे सुखों से क्या लाभ, जिनके मोह में पड़ने पर जीव को जन्म-मरण के चक्र में पड़कर धर्मराज के पास जाना पड़ता है। मैं तो अपने प्रियतम से माया का दुख माँगती हूँ, जिससे पल-पल मेरे हृदय में विरह और प्रेम का रस बढ़ता रहे।

दुख सब सुपनों हो गयो, अखण्ड सुख भोर भयो।

महामत खेले अपने लाल सों, जो अछरातीत कहयो॥१२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि जिस प्रकार स्वप्न टूटने के बाद कुछ भी नहीं बचता, उसी प्रकार विरह के रस में

सांसारिक दुःख भी छू-मन्तर हो गये हैं अर्थात् समाप्त हो गये हैं, और मेरे हृदय में परमधाम के अखण्ड सुख की अनुभूति होने लगी है। अब मैं अपने प्रियतम अक्षरातीत से प्रेम की लीला का आनन्द ले रही हूँ।

प्रकरण ॥१६॥ चौपाई ॥१८६॥

राग श्री

यह प्रकरण भी पूर्ववत् दुःख की उपयोगिता से सम्बन्धित है।

सखी री आतम रोग बुरो लग्यो, याको दारु ना मिले तबीब।

चौदे भवन में न पाइए, सो हुआ हाथ हबीब॥१॥

हे सुन्दरसाथ जी! प्रियतम से प्रेम का यह आत्मिक रोग मुझे इस प्रकार लग गया है कि चौदह लोकों में खोजने पर भी न तो इसकी कोई दवा है और न कोई वैद्य है। यह रोग तो केवल धाम धनी द्वारा ही मिटने वाला है।

भावार्थ— कफ, वात, और पित्त में विकृति होना शारीरिक रोग है। मन का अशान्त हो जाना तथा अपनी सामान्य अवस्था के प्रतिकूल कार्य करना मनोरोग है। इसी प्रकार आत्मा का अपने प्रियतम अक्षरातीत का

दीदार पाने के लिये तड़पना ही आत्मिक रोग है।

आत्म रोग कासों कहिए, जिन पीठ दर्द परआत्म।

ए रोग क्यों ए ना मिटे, जो लों देखे ना मुख ब्रह्म॥२॥

प्रश्न यह है कि आत्मिक (आत्म) रोग किसे कहते हैं? जब आत्मा परमधाम में विराजमान अपने मूल तन परात्म को संसार में भूल गयी होती है, तब ज्ञान द्वारा बोध होने पर अपने मूल स्वरूप एवं धनी के दीदार के लिये तड़पती है, उसे ही आत्म-रोग कहते हैं। जब तक अपने प्रियतम अक्षरातीत का दीदार न हो जाये, तब तक यह रोग नहीं मिटता।

सो हबीब क्यों पाइए, कई कर कर थके उपाए।

सास्त्र देखे सब सब्द, तिन दुख दिया बताए॥३॥

इस झूठे जगत में वह प्राणवल्लभ कैसे मिले? उसे पाने के लिये तो बहुत से लोग सारे उपाय कर-कर थक गये, लेकिन वह किसी को भी नहीं मिला। जब मैंने उसे पाने के लिये शास्त्रों के वचनों में ढूँढा, तो यही पता चला कि केवल विरह का दुःख ही अक्षरातीत से मिला सकता है।

सखी तार्थें दुख प्यारो लग्यो, अंदर देखो विचार।

सो दुख कैसे छोड़िए, जासों पाइए पिउ मनुहार॥४॥

हे साथ जी! यदि अपने मन में विचार कर देखो तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि मुझे दुःख प्रिय क्यों लगता है? जिस दुःख से आनन्द के सागर प्रियतम परब्रह्म का लाड़-प्यार मिलता है, भला उसे कैसे छोड़ा जा सकता है?

भावार्थ- हब्से में विरह में तड़प - तड़पकर श्री मिहिरराज जी ने अपने धनी को पा लिया। यदि उन पर

राजकीय धन के दुरुपयोग का आरोप नहीं लगता और वे नजरबन्द नहीं होते, तो "महामति" की शोभा को धारण करना उनके लिये सम्भव नहीं होता।

दुनी के सुख दिए मैं तिनको, जो कोई चाहे सुख।

जिनसे मेरा पिउ मिले, मैं चाहूँ सोई दुख॥५॥

जो संसार के सुखों की इच्छा करते थे, मैंने उन्हें यहाँ का सुख दे दिया। मैं तो केवल हब्से जैसा विरह का दुःख ही चाहता हूँ, जिससे मेरे प्रियतम से मेरी सान्निध्यता (सामीप्यता) हमेशा बनी रहे।

भावार्थ— बिहारी जी महाराज गादीपति बनकर संसार का सुख चाहते थे। बालबाई तथा कुछ अन्य लोगों की भी यही इच्छा थी। श्री मिहिरराज जी ने उनकी इच्छा पूरी कर दी। हब्से मैं तो धनी उनके हृदय में बैठ ही गये

थे। इस चौपाई में प्रियतम के मिलने का भाव पल-पल रसानुभूति तथा सुन्दरसाथ को सिखापन देने के लिये है।

दुख प्यारो है मुझ को, जासों होए पिउ मिलन।

कहा करूं मैं तिन सुख को, आखिर जित जलन॥६॥

मुझे वह दुःख बहुत प्यारा है जिससे प्रियतम परब्रह्म मिले। मैं माया के उन झूठे और क्षणिक सुखों को लेकर क्या करूँगा, जिनका उपभोग करने के पश्चात् पश्चाताप की जलन बनी रहती है।

बड़ी मत के जो धनी कहे, होए गए जो आगे।

तिन भी धनी मिलन को, दुख धनी पैं मांगे॥७॥

इस संसार में जो भी बड़े-बड़े बुद्धिमान महापुरुष पहले हो गये हैं, उन्होंने अपने प्रियतम परब्रह्म से दुःख ही

माँगा है, ताकि वे अपने धनी का दीदार कर सकें।

जब बिछोहा धनी का, तब दुख में धनी विलास।

उन दुख के विलास में, पोहोंचाए देत धनी आस॥८॥

जब धनी के वियोग का अनुभव होता है, तब विरह के उस दुःख में प्रियतम के विलास (आनन्द) की लज्जत (स्वाद) मिलती है। उस अवस्था में यह आशा बलवती हो जाती है कि अब धनी का दीदार अवश्य होगा।

भावार्थ- विरह में तड़पने पर यह अहसास होता है कि प्रियतम पल-पल हमारे साथ हैं। ऐसी अवस्था में दीदार के प्रति दृढ़ता हो जाती है।

कहा करूं तिन सुख को, जिनसे होइए निरास।

ए झूठा सुख है छल का, सो देत माया की फांस॥९॥

उन झूठे सुखों की क्या उपयोगिता है, जिनसे अन्त में निराशा ही हाथ लगती है? यह संसार प्रपञ्चमयी है, इसलिये इसके सुख भी क्षणिक होते हैं, किन्तु इनका आकर्षण माया के बन्धनों में फँसा देता है।

दुख से पिउ जी मिलसी, सुखे न मिलिया कोए।

अपने धनी का मिलना, सो दुखै से होए॥१०॥

दुःख से ही प्रियतम से मिलन होता है। सुखों में डूबकर, बिना विरह-प्रेम के, कोई भी धनी को प्राप्त नहीं कर सकता। यह तो निर्विवाद सत्य है कि दुःख से ही अक्षरातीत श्री राज जी से मिलन होता है।

दुख बड़ो पदारथ, जो कोई जाने ए।

ताथें सुख को छोड़ के, दुख ले सके सो ले॥११॥

जो भी समझदार व्यक्ति होगा, उसके लिये विरह का दुःख एक अनमोल वस्तु है। इसलिए माया के झूठे सुखों की चाहना छोड़कर, जितना सम्भव हो सके अधिक से अधिक विरह का दुःख लेना चाहिए।

रात दिन दुख लीजिए, खाते पीते दुख।

उठते बैठते दुख चाहिए, यों पिउ सों होइए सनमुख॥१२॥

खाते-पीते, उठते-बैठते हर समय दिन-रात प्रियतम के विरह के दुःख में डूबे रहना चाहिए। ऐसी अवस्था प्राप्त कर लेने पर प्रियतम का दीदार अवश्य होता है।

इन दुख से कोई जिन डरो, इन दुख में पिउ को सुख।

जो चाहत हैं सुख को, आखिर तिन में दुख॥१३॥

संसार में प्राप्त होने वाले दुःखों से कभी भी नहीं डरना

चाहिए, क्योंकि इन दुःखों से ही संसार से आसक्ति हटती है और विरह प्राप्त होता है, जिससे प्रियतम का अखण्ड सुख मिलता है। जो लोग संसार का विषय—सुख चाहते हैं, उन्हें अन्ततोगत्वा जन्म—मरण का कष्ट भोगना पड़ता है।

दुख बिना न होवे जागनी, जो करे कोट उपाए।

धनी जगाए जागहीं, न तो दुख बिना क्यों ए न जगाए॥१४॥

भले ही कोई करोड़ों उपाय कर लेवे, लेकिन बिना विरह के दुःख में तड़पे किसी की भी आत्मा जाग्रत नहीं हो सकती। धनी की कृपा से ही जागनी होती है, अन्यथा बिना विरह के दुःख के तो कोई जागेगा ही नहीं।

दुख खाना दुख पीवना, दुखै हमारो आहार।

दुनियां को दुख खात है, तो दुख थें भागत संसार॥१५॥

दुःख ही हम खाते हैं तथा दुःख ही पीते हैं। इस प्रकार विरह का दुःख ही हमारा आहार है, क्योंकि इसके द्वारा हमारे आत्मिक सुख का मार्ग खुलता है। दुनिया के जीवों को दुःख सताता है, इसलिये हर प्राणी दुःख से दूर रहना चाहता है।

दुखतें विरहा उपजे, विरहे प्रेम इस्क।

इस्क प्रेम जब आइया, तब नेहेचे मिलिए हक॥१६॥

संसार में दुःख मिलने पर धनी का विरह आता है और मोह के बन्धन टूटने लगते हैं। विरह से इश्क या अनन्य प्रेम आता है। अनन्य प्रेम आने पर निश्चित रूप से धनी से मिलन होता है।

भावार्थ- संसार में दुःख तो अनेकों को मिलता है , किन्तु विरह की राह पर कोई विरला ही चलता है। विरह आने के लिये धनी की कृपा से विवेक होना आवश्यक है। सामान्य रूप से इश्क और प्रेम को अलग-अलग माना जाता है, किन्तु वे तत्त्वतः एक ही हैं। वस्तुतः यह भाषा भेद है। जिस प्रकार यह कहा जाता है कि परमधाम में इश्क है, उसी प्रकार यह भी कहना चाहिये कि वहाँ अनन्य प्रेम है। परिकरमा ग्रन्थ में स्पष्ट कहा है—

याके प्रेमें के भूखन, याके प्रेमें के हैं तन।

याके प्रेमें के वस्तर, ए बसत प्रेम के घर॥

याको प्रेमें सेहेज सुभाव, ए प्रेमें देख दाव।

बिना प्रेम न कछुए पाइए, याके सब अंग प्रेम सोहाइए॥

याके प्रेम सेज्या सिनगार, वाको वार न पाइए पार।

प्रेम अरस परस स्यामा स्याम, सैयां वतन धनी धाम॥

परिकरमा १/३३,३५,३९

दुख सोभा दुख सिनगार, दुखै को सब साज।

दुख ले जाए धनी पे, इन सुख तें होत अकाज॥१७॥

विरह के दुःख से ही ब्रह्मसृष्टियों की शोभा है, उसी से उनका श्रृंगार है और साज-सज्जा है। विरह का दुःख ही धनी की तरफ ले जाता है, जबकि माया के झूठे सुखों में फँसने से आत्मिक सुख से वंचित होना पड़ता है।

तो दुख सारों ने मांगया, बड़ी मत वालों ने जाग।

दुख तें अपने पिउ का, आवत विरह वैराग॥१८॥

इसलिये सभी बड़े-बड़े ज्ञानी जनों ने परब्रह्म से दुःख माँगा है। दुःख मिलने पर संसार से वैराग्य हो जाता है और प्रियतम के विरह का रस मिलता है।

दुख बस्तर दुख भूखन, दुख थें निरमल देह।

जो दुख प्यारो जीव को लगे, तो उपजे सत सनेह॥१९॥

अध्यात्म की राह पर चलने वालों के लिये विरह का दुःख ही वस्त्र और आभूषण है। विरह के दुःख से ही इन्द्रियों के विकार दूर होते हैं तथा शरीर निर्मल होता है। जब जीव को विरह का दुःख प्रिय लगने लगता है, तब हृदय में धनी के प्रति सच्चा स्नेह प्रगट होता है।

दुख दावानल काटत, और काटत सकल विकार।

दुख काटत मूल माया को, बड़े नहीं विस्तार॥२०॥

विरह का दुःख तृष्णा की दावाग्नि को समाप्त कर देता है। इसी प्रकार वह सम्पूर्ण मनोविकारों को भी निर्मूल कर देता है। धनी का प्रेम दिलाने वाला विरह का दुःख माया की जड़ों को इस प्रकार नष्ट कर देता है कि भविष्य में

उसके पुनः विस्तार की सम्भावना नहीं होती।

भावार्थ- जिस प्रकार वन में लगी हुई अग्नि एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष तक पहुँचकर सारे जंगल को जला डालती है, उसी प्रकार मनुष्य में यदि तृष्णा की अग्नि प्रज्वलित हो गयी तो वह बिना विरह के नहीं बुझती। किसी वृक्ष को ऊपर से काटने पर उसके पुनः हरा होने की सम्भावना होती है, किन्तु यदि उसको नीचे जड़ से काट दिया जाये तो वह सूख जाता है। इसी तरह विरह के दुःख से मायावी वासना की जड़ों को हमेशा के लिये समाप्त कर दिया जाता है।

दुख दसों द्वार भेदया, और दुख भेदयो रोम रोम।

यों नख सिख दुख प्यारो लगे, तो कहा करे छल भोम॥२१॥

जब प्रियतम के विरह का दुःख शरीर के दस द्वारों से

अन्दर प्रविष्ट होकर रोम-रोम में ओत-प्रोत हो जाये
तथा सिर से लेकर पैर तक अति प्यारा लगने लगे, तब
यह समझ लेना चाहिए कि अब यह झूठी माया मेरा कुछ
भी बिगाड़ नहीं सकती है।

सुख माया को मूल है, सो चाहे बढ़यो विस्तार।

तिन साधो सुख तजिया, वास्ते अपने करतार॥२२॥

संसार के सुख की चाहना ही माया की जड़ है। उसके
परिपक्व हो जाने पर वह हमेशा बढ़ती ही रहती है।
इसलिये बड़े-बड़े सन्त-महात्माओं ने अपने परमात्मा
को पाने के लिये लौकिक सुखों का परित्याग कर दिया।

बारीक बातें दुख की, जो कदी लगे मिठास।

तो टूट जात है ए सुख, होत माया को नास॥२३॥

विरह पैदा करने वाले दुःख की बातें बहुत ही सूक्ष्म हैं। यदि हमें उसकी मिठास का अनुभव हो जाये, तो माया के जाल में फँसाने वाला सुख का बन्धन टूट जाता है और हृदय माया से रहित हो जाता है।

ए दुख बातें सोई जानहीं, जाको आई वतन खुसबोए।

ए दुख जानें अर्स अंकूरी, माया जीव न जाने कोए॥२४॥

दुःख की इन बातों की महत्ता वही जानता हैं, जिन्हें परमधाम की अनुभूति होने लगती है। एकमात्र ब्रह्मसृष्टि ही दुःख की अति सूक्ष्म बातों को समझती है। माया के जीव तो इससे कोसों दूर रहते हैं। वे इसका महत्व नहीं जानते।

जो माया मोह थें उपजे, सो क्या जाने दुख के सुख।

जो माया को सुख जानहीं, ताथें हुए बेमुख॥२५॥

माया-मोह से उत्पन्न होने वाले जीव, दुःख से मिलने वाले अखण्ड सुख को नहीं जान पाते हैं। जो माया को ही सुख समझते हैं, वे प्रियतम से दूर हो जाते हैं।

कुरान पुरान मैं देखिया, कही दुख की बड़ाई।

साध बड़ों बड़ाई दुख की, लड़ाए लड़ाए के गाई॥२६॥

मैंने कुरआन-पुरान का जब अवलोकन किया, तो उसमें भी दुःख की महत्ता लिखी हुई मिली। बड़े-बड़े सन्त-महात्माओं ने भी दुःख की महत्ता को बड़े प्यार से अपने ग्रन्थों में वर्णन किया है।

मोल तोल न दुख को, कोई नहीं इन बराबर।

जिन दुखथें धनी पाइए, ताको मोल होवे क्यों कर॥२७॥

दुःख की महत्ता का न तो कोई मूल्यांकन कर सकता है और न ही कोई इसे खरीद सकता है। इस दुःख के बराबर कोई भी कीमती वस्तु संसार में नहीं है। जिस दुःख से विरह-प्रेम मिलता है और धनी के चरण प्राप्त होते हैं, भला उसकी क्या कीमत हो सकती है।

भावार्थ- दुःख का मूल्य निर्धारित करने तथा उसको खरीदने का तात्पर्य यह है कि दुःख धनी की मेहर से मिलने वाली ऐसी कीमती वस्तु है, जिसके द्वारा धनी के मिलने की राह प्राप्त हो जाती है। ऐसी वस्तु की न तो कोई कीमत हो सकती है और न कोई अपनी इच्छा या शक्ति से जबरन विरह-प्रेम पा सकता है।

दुख तो मोहोंगे मोल को, मैं देख्या दिल ल्याए।

दुनियां सब भागी फिरे, कोई न सके उचाए॥२८॥

मैंने अपने दिल में विचार करके देखा तो यह बात स्पष्ट हो गयी कि दुःख की इतनी अधिक कीमत है कि सारी दुनिया भी इसका बोझ नहीं उठा सकती अर्थात् इसकी कीमत नहीं दे सकती। इसलिये संसार में कोई भी दुःख नहीं लेना चाहता।

भावार्थ- सामान्य रूप से देखा जाये तो संसार का प्रत्येक प्राणी किसी न किसी रूप में दुःखी है। पुनः इस चौपाई में यह क्यों कहा गया है कि सारी दुनिया दुःख से भागती फिरती है?

संसार में जो भी लोग दुःखी हैं, वे तृष्णा के वशीभूत होने से अज्ञानतावश अशुभ कर्मों के फल से दुःखी हैं। उनमें कोई भी प्रियतम के विरह से दुःखी नहीं है।

"विरहा नहीं ब्रह्माण्ड में, बिना सोहागिन नार।"

ब्रह्ममुनि अपने धनी का विरह पाने के लिये दुःख मिलने को सौभाग्य समझते हैं, जबकि सांसारिक जीव न तो अक्षरातीत को पूर्ण रूप से जानते हैं और न चाहते हैं। इसलिये सांसारिक सुख की चाहना में वे दुख से भागते हैं।

मैं तो चाहया सुख को, पर धनी की मुझ पर मेहेर।

ताथें दुख फेर फेर लिया, अब सुख लागत है जेहेर॥२९॥

मैं तो पहले यही चाहती थी कि मैं संसार में हर प्रकार से सुखी रहूँ, लेकिन धाम धनी की कृपा से मुझे माया का दुःख मिला। मुझे हब्से में जाना पड़ा, जहाँ विरह में डूबकर मैंने अपने प्राणवल्लभ को पा लिया। अब तो दुनिया का सुख जहर की तरह कष्टकारी लगता है। मेरी

हमेशा यही इच्छा होती है कि मुझे दुःख ही मिलता रहे,
जिससे मैं पल-पल धनी के प्रेम में डूबी रहूँ।

जो साहेब सनकूल होवहीं, तो दुख आवे तिन।

इन दुनियां में चाह कर, दुख न लिया किन॥३०॥

जिन पर धनी रीझते हैं, उनको ही माया में दुःख
मिलता है। इस संसार में अपनी इच्छा से किसी ने भी
दुःख नहीं लिया।

दुख देवे दिवानगी, स्यानप देवे उड़ाए।

ताथें दुख कोई न लेवहीं, सब सुख स्यानप चाहें॥३१॥

दुःख से विरह में प्रियतम को पाने की दीवानगी आती है
और बुद्धि की चतुराई समाप्त हो जाती है, इसलिये कोई
भी दुःख लेना नहीं चाहता। सभी लोग माया का सुख

और चतुराई में लीन रहना चाहते हैं।

भावार्थ- विरह की राह पर चलना सबके लिये सम्भव नहीं है और सबकी इसमें रुचि भी नहीं होती। सामान्य रूप से लोग आरामतलबी का जीवन व्यतीत करते हुए बुद्धि-विलास में ही मग्न रहना चाहते हैं।

चाहने वाले दुख के, दुनियां में ढूँढ देख।

ब्रह्मांड यार है सुख का, दुख दोस्त हुआ कोई एक॥३२॥

इस संसार में ढूँढने पर भी दुःख को चाहने वाले नहीं मिलते। कोई विरला ही दुःख से मित्रता करने वाला होता है, अन्यथा सारा संसार केवल मायावी सुख की ही आस लगाये रहता है।

जाको स्वाद लग्यो कछु दुख को, सो सुख कबूं न चाहे।

वाको सो दुख फेर फेर, हिरदे चढ़ चढ़ आए॥३३॥

जिसको दुःख का स्वाद लग जाता है, वह माया का झूठा सुख कभी भी नहीं चाहेगा। उसे तो बार-बार हृदय में उस दुःख की याद आती है कि किस प्रकार दुःख ने उसे विरह-प्रेम में डुबोकर प्रियतम से मिला दिया।

महामत कहे इन दुख को, मोल न कियो जाए।

लाख बेर सिर दीजिए, तो भी सर भर न आवे ताए॥३४॥

श्री महामति जी कहते हैं कि किसी प्रकार भी इस दुःख का मोल होना सम्भव नहीं है। यदि लाख बार भी अपना सिर काटकर दे दिया जाये, तो उस दुःख की कीमत नहीं चुकायी जा सकती जिसके द्वारा विरह और प्रेम की अनमोल सम्पदा प्राप्त होती है तथा धनी के चरण-कमल

प्राप्त होते हैं।

प्रकरण ॥१७॥ चौपाई ॥२२०॥

राग श्री

यह प्रकरण उस समय अवतरित हुआ है, जब श्री महामति जी सुन्दरसाथ की जागनी हेतु निकल पड़ते हैं और संसार के लोग तरह-तरह की बातें करते हैं।

मैं तो बिगड़या विश्व थें बिछुरया, बाबा मेरे ढिग आओ मत कोई।

बेर बेर बरजत हों रे बाबा, न तो हम ज्यों बिगड़ेगा सोई॥१॥

श्री महामति जी संसार के लोगों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि मैं तो लोक -रीति से अलग होने के कारण तुम्हारी दृष्टि में बिगड़ा हुआ हूँ। मैं अब तुमसे अलग भी हो गया हूँ, इसलिये कोई भी मेरे पास न आये। मैं इस बात को बारम्बार कह रहा हूँ कि कोई भी मेरे पास आने की भूल न करे, अन्यथा जैसे मैं बिगड़ गया हूँ वैसे ही तुम भी बिगड़ जाओगे।

मैं लाज मत पत दर्ई रे दुनी को, निलज होए भया न्यारा।

जो राखे कुल वेद मरजादा, सो जिन संग करो हमारा॥२॥

मैंने लोक-लज्जा, व्यक्तिगत बुद्धिमता, तथा प्रतिष्ठा को संसार के हाथों में सौंप दिया है, तथा सबकी दृष्टि में निर्लज्ज होकर अलग हो गया हूँ। जिसे मर्यादाओं का पालन करना हो, वह मेरी संगति में न रहे।

भावार्थ- ऐसा कार्य करना जिससे समाज में छोटेपन का अहसास हो, लोक-लज्जा को खोना कहलाता है। लोक-विरुद्ध कार्य करने पर लोग यही समझते हैं कि यह तो नासमझ है। महामति जी के कथन का यही आशय है। इस राह पर चलने में संसार से प्रतिष्ठा की आशा नहीं करनी चाहिए। श्री मिहिरराज जी के जागनी कार्य में लग जाने पर संसारी लोग यह बातें उड़ाने लगे कि क्षत्रिय होकर जगह-जगह भटकते हुए धर्मोपदेश

करना धर्मशास्त्र के आदेश तथा वंश की मर्यादा के विपरीत है। इसी सम्बन्ध में श्री महामति जी ने इस चौपाई की दूसरी पंक्ति में यह बात कही है।

लोक सकल दौड़त दुनियां को, सो मैं जान के खोई।

मैं डारया घर जारया हंसते, सो लोक राखत घर रोई॥३॥

संसार के सभी लोग जिन तृष्णाजनित सुखों के पीछे भागते हैं, मैंने उन्हें जान-बूझकर छोड़ दिया। रो-रोकर लोग अपनी घर गृहस्थी को बसाते हैं, लेकिन मैंने उसे हँसते हुए जला दिया।

भावार्थ- संसार में तीन प्रकार की इच्छायें हैं – १. लोकेषणा अर्थात् प्रतिष्ठा की इच्छा, २. वित्तेषणा यानि धन की इच्छा, ३. दारेषणा अर्थात् सांसारिक रिश्तों का मोह। श्री महामति जी ने हँसते-हँसते इन तीनों का

परित्याग कर दिया।

देत दिखाई सो मैं चाहत नाहीं, जा रंग राची लोकाई।

मैं सब देखत हूँ ए भरमना, सो इनों सत कर पाई॥४॥

इस संसार में जो कुछ भी झूठा आकर्षण दिखायी पड़ रहा है, वह मैं नहीं चाहता। जिन क्षणिक सुखों में संसार के लोग मस्त हैं, मुझे वे झूठे दिखायी पड़ते हैं, लेकिन दुनिया वालों के लिये वही शाश्वत सुख हैं।

मैं कहूँ दुनियां भई बावरी, ओ कहे बावरा मोही।

अब एक मेरे कहे कौन पतीजे, ए बोहोत झूठे क्यों होई॥५॥

मैं कहता हूँ कि संसार के लोग पागल हैं और संसार के लोग कहते हैं कि मैं पागल हूँ। मुझ अकेले की बात पर भला कोई कैसे विश्वास करेगा। प्रत्येक व्यक्ति यही

सोचेगा कि इतने सारे लोग भला झूठे कैसे हो सकते हैं।

चित में चेतन अंतरगत आपे, सकल में रह्या समाई।

अलख को घर याको कोई न लखे, जो ए बोहोत करे चतुराई॥६॥

हृदय में चैतन्य जीव का वास होता है, जिसमें अन्तर्यामी रूप से तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सत्ता रूप से, ब्रह्म विराजमान है। संसार के ये लोग बुद्धि की कितनी ही दौड़ क्यों न लगायें, लेकिन वे उस अलख-अगोचर ब्रह्म के धाम की जानकारी नहीं प्राप्त कर सकते।

भावार्थ- उपनिषदों का कथन है - "हृदि ही एषः आत्मा" (तैत्तिरियोपनिषद) अर्थात् हृदय में चैतन्य जीव का वास होता है। जीव के सम्पूर्ण क्रिया-कलापों को अन्तर्यामी परमात्मा जानता रहता है, इसलिये लाक्षणिक रूप से ही यह कहा जाता है कि जीव के अन्दर ब्रह्म

विराजमान है, किन्तु वास्तविकता यह है कि ब्रह्म का अखण्ड स्वरूप तो प्रकृति से सर्वथा परे है। यही स्थिति ब्रह्म को जगत के कण-कण में कहने पर है। वस्तुतः कण-कण में उसकी सत्ता है, अखण्ड नूरी स्वरूप नहीं।

सतगुर संगे मैं ए घर पाया, दिया पारब्रह्म देखाई।

महामत कहे मैं या विध बिगड़या, तुम जिन बिगड़ो भाई॥७॥

श्री महामति जी कहते हैं कि सद्गुरु की कृपा से मैंने हृद-बेहृद से परे स्वलीला अद्वैत परमधाम एवं अक्षरातीत का दीदार कर लिया। अब तो मैं तुम्हारी नजर में बिगड़ा हुआ ही हूँ। इसलिये भाइयों! अच्छा यही होगा कि जैसे मैं बिगड़ गया हूँ, वैसे तुम मत बिगड़ो। तुम अपनी माया की दुनिया में खुश रहो।

प्रकरण ॥१८॥ चौपाई ॥२२७॥

राग श्री

इस प्रकरण का प्रसंग भी पूर्व प्रकरण वाला ही है तथा यह सुन्दरसाथ को सिखापन देने के लिये अवतरित हुआ है।

तुम समझ के संगत कीजो रे बाबा, मुझ जैसा दिवाना न कोई।
जाही सों लोक लज्या पावे, सो तो मोहे बड़ाई॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे भाइयों ! तुम सोच-समझकर मेरी संगति करना। मेरे जैसा कोई और दीवाना नहीं है। धनी की जिस राह पर चलने में लोगों को लज्जा आती है, उस काम में मुझे शोभा प्रतीत होती है।

मैं तो बात करूं रे दिवानी, दुनियां तो स्यानी सुजान।
स्याने दिवाने संग क्यों कर होवे, तुम मिलियो मोहे पेहेचान॥२॥

मैं तो हमेशा धनी के प्रेम की दीवानगी की ही बातें करूँगा, जबकि इस दुनिया के लोग तो बहुत ही ज्ञानी एवं चतुर हैं। तुम सावधानीपूर्वक मेरी पहचान करके ही मुझसे मिलना, क्योंकि एक चतुर और एक प्रेम में दीवाने व्यक्ति का मेल नहीं बैठता।

मैं त्रिलोकी अग्नि कर देखी, दुनियां को सो सुख।

दुनियां को अमृत होए लागी, मोहे लागत है विख॥३॥

मैं यह देख रहा हूँ कि तीनों लोक (पृथ्वी, स्वर्ग, और वैकुण्ठ) में माया की दुःखमयी अग्नि जल रही है और मुझे यह संसार विष के समान कष्टकारी लग रहा है। इसके विपरीत संसार के लोगों को यह ब्रह्माण्ड अमृत के समान सुखदायी लग रहा है।

जब मैं मरम पायो मोह जल को, तब मैं भाग्या रोई।

डर के उबट चल्या उबाटे, बाट बड़ी मैं खोई॥४॥

जब मैंने इस भवसागर के रहस्य को पाया, तो मैं इसे छोड़कर रोते हुए भाग पड़ा। मैंने संसार से डरकर धनी के प्रेम की विकट राह अपना ली तथा दुनिया वालों के मायावी सुखों से भरपूर मार्ग को छोड़ दिया।

अहनिस डर आया मेरे अंग में, फिरया दिलड़ा भया दिवाना।

भली बुरी कहे सो मैं कछू न देखूं, भागवे को मैं स्याना॥५॥

मेरे हृदय में दिन-रात इस भवसागर का डर इस तरह बैठा रहा कि मैंने इसे छोड़ दिया। अब मेरा दिल प्रियतम के प्रेम में दीवाना बन गया है। मैं इस बात पर कुछ भी ध्यान नहीं देता कि कौन मुझे अच्छा कह रहा है और कौन बुरा। इस संसार से भागने में मैंने बहुत ही चतुराई

दिखायी।

मैं छोड़े कुटुम सगे सब छोड़े, छोड़ी मत स्वांत सरम।

लोक वेद मरजादा छोड़ी, भाग्या छोड़ सब धरम॥६॥

मैंने अपने धनी को पाने के लिये कुटुम्ब-परिवार तथा सभी सगे-सम्बन्धियों को छोड़ दिया। अब तक के ग्रहण किये हुए लौकिक ज्ञान तथा पारिवारिक शान्ति एवं लज्जा को भी मैंने छोड़ दिया। समाज और धर्मग्रन्थों की जिन मर्यादाओं में मैं पहले बँधा हुआ था, उन्हें छोड़ दिया। इसके अतिरिक्त सभी धर्मों को भी छोड़कर मैं संसार से भाग पड़ा।

भावार्थ- प्रियतम के प्रेम में डूबने पर ही वास्तविक ब्रह्मज्ञान प्रकट होता है, इसके पहले का ज्ञान लौकिक ज्ञान होता है जिसका परित्याग महामति जी ने किया।

पारिवारिक शान्ति का तात्पर्य यह है कि यदि श्री मिहिरराज गृह त्याग नहीं करते, तो सपत्नीक सुख-चैन से परिवार में रह सकते थे। जिस प्रकार गीता में "सर्वान् धर्मान् परित्यज" का भाव अब तक उपदिष्ट ज्ञान योग, कर्म योग, सांख्य योग, भक्ति योग को छोड़कर अनन्य शरणागति से है, उसी प्रकार तारतम ज्ञान का प्रकाश होने से पहले अन्य मान्यताओं को यहाँ धर्म कहा गया, जिसको श्री महामति जी ने छोड़ा।

ए सूरें पांऊं धरें क्यों पीछे, इनको तो लज्या लागे।

देवें सीस सकल सुख खोवें, पर भाइयों को छोड़ न भागें॥७॥

माया के ये बहादुर लोग मेरी परमधाम वाली राह के पीछे कैसे चल सकते हैं। इस राह पर चलने में तो इन्हें लज्जा आती है। ये माया के सुखों को पाने में ही अपने

जीवन को बिता देते हैं और अखण्ड सुख से वंचित हो जाते हैं, लेकिन मेरी तरह अपने सांसारिक रिश्तों को छोड़ नहीं पाते।

भावार्थ- माया का बहादुर वह है जो माया के सुखों को ही सब कुछ समझकर उसमें लिप्त है। अध्यात्म की राह पर चलने में मायावी लोगों को लज्जा आती है। अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने को शीश देना कहते हैं। माया में फँसे हुए लोगों के भाई वे हैं, जो उनकी ही राह पर चल रहे होते हैं।

ए मिलके मरद चलें ज्यों महीपत, जानो पड़ता अंबर पकड़सी।
मोहे अचंभा ए डरें नहीं किनसो, पर ए खेल केते दिन रहेसी॥८॥
अपने को शूरवीर पुरुष कहलाने वाले ये लोग इस तरह चलते हैं, जैसे कोई राजा चल रहा हो। ये स्वयं को

इतना शक्तिशाली समझते हैं, जैसे गिरते हुए आकाश को रोक लेंगे। उनके इस व्यवहार को देखकर मुझे यह आश्चर्य होता है कि इनको तो किसी से डर ही नहीं लगता है, लेकिन ऐसा कब तक चलेगा?

देखत काल पछाड़त पल में, तो भी आंख न खोलें।

आप जैसा और कोई न देखें, मद छाके मुख बोलें॥९॥

वे स्वयं देखते हैं कि सबके सिर पर मण्डराने वाला काल पल भर में बहुतों को मौत की नींद सुला देता है, फिर भी वे सावधान नहीं होते कि हमारा भी ऐसा ही हाल होगा। वे अपने समान इस संसार में किसी को भी नहीं देखते। उनके अन्दर इतना अधिक अभिमान भरा होता है कि जब वे बोलते हैं तो उनके एक-एक शब्द से अहंकार टपकता है।

इनमें से नाठया मैं निसंक कायर होए, फेर न देख्या ब्रह्मांड।

सुन्य निरंजन छोड़ मैं न्यारा, जाए पड़या पार अखंड॥१०॥

इन मायावी जीवों के बीच से मैं बिना संकोच किए एक कायर की तरह भाग पड़ा और पुनः कभी इस संसार की ओर पीछे मुड़कर नहीं देखा। संसार से भागते-भागते मैं शून्य-निराकार को छोड़कर बेहद से भी परे परमधाम में जा पहुँचा।

भावार्थ- यद्यपि सांसारिक सुखों का परित्याग करके अध्यात्म की ओर गमन करना सबसे अधिक बहादुरी का कार्य है, किन्तु मायावी लोग इसे कायरता कहते हैं, इसलिये महामति जी ने भी इनके कथनानुसार ही स्वयं को कायर कहा है। संसार से भागते-भागते परमधाम पहुँचने की बात ध्यान से सम्बन्धित है, पञ्चभौतिक तन से नहीं।

अब तो कछुए न देखत मद में, पर ए मद है पल मात्र।

महामत दिवाने को कह्यो न माने, सो पीछे करसी पछताप॥११॥

श्री महामति जी कहते हैं कि ये दुनिया के जीव अपने अहंकार में इतने चूर हैं कि अध्यात्म जगत की किसी भी बात की तरफ इनका ध्यान नहीं है, लेकिन इनका यह अहंकार बहुत थोड़े समय के लिये है, क्योंकि पल भर में ही सब कुछ नष्ट हो सकता है। मैं तो अपने धनी के प्रेम में दीवाना हूँ। जो मेरे इस आध्यात्मिक सिखापन को स्वीकार नहीं करेगा, उसके पास पछताने के सिवाय अन्य कोई भी चारा नहीं रहेगा।

प्रकरण ॥१९॥ चौपाई ॥२३८॥

राग श्री आसावरी

यह तथा इसके आगे का एक्कीसवाँ प्रकरण विषय की दृष्टि से समान हैं।

साधो या जुग की ए बुध।

दुनियां मोह मद की छाकी, चली जात बेसुध॥१॥

हे सन्त जनों! इस युग में संसार के लोगों की ऐसी विचित्र बुद्धि हो गयी है कि वे मोह –अहंकार के नशे में डूबे पड़े हैं। उन्हें जरा भी सुध नहीं है।

दुनी दुनी पें चाहे दुनियां, तार्थें करामात दूँडे।

पीछे दोऊ बराबर संगी, तब दे सिच्छा और मूँडे॥२॥

संसार के सामान्य जीव संसार के सिद्ध जीवों से

संसारिक सुख चाहते हैं, इसलिये वे चमत्कारों की खोज में लगे रहते हैं। बाद में दोनों ही साथी बन जाते हैं। देने वाला भी माया का ही धन देना चाहता है, क्योंकि उसके पास अखण्ड का कोई ज्ञान होता ही नहीं। इसी प्रकार लेने वाला भी अखण्ड का सुख नहीं चाहता। दोनों ही मिलकर संसार के अन्य लोगों को इस प्रकार की अन्धेरी शिक्षा देकर अनुगामी बनाते हैं।

भावार्थ— अध्यात्म जगत में सिद्धि प्रदर्शन को हेय (घृणा) दृष्टि से देखा जाता है, लेकिन सामान्य लोग उसे बहुत बड़ी उपलब्धि समझते हैं। इस चौपाई में कहा गया है कि "दुनी दुनी पे चाहे दुनिया" अर्थात् दुनिया के सामान्य जीव दूसरे सिद्धि वाले जीवों से दुनिया के ही सुखों की कामना करते हैं।

साधो केहेर कही करामात, ए दुनियां तित रांचे।

झूठी दृष्ट जो बांधी झूठ सों, तार्थें दिल ना लगत क्यो ए सांचे॥३॥

हे सन्त जनों! चमत्कारों का प्रदर्शन आत्म-हन्न का मार्ग है, लेकिन दुनिया के लोगों को यही अच्छा लगता है। संसार के जीवों की दृष्टि मायावी होती है। वे अखण्ड लीला-धाम के बारे में कुछ सोच ही नहीं पाते। इसलिये झूठे चमत्कारों एवं सांसारिक सुखों को छोड़कर वे ब्रह्मज्ञान की तरफ कदम नहीं बढ़ा पाते।

द्रष्टव्य- सिद्धिबल, योगबल, एवं आत्मबल में अन्तर होता है। सिद्धिबल सामान्य साधकों के पास होता है। वे प्रतिष्ठा के लिये चमत्कारों का प्रदर्शन करते हैं। इस प्रकरण में उन्हीं की तरफ संकेत है। योगबल केवल महान वीतराग योगियों के पास होता है। वे किसी प्रतिष्ठा के वशीभूत होकर नहीं, बल्कि अति आवश्यक स्थिति में

मजबूर होकर चमत्कार करते हैं। आत्मबल परमहंस ब्रह्ममुनियों में होता है। धनी की प्रेरणा से स्वतः ही इनके तनों से चमत्कारिक लीलाएँ होती रहती हैं।

कौन मैं कहां को कहां थें बिछुरयो, कौन भोम ए छल।

गुर सिष्य ग्यान कथें पंथ पैडे, पर एती न काहू अकल॥४॥

इस संसार में अनेक मत-मतान्तर हैं जिनमें गुरुजन अपने शिष्यों को तरह-तरह का ज्ञान सुनाते हैं, लेकिन उनमें इस विषय पर स्पष्ट निर्णय लेने की बुद्धि नहीं है कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, तथा इस शरीर और संसार को छोड़ने के पश्चात् कहाँ जाना है? मैं जिस जगह रह रहा हूँ, वह कैसी छल वाली मायावी भूमिका है?

या घर में या बन में रहे, पर कहा करे बिना सतगुर।
तो लों मकसूद क्यों कर होवे, जो लों पाइए ना अखंड घर॥५॥
भले ही कोई अपने घर में रहे या साधना करने के लिये
वन में रहे, लेकिन बिना सद्गुरु के निर्देशन के वह परम
लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सकता। जब तक आत्मा को
अखण्ड निजघर की प्राप्ति नहीं होती, तब तक जीवन का
सर्वोपरि उद्देश्य पूर्ण हुआ नहीं माना जायेगा।

सतगुर सोई जो वतन बतावे, मोह माया और आप।
पार पुरुख जो परखावे, महामत तासों कीजे मिलाप॥६॥
श्री महामति जी कहते हैं कि सद्गुरु वही है जो, आत्मा
को अखण्ड घर की पहचान बताये तथा, माया-मोह के
बन्धनों से छूटने का उपाय बताते हुए, आत्मा के निज
स्वरूप तथा उत्तम पुरुष अक्षरातीत की पहचान बताये।

ऐसे ही सद्गुरु से मिलन करना चाहिए।

प्रकरण ॥२०॥ चौपाई ॥२४४॥

राग श्री सारंग

चल्यो जुग जाए री सुध बिना।

सुध बिना सुध बिना सुध बिना, चल्यो जुग जाए री सुध बिना॥१॥

संसार के सभी प्राणियों का जीवन अज्ञानता के अन्धकार में भटकते हुए बीता जा रहा है।

मूल प्रकृती मोह अहं थे, उपजे तीनों गुन।

सो पांचों में पसरे, हुई अंधेरी चौदे भवन॥२॥

मूल प्रकृति से मोह तत्व उत्पन्न हुआ, जिससे अहंकार प्रकट हुआ। अहंकार से सत्व, रज, और तम इन तीन गुणों की उत्पत्ति हुई। इन्हीं तीन गुणों का फैलाव सभी पञ्चभूतात्मक ब्रह्माण्डों में है, जिससे चौदह लोक में अज्ञानता का अन्धकार छाया हुआ है।

भावार्थ- "निज लीला ब्रह्म बाल चरित, जाकी इच्छा मूल प्रकृति" अर्थात् अक्षर ब्रह्म के अन्दर सृष्टि रचना की इच्छा को मूल प्रकृति कहते हैं। इसी मूल प्रकृति से अहंकार की रचना होती है। सत्त्व, रज, और तम का तात्पर्य विष्णु, ब्रह्मा, तथा शिव से नहीं है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ में सत्त्व, रज, और तम कम अथवा अधिक मात्रा में उपस्थित होते हैं। इन तीनों देवताओं में एक-एक गुण की विशिष्टता या अधिकता होती है। जिस प्रकार ब्रह्मा जी में रजोगुण विशिष्ट तो है, किन्तु अल्पांश में सत्त्व और तम भी है। इसी प्रकार अन्य देवताओं को भी जानना चाहिये।

प्रले प्रकृती जब भई, तब पांचों चौदे पतन।

मोह अहं सबे उड़े, रहे सरगुन ना निरगुन॥३॥

जब महाप्रलय में इस सम्पूर्ण प्रकृति मण्डल का प्रलय हो जाता है, तो उस समय पाँचों तत्व, चौदह लोक, सगुण-निर्गुण सभी पदार्थ, अहंकार, तथा मोह तत्व का विनाश हो जाता है।

द्रष्टव्य- मोहसागर से असंख्य चौदह लोकों के ब्रह्माण्ड उसी प्रकार उत्पन्न होते हैं, जिस प्रकार सागर में पानी के बुलबुले। यहाँ एक चौदह लोक का वर्णन तथ्य को समझने के लिये किया गया है।

तब जीव को घर कहां रह्यो, कहां खसम वतन।

गुर सिष्य नाम बोहोतों धरे, पर ए सुध परी न किन॥४॥

जब महाप्रलय में कुछ बचेगा ही नहीं, तो यह बताइये कि उस समय जीव कहाँ रहेगा तथा उस पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द का निवास कहाँ होगा? इस संसार में बहुत

से गुरुजन एवं शिष्यगण हैं, जिनके ज्ञान की प्रसिद्धि है, लेकिन उनमें से किसी से भी इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिल सका।

ऊपर तले मांहें बाहेर, खोज्या कैयों जन।

नेहेचल न्यारा सबन से, ए ठौर न पाई किन॥५॥

अनेक ज्ञानियों तथा भक्तों ने उस परब्रह्म को इस ब्रह्माण्ड में ऊपर, नीचे, अन्दर, और बाहर खोजा, लेकिन कोई भी नहीं पा सका। वह अखण्ड अविनाशी परब्रह्म तो इस जगत से सर्वथा न्यारा है।

निराकार कासों कहिए, कासों कहिए निरंजन।

क्यों व्यापक क्यों होसी फना, एता न कहा किन॥६॥

किसी ने स्पष्ट रूप से यह भी नहीं बताया कि निराकार

और निरञ्जन किसे कहते हैं, तथा सभी पदार्थों में व्यापक रहने वाला निराकार भी कैसे नष्ट हो जाता है?

भावार्थ- आकार से रहित पदार्थ निराकार है, तथा हाथ, पैर, आँख, सिर आदि अंगों (अवयवों) से रहित होने के कारण उसे निरञ्जन कहते हैं। मोहतत्त्व, महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश आदि निराकार हैं। महाप्रलय में निराकार पदार्थ भी अवश्य ही नष्ट होगा, क्योंकि यह अनादि और अखण्ड पदार्थ नहीं बल्कि मूल प्रकृति से पैदा होने वाला नश्वर पदार्थ है।

क्यों सरूप है प्राकृत को, क्यों मोह क्यों सुंन।

क्यों सरूप जो काल को, ए नेहेचे करी न किन॥७॥

आज तक किसी ने भी निश्चित दृढ़ता के साथ यह नहीं बताया कि प्रकृति का स्वरूप क्या है? मोह तत्त्व और

शून्य क्या है? क्या ये अलग-अलग हैं या एक ही हैं?
काल का स्वरूप क्या है?

भावार्थ- ब्रह्म की सृष्टि-रचना की इच्छा शक्ति ही सत् प्रकृति है, जिससे मूल प्रकृति उत्पन्न होती है।

पंथ पैडे सब चलहीं, कई दीन दरसन।

ना सुध आप ना पार की, ए सुध परी न किन॥८॥

इस समय संसार में नाना प्रकार के मत-मतान्तर चल रहे हैं, जिनकी अलग-अलग अध्यात्म सम्बन्धी दार्शनिकता है। लेकिन उनमें से किसी को भी न तो निज स्वरूप की पूरी पहचान हो पायी और न ही अखण्ड धाम की पहचान हो पायी।

द्रष्टव्य- यह संशय हो सकता है कि क्या बुद्ध, महावीर, एवं अन्य आत्मदर्शी ऋषियों को निज स्वरूप का बोध

नहीं था?

इसका उत्तर यही है कि इन्होंने अपने चैतन्य स्वरूप का साक्षात्कार तो अवश्य किया था, किन्तु बिना तारतम ज्ञान के यह नहीं जाना जा सकता है कि सृष्टि से पूर्व उनके निज स्वरूप का क्या अस्तित्व था तथा महाप्रलय के पश्चात् क्या स्वरूप होगा।

कौन सरूप है आत्मा, परआत्म कहा क्यों भिन।

सुध ठौर ना सरूप की, ए संसे भान्यो न किन॥९॥

आज तक किसी ने भी इस संशय को नहीं मिटाया कि आत्मा का स्वरूप क्या है, परात्म को उससे अलग क्यों कहा जाता है, तथा इनका मूल स्थान कहाँ है?

महामत सो गुर पाइया, जो करसी साफ सबन।

देसी सुख नेहेचल, ऐसी कबहूं न करी किन॥१०॥

श्री महामति जी कहते हैं कि मुझे सद्गुरु रूप में स्वयं अक्षरातीत ही मिल गये हैं, जो अब तक के सारे संशयों को समाप्त कर देंगे और सभी प्राणियों को अखण्ड मुक्ति का सुख देंगे। आज तक ऐसा अलौकिक कार्य न तो किसी ने किया है और न ही भविष्य में करेगा।

विशेष- श्री महामति जी का यह कथन कि "मुझे अब सद्गुरु मिल गये हैं", किरंतन के उस कथन के समानार्थक है जिसमें कहा गया है- "सतगुरु मेरे स्याम जी"।

प्रकरण ॥२१॥ चौपाई ॥२५४॥

राग श्री

प्रकरण २२, २३ और २४ मस्कत में उस समय उतरे, जब श्री जी की अलौकिक चर्चा से स्थानीय कथावाचक ईर्ष्या की अग्नि में जल उठे तथा विरोध प्रकट करने लगे।

रे हो दुनियां बावरी, खोवत जनम गमार।

मदमाती माया की छाकी, सुनत नहीं पुकार॥१॥

संसार के हे बावले (पागल) एवं अति अल्प बुद्धि वाले लोगों! तुम अपने जीवन को व्यर्थ में खोते जा रहे हो। तुम नख से शिख तक मायावी सुखों में मस्त हो एवं अपने झूठे अहंकार में डूबे पड़े हो, इसलिये मेरी आवाज को तुम अनसुनी कर रहे हो।

अपनी छायासों आप बिगूती, बल खोए चली हार।

आग बिना जलत अंग में, जल बल होत अंगार।।२।।

तुम अपने बनाये हुए जाल में स्वयं ही फँसे हुए हो तथा एक-दूसरे की देखा-देखी अपना आत्मिक बल खोकर पंक्तिबद्ध चले जा रहे हो। तुम्हारे हृदय में मायावी विकारों की अग्नि जल रही है, जिसमें जलकर तुम स्वयं माया के अंगारे बने हुए हो।

भावार्थ- मनुष्य अपने सुखों के लिये जो भी मायावी साधन अपनाता है, अन्ततः उसे दुःखी होना पड़ता है। इसे कहते हैं अपने ही जाल में स्वयं फँसना। हार में चलना इसलिये कहा गया है, क्योंकि लोगों ने इसी रास्ते पर चलना अनिवार्य मान लिया है। बाहरी अग्नि तो दिखायी दे जाती है, लेकिन जन्म-जन्मान्तरों से तृष्णा की अग्नि मनुष्य को जलाये जा रही है जो तुरन्त नहीं

दिखायी पड़ती, यह है बिना अग्नि के जलना।

सत सब्द को कोई न चीन्हे, सूने हिरदे नहीं संभार।

समझे साध जो आपको देखे, तामें बड़ी अंधार॥३॥

इस संसार के लोगों के हृदय सूने हैं, इसलिये ये लोग मेरे अखण्ड ज्ञान की महत्ता को न तो जानते हैं और न ही सुनना चाहते हैं। जो लोग अपने को बहुत बड़ा सन्त-महात्मा समझते हैं, उनके अन्दर भी माया का अन्धकार फैला हुआ है।

रे यामें केते आप कहावें स्याने, पर छूटत नहीं विकार।

स्यानप लेके कंठ बंधाए, या छल रच्यो है नार॥४॥

इस जगत में कुछ लोग बहुत बुद्धिमान माने जाते हैं, लेकिन वे अपने को मायावी विकारों से अलग नहीं कर

पाते। बुद्धिमत्ता का फन्दा उनके गले में लिपटा होता है और वे परमतत्त्व से वंचित हो जाते हैं। माया ने इस तरह का छल रच रखा है।

भावार्थ- यद्यपि अन्य योनियों की अपेक्षा मानव की श्रेष्ठता का विशेष कारण बुद्धि है, किन्तु यदि बुद्धिमत्ता से मनुष्य केवल धर्मग्रन्थों का शब्द ज्ञान ग्रहण कर ले और विरह, प्रेम, तथा समर्पण आदि गुणों से रहित हो, तो भी प्रियतम नहीं मिलते। इस प्रकार समर्पण, श्रद्धा, और प्रेम से रहित बुद्धिमत्ता भी प्रतिष्ठा के बन्धन में डालकर माया का फन्दा बन जाती है।

रे मूढ़मती या फंद में उरझो, उपजत नहीं विचार।

आप न चीन्हें घर न सूझो, ना लखे रचनहार॥५॥

हे मूढ़ बुद्धि वाले लोगों! तुम लोग माया के बन्धनों में

इस प्रकार फँस गये हो कि इससे निकलने का विचार ही तुम्हारे अन्दर पैदा नहीं होता। न तो तुम्हें अपने स्वरूप की पहचान है और न अपने अखण्ड घर की। सृष्टिकर्ता परमात्मा के बारे में भी तुम नहीं जानते हो।

अपनी मत ले ले साधू बोले, सब्द भए अपार।

बोहोत सबद को अर्थ न उपजे, या बल सुपन धुतार॥६॥

स्वप्न के समान झूठी इस माया की इतनी अधिक शक्ति है कि इसके बन्धन में फँसे हुए साधू-महात्मा अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुसार ही बोला करते हैं, जिससे अनेक ग्रन्थों की रचना हो जाती है। परिणामस्वरूप अध्यात्म के बहुत से प्रसंगों का वास्तविक अभिप्राय मालूम ही नहीं हो पाता।

द्रष्टव्य— श्रीमद्भगवद्गीता की ही तरह अष्टावक्र गीता ,

अवधूत गीता, ईश्वर गीता, गणेश गीता आदि १८ गीताएँ हैं, जिनमें परस्पर विरोधी विचारधारायें हैं। यही स्थिति १८ पुराणों, १८ उपपुराणों, तथा स्मृति ग्रन्थों में है। यदि वेद, उपनिषद्, एवं दर्शन आदि आर्ष ग्रन्थ न हों, तो सत्य-असत्य का निर्णय करना असम्भव हो जाये।

यामें सतगुर मिले तो संसे भाने, पैंडा देखावे पार।

तब सकल सबद को अर्थ उपजे, सब गम पड़े संसार॥७॥

इस अन्धकारमयी संसार में यदि सद्गुरु मिल जाते हैं, तो वे सभी संशयों को दूर कर देते हैं तथा निराकार से परे बेहद एवं परमधाम की राह दिखाते हैं। तब सभी धर्मग्रन्थों के गुह्य रहस्य एवं अभिप्राय भी स्पष्ट हो जाते हैं तथा इस संसार की वास्तविकता भी विदित हो जाती है।

तब बल ना चले इन नारी को, लोप न सके लगार।

महामत यामें खेलत पिया संग, नेहेचल सुख निरधार॥८॥

उस समय इस छलनी माया की शक्ति नहीं चल पाती तथा परम सत्य को वह जरा भी छिपा नहीं पाती। श्री महामति जी कहते हैं कि मेरी आत्मा अपने प्रियतम के साथ जागनी रास खेलते हुए निश्चित रूप से अखण्ड परमधाम के सुखों के स्वाद ले रही है।

प्रकरण ॥२२॥ चौपाई ॥२६२॥

राग गौड़ी

रे हो दुनियां को तूं कहा पुकारे, ए सब कोई है स्याना।

ए मदमाती अपने रंग राती, करत मन का मान्या॥१॥

श्री महामति जी स्वयं को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि इस संसार में हर कोई बुद्धिमान है। तुम उन्हें व्यर्थ में ब्रह्मज्ञान का उपदेश क्यों दे रहे हो? इस संसार के लोग अपने अहं में डूबे हुए हैं तथा मायावी सुखों में मस्त हैं। सभी लोग अपने मन के अधीन होकर कार्य कर रहे हैं।

भावार्थ- जिस प्रकार खाली बर्तन में ही जल भरा जा सकता है, उसी प्रकार जिज्ञासु को ही ब्रह्मज्ञान का उपदेश सार्थक होता है। जो स्वयं भौतिक सुखों में आकण्ठ डूबा हो और अपने को ज्ञान का सागर मानता हो, श्रद्धा और विवेक से रहित ऐसे व्यक्ति को ब्रह्मज्ञान

की बातें सुनाना निरर्थक है। महामति जी के कथन का यही आशय है।

रे हो याही फंद में साध संत री, पुकार पुकार पछताना।
 कोई कहे दुनियां बुरी करत है, कोई भली कहे भुलाना॥२॥

इस छलनी माया के ही फन्दे में साधु-सन्त सभी फँसे हुए हैं। वे हमेशा ही इस माया के प्रपञ्चों को निरर्थक बताते रहे, लेकिन अन्ततोगत्वा उन्हें भी माया से हारकर पछताना पड़ा। कुछ लोग कहते हैं कि इस संसार के लोग बुरे मार्ग में भटक रहे हैं, तो कोई कहता है कि ऐसी बात नहीं है, सभी लोग अच्छी राह पर चल रहे हैं। हे मेरी आत्मा! तुम इन दोनों ही बातों को भुला दो।

रे हो बोहोत दिन बिगूती यामें, कर कर ग्यान गुमाना।

चुप कर चतुराई लिए जात है, तूं न कर निंदा न बखाना॥३॥

हे मेरी आत्मा! तू अपने ज्ञान के अहं में दूसरों को समझाने में ही उलझी रही तथा इतना समय नष्ट कर दिया। अपने को बुद्धिमान मानकर तू उपदेश देती फिरती है। अब चुपचाप शान्त होकर बैठ जाओ, न तो किसी की निन्दा करो, और न किसी का महिमा मण्डन करो।

द्रष्टव्य— यहाँ ज्ञान के अहं का तात्पर्य घमण्ड करना नहीं है। यदि यह कहा जाये कि मैं संसार में सबसे बड़ा ज्ञानी हूँ, तो इसे घमण्ड कहा जायेगा। यह अहं (मैं) का तामसिक रूप है जिसे गर्व भी कहते हैं, किन्तु यदि यह कहा जाये कि परब्रह्म की कृपा से मेरे पास जो कुछ थोड़ा सा ज्ञान है उससे मैं संसार के लोगों को सत्य मार्ग पर लाना चाहता हूँ, तो इसे सात्विक अहंकार कहा

जायेगा। मस्कत बन्दर में मायावी लोगों के विरोध के कारण श्री महामति जी ने दुःखी मन से सात्विक अहंकार को भी छोड़ने के लिये कहा है। इस चौपाई में यही भाव दर्शाया गया है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि बिना सात्विक अहं या अस्मिता के उपदेश देना सम्भव नहीं है।

रे हो तूं कर तेरी होत अबेरी, आप न देखे उरझाना।

अब तूं छोड़ सकल बिध, जात अवसर तेरा जान्या॥४॥

हे मेरी आत्मा! तू अपनी आत्मिक उन्नति की ओर नहीं देख रही है, बल्कि व्यर्थ में ही इन लोगों में उलझी हुई है। अब देर होती जा रही है, इसलिए अपनी आत्म-जाग्रति के लिये कुछ कर। अब इन बन्धनों को तुम पूरी तरह से छोड़ दो। धनी को रिझाने का यह स्वर्णिम

अवसर बीता जा रहा है।

एही सब्द एक उठे अवनी में, नहीं कोई नेह समाना।

पेहेचान पिउ तूं अछरातीत, ताही से रहो लपटाना॥५॥

सारी पृथ्वी से एकमात्र यही आवाज आ रही है कि प्रियतम अक्षरातीत से प्रेम करने के सिवाय अन्य कोई श्रेष्ठ वस्तु नहीं है। इसलिये अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत को पहचान लो और उनके प्रेम में डूब जाओ।

द्रष्टव्य— श्री महामति जी के धाम हृदय में तो अक्षरातीत विराजमान हैं ही, किन्तु इस चौपाई में अक्षरातीत की पहचान करने का तात्पर्य उन सुन्दरसाथ के लिये सिखापन है, जो प्रेम से दूर रहकर शुष्क ज्ञान सुनाते—सुनाते जीवन की इतिश्री कर लेते हैं।

अहनिस आवेस हुअड़ा अंग में, फिरया दिलड़ा हुआ दिवाना।

महामत प्रेमें खेले पिया सों, ए मद है मस्ताना॥६॥

श्री महामति जी कहते हैं कि मेरा हृदय इस संसार से हट गया है और प्रियतम के प्रेम का आवेश आ गया है, जिससे अब मेरी आत्मा धनी के प्रेम में जागनी-रास खेल रही है। आत्मिक प्रेम का यह नशा निश्चय ही मस्त कर देने वाला है।

प्रकरण ॥२३॥ चौपाई ॥२६८॥

राग श्री केदारो

रे मन भूल ना महामत, दुनियां देख तूं आप संभार।

ए नाहीं दुनियां बावरी, ए रच्यो माया ख्याल॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मन ! इस संसार के लोगों की वास्तविकता को देखो और अपने आप को सम्भालो। तुम इन लोगों को बिल्कुल मूर्ख समझने की भूल कभी भी न करना। यह संसार ही मायावी है, जो स्वप्न के समान सारहीन है।

भावार्थ- पूर्व के प्रकरणों में संसार के लोगों को अति अल्प बुद्धि वाला तथा इस प्रकरण में बुद्धिमान मानने का अभिप्राय यह है कि संसार के लोग अध्यात्म से दूर रहने के कारण शाश्वत आनन्द से वंचित हैं, इसलिये मूर्ख हैं। इसके विपरीत वे मायावी सुखों में डूबे हैं और रात-दिन

उसी की प्राप्ति में अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हैं , इसलिये इस क्षेत्र में वे बहुत अधिक बुद्धिमान हैं, अर्थात् ब्रह्मज्ञान और आध्यात्मिक आनन्द के क्षेत्र में वे मूर्ख हैं, जबकि मायावी सुखों के संग्रह में अत्यधिक बुद्धिमान हैं।

रे मन त्रिखा न बूझे तेरी झांझुए, प्रतिबिंब पकस्यो न जाए।
ज्यों जलचर जल बिना ना रहे, जो तूं करे अनेक उपाए॥२॥
हे मन! मृगतृष्णा के जल से कभी भी प्यास नहीं बुझ सकती। मृगतृष्णा का जल उस प्रतिबिम्ब के समान होता है, जो मात्र दिखायी देता है किन्तु हाथों से पकड़ में नहीं आता। जिस प्रकार जल में रहने वाले प्राणी (मछली आदि) जल के बिना जीवित नहीं रह सकते, उसी प्रकार माया के जीव भी माया के बिना नहीं रह सकते। भले ही तुम कितने उपाय क्यों न करो, ये जीव किसी भी स्थिति

में माया की तृष्णाओं को छोड़ने वाले नहीं हैं।

रे मन सृष्ट सकल सुपन की, तूं करे तामें पुकार।

असत सत को ना मिले, तूं छोड़ आप विकार॥३॥

हे मन! यह सारी सृष्टि सपने की है। तुम इन स्वप्न के जीवों के बीच में अखण्ड ज्ञान की वर्षा करते रहो। तृष्णा में डूबे होने के कारण माया के ये जीव उस अविनाशी परब्रह्म को प्राप्त नहीं कर पाते। चर्चा में बाधाएँ खड़ी करने वालों के दुर्व्यवहार से उत्पन्न होने वाली खिन्नता के विकार को छोड़ दो।

रे मन सुपन का घर नींद में, सो रहे न नींद बिगर।

याको कोट बेर परबोधिए, तो भी गले नहीं पत्थर॥४॥

हे मन! नींद से ही सपना प्रकट होता है अर्थात् मोह

तत्त्व (माया) में ही जीवों का प्रकटन होता है, इसलिये वे माया को नहीं छोड़ सकते। यदि इन्हें करोड़ों बार भी ब्रह्मज्ञान सुनाया जाये, तो भी यह गलितगात होने वाले नहीं हैं, अर्थात् परब्रह्म के प्रति श्रद्धा एवं प्रेम भाव में डूबने वाले नहीं हैं।

भावार्थ— चैतन्य जीव का स्वरूप तो आदिनारायण की चेतना का प्रतिभास है, किन्तु उसका स्थूल, सूक्ष्म, और कारण शरीर माया (महत्तत्त्व) आदि से बना होता है। अव्याकृत स्वप्न में स्वयं को आदिनारायण के रूप में पाता है। यद्यपि ब्रह्म पूर्ण ज्ञानवान है, उस पर नींद या अज्ञान का आवरण कभी भी नहीं पड़ता, किन्तु मोहसागर (महामाया) में अव्याकृत की सुरता (ध्यान) के आने को ही नींद में स्वप्न देखना कहा गया है।

वासना होएगी बेहद की, सो क्यों छोड़े अपनी पर।

ओ सुपन में एक सब्द सुनते, उड़ जासी नींदर॥५॥

बेहद में रहने वाली आत्मा अपने मूल घर को नहीं छोड़ेगी। भले ही वह इस सपने के संसार में आयी हो, लेकिन वह निज घर के ज्ञान का एक शब्द सुनकर ही माया की नींद को छोड़ देगी।

द्रष्टव्य— "एक सब्द" सुनने का तात्पर्य बहुत ही थोड़े ज्ञान को सुनने से है। यह शब्द आलंकारिक भाषा में प्रयोग किया गया है।

सत सब्द को सोई चीन्हे, जो होए वासना ब्रह्म।

ए तो असत उलटिए खेल रच्यो है, देत दिखाई सब भ्रम॥६॥

जो परमधाम की ब्रह्मसृष्टि होगी, वही अखण्ड धाम के ज्ञान की पहचान कर सकेगी। अखण्ड धाम के विपरीत

यहाँ का खेल उलटा, प्रपञ्चपूर्ण, मायावी, एवं असत्य अर्थात् महाप्रलय में लय हो जाने वाला है।

द्रष्टव्य— परमधाम सत्, चित्, और आनन्दमयी है, जबकि यह जगत असत्, जड़, और दुःखमयी है।

असत तिन को भ्रम कहिए, होत है जिनको नास।

ए तो चौदे चुटकी में चल जासी, यों कहत सुक जी व्यास॥७॥

असत् अर्थात् मिथ्या वह है जो नश्वर है। इसे ही भ्रम भी कहते हैं। भ्रम का तात्पर्य यह है कि जिसका रूप कुछ और है, तथा दिखायी कुछ और पड़ता हो। शुकदेव जी एवं व्यास जी का कथन है कि चुटकी बजाने में जितना समय लगता है, उतने ही अति अल्प समय में चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड महाप्रलय में लय हो जाने वाला है।

तू उलट याको पीठ दे, प्रेम खेल पियासों रंग।

ओ आए मिलेंगे आपहीं, जासों तेरा है सनमंध॥८॥

हे मेरी आत्मा! तू इस मायावी जगत को पीठ देकर (ध्यान हटाकर) प्रियतम अक्षरातीत के प्रेम के रंग में डूब जाओ। धाम धनी से तुम्हारा अखण्ड सम्बन्ध है। इसलिये वे निश्चय ही आकर तुमसे मिलेंगे।

तेरे संगी तोहे अबहीं मिलेंगे, तू करे क्यों न करार।

महामत मन को दृढ़ कर, समरथ स्याम भरतार॥९॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा! तू अपने मन में शान्ति क्यों नहीं रख रही है? तुम्हारे परमधाम के सुन्दरसाथ तुझे बहुत जल्दी मिलेंगे। तुम अपने मन में इस बात पर दृढ़ हो जाओ क्योंकि तुम्हारे प्रियतम तो सर्वसमर्थ अक्षरातीत हैं, जिनकी मेहर से कुछ भी

असम्भव नहीं है।

प्रकरण ॥२४॥ चौपाई ॥२७७॥

राग श्री गोड़ी

रस मगन भई सो क्या गावे।

विचली बुध मन चित मनुआ, ताए सबद सीधा मुख क्यों आवे॥१॥

प्रियतम के प्रेम-रस में मग्न हो जाने वाली आत्मा भला क्या गा सकती है। उसकी बुद्धि, मन, चित्त सभी संसार से उचट गये होते हैं, इसलिये उसके मुख से रहस्यात्मक अटपटी बातें ही निकलती हैं। वह सीधे शब्दों में स्पष्ट रूप से कुछ कह नहीं पाती।

भावार्थ- इस चौपाई में गाने का तात्पर्य वर्णन करने से है। धनी के प्रति अपने प्रेम को शब्दों में यथार्थ रूप से ढालना सम्भव नहीं है। इसी का दूसरा रूप सीधे शब्दों में न कह पाना भी है।

बिचले नैन श्रवन मुख रसना, बिचले गुन पख इन्द्री अंग।

बिचली भांत गई गत प्रकृत, बिचल्यो संग भई और रंग॥२॥

प्रियतम के प्रेम में डूबी रहने वाली आत्मा के नेत्र मायावी दृश्यों को देखना पसन्द नहीं करते। कानों की रुचि सांसारिक बातों को सुनने में नहीं होती। मुख से कोई लौकिक बात भी करने की इच्छा नहीं होती। जिह्वा को भी स्वादिष्ट व्यन्जनों में कोई रस नहीं आता। उसकी अवस्था सत्व, रज, और तम से परे त्रिगुणातीत हो गयी होती है। वह दोनों पक्षों (प्रवृत्ति मार्ग तथा निवृत्ति मार्ग) से भिन्न राजा जनक वाली राह पर चल पड़ती है। उसकी सभी इन्द्रियाँ अपने विषयों के सेवन में जरा भी रुचि नहीं रखती हैं। उसका पूर्व स्वभाव तथा अवस्था भी बदल गये होती है। वह संसार का संग छोड़कर धनी के रंग में रंग गयी होती है।

द्रष्टव्य- प्रियतम के प्रेम में अन्तःकरण तथा इन्द्रियों की सारी प्रवृत्ति बदल जाती है। जिस प्रकार चन्द्रमा के गमनशील होने से शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष की स्थिति बन जाती है, उसी प्रकार कार्यक्षेत्र में कदम रखने वाला मनुष्य दो स्थितियों में स्वयं को रखना चाहता है, जिसे निवृत्ति मार्ग तथा प्रवृत्ति मार्ग कहते हैं। इसे दूसरे शब्दों में श्रेय (आत्मिक) तथा प्रेय (भौतिक) मार्ग भी कहते हैं। इसे ही पक्ष कहते हैं।

बिचली दिसा अवस्था चारों, बिचली सुध न रही सरीर।
 बिचल्यो मोह अहंकार मूलथें, नैनों नींद न आवे नीर॥३॥
 उसकी राह विधि और निषेध से रहित होने से सबसे भिन्न हो जाती है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, और तुरीय की अवस्था से भी भिन्न प्रेम की अवस्था होती है। वह अपने

प्रियतम के प्रेम के सागर में इस प्रकार डूबी रहती है कि उसे अपने शरीर की भी सुध नहीं रहती। मोह और अहंकार से उसका सम्बन्ध पूर्णतया टूट जाता है तथा नेत्रों की नींद भी समाप्त हो जाती है।

विशेष- एक सामान्य व्यक्ति संसार में रहते हुए कुछ विशेष नियमों का पालन करता है तथा कहीं उनका उल्लंघन भी करता है, जिसे विधि और निषेध कहते हैं। धनी के प्रेम में डूब जाने पर आत्मिक स्थिति इन दोनों से भिन्न हो जाती है। मोह-अहंकार से तो शरीर तथा ब्रह्माण्ड की रचना हुई होती है। इससे रहित होने का तात्पर्य इनके विकारों से पूर्णतया मुक्त रहने से है।

बिचल गई गम वार पार की, और अंग न कछु ए सान।

पिया रस में यों भई महामत, प्रेम मगन क्यों करसी गान॥४॥

श्री महामति जी कहते हैं कि प्रियतम के प्रेम में आत्मा की स्थिति ऐसी बन जाती है कि वैकुण्ठ-निराकार से परे बेहद की अनुभूति भी उसे फीकी लगने लगती है और हृदय में उसकी कोई भी इच्छा नहीं रहती, क्योंकि वह तो परमधाम के अनन्त आनन्द की रसानुभूति में डूबी होती है। इस तरह प्रेम में डूबी रहने वाली आत्मा भला उस आनन्द को शब्दों में कैसे गाकर बता सकती है।

प्रकरण ॥२५॥ चौपाई ॥२८१॥

राग मारु

खोज बड़ी संसार रे तुम खोजो साधो, खोज बड़ी संसार।

खोजत खोजत सतगुर पाइए, सतगुर संग करतार॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे महात्मा जनों ! इस संसार में सच्चिदानन्द परब्रह्म की खोज का बहुत अधिक महत्व है। खोज में लगे रहने पर ही सद्गुरु की प्राप्ति होती है, जिनकी कृपा एवं ज्ञान से उस प्रियतम परब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

भगत होत भगवान की, किव कर कहावें सिध साध।

गुन अंग इन्द्री के बस परे, तार्थें बांधत बंध अगाध॥२॥

इस संसार में भगवान (आदिनारायण, अक्षर ब्रह्म) के भक्त लोग कविताओं की रचना कर सिद्ध-महापुरुष तो

कहलाने लगते हैं, लेकिन वे तीनों गुणों (सत्व, रज, और तम) के वशीभूत होते हैं। उनका अपने मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार, एवं इन्द्रियों पर भी अधिकार नहीं होता। इस प्रकार तृष्णाओं के जाल में फँसकर वे स्वयं को माया के अनन्त बन्धनों में बाँध लेते हैं।

सतगुर क्यों पाइए कुली में, भेखे बिगारयो वैराग।

डिंभकाइए दुनियां ले डबोई, बाहेर सीतल मांहे आग॥३॥

इस घोर कलियुग में सद्गुरु की प्राप्ति बहुत कठिन है, क्योंकि सच्चे सन्तों के भेष में आडम्बरी लोगों ने वैराग्य को ही कलंकित कर दिया है। ब्रह्मज्ञान का प्रसार न होने से पाखण्ड का चारों ओर बोलबाला है, जिससे संसार के लोग गहन अन्धकार में भटक रहे हैं। ये आडम्बरी लोग उपर से दिखने में ब्रह्मानन्द में डूबे हुए शान्त मन वाले

नजर आते हैं, किन्तु इनके हृदय में विषय-विकारों की अग्नि जल रही होती है।

गोविन्द के गुण गाए के, तापर मांगत दान।

धिक धिक पड़ो ते मानवी, जो बेचत हैं भगवान॥४॥

ये लोग भगवान के गुण गाकर दान की माँग करते हैं। ऐसे लोगों को धिक्कार है जो भगवान का नाम बेचकर व्यक्तिगत स्वार्थ साधते हैं।

द्रष्टव्य- प्रायः सभी धार्मिक संस्थाओं का कार्यभार दान के द्वारा ही चलता है, किन्तु इस चौपाई में दान माँगने की निन्दा क्यों की गई है?

इसका विशेष कारण यह है कि मनुष्य को अपनी आवश्यकता से अधिक धन को मानवता के कल्याणार्थ दान अवश्य करना चाहिए, तभी धर्म का प्रचार सम्भव

है, किन्तु कोई व्यक्ति उस धन का दुरुपयोग अपने व्यक्तिगत लाभ के लिये करता है तो वह महापाप है। दान मिले हुए धन को समाज की सम्पत्ति मानकर परहित की भावना से उसका सदुपयोग करना चाहिए। इस चौपाई में उस दान की निन्दा की गयी है, जो कथा-चर्चा करके परमात्मा की सेवा या अपनी दक्षिणा के रूप में माँगा जाता है तथा जिसका उपयोग समाज के लिये न होकर पारिवारिक या व्यक्तिगत हित के लिये होता है।

उदर कारन बेचें हरी, मूढ़ों एही पायो रोजगार।

मारते मुख ऊपर, वाको ले जासी जम द्वार॥५॥

ये लोग अपना पेट भरने के लिये भगवान का नाम बेचते हैं। इन बुद्धिहीन लोगों को धन कमाने के लिये यही एक व्यवसाय मिला है। मृत्यु के पश्चात् यमदूत इनके मुख पर

डण्डे मारते हुए इन्हें यमराज के पास ले जायेंगे।

भावार्थ- धर्म की ओट में धन के दुरुपयोग से बहुत अनर्थ होता है। इस चौपाई द्वारा जीव के मुख पर डण्डे मारने की बात पौराणिक मान्यताओं की देन है, श्री जी की नहीं। इस कथन का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के पापपूर्ण कृत्य की सजा बहुत ही लज्जाजनक रूप में भोगनी पड़ती है।

वस्तुतः गीता तथा बृहदारण्यक उपनिषद् के कथनानुसार तो जीव एक शरीर को छोड़कर बहुत ही थोड़े समय में दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाता है। इतना अवश्य है कि दूसरी योनियों में या उसी योनी में इस प्रकार की सजा किसी न किसी रूप में मिलती है।

बैठत सतगुर होए के, आस करें सिष्य केरी।

सो डूबे आप सिष्यन सहित, जाए पड़े कूप अंधेरी॥६॥

जो समाज में सद्गुरु कहलाकर भी अपने शिष्यों से धन की चाहना करते हैं, ऐसे गुरुजन अपने शिष्यों सहित भवसागर रूपी कुँए में डूबते हैं।

भावार्थ— सार्वजनिक धन का दुरुपयोग करना या इसमें सहायता करना समान रूप से पाप है। सामान्य सी बात है कि यदि किसी का दिया हुआ दान पापमय कार्यों में प्रयुक्त हो रहा है, तो उस पाप में वह भी सहभागी होगा।

जो मांहेँ निरमल बाहेर दे न देखाई, वाको पारब्रह्मसों पेहेचान।

महामत कहे संगत कर वाकी, कर वाही सों गोष्ट ग्यान॥७॥

श्री महामति जी कहते हैं कि जो अन्दर से अति निर्मल हो, किन्तु ऊपरी वेश-भूषा आदि से अपनी पहचान न

देवे अर्थात् अपनी आन्तरिक स्थिति को छिपाये रखे ,
वही वास्तव में परब्रह्म की पहचान रखने वाला होता है।
ऐसे ब्रह्मज्ञानी की ही संगति करनी चाहिए तथा अध्यात्म
के गुह्य रहस्यों को जानना चाहिए।

प्रकरण ॥२६॥ चौपाई ॥२८८॥

किरंतन वेदान्त के

राग श्री जेतसी

वेदान्त के इन किरन्तनों में माया एवं ब्रह्म के धाम , स्वरूप, तथा लीला पर प्रकाश डाला गया है। वेदान्त के अधिकतर किरन्तन सूरत तथा हरिद्वार में उतरे हैं।

कहो कहो जी ठौर नेहेचल, वतन ब्रह्म को॥ टेक॥

तुम तीन सरीर तज भए ब्रह्म, पायो है पूरन ग्यान।

जो लों संसे ना मिटे, साधो तो लों होत हैरान॥१॥

श्री महामति जी वेदान्त के विद्वानों से पूछते हैं कि हे ज्ञानी जनों! आप यह बताने का कष्ट करें कि उस ब्रह्म का अखण्ड धाम कहाँ है? आपने वेदान्त के सूत्रों को पढ़कर सारे ज्ञान का स्वामी होने का दावा कर लिया है। आपने यह मान्यता गढ़ ली है कि जब हम स्थूल, सूक्ष्म,

कारण शरीर (प्रकृति) का परित्याग कर महाकारण की अवस्था में आते हैं, तो जीव भाव को छोड़कर साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं। जब तक आपके मन के संशय नहीं मिटेंगे, तब तक आपको शान्ति कदापि नहीं मिलेगी।

वेदांती संतो महंतो, तुम पायो अनुभव सार।

निज वतन जो आपनो, तुम सोई करो निरधार॥२॥

वेदान्त के चिन्तन में लगे हुए सन्तों—महन्तों! तुमने तो सर्वोच्च ज्ञान के सार का ही अनुभव कर लिया है। लेकिन अब तुम दृढ़तापूर्वक यह निश्चित करो कि तुम्हारा निज घर कहाँ है?

द्रष्टव्य— वेदान्त का अर्थ होता है वेद का निर्णय। महर्षि व्यास आदि मनीषियों ने ब्रह्म के विषय को जितना

समझा है, वह ज्ञान वेदान्त कहलाता है। किन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि वेदान्त में जो लिखा है, वह अन्तिम सत्य है। अन्तिम सत्य तो वेद और श्रीमुखवाणी है।

पेहेले पेड़ देखो माया को, जाको न पाइए पार।

जगत जनेता जोगनी, सो कहावत बाल कुमार॥३॥

जिस उपादान कारण माया से यह जगत उत्पन्न होता है, उसका पार कोई नहीं पाता। संसार को उत्पन्न करने वाली यह माया बालिका, कुमारी, या योगिनी ही कहलाती है।

भावार्थ— उपादान कारण उसे कहते हैं, जिससे कोई वस्तु बनायी जाये। मिट्टी से घड़ा बनाने में मिट्टी उपादान कारण तथा बनाने वाला कुम्भकार निमित्त कारण है। जिस प्रकार किसी बालिका, कुमारी, या योगिनी (योग

साधना करने वाली महिला) का पति न होने से सन्तान उत्पन्न नहीं होती, उसी प्रकार यह माया भी कुँवारी या योगिनी तो है किन्तु इसने संसार को उत्पन्न किया है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है कि "मायां तु प्रकृतिं विद्धि मायिनं तु महेश्वरं" अर्थात् माया को प्रकृति जानो तथा इसके स्वामी को ब्रह्म जानो। इसी प्रकरण की चौपाई १४ में कहा गया है कि "खेल ऐसे अनेक रचे, नार निरंजन राए" अर्थात् यह माया अव्याकृत में स्थित काल निरञ्जन की अर्धांगिनी है। कुमारी या बालिका कहे जाने का अभिप्राय यह है कि आदिनारायण तथा कालमाया की लीला सांसारिक स्त्री-पुरुषों की लीला से भिन्न होती है।

मात पिता बिन जनमी, आपे बंझा पिंड।

पुरुख अंग छूयो नहीं, और जायो सब ब्रह्मांड॥४॥

यह माया बिना माता-पिता के ही पैदा हुई है और स्वयं बन्ध्या कहलाती है। इसने अपने पति (आदिनारायण) को छुआ भी नहीं है और सारे ब्रह्माण्ड को उत्पन्न कर दिया है।

भावार्थ- यदि शक्तिमान ब्रह्म अनादि है , तो उसकी शक्ति (चैतन्य माया) भी अनादि मानी जायेगी। योगमाया ब्रह्म की तरह ही चेतन , अनादि, और अखण्ड है, इसलिये इसे (कालमाया को) बिना माता-पिता के ही उत्पन्न हुआ कहा गया है। "तूं कहा देखे इन खेल में, ए तो पड़यो सब प्रतिबिम्ब।" आदिनारायण के संकल्प मात्र से ही मोहतत्व में विक्षोभ (कम्पन) प्रारम्भ होता है, जिससे स्थूलता होनी प्रारम्भ हो जाती है, अर्थात्

महत्तत्त्व, तत्पश्चात् अहंकार की उत्पत्ति होती है। इसके पश्चात् सृष्टि रचना प्रारम्भ हो जाती है। इसे ही कहते हैं, बिना पुरुष (ब्रह्म) को छुए ही सृष्टि रचना करना।

आद अंत याको नहीं, नहीं रूप रंग रेख।

अंग न इन्द्री तेज न जोत, ऐसी आप अलेख॥५॥

इस माया का न तो आदि है और न अन्त है। इसका कोई रूप, रंग, या चिह्न भी नहीं है, और न अन्तःकरण है, और न इन्द्रियाँ हैं। इसमें तेज या ज्योति भी नहीं है। इस प्रकार यह पूर्णतया अदृश्य है।

भावार्थ— प्रकृति (कालमाया) का सूक्ष्मतम स्वरूप मोहतत्त्व है, जिसका ओर-छोर जानना मानवीय बुद्धि से सम्भव नहीं है। इसलिये इसे आदि-अन्त से रहित कहा गया है। इसकी सूक्ष्मता का आंकलन इसी से लगाया जा

सकता है कि काले आदि किसी भी रंग से इसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। यद्यपि सांख्य दर्शन में यह अवश्य कह दिया है कि "महदाख्यं कार्यं तत् मनः" अर्थात् मन, चित्त, एवं बुद्धि आदि की उत्पत्ति महत्तत्त्व से होती है, किन्तु अन्तःकरण एवं इन्द्रियों में चेतना जीव से आती है। जड़ प्रकृति में स्वतः चेतना होने से उसे अन्तःकरण तथा इन्द्रियों से रहित कहा गया है।

जल जिमी न तेज वाए, न सोहं सब्द आकास।

तब ए आद अनाद की, जब नहीं चेतन प्रकास॥६॥

जब पाँचों तत्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल, तथा पृथ्वी) की उत्पत्ति नहीं थी और न सोऽहं शब्द अस्तित्व में था, उस समय मोह सागर में आदिनारायण का प्रकटन भी नहीं हो पाया था, तब भी अनादि योगमाया

से प्रकट हुई यह कालमाया थी।

भावार्थ- अक्षर ब्रह्म के अनादि होने से उनके चारों अन्तःकरण (सत्स्वरूप, केवल, सबलिक, और अव्याकृत) भी अनादि होंगे। इनके अन्दर इनकी चारों शक्तियाँ (मूल माया, आनन्द योगमाया, चिद्माया, और सत् माया) भी अनादि होंगी। अव्याकृत के महाकारण (सबलिक के स्थूल) में ही कालमाया का मूल छिपा हुआ है।

प्रकृती पैदा करे, कई ऐसे इण्ड आलम।

ए ठौर माया ब्रह्म सबलिक, त्रिगुन की परआतम॥

किरंतन ६५/१०

अव्याकृत में स्थित सुमंगला शक्ति से मोहतत्व का प्रकटन होता है, जिसमें अव्याकृत पुरुष प्रतिबिम्बित होकर आदिनारायण का रूप ले लेता है। इसे ही चेतन

का प्रकाश होना कहते हैं। "यामें महाविष्णु मन, मन थें त्रिगुन" का कथन यही दर्शाता है। अनादि माया (सद्रूप) से कालमाया के प्रकट होने के कारण ही इसे "आदि अनादि की " कहा गया है अर्थात् अनादि माया (योगमाया) की यह आदिमाया (कालमाया) है। श्रीमुखवाणी में स्पष्ट रूप से कहा गया है— "उपज्यो मोह सुरत संचरी, खेल हुआ माया विस्तरी।"

इसी प्रकार मूल प्रकृति (ब्रह्म की सृष्टि इच्छा) से मोहतत्व (कालमाया) की उत्पत्ति कही गयी है। "मूल प्रकृति मोह अहं थे, उपजे तीनों गुन" का कथन इसी सन्दर्भ में है। सोऽहं शब्द का तात्पर्य आदिनारायण के उस भाव से है, जिसमें स्वप्न का स्वरूप (आदिनारायण) अपने मूल स्वरूप (अव्याकृत) जैसा आचरण करने का भाव लेता है। यह शब्द उस प्रसंग में

भी प्रयुक्त होता है, जिसमें जीव स्वयं को लौह-अग्निवत् ब्रह्म के तदोगत (समान) मानता है।

पढ़ पढ़ थाके पंडित, करी न निरने किन।

त्रिगुन त्रिलोकी होए के, खेले तीनों काल मगन॥७॥

बड़े-बड़े पण्डित धर्मग्रन्थों को पढ़-पढ़कर थक गये, लेकिन कोई भी माया की स्पष्ट पहचान नहीं बता सका। त्रिगुणात्मक ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव का स्वरूप भी माया में ही प्रकट हुआ। तीनों लोक पृथ्वी, स्वर्ग, और वैकुण्ठ भी माया से ही बने हैं। भूत, भविष्य, एवं वर्तमान इन तीनों कालों में माया की ही मग्न करने वाली लीला चलती रही है।

विष्णु ब्रह्मा रुद्र जनमें, हुई तीनों की नार।

निरलेप काहू न लेपहीं, नारी है पर नाही आकार॥८॥

मोह सागर में प्रकट हुए आदिनारायण के संकल्प से ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव का जन्म हुआ। इनकी अर्धांगिनी सरस्वती, लक्ष्मी, एवं पार्वती के रूप में माया ही लीला कर रही है। यह माया ऐसी निर्लेप (लिप्त या आसक्त न होना) है कि किसी के भी बन्धन में नहीं बन्धती। नारी होते हुए भी इसका आकार नहीं है।

भावार्थ- शक्ति और शक्तिमान एक-दूसरे से अभिन्न हैं। इन्हें आलंकारिक रूप से पति-पत्नी के दृष्टान्त से कहा जाता है। योगमाया भी ब्रह्म से अभिन्न है , किन्तु कालमाया आदिनारायण की वह महामाया है जो सभी प्राणियों को अपने वश में किये रहती है। प्रकृति का तात्पर्य ही है पुरुष को अपनी ओर आकर्षित कर बाँधे

रहना। यद्यपि ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव के अन्दर जो चैतन्य जीव है, वही जीव सरस्वती, लक्ष्मी, एवं पार्वती के अन्दर भी है, किन्तु इनके स्वरूप को माया का रूप कहने का भाव यह है कि ये तीनों माया (प्रकृति) की तरह ही तीनों देवताओं को अपने स्नेह पाश के बन्धन में बाँधे रखती हैं।

गगन पाताल मेर सिखरों, अष्टकुली बनाए।

पचास कोट जोजन जिमी, सागर सात समाए॥९॥

इस माया से ही यह अनन्त आकाश बना है। अष्टावरण (पाँच तत्व+मन+बुद्धि+अहंकार) युक्त इस ब्रह्माण्ड में सुमेरु पर्वत जैसे पहाड़ों की ऊँची-ऊँची चोटियों तथा पाताल लोक की रचना भी इसी ने की है। पचास करोड़ योजन वाली इस पृथ्वी तथा सातों सागरों की रचना भी

इसी की देन है।

द्रष्टव्य- एक योजन में चार कोस होते हैं और एक कोस में ३.२ कि.मी.। इस प्रकार ५० करोड़ योजन में $५० \times ४ \times ३ = ६००$ करोड़ अर्थात् ६ अरब कि.मी. होंगे, जो विज्ञान या वैदिक धर्मग्रन्थों को स्वीकार्य नहीं है। पृथ्वी का परिमाण ५० करोड़ योजन कहना भागवतकार का कथन है, अक्षरातीत का नहीं। इसमें भागवत-पुराण के कथनों का मात्र उद्धरण दिया गया है।

तेज तिमर यामें फिरें, रवि ससि तारे ना थिर।

सेस नाग कर ब्रह्मांड, ले धरयो वाके सिर॥१०॥

इस मायावी ब्रह्माण्ड में कहीं उजाला होता है, तो कहीं अन्धेरा। सबको प्रकाश देने वाले सूर्य, तारे, और चन्द्रमा हमेशा गतिमान रहते हैं। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड शेष के

आधार में स्थित है।

भावार्थ- उपग्रह चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है, तो पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। सूर्य भी अपनी परिधि पर गतिमान रहता है। इस ब्रह्माण्ड में अणु – परमाणु, सौर-मण्डल, एवं आकाशगंगाएं किसी न किसी रूप में सभी गतिमान हैं। शेषनाग के सिर पर पृथ्वी का स्थित होना पौराणिक कथन है, अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी का नहीं।

प्रश्न यह है कि जब प्राणियों की उत्पत्ति ही नहीं हुई थी, उस समय शेषनाग का जन्म कहाँ से हो गया जो इतनी बड़ी पृथ्वी को धारण करते?

वस्तुतः शेष का अर्थ होता है शून्य। शून्य का तात्पर्य निराकार आकाश से है। इस आकाश में सभी ग्रह-नक्षत्र आकर्षण शक्ति द्वारा स्थित हैं। यदि पृथ्वी का बोझ

शेषनाग उठाये रहते हैं, तो पृथ्वी से १३ लाख गुना बड़े सूर्य का बोझ कौन सा नाग या सर्प उठाये रहता है।

देव दानव रिखि मुनि, ब्रह्म ग्यानी बड़ी मत।

सास्त्र बानी सबद मात्र, ए बोली सबे सरस्वत॥११॥

सभी देवता, दानव, ऋषि, मुनि, तथा अति श्रेष्ठ विचारों वाले ब्रह्मज्ञानी भी इस माया के अधीन हैं। धर्मशास्त्रों एवं सन्तों की वाणियाँ भी इसी माया की बुद्धि से उत्पन्न हुई हैं।

बरन चारों विद्या चौदे, ए पढ़ाए भली पर।

कर आवरण मोह नींद को, खेलावे नारी नर॥१२॥

इस मायावी जगत में चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्र) के लोग चौदह विद्याओं (चार वेद, अर्थ वेद,

धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, आयुर्वेद, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष, धर्मशास्त्र, भूत विद्या, तथा ब्रह्म विद्या) का बहुत अच्छी तरह से अध्ययन तो करते हैं, लेकिन माया ने सबको अज्ञान रूपी नींद के आवरण में इस तरह से फँसाकर रखा है कि कोई भी स्त्री-पुरुष इसके बन्धन से निकल नहीं सकता है।

भावार्थ- यद्यपि सभी विद्याओं के मूल चारों वेद हैं, किन्तु गणना रूप में उनको यहाँ लिखा गया है। अथर्ववेद ऋग्वेद का उपवेद है, जिसे शिल्प शास्त्र कहते हैं। धनुर्वेद यजुर्वेद का उपवेद है, जिसे क्षत्र विद्या कहते हैं। गान्धर्ववेद में गायन विद्या का समावेश है। आयुर्वेद अथर्ववेद का उपवेद है, जिसमें चिकित्सा शास्त्र है। ब्राह्मण (शतपथ आदि) ग्रन्थों को कल्प या इतिहास-पुराण कहते हैं। निरुक्त को देव-विद्या, ज्योतिष को

नक्षत्र-विद्या, प्राणि शास्त्र को भूत -विद्या, तथा ब्रह्म सम्बन्धी ग्रन्थों को ब्रह्म-विद्या कहते हैं।

लाख चौरासी जीव जंत, ए बांधे सबे निरवान।

थिर चर आद अनाद लों, ए भरी सो चारों खान॥१३॥

इस माया ने चौरासी लाख योनियों के सभी प्राणियों को अपने बन्धन में बाँध रखा है। ये सभी प्राणी दो प्रकार के हैं- एक चलने वाले, और दूसरे स्थिर रहने वाले जैसे- पेड़-पौधे। प्राणियों की उत्पत्ति चार प्रकार से होती है (१. अण्डज- पक्षी, छिपकली, सर्प इत्यादि। २. पिण्डज- मनुष्य, बन्दर, गाय-भैंस इत्यादि। ३. उद्भिज- ये पृथ्वी से अँकुरित होते हैं। सभी वनस्पतियाँ इसी के अन्तर्गत हैं। ४. स्वेदज- ये पसीने या गन्दगी द्वारा उत्पन्न होते हैं, जैसे- जूँ, खटमल, मच्छर

इत्यादि)। अनादि योगमाया से प्रकट होने वाली यह कालमाया सभी प्राणियों के अन्दर लीला कर रही है।

पांच तत्व चौदे लोक, पाउ पल में उपजाए।

खेल ऐसे अनेक रचे, नार निरंजन राए॥१४॥

चौदह लोकों का यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पाँच तत्वों का बना हुआ है। काल निरञ्जन की अर्धांगिनी यह माया एक पल के चौथाई हिस्से में ही इस ब्रह्माण्ड जैसे अनेक ब्रह्माण्डों की रचना कर देती है।

ए काली किन पाई नहीं, सब छाया में रहे उरझाए।

उपजे मोह अहंकार थें, सो मोहै में भरमाए॥१५॥

जीव के हृदय में काली रात की तरह अज्ञानता का अन्धकार करने वाली इस माया की पहचान कोई भी

नहीं कर सका। सभी लोग इसकी छाया अष्टावरण वाले इस ब्रह्माण्ड (स्वर्ग, वैकुण्ठ) तथा महत्तत्त्व में ही फँसे रह गये। मोह और अहंकार से प्रकट होने वाले जीव भला उससे पार कैसे हो सकते हैं, वे उसी में उलझकर रह गये।

भावार्थ- माया को "काली रात" कहने का आशय यह है कि जिस प्रकार रात्रि में कोई वस्तु स्पष्ट रूप से दिखायी नहीं पड़ती, उसी प्रकार हृदय में माया की तृष्णा रहने पर परम सत्य का साक्षात्कार सम्भव नहीं है।

अष्टावरण युक्त चौदह लोक के ब्रह्माण्ड को "छाया" इसलिये कहा गया है कि जिस प्रकार किसी व्यक्ति की छाया मात्र उसका आभास देती है, उसका वास्तविक रूप नहीं होती, उसी प्रकार यह ब्रह्माण्ड भी मोहतत्त्व से उत्पन्न एक छाया की तरह है। प्रतिबिम्ब और छाया में

अन्तर होता है। प्रतिबिम्ब तो बिम्ब जैसा हुबहू प्रतीत होता है, किन्तु छाया नहीं। समान लम्बाई के दो व्यक्तियों की छाया तो समान प्रतीत होती है, किन्तु प्रतिबिम्ब में भेद होता है।

बुध तुरिया दृष्ट श्रवणा, जेती गम वचन।

उतपन सब होसी फना, जो लों पोहोंचे मन॥१६॥

बुद्धि से जिसकी विवेचना होती है, चित्त से जिसका चिन्तन होता है, आँखों से जो कुछ भी दिखायी देता है, कानों से जो कुछ भी सुना जाता है, मन तथा वाणी की जहाँ तक पहुँच है, वहाँ तक सब कुछ उत्पन्न होने वाला एवं विनाश को प्राप्त होने वाला है।

ऊपर तले माहें बाहेर, दसो दिसा सब एह।

सो सब्द काहूँ न पाइए, कहाँ ठौर अखण्ड घर जेह॥१७॥

ऊपर-नीचे, अन्दर-बाहर, दशों दिशाओं में माया का नश्वर जगत है। उस अखण्ड घर परमधाम का ज्ञान देने वाले शब्द तो किसी के पास सुनायी ही नहीं पड़ते।

तो कह्यो न जाए मन वचन, ना कछू पोहोंचे चित।

बुधें सुनी न निसानी श्रवनों, तो क्यों कर जाइए तित॥१८॥

जिस परमधाम के विषय में मन और वाणी से कुछ कहा नहीं जाता और न चित्त की वहाँ पहुँच है, बुद्धि भी उसके विषय में कोई विवेचना नहीं कर पाती, कानों से उसके सम्बन्ध में संकेत रूप में भी सुना नहीं जा सकता, तो भला वहाँ जाना कैसे सम्भव है।

वेदांती माया को यों कहें, काल तीनों जरा भी नाहें।

चेतन व्यापी जो देखिए, सो भी उड़ावें तिन माहें॥१९॥

शंकराचार्य मत का अनुसरण करने वाले वेदान्त के विद्वानों का कहना है कि भूतकाल में कभी भी माया थी ही नहीं, वर्तमान में भी नहीं है, तथा भविष्य में भी नहीं होगी। एक ब्रह्म के सिवाय किसी अन्य का अस्तित्व वे मानते ही नहीं। चैतन्य जीव, जिसकी चेतना सम्पूर्ण शरीर में व्यापक होती है, उसके भी अस्तित्व को वे नकार देते हैं।

ना कछु ना कछु ए कहें, ओ सत-चिद-आनंद।

असत सत को ना मिले, ए क्यों कर होए सनमंध॥२०॥

ये बारम्बार कहते हैं कि सब कुछ ब्रह्म ही है। ब्रह्म के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है। किन्तु प्रश्न यह है कि

परब्रह्म तो सत्, चिद्, और आनन्द का स्वरूप है, जबकि यह जगत् असत्, जड़, और दुःख का रूप है। वस्तुतः सत्य और झूठ का मेल नहीं हो सकता, अर्थात् इस झूठे जगत् में परब्रह्म विराजमान होकर इस जगत् को ब्रह्मरूप नहीं बना सकता। इस प्रकार इस मिथ्या जगत् के कण-कण में ब्रह्म का स्वरूप मानना एक बहुत बड़ी भ्रान्ति है।

ए जो व्यापक आत्मा, परआत्म के संग।

क्यों ब्रह्म नेहेचल पाइए, इत बीच नार को फंद॥२१॥

वेदान्त के ग्रन्थों में जिसे "व्यापक आत्मा" कहकर वर्णित किया गया है, वस्तुतः वह परमधाम के लिये प्रयुक्त होता है। परमधाम की प्रत्येक वस्तु आत्मा का स्वरूप है। आत्मा का मूल तन परात्म है, जिससे वह

अपने प्रियतम परब्रह्म के साथ लीला करती है। परमधाम में विराजमान अखण्ड परब्रह्म के उस स्वरूप को इस माया के फन्दे में कैसे माना जा सकता है।

भावार्थ- उपनिषद आदि ग्रन्थों में योगमाया तथा परमधाम में सर्वत्र व्यापक चेतन तत्त्व को ही "आत्मा" शब्द से सम्बोधित किया गया है। कहीं-कहीं क्षर जगत में व्यापक स्वरूप वाले आदिनारायण को भी "व्यापक आत्मा" कहा गया है, जिनका मूल तन (परात्म) सुमंगला पुरुष है। नवीन वेदान्त में आदिनारायण को ही ईश्वर कहा गया है, जिनकी चेतना का प्रतिबिम्ब चिदाभास (जीव) के रूप में सभी प्राणियों में स्थित है।

निबेरा खीर नीर का, महामत करे कौन और।

माया ब्रह्म चिन्हाए के, सतगुर बतावें ठौर॥२२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि दूध और पानी अर्थात् ब्रह्म और माया के वास्तविक स्वरूप को भला कौन दर्शा सकता है। यह शोभा तो सद्गुरु की है, जो माया-ब्रह्म की पहचान बताकर निज घर की राह बताते हैं।

प्रकरण ॥२७॥ चौपाई ॥३१०॥

राग श्री आसावरी

जन्मना ब्राह्मण कहलाने वाले वेदान्ती विद्वानों को सम्बोधित करते हुए इस प्रकरण में कहा गया है।

मैं पूछों पांडे तुम को, तुम कहो करके विचार।

सास्त्र अर्थ सब लेवहीं, पर किने न कियो निरधार॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे पाण्डे जी! मैं वेदान्त के सम्बन्ध में आपसे कुछ पूछ रहा हूँ। आप उसके विषय में अच्छी तरह विचार करके बताइए। यद्यपि शास्त्रों का अर्थ तो प्रत्येक विद्वान करता है, किन्तु कोई भी वास्तविक सत्य को नहीं दर्शा पाता।

द्रष्टव्य— चारों वेदों के ज्ञाता को चतुर्वेदी, तीन वेदों के ज्ञाता को त्रिवेदी, दो वेदों के ज्ञाता को द्विवेदी, एवं एक वेद के ज्ञाता को पाठक कहते हैं। इनका विकृत रूप

चौबे, तिवारी, दुबे, और पाण्डेय या पाण्डे हो गया है।

माया मोह अहंकार थे, ए सबे उत्पन।

अहंकार मोह माया उड़ी, तब कहां है ब्रह्म वतन॥२॥

माया, मोह, अहंकार से इस नश्वर जगत् की उत्पत्ति हुई है। मेरा यह प्रश्न है कि महाप्रलय में जब अहंकार , मोहतत्व, तथा माया का लय हो जायेगा, तब ब्रह्म का निवास (धाम) कहाँ होगा?

कोई कहे ब्रह्म आत्मा, कोई कहे पर आत्म।

कोई कहे सोहं सब्द ब्रह्म, या बिध सब को अगम॥३॥

किसी का कथन है कि आत्मा ही ब्रह्म का स्वरूप है, तो कोई परात्म को परब्रह्म का स्वरूप मानता है। कोई अनुभव में आने वाले सोऽहम् शब्द को ही ब्रह्म माने रहता

है। इस प्रकार ब्रह्म सबकी पहुँच से परे ही रहता है।

कोई कहे ए सबे ब्रह्म, रहत सबन में व्याप।

कोई कहे ए सबे छाया, नाहीं यामें आप॥४॥

किसी का कहना है कि ब्रह्म सम्पूर्ण जगत के अन्दर ओत-प्रोत होकर व्यापक हो रहा है। इस प्रकार यह सारा जगत ही ब्रह्मरूप हो रहा है। किसी का यह भी वक्तव्य है कि यह सारा संसार महामाया की छाया है। इसमें वह अविनाशी ब्रह्म नहीं है।

कोई कहे ओ निरगुन न्यारा, रहत सबन से असंग।

कोई कहे ब्रह्म जीव ना दोए, ए सब एकै अंग॥५॥

कोई कहता है कि ब्रह्म तो सबसे निर्लिप्त रहने वाला निर्गुण है। किसी का कहना है कि जीव और ब्रह्म दो नहीं,

बल्कि एक ही अद्वैत स्वरूप हैं।

भावार्थ- सामान्यतया ब्रह्म को निर्गुण कहने से निराकार और सगुण कहने से साकार माना जाता है, जबकि वास्तविकता ऐसी नहीं है। प्रत्येक पदार्थ किसी न किसी दृष्टि से सगुण और निर्गुण होता है। ब्रह्म में अनन्त ज्ञान, बल, और आनन्द का गुण है, इसलिये उसे सगुण कहते हैं। जगत् के गुण असत्, जड़, और दुःख ब्रह्म में नहीं हैं, इसलिये वह निर्गुण है। जीव और ब्रह्म को एक मानने का कथन आदिशंकराचार्य के मतानुयायियों का है। वेदान्त के मूल सूत्रों में ऐसा कोई भी कथन नहीं है।

कोई कहे ए तेज पुंज, याकी किरना सबे संसार।

कोई कहे याको अंग न इन्द्री, निरंजन निराकार॥६॥

कोई कहता है कि परमात्मा तेज का पुञ्ज है और उससे

निकलने वाली किरणों के समान सभी ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती है। किसी का कहना है कि वह तो पूर्णतया निराकार-निरञ्जन है। न तो उसके अंग-प्रत्यंग हैं और न इन्द्रियाँ हैं।

भावार्थ- ब्रह्म जगत का निमित्त कारण है , उपादान कारण नहीं। किरणों के समान जगत को मानने पर यह प्रश्न खड़ा होता है कि किरणें भी तो तेज पुञ्ज का ही स्वरूप होती हैं। किन्तु यह जगत ब्रह्म के सत्, चित्, आनन्द गुणों के विपरीत असत्, जड़, और दुःखमयी क्यों है?

निरञ्जन का आशय है- हाथ-पैर आदि अवयवों से रहित होना। यही अभिप्राय निराकार का भी है कि ब्रह्म की कोई गोल, चौकोर, छोटी, या बड़ी किसी भी प्रकार की आकृति नहीं बन सकती।

कोई कहे ओ पुरुख उत्तम, और ए सबे सुपन।

कोई कहे ए अलख अलहा, कोई कहे सब सुन्न॥७॥

कोई कहता है कि एकमात्र उत्तम पुरुष ही परमात्मा है और यह सम्पूर्ण जगत स्वप्न के समान मिथ्या है। किसी का कहना है कि वह मन एवं वाणी से परे अलख, अगोचर (अलभ्य या दिखायी न देने वाला) है। किसी (बौद्धों) का यह भी मत है कि शून्य के सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं।

द्रष्टव्य— बौद्ध मतानुयायी यह मानते हैं कि शून्य से ही यह जगत प्रकट होता है और उसी में लीन हो जाता है। शून्य के अतिरिक्त कोई अनादि सृष्टिकर्ता परमात्मा नहीं है।

कोई कहे ओ सदा सिव, और न कोई देव।

कोई कहे आद नारायन, करत कमला जाकी सेव॥८॥

किसी का कहना है कि सदाशिव ही परमात्मा है। उनके अतिरिक्त अन्य कोई उपास्य देव नहीं है। कोई कहता है कि आदिनारायण (महाविष्णु, शेषशायी नारायण, प्रतिबिम्बित प्रणव, हिरण्यगर्भ) के समान कोई भी नहीं है। लक्ष्मी जी इन्हीं की सेवा में तल्लीन रहा करती हैं।

विशेष- शैव मत के लोग सदाशिव को परमात्मा मानते हैं तथा वैष्णव आदिनारायण को। इसी प्रकार शाक्त सम्प्रदाय के अनुयायी आदिशक्ति को ही सर्वोपरि मानते हैं।

कोई कहे आदे आद माता, और न कोई क्यांहे।

सिव नारायन सबे यार्थें, या बिन कछुए नाहें॥९॥

कोई कहता है कि आदिशक्ति (आदि माता) ही सर्वोपरि है। इनसे ऊपर अन्य कोई भी नहीं है। इसी आदिशक्ति से शिव, नारायण आदि की उत्पत्ति हुई है। इनके बिना कुछ भी नहीं है।

भावार्थ- सबलिक ब्रह्म के सूक्ष्म में स्थित चिदानन्द लहरी को शंकराचार्य जी ने अपने "सौन्दर्य लहरी" नामक ग्रन्थ में परब्रह्म की महारानी कहा है। इसी चिदानन्द लहरी का व्यक्त स्वरूप अव्याकृत के महाकारण (सबलिक के स्थूल) में सुमंगला शक्ति है, जो पुरुष को स्वप्न द्रष्टा कर देती है। इसी की कला रूप स्थूल में रोधिनी शक्ति है, जो मोहसागर को उत्पन्न करती है। इसी मोहसागर में आदिनारायण का प्रकटन होता है जिनके संकल्प से ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ईश्वर, और सदाशिव का प्रकटन होता है। इसलिये शाक्त

मतानुयायी रोधिनी या सुमंगला शक्ति को ब्रह्मा, विष्णु, और शिव से भी श्रेष्ठ कहते हैं।

कोई कहे याको करम करता, सब बंधे आवें जाएं।

तीनों गुन भी करमें बांधे, सो फेर फेर फेरे खाएं॥१०॥

कुछ लोगों का कहना है कि कर्म ही सृष्टि का कर्ता है। इसी कर्म के बन्धन में फँसे हुए संसार के प्राणी जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहते हैं। तीनों गुण – सत्व, रज, और तम- भी कर्म के बन्धन में हैं, इसलिये सभी प्राणी भवसागर के चक्र में भटकते रहते हैं।

भावार्थ- परब्रह्म को लौकिक कर्म का कर्ता नहीं माना जा सकता क्योंकि इसी के कारण तो सभी भव-बन्धन में फँसे हैं। सबसे निर्लेप रहने वाला ब्रह्म कर्म बन्धन में क्यों फँसेगा?

तीनों गुणों का तात्पर्य ब्रह्मा, विष्णु, और शिव से नहीं है, क्योंकि इस चौपाई में उन्हें भव-बन्धन में भटकाने वाला कहा गया है, जबकि भगवान शिव एवं विष्णु जी अक्षर ब्रह्म की पञ्चवासनाओं में से हैं। सत्व गुण में ज्ञान, रजो गुण में क्रिया, एवं तमोगुण में स्थिरता की प्रवृत्ति होती है, इसलिये इसे कर्म-बन्धन में माना गया है। यह कथन सांख्य एवं मीमांसा मतानुयायियों का है।

कोई कहे ए सबे काल, करम सक्त उपाए।

खेलावे अपने मुख में, आखिर दोऊ को खाए॥११॥

कोई कहता है कि यह सारा जगत काल का ही पसारा है। काल से ही कर्म (क्रिया शक्ति) एवं शक्ति (ज्ञान शक्ति) का प्रकटन होता है। काल के ही अधीन रहकर ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति द्वारा संसार का कार्यभार

(उत्पत्ति, पालन, संहार) चलता रहता है। पुनः महाप्रलय में ब्रह्माण्ड के साथ ही शक्ति (ज्ञान शक्ति) एवं कर्म भी काल में लीन हो जाते हैं।

भावार्थ- वैशेषिक दर्शन में जिस "काल" तत्त्व की व्याख्या की गयी है, वह ब्रह्म न होकर जड़ तत्त्व है। अथर्ववेद के काल सूक्त में ब्रह्म को "काल" शब्द से सम्बोधित करने का आशय सृष्टि को लीन करने के कारण है। वस्तुतः वैशेषिक दर्शन के "काल" एवं अथर्ववेद के "काल" दोनों ही अलग-अलग हैं। कलियुग में मतवादियों ने दोनों को एक कहकर भ्रान्ति पैदा कर दी है। अथर्ववेद में सृष्टि कार्य में संलग्न दो शक्तियों (ज्ञान शक्ति एवं क्रिया शक्ति) का वर्णन किया गया है। यहाँ पर वही प्रसंग उद्धृत है। यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि ज्ञान के बिना कोई भी कार्य नहीं हो सकता।

कोई करे काल को संजम, कोई दिन काया बचाए।

कोई राते करामतें, यों सब निगम नचाए॥१२॥

कुछ लोग हठयोग की क्रियाओं से काल पर अधिकार प्राप्त करके अपने शरीर को बहुत लम्बे समय तक मृत्यु से बचाये रखने का प्रयास करते हैं, तो कुछ लोग अपनी सिद्धियों द्वारा चमत्कार दिखाया करते हैं। इस प्रकार सभी लोग अपनी धर्मग्रन्थों के इशारों पर नाचा करते हैं।

भावार्थ- प्राणायाम और खेचरी मुद्रा के अभ्यास तथा धोती, बस्ति आदि क्रियाओं से शरीर की उम्र बढ़ जाती है। इसी प्रकार ध्यान और समाधि द्वारा पञ्चभूतों पर विजय प्राप्त करके महाप्रलय तक मृत्यु के बन्धन से मुक्त रहा जा सकता है। इसे ही इस चौपाई में काल का संयम करना कहा गया है। धर्मग्रन्थों के इशारों पर नाचने का तात्पर्य यह है कि योग दर्शन, वेदान्त आदि ग्रन्थों में

परब्रह्म को पाने का मार्ग तो बताया ही गया है, साथ-साथ सिद्धियों के चमत्कारों का भी वर्णन कर दिया गया है, जिनमें लोग फँस जाया करते हैं और परम तत्त्व से वंचित हो जाते हैं।

पढ़े गुनें विकार न छूटे, आग न अंग थें जाए।

आप वतन चीन्हे बिना, तो लों जल बिन गोते खाए॥१३॥

ये लोग धर्मग्रन्थों को पढ़ते हैं और उनका गहन चिन्तन भी करते हैं, किन्तु काम, क्रोध, लोभ आदि विकारों को छोड़ नहीं पाते। इनके हृदय से मायावी तृष्णा की आग नहीं बुझ पाती। निज स्वरूप तथा निज घर की पहचान हुए बिना, इन्हें बिना जल वाले इस भवसागर में डूबते-उतराते रहना पड़ता है, अर्थात् ऊँची-नीची योनियों में भटकना पड़ता है।

ए संसे सब समझाए के, कोई अंग करे उजास।

सो गुरु मेरा मैं सेवों ताए, सुध चित होए दास॥१४॥

जो इन उपरोक्त संशयों को दूर कर देगा ओर मुझे अच्छी तरह से समझाकर मेरे हृदय में ज्ञान का उजाला कर देगा, वही मेरा गुरु होगा। मैं शुद्ध चित्त से उसका दास बनकर उसकी सेवा करूँगा।

मैं तो खोजों सुध पार की, कोई न देवे बताए।

मोह अहंकार के बीच में, सब इतहीं रहे उरझाए॥१५॥

मैं तो निराकार के पार के ज्ञान की खोज में हूँ, लेकिन मुझे कोई भी वहाँ का ज्ञान नहीं देता है। आप सभी माया से उत्पन्न होने वाले मोह-अहंकार के ही बीच में उलझे हुए हैं।

समझे बिना सुख पार को नाहीं, जो उदम करो कई लाख।

तोलों प्रेम न उपजे पूरा, जो लों अंदर न देवे साख॥१६॥

यथार्थ बोध हुए बिना अखण्ड का सुख नहीं मिल सकता, भले ही आप लाखों प्रयास कर लो। जब तक सत्यता के सम्बन्ध में अन्तरात्मा से साक्षी नहीं मिलती, तब तक प्रियतम के प्रति शुद्ध प्रेम भी उत्पन्न नहीं होता।

भावार्थ— वास्तविक ज्ञान हुए बिना कर्मकाण्ड के लाखों मार्ग अपनाने पर भी प्रियतम की प्राप्ति नहीं होती। परब्रह्म के स्वरूप एवं धाम सम्बन्धी शुद्ध ज्ञान मिलने पर ही हृदय में सन्तोष होता है एवं सच्चा प्रेम प्रकट होता है।

ए धोखे गुर सर्वग्यन भाने, जिन पाया सब विवेक।

बाहेर उजाला करके, आखिर देखावें एक॥१७॥

क्षर से लेकर अक्षरातीत तक सभी तत्वों का साक्षात्कार

करने वाला सर्वज्ञ सद्गुरु ही सारे संशयों को हटाता है। वह यहाँ से परमधाम तक के ज्ञान का उजाला करके एक अक्षरातीत प्रियतम की पहचान करा देता है।

महामत सो गुर कीजिए, जो बतावे मूल अंकूर।

आतम अर्थ लगावहीं, तब पिया वतन हजूर॥१८॥

श्री महामति जी कहते हैं कि एकमात्र उसे ही गुरु बनाना चाहिए, जो आत्मा के निज स्वरूप तथा निसबत (मूल सम्बन्ध) की पहचान करावे। ऐसा होने पर ही प्रियतम के परमधाम का दीदार हो सकेगा।

द्रष्टव्य— सद्गुरु तथा गुरु में सूक्ष्म अन्तर होता है। वस्तुतः मूल सद्गुरु तो अक्षरातीत श्री राज जी ही हैं, इसलिये कहा गया है— "सद्गुरु मेरे स्याम जी"। उनका आवेश स्वरूप जिस आत्मा के धाम हृदय में विराजमान

होता है, उन्हें भी "सद्गुरु" की शोभा मिलती है, जैसे श्री देवचन्द्र जी तथा श्री महामति जी को यह शोभा मिली। "सतगुरु क्यों पाइए कुली में " तथा "झूठी छूटे सांची पाइए, सतगुरु लीजे रिझाई" का कथन इसी तथ्य की ओर है।

सद्गुरु के अखण्ड ज्ञान को ग्रहण कर दूसरों को उस राह पर ले जाने वाले "गुरु" कहलाते हैं। पूर्वोक्त चौपाई में यही भाव व्यक्त किया गया है।

प्रकरण ॥२८॥ चौपाई ॥३२८॥

राग रामकली

संत जी सुनियो रे, जो कोई हंस परम।

मैं पूछत हों परआतमा, मेरा भानो एही भरम॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सन्त जनों! जो आपमें परमहंस हो, मैं उनसे परात्म के सम्बन्ध में पूछना चाहता हूँ। मैं उनसे अपने संशयों की निवृत्ति चाहता हूँ।

विशेष- महामति जी के अन्दर वस्तुतः कोई भी संशय नहीं है। इस प्रकार की भाषा शिष्टाचार एवं विनम्रता को दर्शाने के लिये कही गयी है।

जिन जानो विवादे पूछे, मैं जग्यासू करों खोज।

जो लों धोखा न मिटे, साधो तो लों न छूटे बोझ॥२॥

आप अपने मन में इस तरह की बात मत सोचिए कि मैं आप लोगों से यह प्रश्न वाद-विवाद करने के उद्देश्य से पूछ रहा हूँ। मैं सत्य का जिज्ञासु हूँ, इसलिए उसकी खोज में मैं पूछ रहा हूँ। जब तक मन के संशय न मिट जायें, तब तक मन का बोझ हटता नहीं है।

कोई कहे ए भरम की बाजी, ज्यों खेलत कबूतर।

तो कबूतर जो खेल के, सो क्यों पावें बाजीगर॥३॥

कोई कहता है कि यह माया का संसार वैसे ही झूठा है, जैसे जादूगर द्वारा कबूतर के माध्यम से दिखाया हुआ खेल झूठ होता है। जिस प्रकार कबूतर को जादूगर का ज्ञान नहीं होता है, उसी प्रकार जीव सृष्टि भी उस अविनाशी ब्रह्म को नहीं जान पाती जिसकी इच्छा से यह झूठा खेल बना होता है।

कोई कहे ए ब्रह्म की आभा, आभा तो आपसी भासे।

तो ए आभा क्यों कहिए ब्रह्म की, जो होत हैं झूठे तमासे॥४॥

कोई कहता है कि यह जगत् उस तेजोमय ब्रह्म की आभा है। इस विषय में मेरा यह कहना है कि आभा तो तेज का ही स्वरूप होती है। इस प्रकार इस जगत को ब्रह्मरूप होना चाहिए। यदि यह संसार तेजोमय ब्रह्म की आभा के समान होता, तो यहाँ जन्म-मरण और सुख-दुःख का यह झूठा खेल क्यों चलता?

कोई कहे ए कछुए नहीं, तो ए भी क्यों बनि आवे।

जो यामें ब्रह्म सत्ता न होती, तो अधखिन रहने न पावे॥५॥

किसी का यह भी कथन है कि यह संसार तो कुछ है ही नहीं, इसे मात्र कल्पना ही समझना चाहिए। लेकिन ऐसा कहना कदापि उचित नहीं है। यदि इस नश्वर जगत में

ब्रह्म की सत्ता न हो, तो आधे क्षण के लिये भी इसका अस्तित्व नहीं रह सकता।

कोई कहे ए सबे ब्रह्म, तब तो अग्यान कछुए नाहीं।

तो खट सास्त्र हुए काहे को, मोहे ऐसी आवत मन माहीं॥६॥

कोई कहता है कि यह सम्पूर्ण जगत ही ब्रह्म का स्वरूप है। मेरे मन में ऐसा आ रहा है कि ब्रह्म तो प्रकृष्ट ज्ञान स्वरूप है (प्रज्ञानं ब्रह्म)। जगत के ब्रह्मरूप होने पर तो एक भी व्यक्ति को अज्ञानी होना ही नहीं चाहिए, फिर ये छः शास्त्र किसके लिये बनाये गये हैं?

कोई कहे ए पुरुख प्रकृती, मिल रचियो खेल एह।

तो सूरज दृष्टे क्यों रहे अंधेरी, ए भी बड़ा संदेह॥७॥

कोई कहता है कि पुरुष तथा प्रकृति के मिलने से यह

खेल बना है। मेरे मन में यह बहुत बड़ा सन्देह पैदा हो रहा है कि क्या सूर्य के उगने पर भी अन्धकार रह सकता है?

भावार्थ- सत् चित् आनन्द ब्रह्म की प्रकृति (शक्ति) भी सच्चिदानन्दमयी ही होनी चाहिए, किन्तु व्यवहारिक रूप में तो यह मायावी सृष्टि असत्, जड़, और दुःखमयी है। इसका मूल कारण यह है यह सृष्टि सत्त्वं, रज, और तम की साम्यावस्था वाली जड़ प्रकृति से बनी है और रचनाकार अक्षर ब्रह्म का स्वायत्तिक रूप आदिनारायण है। अखण्ड ब्रह्म की अखण्ड प्रकृति तो योगमाया के ब्रह्माण्ड में है। सांख्य दर्शन में जिस प्रकृति का वर्णन है, वह कालमाया की जड़ प्रकृति है। तारतम्य ज्ञान न होने से ही संसार में इस प्रकार की भ्रान्तियाँ हैं।

कोई कहे ए सबे सुपना, न्यारा खावंद है और।

तो ए सुपना जब उड़ गया, तब खावंद है किस ठौर॥८॥

किसी का कथन यह है कि यह सम्पूर्ण जगत् स्वप्नवत् है, परब्रह्म तो इससे परे है। मेरे मन में यह जिज्ञासा है कि जब यह स्वप्नमयी जगत् महाप्रलय में विनाश को प्राप्त हो जायेगा, तो परमात्मा का स्वरूप कहाँ होगा?

उपर तले मांहे बाहेर, दसों दिसा सब माया।

खट प्रमानथें ब्रह्म रहित है, सो क्यों कर दृढ़ाया॥९॥

इस ब्रह्माण्ड में ऊपर, नीचे, अन्दर, बाहर दसों दिशाओं में माया का ही विस्तार है। जो ब्रह्म छः प्रमाणों (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, और अर्थापत्ति) से परे है, उसका वर्णन (निरूपण) कैसे किया जा सकता है।

भावार्थ- छः प्रमाणों की व्याख्या इस प्रकार है -

जो प्रत्यक्ष अनुभव में आये, वह "प्रत्यक्ष" प्रमाण है।

जो अनुमान पर आधारित हो, वह "अनुमान" प्रमाण है।

जो तुलनात्मक दृष्टि से कहा जाये, वह "उपमान" है।

वेद तथा आप्त का पुरुष कथन "शब्द" प्रमाण है।

ऐतिहासिक कथन की सत्यता "ऐतिह्य" प्रमाण है।

अर्थ अर्थात् कारण का जिसमें वर्णन हो , वह "अर्थापत्ति" प्रमाण है।

बुध तुरिया दृष्ट श्रवना, जो लों पोहोंचे मन।

उतपन सारी आवटे, जो कछू कहिए वचन॥१०॥

बुद्धि से जिसकी विवेचना हो, चित्त से चिन्तन हो,
आँखों से जो देखा जा सके, कानों से जो सुना जा सके,

मन से जिसका मनन हो सके, तथा वाणी से जो शब्द रूप में कहा जाये, वह ब्रह्म नहीं बल्कि क्षर जगत् है, जो उत्पन्न होता है और लय को प्राप्त होता है।

द्रष्टव्य— इस कथन को पढ़कर मन में संशय पैदा होता है कि श्रीमुखवाणी भी तो शब्दों में है, तो क्या परिक्रमा, सागर, तथा सिनगार का चिन्तन, मनन, एवं विवेचन भी माया का ही है?

इसका उत्तर यह है कि यह प्रसंग उस समय का है, जब संसार में परमधाम का ज्ञान अवतरित नहीं हुआ था और लोग परमधाम के बारे में कुछ भी नहीं जानते थे। "सब्दातीत निध ल्याये सब्द में, मेट्यो सबन को अंधकार" से यह स्पष्ट होता है कि तारतम ज्ञान के अवतरित हो जाने पर परब्रह्म का चिन्तन, मनन, एवं विवेचन पूर्णतया सम्भव हो गया है।

कोई कहे अद्वैत के कारन, द्वैत खोजी पर पर।

अद्वैत सब्द जो बोलिए, तो सिर पड़े उतर॥११॥

कोई कहता है कि उस अद्वैत ब्रह्म को पाने के लिये ही तो द्वैत में बारम्बार खोज की जाती है। ब्रह्म तो शब्दातीत है, इसलिये "अद्वैत" शब्द के उच्चारण मात्र से ही धड़ से सिर अलग हो जाएगा।

भावार्थ- द्वैत का तात्पर्य है – जीव और प्रकृति। शब्दातीत होने के कारण अद्वैत ब्रह्म तक मन, वाणी, एवं बुद्धि की पहुँच नहीं है। द्वैत मण्डल में उसकी सत्ता एवं महिमा का प्रकाश है, इसलिये सभी मनीषियों का यही मत है कि इस द्वैत मण्डल को पार करके ही उस अद्वैत ब्रह्म को पाया जा सकता है। सिर अहम् का प्रतीक है। इसका परित्याग करके उस ब्रह्म से एकरूपता हुए बिना अद्वैत की व्याख्या नहीं हो सकती। अद्वैत की व्याख्या में

सिर कट जाने का यही भाव है।

कोई कहे अद्वैत के आड़े, सब द्वैत को विस्तार।

छोड़ द्वैत आगे वचन, किने न कियो निरधार॥१२॥

किसी का कहना है कि अद्वैत ब्रह्म की ओट में ही इस द्वैत (जगत+जीव) का विस्तार है। इस जगत के अन्दर ब्रह्म की सत्ता का अनुभव करने वाले ज्ञानीजनों ने इसके परे विराजमान अखण्ड स्वरूप के विषय में कुछ कहा ही नहीं।

भावार्थ- अद्वैत ब्रह्म की ज्ञान शक्ति एवं क्रिया शक्ति से द्वैत मण्डल का विस्तार होता है। उसका स्वाप्निक स्वरूप आदिनारायण के रूप में सृष्टि का संचालक होता है। अद्वैत की ओट में द्वैत के विस्तार का यही तात्पर्य है।

भोमका सात कही वसिष्ठें, तामें पांचमी केवल विदेही।

छठी को सब्द ना निकसे, तो सातमी दृढ़ क्यों होई॥१३॥

वेदान्त के योग वाशिष्ठ नामक ग्रन्थ के ११९/५/१५ में अध्यात्म की सात भूमिकाओं का वर्णन किया गया है, जिसमें पाँचवी कैवल्य की अवस्था "विदेहावस्था" है। जब छठी अवस्था को शब्दों से व्यक्त नहीं किया जा सकता, तो भला सातवीं अवस्था के अनुभव को कैसे व्यक्त किया जा सकता है?

भावार्थ- सात भूमिकायें इस प्रकार हैं-

- १- शुभेच्छा- वैराग्यपूर्ण मोक्ष की कामना।
- २- विचारणा- शास्त्रों का विचारपूर्वक अध्ययन।
- ३- तनुमानसा- शुभेच्छा तथा विचारणा द्वारा ध्यान का आश्रय लेने पर लौकिक सुखों की आसक्ति का त्याग।

४ – सत्त्वापत्ति – बुद्धि के पूर्णतया शुद्ध होने पर आत्म-स्वरूप में स्थिति।

५ – असंसक्ति – चित्त के सभी संस्कारों से रहित होकर अपने निज स्वरूप में समाधिस्थ होना।

६ – पदार्थ भावना – सर्वदा ब्राह्मी अवस्था का अनुभव करना।

७ – तुर्यगा – संसार से पूर्णतया अलग उस अद्वैत ब्रह्म से एकरूपता।

कैवल्य की विदेहावस्था वह है जिसमें जीव अपनी शुद्ध अवस्था में स्थित तो हो जाता है, किन्तु उसे अपने अस्तित्व का बोध बना रहता है। उसे अपने पञ्चभौतिक शरीर का आभास नहीं होता। राजा जनक आदि इसी अवस्था को प्राप्त हुए थे। इसके परे की अवस्था हंस एवं परमहंस होती है।

पार वचन कहे कौन दूजा, सर्वग्यन को सब सूझे।

ए संसे भानो आत्म के, ज्यों परआत्म बूझे॥१४॥

हे सन्त जनों! भला आपके सिवाय निराकार के परे का ज्ञान और कौन दे सकता है। आप तो सर्वदा ब्रह्म को जानकर सर्वज्ञ हो गये हैं। आपको तो सब कुछ मालूम है। आपसे निवेदन है कि आप मेरे संशयों को मिटाइए , ताकि मेरी आत्मा अपने मूल स्वरूप परात्म की पहचान कर सके।

परमहंस बिन कौन कहे, जिन तजे हैं तीन सरीर।

कहे महामत महादिसा धनी की, कोई कर दयो जुदे खीर नीर॥१५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सन्त जनों ! आपने स्थूल, सूक्ष्म, तथा कारण शरीर का परित्याग करके महाकारण अवस्था में ब्रह्म का साक्षात्कार किया है और

ब्रह्मरूपता प्राप्त की है। भला, आप परमहंसों के बिना मेरे संशयों को और दूसरा कैसे मिटा सकता है? मेरी यही इच्छा है कि आपमें से कोई भी दूध और पानी, अर्थात् ब्रह्म और माया, की स्पष्ट पहचान कराकर अक्षरातीत का पूर्ण बोध कराये।

प्रकरण ॥२९॥ चौपाई ॥३४३॥

राग श्री

इस प्रकरण में माया-मोह तथा अहंकार की विशेष विवेचना की गयी है।

चीन्हें क्यों कर ब्रह्म को, ए तो गुन ही के अंग को विकार।

बाजीगरें बाजी रची, मूल माया तें मोह अहंकार॥१॥

भला इस संसार के जीव ब्रह्म की पहचान कैसे कर सकते हैं? यह सम्पूर्ण जगत सत्त्व, रज, और तम की त्रिगुणात्मक माया से उत्पन्न होने वाले महत्तत्त्व और अहंकार के विकार से बना है। बाजीगर अक्षर ब्रह्म ने अपनी मूल माया से मोह तत्त्व तथा अहंकार को उत्पन्न करके इस संसार रूपी खेल की बाजी (तमाशे) को बनाया है।

भावार्थ— मोह तत्त्व तथा महत्तत्त्व में अन्तर है। प्रकृति

का महाकारण स्वरूप मोह तत्त्व है, जिसे अज्ञान, भ्रम, कर्म, काल, और महाशून्य कहते हैं। इसी प्रकार उसका सूक्ष्म स्वरूप महतत्त्व है, जिसमें विकृति (परमाणुओं में संयोजन) से अहंकार की उत्पत्ति होती है। अक्षर ब्रह्म के अन्दर सृष्टि को उत्पन्न करने की जो इच्छा होती है, उसे मूल प्रकृति या मूल माया कहते हैं। मूल माया (अव्याकृत की सत माया) से माया (मोहतत्त्व) की वैसे ही उत्पन्न होती है, जैसे प्रकाश से छाया की उत्पत्ति होती है। इसमें अव्याकृत का मन प्रतिबिम्बित होकर आदिनारायण का स्वरूप बन जाता है। उनके अन्दर जो "एकोऽहम् बहुःस्याम" का संकल्प होता है, उसे ही "अहंकार" कहते हैं।

इस प्रकार अहंकार के दो भेद होते हैं। पहला अहंकार वह है जो आदिनारायण के अन्दर प्रकट होता है, जिसके

फलस्वरूप परमाणुओं में कम्प प्रकट होता है और सृष्टि रचना प्रारम्भ होती है। इसी मोह तत्व के परमाणुओं में स्थूलता आने से महत्तत्व की रचना होती है, जिसके अणुओं में और स्थूलता आने से अहंकार की उत्पत्ति होती है। इसी दूसरे अहंकार से तन्मात्रा एवं इन्द्रियों का प्रकटन होता है।

जाको पेड़ प्रतिबिंब प्रकृती, पांच तत्व ही को आकार।

माहें खेले निरगुन व्यापक, लिए माया मोह अहंकार॥२॥

इस जगत का उपादान कारण प्रकृति है, जो मूल प्रकृति या मूल माया का प्रतिबिम्ब है। यह ब्रह्माण्ड पाँच तत्वों का बना हुआ है। इस जगत में सर्वत्र सत, चित्, और आनन्द गुणों से रहित यह निर्गुणी माया व्यापक है, अर्थात् यह ब्रह्माण्ड ही इस निर्गुणी माया से बना हुआ है।

इस जगत में माया-मोह तथा अहंकार के वशीभूत हुआ जीव विभिन्न लोकों तथा योनियों में खेला करता है।

भावार्थ- पहली चौपाई की व्याख्या में प्रकाश से छाया के उत्पन्न होने की जो बात कही गयी है, वह अव्याकृत की सत् माया से प्रतिबिम्ब रूप में प्रगट होने वाली कालमाया है। जिस प्रकार दर्पण में प्रतिबिम्ब दिखायी तो देता है, किन्तु बिम्ब का प्रत्यक्ष अस्तित्व नहीं होता, उसी प्रकार नूरमयी स्वरूप वाले अव्याकृत की प्रकृति भी नूरमयी है, किन्तु उसका प्रतिबिम्ब स्वप्न रूपी दर्पण में कालमाया (मोहतत्व, महामाया) के रूप में होगा, जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, तथा गन्ध से रहित है।

लोक चौदे दसो दिस, सब नाटक स्वांग संसार।

आवे नैन श्रवन मन वचन, ए सब माया मोह अहंकार॥३॥

चौदह लोकों के इस संसार में दसों दिशाओं में जो कुछ भी है, सब माया का ही नाटक एवं नश्वर रूप है। आँखों से जो कुछ भी दिखायी देता है, कानों से सुना जाता है, मन से मनन में आता है, तथा शब्दों से कहा जाता है, वह सब कुछ माया, मोह, तथा अहंकार का ही रूप है।

क्या दानव क्या देवता, क्या तीर्थंकर अवतार।

ब्रह्मा विष्णु महेश लों, सो भी पैदा माया मोह अहंकार॥४॥

चाहे कोई देवता हो या दानव, तीर्थंकर हो या अवतार, सभी माया, मोह, और अहंकार से ही पैदा हुए हैं। यहाँ तक कि सृष्टि के कर्णधार ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव का भी यही हाल है।

भावार्थ— माया, मोह, और अहंकार से पैदा होने का तात्पर्य यह है कि इनके शरीर त्रिगुणात्मक हैं तथा इनके

जीव (चिदाभास) आदिनारायण की चेतना के प्रतिभास हैं।

अब औरन की मैं क्या कहूं, जो बड़कों का ए हाल।

जल जैसे तरंग तैसे, उठे माया मोह अहंकार॥५॥

जब सृष्टि के इन महान विभूतियों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव, तथा तीर्थंकर) की यह स्थिति है, तो अन्य सांसारिक प्राणियों के विषय में मैं क्या कहूँ। जिस प्रकार जल से तरंगें उठा करती हैं, उसी प्रकार माया, मोह, अहंकार रूपी जल से ब्रह्माण्डों और प्राणियों का प्रकटन होता रहता है।

जो बंध बांधे बाप ने, बेटे चले जाए तिन लार।

जीव उरझे जाली छल की, ए सब माया मोह अहंकार॥६॥

इन महान विभूतियों ने जो नियम बनाये हैं, संसार के लोग उनका ही अनुसरण करते हैं। इस प्रकार जीव छल की जाली में उलझे रहते हैं, क्योंकि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही माया, मोह, अहंकार से बना हुआ है।

दयोहरे मसीत अपासरे, सब लगे माहें रोजगार।

बाहेर देखावें बंदगी, माहें माया मोह अहंकार॥७॥

मन्दिर, मस्जिद, तथा अपासरे (जैन सन्तों के स्थान) में व्यवसायिकता आ गयी है। इन स्थानों में जाकर लोग ऊपर से तो बन्दगी का दिखावा करते हैं, किन्तु अन्दर से माया-मोह और अहंकार के जाल में फँसे रहते हैं।

जुदे जुदे भेख दरसनी, अनेक इष्ट आचार।

धरे नाम धनी के जुदे जुदे, पैँडे चलें माया मोह अहंकार॥८॥

इस संसार में अध्यात्म के नाम पर लोग अलग-अलग वेश-भूषा रखते हैं। उनके अलग-अलग दार्शनिक सिद्धान्त भी होते हैं। परमात्मा के रूप भी ये भिन्न-भिन्न मानते हैं तथा कर्मकाण्ड भी अलग-अलग होता है। इन लोगों ने परमात्मा के अलग-अलग नामों की कल्पना कर ली है। इस प्रकार ये नाना मत-पन्थ माया, मोह, अहंकार के अन्दर ही चला करते हैं।

खोज खोज खट सास्त्र हुए, अनेक वचन विस्तार।

करम उपासना ग्यान की, बानी थकी मांहेँ माया मोह अहंकार॥९॥

उस सच्चिदानन्द परब्रह्म की खोज में छः शास्त्रों (सांख्य, योग, वेदान्त, न्याय, मीमांसा, तथा वैशेषिक) की रचना हुई। इसके साथ ही ज्ञान, कर्म, तथा उपासना के मर्म को समझाने हेतु अनेक धर्मग्रन्थों का लेखन

हुआ, किन्तु ये सारे ग्रन्थ लोगों को माया, मोह, और अहंकार के पार नहीं ले जा सके।

सब्द सुनें एक दूजे के, फेर फेर करें विचार।

किव कर नाम धरें अपने, सब मगन माया मोह अहंकार॥१०॥

ये साम्प्रदायिक लोग एक-दूसरे की ज्ञान की बातों को सुनकर उस पर बार-बार विचार भी करते हैं। पुनः अपने अनुभूत ज्ञान को कविता (श्लोक या चौपाई) ग्रन्थ के रूप में अपने नाम से प्रकाशित करते हैं। इस प्रकार ये लोग भी माया-मोह-अहंकार में ही मग्न रहते हैं।

भावार्थ- यद्यपि ग्रन्थों का लेखन कार्य बुरा नहीं है , किन्तु परब्रह्म को जाने बिना मिथ्या सिद्धान्तों का ग्रन्थ लिखकर प्रसारित करना अवश्य ही माया में मग्न होना है।

ए बानी कथें सब अगम, मांहे गुझ सब्द हैं पार।

सो ए कैसे कर समझहीं, मोहोरे माया मोह अहंकार॥११॥

छः शास्त्र आदि धर्मग्रन्थों के कथन परब्रह्म को मन – वचन से परे ही वर्णन करते हैं। इनके गुह्य भेदों का स्पष्टीकरण हो जाने पर अखण्ड धाम का ज्ञान प्राप्त होता है, लेकिन उन भेदों को माया-मोह-अहंकार से पैदा हुए जीव भला कैसे समझ सकते हैं।

यामें जीव दोए भाँत के, एक खेल दूजे देखनहार।

पेहेचान न होवे काहू को, आड़ी पड़ी माया मोह अहंकार॥१२॥

इस जगत में दो प्रकार के जीव हैं – एक तो माया का खेल खेलने वाले तथा दूसरे देखने वाले। माया-मोह-अहंकार का परदा हो जाने के कारण दोनों में से किसी को भी अक्षरातीत की पहचान नहीं हो पाती है।

भावार्थ- वासनाओं से ग्रसित जीव भिन्न-भिन्न योनियों में भटकते हुए माया के खेल में डूबे रहते हैं। दूसरे वे जीव होते हैं, जिन्होंने ध्यान-समाधि का आश्रय लेकर अपने चित्त को वासना के संस्कारों से पूर्णतया दूर कर दिया होता है। इनका पुनर्जन्म नहीं होता, और ये निराकार तक सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों में इच्छानुसार भ्रमण करते रहते हैं, तथा संसार को द्रष्टा होकर देखते रहते हैं।

ए खेल किया जिन खातिर, सो तो कोई हैं सिरदार।

जो लों न होवें जाहेर, तो लो उड़े न माया मोह अहंकार॥१३॥

माया का यह खेल जिन ब्रह्मसृष्टियों को दिखाने के लिये बनाया गया है, वे सर्वश्रेष्ठ महिमा वाली प्रमुख आत्मायें हैं। जब तक वे जाहिर न हो जायें, तब तक माया-मोह

और अहंकार का परदा नहीं हट सकता।

भावार्थ- यद्यपि परमधाम की वाहेदत में सामान्य या विशिष्ट नाम की कोई भी वस्तु नहीं है, लेकिन यहाँ पर होने वाली लीला में विशेष भूमिका निभाने के सम्बन्ध में यह बात कही गयी है।

धनी के प्रेम में अपना सर्वस्व न्योछावर करने वाली तामसी सखियों की इच्छा पूरी न हो सकने के कारण यह खेल पुनः बनाना पड़ा है। इस खेल में श्री इन्द्रावती, आसबाई, अमलावती, शाकुण्डल, शाकुमार आदि की लीला विशिष्ट स्थान रखती है। इनके तन द्वारा होने वाली जागनी लीला से ज्ञान का जो फैलाव होगा, उससे ही माया-मोह और अहंकार का पर्दा हटेगा।

ऐसे खेल अनेक एक खिन में, करे अग्याएं करतार।

सो करतार ठौर क्यों पाइए, जो लों उड़े न माया मोह अहंकार॥१४॥

अक्षर ब्रह्म अपने आदेश मात्र से एक पल में हमारे ब्रह्माण्ड जैसे अनेक ब्रह्माण्ड उत्पन्न कर देते हैं। जब तक माया, मोह, और अहंकार का परदा न हटे, तब तक उस अक्षर ब्रह्म के धाम के बारे में भला कैसे जाना जा सकता है।

महामत होसी सब जाहेर, मिले अछरातीत भरतार।

वैराट होसी नेहेचल, उड़यो माया मोह अहंकार॥१५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि अब हमें प्राणवल्लभ अक्षरातीत मिल गये हैं, इसलिये अब क्षर से लेकर परमधाम तक का सम्पूर्ण ज्ञान जाहिर हो जायेगा, जिससे माया-मोह-अहंकार का यह परदा हट जायेगा,

और सभी प्राणियों सहित यह सारा ब्रह्माण्ड ही अखण्ड हो जायेगा।

प्रकरण ॥३०॥ चौपाई ॥३५८॥

राग श्री सोरठ

कलि में देख्या ग्यान अचंभा।

बातन मोहोल रचें अति सुन्दर, चेजा जिमी न थंभा॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि इस कलियुग में मैंने आधुनिक वेदान्तियों का कुछ अनोखा ही ब्रह्मज्ञान देखा है। इन्होंने बातों (शब्द जाल) का बहुत ही सुन्दर हवाई महल खड़ा कर लिया है, जिसकी न तो जमीन में नींव खुदी है और न ही कोई खम्भा है।

भावार्थ- बौद्ध मत के शून्यवाद को हटाने के लिये आदि शंकराचार्य जी ने जीव - ब्रह्म की एकता का "अद्वैतवाद" प्रस्तुत किया, जो सम्पूर्ण जगत् को ही ब्रह्मरूप मानता है। इस मत के अनुयायी अपने शब्द-जाल एवं शुष्क तर्कों से अपने मत को स्थापित करते हैं,

जिसे हवाई महल की संज्ञा दी गई है। इस मत के अनुयायियों को "नवीन" या "आधुनिक वेदान्ती" कहते हैं। इस प्रकरण में उन्हीं के ऊपर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है।

अंग न इंद्री अंतस्करण वाचा, ब्रह्म न पोहोंचे कोए।

यों कहें साख पुरावें श्रुती, फेर कहें अनुभव होए॥२॥

श्रुतियों की साक्षी देते हुए आधुनिक वेदान्ती कहा करते हैं कि उस ब्रह्म तक शरीर के किसी भी अंग, इन्द्रिय, अन्तःकरण (मन, चित्त, बुद्धि, तथा अहंकार), तथा वाणी की पहुँच नहीं है। लेकिन वे यह भी कहते हैं कि उस ब्रह्म का हम अनुभव भी करते हैं।

भावार्थ— केनोपनिषद १/३ में कहा गया है कि "न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति न मनो" अर्थात् उस ब्रह्म तक

नेत्र की दृष्टि, मन, या वाणी की पहुँच नहीं है। यही प्रसंग तैत्तरीय, मुण्डक आदि उपनिषदों में भी है। आत्मदृष्टि से ब्रह्म को देखा जाता है, जबकि अनुभव अन्तःकरण का विषय है। वेदान्त दर्शन १/२/११ में कहा गया है— "गुहां प्रविष्टौ आत्मनौ हि तत् दर्शनात्।" इसी प्रकार अथर्ववेद २/१/१ में "वेनः तत् पश्यत् परमं गुहां" कहा गया है, जिसका तात्पर्य आत्म दृष्टि से देखने से है।

अहं ब्रह्म अस्मी होए के बैठें, तत्त्वमसी और कहावें।

स्वामी शिष्य न क्रिया करनी, यों महा वाक्य दृढ़ावें॥३॥

ये लोग स्वयं को ही ब्रह्म मानकर बैठे रहते हैं तथा अपने शिष्यों को भी यही उपदेश देते हैं कि तुम भी ब्रह्म ही हो। इस प्रकार महावाक्यों "अयम् आत्मा ब्रह्म", "अहम् ब्रह्मास्मि", "तत्त्वमसि", तथा "सर्वम् खल्विदं

ब्रह्म" को रटते हुए ये गुरु-शिष्य उस परब्रह्म की उपासना आदि क्रियाओं से रहित हो जाते हैं।

भावार्थ- उपनिषदों के कथनों को तोड़-मरोड़कर इस प्रकार की मान्यताएँ गढ़ ली जाती हैं। उनका वास्तविक आशय इस प्रकार का कदापि नहीं है।

खट प्रमान से ब्रह्म है न्यारा, सो कहें अद्वैत हम आप।

माया ईश्वर त्रिगुण हमथें, हमहीं रहे सबमें व्याप॥४॥

जो अद्वैत ब्रह्म छः प्रमाणों से रहित है, स्वयं को उसी का स्वरूप मानते हैं कि हम ही साक्षात् ब्रह्म हैं। माया, ईश्वर (आदिनारायण), तथा त्रिगुण का अस्तित्व भी हम से ही है और हम ही (ब्रह्म) सबमें व्यापक भी हैं।

ईश्वर फिरे न रहें त्रिगुन, त्रिगुन चलें जीव भेले।

ए कहावे ब्रह्म सब पैदास यार्थें, और जात हैं आप अकेले॥५॥

महाप्रलय में आदिनारायण का अस्तित्व न रहने पर सत्व, रज, और तम भी लय हो जाते हैं, जिनके साथ अन्य जीव भी लय को प्राप्त हो जाते हैं। जब ये वेदान्ती ऐसा कहते हैं कि हम साक्षात् ब्रह्म हैं और हमसे ही यह सम्पूर्ण जगत् पैदा हुआ है, तो अकेले-अकेले ही क्यों मरते हैं? वे अपने साथ सारी सृष्टि को लेकर क्यों नहीं मरते? क्या ब्रह्म भी मृत्यु को प्राप्त होता है?

कूवत कछुए न पाइए माहें, खेले मोह में परे परवस मन।

भोमका एक न चढ़ सकें, कहावें ईश्वर को महाकारन॥६॥

इनमें किसी भी प्रकार की आध्यात्मिक शक्ति नहीं होती, बल्कि ये अपने मन के अधीन होकर माया-मोह

के खेल में मग्न रहते हैं। ये ईश्वर को महाकारण स्वरूप में मानते हैं, किन्तु सात भूमिकाओं में से किसी एक की भी प्राप्ति नहीं कर पाते।

भावार्थ- नवीन वेदान्ती ब्रह्म के दो रूपों की कल्पना करते हैं। एक तो ब्रह्म का वह विशुद्ध रूप (परब्रह्म) जिसमें माया की कोई गन्ध नहीं होती, तथा दूसरा वह रूप है जो माया से संयुक्त होता है। इसे ही सबल ब्रह्म (अपर ब्रह्म), ईश्वर, आदिनारायण, महाविष्णु, हिरण्यगर्भ आदि कहते हैं। इनका ही प्रतिभास (चिदाभास) जीव कहलाता है।

तीन सरीर उड़ावें मुख थें, आप होत हैं ब्रह्म।

पूछे तें कहें हम भोगवे, प्रालब्ध जो करम॥७॥

ये कथन मात्र से अपने को तीनों शरीरों (स्थूल, सूक्ष्म,

और कारण) से अलग मानकर स्वयं को महाकारण में स्थित मानते हैं और ब्रह्मस्वरूपता का दावा लेते हैं। जब इन्हें कोई शारीरिक या मानसिक कष्ट होता है, तो यह पूछने पर कि जब आप ब्रह्म हैं तो आपको कष्ट क्यों होता है, इनका उत्तर यही होता है कि हम तो केवल प्रारब्ध भोगते हैं।

भावार्थ- स्थूल, सूक्ष्म, तथा कारण शरीर से परे होने के लिये ध्यान-समाधि की आवश्यकता होती है, जबकि वेदान्त के ये ज्ञानी वेदान्त के अध्ययन मात्र से ही स्वयं को महाकारण अवस्था मान लेते हैं। यह तो मात्र मन को बहलाने वाली बात है। ब्रह्म संचित, प्रारब्ध, तथा क्रियमाण तीनों ही कर्मों के भोग से परे है।

माया ईश्वर तें होत हैं न्यारे, न्यारे होत तीन देह।

अद्वैत को प्रालब्ध लगावें, देख्या ग्यान बड़ा ब्रह्म एह॥८॥

मैंने इन नवीन वेदान्तियों का ऐसा विचित्र ब्रह्मज्ञान देखा है, जिसमें जीव को ब्रह्म घोषित करने वाले ये विद्वान स्वयं को तो माया, ईश्वर (सबल ब्रह्म या आदिनारायण), तथा स्थूल, सूक्ष्म, एवं कारण शरीरों से अलग घोषित करते हैं, किन्तु उस निर्विकार अद्वैत ब्रह्म को भी प्रारब्ध कर्मों के बन्धन में बाँधने से नहीं चूकते।

भावार्थ— ब्रह्म तो संचित, प्रारब्ध, एवं क्रियमाण कर्मों का फल देने वाला है। उसे प्रारब्ध कर्मों के बन्धन में कहना अज्ञानता के सिवाय कुछ भी नहीं है।

ऐसे कोट ब्रह्मांड होवें पल में, अद्वैत के हुकम।

ए कहावें ब्रह्म सुध नहीं ब्रह्म घर की, द्वैत अद्वैत नहीं गम॥९॥

अद्वैत अक्षर ब्रह्म के आदेश मात्र से एक पल में करोड़ों ब्रह्माण्ड उत्पन्न हो जाते हैं। ये स्वयं को तो ब्रह्म कहते हैं, लेकिन इन्हें इतना भी पता नहीं है कि ब्रह्म का धाम कहाँ है। इन्हें द्वैत मण्डल (जीव तथा प्रकृति का लीला स्थल, कालमाया), तथा अद्वैत (योगमाया), एवं स्वलीला अद्वैत (परमधाम) की कोई पहचान ही नहीं है।

**सुकमुनी बानी बोल्या वेदांत, सो इनों क्यों समझी जाए।
होसी प्रगट प्रकास निज बुध का, सो महामत देसी बताए॥१०॥**

श्री महामति जी कहते हैं कि श्री शुकदेव जी ने भागवत् में वेदान्त का वर्णन किया है, लेकिन ये आधुनिक वेदान्ती उनके कथनों को समझ नहीं पाते। जब निज बुद्धि की वाणी का प्रकाश फैलेगा, तो उसे मैं स्पष्ट करूँगा।

भावार्थ- वेदान्त का तात्पर्य है – वेद का निर्णय अर्थात् अध्यात्म के सम्बन्ध में वेद का क्या कहना है। श्रीमद्भागवत् के पञ्चाध्यायी रास में कहा गया है कि गोपियों ने अपने त्रिगुणात्मक तनों को छोड़कर उस योगमाया के ब्रह्माण्ड में प्रवेश किया, जहाँ असत्, जड़, और दुःखमयी जगत का नामोनिशान भी नहीं है। वहीं पर महारास की लीला की गयी। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि जहाँ पर ब्रह्मानन्द और ब्रह्म लीला है, वहाँ जड़ माया का प्रवेश नहीं है। जबकि आधुनिक वेदान्ती इस जड़ जगत से परे ब्रह्म के अखण्ड स्वरूप के विषय में नहीं जानते, बल्कि जगत् को ही ब्रह्मरूप कहते हैं। खिलवत, परिक्रमा, सागर, तथा श्रृंगार ग्रन्थ में परब्रह्म के धाम, स्वरूप, तथा लीला का वर्णन किया गया है। श्री महामति जी का संकेत इन्हीं ग्रन्थों की तरफ है ,

जिनके अवतरित होने पर वेदान्तियों की सारी भ्रान्तियाँ
मिट जायेंगी।

प्रकरण ॥३१॥ चौपाई ॥३६८॥

राग श्री गौड़ी

भाई रे ब्रह्मग्यानी ब्रह्म देखलाओ, तुम सकल में सांई देख्या।

ए संसार सकल है सुपना, तो तुम पारब्रह्म क्यों पेख्या॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे ब्रह्मज्ञानी भाइयों! आप जगत् के कण-कण में जिस ब्रह्म को देखते हैं, उसे मुझे भी दिखाइये। जब यह सारा संसार स्वप्नवत् है, तो आपने इसमें परब्रह्म को कैसे देख लिया।

सत सुपने में क्योंकर आवे, सत सांई है न्यारा।

तुम पारब्रह्म सों परच्या नहीं, तो क्यों उतरोगे पारा॥२॥

सत्य स्वरूप ब्रह्म इस स्वप्नवत् मिथ्या जगत् में कैसे आ सकता है, वह तो इस नश्वर जगत् से सर्वथा परे है। जब आपको उस सच्चिदानन्द ब्रह्म की पहचान ही नहीं है,

तो आप इस भवसागर से कैसे पार होंगे।

भावार्थ- संसार को स्वप्नवत् कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार स्वप्न टूटने के बाद देखा गया दृश्य भी समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार यह जगत् भी महाप्रलय में लय हो जाता है। सर्वदा एकरस रहने वाला ब्रह्म यदि इस जगत के कण-कण में विराजमान होता, तो संसार कभी भी लय को प्राप्त नहीं होता।

तुम बैकुण्ठ जमपुरी एक कर देखी, तब तो सास्त्र पुरान सब भान्या।

सुकदेव व्यास के वचन बिना, कौन कहे मैं जान्या॥३॥

जब सृष्टि के कण-कण में ब्रह्म ही समाया हुआ है, तब तो वैकुण्ठ और यमपुरी (नरक) में कोई भेद होना ही नहीं चाहिए, जबकि दोनों में स्पष्ट भेद है। दोनों को समान मानने पर तो धर्मशास्त्रों तथा पुराणों के कथन ही

झूठे हो जायेंगे। वैकुण्ठ में सुख ही सुख हैं, जबकि नरक में दुःख ही दुःख हैं। शुकदेव जी तथा वेद व्यास जी के कथनों को जाने बिना कोई भी यह दावा कैसे कर सकता है कि मैंने ब्रह्म को जान लिया है।

यामें बड़भागी भए वल्लभाचारज, जाको सुकदेव का गुन भाया।

उत्तम टीका कीन्ही दसम की, तो इन ए फल पाया॥४॥

संसार में वल्लभाचार्य जी बहुत ही भाग्यशाली हुए हैं, जिन्होंने शुकदेव जी के वचनों का महत्व समझा है। इन्होंने श्रीमद्भागवत् के दसवें स्कन्ध का अति सुन्दर टीका किया है, जिसमें क्षर से परे बेहद में होने वाली अखण्ड ब्रज एवं रास लीला का वर्णन पाया जाता है।

बिना पुरान प्रकास न होई, सास्त्र बिना कौन माने।

एक अखर को अर्थ न आवे, तो ब्रह्म भरम में आने॥५॥

भागवत पुराण के इस दसवें स्कन्ध का अभिप्राय समझे बिना ब्रह्म के धाम-सम्बन्धी सत्य ज्ञान का प्रकाश नहीं हो सकता। धर्मशास्त्रों की साक्षी के बिना कोई भी किसी के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता। इन नवीन वेदान्तियों को दसवें स्कन्ध की पञ्चाध्यायी रास के एक अक्षर का भी अर्थ नहीं आता है, इसलिये इन्होंने ब्रह्म को इस नश्वर जगत् के कण-कण में मान रखा है।

भावार्थ- यद्यपि यह सम्भव नहीं है कि वेदान्त के सूत्रों का अर्थ समझने वाले नवीन वेदान्तियों को भागवत के एक अक्षर का भी अर्थ न आये। यह बात आलंकारिक रूप से व्यंग्य में कही गयी है। "अ" अक्षर सर्वव्यापक ब्रह्म के लिये प्रयुक्त होता है। योगमाया के ब्रह्माण्ड में ब्रह्म

स्वरूप से व्यापक है, जबकि कालमाया के ब्रह्माण्ड में सत्ता से। योगमाया का वह ब्रह्माण्ड कहाँ है, जहाँ महारास लीला की गयी (वीक्ष्यरन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः)? इसका उत्तर किसी भी वेदान्ती के पास नहीं है क्योंकि ये तो नश्वर जगत् को भी ब्रह्मरूप ही मानते हैं, इसलिये एक भी अक्षर का अर्थ न जानने वाली बात कही गयी है।

काल आवत कबूँ ब्रह्म भवन में, तुम क्यों न विचारो सोई।

अखंड सांई जो यामें होता, तो भंग ब्रह्माण्ड को न होई॥६॥

हे वेदान्त के विद्वानों! आप अपने मन में इस बात का विचार क्यों नहीं करते कि भला काल का क्या सामर्थ्य है, जो ब्रह्मपुरी में प्रवेश करे। यदि इस नश्वर जगत् के कण-कण में ब्रह्म विराजमान होता , तो कभी भी

महाप्रलय होता ही नहीं।

तुम केवल काल तत्व ग्यानी, ब्रह्म ग्यानी भए।

सब दरवाजे खोजे साधो, पर सुन्य छोड़ कोई ना गए॥७॥

हे सन्त जनों! आपने काल तत्व का ही ज्ञान प्राप्त करके ब्रह्मज्ञानी होने का दावा कर दिया है। आपने उस परब्रह्म को पाने के लिये अनेक मार्गों का अनुसरण किया, लेकिन कोई भी निराकार को पार करके आगे नहीं जा सका।

भावार्थ- काल तत्व के ज्ञानी होने का तात्पर्य कालमाया के ब्रह्माण्ड के बोध से है, जहाँ की प्रत्येक वस्तु उत्पन्न होती है तथा विनाश को प्राप्त होती है। ज्ञानी लोगों ने इस नश्वर ब्रह्माण्ड को ही "दिव्य ब्रह्मपुर" कह दिया है (दिव्ये ब्रह्मपुरे ही एषः व्योम्नि आत्मा

प्रतिष्ठितम- मुण्डकोपनिषद)। प्रकृति से परे उस दिव्य ब्रह्मपुर को कोई भी नहीं जानता। निराकार से उत्पन्न होने वाले ये सभी ब्रह्माण्ड उसी में पुनः लय हो जाते हैं। अन्ततोगत्वा निराकार भी नहीं रहता। इस प्रकार वर्तमान समय के ज्ञानीजनों ने अपने को क्षर जगत् तक ही सीमित रखा है।

इन सुपने में सब कोई भूल्या, किनहूं न देख्या पार।

विध विध सों भवसागर थाह्या, सुकदेव व्यास पुकार॥८॥

इस स्वप्न के संसार में (पाताल से निराकार तक) हर कोई भूला रहा। कोई भी (पञ्चवासनाओं को छोड़कर) अखण्ड धाम की अनुभूति नहीं कर सका। शुकदेव जी और वेद व्यास जी ने पुकार-पुकारकर भागवत में यह बात कही है कि सभी ने इस भवसागर को पार करने का

प्रयास किया, लेकिन कोई भी सफल नहीं हुआ।

यामें प्रेम लछन एक पारब्रह्म सों, एक गोपियों ए रस पाया।

तब भवसागर भया गौपद बछ, विहंगम पैंडा बताया॥९॥

प्राणवल्लभ अक्षरातीत की अनन्य प्रेम लक्षणा भक्ति का रसमयी मार्ग केवल गोपियों ने ही पाया, जिससे उनके लिये यह अथाह भवसागर गाय के बछड़े के खुर से बने हुए गड्डे की तरह छोटा हो गया, और उन्होंने बहुत ही सरलता से इसे वैसे ही पार कर लिया जैसे कोई पक्षी एक ही उड़ान में अपनी मन्जिल तक पहुँच जाता है।

भावार्थ— परब्रह्म को प्राप्त करने के तीन मार्ग बताये गये हैं—

१. पिपीलिका मार्ग— पिपीलिका का अर्थ होता है चींटी। चींटी की तरह धीरे-धीरे चलना अर्थात् यह मार्ग

कर्मकाण्ड और हठयोग से जुड़ा है। इससे ब्रह्म प्राप्ति सम्भव नहीं है।

२. कपिल मार्ग— बन्दर की तरह उछलते हुए अपनी मन्जिल तक पहुँचना। यह मार्ग पतञ्जलि का राजयोग है, जिसमें प्रेम आ जाने पर ब्रह्म की प्राप्ति सम्भव हो सकती है।

३. विहंगम मार्ग— अटूट प्रेम और समर्पण के पंखों से पक्षी की तरह उड़ते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करना। परब्रह्म को प्राप्त करने का यह विशुद्ध मार्ग है।

कई दरवाजे खोजे कबीरें, बैकुंठ सुन्य सब देख्या।

आखिर जाए के प्रेम पुकारया, तब जाए पाया अलेखा॥१०॥

कबीर जी ने ब्रह्म-प्राप्ति के लिये अनेक मार्गों को अपनाया। उन्होंने वैकुण्ठ-शून्य सबकी अनुभूति की।

अन्त में जब प्रेम की सच्ची राह पकड़ी, तब उन्हें उस अलख अगोचर ब्रह्म की प्राप्ति हुई।

भाई रे ब्रह्मग्यानी ब्रह्म सुपने में, महामत कहे यों पाइए।
पार निकस के पूरन होइए, तब फेर सब दृष्टें देखाइए॥११॥
श्री महामति जी कहते हैं कि हे ब्रह्मज्ञानी भाइयों! इस स्वप्नमयी मिथ्या जगत में अनन्य प्रेम की राह अपनाने पर ही उस ब्रह्म की प्राप्ति होती है। जब आप इस क्षर जगत से परे निकलकर उस पूर्ण ब्रह्म के धाम, स्वरूप, तथा लीला को जानकर प्रेमपूर्वक ध्यान करेंगे, तो आपको सब कुछ दिखायी देने लगेगा।

प्रकरण ॥३२॥ चौपाई ॥३७९॥

राग श्री गौड़ी

प्रकरण ३२ तथा ३३ में जाग्रति के लिये जीव और शरीर के व्यक्तिगत सम्बन्धों तथा उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है। प्रकरण ३२ में जहाँ शरीर की नश्वरता का प्रतिपादन है, वहीं प्रकरण ३३ में शरीर अपनी उपयोगिता को सार्थक करता है कि यदि इसका सही उपयोग किया जाये तो जीव भवसागर से पार हो जायेगा।

रे जीव जी जिन करो यासों नेहड़ा।

जाको सनमुख नहीं सरम, तासों नहीं मिलवे को धरम।

ए तो भुलवनी कोई भरम, कोहेड़ा सों लाग्यो करम॥१॥

हे जीव! इस नश्वर शरीर से स्नेह मत करो। जो अपनी नश्वरता के कारण साथ छोड़ने में जरा भी शर्म नहीं करता, उससे मित्रता करना धर्म नहीं है। यह शरीर अपने

रूप-जाल में जीव को फँसाकर भ्रमित कर देने वाला है। जो इससे मोह करते हैं, वे अज्ञान रूपी कोहरे का शिकार बनकर कर्मों के चक्र में पिसते रहते हैं।

भावार्थ- जो लोग शरीर की नश्वरता को नहीं समझ पाते, वे इसके भरण-पोषण में ही अपने जीवन का बहुमूल्य समय गँवा देते हैं, किन्तु यह शरीर इन्हें धोखा देकर इनका साथ छोड़ देता है। इसको सुन्दर रखने एवं पुष्ट करने के लिये मनुष्य तरह-तरह के उपाय करता है और अखण्ड आत्मिक सुख से वंचित हो जाता है।

नामै जाको प्रपंच, तिन सबको मूल सरीर।

या बन थें बाग विस्तरयो, जानो भरिया मृगजल नीर॥२॥

जिसे झूठ कहते हैं, उसका मूल यह शरीर है अर्थात् यह शरीर झूठ का भण्डार है, जो रोग, बुढ़ापे, और मृत्यु

का शिकार बन जाता है। जिस प्रकार मृग-तृष्णा के जल से प्यास नहीं बुझायी जा सकती, उसी प्रकार इस शरीर रूपी वन में परिवार रूपी बागों की शोभा है जिससे कभी भी स्थाई सुख-शान्ति नहीं मिल सकती।

भावार्थ- जिस प्रकार हिरन रेगिस्तान में बालू पर पड़ने वाली किरणों से उत्पन्न होने वाले दृश्य को जल समझ कर भ्रमित हो जाता है तथा एक सुन्दर वन से अनेक सुन्दर बागों का समूह फैल जाता है, उसी प्रकार इस शरीर से उत्पन्न होने वाले बच्चे बाग की तरह खूबसूरत होते हैं, लेकिन ये रिश्ते नश्वर होते हैं। इनको ही सब कुछ समझ लेने पर जीव परम तत्त्व से वंचित रह जाता है।

रे जीव सरीर मंदिर सोहामनों, चौदे खूने रे अवास।

इनके भरोसे जे रहे, ते निकस चले निरास॥३॥

हे जीव! यह शरीर रूपी घर बहुत सुन्दर है, जिसके १४ अंग (चरण, पिंडली, घुटना, जाँघ, कमर, हाथ, नाभि, उदर, हृदय, कण्ठ, मुख, नासिका, श्रवण, और नेत्र) हैं। जो लोग इसको सब कुछ माने रहते हैं और आत्म-कल्याण का मार्ग नहीं अपनाते, उन्हें मृत्यु के समय निराश होना पड़ता है।

खास छज्जे गोख जालियां, यामें केती मिलाई धात।

संधो संध समारिया, मिने हिकमत कई हिकात॥४॥

इस शरीर रूपी भवन में विशेष रूप से छज्जे (पलकें व कन्धे), झरोखे (आँखें), और जालियाँ (नासिका और कान) हैं। यह आठ धातुओं (रस, रक्त, माँस, मेद,

अस्थि, मज्जा, शुक्र, और ओज) के मिश्रण से बना है। इस शरीर के अंग-प्रत्यंगों को बहुत उच्च ज्ञान की कला से जोड़ा गया है।

मेहेनत करी केती या पर, बिध बिध बांधे बंध।

जानिए सदा नेहेचल, ए रच्यो ऐसी सनंध॥५॥

इस शरीर के निर्माता (आदिनारायण) ने इसे बनाने में कितना परिश्रम किया होगा। इस शरीर के सभी अंग (हाथ, पैर, सिर इत्यादि) आपस में कितनी कुशलता से जुड़े हुए हैं। यह शरीर इतने सुन्दर तरीके से बनाया गया है कि सामान्य रूप से सोचने पर तो ऐसा लगता है कि यह हमेशा ही हमारे साथ रहने वाला है।

भावार्थ— सृष्टि की प्रत्येक वस्तु आदिनारायण के संकल्प से प्रकट हुई है। उनमें अपूर्व रचना कौशल है।

यद्यपि आदिनारायण के साथ "परिश्रम" शब्द उचित नहीं है, किन्तु ऐसा रचना कौशल को दर्शाने के लिये कहा गया है। मोह के कारण ही प्रतीत होता है कि शरीर हमेशा ही हमारे साथ रहने वाला है।

गुण पख अंग इंद्रियां, सबके जुदे जुदे स्वाद।

तरफ अपनी खँचहीं, खेलत मिने विवाद॥६॥

इस शरीर के गुण, पक्ष, अन्तःकरण, तथा इन्द्रियों की माया में प्रवृत्ति अलग-अलग तरह की है। सभी अपने गुण और स्वभाव के अनुसार तुमको अपनी ओर खींचते हैं। इस प्रकार इनकी प्रक्रिया विवाद जैसी प्रतीत होती है।

भावार्थ— तीनों गुणों की उपस्थिति शरीर में है, जिसमें सत्व गुण की प्रवृत्ति ज्ञान, वैराग्य, एवं उपासना में होती

है। रजोगुण कर्म की आसक्ति में बाँधता है, तथा तमोगुण प्रमाद, आलस्य, एवं निद्रा की ओर जीव को ले जाता है।

मनुष्य में दो प्रकार के स्वभाव (पक्ष) होते हैं। एक होता है बहिर्मुखी अर्थात् बाह्य सुखों की इच्छा, और दूसरा होता है अन्तर्मुखी यानि स्वयं को जानने की प्रवृत्ति।

मन, चित्त, बुद्धि, तथा अहंकार— ये चारों अन्तःकरण कहलाते हैं। मन का कार्य है मनन, चित्त का कार्य है चिन्तन। इसके अन्दर सभी संस्कार निहित रहते हैं। बुद्धि का कार्य है विवेचना करना तथा अहंकार का कार्य है अहं करना।

इसी प्रकार पाँचों इन्द्रियाँ पाँच विषयों (देखने, सुनने, सूँघने, रस लेने, तथा स्पर्श करने) का सेवन करती हैं। ये सभी जीव को अपनी लीला में डुबोना चाहते हैं,

इसलिये इस प्रक्रिया को विवाद की संज्ञा दी गयी है।

या बन थें बाग रंग फूलिया, जानें लेसी सुख अपार।

अधबीच उछेदिया, सो करता गया पुकार॥७॥

इस शरीर रूपी वन से बाग रूपी बाल-बच्चों का परिवार उत्पन्न होता है, जिसमें मोह के सुन्दर-सुन्दर फूल खिले होते हैं। हे जीव! तुम सोचते हो कि इन रिश्तों से मैं बेशुमार सुख पाऊँगा, किन्तु दुर्भाग्यवश इस इच्छा के पूर्ण होने से पूर्व ही जब तुम्हारा शरीर छूट जाता है तो तुम्हें आसक्तिवश रोते ही रहना पड़ता है।

मोहे बाग रंग मंदिरों, सेजड़िँ सोए करार।

सो काढ़े कंठ पकड़ के, गए कल कलते नर नार॥८॥

हे जीव! तुम परिवार रूपी बाग एवं शरीर के अंगों के

सौन्दर्य रूपी मोह-जाल में फँसे रहे। शरीर की आसक्ति रूपी सेज्या पर सोने में ही तुम्हें सुख प्रतीत होता था। लेकिन जब मृत्यु ने गला दबाकर तुम्हें शरीर से बाहर निकाला, तो परिवार के सभी नर-नारी तुम्हारे वियोग में रोते ही रह गये। कोई कुछ भी नहीं कर सका।

ए अनमिलती सों न मिलिए, जाको सांचो नाही संग।

नाहीं भरोसो खिन को, ज्यों रैनी को पतंग॥९॥

हे जीव! इस शरीर का साथ सच्चा नहीं है। यह साथ छोड़ देने पर पुनः प्राप्त नहीं होता, इसलिये इससे मित्रता नहीं करनी चाहिए। जिस प्रकार रात में पतंगा दीपक के ऊपर अपने को बलिदान कर देता है, उसी प्रकार इस शरीर के एक क्षण का भी भरोसा नहीं है।

भावार्थ— शरीर छूटने पर जीव को दूसरा तन धारण

करना पड़ता है। प्रायः वह शरीर पुनः चैतन्य नहीं हो पाता, इसलिये इस चौपाई में शरीर को दोबारा न मिलने वाला कहा गया है।

क्यों रे नेहड़ा यासों कीजिए, जो मिलके करे भंग।

एक रस होइए क्यों तिनसे, नेहेचल नहीं जाको रंग॥१०॥

हे जीव! जो शरीर मिलने के बाद साथ छोड़ जाता है, उससे स्नेह रखने में कोई भी लाभ नहीं है। जिसका प्रेम ही अखण्ड नहीं है, उससे एकरस नहीं होना चाहिए।

भावार्थ— शरीर नश्वर है, इसमें वियोग होना स्वाभाविक है। इसलिये इसके मोह में न पड़कर, आत्म-कल्याण का मार्ग ग्रहण करना चाहिए। एकरस होना प्रेम की वह अवस्था है जिसमें प्रिय और प्रियतमा, अर्थात् आशिक और माशूक, एक हो जायें। दोनों में किसी भी प्रकार का

भेद न रह जाये।

ऐसे कई उजाड़े मन्दिर, ए सब को देवे छेह।

मिलापै में रंग बदले, अधबीच तोड़े नेह॥११॥

हे जीव! यह नश्वर शरीर हर जन्म में तुम्हारा साथ छोड़कर तुम्हारे मन-मन्दिर को उजाड़ बनाता रहा है अर्थात् सूना बनाता रहा है। यह तो प्रत्येक जीव को धोखा देता रहता है। प्रत्येक जन्म में यह प्राप्त होता है, किन्तु उम्र पूरी होने से पहले भी यह साथ छोड़ देता है (रंग बदल देता है)।

भावार्थ- "नानायोनि सहस्राणि म्रयोषितानि वै। " यह जीव हजारों योनियों में भिन्न - भिन्न शरीरों को धारण करता रहा है। जीव तो वही रहता है, लेकिन तन बदलते रहे हैं। ऐसे नश्वर तन से हमेशा साथ रहने की कल्पना

करना नादानी है।

रे जीव सरीर रची सेजड़ी, इत आवे नींद अपार।

ए सूतेही पटकावहीं, पुकार न पीछे बहार॥१२॥

हे जीव! यह देह ऐसी कोमल सेज्या है, जो तुम्हें अज्ञान रूपी गहरी नींद में सुला देती है। उस अवस्था में मृत्यु का आलिंगन करना पड़ता है और तुम्हारी पुकार को उस समय कोई भी नहीं सुनता।

भावार्थ- आत्मिक ज्ञान से विमुख होकर मात्र शरीर को ही खिलाने, पिलाने, एवं सजाने की प्रवृत्ति आसुरी है। अज्ञान रूपी नींद में भटकने से जीव मृत्यु के वशीभूत हो जाता है।

यासों तो मनड़ो माने नहीं, जो छोड़े ए अंत्रीयाल।

उरझाए आप न्यारी रहे, जीव को बांध देवे मुख काल॥१३॥

हे जीव! यद्यपि यह शरीर तुम्हारा साथ छोड़ जाता है, फिर भी तुम्हारे मन की आसक्ति शरीर में ही बनी रहती है। यह धोखेबाज शरीर तुम्हें अपने मोहजाल में उलझाकर स्वयं तो किनारे हो जाता है, किन्तु तुमको मौत के मुँह में सुला देता है।

रे जीव नीके जानिए ए भुलवनी, इत भूले सब कोए।

या रंग रसों जे भूलहीं, तिन करड़ी कसौटी होए॥१४॥

हे जीव! इस बात को अच्छी तरह से जान लो कि यह शरीर ऐसी भुलवनी है, जिसमें संसार के सभी लोग भूले हुए हैं। इसकी आसक्ति के रस में जो जीव फँस जाते हैं, उनको जन्म-जन्मातरों में भटकने का कष्ट भोगना पड़ता

है।

कांटे चुभे दुख पाइए, सेहे न सके लगार।

पर होत है मोहे अचंभा, ए क्यों सेहेसी जम मार॥१५॥

हे जीव! इस शरीर में काँटा चुभने का थोड़ा सा भी कष्ट तुम सहन नहीं कर पाते। उसकी पीड़ा तुम्हें व्याकुल कर देती है, लेकिन मुझे इस बात का बहुत आश्चर्य हो रहा है कि तुम मृत्यु के कष्ट को कैसे सहन कर लेते हो।

द्रष्टव्य— यमराज को मृत्यु का देवता मानना, काले भैंस पर सवार होना, तथा उनके दूतों द्वारा प्राण हरण की बात पौराणिक (गरुड़ पुराण की) मान्यता है। वेदों में इस प्रकार का कहीं भी कोई कथन नहीं है। वस्तुतः यह आलंकारिक कथन है। काला भैंसा तमो गुण एवं अज्ञान का प्रतीक है, जिस पर मृत्यु विराजमान होती है।

इन गफलत के घर में, पड़ेगी बड़ी अगिन।

पीछे लाख चौरासी देह में, जलसी रात और दिन॥१६॥

हे जीव! यदि तूने अपने प्रियतम (परब्रह्म) को नहीं पाया, तो मृत्यु के वशीभूत हो जाने पर तुम्हें अज्ञान में भटकते हुए दुःखों की अग्नि में जलना पड़ेगा। तुम्हें तो चौरासी लाख योनियों में अलग-अलग शरीर धारण कर दिन-रात मायावी कष्टों की अग्नि में जलना पड़ेगा।

ए देखी अजाड़ी आंखां खोल के, याकी तो उलटी सनंध।

ए मोहड़ा लगावे मीठड़ा, पीछे पड़िए बड़े फंद॥१७॥

मैंने सावधानी से जब खाई की तरह फँसाने वाले शरीर को देखा तो यही पाया कि इसकी तो चाल ही उल्टी है। यह देह पहले तो अपने सौन्दर्य की मिठास से मोहित

करती है, तत्पश्चात् जन्म-जन्मान्तरों के जाल में फँसा देती है।

भावार्थ- सामान्य रूप से अच्छी लगने वाली वस्तु का परिणाम अच्छा होना चाहिए किन्तु शरीर के साथ ऐसा नहीं होता, इसलिये शरीर को उल्टी चाल वाला कहा गया है।

किशोरावस्था में सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति नजर आने वाला शरीर वृद्धावस्था में कुरूपता की प्रतिमूर्ति बन जाता है। यौवन काल में शरीर के मोह के कारण विषयों के भोगे हुए संस्कार वृद्धावस्था में और बढ़ जाते हैं। इस प्रकार जन्म-मरण का चक्र चलता आ रहा है, और जीव गर्भ, रोग, शोक, और वियोग आदि दुःखों के जाल में फँसता चला जाता है।

ए अंधेरी है विकट, जाहेर रची जम जाल।

ए पेहेले देखावे सुख सीतल, पीछे जाले अगिन की झाल॥१८॥

शरीर के प्रति आसक्ति उस भयानक रात्रि की तरह है, जो जीव के मृत्यु का जाल तैयार करती है। पहले तो यह मायावी सुख की शीतल अनुभूति कराती है, किन्तु बाद में दुःखों की ज्वाला में जलाती है।

भावार्थ— शरीर के प्रति अत्यधिक आसक्ति होने से जीव को आत्मज्ञान नहीं प्राप्त होता, जिससे वह जन्म-मरण के दुःख की ज्वाला में जलता रहता है। शारीरिक सुखों के प्रति आकर्षण पहले तो सुखद लगता है, किन्तु बाद में कष्टकारी होता है।

ए धुतारी को न धीरिए, जो पलटे रंग परवान।

ए विश्व बधे वैराट को, सो भी निगलसी निरवान॥१९॥

इस छलिए शरीर पर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए जो किसी भी क्षण जीव का साथ छोड़ जाता है। यह सारा ब्रह्माण्ड जिस विराट पुरुष आदिनारायण की वन्दना करता है, यह शरीर उनके भी रूप को निगल जाता है।

भावार्थ— कालमाया के ब्रह्माण्ड में सभी के शरीर प्राकृतिक होते हैं। यहाँ किसी के रूप का निर्धारण शरीर से ही होता है। शरीर के नष्ट होने पर रूप का नष्ट होना या निगल लिया जाना स्वाभाविक है। आदिनारायण के रूप को निगले जाने का तात्पर्य यह है कि महाप्रलय में उनका भी प्राकृतिक शरीर अस्तित्व में नहीं रहता। इस चौपाई के चौथे चरण का यही भाव है।

ए सब मोहे इन मोहनी रे, पर इन बांध्यो न कासों मन।

जीव को यातें बिछड़ते, बड़ी लागी दाझ अगिन॥२०॥

इस मायावी देह रूपी मोहिनी ने सबको मोहित कर रखा है, लेकिन स्वयं को इसने किसी से भी नहीं बाँधा है। इतना होने पर भी जीव को इससे अलग होते समय बहुत अधिक पीड़ा झेलनी पड़ती है।

भावार्थ— जड़ शरीर अपने समय पर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। वह इतना निर्मोही है कि किसी के रोने – बिलखने का उस पर कोई भी असर नहीं पड़ता। इसके विपरीत चेतन जीव शरीर से अलग होते समय मोहवश दुःख का अनुभव करता है।

प्रकरण ॥३३॥ चौपाई ॥३९९॥

अब देह की तरफ का जवाब

रे जीव जी तमें लागी दाझ मुझ बिछड़ते, पर मैं खाक हुई तुम बिना।

तुम मोही सों न्यारे भए, मोहे राखी नहीं किन खिन॥१॥

देह जीव से कहती है कि हे जीव! मुझसे अलग होते समय तुम्हें अवश्य ही कष्ट हुआ, लेकिन मैं क्या करूँ? मेरा अस्तित्व तो तुमसे ही है। तुम जैसे ही मुझसे अलग हुए, किसी ने एक क्षण के लिये भी मुझे घर में नहीं रहने दिया। मुझे अछूत मानकर आग के हवाले कर दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि मैं राख के एक छोटे से ढेर में परिवर्तित हो गयी।

मेरी सेवा जो करते साथीड़े, फूलड़े बिछावते सेज।

सीतल वाए मोहे ढोलते, तिन जारी रेजा रेज॥२॥

मेरे सगे सम्बन्धी जो पहले मेरी सेवा किया करते थे, मेरे लिये फूलों की सेज्या तैयार करते थे, एवं गर्मी के मौसम में पँखे से ठण्डी हवा करते थे, उन्होंने ही मेरे एक-एक कण को जला डाला।

भावार्थ- निर्जीव शरीर को जलाते समय कोई थोड़ी भी उदारता नहीं दिखाता। फूलों की सेज्या बिछाने का मूल भाव होता है- फूलों की तरह कोमल, स्वच्छ, और सुगन्धित सेज्या तैयार करना।

एक बाल टूटे दुख पावते, तिन जारी ले खोरने हाथ।

मनुएँ उतारे या बिध, मेरे सोई संगी साथ॥३॥

मेरे सगे-सम्बन्धी जो पहले एक बाल टूटने पर भी दुःखी हो जाते थे, उन्होंने ही अपने हाथ में लकड़ी लेकर मुझे अच्छी तरह से जला दिया। इस प्रकार सबने

मुझको अपने मन से निकाल दिया।

मैं पाले प्यार करके, सो वैरीड़े भए तिन ताल।

मोसों तो राख्यो ए सनमंध, तुमें डारे ले जम जाल॥४॥

जिन पारिवारिक सम्बन्धियों को मैंने बहुत प्यार से पाला था, वे उसी समय (शरीर छूटने के समय) मेरे वैरी हो गये। मुझे तो उन्होंने आग में जलाकर राख कर दिया तथा तुमको मृत्यु के बन्धनों में पड़े रहने दिया।

तुम बंध पड़े जिन कारने, किया आप सों ज्यों।

मुझ जैसे होए मोहे छेतरी, तुमको दई अगिन त्यों॥५॥

हे जीव! तुम जिन सांसारिक सम्बन्धियों के मोह में पड़कर परब्रह्म को नहीं पा सके, उन्हीं लोगों ने तुम्हारे साथ जैसा व्यवहार किया, वैसा ही मेरे साथ भी किया।

मेरी तरह ही छलिया बनकर उन्होंने मुझे छला अर्थात् अग्नि में जलाकर राख कर दिया और तुमको जन्म-मरण की दुःखमयी अग्नि में डाल दिया।

मैं तो आई तुम खातिर, तुम जानी नहीं सुपन।

मैं तो सुपना हो गई, अब दुखड़े देखो चेतन॥६॥

हे चेतन जीव! मैं तुम्हारे लिये धर्म और मोक्ष का साधन बनकर आयी थी। नश्वर शरीर की महत्ता को तुमने नहीं समझा। तुमसे अलग होने के बाद तो मेरा भी अस्तित्व समाप्त हो गया और तुम्हें जन्म-मरण के दुःखमयी चक्र में भटकने की स्थिति बन गयी।

भावार्थ- यद्यपि शरीर नश्वर है और रोग, वृद्धावस्था आदि के कारण दुःखदायी है, फिर भी यदि इसका सही उपयोग किया जाये तो यह ब्रह्मानन्द प्राप्त करने का

साधन भी है। इसके बिना परब्रह्म प्राप्ति की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

पेहेले क्यों न संभारिए, काहे को पड़िए जम फांस।

लाख चौरासी अगनी, तित जलिए न कीजे बास॥७॥

हे जीव! यदि तुमने अपने को सम्भालकर अध्यात्म के सत्य मार्ग पर चलाया होता तो मृत्यु के बन्धन में नहीं फँसना पड़ता और चौरासी लाख योनियों की दुःखमयी अग्नि में जलकर नहीं रहना पड़ता।

भावार्थ- यजुर्वेद के पुरुष सूक्त में कहा गया है कि "तमेव विदित्वाति मृत्युमेति " अर्थात् उस ब्रह्म को जानकर ही मृत्यु के बन्धनों से मुक्त हुआ जाता है। "नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" अर्थात् इसके सिवाय अन्य कोई भी मार्ग नहीं है। मृत्यु और दुःखों से छूटने का

एकमात्र मार्ग ब्रह्म प्राप्ति है, जिसके मुख्य साधनों (सद्गुरु, शास्त्र ज्ञान, अभ्यास आदि) में शरीर भी है। इसके बिना सभी साधन निरर्थक हो जाते हैं।

मोसों पेहेचान ना कर सके, मेरा मेला तो अधखिन होए।

मेरी तो पेहेचान जाहेर, मुझ जाती देखे सब कोए॥८॥

तुम मेरी वास्तविक पहचान नहीं कर सके, जबकि सारा संसार मुझे अच्छी तरह से जानता है कि मेरा-तुम्हारा मेल तो अति अल्प समय के लिये ही होता है। हर कोई निर्जीव शरीर को जलाने के लिये ले जाते हुए देखता ही है।

भावार्थ- इस चौपाई में आधे क्षण का तात्पर्य बहुत थोड़े समय से है। मनुष्य की उम्र आधे क्षण के लिये कदापि नहीं होती।

तुम जान बूझ मोहे मोहीसों, छोड़ के नेहेचल सुख।

मैं तो आई भले अवसर, पर भूले सो पावे दुख॥९॥

हे जीव! तुमने अखण्ड ब्रह्मानन्द को छोड़ दिया और सब कुछ जानते हुए भी जब मेरे मोह-जाल में फँस गये, तो मैं क्या करूँ? मैं तो तुम्हारे लिये अखण्ड मुक्ति का साधन बनकर आयी थी। तुम्हारे लिये यह सुनहरा अवसर था। जो इस सुन्दर अवसर का लाभ नहीं उठाता, उसे तो दुःखी होना ही पड़ता है।

ए अवसर क्यों भूलिए, जित पाइए सुख अखंड।

या घर बिना सो ना मिले, जो ढूँढ फिरो ब्रह्मांड॥१०॥

जिस मानव तन से अखण्ड ब्रह्मानन्द पाया जाता है, उसे पाकर यह सुन्दर अवसर क्यों खोया जाये। यदि सारे ब्रह्माण्ड में भी खोजा जाये, तो भी यही निष्कर्ष

निकलेगा कि बिना मानव तन के अखण्ड सुख नहीं मिल सकता।

इन पिंड में ब्रह्म दृढ़ किया, नेहेचल सुख परवान।

अब खिन में घर देखिए, ऐसा समे न दीजे जान॥११॥

अब तक मनीषीजनों ने इस शरीर में ही उस ब्रह्म का निवास होना बताया है, जो निश्चित रूप से अखण्ड सुख को देने वाला है। इसलिये हे जीव! अब क्षण भर का (अति अल्प आयु का) यह जो तुम्हें तन मिला है, इसके द्वारा तुम अपने अखण्ड घर (बेहद) को देख लो। इस सुनहरे अवसर को व्यर्थ में न जाने दो।

भावार्थ— गीता में योगेश्वर श्री कृष्ण जी का कथन है कि "ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्येशे तिष्ठति अर्जुन" अर्थात् सभी प्राणियों के हृदय में ईश्वर का वास है। वस्तुतः इसका

मूल भाव यह होता है कि हृदय में स्थित चैतन्य (जीव, आत्मा) ही उस परब्रह्म का साक्षात्कार करता है, इसलिये लाक्षणिक रूप से ही यह बात कही जा सकती है कि ब्रह्म शरीर के अन्दर है। यथार्थ रूप से ब्रह्म का वास इस नश्वर शरीर में नहीं है, यह बात आगे की चौपाइयों में स्पष्ट रूप से कही गयी है।

और उपाय कई करो, पर पाइए न या घर बिन।

अंदर जागके चेतिए, ए अवसर अधखिन॥१२॥

हे जीव! भले तुम कितने ही उपाय क्यों न कर लो, लेकिन इस मानव तन के बिना ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। तुम आन्तरिक रूप से जाग्रत होकर इस बात के लिये सावधान हो जाओ कि ब्रह्म को प्राप्त करना है। यह अवसर आधे क्षण के लिये ही है।

भावार्थ- शरीर ही जीव का निवास स्थान है, जिसके द्वारा ब्रह्म के साक्षात्कार का प्रयास किया जाता है। आन्तरिक रूप से जाग्रत होने का अर्थ है, शरीर और संसार से ध्यान हटाकर अपने निज स्वरूप में स्थित होना। शरीर क्षणभंगुर है। यह किसी भी क्षण साथ छोड़ सकता है, इसलिये इसके साथ को आधे क्षण का कहा गया है। जब तक शरीर है, तभी तक ब्रह्म प्राप्ति का उपाय किया जा सकता है।

कैसे कर याको खोजिए, ए तो कोहेड़ा आकार।

ए ढूँढया बोहोतों कई बिध, पर किनहूँ न पाया पार॥१३॥

उस ब्रह्म को कैसे खोजा जाये? माया का यह शरीर कोहरे (धुन्ध) की तरह है। इसके मोह-जाल (विषयों में आसक्त होने) में फँस जाने पर ब्रह्म का दर्शन नहीं हो

सकता। यद्यपि इस शरीर को साधन बनाकर अनेकों ने बहुत प्रकार से उस ब्रह्म को खोजा, किन्तु कोई भी निराकार के परे जाकर उस ब्रह्म को नहीं पा सका।

बाहेर निकसो तो आप नहीं, और माहें तो नरक के कुंड।

ब्रह्म तो यामें न पाइए, ए क्यों कहिए ब्रह्म घर पिंड॥१४॥

हे जीव! यदि तुम शरीर से बाहर निकलते हो तो शरीर के निर्जीव हो जाने पर उससे तुम्हारा सम्बन्ध टूट जाता है, और यदि शरीर के अन्दर रहते हो तो नरक के कुण्ड (गन्दगी) से पाला पड़ता है। जब इस नश्वर शरीर के अन्दर ब्रह्म का वास ही नहीं है, तो गन्दगी से भरे इस शरीर को ब्रह्म का घर कैसे कहा जा सकता है।

पवन जोत सब्दा उठे, नाड़ी चक्र कमल।

इत कैयों कई बिध खोजिया, यामें ब्रह्म नहीं नेहेचल॥१५॥

योग की क्रियाओं से नाड़ियों के शोधन एवं प्राणायाम सहित ध्यान के अभ्यास से चक्र जाग्रत हो जाते हैं, जिससे अनेक प्रकार की ज्योतियों, १० प्रकार के अनहद शब्दों, तथा पाँच प्रकार के ब्रह्माण्डीय शब्दों (निरञ्जन, ॐ, सोऽहम्, शक्ति, तथा ररं) की अनुभूति होती है। इस प्रकार अनेकों ने कई प्रकार की साधनाओं से उस ब्रह्म को खोजा, किन्तु कोई भी इस नश्वर शरीर के अन्दर ब्रह्म की उपलब्धि नहीं कर सका।

भावार्थ— दस प्रकार के अनहद तो प्राणों के घर्षण से उत्पन्न होते हैं। इनको ब्रह्म की आवाज मान लेना बहुत बड़ी भूल है। इसी प्रकार अनेक प्रकार की ज्योतियों का दर्शन भी ब्रह्म की उपलब्धि नहीं है, बल्कि ये ज्योतियाँ

तथा पाँचों ब्रह्माण्डीय शब्द भी प्रकृति के अन्दर की ही उपलब्धि हैं। शरीर में तो वही सब कुछ है, जो ब्रह्माण्ड में है।

पारब्रह्म क्यों पाइए, ततखिन कीजे उपाए।

कई ढूँढे मांहे बाहेर, बिना सतगुर न लखाए॥१६॥

अब तक के प्रचलित इन मार्गों से भला उस सच्चिदानन्द अक्षरातीत को कैसे पाया जा सकता है, किन्तु अपने आत्म-कल्याण हेतु ब्रह्म प्राप्ति के लिये तो इसी क्षण कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा। अनेकों योगियों एवं ज्ञानी पुरुषों ने उस ब्रह्म को पिण्ड (शरीर) और ब्रह्माण्ड में बहुत खोजा है, किन्तु बिना सद्गुरु के भला परब्रह्म का साक्षात्कार कैसे हो सकता है।

अब संग कीजे तिन गुर की, खोज के पुरुख पूरन।

सेवा कीजे सब अंगसों, मन कर करम वचन॥१७॥

हे जीव! अब तुम उस पूर्ण पुरुष अक्षरातीत का ज्ञान देने वाले सद्गुरु की खोज करो तथा उनकी संगति में रहो। इसके अतिरिक्त परब्रह्म को पाने के लिये सभी अंगों, अर्थात् सच्चे मन, वाणी, एवं कर्म, से उनकी सेवा करो।

सो संग कैसे छोड़िए, जो सांचे हैं सतगुर।

उड़ाए सबे अंतर, बताए दियो निज घर॥१८॥

सच्चिदानन्द परब्रह्म का ज्ञान देने वाले सद्गुरु का सान्निध्य पाने के बाद कभी भी उनकी संगति नहीं छोड़नी चाहिए, क्योंकि सद्गुरु ही सारे संशयों को हटाकर अखण्ड घर की पहचान कराते हैं।

पाइए सुध पूरन से, पैंडा बतावे पार।

सब्द जो सारे सूझहीं, सब गम पड़े संसार॥१९॥

सत्य की पहचान तो पूर्ण सद्गुरु से ही होती है। वे ही निराकार-बेहद से परे परमधाम का मार्ग बताते हैं। उनकी कृपा से ही सभी धर्मग्रन्थों के भेद स्पष्ट होते हैं तथा माया (संसार) की भी पहचान हो जाती है।

भावार्थ- यद्यपि अक्षरातीत ही मूल सद्गुरु हैं, किन्तु उनका आवेश जिस धाम हृदय में विराजमान होता है उन्हीं को पूर्ण सद्गुरु की शोभा मिलती है। यह पद लौकिक ज्ञान या गादी की अपेक्षा नहीं रखता।

पांच तत्व पिंड में हुए, सोई तत्व पांच बाहेर।

पांचों आए प्रले मिने, सब हो गयो निराकार॥२०॥

इस शरीर में भी पाँच तत्व हैं तथा ब्रह्माण्ड में भी पाँच

तत्व हैं। जब महाप्रलय में पिण्ड-ब्रह्माण्ड के पाँचों तत्वों का लय हो जाता है, तो मात्र निराकार ही बचा रहता है।

ए पाँचों देखे विध विध, ए तो नहीं थिर ठाम।

यामें सो कैसे रहे, नेहेचल जाके नाम॥२१॥

मैंने इन पाँचों तत्वों को अच्छी तरह से पहचाना कि ब्रह्माण्ड में कहीं भी इनका अखण्ड स्थान नहीं है। अखण्ड स्वरूप वाला वह ब्रह्म इस नश्वर शरीर या ब्रह्माण्ड में कदापि विराजमान नहीं है।

भावार्थ- संसार के ज्ञानीजन तारतम ज्ञान से अनभिज्ञ होने के कारण ही शरीर या ब्रह्माण्ड के कण-कण में ब्रह्म का स्वरूप मानते हैं। यदि ऐसा होता तो सब कुछ ब्रह्मरूप ही होता। पुनः अज्ञान, रोग, शोक, मृत्यु, और वृद्धावस्था की कल्पना भी न होती।

पारब्रह्म जित रहेत हैं, तित आवे नहीं काल।

उतपन सब होसी फना, ए तो पांचों ही पंपाल॥२२॥

जहाँ परब्रह्म का स्वरूप विराजमान होता है, वहाँ काल स्वप्न में भी नहीं आ सकता। कालमाया के इस ब्रह्माण्ड में उत्पन्न होने वाला प्रत्येक पदार्थ नश्वर है। इस प्रकार ये पाँच तत्व भी नश्वर हैं।

यामें अंतर वासा ब्रह्म का, सो सतगुर दिया बताए।

बिन समझे या ब्रह्म को, और न कोई उपाए॥२३॥

इस नश्वर ब्रह्माण्ड से परे ब्रह्म का वह अखण्ड धाम एवं स्वरूप कहाँ है? इस भेद को मात्र सद्गुरु ही बताते हैं। इस रहस्य को समझे बिना परब्रह्म की प्राप्ति का अन्य कोई भी उपाय नहीं है।

भावार्थ— अन्दर तथा अन्तर में भेद है। अन्दर का अर्थ

होता है भीतर, जबकि अन्तर शब्द का तात्पर्य है भिन्न या परे। वस्तुतः परब्रह्म का धाम, स्वरूप, तथा लीला इस नश्वर ब्रह्माण्ड से परे है।

आंकड़ी अंतरजामी की, कबहूँ न खोली किन।

आद करके अब लों, खोज थके सब जन॥२४॥

सबके मन की बात जानने वाले उस अक्षरातीत परब्रह्म के धाम, स्वरूप, तथा लीला की गुत्थियों को आज तक किसी ने भी सुलझाया नहीं था। यद्यपि सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आज तक सभी लोग खोज-खोजकर थक गये।

ए पूरन के प्रकास थें, खुल गया अंतर सब।

सो क्यों रहेवे ढांपिया, प्रगट होसी अब॥२५॥

पूर्ण सद्गुरु के ज्ञान से सभी आध्यात्मिक रहस्य स्पष्ट

हो गये। वह अलौकिक ब्रह्मज्ञान अब किसी भी प्रकार से छिपा नहीं रहेगा। निश्चित ही वह ज्ञान अब चारों ओर फैल जायेगा।

जिनको सब कोई खोजहीं, ए खोली आंकड़ी तिन।

तो इत हुई जाहेर, जो कारज है कारन॥२६॥

जिस सच्चिदानन्द परब्रह्म को सभी ऋषि, मुनि, एवं भक्तजन खोजते रहे हैं, उन्होंने ही श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर सारे रहस्यों से पर्दा उठाया है। कार्य-कारणवश अक्षरातीत को इस संसार में आना पड़ा जिससे ब्रह्मवाणी का प्रकटन हुआ।

भावार्थ- परब्रह्म के धाम, स्वरूप, तथा लीला सम्बन्धी गुत्थियों को आज दिन तक किसी ने भी (श्री जी के अतिरिक्त) स्पष्ट नहीं किया था। माया का खेल देखने के

लिये ब्रह्मसृष्टियों का इस संसार में आना कार्य है तथा इश्क-रब्द कारण है। इसी प्रकार अक्षरातीत के इस नश्वर जगत में आने का मुख्य कारण ब्रह्मसृष्टि का आना ही है।

घर ही में न्यारे रहिए, कीजे अंतरमें बास।

तब गुन बस आपे होवहीं, गयो तिमर सब नास॥२७॥

हे जीव! आप इस शरीर रूपी अपने घर में रहते हुए भी इसके मोह से पूर्णतया अलग रहिए और अपना ध्यान इस पिण्ड-ब्रह्माण्ड से परे परमधाम में बनाये रखिए। प्रियतम परब्रह्म के ध्यान से सत्व, रज, और तम इन तीनों गुणों पर अनायास ही विजय प्राप्त हो जायेगी और त्रिगुणातीत अवस्था प्राप्त होगी। इस अवस्था में आते ही अज्ञानता का सम्पूर्ण अन्धकार भी समाप्त हो जायेगा।

या बिध मेला पिउ का, पीछे न्यारे नहीं रैन दिन।

जल में न्हाइए कोरे रहिए, जागिए मांहें सुपन॥२८॥

इस प्रकार धाम धनी अक्षरातीत से मिलन होता है। यह स्थिति प्राप्त होने पर, चाहे रात्रि हो या दिन, किसी भी समय अक्षरातीत से अलग होने का भाव नहीं होगा। इस प्रकार जल में खेलने वाले कमल की भांति आप इस मोहजल में रहते हुए भी इससे सर्वथा अलग ही रहेंगे तथा सपने के संसार में स्वयं को जाग्रत कर लेंगे।

भावार्थ- इन चौपाइयों में अति सम्मानपूर्वक "जी" का सम्बोधन आश्चर्य प्रकट करता है। यद्यपि यह सम्बोधन शरीर द्वारा जीव के लिये किया गया है, किन्तु इसे व्यावहारिक रूप में सुन्दरसाथ के लिये भी प्रयुक्त कर सकते हैं।

या सुपन तें सुख उपज्यो, जो जाग के कीजे विचार।

आतम भेली परआतमा, सुपन भेलो संसार॥२९॥

यदि जाग्रत होकर विचार किया जाये तो यही निष्कर्ष निकलता है कि इस नश्वर तन से ही अखण्ड का वह सुख प्राप्त होता है, जिसमें आत्मा अपने मूल तन परात्म से एकाकार हो जाती है तथा यह नश्वर तन संसार में मिल जाता है।

भावार्थ- ध्यान की गहन अवस्था या ब्रह्मानन्द में डूबने की स्थिति में आत्मा को अपने मूल तन (परात्म) का ही आभास होता है। उस समय उसे अपने पञ्चभौतिक तन या इस संसार की कोई प्रतीति नहीं होती। इसे ही कहते हैं- "आतम भेली परआतमा, सुपन भेलो संसार।"

इन बिध लाहा लीजिए, अनमिलती का रे यों।

सुखड़ा दिया धुतारिए, याको बुरी कहिए क्यों॥३०॥

इस तरह इस नश्वर शरीर का लाभ लेना चाहिए। जो शरीर छलिया (हमेशा साथ न देने वाला) होते हुए भी प्रियतम का अखण्ड सुख दिलाता है, उसे बुरा कैसे कहा जा सकता है।

जो सुख याथें उपज्यो, सो कहयो न किन्हूं जाए।

पात्र होए पूरा प्रेम का, तिनका रस ताही में समाए॥३१॥

इस प्रकार इस नश्वर मानव तन से अनन्त ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है, जिसका वर्णन करने में कोई भी व्यक्ति सक्षम नहीं है। प्रेम का रस तो वे ही चख सकते हैं जिनमें पात्रता होती है। यह रस तो वास्तव में ब्रह्मसृष्टियों का है और वही इसको ग्रहण कर पाती हैं।

ए वतनी सों गुझ कीजिए, जो खँचे तरफ वतन।

प्रेमै में भीगे रहिए, पिउ सों आनंद घन॥३२॥

परमधाम के अनन्य प्रेम की बातें केवल उन ब्रह्मसृष्टियों से ही करनी चाहिए, जो दूसरों को परमधाम की ओर खींचती हैं। प्रेम और आनन्द के घनीभूत (जमे हुए) स्वरूप, अर्थात् अनन्त प्रेम और आनन्द के सागर, उस अक्षरातीत के प्रेम में हमेशा सराबोर रहना चाहिए।

महामत पिआ संग विलसहीं, सुख अखंड इन पर।

धन धन प्रपंच ए हुआ, धन धन सो या मंदिर॥३३॥

अब श्री महामति जी कहते हैं कि यह मिथ्या शरीर, जो जीव का निवास स्थान है, धन्य-धन्य है, क्योंकि इसके द्वारा ही अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत के प्रेम में डूबा जाता

है और अखण्ड आनन्द की प्राप्ति की जाती है।

प्रकरण ॥३४॥ चौपाई ॥४३२॥

राग सिंधुड़ा

प्रकरण ३५-४० उस समय उतरे, जब श्री जी मन्दसौर में सुन्दरसाथ सहित विरक्त भेष में विराजमान थे और कृपाराम जी उदयपुर का दुःख भरा समाचार लेकर आये। सुन्दरसाथ के कष्टों की निवृत्ति के लिये ये छः प्रकरण श्री महामति जी के धाम हृदय से फूट पड़े। इन प्रकरणों का श्रद्धापूर्वक पाठ सुन्दरसाथ को लौकिक कष्टों से छुटकारा दिलाता है।

वालो विरह रस भीनों रंग विरहमां रमाड़तो,

वासना रुदन करे जल धार।

आप ओलखावी अलगे थयो अमथी,

जे कोई हुती तामसियों सिरदार॥१॥

हे प्राणवल्लभ अक्षरातीत! विरह का खेल देखने वाली, विरह के रस में डूबी हुई, हम आत्माएँ रोते हुए आँसुओं की धारा बहा रही हैं। प्रमुख तामसी सखियों में आप अपनी पहचान देकर ओझल हो गये हैं।

भावार्थ- यद्यपि रोने का कार्य जीव का है, आत्मा का नहीं। आत्मा तो मात्र द्रष्टा है, किन्तु जीव के तन द्वारा आत्मा का नाम लिये जाने से यह बात कही गयी है कि आपकी आत्मायें रो रही हैं। परमधाम की वाहिदत (एकदिली) में सरदार (प्रमुख), अथवा सात्विकी, राजसी, और तामसी का भेद नहीं है। ये सारी बातें ब्रज, रास, एवं जागनी लीला से सम्बन्धित हैं।

कलकली कामनी वदन विलखाविया,

विश्वमां वरतियो हाहाकार।

उदमाद अटपटा अंग थी टालीने,

माननी सहुए मनावियो हार॥२॥

हे धनी! आपकी दुःखी अँगनाओं के चेहरों पर बिलख – बिलखकर रोने का करुण दृश्य है। इस समय सम्पूर्ण विश्व में दुःख फैलने से हाहाकार मचा हुआ है। आपने अपनी अँगनाओं के हृदय में जो इश्क के बड़ा होने का भाव था, उसे हटाकर हार मनवा ली है।

भावार्थ- "बिलखना" रोने की वह प्रक्रिया है, जिससे जोर-जोर से सिसकियाँ आती हैं। अर्धांगिनी अपने प्रियतम से प्रेम का मान रखती हैं, इसलिये उसे मानिनी कहते हैं।

पतिव्रता पल अंग थाए नहीं अलगियो,
न कांई जारवंतियो विना जार।
पात्रियो पिउ थकी अमें जे अभागणियों,
रहियो अंग दाग लगावन हार॥३॥

इस संसार में पतिव्रता स्त्री एक पल के लिये भी अपने पति से अलग होना पसन्द नहीं करती तथा कोई प्रेमिका भी अपने प्रेमी से अलग नहीं रह पाती, किन्तु एक हम ऐसी अभागिन हैं, जो पतिव्रता कहलाने पर भी अपने प्रियतम से दूर (माया में) हैं और अपने प्रेम पर कलंक लगवा रही हैं।

स्या रे एवा करम करया हता कामनी,

धाम मांहे धणी आगल आधार।

हवे काढो मोहजल थी बूडती कर ग्रही,

कहे महामती मारा भरतार॥४॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरे प्रियतम् ! हमने परमधाम में आपके प्रति ऐसा कौन सा खोटा कार्य किया था, जिसके परिणाम स्वरूप हमें ये दुःख भरे दिन देखने पड़ रहे हैं। अब आप भवसागर में डूबती हुई अपनी अँगनाओं को हाथ पकड़कर निकालिये।

प्रकरण ॥३५॥ चौपाई ॥४३६॥

हारे वाला रल झलावियो रामतें रोवरावियो,

जुजवे पर्वतों पाड़या रे पुकार।

रणवगडा मांहे रोई कहे कामनी,

धणी विना धिक धिक आ रे आकार॥१॥

हे मेरे वाला जी! इस खेल में माया ने हमें इतना दुःखी किया है और रुलाया है कि हम अलग-अलग पहाड़ों में जोर-जोर से बिलख रही हैं। दुःखों से तपने वाले इस रेगिस्तान रूपी संसार में रो-रोकर हम अँगनायें कह रही हैं कि हे धनी! आपके बिना इस शरीर को धिक्कार है, धिक्कार है।

वेदना विखम रस लीधां अमें विरह तणां,

हवे दीन थई कहूं वारंवार।

सुपनमां दुख सहया घणां रासमां,

जागतां दुख न सेहेवाए लगार।।२।।

हे धनी! आपके विरह में हमने असहनीय कष्टों का अनुभव किया है। अब हम दीन (यतीम, जिसके पास कुछ भी न हो) होकर आपसे बारम्बार यह बात कह रही हैं कि स्वप्न के ब्रह्माण्ड व्रज में ५२ दिन तक विरह का कष्ट देखा, और उससे भी अधिक विरह का कष्ट रास में अन्तर्धान लीला में देखा, किन्तु इस जागनी के ब्रह्माण्ड में जाग्रत हो जाने पर थोड़ा भी विरह का कष्ट नहीं सहा जाता।

भावार्थ— व्रज में घर और सम्बन्ध का कुछ भी ज्ञान

नहीं था। रास में सम्बन्ध का बोध तो था, किन्तु निजघर का नहीं, इसलिये विरह सहन किया जा सका। जागनी ब्रह्माण्ड में सारे रहस्यों का पता चल जाने पर विरह का कष्ट असह्य होता है।

दंत तरणां लई तारूणी तलफियो,

तमें बाहो दाहो दीन दातार।

खमाए नहीं कठण एवी कसनी,

राखो चरण तले सरण साधार॥३॥

दुःखियों के हृदय में आनन्द रस का संचार करने वाले हे प्रियतम! आपकी अँगनाएं अपने दाँतों में तिनका दबाकर तड़प रही हैं। आप उनकी विरहाग्नि को बुझाइए। अब इस प्रकार की कठिन परीक्षा नहीं सही जाती। शरणागतों के जीवन के आधार, हे मेरे धाम धनी! आप

अपनी अँगनाओं को अपने चरणों की छाँव में रखिए।

भावार्थ- "दाँतों में तिनका दबाना " एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है कि हम अपनी भूलों पर प्रायश्चित्त करते हैं। हमारे पास अब आपके प्रति बोलने के लिये कोई भी शब्द नहीं है। हम सुख या दुःख में धनी से कितना प्रेम करते हैं, यह हमारे लिये एक बहुत बड़ी कसौटी है।

हवे हारया हारया हूँ कहूँ वार केटली,

राखो रोतियो करो निरमल नार।

कहे महामती मेहेबूब मारा धणी,

आ रे अर्ज रखे हांसीमा उतार॥४॥

श्री महामति जी कहते हैं कि मेरे प्राण जीवन प्रियतम ! अब मैं इसी बात को कितनी बार कहूँ कि मैं हार गई ,

हार गई। हमारा रोना-धोना बन्द कराकर अपने प्रेम-रस से हमें निर्मल कीजिए और हाँ! मेरी इस प्रार्थना को आप अवश्य ही स्वीकार कीजिए। इसे हँसी में टाल मत दीजिएगा।

प्रकरण ॥३६॥ चौपाई ॥४४०॥

हारे वाला बंध पड़या बल हरया तारे फंदड़े,

बंध विना जाए बांधियो हार।

हंसिए रोइए पड़िए पछताइए,

पण छूटे नहीं जे लागी लार कतार॥१॥

हे वाला जी! आपके द्वारा इस खेल के फन्दे में आने से हम माया के बन्धनों में फँस गयी हैं। अब हमारी सारी शक्ति (ज्ञान, प्रेम, विवेक इत्यादि) क्षीण हो गयी है। देखने में कोई प्रत्यक्ष बन्धन तो नहीं दिखाई पड़ता , लेकिन सभी अँगनाएं पंक्तिबद्ध होकर किसी न किसी रूप में माया से बँधी हुई हैं। इससे निकलने के लिये कोई कितना भी रोए, हँसे, या पश्चाताप करे, लेकिन माया का बन्धन ऐसा विकट है कि वह छूटता ही नहीं। इसमें फँसते जाने वालों की लम्बी पंक्तियां लगी हुई हैं।

जेहेर चढ़यो हाथ पांउं झटकतियो,

सरवा अंग साले कोई सके न उतार।

समरथ सुखथाय साथने ततखिण,

गुणवंता गारुडी जेहेर तेहेने तेणी विधें झार।२॥

जिस प्रकार किसी व्यक्ति के शरीर में जहर फैल जाने पर उसके सभी अंगों में पीड़ा होने लगती है तथा वह अपने हाथों और पैरों को पटकने लगता है, उसी प्रकार हे धनी! हमारे इन तनों में भी माया का जहर फैल गया है, जिससे हम दुःखी हैं। इस माया के जहर को कोई भी अन्य व्यक्ति उतारने में समर्थ नहीं है। जैसे कोई गुणवान ओझा अपने मन्त्र-बल से जहर को उतार देता है, उसी प्रकार आप ही तारतम वाणी के रस से हमारे विष को उतारने में समर्थ हैं। हे प्राणवल्लभ! हमें इसी क्षण विष से रहित कर दीजिए, ताकि हम सभी आनन्द में मग्न हो

जायें।

भावार्थ- "हाथ-पाँव पटकना" एक मुहावरा है जिसका अर्थ होता है- व्याकुलता प्रकट करना। यहाँ यह कथन इस सन्दर्भ में प्रयुक्त हुआ है कि जिस प्रकार विष से व्याकुल व्यक्ति विष न उतर पाने पर अपने हाथों और पैरों को झटकने लगता है, उसी प्रकार माया के विष (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, और ईर्ष्या) से व्याकुल सुन्दरसाथ प्रायश्चित के रूप में अपने हाथ-पाँव पटक रहे हैं। बेहद वाणी ३१/१३७ में माया के विष को उतारने के सम्बन्ध में कहा गया है-

तारतम रस बानी कर, पिलाइये जाको।

जेहेर चढ़या होय जिमीका, सुख होवे ताको॥

माहें धखे दावानल दसो दिसा,

हवे बलण वासनाओं थी निवार।

हुकम मोहथी नजर करो निरमल,

मूल मुखदाखी विरह अंग थी विसार॥३॥

इस संसार की दशों दिशाओं (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ईशान, ऊपर, और नीचे) में विषयों की दावाग्नि जल रही है। इनमें झुलसने वाली आत्माओं को बचा लीजिए। हे प्रियतम! अपने हुक्म से इनकी दृष्टि को माया से हटाकर स्वच्छ कर दीजिए और अपना नूरी सुन्दर स्वरूप दिखाकर हृदय से विरह के कष्ट को दूर कर दीजिए।

भावार्थ— वन में एक वृक्ष की अग्नि दूसरे वृक्ष तक पहुँचकर उसे भी जला देती है, विषय का विष भी उसी प्रकार है। विषयों का जितना ही सेवन किया जाये,

दावाग्रि की तरह उनकी इच्छा उतनी ही बढ़ती जाती है।
प्रियतम के मुखारविन्द के दर्शन से ही शान्ति मिलती है।
इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।

छल मोटे अमने अति छेतरया,

थया हैया झांझरा न सेहेवाए मार।

कहे महामती मारा धणी धामना,

राखो रेतियों सुख देयो ने करार॥४॥

इस ठगिनी माया के लुभावने छल ने हमें बहुत अधिक
ठगा है, जिससे हमारा हृदय छलनी हो गया है। अब
इसकी मार सही नहीं जाती। श्री महामति जी कहते हैं
कि हे मेरे धाम के धनी! अब हमारा रोना बन्द कराकर
परमधाम का अखण्ड सुख दीजिए, जिससे हमारे हृदय
को सुकून (शान्ति) मिल सके।

प्रकरण ॥३७॥ चौपाई ॥४४४॥

केम रे झंपाए अंग ए रे झालाओ,

वली वली वाध्यो विख विस्तार।

जीव सिर जुलम कीधो फरी फरी,

हठियो हरामी अंग इंद्री विकार॥१॥

हे धाम धनी! हृदय में उठने वाली विरह की लपटों को कैसे बुझायें? माया के विष का विस्तार तो दिन-पर-दिन बढ़ता ही जा रहा है। अन्तःकरण (मन, चित्त, बुद्धि, तथा अहंकार) एवं इन्द्रियों के हठी तथा पापी विकारों ने जीव के ऊपर बारम्बार अत्याचार किया है।

भावार्थ- अन्तःकरण तथा इन्द्रियों के बिना जीव कोई भी कार्य नहीं कर सकता। इनके अन्दर उत्पन्न होने वाले विकारों से ही वह माया के बन्धन में फँस जाता है, अन्यथा अपने मूल रूप में वह मात्र द्रष्टा है।

झांप झालाओ हवे उठतियो अंगथी,

सुख सीतल अंग अंगना ने ठार।

बाल्या वली वली ए मन ए कबुधें,

कमसील काम कां कराव्या करतार॥२॥

हे धनी! आप हमारे हृदय से उठने वाली विरह की अग्नि की लपटों को बुझा दीजिए। अपने प्रेम का शीतल सुख देकर अँगनाओं के हृदय को पूर्ण रूप से तृप्त कर दीजिए। कुबुद्धि वाले इस मन ने हम अँगनाओं को बार-बार माया में भटकाया है। न जाने क्यों हमसे माया में नीच कर्म कराये गये?

भावार्थ- "करतार" शब्द का प्रयोग यद्यपि अक्षर – अक्षरातीत के लिये होता है, किन्तु प्रश्न यह होता है कि क्या अक्षरातीत भी अपनी आत्माओं से खोटे कर्म करवा सकते हैं? कदापि नहीं! इस चौपाई में करतार शब्द

सम्बोधन है। यजुर्वेद में कहा गया है – "यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रीयते" अर्थात् जिस मन के बिना कोई भी कार्य नहीं होता। स्पष्ट है जिस मन को बारम्बार माया में फँसाने वाला कहा गया है, उसने ही ब्रह्मसृष्टियों के जीवों से खोटे कर्म करवाये जिसका दाग ब्रह्मसृष्टियों के नाम के साथ जुड़ जाता है।

गुण पख इंद्री वस करी अबलीस ने,

अंगना अंग थाप्यो दई धिकार।

अर्थ उपले एम केहेवाइयो वासना,

फरी एणे वचने दीधी फिटकार॥३॥

इब्लीश ने हमारी इन्द्रियों (ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों), पक्ष (जाग्रत, स्वप्न, एवं सुषुप्ति) एवं गुणों (सत्त्व, रज, एवं तम) को अपने अधीन कर लिया है।

इस इब्लीश की बैठक हमारे दिलों में भी हो गयी है , लेकिन दोषी हमें ही ठहराया जा रहा है। यद्यपि बाह्य अर्थों में तो हमें ब्रह्मसृष्टि कहा जा रहा है , किन्तु इन शब्दों की शोभा देकर एक प्रकार से हमें लज्जित ही किया जा रहा है।

भावार्थ— कतेब परम्परा में "इब्लीश" का अर्थ होता है, वह शक्ति जो रूह को अल्लाह तआला से दूर करने का प्रयास करे। वैदिक परम्परा में इसे कलियुग कहा गया है, जिसका तात्पर्य होता है, अज्ञान रूपी अन्धकार। मन में अज्ञान या तमोगुण का अन्धकार छा जाने पर वह चञ्चल हो जाता है, जिससे भक्ति दूर हो जाती है।

खुलासा में कहा है— "वेदे नारद कहयो मन विष्णु को, जाको सराप्यो प्रजापति।" कतेब-परम्परा में जिस प्रकार अजाजील के मन की शक्ति इब्लीश है, उसी प्रकार वेद—

परम्परा में विष्णु के मन का रूप नारद है। वस्तुतः यह ऐतिहासिक प्रसंग न होकर आलंकारिक है। पौराणिक मान्यता में नारद जी को ब्रह्मा जी के श्रापवश सर्वत्र भ्रमण करते हुए दर्शाया गया है, किन्तु ज्ञान का प्रकाश मिलने पर नारद जी को वीणा के साथ आराधना एवं ध्यान करते हुए भी दिखाया गया है। तात्पर्य यह है कि मन में अज्ञान या तमोगुण आने पर परमात्मा से दूर कर देता है, तथा ज्ञान और सात्विकता आने पर परमात्मा की ओर ले जाता है। "मनः एव मनुष्याणां बन्धन मोक्ष कारणम्।"

कतेब परम्परा में नमाज के समय इब्लीश के डर से तलवार रखने की बात नादानी है। इब्लीश अर्थात् मन के अन्दर के तमोगुण को हटाना ही इब्लीश को मारना है। इब्लीश को देहधारी (नारद आदि) मानना अनुचित है।

मांहेले माएने जोपे ज्यारे जोइए,

त्यारे दीधी तारुणी तन तछकार।

कलकली महामती कहे हो कंथजी,

एवा स्या रे दोष अंगनाओं ना आधार॥४॥

यदि अन्दर के भावों से देखा जाये तो यह स्पष्ट होता है कि आपने हम अँगनाओं को इस माया में भेजकर शरीर काटने जैसी पीड़ादायक सजा दी है। बिलखती हुई महामति जी कह रही हैं कि हे प्राणाधार प्रियतम ! इसमें हम अँगनाओं का क्या अपराध है?

द्रष्टव्य— अक्षरातीत कभी भी किसी प्रकार की पीड़ा नहीं दे सकते। पीड़ादायक सजा पाने की बात केवल प्रेममयी उलाहने के रूप में कही गयी है।

प्रकरण ॥३८॥ चौपाई ॥४४८॥

हारे वाला कारे आप्या दुख अमने अनघटतां,

ब्राध लगाडी विध विध ना विकार।

विमुख कीधां रस दर्ई विरह अवला,

साथ सनमुख मांहे थया रे धिकार॥१॥

हे मेरे प्रियतम! आपने हमें माया में कभी न समाप्त होने वाला दुःख क्यों दे दिया? हमारे दिल में विषय-विकारों के अमिट रोग भी लगा दिये। अपनी शोभा एवं श्रृंगार के दीदार से दूर हटाकर उलटे विरह के ही दुःखदायी रस में डुबो दिया। इस प्रकार सुन्दरसाथ के बीच में मुझे लज्जित होना पड़ रहा है।

भावार्थ- माया से संयोग होने के कारण जीव को ही विषय-विकारों के रोग लगते हैं, आत्मा को नहीं। यह अक्षरातीत की नहीं, बल्कि माया की लीला कही जायेगी। चौपाई में लाक्षणिक एवं उलाहना देने की भाषा

प्रयोग में लायी गयी है, इसलिए ऐसा प्रतीत हो रहा है।

अनेक रामत बीजी हती अति घणी,

सुपने अग्राह ठेले संसार।

उघड़ी आंख दिन उगते एणे छले,

जागतां जनम रूडा खोया आवार।२॥

हे धनी! परमधाम में तो बहुत अधिक सुन्दर दूसरी रामतें भी थीं, लेकिन आपने हमें इस न रहने योग्य झूठे संसार में धकेल दिया (भेज दिया)। तारतम ज्ञान के उजाले में जब हम अपनी आँखें खोलकर जाग्रत हुए, तो यह स्पष्ट हुआ कि इस जागनी ब्रह्माण्ड में आने का सुन्दर अवसर (सुन्दर जन्म) हमने खो दिया।

सनमुख तमसूं विरह रस तम तणो,

कां न कीधां जाली बाली अंगार।

त्राहि त्राहि ए वातों थासे घेर साथमां,

सेहेसूं केम दाग जे लाग्या आकार॥३॥

हे धनी! परमधाम के मूल मिलावे में तो मैं आपके सामने ही बैठी हुई हूँ, लेकिन इस संसार में मैं आपके विरह के रस में तड़प रही हूँ। आपने वहाँ ही मुझे विरह की अग्नि में जलाकर अँगारा क्यों नहीं बना दिया? अब इस संसार में दुःखों से बचने के लिए मैं जो त्राहि-त्राहि की पुकार कर रही हूँ, यह सारी बातें परमधाम में सुन्दरसाथ के बीच में होंगी। यहाँ के तन के माध्यम से मेरे ऊपर गुनाहों का जो दाग लगा है, उसे मैं परमधाम में सुन्दरसाथ के बीच में कैसे सहन करूँगी?

विरह थी विछोडी दुख दीधां विसमां,

अहनिस निस्वासा अंग उठे कटकार।

दुख भंजन सहु विध पिउजी समरथ,

कहे महामती सुख देंग सिणगार॥४॥

मेरे प्रियतम! आपने अपने विरह से भी अलग करके इस मायावी संसार का कठिन दुःख दिया, जिसकी आँहों से दिन-रात हमारे हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं। आप तो सभी प्रकार के दुःखों को मिटाने में हर प्रकार से समर्थ हैं। श्री महामति जी कहते हैं कि हे धनी ! आप अपने श्रृंगार का सुख हमें दीजिए, अर्थात् हमारे धाम-हृदय में अपने नख से शिख तक के श्रृंगार सहित विराजमान हो जाइए।

भावार्थ- पूर्व की चौपाइयों में विरह के कष्टों का वर्णन किया गया है और इस चौपाई में विरह से भी हटाकर

लौकिक कष्टों को भोगने का वर्णन किया गया है। कलस हिंदुस्तानी में कहा गया है— "एता सुख तेरे विरह में, तो सुख होसी कैसा विहार।" यद्यपि विरह का कष्ट सहा जा सकता है, क्योंकि उसमें पल – पल प्रियतम की सान्निध्यता का अहसास होता है, किन्तु धनी के विरह से रहित होकर माया का कष्ट सहना बहुत ही दुःखमयी है। जिस प्रकार दुःख में कलेजे के टुकड़े-टुकड़े होने की बात की जाती है, उसी प्रकार यहाँ हृदय (दिल) के टुकड़े-टुकड़े होने का प्रसंग है।

प्रकरण ॥३९॥ चौपाई ॥४५२॥

हारे वाला अग्नि उठे अंग ए रे अमारड़े,
 विमुख विप्रीत कमर कसी हथियार।
 स्वाद चढ़या स्वाम द्रोही संग्रामें,
 विकट बंका कीधा अमें आसाधार॥१॥

हे मेरे धनी! हमारे हृदय में प्रायश्चित की यह अग्नि जल रही है कि हमने आपसे विमुख होकर अपना प्रेम खो दिया है तथा काम, क्रोध आदि मायावी विकारों के हथियार लेकर आपसे लड़ने के लिये तैयार हो गये हैं। हे प्रियतम! आपसे द्रोह रूपी युद्ध का हमें चस्का (स्वाद) लग गया है। इस प्रकार हमने बहुत ही भयंकर एवं उल्टा काम किया है।

भावार्थ- इस चौपाई में प्रायश्चित की अग्नि के जलने का प्रसंग है न कि विरह की क्योंकि विरह से ही प्रेम प्रकट होता है एवं प्रियतम का दीदार होता है, जबकि इस

चौपाई में स्वयं को धनी से विमुख एवं प्रेम से रहित कहा गया है। निसबत की अवहेलना करके माया में डूबना ही धाम धनी से द्रोह करना है।

कुकरम कसाव जुध कई करावियां,

पलीत अबलीस अम मांहे बेसार।

जागतां दिन कई देखतां अमने छेतरया,

खरा ने खराब ए खलक खुआर।।२।।

हे धाम धनी! इस नीच इब्लीश को हमारे अन्दर बैठाकर आपने हमसे कई अनुचित युद्ध एवं खोटे कर्म करवाये हैं। ज्ञान के उजाले में जाग्रत हो जाने पर भी इस इब्लीश ने हमें कई बार ठगा है। निश्चित रूप से यह सभी प्राणियों को पथभ्रष्ट एवं तिरस्कृत करने वाला है।

भावार्थ— धनी हमें माया से निकालना चाहते हैं और

हम विषयों में फँसकर माया के अधीन हो जाते हैं। उस समय हमारे हृदय में धनी का प्रेम नहीं रह जाता। इसी प्रक्रिया को धनी से युद्ध करना कहते हैं। वाणी का ज्ञान होने पर भी यदि हमारे हृदय में प्रियतम के प्रति प्रेम नहीं है, तो यह मन रूपी इब्लीश हमें माया में भटका सकता है।

ओलखी तमने अमें जुध कीधां तमसूं,

मन चित बुध मोह ग्रही अहंकार।

ए विमुख बातों मोटे मेले वंचासे,

मलसे जुथ जहां बारे हजार॥३॥

मेरे प्राणवल्लभ! ज्ञान दृष्टि से आपकी पहचान कर लेने के बाद भी मैंने आपसे युद्ध किया क्योंकि मेरे मन, चित्त, बुद्धि मोह एवं अहंकार से ग्रसित थे। यहाँ की बारह हजार

ब्रह्मसृष्टियाँ जब अपने मूल तनों में जाग्रत होंगी, तो हमारे द्वारा किये हुए इन उल्टे कामों की चर्चा सबके सम्मुख होगी।

कहे महामती हूं गांऊं मोहोरे थई,

पण विमुख विधो वीती सहु मांहे नर नार।

धाम मांहे धणी अमें ऊंचूं केम जोईसूं,

पोहोंचसे पवाड़ा परआतम मोंझार॥४॥

श्री महामति जी कहती हैं कि ये सारी बातें मैं आगेवान बनकर ही कह रही हूँ किन्तु इस माया में उल्टी राह तो सब सुन्दरसाथ ने अपना रखी है। हे धनी! सबसे चिन्तनीय बात तो यह है कि परात्म में जाग्रत होने के बाद यहाँ का सारा प्रसंग जब वहाँ वर्णित किया जायेगा, तो हम आपके सामने आँखें मिलाकर कैसे देखेंगे?

प्रकरण ॥४०॥ चौपाई ॥४५६॥

राग श्री

यह प्रकरण सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्तर्धान के पश्चात्, श्री इन्द्रावती जी के विरह और समर्पण को दर्शाकर, सुन्दरसाथ को भी उसी रहनी पर लाने के सम्बन्ध में उतरा है।

करनी तुमारी मेरी मैं तोली, जैसे सत असत।

हो धनी मेरे, एती है तफावत॥१॥

हे मेरे धाम धनी! जब मैंने अपनी करनी तथा आपकी करनी (मेहर) का मूल्यांकन किया, तो मुझे इतना अन्तर मिला जितना अन्तर झूठ और सत्य में होता है।

भावार्थ- सच्चिदानन्द अक्षरातीत की करनी का तो सत्य होना स्वाभाविक है, किन्तु अपनी करनी को झूठा कहने का मुख्य आशय अपने अहं का त्याग एवं समर्पण भावना

को दर्शाना है।

पिया ऐसी निपट मैं क्यों भई, कठिन कठोर अति ढीठ।

श्री धाम धनी पेहेचान के, फेर फेर देत मैं पीठ॥२॥

हे मेरे धाम धनी! मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मैं इस प्रकार बिल्कुल ही कठिन, कठोर, और निडर दिल वाली क्यों हो गयी? मैं तो अपने प्राणवल्लभ को पहचान कर भी उन्हें पीठ दिये रही।

अंदर परदा उड़ाइया, तो भी न बदल्या हाल।

नकस न मिटयो मोह मूल को, ताथें नजरों न नूरजमाल॥३॥

आपने अपने तारतम ज्ञान से हमारे अज्ञान रूपी परदे को हटा दिया, फिर भी मेरी रहनी नहीं बदली अर्थात् मैं माया को छोड़कर परमधाम के प्रेम को नहीं ले सकी।

इसका परिणाम यह हुआ कि मेरे हृदय से माया का असर जा नहीं सका और मैं अपने प्राण प्रियतम का दीदार नहीं कर सकी।

इन इंद्रियन की मैं क्या कहूं, ए तो अवगुन हीं की काया।

इन से देखूं क्यों साहेब, एही भई आड़ी माया॥४॥

जब यह शरीर ही अवगुणों का भण्डार है तो मैं इन इन्द्रियों के विषय में क्या कहूँ। माया के विषयों में इनके फँस जाने के कारण ही मैं अपने धनी का दीदार नहीं कर पायी। भला इन विषयग्रस्त इन्द्रियों से प्रियतम की अनुभूति कैसे हो सकती है।

निरमल नजरों न आवहीं, ले बैठी संग चंडाल।

उपजत ऐसी अंगथें, उतारूं उलटी खाल॥५॥

मेरे हृदय में मोह-अहं रूपी चाण्डाल का प्रवेश था, इसलिये निर्मलता की कमी से मैं अपने प्रियतम का दर्शन नहीं कर सकी। अब मेरे मन में ऐसा विचार आता है कि इसके प्रायश्चित् में मैं अपने शरीर की खाल को उल्टी तरफ से उतार दूँ।

भावार्थ- शरीर की खाल उतारने का कथन उस मानसिक व्यथा का परिचायक है कि मुझे धनी का दीदार क्यों नहीं हुआ ? इस कथन को क्रियात्मक रूप देना उचित नहीं है। मोह-अहं रूपी शत्रु का त्याग किये बिना धनी का दीदार सम्भव नहीं है।

सब अंग काट चीरा करूँ, मांहें भरों मिरच और लून।

कई कोट बेर ऐसी करूँ, तो भी न छूटे ए खून॥६॥

मैं अपने सभी अंगों को काटकर उसमें चीरा लगा दूँ

तथा उसमें नमक और मिर्च भर दूँ। यदि यह प्रक्रिया मैं करोड़ों बार करूँ तो भी मुझे इस दोष से मुक्ति नहीं मिल सकती।

द्रष्टव्य— इस प्रकार का कथन यह दर्शाता है कि इस जागनी ब्रह्माण्ड में अपनी इन्द्रियों को निर्विकार रखने, धनी की पहचान एवं दीदार करने की क्या महत्ता है, और इसकी उपलब्धि न होना कितना बड़ा गुनाह है।

हैड़े में ऐसी उठत, सब अंग करूँ टूक टूक।

हड्डियां सब जुदी करूँ, भान करूँ भूक भूक॥७॥

मेरे हृदय में ऐसी भावना आती है कि मैं अपने शरीर के सभी अंगों के टुकड़े-टुकड़े कर दूँ और सभी हड्डियों को अलग-अलग करके कूट डालूँ तथा चूरा बना दूँ।

मैं होत सरमिंदी साथ में, ए क्यों ए न जावे दुख।

जब जाग बैतूं आगे धनी, तब क्यों देखूं सनमुख॥८॥

मैं सुन्दरसाथ में इस बात को लेकर शर्मिन्दगी अनुभव कर रही हूँ कि मुझसे होने वाले गुनाहों के प्रायश्चित का दुःख अभी भी मेरा पीछा नहीं छोड़ रहा है। मैं तो इसी सोच में डूबी हुई हूँ कि परमधाम में अपने मूल तन में जाग्रत होने के बाद मैं अपने धनी के सामने कैसे देख पाऊँगी।

आंखां क्यों उठाऊंगी, मुझे मारेगी बड़ी सरम।

ऐसी कबूं किन न करी, सो मैं किए चंडाल करम॥९॥

अपने प्रियतम के सामने आँखें उठाने में मुझे बहुत लज्जा का अनुभव होगा, क्योंकि मैंने इतने नीच कर्म किये हैं जो आज तक किसी ने कभी भी नहीं किये हैं।

द्रष्टव्य- इस तरह की अभिव्यक्ति वही कर सकता है, जो विनम्रता की पराकाष्ठा हो। करनी और रहनी की दृष्टि से सर्वोपरि होते हुए भी श्री महामति जी ने यहाँ ऐसा इसलिये कहा है कि सुन्दरसाथ में स्वयं को अच्छा कहने और दूसरों पर कीचड़ उछालने की प्रवृत्ति न बढ़े।

रोम रोम कई कोट अवगुन, ऐसी मैं गुन्हेगार।

ए तो कही मैं गिनती, पर गुन्हे को नहीं सुमार॥१०॥

मैं इस स्तर की गुन्हेगार (अपराधी) हूँ कि मेरे शरीर के एक-एक रोम में करोड़ों अवगुण छिपे हुए हैं। यह तो समझने मात्र के लिये मैंने गणना बताई है, अन्यथा मेरे दोष तो अनन्त हैं।

भावार्थ- अध्यात्म की जितनी ही ऊँचाइयों पर जो पहुँचता है, वह उतना ही विनम्र और अहंकार से रहित

होता है। इस संसार में किसी के एक अवगुण की तरफ ध्यान दिलाने मात्र से ही उसका चेहरा तमतमा जाता है, जबकि श्री महामति जी अपने ही मुखारविन्द से अपने अवगुणों को अनन्त बता रहे हैं। इसी अभिमान-शून्यता ने तो उन्हें सबका आराध्य बना दिया। "एही मैं खुदी टले, तो बाकी रह्या खुदा" (खिलवत)।

जेते कहे मैं अवगुन, तेते हर रोम दाग।

सो हर दम आतम को लगे, तब मैं बैठूं जाग॥११॥

मैंने अपने रोम-रोम में जिन करोड़ों अवगुणों की बात की है, उतनी संख्या में दाग (गुनाह, अपराध) तो मेरे हर रोम-रोम में बसे हुए हैं। मेरी आत्मा के जाग्रत होने का यही मार्ग है कि मेरे अनन्त अवगुण और अपराध मुझे कचोटते रहें (प्रायश्चित्त कराते रहें)।

भावार्थ- प्रशंसा या सम्मान वह मीठा विष है, जिसका सेवन करने वाला अध्यात्म के शिखर पर कदापि नहीं पहुँच सकता। यह विश्व में एकमात्र घटना है, जिसमें किसी ने डिण्डिभ घोष (डंके के चोट) के साथ कहा हो कि "मेरे एक-एक रोम में करोड़ों अवगुण हैं और उन अवगुणों की जितनी संख्या होगी, उतनी संख्या के बराबर के अपराध भी मेरे एक ही रोम में हैं।" इस तरह का कथन तो अध्यात्म के सर्वोच्च शिखर पर बैठा हुआ व्यक्ति ही कह सकता है।

जाको गिनती मैं अपने, सोई देखे दुस्मन।

देखे देखाए तो भी ना छूटे, कोई ऐसी अग्यां बल कुंन॥१२॥

जिन इन्द्रियों को मैं अपना समझा करती थी, वे तो मेरे शत्रु के रूप में सिद्ध हुए। धनी के हुक्म से बनने वाले इस

संसार में माया की इतनी अधिक शक्ति है कि इन इन्द्रियों के विषयों का दुष्परिणाम मैं स्वयं जानती थी तथा दूसरों को बताया भी था, फिर भी ये छूट नहीं पाये।

भावार्थ- इन्द्रियों के विषय भोगने में पहले तो अच्छे लगते हैं, किन्तु बाद में ये कष्टकारी होते हैं और अपने जाल में फँसाकर धनी से दूर कर देते हैं। इन विषयों का रस इतना लुभावना होता है कि इनके विषय में पूर्ण बोध होते हुए भी छोड़ना बहुत कठिन होता है।

रोम रोम सूली चढ़ूँ, सब अंग निकसे फूट।

ऐसी करूँ जो आप से, तो भी अवगुन एक ना छूट॥१३॥

यदि मैं अपने शरीर के एक-एक रोम को शूली पर चढ़ा दूँ तथा वह मेरे प्रत्येक अंग को छेदकर बाहर निकल जाये, तो भी मेरे शरीर का एक भी अवगुण नहीं निकल

सकता।

भावार्थ- सामान्य रूप से थोड़ी सी साधना मात्र से लोग स्वयं को निर्विकार एवं परमहंसों के समान समझने लगते हैं। किसी भी साधना में शूली पर चढ़ाने जितना कष्ट नहीं होता, लेकिन महामति जी का इस चौपाई में जो कथन है, वह इस सन्दर्भ में है कि चाहे हम ध्यान – साधना से कितने भी निर्मल क्यों न हो जायें, उसका अहंकार नहीं लेना चाहिए।

ए नहीं अवगुन और ज्यों, मेरे तो लेप बजर।

ए बिध सोई जानहीं, जिनकी अंतर खुली नजर॥१४॥

दूसरे अवगुणों की तरह मेरे अवगुण सामान्य नहीं हैं। ये तो हमेशा ही अपनी छाप बनाये रखने वाले हैं। किन्तु इस रहस्य को वही सुन्दरसाथ जान सकता है जिसकी

आत्मिक दृष्टि खुली हुई हो।

भावार्थ- श्री मिहिरराज जी से अमिट गुनाह (वज्रलेप) उस समय हुआ, जब उन्होंने सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्दर विराजमान युगल स्वरूप की पूरी पहचान नहीं की और होड़ ले बैठे कि मैं आपकी तरह ही परमधाम को साक्षात् देखकर वर्णन क्यों नहीं करता? प्रेम के क्षेत्र में इस तरह की भूलें हमेशा ही सालती रहती हैं, इसलिये श्री महामति जी ने इसे अमिट गुनाह (वज्रलेप) की संज्ञा दी है।

ए लेप बज्र की मैं क्या कहूं, ए अवगुन सब्दातीत।

धनी आप दे करी आपसी, एही पिया की रीत॥१५॥

कभी भी प्रायश्चित की सीमा में न आ सकने वाला मेरा अमिट अपराध शब्दों से नहीं कहा जा सकता, किन्तु मेरे

प्रियतम के प्रेम का तरीका सबसे न्यारा है। उन्होंने मेरी भूलों को पूर्णतया नजरअन्दाज कर दिया और मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर अपने समान बना लिया।

धनी जी के गुन मैं क्या कहूँ, इन अवगुन पर एते गुन।

महामत कहे इन दुलहे पर, मैं वारी वारी दुलहिन॥१६॥

श्री महामति जी कहते हैं कि मैं अपने प्राण प्रियतम प्राणनाथ के गुणों के विषय में क्या कहूँ। मेरे इतने अवगुणों के होते हुए भी उन्होंने हमेशा मेरे ऊपर मेहर (गुण) ही बरसायी है। ऐसे प्रेम के सागर धनी पर उनकी अर्धांगिनी के रूप में मैं बार-बार न्योछावर होती हूँ।

प्रकरण ॥४१॥ चौपाई ॥४७२॥

राग श्री काफी

यह चार प्रकरण (४२-४५) हब्शा में उतरे हैं। इनमें प्रेम तथा विरह की पीड़ा का अति सुन्दर वर्णन है। श्री इन्द्रावती जी ने श्री देवचन्द्र जी के धाम हृदय में विराजमान श्री राज जी को लक्ष्य करके यह बातें कही हैं।

मीठडा मीठा रे, मूने वचनिएं का वाहो।

मीठा ते मुखना लऊं मीठडा, कां प्रीतडी करीने परा थाओ॥१॥

माधुर्यता की पराकाष्ठा स्वरूप, हे मेरे प्राणवल्लभ! मुझे आप अपनी मीठी बातों के जाल में फँसाकर बहला देते हैं। यद्यपि मैं आपके मीठे मुख के अति मीठे शब्दों को सुनकर आप पर बलिहारी जाती हूँ, लेकिन आप प्रेम करके जो अलग हो जाते हैं, यह सहन नहीं होता।

सनेह सनमंधडो समझावीने, अंतराय आड़ी टाली।

हवे अधखिण विरह सही न सकूं, मारे न आवे अवसरियो वाली॥२॥

आपने परमधाम के मूल सम्बन्ध का अलौकिक प्रेम समझाकर माया के पर्दे को दूर कर दिया। अब तो मैं आधे क्षण के लिये भी आपका विरह सहन नहीं कर सकती हूँ क्योंकि अब मुझे दोबारा अवसर मिलने वाला नहीं है।

भावार्थ— हृदय में धनी का प्रेम आये बिना माया का पर्दा हट नहीं सकता। दोबारा अवसर न मिलने का भाव यह है कि अब कभी पुनः इस मायावी जगत में आना नहीं है।

हवे विलखूं छूं वाला विना, हूं तो प्रेम नी बांधी पिड़ाऊं।

कां अलगा आप ग्रहीने ऊभा, हूं निस दिवस फड़कला खांऊं॥३॥

हे मेरे प्रियतम! मैं आपके विरह में विलख रही हूँ। आपके प्रेम में बँधकर विरह की पीड़ा को सहन कर रही हूँ। मेरी बाँह पकड़कर आप अलग क्यों हो गये हैं? अब तो आपके विरह में मैं दिन-रात तड़पती रहती हूँ।

भावार्थ- श्री देवचन्द्र जी के अन्दर युगल स्वरूप ने लीला की, किन्तु उनके अन्तर्धान होने के पश्चात् उनका दर्शन नहीं हो पा रहा था, ताकि श्री मिहिरराज उन्हें रिझा पाते। इसी प्रसंग में श्री महामति जी कहते हैं कि आप मेरी बाँह पकड़कर भी अदृश्य क्यों हो गये?

हवे कहोने वालाजी केम करुं, केणी पेरे रेहेवाय।

एम करता इन्द्रावती ने मंदिर पधारया, मारे आनंद अंग न माय॥४॥

मेरे धाम धनी! अब आप ही बताइये कि मैं क्या करूँ? मैं आपके विरह में कैसे रहूँ? इस प्रकार कहने पर आप

मेरे धाम हृदय में विराजमान हो गये, जिससे अब मेरे हृदय में इतना अधिक आनन्द हो गया है कि वह सम्भाला नहीं जा रहा है।

प्रकरण ॥४२॥ चौपाई ॥४७६॥

विनता विनवे रे, पिउजी रसिया तमें केहेवाओ।

तो एकलड़ा अमने मूकी, अलगा केम करी थाओ॥१॥

हे प्रियतम! आपकी अर्धांगिनी मैं इन्द्रावती आपसे यह विनती करती हूँ कि जब आप "रसिया" कहलाते हैं तो मुझे इस मायावी जगत में अकेले छोड़कर अलग क्यों हो गये हैं?

भावार्थ— "रसिया" का साहित्यिक रूप "रसिक" है, जिसका अर्थ होता है— रस लेने वाला, रस देने वाला, या रस में डूबने और डुबोने वाला। एकमात्र अक्षरातीत ही प्रेम रस एवं आनन्द रस के मूल हैं, इसलिये उनको रसिक कहा जाता है।

जो अलवेला एवा तमें, तो मंदिरिऐं न आवो केम म्हारे।

हूं माननी मान मूकी केम कहूं, पण बोलड़े बंधाणी छूं तारे॥२॥

यदि आप प्रेम की इतनी मस्ती में हैं, तो मेरे धाम हृदय में क्यों नहीं आ जाते? मैं आपकी मानिनी अँगना हूँ। मैं अपने मान को छोड़कर यह कैसे कह सकती हूँ कि मेरे हृदय (मन्दिर) में आ जाइए। लेकिन मैं आपके अमृत सदृश मीठे वचनों से बँधी हुई हूँ।

भावार्थ— जब प्रियतमा (माशूक) अपने प्रियतम (आशिक) से मिलने के लिए बहुत तड़पती है, किन्तु उसकी इच्छा होती है कि मुझे उसके पास न जाना पड़े, वह स्वयं आकर मुझसे बोले और प्रेम करे, तो उसे मानिनी कहते हैं। मानिनी अर्थात् प्रियतम से मान चाहने वाली। प्रियतम के वचनों से बँधने का तात्पर्य यह है कि माशूक की आन्तरिक इच्छा यही होती है कि उसका आशिक उससे प्रेम की मीठी-मीठी बातें करता रहे।

तू तो मूने जाणे छे जोपे, में तो घणी खीदड़ी खुदावी।

अनेक विनवणी कीधी तें, तो हूं तारे वस आवी॥३॥

आप तो मुझे अच्छी तरह से जानते ही हैं कि मैंने आपको रास में नाच नचा दिया था (गत बना दिया था)। जब आपने अनेक प्रकार से प्रार्थना की तो मैं स्वतः ही आपके वश में हो गई थी।

भावार्थ— रास की रामतों में श्री इन्द्रावती जी ने श्री राज जी को हरा दिया था। उसी घटना को महामति जी (इन्द्रावती) ने यहाँ उद्धृत किया है। अर्धांगिनी किसी भी स्थिति में अपने प्रियतम को हारा हुआ देखना नहीं चाहती है, इसलिये रास में भी इन्द्रावती जी स्वतः ही वश में हो गयीं।

हवे तो सर्वे में सोंप्युं तुझने, मूल सनमंध सुध जोई।
कहे इन्द्रावती मुझ विना, तूने एम वस न करे बीजो कोई॥४॥

मेरे प्राणवल्लभ! परमधाम के मूल सम्बन्ध के कारण अब तो मैंने अपना सब कुछ ही आपको सौंप दिया है। श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि जिस तरह से मैंने आपको वश में कर लिया है, उस तरह से दूसरा कोई भी नहीं कर सकता है।

प्रकरण ॥४३॥ चौपाई ॥४८०॥

म्हारा वस कीधल वाला रे, अमथी अलगा केम करी थासो।

हूं तो एवी नहीं रे सोहाली, जे वचनिऐं वहासो॥१॥

मेरे प्रेम के वश में हो जाने वाले प्रियतम! भला आप मुझसे अलग कैसे हो सकते हैं? मैं इतनी भोली नहीं हूँ कि आप अपनी बातों के जाल में फँसाकर बहका देंगे।

भावार्थ— प्रेम की गहन स्थिति में न तो प्रियतम का अलगाव अच्छा लगता है और न ही ज्ञान की शुष्कता अच्छी लगती है। वचनों का तात्पर्य ज्ञान से है। श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि आप मुझे केवल ज्ञान में ही उलझाए रखना चाहते हैं, किन्तु मैं इस झांसे में आने वाली नहीं हूँ।

ए तो नहीं अटकलनी ओलखांण, जे ततखिण रंग पलटाओ।

सनमंधीनों रंग नेहेचल साचो, जिहां हूं तिहां तमे आवो॥२॥

अपने प्रियतम के रूप में मैंने आपकी जो पहचान की है, वह अनुमान से नहीं बल्कि वास्तविकता के धरातल पर की है, इसलिये आप इतनी जल्दी अपनी पहचान छिपा भी नहीं सकते। अखण्ड सम्बन्ध वाली अँगनाओं का आपसे प्रेम भी अखण्ड होता है, इसलिये मैं जहाँ पर हूँ वहाँ चुपचाप चले आइए।

विशेष- इस तरह की अभिव्यक्ति वहाँ ही होती है, जहाँ अपनेपन के प्रेम में औपचारिकता की सारी सीमायें समाप्त हो जाती हैं।

हवे अधखिण एक न मूकूं अलगा, प्रीत पेहेलानी ओलखाणी।

साची सगाई कीधी प्रगट, सचराचर संभलाणी॥३॥

अब तो मैं आधे-एक क्षण के लिये भी आपको अपने से अलग नहीं रहने दूँगी, क्योंकि मैंने परमधाम के अखण्ड

प्रेम की पहचान कर ली है। आपने अपनी वाणी से मेरे और आपके बीच जो प्रिया-प्रियतम का अखण्ड सम्बन्ध है, उसे जाहिर कर दिया है तथा इसकी जानकारी चर-अचर सभी प्राणियों को हो गयी है।

भावार्थ- संसार के लोग परमात्मा की मात्र स्तुति करके ही अपने को धन्य-धन्य समझ लेते हैं। वहीं इस प्रकरण में श्री इन्द्रावती ने अपनी निसबत एवं प्रेम के अधिकार का दावा करते हुए कहा है कि "मैं आपको अब आधे क्षण के लिये भी अलग नहीं रहने दूँगी।" यद्यपि अचर (वृक्षादि) प्राणी भी सुख-दुःख तथा अन्य बातों का अनुभव करते हैं, किन्तु इन तक किसी बात के पहुँचने का भाव अति व्यापकता से है।

प्रेम विनोद विलास माया मांहें, सुफल फेरो एम कीजे।

अखण्ड आनंद सदा इंद्रावती घरे, पूरण सुख लाहो लीजे॥४॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे धनी! आप इस माया के संसार में हमें प्रेम एवं हँसी का आनन्द दीजिए , जिससे इस खेल में हमारा आना सार्थक हो जाये। परमधाम में तो हमेशा से ही अखण्ड आनन्द है, किन्तु हमें तो इस माया में ही प्रेम के पूर्ण आनन्द की अनुभूति चाहिए।

भावार्थ- प्रेम में ही आनन्द छिपा होता है। प्रेम शब्दातीत एवं त्रिगुणातीत है। यदि हमारा हृदय "धाम" की शोभा को प्राप्त कर ले, अर्थात् हमारे धाम हृदय में युगल स्वरूप विराजमान हो जायें, तो हमें इस संसार में भी प्रेम, निसबत, एवं वाहिदत (एकदिली) आदि की लज्जत (स्वाद) मिलने लगेगी। इस चौपाई में यही भाव

व्यक्त किया गया है।

प्रकरण ॥४४॥ चौपाई ॥४८४॥

राग श्री काफी

आवोजी वाला म्हारे घेर, आवो जी वाला।

एकलडी परदेसमां, मूने मूकीने कां चाल्या॥१॥

हे मेरे प्राण प्रियतम! आप मेरे धाम हृदय (घर) में विराजमान हो जाइए। आप मुझे इस माया (परदेश) में अकेले छोड़कर क्यों चले गये?

भावार्थ— यह प्रकरण उस प्रसंग में उतरा है, जब सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी अन्तर्धान हो जाते हैं तथा श्री मिहिरराज जी अपने धाम धनी के विरह में तड़पते हैं।

मूने हती नींदरडी, तमे सूती मूकी कां राते।

जागी जोऊं तां पिउजी न पासे, पछे तो थासे प्रभाते॥२॥

मैं तो माया की नींद में सो रही थी, लेकिन आप मुझे सोते हुए ही अकेले छोड़कर क्यों चले गये? जब मैंने

नींद से जागकर देखा, तो आपको अपने पास नहीं पाया।
अब तो सवेरा हो जायेगा।

भावार्थ- लैल-तुल-कद्र के इस तीसरे तकरार जागनी ब्रह्माण्ड में आना ही रात्रि में धनी के साथ रहना है। इस समय जाग्रत होकर परमधाम के सुखों की अनुभूति ही इस ब्रह्माण्ड में सर्वोपरि लक्ष्य होना चाहिए, किन्तु श्री इन्द्रावती जी की आत्मा उस समय श्री देवचन्द्र जी के अन्दर विराजमान युगल स्वरूप की पूरी पहचान नहीं कर सकी थी, इसलिये उन्हें सोते हुए वर्णित किया गया है। जब युगल स्वरूप उनके धाम हृदय में विराजमान हो गये तो उन्हें जाग्रत कहा जायेगा, किन्तु सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के तन के ओझल हो जाने से उनके मन में यह टीस रह गई कि यदि उस तन में धनी के विराजमान होने की स्थिति में मैंने रिझा लिया होता तो मैं आनन्द में

डूब जाती। अब तो प्रातःकाल हो जायेगा अर्थात् जागनी ब्रह्माण्ड रूपी रात्रि समाप्त हो जायेगी और इसमें साक्षात् धनी को पाकर जो सुख लेना चाहिए था, वह मैं नहीं ले सकी।

कलकली ने कहूं छूं तमनें, आवजो आणे खिणे।

म्हारा मनना मनोरथ पूरजो, इंद्रावती लागे चरणें॥३॥

मैं आपसे रो-रोकर कह रही हूँ कि आप इसी क्षण मेरे धाम हृदय में विराजमान हो जाइए। श्री इन्द्रावती जी धनी के चरणों में प्रणाम करके कहती हैं कि हे धनी ! आप मेरे मन की सभी इच्छाओं (प्रेम और आनन्द की चाहना) को पूर्ण कीजिए।

प्रकरण ॥४५॥ चौपाई ॥४८७॥

यह प्रकरण अलंकारमयी भाषा में है। इसमें ब्रज लीला के माध्यम से जागनी लीला को दर्शाया गया है।

प्रीत प्रगट केम कीजिए, कीजिए तो छानी छिपाए, मेरे पिउ जी।
तूं तो निलज नंदनो कुमार, मेरे पिउ जी॥१॥

एक ब्रजबाला श्री कृष्ण जी से कहती है कि हे मेरे प्रियतम! इस संसार में प्रेम भला कैसे प्रकट किया जा सकता है। उसका आनन्द तो एकान्त में ही लिया जाता है, लेकिन आप तो बिल्कुल लोक-लाज से रहित हो।

भावार्थ- श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे मेरे प्रियतम अक्षरातीत श्री प्राणनाथ! आपने मुझे जगाने के लिये लौकिक लज्जा की दीवारों को तोड़ दिया है। परमधाम का हमारा मूल सम्बन्ध वाला प्रेम भला इस मायावी जगत् में कैसे प्रकट हो सकता है। इसका रस तो संसार से अलग

रहकर (छिपकर) ही लिया जा सकता है, क्योंकि दुनिया के जीव प्रेम की यथार्थता (वास्तविकता) को जानने में असमर्थ हैं।

तू देख भयो मोहे बावरो, मैं कुलवधुआ नार।

तू रोक रहयो मोहे राह में, घड़ी भई दोए चार॥२॥

आप मुझे देखते ही प्रेम में पागल हो गये। मैं उच्च कुल की बहू हूँ। आप जो मुझको रोक रहे हैं, इसमें दो-चार घड़ी का समय भी बीत गया है।

भावार्थ- मुझे माया में फँसी हुई देखकर अपने रसिक स्वभाव के कारण आप व्याकुल हो गये। मैं इस संसार के झूठे देवताओं से ही अपनी आत्मा का सम्बन्ध मान बैठी थी। आपने अपनी वाणी के ज्ञान द्वारा उन झूठे रिश्तों से मेरा सम्बन्ध तुड़वाकर मुझे अपना लिया और अब

आपसे पुनः सम्बन्ध जोड़े हुए काफी समय भी बीत गया है।

गलियन में दुरजन देखे, तोमें नहीं विचार।

तू कामी कछू ना देखही, पर सासुड़ी दे मोहे गार॥३॥

हे प्रियतम! आपने मुझे अपना लिया है, इसलिये साम्प्रदायिक एवं कर्मकाण्डी लोग मेरी हँसी उड़ा रहे हैं, लेकिन आपको इसकी जरा भी चिन्ता नहीं है। आप मेरे प्रेम में इतने बाँवरे हो चुके हैं कि आपको इस झूठे संसार की जरा भी परवाह नहीं है। लेकिन मुझे तो यहाँ की लौकिक मर्यादा की दृष्टि में सबसे नीचे रहना पड़ेगा।

कर जोरे कुच मरोरे, अंगिया नखन विडार।

अधुर न छोड़े दंत सों, करेगो कहा अब रार॥४॥

माया में भटकती हुई मुझ आत्मा को आपने अपने दोनों

हाथों से पकड़ लिया है और अपनी पहचान देकर मेरे अन्दर विरह की अग्नि को भड़का दिया है। आपने अपनी मेहर से मेरे मैं-खुदी के परदे को दूर कर दिया है तथा परमधाम के ज्ञान से अखण्ड सुख की लज्जत दे रहे हैं। अब आप मुझे कितना तड़पायेंगे।

तू बालक नेह न बूझहीं, मैं बरज्यो केतीक वार।

मैं मेरो कियो पाइयो, अब कासों करों पुकार॥५॥

अपनी आत्माओं के प्रेम में डूब जाने के कारण आपकी स्थिति एक बेसुध बालक की तरह है, लेकिन मुझ अँगना के हृदय का प्रेम आप नहीं समझ रहे हैं। इस सम्बन्ध में मैंने आपको अनेक बार मना किया है कि प्रेम के जोश में परमधाम की उस वाहिदत, खिलवत, और अपनी शोभा-श्रृंगार का वर्णन इस झूठी दुनिया में न करें। मेरा

आपसे पहले का अखण्ड सम्बन्ध था, इसलिये मुझ अर्धांगिनी को आप जैसा सर्वसमर्थ प्रियतम मिल गया। यदि मैं इस सम्बन्ध को तुड़वाना भी चाहूँ, तो कोई भी ऐसा सांसारिक बन्धन नहीं है जिसके कारण हमें अलग होना पड़े।

सारी फारी कंठसर टोरी, टोरयो नवसर हार।

अब घर कैसे जाइए, उलटाए दियो सिनगार॥६॥

मेरे द्वारा धारण की गई हृद की लौकिक ज्ञान रूपी साड़ी को आपने फाड़ दिया है। शुष्क वैराग्य रूपी कण्ठसरी के हार को तोड़ दिया है तथा गले में स्थित नवधा भक्ति रूपी नव लड़ियों के हार को भी आपने टुकड़े-टुकड़े कर दिया है। आपने इसके बदले परमधाम की ज्ञान रूपी साड़ी, ईमान रूपी कण्ठसरी का हार, एवं

इश्क रूपी गले का हार भी दे दिया है। जब आपने मेरा पहले वाला श्रृंगार ही खराब कर दिया है, तो अब मैं इस झूठी दुनिया के देवताओं से अपना सम्बन्ध कैसे जोड़ सकती हूँ और यहाँ के नश्वर वैकुण्ठ आदि लोकों की इच्छा कैसे कर सकती हूँ।

अब मिल रही महामती, पिउ सों अंगों अंग।

अछरातीत घर अपने, ले चले हैं संग॥७॥

मेरे प्राण वल्लभ! आपने मुझ इन्द्रावती की आत्मा को इस स्थिति में खड़ा कर दिया है कि अब मैं आपके पतिपने (पति होने) के सुख की पूर्ण लज्जत ले रही हूँ और यह निश्चित है कि आप मुझे अवश्य ही इस माया के खेल से निकाल कर परमधाम ले चलेंगे।

प्रकरण ॥४६॥ चौपाई ॥४९४॥

राग श्री गौरी

इस सम्पूर्ण प्रकरण में मन के ऊपर प्रकाश डाला गया है।

खोज थके सब खेल खसमरी।

मन ही में मन उरझाना, होत न काहू गमरी॥टेक॥१॥

इस मायावी खेल में प्रियतम परब्रह्म को खोजते – खोजते सभी थक गये। अब तक कोई भी उस अक्षरातीत परब्रह्म की प्राप्ति नहीं कर पाया। सबका मन अव्याकृत के स्वाप्निक रूप आदिनारायण में उलझ कर रह गया।

भावार्थ– अक्षर ब्रह्म के मन अव्याकृत के सपने का स्वरूप आदिनारायण है, जिसकी यह सृष्टि है। यह सम्पूर्ण क्षर जगत् अव्याकृत का स्वप्नवत् प्रतिबिम्ब है। प्रायः सभी मनीषियों का चिन्तन निराकार (महामाया,

मोह सागर) या साकार (आदिनारायण) तक ही सीमित रह जाता है। कोई भी बेहद और अक्षर से परे उस सच्चिदानन्द अक्षरातीत के बारे में नहीं जान पाता।

मन ही बांधे मन ही खोले, मन तम मन उजास।

ए खेल सकल है मन का, मन नेहेचल मन ही को नास॥२॥

सांसारिक सुख की कामना में फँसा हुआ मन जीव को माया के बन्धनों में डाल देता है तथा विवेकयुक्त निर्विकार मन जीव को माया से छुटकारा दिलाता है। तमोग्रस्त मन में अज्ञानता का अन्धकार होता है तथा सात्विक मन में ज्ञान का उजाला भी होता है। यह सारा संसार अव्याकृत (अक्षर के मन) का खेल है। अव्याकृत अखण्ड है, जबकि उसके सपने के स्वरूप आदिनारायण एवं उनके अंश रूप प्राणियों के मन अखण्ड नहीं हैं।

मन उपजावे मन ही पाले, मन को मन ही करे संहार।

पांच तत्व इंद्री गुन तीनों, मन निरगुन निराकार॥३॥

अव्याकृत के सपने का स्वरूप आदिनारायण ही इस सृष्टि को उत्पन्न करता है तथा वही इसका पालन भी करता है। स्वप्न के मन का संहार (लय) भी अखण्ड मन (अव्याकृत) ही करता है, अर्थात् सुमंगला पुरुष में जाग्रति आते ही आदिनारायण का स्वरूप अपने मूल स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। पाँच तत्व, दस इन्द्रियों, तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम), और निर्गुण निराकार मोह तत्व की उत्पत्ति भी मन स्वरूप अव्याकृत से ही हुई है।

भावार्थ— सम्पूर्ण कार्य मन द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति, पालन, एवं संहार में भी अक्षर ब्रह्म के मन की ही सारी भूमिका है। मनुष्यादि के मन को निराकार तो माना जायेगा, किन्तु अव्याकृत को निराकार (आकार

से रहित) नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार उनके स्वप्निक स्वरूप आदिनारायण को भी निराकार नहीं माना जा सकता। महत्तत्त्व से मन, चित्त, बुद्धि आदि की उत्पत्ति होती है। अति सूक्ष्म होने के कारण ही इन्हें निराकार कहते हैं। प्राणियों में स्थित मन, चित्त आदि प्रकृतिजन्य ही होते हैं।

मन ही नीला मन ही पीला, स्याम सेत सब मन।

छोटा बड़ा मन भारी हलका, मन ही जड़ मन ही चेतन॥४॥

सांसारिक ऐश्वर्य की कामना करने वाले व्यक्ति के मन को नीला माना जाता है। भयभीत प्राणी के मन को पीला, तमोगुण से ग्रसित मन को काला, और सतोगुण से भरपूर मन को श्वेत कहा जाता है। छोटे विचार वाले मन को छोटा मन तथा श्रेष्ठ विचारों वाले मन को बड़ा

मन कहते हैं। दुःखी मन को भारी मन और कुछ समय पूर्व दुःख को छोड़कर सुखी होने वाले मन को हल्का मन कहते हैं। जीव की चेतनता से रहित हो जाने पर यह जड़ है, किन्तु उसकी चेतनता को प्राप्त करके यह भी चेतन हो जाता है।

मन ही मैला मन ही निरमल, मन खारा तीखा मन मीठा।

एही मन सबन को देखे, मन को किन्हूं न दीठा॥५॥

तृष्णा के जाल में फँसा हुआ मन गन्दा होता है, जबकि इनसे अलग होकर प्रेम में डूबा हुआ मन निर्मल होता है। रजोगुण के कारण राग-द्वेष से भरा हुआ मन खारा होता है तथा तमोगुण से भरा हुआ मन स्वभावतः तीखापन लिये हुये होता है। इसके विपरित सत्त्वगुण युक्त मन में मधुरता भरी होती है। सबको जानने वाले इस मन को

कोई भी यथार्थ रूप से नहीं जान (देख) पाता है।

भावार्थ- जिस प्रकार श्वेत रंग की स्फटिक मणि पर लाल रंग का फूल रख देने पर मणि का रंग भी उसी रंग का दिखायी पड़ने लगता है तथा काली वस्तु रख देने पर मणि का रंग भी काला दिखायी देने लगता है, उसी प्रकार सत्व, रज, और तम के प्रभाव से मन को श्वेत, लाल, और काले रंग का वर्णन किया गया है।

सब मन में ना कछू मन में, खाली मन मनही में ब्रह्म।

महामत मन को सोई देखे, जिन दृष्टे खुद खसम॥६॥

सामान्य प्राणियों के मन में सारा संसार बसा होता है अर्थात् उनके मन में माया की चाहनायें भरी होती हैं। इसके विपरीत प्रेम के रस में डूबे रहने वालों के मन में माया की कोई भी चाहना नहीं होती है। ऐसे ही पवित्र मन

में प्रियतम परब्रह्म का वास होता है। श्री महामति जी कहते हैं कि जिन्हें उस परब्रह्म की पहचान हो जाती है, एकमात्र वे ही मन की यथार्थता को जान पाते हैं।

भावार्थ- यह संशय पैदा होता है कि जब ब्रह्म को मन से परे कहा गया है— "अप्राप्य मनसा सह" (तैत्तिरीयोपनिषद) तथा "न तत्र चक्षुर्गच्छति न वागच्छति न मनो" (केनोपनिषद), तो इस चौपाई में ब्रह्म को मन में वास करने वाला क्यों कहा है?

इसका समाधान यह है कि मन हृदय या अन्तःकरण का अंग है। आत्मा के धाम हृदय में ही परब्रह्म का स्वरूप विराजमान होता है, इसलिये यहाँ पवित्र मन में परब्रह्म के वास करने का वर्णन किया गया है।

प्रकरण ॥४७॥ चौपाई ॥५००॥

राग केदारो

इस प्रकरण में संसार की नश्वरता का उल्लेख है।

खिन एक लेहु लटक भंजाए।

जनमत ही तेरो अंग झूठो, देखतहीं मिट जाए॥१॥

हे जीव! इस मानव तन में तुझे जो एक क्षण का समय मिला है, उसका सदुपयोग करके अपने जीवन को सफल कर लो। तुम्हारा यह मानव शरीर जन्म से नश्वर होता है। वह किसी भी क्षण देखते-देखते काल के गाल में समा सकता है।

भावार्थ- मनुष्य की उम्र सामान्यतः १०० वर्ष की होती है, किन्तु इसको एक क्षण का कहना यह दर्शाता है कि किसी भी समय (क्षण मात्र में) मनुष्य या किसी भी प्राणी की मृत्यु हो जाती है।

हे जीव निमख के नाटक में, तूं रहयो क्यों बिलमाए।

देखतहीं चली जात बाजी, भूलत क्यों प्रभू पाए॥२॥

हे जीव! इस क्षणभंगुर शरीर के जीवन और क्रियाकलाप रूपी नाटक में तू क्यों मस्त हो रहा है? देखते-देखते ही तुम्हारे शरीर की उम्र बीती जा रही है। तुम प्रियतम परब्रह्म के चरणों को क्यों भूल रहे हो?

भावार्थ- शरीर को अखण्ड समझकर परब्रह्म के चरणों से दूर रहना मानव की सबसे बड़ी भूल है। बचपन, किशोर, और युवावस्था से मनुष्य जर्जर वृद्धावस्था को प्राप्त होकर मृत्यु के गाल में समा जाता है, फिर भी नश्वरता के प्रति वह सावचेत नहीं होता।

आपको पृथीपति कहावे, ऐसे केते गए बजाए।

अमरपुर सिरदार कहिए, काल न छोड़त ताए॥३॥

अपने को इस पृथ्वी का एकछत्र चक्रवर्ती सम्राट घोषित करने वाले भी इस दुनिया से चले गये। स्वर्ग के स्वामी देवराज इन्द्र को भी काल छोड़ता नहीं है।

भावार्थ- ऐसी मान्यता है कि एक कल्प में १४ मन्वन्तर होते हैं। प्रत्येक मन्वन्तर में अलग-अलग इन्द्र होते हैं। इस प्रकार स्वर्ग भी नश्वर है।

जीव रे चतुरमुख को छोड़त नाहीं, जो करता सृष्ट केहेलाए।

चारों तरफों चौदे लोकों, काल पोहोंच्यो आए॥४॥

हे जीव! सृष्टिकर्ता की शोभा को धारण करने वाले चतुर्मुखी ब्रह्मा जी को भी काल नहीं छोड़ता है। पाताल से लेकर वैकुण्ठ तक चौदह लोक में चारों ओर काल का ही साम्राज्य फैला हुआ है।

भावार्थ- आदिनारायण के संकल्प से उत्पन्न होने वाले

सर्वप्रथम ऋषियों में ब्रह्मा जी का नाम आता है। यद्यपि पौराणिक मान्यता में उन्हें सृष्टिकर्ता कहते हैं , किन्तु वास्तविकता यह है कि वे सांकल्पिक सृष्टि को विस्तृत करने वाले थे। उन्हें चार मुखों वाला इसलिये कहा जाता है कि उन्होंने चारों वेदों को कण्ठस्थ कर लिया था , वस्तुतः उनके चार मुख कभी भी नहीं थे। पौराणिक उद्धरणों के माध्यम से संसार की नश्वरता को दर्शाना ही श्री जी को अभीष्ट है , अन्यथा यह पौराणिक कथन उनका नहीं है।

पवन पानी आकास जिमी, ज्यों अग्नि जोत बुझाए।

अवसर ऐसो जान के, तूं प्राणपति लौ लाए॥५॥

हे जीव! आकाश, वायु, अग्नि, जल, तथा पृथ्वी सभी महाप्रलय में लय हो जाने वाले हैं। तुझे यह सुनहरा

अवसर मिला है, इसलिये अपने आत्म-कल्याण के लिये
अपने प्राण प्रियतम से प्रेम कर लो।

देखन को ए खेल खिन को, लिए जात लपटाए।

महामत रूदे रमे तांसों, उपजत जाकी इछाए॥६॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे जीव! वैसे तो यह संसार
देखने में क्षणभंगुर है, फिर भी सभी लोग इसी में लिपटे
चले जा रहे हैं। जिस परमात्मा की इच्छा से यह खेल
बना है, उन्हें अपने दिल में बसा लो।

प्रकरण ॥४८॥ चौपाई ॥५०६॥

राग देसाख

इस प्रकरण में प्रेम की दीवानगी की एक झलक दिखायी गयी है।

बाई रे वात अमारी हवे कोण सुणें, अमे गेहेलाने मलया।
 एहनो नेहडो सुणीने हूं तो घणुएँ नाठी, पणसूं कीजे जे पाणें पडया॥१॥
 हे सखी! अब मेरी बात यहाँ कौन सुनने वाला है? मुझे तो अब दीवाने प्रियतम (श्री राज जी) मिल गये हैं। इनका अलौकिक प्रेम सुनकर मैंने पीछा छुड़ाने के लिये बहुत अधिक भागने का प्रयास किया, लेकिन मैं क्या करती, यह तो एक तरह से मेरे पीछे ही पड़ गये हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में "बाई" शब्द का प्रयोग उस आत्मा के लिये किया गया है, जिसे महामति जी की आत्मा अपनी आपबीती सुना रही हैं। धाम धनी हमें

जगाने के लिये सब कुछ करेंगे। यदि हम माया में भाग जाना चाहें, तो यह कदापि सम्भव नहीं है।

हूं मां हुती चतुराई त्यारे पांचमां पुछाती, ते चितडा अमारा चलया।
 मान मोहोत लज्या गई रे लोपाई, अमे माणस मांहें थी टलया॥२॥
 जब मेरे अन्दर सांसारिक चतुराई थी, तब मैं समाज में बहुत प्रतिष्ठित थी। अब उससे मेरा चित्त हट गया है। अब तो मेरे अन्दर मान-प्रतिष्ठा तथा लोक-लज्जा की भी भावना नहीं रह गयी है। इनकी इच्छा करने वाले लोगों से मैं बिलकुल ही अलग हो गयी हूँ।

भावार्थ- जब श्री मिहिरराज जी के अन्दर लौकिक ज्ञान एवं प्रबन्ध कुशलता थी तो उन्होंने दीवान पद को सुशोभित किया, किन्तु जब प्रियतम के प्रेम का रस चखा तो सारा संसार निरर्थक लगने लगा। इस चौपाई में

यही भाव दर्शाया गया है।

माणस होए ते तो अमने मां मलजो, जो तमे गेहेलाइए हलया।

ओल्या वारसे वढसे खीजसे तमने, तोहे आवसो ते आंही पलया॥३॥

जो सांसारिक सुख और प्रतिष्ठा को चाहने वाला व्यक्ति हो, मुझसे मेल न करे। यदि तुम्हारे अन्दर प्रियतम को पाने की दीवानगी है, तो मेरे पास आ जाओ। यदि तुम मेरी इस राह पर चलोगे तो संसार के लोग तुमको रोकेंगे, तुमसे लड़ेंगे, और क्रोधित भी होंगे, फिर भी तुम मेरे ही पास आओगे।

भावार्थ— एकमात्र परमधाम की ब्रह्मसृष्टि ही प्रियतम को पाने के लिये सांसारिक मान-मर्यादा एवं सुखों का परित्याग करती है। इसके विपरीत जीव सृष्टि इसी को अपना सब कुछ समझती है।

गेहेले वालें अमने कीधां गेहेलड़ा, मलीने गेहेलाइए छलया।

जात कुटमथी जूआ थया, हद छोडी वेहदमां भलया॥४॥

मेरे प्रेम में दीवाने प्रियतम ने मुझे भी अपने प्रेम में दीवाना बना दिया। उनकी दीवानगी ने मुझे अपने वश में कर लिया है। अब मैंने अपनी जाति एवं कुटुम्ब से भी अलग होकर हद को छोड़ दिया है तथा बेहद में पहुँच गयी हूँ।

भावार्थ— जिस अक्षरातीत के बारे में संसार को जरा भी ज्ञान नहीं है, यदि वह किसी आत्मा के प्रेम में दीवाना हो जाये तो उसका माया में रहना कदापि सम्भव नहीं है। आत्मा मानव तन में बैठकर इस खेल को देख रही है। जब प्रियतम के प्रेम का जोश चढ़ता है, तो आत्मा को अपने इस मानव शरीर (जाति) तथा सगे-सम्बन्धियों (कुटुम्ब) का आभास नहीं होता क्योंकि वह अपनी

परात्म का श्रृंगार लेकर परमधाम (मूल मिलावा) का ध्यान करती है। इसे ही जाति-कुटुम्ब से अलग होना कहते हैं।

देखीतां सुखड़ा में तो नाख्या उडाडी, दुस्तर दुखें न बलया।

एहेनी गेहेलाइए अमने एवा कीधां, जईने अछरातीतमां गलया॥५॥

संसार के नश्वर एवं लुभावने सुखों को मैंने देखते ही देखते छोड़ दिया और धनी की प्रेममयी राह में मैं कठिन दुःखों में भी नहीं घबराई। इस प्रियतम की दीवानगी ने मुझे ऐसा कर दिया कि मैं अक्षरातीत के प्रेम में डूब गयी।

भावार्थ- देखते ही देखते छोड़ने का तात्पर्य है- अति अल्प समय या पल भर में। ज्ञान होते हुए भी विषयों के सुखों का त्याग कठिन होता है, किन्तु प्रेम में उसको छोड़ने में जरा भी देर नहीं लगती। अक्षरातीत को पाने के

लिये प्रेम की दीवानगी के सिवाय अन्य कोई भी मार्ग नहीं है। यहाँ दीवानगी का भाव है— प्रेम की वह स्थिति जिसमें स्वयं का अस्तित्व समाप्त हो जाये।

बाई रे गिनान सब्द गम नहीं नवधाने, वेद पुराणें नव कलया।
 ए वात गेहेलड़ी करे रे महामती, मारे अखंड सुख फूले फलया॥६॥

श्री महामति जी कहती हैं कि हे सखी! उस सच्चिदानन्द अक्षरातीत तक इस संसार के ज्ञान के शब्दों की पहुँच नहीं है। वहाँ नवधा भक्ति से भी नहीं जाया जा सकता। वेद एवं पुराणों ने भी उनका स्पष्ट वर्णन नहीं किया है। मैं तो उनके प्रेम में दीवानी होकर ही ये बातें कर रही हूँ, क्योंकि मेरे हृदय में परमधाम के अखण्ड आनन्द का रस बरस रहा है।

भावार्थ— वेद सृष्टि के प्राचीनतम एवं अपौरुषेय ग्रन्थ हैं।

उनमें मात्र अक्षर ब्रह्म का ही विश्लेषण है, अक्षरातीत का नहीं। कहीं-कहीं दिशा मात्र के लिये अक्षरातीत का वर्णन अवश्य है। इसलिये गीता में कहा गया है— "यदक्षरं वेद विदो वदन्ति" अर्थात् वेद को जानने वाले जिस अक्षर ब्रह्म का वर्णन करते हैं। इसी प्रकार कठोपनिषद में कहा है— "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति" अर्थात् सभी वेद जिस अक्षर का वर्णन करते हैं।

प्रकरण ॥४९॥ चौपाई ॥५१२॥

इस प्रकरण में ब्रज लीला के माध्यम से जागनी लीला का सुन्दर वर्णन किया गया है। भावार्थ में इसका गुह्य भेद स्पष्ट किया गया है।

बाई रे गेहेलो वालो गेहेली वात करे रे, एहने कोई तमें वारो।
दुरजन देखतां अमने बोलावे, निलज ने धुतारो॥१॥

ब्रज में एक गोपी दूसरी से कहती है कि हे सखी! हमारे प्रेम में पागल कन्हैया दीवानगी की बातें करता है। तुममें से कोई इसे ऐसा करने से रोके। यह छलिया इतना निर्लज्ज है कि दुष्ट लोगों के सामने भी मुझे बुला रहा है।

भावार्थ- श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे साथ जी! हमारे दीवाने धनी अपनी वाणी के द्वारा निसबत की पहचान कराकर दीवानगी की बातें करते हैं। आपमें से कोई सुन्दरसाथ तो उन्हें ऐसा करने से रोके क्योंकि यह

संसार परमधाम की इश्कमयी लीला को जानने के योग्य नहीं है। मेरे प्रेम के रस में डूबे रहने वाले प्रियतम इन संसारी जीवों के बीच में ही अपनी वाणी से परमधाम का प्रेम रस उड़ेल रहे हैं।

नित उठी आंगनडे ऊभो, आलज करे अमारी।

लोक माहें अमें लज्या पामूं, हूं कुलवधुआ नारी॥२॥

हे सखी! यह प्रतिदिन सवेरे मेरे आँगन में आकर खड़ा हो जाता है तथा हँसी-मजाक करने लगता है। कुलवधू होने से मुझे लज्जा लगती है, लेकिन इसके ऊपर कोई असर ही नहीं होता।

भावार्थ— प्रतिदिन प्रातःकाल की चितवनि में मेरे हृदय में प्रियतम की शोभा प्रकट हो जाती है और वे मुझे अपने आनन्द रस में भिगो देते हैं। मेरा जीव इस हृद का है,

इसलिये वह अपने मन में संकोच करता है कि प्रियतम के इस अलौकिक आनन्द को इस संसार में किस प्रकार ग्रहण करें।

नासंती क्याहें न छूटूं ए थी, आड़ज बांधे आवी।

हूं जाणूं रखे सासुडी सांभले, थाकी कही केहेवरावी॥३॥

मैं इससे किसी भी तरह छूटकर भाग नहीं पाती हूँ क्योंकि यह रास्ता रोककर खड़ा हो जाता है। मैं यह बात कह-कहकर थक चुकी हूँ कि कुछ तो ख्याल कीजिए। हमारी बातचीत को सास सुन लेगी।

भावार्थ- मेरे न चाहते हुए भी धनी ने मुझे अपनी निसबत की पहचान करा दी है तथा ईमान पर भी खड़ा कर दिया है, इसलिये अब तो उनसे अलग होने का प्रश्न ही नहीं होता। मैंने यह बात बार-बार कही है कि मेरी

और आपकी इस प्रेम लीला की खबर सांसारिक सम्बन्धियों को न लगे कि मैंने इस संसार से नाता तोड़कर बेहद और अक्षर से भी परे अपने उस प्राण प्रियतम को पा लिया है। मैं इस बात को छिपाने के लिये कह-कहकर थक चुकी हूँ, लेकिन उन्होंने मुझे संसार में जाहिर कर ही दिया।

वारतां वलगतां वाले, जोरे साईंड़ा लीधां।

कहे महामती सुणो रे सखियो, वाले एणी पेरे गेहेलडा कीधां॥४॥

श्री महामति जी के शब्दों में ब्रजबाला अपनी सखियों से कहती है कि हे सखियों! मेरे लाख मना करने पर भी वालाजी मुझसे लिपट गये और उन्होंने जोर से गले लगा लिया। इस प्रकार उन्होंने मुझे अपने प्रेम में दीवाना बना लिया।

भावार्थ- यद्यपि मैं ईमान पर खड़ी थी, फिर भी माया की फरामोसी का मेरे ऊपर प्रभाव था, किन्तु मेरे धनी ने मुझे अपने विरह रस में डुबोकर अपना लिया। श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! इस प्रकार मेरे प्राण-प्रियतम प्राणनाथ ने मुझे अपने प्रेम में दीवाना बना दिया।

प्रकरण ॥५०॥ चौपाई ॥५१६॥

राग धना श्री

इस प्रकरण में नन्द जी के घर श्री राज जी के आवेश स्वरूप के प्रकट होने पर बधाई मनाने का प्रसंग है।

आज वधाई वृज घर घर, प्रगटया श्री नंद कुमार।

दूध दधी ऊमर धोए, तोरण बांधे वृजनार॥१॥

आज सम्पूर्ण व्रज मण्डल में घर-घर खुशियाँ मनायी जा रही हैं क्योंकि नन्द जी के घर श्री कृष्ण जी का प्रकटन हुआ है। गोपियाँ दूध-दही से दरवाजों तथा चौखटों को धोकर फूलों एवं पत्तियों (आम, अशोक इत्यादि) से वन्दनवार के रूप में सजावट कर रही हैं।

भावार्थ- श्री कृष्ण जी के उस तन में अक्षर ब्रह्म की आत्मा ने अक्षरातीत के आवेश के साथ प्रवेश किया हुआ है। इसी प्रकार गोपियों के तनों में ब्रह्मसृष्टि तथा

ईश्वरी सृष्टि भी वास कर रही हैं। इस प्रकार ब्रह्मलीला के प्रथम चरण में आनन्द का उत्सव मनाया जा रहा है।

एक बीजीने छांटे नांचे, उमंग अंग न माय।

अनेक विधना बाजा रस बाजे, गृह गृह उछव थाय॥२॥

गोपियों के अंग-अंग में खुशी की उमंग है। वे एक-दूसरे के ऊपर दूध, दही के छींटे डालकर प्रसन्नता में नाचती हैं। अनेक प्रकार के बाजे बज रहे हैं तथा घर-घर आनन्दोत्सव मनाया जा रहा है।

लईने वधावा सांचरी, भवन भवन थी नार।

गाए ते गीत सोहामणां, साजे छे सकल सिणगार॥३॥

घर-घर से गोपियाँ बधावा लेकर आ रही हैं। वे सुन्दर-सुन्दर मंगल गीत गा रही हैं तथा सभी प्रकार के श्रृंगार से

सुशोभित हैं।

अबीर गुलाल उछालती आवे, छाया ना सूझे सूर।

चाल चरण छवे नहीं भोमें, जाणे उमडयो सागर पूर॥४॥

वे आपस में एक-दूसरे के ऊपर अबीर-गुलाल उछालती हुई आ रही हैं। अत्यधिक मात्रा में अबीर-गुलाल के उड़ने से सूर्य का भी दिखायी देना कठिन हो रहा है। वे इतनी अधिक प्रसन्न हैं कि उनके पैर धरती पर नहीं पड़ रहे हैं। उनकी इतनी अधिक संख्या आ रही है जैसे कि समुद्र में लहरें उठती हैं।

जुथ जुजवे जुवंतियों, उछरंगतियो अपार।

उछव करती आवियो, बाबा नंदतणें दरबार॥५॥

गोपियों के अलग-अलग समूह (यूथ) नन्द बाबा के घर

आ रहे हैं। वे अपार आनन्द में डूबी हुई हैं और उत्सव (खुशियाँ) मनाती हुई आ रही हैं।

धसमसियो मंदिरमां पेसे, माननी सर्वे धाए।

नंद ने वधावो दई वल्या, मांडवे मंगल गाए॥६॥

सभी गोपियाँ दौड़ती हुई आ रही हैं तथा झुण्ड के झुण्ड होकर नन्द बाबा के घर में प्रवेश कर रही हैं। वे नन्द जी को बधाई देकर लौटती हैं तथा आँगन में आकर मँगलमय गीत गाने लगती हैं।

ब्राह्मण भाट गुणीजन चारण, मलया ते मांगण हार।

निरत नटवा गंधर्व, राग सांगीत थेई थेई कार॥७॥

नन्द जी के द्वार पर ब्राह्मण, भाट, ज्ञानी, चारण, और दान लेने वाले लोग एकत्रित हो गये। गन्धर्व शास्त्रीय रागों

में गाने लगे तथा नर्तक नृत्य करने लगे। संगीत की आकर्षक "तत्ता थेई, तत्ता थेई" की आवाज गूँजने लगी।

नाद दुन्द पडछंदा पर्वतें, वरत्यो जय जय कार।

नंद गोप सहु गेहेला हरखे, खोलावे भंडार॥८॥

नगाड़ों के आवाज की प्रतिध्वनि पहाड़ों में गूँज रही है। चारों ओर जय-जयकार की आवाज सुनायी पड़ रही है। ब्रज के सभी गोप एवं नन्द जी आनन्द में बेसुध हो गये। उन्होंने दान करने के लिये अन्न और धन के भण्डार खोल दिए।

गाए गोधा अनं वस्तर पेहेराव्या, गोप सकल दातार।

केहेने धन केहेने भूखन, नवनिध दे दे कार॥९॥

आज नन्द जी तथा सभी गोप दानी के रूप में शोभा पा

रहे हैं। वे गायों, बछड़ों, तथा अन्न का दान कर रहे हैं। किसी को धन, तो किसी को आभूषण, और किसी को वस्त्र पहनाकर दान दे रहे हैं। इस प्रकार नौ निधियों का दान किया जा रहा है।

भावार्थ- नौ निधियाँ इस प्रकार हैं- १. अन्न २. वस्त्र ३. मधु ४. घृत ५. गोधन ६. गजधन ७. अश्वधन ८. स्वर्ण ९. हीरा व मोती।

ए लीला रे अखंड थई, एहनो आगल थासे विस्तार।

ए प्रगट्या पूरण पार ब्रह्म, महामती तणों आधार॥१०॥

व्रज में ११ वर्ष ५२ दिन तक होने वाली यह लीला अक्षर ब्रह्म के हृदय (योगमाया) में सबलिक के कारण में अखण्ड हो गयी है। इस प्रेममयी लीला का जागनी ब्रह्माण्ड में आगे विस्तार होगा। अक्षरातीत के जिस

आवेश से ब्रज लीला हुई थी, अब वही पूर्ण परब्रह्म इस जागनी ब्रह्माण्ड में श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में प्रकट हुए हैं, जो श्री महामति जी के प्राणाधार प्रियतम हैं।

भावार्थ- सामान्य रूप से इस चौपाई से ऐसा प्रतीत होता है कि महामति जी के प्रियतम ब्रज विहारी श्री कृष्ण जी हैं, परन्तु वास्तविकता यह है कि "महामति" तो इन्द्रावती जी की शोभा का नाम है। ब्रज एवं रास में श्री इन्द्रावती जी की आत्मा लीला में अवश्य थी। उन्होंने अपने उस धनी के साथ लीला की, जिनका आवेश श्री कृष्ण जी के तन में विराजमान था। अब वही नाम और रूप यदि सबलिक के अन्दर ब्रज और रास में लीला कर रहा है, तो भी वह महामति या इन्द्रावती का प्राणाधार नहीं हो सकता, क्योंकि उन तनों में अब धनी का आवेश नहीं है। श्रीमुखवाणी के कथनों से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध

होता है—

तो ए वचन तुमको कहें जाएं, जो तुम धाम की लीला मांहे।
 ब्रज वालो पिऊ सो एह, वचन आपन को कहत हैं जेह।।
 रास मिने खिलाए जिनें, प्रगट लीला करी हैं तिनें।
 धनी धाम के केहेलाए, ए जो साथ को बुलावन आए।।

प्रकास हिंदुस्तानी २९/६१,६२

हवे काढ़ो मोह जलथी बूड़ती कर ग्रही, कहे महामती मारा भरतार।

किरंतन ३५/४

अब मिल रही महामती, पिउ सो अंगों अंग।

अछरातीत घर अपने, ले चले है संग।। किरंतन ४६/७

ए तुम नेहेचे करो सोए, ए वचन महामति से प्रगट न होय।

प्रकास हिंदुस्तानी ४/१४

महामत कहे सुनो साथ, देखो खोल बानी प्राणनाथ।

किरंतन ७३/२५

कोई मन में न धरियो रोष, जिन कोई देओ महामति को दोस।

प्रकास हिंदुस्तानी ४/१३

ए माया बोहोत जोरावर हती, दूर करी मेरे प्राणपति।

माया को तिजारक भई, ता कारन ए विनती कही॥

प्रकास हिंदुस्तानी १९/१५

प्रकरण ॥५१॥ चौपाई ॥५२६॥

राग श्री

सतगुर मेरा स्याम जी, मैं अहनिस चरणें रहूँ।

सनमंध मेरा याही सों, मैं तार्थें सदा सुख लहूँ॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि अक्षरातीत श्री राज जी ही मेरे सद्गुरु हैं। मेरी इच्छा है कि मैं दिन-रात उनके चरणों की छत्रछाया में रहूँ। मेरी आत्मा का मूल सम्बन्ध उन्हीं से है, इसलिये मैं उन्हीं से अपना आनन्द लेती हूँ।

भावार्थ- "तप्त कंचन वर्ण आभा सा श्यामा उच्यते " अर्थात् तपाये हुए कञ्चन वर्ण (लालिमा युक्त अति गौर वर्ण) की किशोरावस्था वाली युवती को श्यामा कहते हैं। इसी स्वरूप वाला पुरुष "श्याम" कहलाता है। इस प्रकार परमधाम में युगल स्वरूप को "श्याम-श्यामा" कहा जाता है। यद्यपि "श्याम" शब्द का अर्थ श्री कृष्ण

और काला भी होता है, किन्तु यहाँ के प्रसंग में श्री राज जी का ही भाव लिया जायेगा।

ए जो माया लोक चौदे, सब त्रिगुन को विस्तार।

ए मोह अहंतेँ उपजेँ, तार्थेँ छूटत नहीं विकार॥२॥

चौदह लोक का यह जो मायावी ब्रह्माण्ड दिखायी दे रहा है, सबमें ही सत्व, रज, तथा तम का फैलाव है। इन तीनों गुणों का प्रकटन मोह तत्व और अहंकार से होता है, इसलिये माया के विकार (काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, तथा अहंकार) छूट नहीं पाते।

भावार्थ— मोह तत्व के स्वरूप का स्पष्ट वर्णन मानवीय बुद्धि से नहीं होता। यद्यपि सांख्य दर्शन के कथनानुसार "सत्व, रज, तथा तम की साम्यावस्था ही प्रकृति है", किन्तु मोह तत्व तथा अहंकार से ही तीनों गुणों का स्पष्ट

रूप से प्रकटीकरण होता है। इससे पहले यह अव्यक्त अवस्था में ही रहते हैं।

इत सास्त्र सब्द कई पसरे, ताको खोज करे संसार।

वाचा निवृत्ति मोह में, आड़ी भई निराकार॥३॥

उस परब्रह्म की खोज में अनेक धर्मग्रन्थों की रचना हुई जिनका आधार लेकर लोग उसकी पहचान करने का प्रयास करते हैं। वाणी की गति मोह तत्व से आगे नहीं जा पाती, इसलिये ये लोग भी निराकार से आगे कुछ भी नहीं सोच पाते।

भावार्थ— तैत्तरीय उपनिषद् का कथन है— "यतो वाचो निवर्तन्ते" अर्थात् वाणी जहाँ से लौट आती है। ब्रह्म वाणी का विषय नहीं है, इसलिये सभी लोग निराकार तक का ही वर्णन कर पाते हैं।

सुन्य निराकार पार को, खोज खोज रहे कई हार।

बोहोतों बहुबिध ढूँढ़या, पर किया न किने निरधार॥४॥

शून्य-निराकार के परे बेहद को खोजते-खोजते बहुत से लोग थक गये। उन्होंने अनेक प्रकार से परब्रह्म को खोजने का प्रयास किया, लेकिन कोई भी सफलता प्राप्त नहीं कर सका।

भावार्थ- यद्यपि शून्य और निराकार का अर्थ एक ही होता है, किन्तु यहाँ पर शून्य से तात्पर्य सात शून्य (कारण) और निराकार का तात्पर्य महाशून्य (मोह तत्व) से है। ईश्वरी सृष्टि और ब्रह्मसृष्टि को छोड़कर कोई भी निराकार से पार नहीं हो पाता।

सो बुधजीऐं सास्त्र ले, सबहीं को काढ़यो सार।

जो कोई सब्द संसार में, ताको भलो कियो निरवार॥५॥

जाग्रत बुद्धि के तारतम ज्ञान ने संसार के इन्हीं शास्त्रों का सार निकाला और अब तक के अनसुलझे रहस्यों को स्पष्ट करके सत्य मार्ग का निर्णय कर दिया।

भावार्थ- अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि को ही "बुद्ध जी" या इस्राफील फरिश्ता (कतेब पक्ष में) कहा गया है। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्दर जब श्री राज जी विराजमान हुए तो जाग्रत बुद्धि भी उनके धाम हृदय में स्थित हो गयी, जिससे सभी धर्मग्रन्थों के गुझ (गुह्य) भेद स्पष्ट होने लगे।

जा कारन माया रची, सास्त्र भी ता कारन।

खेल भी एही देखहीं, और अर्थ भी लिए इन॥६॥

माया का यह खेल ब्रह्मसृष्टियों को दिखाने के लिये ही बनाया गया है तथा शास्त्रों की रचना भी इनके लिये की

गयी है। द्रष्टा के रूप में माया का खेल यही देख रहे हैं, जबकि दूसरे (जीव) तो स्वयं खेल बने हुए हैं। मात्र ब्रह्मसृष्टियों ने ही धर्मग्रन्थों के गुझ भेदों को समझा है।

भावार्थ- शास्त्रों के अध्ययन से जब साक्षी मिल जाती है, तो एक अक्षरातीत पर आस्था दृढ़ हो जाती है। खेल का द्रष्टा वही हो सकता है, जो परब्रह्म के प्रेम में डूबकर निर्विकार बन जाये।

ए माया जाकी सोई जाने, क्यों कर समझे और।

बुध जी के रोसन थें, प्रकास होसी सब ठौर॥७॥

जिसके आदेश से यह माया उत्पन्न हुई है, एकमात्र वही इसके रहस्य को जानते हैं, दूसरा कोई नहीं। जाग्रत बुद्धि के तारतम ज्ञान का उजाला होने पर वास्तविक सत्य का पता सबको चल जायेगा।

किल्ली ल्याए वतन थें, सब खोल दिए दरबार।

माया से न्यारा घर नेहेचल, देखाया मोहजल पार॥८॥

अक्षरातीत धाम धनी ने परमधाम से तारतम ज्ञान रूपी कुञ्जी लाकर अखण्ड धामों (बेहद तथा परमधाम) का दरवाजा खोल दिया। माया से परे जिस अखण्ड परमधाम का ज्ञान किसी को नहीं था, वह प्राप्त हो गया।

ब्रह्मसृष्ट जाहेर करी, बुधजीए इत आए।

अछरातीत को आनन्द, सत सुख दियो बताए॥९॥

बुद्ध जी (बुध) ने इस संसार में आकर ब्रह्मसृष्टियों को जाहिर किया तथा अक्षरातीत के अखण्ड आनन्द की भी पहचान दी।

भावार्थ— यद्यपि अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि को ही "बुध जी" कहते हैं, किन्तु कहीं-कहीं सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र

जी तथा श्री प्राणनाथ जी को भी "बुध जी" के सम्बोधन से व्यक्त किया गया है, क्योंकि इन दोनों स्वरूपों में जाग्रत बुद्धि विराजमान थी।

एते दिन त्रैलोक में, हुती बुध सुपन।

बुध जी बुध जाग्रत ले, प्रगटे पुरी नौतन॥

परिकरमा २/११

आए नवनाथ चौरासी सिध, बरस्या नूर सकल या बिध।

इत आए बुधजी ऐसी किध, भई नई रे नवो खंडों आरती॥

किरंतन ५६/११

ऐसा समे जान आए बुध जी, कर कोट सूर समसेर।

किरंतन ५९/१

वस्तुतः श्री देवचन्द्र जी को "श्री विजयाभिनन्द बुद्ध" तथा श्री प्राणनाथ जी को "श्री विजयाभिनन्द बुद्ध

निष्कलंक स्वरूप" कहते हैं, किन्तु रचना की दृष्टि से चौपाइयों में संक्षिप्त रूप से दोनों को ही "बुद्ध जी" के सम्बोधन से व्यक्त किया गया है। बुद्ध गीता में भी यही प्रक्रिया अपनायी गयी है—

अक्षरातीत एषो वै पुरुषो बुद्ध उच्यते।

तेजोमयो आदि रूपश्च तस्यावतार उच्यते॥

अगली चौपाई (१०) से यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जायेगा कि यहाँ सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी को ही बुद्ध जी कहा गया है।

सब्द सुनाए सुक व्यास के, मोहे खिन में कियो उजास।

उपनिषद अर्थ वेद के, ए गुझ कियो प्रकास॥१०॥

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने शुकदेव एवं व्यास जी के वचनों को सुनाकर क्षण भर (अति अल्प समय) में ही

मेरे अन्दर अखण्ड ज्ञान का उजाला कर दिया। उन्होंने तारतम ज्ञान द्वारा वेदों तथा उपनिषदों के अनसुलझे रहस्यों को भी उजागर कर दिया।

इनसें सुध मोहे सब भई, संसे रह्यो न कोए।

बुधजी बिना इन मोह में, प्रकास जो कैसे होए॥११॥

अब मेरे हृदय में किसी भी प्रकार का संशय नहीं रह गया तथा सम्पूर्ण सत्य ज्ञान का प्रकाश हो गया है। इस मायावी जगत में भला सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के तारतम ज्ञान के बिना कोई अखण्ड परमधाम का ज्ञान कैसे प्राप्त कर सकता है।

संगी जो अपने सनमंधी, सो भी गए मांहे भूल।

तो क्यों समझें जीव मोह के, जाको निद्रा मूल॥१२॥

जब परमधाम के अपने मूल सम्बन्धी सुन्दरसाथ ही माया में स्वयं को तथा धनी को भूल गये तो भला जीव सृष्टि, जिसकी उत्पत्ति ही मोह (अज्ञान, नींद) से हुई है, परम सत्य को कैसे समझ सकती है।

पिया मोहे अपनी जान के, अन्तर दर्ई समझाए।

ना तो आद के संसे अब लों, सो क्योंकर मेटयो जाए॥१३॥

धाम धनी ने मुझे अपनी अँगना जानकर सारे भेदों को स्पष्ट कर दिया, अन्यथा सृष्टि के प्रारम्भ से चले आ रहे संशयों को आज दिन तक कोई भी मिटा नहीं पाया है।

भावार्थ— सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आज तक इन प्रश्नों पर विचार होता रहा है— १. मैं कौन हूँ? २. मैं कहाँ से आया हूँ? ३. मेरी आत्मा का प्रियतम कौन है और कहाँ है? ४. उसका स्वरूप तथा लीला कैसी है? ५. उसकी

प्राप्ति का साधन क्या है? इन प्रश्नों के सम्बन्ध में सारी सृष्टि में जो भी चर्चा होती है, सब संशयात्मक ही होती है। तारतम ज्ञान के बिना इनका यथोचित उत्तर कोई भी नहीं दे सकता।

ए बीतक कहूं सैयन को, जाहेर देऊं बताए।

मोहे जगाई पिया ने, मैं देऊं सबे जगाए॥१४॥

सुन्दरसाथ को मैं अपनी आपबीती यह बात प्रत्यक्ष में बता रही हूँ। धाम धनी ने जब मुझे जगाया है, तो मेरा संकल्प यह है कि सब सुन्दरसाथ को जगाऊँ।

भावार्थ— प्रश्न यह होता है कि जब धनी ने श्रीमुखवाणी में यह कहा है कि सबकी जागनी मैं ही करता हूँ – "आवेस जागनी हाथ पिया के, एह हमारा बल", तो श्री महामति जी ने यहाँ क्यों कहा है कि मैं सबको जगाना

चाहती हूँ?

महामति जी को श्री राज जी ने जागनी की सारी शोभा दे रखी है, इसलिये उन्होंने ऐसा कहा है।

इन्द्रावती को उपमा, मैं दई अपने हाथ।

कलस हिंदुस्तानी २३/६४

नाम सिनगार शोभा सारी, मैं भेख तुमारो लियो।

किरंतन ६२/१५

यहाँ यह संशय पैदा होता है कि क्या हमें इस छठें दिन में जागनी कार्य बन्द कर देना चाहिए, क्योंकि यह सारी जिम्मेदारी तो हकी सूरत श्री प्राणनाथ जी की है?

तो इसका समाधान यह है कि हमें यह कार्य अपनी "मैं" को लेकर या किसी स्वार्थ तथा प्रतिष्ठा के वशीभूत होकर नहीं करना चाहिए, बल्कि धनी की "मैं" लेकर उनको जाहिर करने और इस अलौकिक ब्रह्मज्ञान से

सबका कल्याण करने की भावना से करना चाहिए।

ए खेल हुआ सैयों खातिर, और खातिर अछर।

सबके मनोरथ पूरने, देखाए तीनों अवसर॥१५॥

माया का यह खेल ब्रह्मसृष्टि तथा अक्षर ब्रह्म की इच्छा को पूर्ण करने के लिये ही बनाया गया है। ब्रज, रास, तथा जागनी का यह ब्रह्माण्ड भी सबकी इच्छाओं को पूरा करने के लिये ही दिखाया गया है।

भावार्थ— ब्रज में ब्रह्मसृष्टियों ने माया देखी, रास में विरह के साथ प्रेम के विलास का आनन्द लिया, और इस जागनी के ब्रह्माण्ड में ब्रह्मवाणी द्वारा निसबत, वाहिदत, इश्क, और खिलवत की हकीकत तथा मारिफत के उन रहस्यों को जान रही हैं जो परमधाम में भी नहीं जाना था। अक्षर ब्रह्म ने ब्रज में प्रेम लीला देखी,

रास में प्रेम का विलास देखा, तथा इस जागनी ब्रह्माण्ड में २५ पक्ष एवं अष्ट प्रहर की लीला का आनन्द ले रहे हैं जो उन्हें कभी पहले नहीं मिला था।

जब माया मोह न अहंकार, ना विस्तरे त्रिगुन।

ए दिल दे के समझियो, कहूंगी मूल वचन॥१६॥

हे सुन्दरसाथ जी! जब माया, मोह, और अहंकार की उत्पत्ति नहीं हुई थी, और न सत्व, रज, तथा तम का ही फैलाव हुआ था, उस समय परमधाम में जो कुछ भी "मूल बातें" हुई थीं, उसे मैं कह रही हूँ। आप सच्चे दिल से सावधान होकर सुनिए।

भावार्थ— जब मोह तत्व को प्रकृति का महाकारण स्वरूप माना जाता है, तो उसके पहले माया का प्रसंग क्यों?

निज लीला ब्रह्म बाल चरित्र, जाकी इच्छा मूल प्रकृत।

प्रकास हिंदुस्तानी ३७/९

यहाँ माया शब्द का प्रयोग मूल माया (मूल प्रकृति) के लिये किया गया है, जिसके द्वारा मोह तत्व का प्रकटीकरण होता है।

तब खेल हम मांगया, सो देखाया दो बेर।

तामें बृज में खेले पिया संग, बीच मोह के अंधेर॥१७॥

उस समय हमने परमधाम में धनी से माया का खेल देखने की इच्छा की। धनी ने हमें दो बार में माया का खेल दिखाया है। सबसे पहले हम ब्रज में धनी के साथ खेले, जिसमें माया का पूरा अन्धकार था।

भावार्थ- माया का खेल दो बार दिखाने का तात्पर्य ब्रज और रास से है। ब्रज में पूरी नींद (अज्ञान) थी अर्थात् न

तो हमें धनी की पहचान थी और न घर की। रास में आधी नींद और आधी जाग्रति थी अर्थात् धनी की पहचान तो थी किन्तु घर की पहचान नहीं थी।

जागनी के इस ब्रह्माण्ड में भी यद्यपि हम माया के ही ब्रह्माण्ड में आये हुए हैं, किन्तु परमधाम की वाणी से जाग्रत हो जाने के पश्चात् हमें धनी की और निज घर की पहचान तो है ही, उन बातों (खिलवत, निसबत, वाहिदत की मारिफत) की भी जानकारी है जो परमधाम में नहीं थी। यदि अज्ञान या मोह को ही माया कहते हैं, तो इस जागनी ब्रह्माण्ड में जाग्रत हो जाने के बाद माया का असर नहीं रहता क्योंकि "इतहीं बैठे घर जागे धाम, पूरे मनोरथ हुए सब काम" (प्रकास हिंदुस्तानी ३७/११२)।

काल माया देखी नींद में, आधी नींद माया जोग।

ताथें देखाई जगाए के, इत लेसी सबको भोग॥१८॥

कालमाया के ब्रह्माण्ड में व्रज की लीला हमने पूरी नींद में देखी, किन्तु योगमाया के ब्रह्माण्ड में रास की लीला आधी नींद तथा आधी जाग्रति की थी। इसलिये धनी ने हमें इस जागनी के ब्रह्माण्ड में जाग्रत करके खेल दिखाया है। इस ब्रह्माण्ड में हमें व्रज , रास, नवतनपुरी, तथा परमधाम की लीलाओं का आनन्द प्राप्त होता है।

इन लीला की जो आतमा, सो करसी सबे पेहेचान।

आवत दौड़े अंकूरी, ए ताए मिलसी निसान॥१९॥

व्रज, रास, तथा जागनी लीला में भाग लेने वाली आत्मायें इस जागनी ब्रह्माण्ड में धाम धनी अक्षरातीत श्री राज जी की पूर्ण पहचान कर लेंगी, तथा परमधाम का

मूल अँकुर होने के कारण वे दौड़ते हुए अपने धनी के चरणों में आयेंगी। उनको ही ये सारे रहस्य विदित होंगे।

भावार्थ- अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी की पहचान यथार्थ रूप में केवल ब्रह्मसृष्टि ही करेगी। उसे ही यह रहस्य विदित होगा कि हम हृद-बेहृद से परे परमधाम के रहने वाले हैं। व्रज-रास की लीला के पश्चात् हम इस जागनी ब्रह्माण्ड में आये हुए हैं।

अखंड सुख जाहेर कियो, मूल बुध प्रकासी।

देत देखाई जैसे दुनियां, पर अछरातीत के वासी॥२०॥

हमारे प्राण प्रियतम अक्षरातीत ने अक्षर ब्रह्म की मूल जाग्रत बुद्धि तथा अपनी निज बुद्धि के द्वारा ब्रह्मवाणी का अवतरण किया, तथा परमधाम के अखण्ड सुख को इस झूठे संसार में भी जाहिर कर दिया। यद्यपि ब्रह्मसृष्टि इस

संसार के लोगों जैसी ही प्रतीत होती हैं, किन्तु वह परमधाम की रहने वाली हैं।

भावार्थ- ब्रह्मसृष्टि की सुरता (आत्मा, वासना) संसार के जीवों के ऊपर ही बैठी होती है, इसलिये शक्ल-सूरत से यह निर्णय नहीं किया जा सकता कि कौन ब्रह्मसृष्टि है, कौन ईश्वरी, तथा कौन जीव सृष्टि? निःसन्देह इशक और ईमान ही ब्रह्मसृष्टि की सबसे बड़ी पहचान है।

खेल किया पेहेले बृज में, खेल दूजा वृन्दावन।

उमेद रही तो भी नेक सी, तार्थें एह उत्पन॥२१॥

धनी ने हमारे साथ पहले ब्रज में लीला की तथा दूसरी बार योगमाया के नित्य वृन्दावन में रास की लीला की। इन दोनों लीलाओं से भी तामसी सखियों के मन में माया देखने की थोड़ी सी इच्छा बाकी रह गयी थी, इसलिये

जागनी का यह ब्रह्माण्ड बनाया गया।

बृज रास ए सोई लीला, सोई पिया सोई दिन।

सोई घड़ी ने सोई पल, वैराट होसी धन धन॥२२॥

अभी भी परमधाम में वही दिन है, जब हमने धनी से माया का खेल माँगा था। धनी के सम्मुख बैठे हुए हमारे लिये वही पल और वही घड़ी है, किन्तु इतने ही समय के अन्दर ब्रज-रास की लीला हो चुकी है, तथा जागनी रास भी समाप्त हो जायेगी, तथा हम अपने मूल तनों में जाग्रत हो जायेंगे। इतने अल्प समय के अन्दर सारा ब्रह्माण्ड भी अखण्ड हो जायेगा।

भावार्थ- यह गहन जिज्ञासा की बात है कि जिस महारास की रात्रि की अवधि का पार कोई लगा नहीं पाता, उस रास-रात्रि सहित ब्रज एवं जागनी ब्रह्माण्ड

को भी एक पल के अन्दर समाप्त हुआ कैसे माना जा सकता है?

इस तथ्य को भागवत् में वर्णित मार्कण्डेय ऋषि के दृष्टान्त से सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। जिस प्रकार एक पल के स्वप्न में लाखों-करोड़ों वर्ष की घटना देखी जा सकती है, उसी प्रकार श्री राज जी ने परमधाम में हमें अपनी नजरों के सामने बिठाकर इस खेल को दिखा दिया है।

सखी एक दूजी को ढूँढहीं, आई जुदी जुदी इन बेर।

प्रेम प्यासी पिया की, लई जो विरहा घेर॥२३॥

इस जागनी ब्रह्माण्ड में ब्रह्मसृष्टियाँ व्रज और रास के विपरीत अलग-अलग स्थानों में आयी हुई हैं। वे आपस में एक-दूसरे को ढूँढ रही हैं। वाणी से ईमान पर खड़े हो

जाने के पश्चात् वे धनी के विरह में डूब जाती हैं। सभी धनी के प्रेम की प्यास में तड़पने लगती हैं।

भावार्थ- ब्रज और रास में सखियाँ सभी इकट्ठी थीं। सभी का रूप (नारी तन) भी समान था। किन्तु जागनी लीला में ब्रह्मसृष्टि अलग-अलग प्रान्तों, अलग-अलग परिवारों एवं सम्प्रदायों में आयी हुई हैं। कोई पुरुष तन में है, तो कोई स्त्री तन में। तारतम ज्ञान मिलने से पहले वह संसार वालों की ही तरह नदियों, वृक्षों, तथा पत्थरों की पूजा कर रही होती हैं।

अब ए लीला क्यों छानी रहे, सखियां मिली सब टोले।

पल पल प्रकास पसरे, आगम ही आगम बोले॥२४॥

तारतम वाणी के प्रकाश में झुण्ड की झुण्ड ब्रह्मसृष्टि जाग्रत हो रही हैं। इसलिये अब यह लीला किसी भी

प्रकार से छिपी नहीं रह सकती। धर्मग्रन्थों की भविष्यवाणियों में कहा गया है कि ब्रह्मवाणी का प्रकाश पल-पल चारों ओर फैल जायेगा।

भावार्थ- बृहत्सदाशिव संहिता ग्रन्थ श्लोक १८, १९ में कहा गया है कि "चिदावेशवती बुद्धिरक्षरस्य महात्मनः। प्रबोधाय प्रियाणां च कृष्णस्य परमात्मनः। मुक्तिदा सर्वलोकानां भविता भारताजिरे। प्रसरिष्यति हृद्येशे स्वामिन्याः प्रभुणेरिता।" अर्थात् परमधाम की आत्माओं को जाग्रत करने के लिये परब्रह्म के आवेश से युक्त अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि भारतवर्ष में प्रकट होगी और उससे चौदह लोक के सभी प्राणियों को अखण्ड मुक्ति प्राप्त होगी। इसी प्रकार का कथन पुराण संहिता, माहेश्वर तन्त्र, बुद्ध गीता, कुरआन, एवं बाइबल में भी है।

ब्रह्मलीला ढांपी हती, अवतारों दरम्यान।

सो फेर आए अपनी, प्रगट करी पेहेचान॥२५॥

श्री कृष्ण के अवतारों के बीच में ब्रह्मलीला छिप गयी थी। अब वही अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में प्रकट हो गये हैं और अपनी स्पष्ट पहचान सबको दे रहे हैं।

भावार्थ— श्री कृष्ण जी के दो अवतार हुए। पहला अवतार, जिसने मथुरा में कारागार में प्रकट होकर वसुदेव-देवकी को दर्शन दिया। यह अवतार विष्णु भगवान ने धारण किया था। इस तन में जब बेहद की शक्ति ने प्रवेश किया, तब इसे अवतार नहीं कहेंगे।

वसुदेव गोकुल ले चले, ताए न कहिए अवतार।

सो तो नहीं इन हद का, अखण्ड लीला है पार॥

कलस हिंदुस्तानी १८/१४

वसुदेव जी जिस बालक को लेकर नन्द जी के घर पहुँचे, उसमें अक्षर ब्रह्म की आत्मा ने धनी के आवेश के साथ प्रवेश किया।

सो सूरत धनी को ले आवेश, नन्द घर कियो प्रवेश।

प्रकास हिंदुस्तानी ३६/२९

अब इस स्वरूप (आत्म अक्षर जोश धनी धाम) के द्वारा ११ वर्ष ५२ दिन तक ब्रह्मलीला हुई, तत्पश्चात् योगमाया के ब्रह्माण्ड में रास लीला भी हुई। कालमाया के नये ब्रह्माण्ड में जब प्रतिबिम्ब की लीला हुई, उसमें गोलोकी शक्ति ने प्रतिबिम्ब की सखियों तथा वेद ऋचा सखियों के साथ लीला की। मथुरा में जाकर इसी स्वरूप ने कंस को मारकर जब राजसी वस्त्र धारण किया, तो गोलोकी शक्ति भी उस तन से चली गयी और अवतार की लीला प्रारम्भ हो गयी। यह लीला प्रभास क्षेत्र में

यदुवंशियों के पतन तक चलती रही।

तारतम ज्ञान के न होने से संसार के लोग यह समझ ही नहीं पाये कि श्री कृष्ण के नाम से ब्रह्मलीला कब और कैसे हुई? वे जेल में प्रकट होने वाले, ११ वर्ष ५२ दिन तक लीला करने वाले, तथा महाभारत के युद्ध में भाग लेने श्री कृष्ण को एक ही मानते हैं।

सो पेहेचान सबों पसराए के, देसी सुख वैराट।

लौकिक नाम दोऊ मेट के, करसी नयो ठाट॥२६॥

अब अक्षरातीत "श्री प्राणनाथ जी" के स्वरूप में सारे ब्रह्माण्ड को अपने स्वरूप की पहचान देंगे तथा सबको अखण्ड मुक्ति का सुख प्रदान करेंगे। वे अपनी पूर्व लीलाओं के दोनों लौकिक नामों को मिटाकर नयी शोभा वाले नाम से जाहिर होंगे।

भावार्थ- यहाँ लौकिक नाम से तात्पर्य न तो हिन्दू-मुस्लिम के नाम से है और न स्वर्ग-नरक से। यहाँ नाम शब्द का सम्बोधन किसी व्यक्ति के लिये है। हिन्दू-मुस्लिम वर्ग विशेष हैं तथा स्वर्ग-नर्क लोक विशेष हैं।

यहाँ प्रसंग है कि पूर्व में श्री कृष्ण जी और श्री देवचन्द्र जी के नाम से अक्षरातीत लीला कर चुके थे। ये दोनों नाम लौकिक हैं, क्योंकि इन तनों के पिता क्रमशः वसुदेव और मत्तू मेहता हैं। इसी प्रकार "मिहिरराज" भी लौकिक नाम ही है, जिनके पिता श्री केशव राय हैं। परब्रह्म का कोई पिता नहीं हो सकता , इसलिये अक्षरातीत ने स्वयं को "श्री प्राणनाथ" एवं "श्री जी" के रूप में जाहिर किया , जिनकी लीला परमधाम, ब्रज, रास, एवं जागनी में भी चलती रही है।

दोए सुपन ए तीसरा, देखाया प्राणनाथ।

किरंतन ९३/९

मांगा किया राधा बाई का, पर ब्याहे नहीं प्राणनाथ।

कलस हिंदुस्तानी १९/३१

कंठ बांहोडी फरे साथ, एम रंगे श्री प्राणनाथ।

रास १६/७

तब श्री मुख वचन कहे प्राणनाथ, ढूढ़ काढ़नो अपनो साथ।

प्रकास हिंदुस्तानी ३७/८२

लई तारतम अजवालूं सार, वली श्री जी आव्या आ वार।

प्रकास गुजराती ११/६

श्री श्रीजी ने चरण पसाए, जसिया हमची गाए।

किरंतन १२५/११

ए नित लीला बुध जी, करसी बड़ो विलास।

दया भई दुनियां पर, होसी सबे अविनास॥२७॥

श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप की यह अखण्ड लीला बहुत अधिक आनन्द देने वाली होगी। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर उनकी यह विशेष कृपा हुई है, जिसमें सभी अखण्ड हो जायेंगे।

सुर असुर ब्रह्मांड में, मिलकर गावसी ए सुख।

इन लीला को जो आनंद, वरन्यो न जाए या मुख॥२८॥

हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही संसार में मिलकर इस जागनी लीला के सुख को गायेंगे। इस लीला में जो आनन्द होगा, उसका वर्णन इस मुख से सम्भव नहीं है।

सब पर हुआ कलस, प्रेम आनंद भरपूर।

महामत मोह अहं उड़यो, ऊग्यो अखंड वतनी सूर॥२९॥

श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप से होने वाली यह जागनी लीला सभी लीलाओं (व्रज, रास) के ऊपर कलश के समान सुशोभित है। इस लीला में पूर्ण प्रेम और आनन्द का रस मिलता है। श्री महामति जी कहते हैं कि परमधाम का सूर्य अर्थात् तारतम ज्ञान रूपी सूर्य उग आया है, जिससे संसार का मोह-अहंकार रूपी अज्ञान का अन्धकार समाप्त हो गया है।

भावार्थ- ब्रह्मवाणी के ज्ञान से जाग्रत हो जाने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि "इतहीं बैठे घर जागे धाम"। ऐसी स्थिति में व्रज और रास में होने वाली भूलें नहीं हो सकतीं, और आत्मा मारिफ़्त (विज्ञान) की अवस्था में पहुँचकर धनी से एकरूपता को प्राप्त कर लेती है।

इसलिये इस जागनी लीला की शोभा सबके ऊपर कलश के समान है। इसमें परमधाम के प्रेम और आनन्द का पूर्ण रसास्वादन होता है।

प्रकरण ॥५२॥ चौपाई ॥५५५॥

राग श्री

यह कीर्तन हरिद्वार में उतरा है।

धनी जी ध्यान तुमारे रे।

धनी मेरे ध्यान तुमारे, बैठे बुधजी बरस सहस्र चार।

छे सै साठ बीता समे, दुनियां को भयो आचार॥१॥

हे धनी! रास की रात्रि के पश्चात् आपके ध्यान में ही अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि बैठी रही। वि.सं. १७३५ में हरिद्वार में आपके जाहिर होने तक ध्यान की अवधि तथा संसार की आयु ४६६० वर्ष की हो गयी।

भावार्थ— महारास के अन्दर अक्षर ब्रह्म की आत्मा ने प्रेम की लीला का विलास तो देखा था, किन्तु परमधाम की वाहिदत, खिलवत, इश्क, तथा निसबत की मारिफत का ज्ञान नहीं हो सका था। यह तभी सम्भव था, जब श्री

श्यामा जी की बादशाही के चालीस वर्ष की लीला प्रारम्भ हो तथा तारतम का तारतम अर्थात् खिलवत, परिक्रमा, सागर, और श्रृंगार की वाणी का अवतरण हो। यह निजबुद्धि के बिना सम्भव नहीं था। इसी कारण अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि (बुद्ध जी, इस्राफील) वि.सं. १७३५ के आने की बाट देखती रही।

**हिन्दू मुसलमान रे फिरंगी कई जातें, होदी बोदी जैन अपार।
वादे सो ब्रोध बधारिया, करी अगनी उदेकार॥२॥**

हिन्दुओं, बौद्धों, जैनियों, मुसलमानों, ईसाइयों, यहूदियों, कई अन्य जातियों एवं मत-मतान्तरों ने अपने-अपने सिद्धान्तों की टकराहट में विरोध बढ़ा लिया, जिससे उनके अन्दर द्वेष की अग्नि प्रज्वलित हो गयी।

कहावें धरम पंथ रे लड़ें मांहें वैरें, अंग असुराई को अधिकार।

पसु पंखी साधू न छूटे काहूं, पुकार न काहूं बहार॥३॥

इन मतों के अनुयायी स्वयं को धर्म की राह पर चलने वाला कहते थे, किन्तु आपस में वैर के कारण लड़ते थे। इनके हृदय में तामसिक (आसुरी) प्रवृत्ति ने अपना अधिकार जमा लिया था। पशु-पक्षी और साधू जन भी तामसिक प्रवृत्ति से अछूते नहीं रह गये। सताये गये दुःखी लोगों की पुकार को सुनने वाला कोई भी नहीं था।

भावार्थ- सात्विक प्रवृत्ति वाले देवता, रजोगुणी प्रवृत्ति वाले मनुष्य, तथा तामसिक प्रवृत्ति वाले असुर (राक्षस) कहे जाते हैं। कलिकाल में बन्दर आदि द्वारा अण्डा खाया जाना, गाय द्वारा विष्टा खाया जाना, तथा भैरव आदि की पूजा करने वालों द्वारा शराब आदि का सेवन सामान्य बात है, इसे ही तामसिक प्रवृत्ति के चंगुल में

फँसना माना गया है।

भाजे भजन रे बाजे उछव अटके, ढाहे मंदिर हरिद्वार।

सत छोड़ सूरों नीचा देखिया, कमर बांधी रही तरवार॥४॥

औरंगज़ेब के शासन काल में हरिद्वार में मन्दिर गिराये जाने से चारों ओर आतंक छा गया। हिन्दुओं के धार्मिक उत्सव तथा खुशी के कार्यक्रमों पर रोक लग गयी। साधु-महात्माओं की भजन-साधनायें भी बन्द सी हो गयीं। सत्य को छोड़ने के कारण ही हिन्दुओं को नीचा देखना पड़ा। उनकी तलवारें मात्र कमर की ही शोभा बनी रहीं। वे मुसलमानों का प्रतिकार (विरोध) नहीं कर सके। सत्य ज्ञान के भण्डार वेदों से विमुख होना ही सत्य को छोड़ना है।

भावार्थ- यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण का कथन है- "यो

अन्यां देवतामुपासते, स न वेद यथा पशुभिः एव देवानाम्" अर्थात् जो सच्चिदानन्द परब्रह्म को छोड़कर अन्य किसी (महापुरुष, जड़ पदार्थ आदि) की उपासना करता है, वह विद्वानों में पशु तुल्य है। हिन्दुओं ने वेद की आज्ञा का उल्लंघन करके अनेक देवी-देवताओं तथा उनके अवतारों की प्रतिमाएँ बनाकर पूजना शुरू किया, जिससे वे सैकड़ों सम्प्रदायों एवं जातियों में बँट गये। आपस में एकता न रहने से वे हारते गये तथा हरिद्वार, अयोध्या, काशी इत्यादि के मन्दिरों के गिराये जाने से वे पूर्णतया हतोत्साहित हो गये कि जब हमारे इष्ट के मन्दिर ही नष्ट हो गये तो हमारी संस्कृति कैसे सुरक्षित रहेगी। इस प्रकार वे दृढ़ मनोबल से मुसलमानों के अत्याचार का विरोध नहीं कर सके।

कसे साधू रे काहू भजन ना रह्या, कुली बरस्या जलते अंगार।

धखयो दावानल दसो दिसा, ऐसा भवड़ा हुआ भयंकर॥५॥

कलियुग ने घृणा और द्वेष के अँगारों की ऐसी वर्षा की कि शान्ति का उपदेश देने वाले साधु-महात्मा ही विवादों में फँसे रहे। उनके लिये यह परीक्षा की घड़ी थी। ऐसा लगता था कि उनकी साधना में कोई शक्ति ही न रही। संसार में इतना भयंकर अत्याचार हुआ कि दशों दिशाओं में विनाश की अग्नि जलने लगी।

मांस आहारी रे न दया डरे किनसे, ऐसा हुआ हाहाकार।

बुधजी बिना वैराट में, ऐसो बरत्यो वेहेवार॥६॥

धर्म के नाम पर अत्याचार करने वाले माँसाहारी मुसलमानों में दया नाम की कोई वस्तु नहीं थी। उनको कर्मफल के सिद्धान्त तथा किसी राजा आदि के विरोध

का डर भी नहीं था। हिन्दुओं में चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था। श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप श्री प्राणनाथ जी के प्रकटन से पूर्व संसार की यह दयनीय स्थिति थी।

द्रष्टव्य— यद्यपि मुसलमानों में रहीम, रसखान जैसे भक्त एवं कोमल हृदय वाले लोग भी हुए हैं, किन्तु धर्मान्धता से ग्रसित लोगों से उस समय दया की आशा करना व्यर्थ था। अकेले तैमूरलंग ने केवल मेरठ में ही एक लाख से अधिक हिन्दुओं को, जिनमें बच्चें, बूढ़े, तथा स्त्रियाँ भी थीं, यह कहकर कटवा दिया कि मेरा खुदा मेरे इस कार्य से खुश होगा।

आवसी धनी धनी रे सब कोई केहेते, आगमी करते पुकार।
सो सत बानी सबों की करी, अब आए करो दीदार॥७॥

भविष्य का कथन करने वाले सभी धर्मग्रन्थों में यह वर्णित है कि २८वें कलियुग में सच्चिदानन्द परब्रह्म का प्रकटन होगा। भविष्यवक्ता मनीषीजन भी यही बात पुकार-पुकार कर कहा करते थे। अब स्वयं अक्षरातीत ने प्रकट होकर सबकी भविष्यवाणियाँ सत्य सिद्ध कर दी हैं। हे संसार के लोगों! अब आकर उनका दर्शन करो।

भावार्थ- कलियुग में अक्षरातीत परब्रह्म के प्रकटन के सम्बन्ध में बुद्ध गीता , पुराण संहिता, माहेश्वर तन्त्र, भविष्य दीपिका, भविष्य पुराण, श्रीमद्भागवत्, एवं कबीर जी तथा गुरु नानक देव जी के कथनों में वर्णन है। इसके अतिरिक्त कतेब परम्परा के न्यू टेस्टामेन्ट एवं कुरआन-हदीसों में इसका स्पष्ट वर्णन है।

कुरान पुरान रे वेद कतेबों, किए अर्थ सबे निरधार।

टाली उरझन लोक चौदे की, मूल काढ़यो मोह अहंकार॥८॥

श्री प्राणनाथ जी ने वेद, पुराण आदि (सभी हिन्दू धर्मग्रन्थों), तथा कतेब (कुरआन एवं हदीसों) के गुह्य रहस्यों को स्पष्ट कर दिया, जिससे चौदह लोक की सारी उलझनें समाप्त हो गयीं तथा सबको अन्धकार में भटकाने वाला मोह-अहंकार का बन्धन ही समाप्त हो गया।

भावार्थ- यद्यपि कतेब परम्परा में तौरैत , इन्जील, जंबूर, तथा कुरआन चारों आते हैं, किन्तु प्रथम तीन ग्रन्थों के मन्तव्यों का कुरआन में ही समावेश हो जाने से यहाँ कतेब का तात्पर्य कुरआन से लिया गया है। चौदह लोक में निराकार-बेहद से परे अक्षर-अक्षरातीत का ज्ञान नहीं था। इसे ही इस चौपाई में उलझन कहा गया

है।

सुन्य निरगुन निरञ्जन, देखे वैकुंठ निराकार।

अछर पार अछरातीत, प्रेम प्रकास्यो पार के पार॥९॥

श्री प्राणनाथ जी ने अपनी ब्रह्मवाणी से यह स्पष्ट कर दिया कि वैकुण्ठ के परे शून्य, निर्गुण, निरञ्जन या निराकार क्या है, एवं उसके भी परे अक्षर ब्रह्म तथा सर्वोपरि अक्षरातीत की प्रेममयी लीला कैसी है।

भावार्थ- शून्य, निर्गुण, निरञ्जन, तथा निराकार एकार्थवाची हैं। अति सूक्ष्म होने से शून्य कहा जाता है। रूप, रस आदि गुणों से रहित होने से वह निर्गुण है। अवयव से रहित होने से निरञ्जन तथा आकारहीन होने के कारण निराकार कहलाता है।

पेहेरयो बागो रे बांधी कमर, अश्व उजले भए अस्वार।

होसी बड़ा मेला बरस एके, साथ होत सबे तैयार॥१०॥

श्री प्राणनाथ जी श्वेत वस्त्र धारण कर श्वेत घोड़े पर सवार हो गये हैं। वे अज्ञान के समूल विनाश के लिये पूर्ण रूप से तैयार (कटिबद्ध) हैं। महाकुम्भ मेले में धर्माचार्यों का बहुत बड़ा समागम होना था, जिसके लिये सुन्दरसाथ एक वर्ष पूर्व से ही उत्साहपूर्वक तैयार हो रहे थे।

भावार्थ- श्वेत रंग पूर्ण ज्ञान तथा शान्ति का प्रतीक है। श्वेत घोड़े का तात्पर्य जाग्रत बुद्धि से है। श्री प्राणनाथ जी को श्वेत वस्त्रों में दर्शाने का कारण यह है कि सच्चे ज्ञान से ही शान्ति प्रकट होती है। वि.सं.१७३५ में श्री जी का हरिद्वार में "श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप" में जाहिर होने की भविष्यवाणी धर्मग्रन्थों में पहले से ही थी।

इसलिये इस शुभ घड़ी की प्रतीक्षा में सुन्दरसाथ ने एक वर्ष पहले से ही तैयारी कर रखी थी।

प्रकरण ॥५३॥ चौपाई ॥५६५॥

राग श्री

प्रकरण ५२ से ५४ तक के कीर्तन हरिद्वार में उतरे हैं। इनमें श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप श्री प्राणनाथ जी की विशेष रूप से पहचान दी गयी है।

हो साथ जी वेगे ने वेगे, वेगे ने मिलो रे सैयों समें रास को॥टेक॥

कारज कारन की बात अति बड़ी, याको क्यों कहिए अवतार।

रे साथ जी हुई अखंड निध पांचों भेली, कियो सो बड़ो विस्तार॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! यह जागनी रास का समय है, इसलिये आप सभी बहुत शीघ्र ही जाग्रत होकर धनी के चरणों में आ जाइए। कार्य – कारणवश इस नश्वर जगत में अक्षरातीत को आना पड़ा है। इसकी बहुत अधिक महिमा है। इस स्वरूप को भला अवतार कैसे कहा जा सकता है। इस स्वरूप के अन्दर

तो प्रियतम परब्रह्म की पाँचों अखण्ड शक्तियाँ विराजमान होकर लीला कर रही हैं। इस प्रकार ब्रह्मलीला का बहुत अधिक विस्तार हुआ है।

भावार्थ— ब्रह्मसृष्टि का इस नश्वर जगत में आना कार्य है और उसका कारण इश्क-रब्द या अपने स्वरूप की पूर्ण पहचान देना है। श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में प्रकट होने वाले पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द के इस स्वरूप को अवतारों की परिधि में कदापि नहीं बाँधा जा सकता।

धनी मैं अरधांग अछर मुझ माहीं, बुधजी बोले सो कई प्रकार।
हुकम महंमद नूर ईसा भेला, कजा इमाम मेंहेंदी सिर मुद्दार॥२॥
मेरे प्राणवल्लभ! मैं आपकी अर्धांगिनी हूँ। मेरे अन्दर आपके सत् अंग अक्षर ब्रह्म भी विराजमान हैं। उनकी जाग्रत बुद्धि भी मेरे अन्दर है, जो सभी धर्मग्रन्थों के छिपे

हुए भेदों को स्पष्ट कर रही है। मुझमें हुक्म के स्वरूप मुहम्मद साहिब, तथा तारतम ज्ञान के साथ श्री श्यामा जी भी विराजमान हैं। इसलिये मुझे "मुहम्मद इमाम महदी आखरुल जमां" की शोभा मिली है और मेरे ऊपर ही सबका कजा (न्याय) करने का उत्तरदायित्व (मुद्दा, जिम्मेदारी) है।

भावार्थ— हिन्दू परम्परा में जिसे महामति प्राणनाथ कहते हैं, उसे ही कतेब परम्परा में इमाम महदी कहते हैं। जिस प्रकार "महामति" के प्रियतम प्राणनाथ अक्षरातीत हैं, उसी प्रकार महामति शब्द महदी के रूप में प्रयुक्त किया जाता है, जिसके लिये सनन्ध ग्रन्थ में कहा गया है— "महामत जोए इमाम जी, जाहेर केयावुं फुरमान" अर्थात् श्री महामति (इन्द्रावती) इमाम (प्राणनाथ) की अर्धांगिनी हैं।

इस सम्बन्ध में श्री बीतक साहेब का यह कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है—

इत महम्मद को मिल चले, तब अहमद पाया खिताब।
ईसा और महम्मद मिले, मारे दज्जाल सिताब॥

अंग समागम धनी के, हिरदे लियो सो सब विचार।

साके सोले तोड़ी गुझ रहे, या दिन से कियो सो प्रगट पसार॥३॥

अपने धाम हृदय में धनी के विराजमान हो जाने पर मैंने जागनी रास के सम्बन्ध में सारा विचार किया। धाम धनी शालिवाहन शाका के १६०० वर्ष तथा वि.सं. १७३५ तक छिपे रहकर जागनी लीला करते रहे, किन्तु अब हरिद्वार से प्रत्यक्ष रूप में अपनी ब्रह्मलीला जाहिर कर रहे हैं।

भावार्थ— यद्यपि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने श्री

मिहिरराज जी को जागनी कार्य के सम्बन्ध में बहुत पहले ही बता दिया था, किन्तु वि.सं. १७१५ में हब्से में धनी के विराजमान हो जाने पर ही उन्होंने इस सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विचार किया क्योंकि ऐसा करना धनी का आदेश था। इस सम्बन्ध में कहा गया है—

सिर ले आप खड़ी रहो, कहे तूं सब सैंयन।

प्रकास होसी तुझसे, दृढ़ कर देखो मन॥

तूं देख दिल विचार के, उड़ जासी सब असत।

सारों के सुख कारने, तूं जाहेर हुई महामत॥

कलस हिंदुस्तानी ९/३२,३८

आई नूरबुध वैराट माहीं, विश्व करी सो निरविकार।

छोटे बड़े नर नार सबे मिल, रंगे गाएँ सो मंगल चार॥४॥

अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि के इस संसार में आने से सारा संसार निर्विकार (संशय रहित) हो गया है। अब तो छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष सभी मिलकर मंगल गीत गा रहे हैं।

भावार्थ- तारतम ज्ञान का प्रकाश जिसके हृदय में पहुँचता है, वह संशय रहित होकर निर्विकार हो जाता है। इसी को अतिशयोक्ति के रूप में कहा गया है कि संसार जाग्रत ज्ञान के कारण निर्विकार हो गया है। वास्तविकता यह है कि योगमाया के ब्रह्माण्ड में ही सारा संसार पूर्ण रूप से संशय रहित हो पायेगा। मंगल गीत गाने का तात्पर्य है- परब्रह्म की पहचान हो जाने पर आनन्दित होना।

काटे सो आउध असुरों के, पाड़ी पापीड़ा के सिर पर प्रहार।

इने दुख दिए साध संत को, तो सेहेता है सिर पर मार॥५॥

श्री विजयाभिनन्द बुद्ध जी ने मुसलमानों के कर्मकाण्ड (शरीयत) रूपी हथियारों को नष्ट कर दिया और अपनी ज्ञान रूपी तलवार से पापी कलियुग (सैतान) के सिर पर प्रहार किया। इसी कलियुग ने साधु-सन्तों को दुःख दिया था, इसलिये उसे श्री जी की मार तो सहनी ही पड़ेगी।

भावार्थ- शरीयत की ओट में मुसलमानों ने अपने को सर्वश्रेष्ठ समझा और दूसरों पर घोर अत्याचार किया। तारतम ज्ञान की शरण में आने वाला मुसलमान कभी भी किसी के हृदय को पीड़ा देना नहीं चाहेगा। इसी को कहा गया है- शरीयत के हथियारों को नष्ट कर देना।

किरंतन ३८/३ में यह स्पष्ट हो गया है कि कलियुग या

शैतान कोई देहधारी व्यक्ति न होकर मन है। मन के वशीभूत होने से ही साधु-सन्तों को भी दुःखी होना पड़ता है। तारतम ज्ञान का प्रकाश मिलने पर साधु-सन्त मन को प्रेम-साधना की कसौटी से गुजारते हैं। इसे ही सिर पर प्रहार करना कहा गया है।

रुंधी रूदे त्रिगुन त्रैलोकी, बैठा था करके अंधार।

अब प्रगटी जोत तले लागी आकासों, उड़ाए दियो जो थो धुसार॥६॥

इस कलियुग ने तीनों लोक (आकाश में स्थित सभी लोक, पाताल, तथा पृथ्वी) के प्राणियों के हृदय में अज्ञानता का अन्धकार कर दिया था, जिससे उनके अन्तःचक्षु बन्द हो गये थे। अब ब्रह्मवाणी की ज्योति पाताल से आकाश अर्थात् वैकुण्ठ तक फैल रही है, जिसने सम्पूर्ण मायावी अन्धकार का नाश कर दिया है।

भावार्थ- श्रीमुखवाणी में "त्रिगुन" शब्द का प्रयोग भिन्न-भिन्न सन्दर्भों में किया गया है। कहीं इसे ब्रह्मा , विष्णु, तथा शिव के लिये प्रयोग किया गया है, जैसे-
 "ए ठौर माया ब्रह्म सबलिक, त्रिगुन की परआतम।"

किरंतन ६५/१०

तो कहीं त्रिगुणात्मक बन्धनों में फँसे जीवों के लिये किया गया है, जैसे इसी चौपाई में। और कहीं इसका सम्बन्ध सत्व, रज, और तम से लिया गया है, जैसे-

"सो तीनों पांचों में पसरे, हुई अंधेरी चौदे भवन।"

इस चौपाई में ब्रह्मवाणी के प्रकाश का फैलाव वैकुण्ठ तक हो जाने के सम्बन्ध में वर्णन किया गया है, जो भविष्य में योगमाया में घटित होगा तथा वर्तमान में अतिशयोक्ति के रूप में कहा गया है।

जुद्ध दारुण अति जोर हुआ, तिमर घोर झुंझार।

प्रकासवान खांडा धार बुधें, निरमल कियो संसार॥७॥

अज्ञानता के गहन अन्धकार में भटकने वाले धर्माचार्या का श्री जी के साथ शास्त्रार्थ रूपी बहुत भयंकर युद्ध हुआ। अखण्ड ज्ञान रूपी प्रकाश के स्रोत श्री विजयाभिनन्द बुद्ध जी ने अपनी ज्ञान रूपी तलवार की तीक्ष्ण धार से सबके मन में स्थित अज्ञान को नष्ट कर दिया, जिससे सभी लोग निर्मल हो गये।

पड़या पड़छंदा पाताल आकासैं, धरती धम धमकार।

खल भल हुआ लोक चौदे, करत कालिंगा को संघार॥८॥

श्री विजयाभिनन्द बुद्ध जी द्वारा कलियुग रूपी अज्ञानमयी राक्षस का वध करते समय उनके पैरों की ठोकर से धरती हिलने लगी तथा उसकी प्रतिध्वनि

पाताल से लेकर आकाश तक फैल गयी। इस कार्य से चौदह लोकों में खलबली मच गयी।

भावार्थ- यह चौपाई आलंकारिक भावों में कही गयी है। जब युद्ध करते समय पैरों की ठोकर धरती पर पड़ती है तो धरती का डगमगाना, तथा पैरों की ठोकर की आवाज का सारे ब्रह्माण्ड में गूँजना यही दर्शाता है कि श्री प्राणनाथ जी द्वारा दिए हुए अलौकिक ब्रह्मज्ञान ने सम्पूर्ण अज्ञान का विनाश कर दिया है।

घर घर उछव बाजे रस बाजे, चोहोटे चौवटे थेई थेईकार।
पसु पंखी साधू कोई न दुखी, सुखे खेलें चरें चुगें करार॥९॥
घर-घर उत्सव मनाये जा रहे हैं तथा आनन्द के बाजे बज रहे हैं। चौराहों के चबूतरों पर मधुर नृत्य हो रहा है। अब पशु-पक्षी या साधु-सन्त कोई भी दुःखी नहीं है।

सभी सुखपूर्वक विचरण करते हैं तथा आनन्दपूर्वक रहते हुए शान्ति से भोजन करते हैं।

भावार्थ- इस प्रकरण की चौपाई ९-१२ में उस स्थिति का काल्पनिक चित्रण है, जिसमें तारतम ज्ञान के प्रकाश में अक्षरातीत की पहचान होती हैं। यह स्थिति केवल उनको ही प्राप्त होती है, जो धाम धनी के चरणों में आ चुके हैं। यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि इन चौपाइयों की काल्पनिकता उस समय वास्तविकता में बदल जायेगी, जब योगमाया में न्याय की लीला होगी।

सत बरत्यो त्रिगुन त्रैलोकी, असत न रही लगार।

काटी करम फांसी दुनियां की, पीछे निरमल किए सिरदार॥१०॥

तारतम ज्ञान के प्रकाश में एक अक्षरातीत की पहचान हो जाने पर तीनों लोक (आकाश, पाताल, तथा पृथ्वी)

के प्राणी एकमात्र सत्य का ही आचरण कर रहे हैं। अब उनमें थोड़ा भी असत्य (अज्ञान) का अंश नहीं है। श्री जी ने दुनिया के जीवों को कर्मों के बन्धन से मुक्त कर दिया है तथा इनके अग्रगण्य ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव को भी अखण्ड परमधाम के ज्ञान से निर्मल कर दिया है।

भावार्थ- यहाँ तीन लोक का अभिप्राय चौदह लोक से ही है। भुवर्लोक से वैकुण्ठ तक आकाश के अन्तर्गत ही माने जायेंगे। इसी प्रकार पृथ्वी पर ही पाताल के सातों लोक माने जायेंगे- "पादस्य तले यो देशः स पाताल" अर्थात् हमसे नीचे का जो स्थल भाग है, वह पाताल कहलायेगा। इस दृष्टि से आस्ट्रेलिया एवं अमेरिका इत्यादि पाताल के अन्तर्गत माने जायेंगे। सभी जीवों सहित ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव आदि की अखण्ड मुक्ति तो योगमाया में ही होगी।

राई गौरी सावित्री जो कोई सती, सब धवल गावें नर नार।

पुरुख दूजा कोई काहूं न कहावे, सबों भजिया कर भरतार॥११॥

लक्ष्मी, पार्वती, तथा सावित्री आदि महान सतियों सहित सभी नर-नारी प्रियतम परब्रह्म के प्रकट होने का मंगल गीत गा रहे हैं। अब अक्षरातीत के अतिरिक्त अन्य कोई भी दूसरा व्यक्ति "पुरुष" नहीं कहला रहा है। सभी ने श्री प्राणनाथ जी को अक्षरातीत का स्वरूप मान लिया है और प्रेमपूर्वक उनका भजन कर रहे हैं।

एक सृष्ट धनी भजन एकै, एक गान एक आहार।

छोड़ के वैर मिले सब प्यार सों, भया सकल में जय जयकार॥१२॥

अब सारी सृष्टि का एक ही प्रियतम परब्रह्म है और मात्र उसका ही भजन हो रहा है। सभी एकमात्र उसी की महिमा गा रहे हैं। सभी का भोजन भी एक समान

(सात्विक) हो गया है। सभी लोग आपस का वैर भाव भुलाकर प्रेमपूर्वक मिल रहे हैं तथा चारों ओर श्री प्राणनाथ जी की ही जय-जयकार हो रही है।

भावार्थ- दुनिया के अनेक पन्थों में परमात्मा तथा देवी-देवताओं को खुश करने के नाम पर मूक पशुओं की बलि दी जाती है तथा उनके माँस का भक्षण किया जाता है। यह कर्म पापमयी है। श्री प्राणनाथ जी की पहचान हो जाने पर संसार का कोई भी व्यक्ति धर्म के नाम पर न तो किसी पशु की बलि चढ़ा सकता है और न ही उसका माँस खा सकता है। इस चौपाई में इसी तरफ संकेत करते हुए समान प्रकार के भोजन की बात की गयी है।

मिलके साथ आवे दौड़ता, मिने सकुंडल सकुमार।

निजधाम से आई सखियां, जुथ चालीस सहस्र बार॥१३॥

अब ब्रह्मवाणी के प्रकाश में सुन्दरसाथ दौड़ते हुए धनी के चरणों में आ रहा है। इनमें शाकुण्डल तथा शाकुमार की आत्मायें भी हैं। परमधाम से इस खेल में १२ हजार सखियाँ आयी हुई हैं, जिनके चालीस युथ (समूह) हैं।

द्रष्टव्य— परमधाम में अनन्त सखियाँ हैं, किन्तु इस खेल में लीला रूप में १२००० की ही सुरता है। जिस प्रकार चावल के एक दाने को परखकर ही सम्पूर्ण चावल के कच्चे या पके होने का अनुमान हो जाता है, उसी प्रकार अनन्त आत्माओं वाले परमधाम से मात्र १२००० की संख्या में सुरताओं को इस संसार में उतारा गया है और वाहिदत के सिद्धान्त से सबको उसका रसपान हो जाना है। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी का यह कथन ध्यान में रखने योग्य है— "बरनन किया अर्स का, सब ले मसाला इत का।"

खेलें मिलके रास जागनी, भेलें इहां से चौबीस हजार।

करसी लीला बरस दस तोड़ी, हांस विलास आनन्द अपार॥१४॥

इन बारह हजार ब्रह्मसृष्टियों के साथ चौबीस हजार ईश्वरी सृष्टि भी मिलकर जागनी रास खेलेंगी। अक्षरातीत दस वर्ष, वि.सं. १७४० से १७५० तक, इनके साथ श्री ५ पद्मावती पुरी धाम में अनन्त प्रेम और आनन्द की लीला करेंगे।

बृजलीला लीला रास मांहें, हम खेले जान के जार।

जागनी लीला जाग पेहेचान, पिउसों जान विलसे करतार॥१५॥

व्रज तथा रास में हमने अपने धनी को मात्र प्रेमी मानकर ही लीला की थी, किन्तु इस जागनी ब्रह्माण्ड में हमने ब्रह्मवाणी से मूल सम्बन्ध की पहचान कर ली है। इसलिये धाम धनी से अब हम अँगना भाव से प्रेम का

आनन्द लेंगी।

भावार्थ- परमधाम में प्रेम और आनन्द की लीला वाहिदत के नूरमयी तनों से होती है, जिनमें विकारों की कल्पना भी नहीं है। यही निर्विकार प्रेम योगमाया में भी है। इस जागनी ब्रह्माण्ड में आत्म-चक्षुओं द्वारा प्रियतम की शोभा को निहारना ही विलास है। आत्म-श्रवण द्वारा प्रियतम की बातों को सुनना तथा आत्मा की आवाज से बातें करना और उनके अतिशय माधुर्यता भरे प्रेम में डूबे रहना ही हाँस-विलास है।

शब्दातीत निध ल्याए शब्द में, मेटयो सबन को अंधकार।

तीसैं सृष्ट विष्णु सौ बरसैं, प्रेमें पीवेगा शब्दों का सार॥१६॥

श्री प्राणनाथ जी ने उस शब्दातीत परमधाम को ब्रह्मवाणी के रूप में शब्दों में उतारा, जिससे सबके हृदय

में स्थित अज्ञानता के अन्धकार का नाश हो गया। श्री महामति जी के समाधिस्थ होने के पश्चात् तेरहवीं सदी के १०० वर्षों में जो जागनी होगी, उसमें ईश्वरी सृष्टि को तीस वर्ष तथा जीव सृष्टि १०० वर्ष तक ब्रह्मवाणी के अमृत को प्रेमपूर्वक ग्रहण करेगी।

भावार्थ— वि.सं.१७३५ में हिजरी सन् १०९० था, अर्थात् १७४५ में ग्यारहवीं सदी पूर्ण होती है। इस प्रकार १८४५ में बारहवीं सदी पूर्ण होती है। "बारहीं सदी सम्पूरन, ब्रह्माण्ड ने पायो इनाम" के आधार पर यही सिद्ध होता है कि बारहवीं सदी पूर्ण होने पर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अखण्ड मुक्ति पाने का सौभाग्य प्राप्त हो गया। श्री महामति जी के अन्तर्धान (समाधिस्थ) हो जाने पर ईश्वरी सृष्टि ३० वर्षों तक वाणी का ज्ञान प्राप्त कर ईमान और बन्दगी द्वारा जाग्रत होती रही, तथा जीव सृष्टि वाणी

का ज्ञान ग्रहण करके शरीयत (कर्मकाण्ड) की राह पर चलकर धनी की बन्दगी करती रही। इस चौपाई में "विष्णु" शब्द से तात्पर्य जीव सृष्टि से है, वैकुण्ठ विहारी से नहीं।

विष्णु को पोहोंचाए ठौर अछर हिरदे, बुधजी देणें खोल के द्वार।

अखंड ब्रह्मांड बरस पचास पीछे, रहेसी हिरदे में खुमार॥१७॥

अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि (बुद्ध जी) जीव सृष्टि को योगमाया के ब्रह्माण्ड (अक्षर के हृदय) में बहिशतों में अखण्ड करेगी। ब्रह्माण्ड के अखण्ड होने (अखण्ड होने की कृपा प्राप्त होने के ५० वर्ष बाद तक अर्थात् वि.सं.१८९५) तक अक्षर ब्रह्म के हृदय में इस लीला के आनन्द की खुमारी (नशा, मधुर, एवं आनन्दमयी स्मृति) बनी रहेगी।

भावार्थ- चौपाई १६ एवं १७ का प्रसंग बड़ा कयामतनामा ६/४२, ४३ में इस प्रकार दिया गया है—
 सत्तर बरस लों आग जलाए, तब फिरस्ते दिए चलाए।
 अजाजील विरहा आग जल, पीछे असराफीलें किए निरमल॥
 आगे असराफीलें कायम किए, तेरहीं में नूर नजर तले लिए।
 नूर नजर तले हुए सुध, आए माहें जाग्रत बुध॥

किरन्तन के प्रकरण ५४ तथा बड़ा कयामतनामा की इन चौपाइयों से यह स्पष्ट होता है कि यह अखण्ड मुक्ति की बख्शीश का प्रसंग है, क्रियात्मक नहीं, क्योंकि यदि ईश्वरी सृष्टि सहित सम्पूर्ण जीव सृष्टि तेरहवीं सदी में ही बहिश्तों में अखण्ड हो गयी थीं, तो इस समय किसकी जागनी हो रही है तथा वही ब्रह्माण्ड अभी क्यों खड़ा है?

विष्णु भगवान को योगमाया में अखण्ड करने से तात्पर्य जीव सृष्टि को अखण्ड होने की कृपा प्रदान करने से है।

तेरहवीं सदी में जीव सृष्टि को अखण्ड मुक्ति पाने की कृपा प्राप्त हो जाने पर ५० वर्ष तक खुमारी रहने का भाव यह है कि जिस प्रकार श्री जी के अन्तर्धान होने के पश्चात् जीव सृष्टि ने ब्रह्मवाणी से उनके स्वरूप की पहचान कर विरह किया, उसी प्रकार ईश्वरी सृष्टि भी उस जागनी लीला को याद करके आनन्दित होती रही कि किस प्रकार श्री प्राणनाथ जी ने इन जीवों को भी अखण्ड मुक्ति दे दी।

५० वर्ष की खुमारी का समय साक्षात् अक्षर ब्रह्म के साथ नहीं जोड़ा जायेगा, क्योंकि वे तो महामति जी के धाम हृदय में युगल स्वरूप के साथ ही विराजमान हैं। यहाँ उनकी ईश्वरी सृष्टि का प्रसंग है जो उनकी अङ्गरूपा हैं। यह कदापि सम्भव नहीं है कि अक्षरातीत का सत् अङ्ग, जो हमेशा एकरस रहने वाला है, मात्र ५० वर्षों के

लिये ही उस लीला को याद करे। यह जागनी के उस दौर का प्रसंग है, जब तेरहवीं सदी में ब्रह्माण्ड को अखण्ड होने का सौभाग्य प्राप्त होता है। जिस प्रकार पूर्वोक्त दोनों चौपाइयों में "विष्णु" शब्द से जीव सृष्टि का भाव ग्रहण होता है, उसी प्रकार "अक्षर" से ईश्वरी सृष्टि का भाव लिया जायेगा। सनंध ४१/६७ की इस चौपाई—

जुदी हमसे भगवान की, रूह फिरी एक सोय।

जब फिरे सुनसी हमको, तब घरों आवसी रोय॥

में भी अक्षर ब्रह्म का कोई प्रसंग नहीं है, बल्कि उनकी एक रूह (विष्णु भगवान) का वर्णन है। "एक" शब्द से यही भाव स्पष्ट होता है। इस चौपाई का भी सन्दर्भ बड़ा कयामतनामा की चौपाई ६/४३ से ही जोड़ा जायेगा, जिसमें कहा गया है—

"अजाजील विरहा आग जल, पीछे असराफीलें किए निरमल।"

किया जमा सब सब्दों का, धोए हाथ और हथियार।

होसी नेहेचल सुख चौदे लोकों, हम देखे खेल कारन इन बार॥१८॥

श्री प्राणनाथ जी ने सभी धर्मग्रन्थों का खजाना श्रीमुखवाणी में समाहित कर दिया (रख दिया), जिससे अन्य ग्रन्थों की महत्ता समाप्त हो गयी। अब हमारे द्वारा इस माया का खेल देखने के कारण चौदह लोक का यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही अखण्ड मुक्ति को प्राप्त हो जाएगा।

भावार्थ- "हाथ धोना" एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है छोड़ना, खो देना। "हाथ और हथियार धोने" का तात्पर्य यह है कि वेद और कतेब में वर्णित अध्यात्म के मूल तथ्यों का ज्ञान श्रीमुखवाणी (श्री कुलजम स्वरूप) में आ गया, जिससे उन सभी ग्रन्थों का चिन्तन-मनन

सारहीन हो गया। हाथ से ही सभी अस्त्र-शस्त्र चलाये जाते हैं और हाथ के साथ हथियार धोने का भाव यह है कि विभिन्न धर्मग्रन्थों के आधार पर होने वाली कर्मकाण्ड और मानसिक उपासना से जुड़ी पद्धतियाँ समाप्त हो गयीं, तथा सबने तारतम ज्ञान का आश्रय लेकर हकीकत और मारिफत (ज्ञान-विज्ञान) की राह अपनायी।

महामत जागसी साथ जी भेले, जहां बैठे मिने दरबार।

हम उठ के आनन्द करसी झीलना, हंस हंस करसी सिनगार॥१९॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हम सभी सुन्दरसाथ मूल मिलावा में धनी के चरणों में बैठे हैं और एक साथ ही वहाँ पर जाग्रत होंगे। अपने मूल तनों में जाग्रत होने के पश्चात् श्री यमुना जी में हम झीलना (स्नान) करेंगे और हँसते हुए अपना श्रृंगार करेंगे।

भावार्थ- जिस दिन हम खेल में आये, उस दिन लीला के लिए हमें पाट घाट जाना था। अभी परमधाम में वही घड़ी है जिसमें हम माया में आये। इसलिये मूल तनों में जाग्रत होने के पश्चात् हमें पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार पाट घाट में झीलना करना होगा।

तीन ब्रह्मांड लीला तीन अवस्था, खिन में देखे खेले संग आधार।
धनी मैं अरधांग साथ अंग मेरा, इन घर सदा हम नित विहार॥२०॥

हमने ब्रज, रास, और जागनी के इस ब्रह्माण्ड में तीन प्रकार की लीला देखी है। ब्रज की लीला बाल स्वरूप अर्थात् नींद की थी, जिसमें सम्बन्ध और घर का पता नहीं था। रास की लीला किशोर अवस्था की थी, अर्थात् आधी नींद और आधी जाग्रति की थी। जागनी ब्रह्माण्ड की यह लीला वृद्धावस्था अर्थात् पूर्ण ज्ञानमयी अवस्था

की है। इन तीनों लीलाओं को हमने परमधाम के एक क्षण में ही देखा है तथा इनमें अपने प्रियतम के साथ विहार किया है। श्री महामति जी कहते हैं कि हे धनी! मैं आपकी अर्धांगिनी हूँ तथा मेरा यह सुन्दरसाथ आपका अंग है। अपने घर परमधाम में हम आपके साथ नित्य ही प्रेम और आनन्द की लीला करते हैं।

प्रकरण ॥५४॥ चौपाई ॥५८५॥

राग श्री धवल

इस प्रकरण की चौपाई १२ और १३ से प्रतीत होता है कि यह प्रकरण श्री ५ पद्मावतीपुरी धाम में अवतरित हुआ है। यद्यपि इसमें कहीं-कहीं हरिद्वार का भी प्रसंग वर्णित है।

आए आगम बानी इत मिली, विश्व मुख करत बखान।

कौल सबन के पूरन भए, आए सो पोहोंचे निसान॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक "श्री प्राणनाथ जी" के प्रकट हो जाने से सभी भविष्यवाणियाँ सार्थक हो गयीं। सम्पूर्ण विश्व के भविष्य-द्रष्टा अपने मुख से परब्रह्म के प्रकट होने की जो बात कहा करते थे, वह सत्य हो गयी। इस सम्बन्ध में उनकी पहचान के सभी संकेत भी पूर्ण हो गये।

भावार्थ- हिन्दू धर्मग्रन्थों में पुराण संहिता , माहेश्वर तन्त्र, भविष्य दीपिका, बुद्ध गीता , तथा भविष्योत्तर पुराण में परब्रह्म के प्रकटन का वर्णन है। इसी प्रकार कतेब परम्परा में आखिरी ईसा , आखिरी मूसा, तथा आखरुल इमाम मुहम्मद महदी साहिबुज्जमाँ के रूप में प्रकट होने का वर्णन है। सभी का समय लगभग एक ही है।

चेतो सबे सत वादियो, सुनियो सो सतगुर मुख बान।

धनी मेरा प्रभु विश्व का, प्रगटिया परवान॥२॥

सत्य का बखान करने वाले हे ज्ञानी जन! अब आप सावधान हो जाइए। सबके सद्गुरु के स्वरूप में प्रकट होने वाले परब्रह्म के मुखारविन्द की वाणी सुनिये। यह मेरे प्रियतम हैं और संसार के प्रभु हैं।

आगमी सब खड़े हुए, दिन बोहोत रहे थे गोप।

आए धनी मेले मिने, प्रगटी है सत जोत॥३॥

आज दिन तक सच्चिदानन्द परब्रह्म संसार से छिपे रहे थे, लेकिन हरिद्वार के कुम्भ मेले में अचानक जाहिर हो जाने से उनके प्रकटन की भविष्यवाणी करने वाले लोग अटूट आस्था के साथ समर्पित हो रहे हैं। अब सत्य ज्ञान की अखण्ड ज्योति प्रकट हो गयी है।

पेहेले मंडल में मांगी मुझे, सो आए ब्याही इत।

कौल किया लिख्या सास्त्रों में, सो आए पोहोंची सरत॥४॥

धाम धनी ने पहले फेरे (व्रज, रास) में मेरी मँगनी कर ली और इस जागनी ब्रह्माण्ड में मुझसे विवाह कर लिया। प्रियतम ने मुझसे विवाह करने का वायदा भी किया था तथा शास्त्रों में ऐसा ही लिखा भी था। अब इन सभी

कथनों के सत्य होने का समय आ गया है।

भावार्थ- इस मायावी ब्रह्माण्ड में हम परमधाम से दूसरी बार आए हैं, इसलिये पहले मण्डल में आने का तात्पर्य ब्रज-रास से है, क्योंकि परमधाम छोड़कर हमने पहले ब्रज एवं रास में ही लीला की थी। तामसी सखियों में प्रमुख श्री इन्द्रावती जी ने ब्रज-रास में पूर्ण समर्पण से धनी को रिझाया तथा अन्तर्धान लीला के समय नाटक की लीला में भी उन्होंने श्री कृष्ण की भूमिका अदा की। इसी कारण श्री राज जी ने जागनी ब्रह्माण्ड में उन्हें अपनी भूमिका देने का निर्णय कर लिया था, इसी प्रक्रिया को वायदा करना कहते हैं। अक्षरातीत का श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में विराजमान होकर जागनी लीला करना ही विवाह करना कहा जायेगा। यह सारा प्रसंग पुराण संहिता में लिखा गया है कि अन्तर्धान लीला

के समय नाटक की लीला में जिसने जिस प्रकार की भूमिका की, इस जागनी ब्रह्माण्ड में प्रायः उसे उसी प्रकार की लीला करने को मिल रही है।

मैं जो आई ब्याहन दुलहे को, दुलहा आए मुझ कारन।

बांधे पालवसों पालव, पाट बैठे दुलहा दुलहिन॥५॥

मैं इस जागनी ब्रह्माण्ड में अपने धाम दुल्हा श्री राज जी से विवाह करना चाहती थी और धाम धनी भी मुझसे ऐसा ही सम्बन्ध चाहते थे। इस प्रकार हम दोनों के एक-दूसरे से पालव बँध गये और विवाह के लिए पाट पर बैठ गये।

भावार्थ— श्री इन्द्रावती जी का धनी से विवाह करने का भाव है— अपने धाम हृदय में श्री राज जी को अखण्ड रूप से बसा लेना। इसी प्रकार धनी द्वारा आत्मा को

जाग्रत किया जाना ही उससे विवाह करना है, जिसका स्पष्टीकरण इसी प्रकरण की चौपाई ९ में किया गया है। पालव से पालव बाँधने का तात्पर्य अपने हृदय के प्रेम का अटूट बन्धन बाँधना है।

सत पर सत दोऊ पर्वत, तोरन बांधे हैं बंध।

बिन थलिये विवाह हुआ, हाथों हाथ जोड़े मूल सनमंध॥६॥

बेहद और परमधाम रूपी दो पर्वतों को स्तम्भ मानकर उनके बीच में तोरण बन्ध (बन्दनवार) सजाया गया है। इस प्रकार हम दोनों का विवाह किसी स्थूल भूमि के आधार के बिना ही हो गया। शीघ्र ही हम दोनों अपने पूर्व के मूल सम्बन्ध से जुड़ गये।

भावार्थ— ब्रह्मवाणी ने बेहद तथा परमधाम का ज्ञान दिया, जिसमें ईमान रूपी तोरण द्वार सजाया गया। इसके

बिना प्रेम रूपी विवाह का रस नहीं मिल सकता था।
लौकिक रीति की तरह हमारा विवाह नहीं हुआ, बल्कि
मेरी आत्मा ने मूल मिलावा में विराजमान अपने
प्राणवल्लभ को अंगीकार किया और उन्होंने मुझे। इस
प्रकार हम दोनों पूर्व के अखण्ड एवं अनादि सम्बन्ध के
कारण एक-दूसरे के प्रेम-सूत्र में बँध गये।

मंडल अखंड में मांडवो, चौरी थंभ रोपे हैं चार।

सो थंभ थापे थिर कर, कहूं सो तिन को प्रकार॥७॥

विवाह का मण्डप अखण्ड भूमिका में बनाया गया। इसमें
वर-वधू के बैठने का स्थान चार अखण्ड थम्भों को
स्थित करके बनाया गया है, जिसका मैं वर्णन करती हूँ।

भावार्थ- अक्षरातीत ने ब्रज में ११ वर्ष ५२ दिन तक
श्री कृष्ण जी के बाल रूप में तथा रास में किशोर रूप में

लीला की। इसी प्रकार इस जागनी ब्रह्माण्ड में श्री देवचन्द्र जी तथा श्री मिहिरराज जी के तन में लीला की। इन लीलाओं में परमधाम के सुखों की लज्जत (स्वाद) मिली।

एक बृज दूजो रास को, दूजे दोए इन वैराट।

चारों थंभों चौरी रची, रच्यो सो नेहेचल ठाट॥८॥

इन चारों स्वरूपों (ब्रज, रास, श्री देवचन्द्र जी, तथा श्री प्राणनाथ जी) को स्तम्भ बनाकर मेरे विवाह की चौरी अर्थात् यज्ञवेद सहित विवाह के लिये उपयुक्त स्थान बनाया गया, जिसके द्वारा मुझे विवाह के अखण्ड सुख की प्राप्ति हुई।

भावार्थ— ब्रज-रास में श्री कृष्ण जी के तनों तथा इस जागनी ब्रह्माण्ड में श्री देवचन्द्र जी तथा श्री मिहिरराज

जी के तन में विराजमान होकर धनी ने हमें परमधाम का ही सुख दिया है, भले ही वह नींद में क्यों न हो। इस जागनी ब्रह्माण्ड में हम पूर्ण रूप से जाग्रत होकर अनन्त परमधाम के अखण्ड सुखों का रसपान कर सकते हैं।

विवाह मण्डप केवल सम्बन्ध जोड़ने के लिये होता है। वास्तविक प्रेम का रसास्वाद तो रंग महल (खिलवत) में ही होता है, किन्तु जिस प्रकार विवाह स्थल पर भी वर-वधू का सम्बन्ध जुड़ जाने से आनन्द होता है, उसी प्रकार इन चारों लीलाओं से अपनी निसबत का सम्बन्ध जानकर आनन्द प्राप्त होता है। इसी कारण इन्हें स्तम्भ के रूप में चित्रित किया गया है।

यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि इस जागनी ब्रह्माण्ड में श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की पहचान करके तथा युगल स्वरूप को अपने धाम हृदय में बसाकर हम यहाँ बैठे –

बैठे ही परमधाम के सभी सुखों का रसपान कर सकते हैं।

एक बेर एक मांडवे, मौर बांधियो सीस।

ब्याही बारे हजार को, और हजार चौबीस॥९॥

इस जागनी ब्रह्माण्ड में अक्षरातीत ने अपने सिर पर वर का मुकुट बाँधा और विवाह मण्डप में १२ हजार ब्रह्मसृष्टि तथा २४ हजार ईश्वरी सृष्टि के साथ विवाह किया।

भावार्थ- ब्रज तथा रास में प्रेम लीला के द्वारा सम्बन्ध की कुछ पहचान दी गयी, किन्तु इस जागनी ब्रह्माण्ड में दोनों स्वरूपों (श्री निजानन्द स्वामी तथा श्री प्राणनाथ) के माध्यम से ज्ञान द्वारा पूर्ण पहचान दी गयी है। इस प्रकार धनी की पहचान रूपी मण्डप में ३६ हजार

सखियों को अपने धाम हृदय में धनी को बसाना होगा।
यही विवाह का वास्तविक स्वरूप है।

तीन फेरे दुलहे पीछे फिरी, चौथे फेरे आगल भई।

अब ए लीला सब गावसी, सब मिल करि है सही॥१०॥

तीन फेरों में तो मैं अपने धनी के पीछे चलती रही ,
किन्तु चौथे फेरे में मैं धनी के आगे-आगे चलने लगी।
अब इस जागनी लीला की महिमा तथा आनन्द को सभी
लोग मिलकर गायेंगे।

भावार्थ- तीन फेरों (ब्रज, रास, एवं श्री देवचन्द्र जी की लीला) में अक्षरातीत श्री राज जी अक्षर ब्रह्म एवं श्री श्यामा जी की आत्मा में विराजमान थे, किन्तु चौथे फेरे में जब वे पाँचों शक्तियों सहित श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में विराजमान हुए तो उन्होंने अपने से भी बड़ी

शोभा श्री इन्द्रावती जी को दे दी, क्योंकि पाँचों शक्तियाँ कभी भी परमधाम में इकट्ठी नहीं हो सकतीं। "बड़ी बड़ाई दर्ई आपथें, लई इन्द्रावती कण्ठ लगाए जी" का कथन इसी सन्दर्भ में है। इसी कारण चौथे फेरे में श्री इन्द्रावती जी द्वारा अपने प्रियतम के आगे-आगे चलने की बात की गयी है।

और कागद सब उड़ गए, उड़यो सबों को अग्यान।

पसरयो प्रकास जो पिउ को, ब्रह्म सृष्ट प्रगट भई पेहेचान॥११॥

प्रियतम अक्षरातीत की ब्रह्मवाणी का प्रकाश फैलने से अटकल वाले अन्य धर्मग्रन्थों की महत्ता समाप्त हो गयी, जिससे सभी के हृदय में स्थित अज्ञान का नाश हो गया। इस ब्रह्मवाणी ने ब्रह्मसृष्टियों की प्रत्यक्ष पहचान भी संसार में करवा दी।

ठौर ठौर थाने दिए, मेला हुआ है मध देस।

छत्रपति नमे नेहसों, राए राने पृथी के नरेस॥१२॥

ब्रह्मवाणी की ज्योति को फैलाने के लिये जगह-जगह पर "श्री प्राणनाथ मन्दिर" की स्थापना की गयी, किन्तु १२ हजार ब्रह्मसृष्टि एवं २४ हजार ईश्वरी सृष्टि के एकत्र होने का स्थान श्री ५ पद्मावती पुरी धाम को बनाया। वहाँ पर विराजमान अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी के चरणों में पृथ्वी के राजा, राय, राणा, एवं छत्रपति सम्राट भी नतमस्तक हो रहे हैं।

भावार्थ- यद्यपि संसार में बड़े-बड़े आश्रम एवं मन्दिर हैं, किन्तु धाम कहलाने की शोभा मात्र श्री ५ पद्मावती पुरी को है, जहाँ समाधिस्थ अवस्था में बैठे हुए महामति जी के धाम हृदय में युगल स्वरूप विराजमान हैं। कोई भी आत्मा अपना तन छोड़ने के पश्चात् इन्हीं के चरणों में

पहुँचती है। छोटा क्यामतनामा में यह कथन इस प्रकार है—

जो कदी वह आगे चली, जिमी बैठी इन जिमी मांहे।
पांचों मिले पांचों मिने, रूह अपनी असल छोड़े नांहे॥

बैठे सिंघासन सिर छत्र, वैराट बरती है आन।

मुकट मनी ढोलें चंवर, नवखंड घुरे हैं निसान॥१३॥

श्री प्राणनाथ जी श्री ५ पद्मावती पुरी धाम में सिंहासन पर विराजमान हुए हैं। उनके सिर पर छत्र शोभायमान है। उनकी महिमा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में फैल रही है। राजाओं में शिरोमणि महाराजा छत्रसाल एवं अन्य ज्ञानी और विरक्त परमहंसों में शिरोमणि सुन्दरसाथ उनके ऊपर चँवर हिला रहे हैं। पृथ्वी के नवों खण्डों में उनके प्रकट हो जाने के संकेत दृष्टिगोचर होने लगे हैं।

जोत जाग्रत बुध जोर हुई, सत बानी कियो है विस्तार।

कालिंगा कुली मारिया, सत सुख बरत्यो संसार॥१४॥

जाग्रत बुद्धि के ज्ञान की ज्योति और अधिक प्रज्वलित होती जा रही है और अखण्ड धाम की ब्रह्मवाणी का विस्तार बढ़ता जा रहा है। इस अलौकिक ज्ञान ने लोगों के हृदय में स्थित अज्ञानरूपी कलियुग को मार डाला है। अब संसार अखण्ड सुख को पाने की राह पर चल पड़ा है।

प्रहलाद युधिष्ठिर वसुदेव, बलि रुक्मांगद हरिचंद।

सगाल दधीच मोरध्वज, कसनी कर छूटे या फंद॥१५॥

भक्त प्रहलाद, धर्मराज युधिष्ठिर, वसुदेव, राजा बलि, रुक्मांगद, सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र, सगाल, दधीचि, और मयूर ध्वज आदि ने परमात्मा की प्राप्ति के लिए

बहुत अधिक कसनी (कष्टमयी साधना) की थी। इस प्रकार वे भी माया के फन्दे से छूट गये।

भावार्थ- उपरोक्त महान विभूतियों ने अपने तप, त्याग, और सत्य निष्ठा के बल पर स्वर्ग या वैकुण्ठ को प्राप्त किया था। तारतम ज्ञान न होने से उस समय सच्चिदानन्द अक्षरातीत की प्राप्ति सम्भव नहीं थी, किन्तु इनके अन्दर परब्रह्म को पाने की अमिट प्यास थी। वैकुण्ठ को पाने के उपरान्त भी इनकी प्यास बनी रही। जब सच्चिदानन्द परब्रह्म श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप में प्रगटे, तो उस समय इन महान जीवों ने भी तन धारण किया। इनके ऊपर परमधाम की आत्माओं तथा ईश्वरी सृष्टि ने विराजमान होकर खेल देखा, जिसके कारण इन्हें अखण्ड मुक्ति की प्राप्ति हुई। देवापि और मरु भी इसी प्रकार के जीव थे, जिनके ऊपर श्री श्यामा जी

तथा श्री इन्द्रावती जी ने लीला की।

सतवादी नाम केते लेऊं, कई हुए तरन तारन।

सत न छोड़या कई दुख सहे, सो या दिन के कारन॥१६॥

सत्य की राह पर चल कर वैकुण्ठ-निराकार की प्राप्ति करने वाले तथा दूसरों को भी उस स्तर तक पहुँचाने वाले बहुत से महापुरुष हुए हैं, उनमें से मैं कितनों के नाम बताऊँ। उन्होंने बहुत कष्ट सहने पर भी सत्य की राह इसलिये नहीं छोड़ी कि उन्हें पूर्ण विश्वास था कि यह धर्माचरण ही हमें परब्रह्म तक ले जायेगा। यह चरितार्थ हुआ श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप के प्रकटन पर।

भावार्थ- इस चौपाई में प्रयुक्त "तरन तारन" शब्दों का अभिप्राय यह है कि पूर्वोक्त महापुरुषों ने धर्माचरण ,

नवधा भक्ति, तथा योग साधना द्वारा स्वर्ग, वैकुण्ठ, तथा निराकार-मण्डल की प्राप्ति कर ली थी, तथा उनकी सामीप्यता पाकर उनका आचरण करने वाले अन्य लोगों ने भी उस अवस्था को प्राप्त कर लिया था। इस तरह के लोगों की संख्या बहुत अधिक है। इनके ऊपर बेहद या परमधाम की सुरतायें विराजमान हुईं, या इन्होंने किसी न किसी रूप में श्री जी का साहचर्य प्राप्त किया।

जोगारंभ कर देह रखी, नवनाथ जाए बसे बन।

सिध चौरासी और कई जोगी, सो भी कारन या दिन॥१७॥

नाथ पन्थ के ९ योगी, ८४ सिद्ध, तथा कई अन्य योगी वनों में रहकर हठयोग तथा राजयोग की साधनायें इस भाव से करने लगे कि श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप के प्रकटन के समय तक उनका शरीर सुरक्षित

रह सके।

भावार्थ- हठयोग की जड़ समाधि द्वारा अपने शरीर को हजारों वर्षों तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इसी प्रकार राजयोग के द्वारा पञ्चभूतों पर विजय प्राप्त कर लेने पर योगी मृत्यु को जीत लेता है तथा महाप्रलय तक निर्द्वन्द्व विचरण करता है।

असुर केते कहूं पीर कई, केते कहूं पैगंमर।

आए मिले इत सब कोई, जेता कोई भेख धर॥१८॥

मुसलमानों के विषय में मैं क्या कहूँ। उनमें जो भी बड़े-बड़े पीर, पैगम्बर, तथा विरक्त भेष धारण करने वाले फकीर हुए हैं, उन सभी को श्री प्राणनाथ जी की सान्निध्यता प्राप्त हुई।

बरना बरन वादे लड़ते, ब्रोध न छोड़ता कोए।

चाल असत की चलते, हिंदू मुसलमान दोए॥१९॥

श्री प्राणनाथ जी के प्रकट होने से पूर्व हिन्दुओं के सभी वर्ण विवादों के जाल में फँसकर लड़ते रहते थे। कोई भी दूसरों से अपना विरोध समाप्त करने के लिये तैयार नहीं था। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ने ही झूठ की राह अपना रखी थी।

बाघ बकरी एक संग चरें, कोई न करे किसी सों वैर।

पसु पंखी सुखे चरें चुगें, छूट गयो सब को जेहेर॥२०॥

अब श्रीमुखवाणी के आलोक में हिन्दू और मुसलमान (बकरी और बाघ) आपस में मिल-जुलकर रहने लगे। उनमें आपस में किसी के भी प्रति वैर भाव नहीं रह गया। गरीब तथा धनी (पशु-पक्षी) के बीच आपस का द्वेष

समाप्त हो गया और प्रेमपूर्वक रहने लगे।

भावार्थ- बाघ की प्रवृत्ति हिंसक, निर्दयी, तथा माँसाहारी होती है। इसके विपरीत बकरी के स्वभाव में कोमलता, दयालुता, तथा शाकाहार कूट-कूटकर भरा होता है। इसी कारण कट्टरपन्थी मुसलमानों को बाघ तथा हिन्दुओं को बकरी की संज्ञा दी गयी है। पशु जमीन पर चलते हैं तथा पक्षी आकाश में उड़ते हैं। इसी स्थिति को देखते हुए इन्हें गरीब एवं धनी कहकर सम्बोधित किया गया है। यह स्पष्ट है कि श्रीमुखवाणी से अक्षरातीत की पहचान कर लेने वालों की दृष्टि में हिन्दू-मुसलमान, तथा गरीब-धनी में किसी भी प्रकार की खाई नहीं रह पायेगी।

सनमुख सब एक रस भए, भाग्यो सो विश्व को ब्रोध।

घर घर आनंद उछव, कुली पोहोरो काढ़यो सबको क्रोध॥२१॥

श्रीमुखवाणी से अक्षरातीत परब्रह्म की पहचान हो जाने पर सभी एक-दूसरे के आत्मिक भावों में सराबोर हो गये, जिससे सबका विरोध समाप्त हो गया। कलियुग के प्रभाव से सबके मन में एक-दूसरे के प्रति जो क्रोध की भावना थी वह समाप्त हो गयी, जिससे घर-घर आनन्दमयी उत्सवों का आयोजन होने लगा।

भावार्थ- वर्तमान में सारा संसार साम्प्रदायिक विद्वेष की ज्वाला में जल रहा है। ऐसी स्थिति में इस चौपाई द्वारा सम्पूर्ण विश्व का विरोध समाप्त होने का वर्णन इस भावना से किया गया है कि श्री जी के चरणों में आने वाले सुन्दरसाथ का भी एक छोटा सा संसार है, जिसमें आने वाले भिन्न-भिन्न पन्थों के लोग अपनी कटुता

जड़-मूल से समाप्त कर देते हैं। यद्यपि यह बात अतिशयोक्ति के रूप में कही गयी है, किन्तु यदि सारे विश्व में श्री प्राणनाथ जी की ब्रह्मवाणी फैल जाये, तो सम्पूर्ण विश्व में एकरसता अवश्य हो जायेगी। आज नहीं तो योगमाया के ब्रह्माण्ड में तो ऐसा होगा ही।

धनी आए मेरे लाड़ पालने, वतन पार के पार।

कारज कारन महाकारन से, न्यारी हों इन पिउकी नार॥२२॥

निराकार-बेहद से परे परमधाम से मेरे प्राणवल्लभ अपने प्रेम का रस उड़ेलने इस संसार में आये हुए हैं। ऐसे ही अक्षरातीत की अर्धांगिनी हम ब्रह्मसृष्टियों का मूल स्वरूप इस क्षर जगत (कार्य), बेहद (कारण), और अक्षर (महाकारण) से भी परे है।

ए बात पोहोंची जाए वैकुंठ, बुधजीऐं उड़ायो उनमान।

सुक सिव सन ब्रह्मा नमे, नमे विष्णु लखमी नारायन॥२३॥

वैकुण्ठ में जब इस बात की सूचना पहुँच गयी कि सच्चिदानन्द परब्रह्म मृत्यु लोक में प्रकट हो चुके हैं तथा जाग्रत बुद्धि ने सबके संशयात्मक ज्ञान को समाप्त कर दिया है, तो भाव-विभोर होकर शुकदेव जी, भगवान शिव, सनकादिक, विष्णु भगवान, लक्ष्मी जी, और आदिनारायण भी श्री प्राणनाथ जी के प्रति नतमस्तक हो गये।

मुक्त दई सब जीवों को, पावें पसु पंखी नर नार।

होसी वैराट ए धन धन, सुख आनन्द अखण्ड अपार॥२४॥

विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप श्री प्राणनाथ जी ने इस ब्रह्माण्ड के सभी जीवों को अखण्ड मुक्ति प्रदान

की। अब सभी पशु-पक्षी और नर-नारी अखण्ड और अनन्त ब्रह्मानन्द का रसपान करेंगे। इस प्रकार यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड धन्य-धन्य हो जायेगा।

ए नेक करी मैं इसारत, याको आगे होसी बड़ो विस्तार।
थोड़े से दिन में देखोगे, वरतसी जय जयकार॥२५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि जागनी लीला के सम्बन्ध में मैंने संकेतों में थोड़ा सा ही वर्णन किया है। भविष्य में इस जागनी लीला का बहुत अधिक विस्तार होगा। हे सुन्दरसाथ जी! आपको बहुत थोड़े से समय बाद ही यह दृश्य देखने को मिलेगा कि चारों ओर अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी की जय-जयकार हो रही है।

साथ सुनो एक वचन, आवे बाई सकुंडल सकुमार।

रास खेल घर चलसी, भेले इन भरतार॥२६॥

हे साथ जी! एक विशेष बात सुनिए कि जब शाकुण्डल तथा शाकुमार की आत्मा जाग्रत हो जायेगी, तब जागनी रास का खेल पूर्ण हुआ माना जायेगा। तब हम सब सुन्दरसाथ अपने धनी के साथ परमधाम चलेंगे।

भावार्थ- जागनी लीला में शाकुण्डल तथा शाकुमार की विशेष भूमिका है। इन दोनों के जाग्रत होने पर ही जागनी लीला पूर्ण मानी जायेगी। शाकुमार की जागनी अन्त में होगी। शाकुमार की आत्मा जाग्रत होकर शाकुण्डल की तरह ही धनी को जाहिर करेगी। इस सम्बन्ध में महंमद की बीतक (७२ मोजजे) नामक ग्रन्थ के आखिर के तीन प्रकरणों में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

कहे महामत ए सो खेल, जो तुम मांग्या था चित दे।

देख खेल हंस चलसी, घर बातां करसी ए॥२७॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! यह माया का वही खेल है, जिसको देखने की इच्छा आपने अपने मन में की थी। अब हम इस खेल को देखकर हँसते हुए परमधाम चलेंगे तथा वहाँ पर यहाँ की सारी बातें करेंगे।

प्रकरण ॥५५॥ चौपाई ॥६१२॥

राग श्री बसन्त

आरती

यह कीर्तन हरिद्वार में उस समय उतरा, जब सभी आचार्यों ने श्री जी को श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप मानकर उनकी आरती उतारी। यद्यपि बाह्य अर्थों में दीपक को अपने आराध्य या प्रिय व्यक्ति के सम्मुख नीचे से ऊपर तक घुमाना आरती करना कहलाता है, किन्तु इसका आन्तरिक भाव होता है अपनी आत्मा का सर्वस्व समर्पण करना। इस सम्पूर्ण प्रकरण में जो कुछ कहा गया है, वह यथार्थ रूप से योगमाया के ब्रह्माण्ड में ही घटित होगा, इस नश्वर जगत में नहीं। भविष्य में होने वाले इस घटनाक्रम को इस प्रकरण में चित्रित कर दिया गया है। यद्यपि यह सारा वर्णन भूतकाल में है, किन्तु घटित होगा भविष्य में।

भई नई रे नवों खंडों आरती, श्री विजया अभिनंद की आरती।

प्रेम मगन होए उतारती, सखी आप पिया पर वारती॥१॥

विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक श्री प्राणनाथ जी की नवों खण्डों में एक नये प्रकार की शोभा वाली आरती उतारी गयी। सखियों ने प्रेम में मग्न होकर तथा अपने को धनी पर न्योछावर करते हुए उनकी आरती उतारी।

भावार्थ— पृथ्वी के ९ खण्ड हैं— १. भरत खण्ड २. किम्पुरुष खण्ड ३. केतुमाल ४. हरिवर्ष खण्ड ५. भद्राश्व खण्ड ६. इलावृत्त खण्ड ७. रम्यक खण्ड ८. हिरण्य खण्ड ९. कुरुवर्ष।

हरिद्वार में मात्र आचार्यों ने ही उस समय श्रीजी की आरती उतारी थी, सम्पूर्ण पृथ्वी पर अभी वर्तमान समय में श्री प्राणनाथ जी की पहचान जाहिर नहीं हुई है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नव खण्डों के प्राणी उस समय श्री

जी की आरती उतारेंगे, जब वे योगमाया के ब्रह्माण्ड में पहुँचेंगे।

"नई आरती" का भाव है— स्वरूप की पहचान करके समर्पित होना। योगमाया में होने वाली यह आरती दीपकों के घुमाने की औपचारिकता पर निर्भर नहीं करेगी, बल्कि श्रद्धा और समर्पण का स्वरूप होगी। धनी के स्वरूप की पहचान करने में सभी प्राणी अँगना भाव से उन्हें रिझायेंगे, इसलिये उन्हें "सखी" शब्द से सम्बोधित किया गया है।

दुष्टाई सबों की संघारती, सुख अखंड आनन्द विस्तारती।

जन सचराचर तारती, भई नई रे नवों खंडों आरती॥२॥

समर्पण रूपी यह आरती सभी जीवों के अन्दर छिपी हुई दुष्टता का संहार करने वाली है तथा उनके हृदय में

अखण्ड आनन्द का विस्तार करने वाली है। इस प्रकार धनी पर न्योछावर हो जाने वाली यह बातूनी आरती चर-अचर सम्पूर्ण प्राणियों को अखण्ड मुक्ति देने वाली है। इस प्रकार नवों खण्डों के प्राणियों द्वारा श्री जी की आरती उतारी गई (जायेगी)।

सैयां सब सिनगार साजती, मिने सूरत पिया की विराजती।

ए सोभा इतहीं छाजती, भई नई रे नवों खंडों आरती॥३॥

अपने प्रियतम को रिझाने के लिये सखियाँ (मुक्त जीव) सभी प्रकार के श्रृंगार से सुशोभित हैं। उनके हृदय में प्रियतम श्री प्राणनाथ जी की शोभा विराजमान है। सिंहासन पर बैठे हुए श्री जी की चारों ओर अलौकिक शोभा हो रही है। इस प्रकार नवों खण्डों के जीवों द्वारा उनकी आरती की गई।

भावार्थ- यह कथन कलश हिन्दुस्तानी के उस प्रसंग से जुड़ा हुआ है, जिसमें कहा गया है कि "मेरे गुन अंग खड़े होसी, अरचासी आकार", अर्थात् सत्स्वरूप की पहली बहिश्त में श्री मिहिरराज जी का जीव अक्षरातीत की शोभा धारण करके विराजमान होगा तथा सभी बहिश्तों वाले उसी स्वरूप को पूर्ण ब्रह्म मानकर अङ्गना भाव से रिझायेंगे।

झालर अगनित बाजे ले बाजती, ब्रह्मांड में नौबत गाजती।
 कलिजुग सैन्या सुन भाजती, भई नई रे नवों खंडों आरती॥४॥
 असंख्य वाद्यों के साथ घण्टे की ध्वनि हो रही है।
 सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में नगाड़े की आवाज गूँज रही है, जिसे सुनते ही कलियुग (माया) की सारी सेना भागी चली जा रही है। इस प्रकार नवों खण्डों के प्राणियों द्वारा श्री जी

की आरती उतारी गयी।

भावार्थ- ब्रह्मवाणी के ज्ञान रूपी अथाह सागर से उठने वाली लहरें ही असंख्य वाद्य (बाजे) हैं। इसी प्रकार वाणी की मधुर आवाज ही घण्टे की मधुर ध्वनि है तथा शाश्वत सत्य को उजागर करने वाली ब्रह्मवाणी की गर्जना ही नगाड़े की आवाज है। तात्पर्य यह है कि जो जीव इस संसार में श्रीमुखवाणी को आत्मसात् नहीं कर सके, वे योगमाया के ब्रह्माण्ड में जाग्रत बुद्धि पाकर इसे ग्रहण कर लेंगे, जिससे उनके अन्दर माया का नामोनिशान भी नहीं रहेगा।

सप्तधातु सुन्य मण्डल थाल, निरंजन जोत भई उजाल।

झलहलिया इत नूरजमाल, भई नई रे नवों खण्डों आरती॥५॥

सप्त धातुओं से बना हुआ शरीर रूपी दीपक है ,

महाशून्य जैसे विस्तार वाला थाल है, जिसमें निरञ्जन की ज्योति जगमगा रही है। ऐसी आरती सजाकर सिंहासन पर विराजमान अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी की नई ही शोभा वाली आरती उतारी गयी। इसमें नवों खण्डों के प्राणियों ने भाग लिया।

भावार्थ- हरिद्वार में उतारी गयी आरती सामान्य आरती है, किन्तु इस चौपाई में जो प्रसंग वर्णन है वह योगमाया के ब्रह्माण्ड में घटित होगा, क्योंकि वहाँ ही नवों खण्डों के प्राणी अपनी अन्तःचेतना रूपी ज्योति (निरञ्जन या आदिनारायण की ज्योति के अंश) से आरती उतारेंगे।

पसरी दया प्रगटे दयाल, काटे दुनी के करम जाल।

चेतन व्यापी भए निहाल, भई नई रे नवों खंडों आरती॥६॥

अब दया के अनन्त सागर श्री प्राणनाथ जी प्रकट हो

गये हैं। उन्होंने अपनी कृपा से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को कर्मफल के भोग-बन्धन से रहित कर दिया है। इस प्रकार अखण्ड मुक्ति पाने से सभी जीव आनन्द में डूब गये हैं, कृतकृत्य हो गये हैं। उन्होंने नई शोभा वाली (समर्पण की) आरती उतारी।

सैन्या सहित आए त्रिपुरार, आए ब्रह्मा पढ़त मुख वेद चार।

विष्णु बोलत बानी जय जय कार, भई नई रे नवों खंडों आरती॥७॥

नवों खण्डों के प्राणियों द्वारा की जाने वाली इस आरती में अपने अनुयायियों की सेना सहित भगवान शिव आये। चारों वेदों को कण्ठस्थ करने वाले ब्रह्मा जी आये। भगवान विष्णु भी श्री प्राणनाथ जी के जयकारे लगाते हुए वहाँ आये।

भावार्थ— त्रिदेवों का आरती में शामिल होना यह सिद्ध

करता है कि यह घटना योगमाया में ही घटित होगी।

आए धरमराए और इंद्र वरून, नारद मुन गंधर्व चौदे भवन।

सुर असुरों सबों लई सरन, भई नई रे नवों खंडों आरती॥८॥

इस अलौकिक आरती में धर्मराज, देवराज इन्द्र, और वरुण आदि देवता भी आये। नारद मुनि, गन्धर्व गण, तथा चौदह लोक के सभी प्राणियों ने उसमें भाग लिया। सुर-असुर सभी ने श्री प्राणनाथ जी की शरण ली।

द्रष्टव्य- हरिद्वार जैसे छोटे से नगर में चौदह लोक के सभी प्राणियों का एकत्रित हो जाना सम्भव नहीं है। यह पूर्णरूप से स्पष्ट है कि यह योगमाया का प्रसंग है।

आए सनकादिक चारों थंभ, लिए खड़े संग विष्णु ब्रह्मांड।

जो ब्रह्म अनभवी भए अखंड, भई नई रे नवों खंडों आरती॥९॥

इस दिव्य आरती में ज्ञान के चार स्तम्भ कहे जाने वाले सनक, सनन्दन, सनातन, तथा सनत् कुमार आये। उनके साथ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपनी शक्ति तथा ज्ञान से धारण करने वाले विष्णु भगवान आये। ब्रह्म के अनुभव का आनन्द लेने वाले मुनि जन भी आये। इस प्रकार श्री जी की शरण में आकर उन्होंने अखण्ड मुक्ति का आनन्द प्राप्त किया।

जिन हृद कर दर्ई नवधा भगत, जुदी कर गई पाई प्रेम जुगत।
 यों आए सुक व्यास बड़ी मत, भई नई रे नवों खंडों आरती॥१०॥
 नवों खण्डों के जीवों द्वारा होने वाली इस आरती में वे शुकदेव तथा वेद व्यास जी भी आये, जो महान बुद्धि के स्वामी हैं तथा जिन्होंने नवधा भक्ति से परे अनन्य प्रेम लक्षणा भक्ति का वर्णन किया है।

आए नवनाथ चौरासी सिध, बरस्या नूर सकल या बिध।

इत आए बुधजी ऐसी किध, भई नई रे नवों खंडों आरती॥११॥

इस अलौकिक आरती में नाथ पन्थ के नौ योगी तथा ८४ सिद्ध भी आये। जाग्रत बुद्धि के स्वामी श्री प्राणनाथ जी ने यहाँ आकर ऐसी कृपा की कि चारों ओर नूर (तारतम ज्ञान) का फैलाव हो गया।

भावार्थ— इस चौपाई में प्रयुक्त "इत आए" का तात्पर्य हरिद्वार में आने से नहीं, बल्कि योगमाया से है। जब सत्स्वरूप की प्रथम बहिश्त में श्री मिहिरराज जी के जीव अक्षरातीत का रूप बनकर सिंहासन पर विराजमान होंगे, उस समय उनके अन्दर बुद्ध जी (जाग्रत बुद्धि का फरिश्ता) भी होंगे। चारों ओर नूर की वर्षा होने का भाव यह है कि उस समय सभी बहिश्तों के प्राणी तारतम ज्ञान द्वारा एक अक्षरातीत की पहचान करके प्रेम और समर्पण

की सच्ची आरती उतारेंगे।

आए चारों संप्रदा के साधूजन, चार आश्रम और चार वरन।
 चारों खूटों के आए गावते गुन, भई नई रे नवों खंडों आरती॥१२॥
 नवों खण्डों के प्राणियों द्वारा होने वाली उस आरती में
 वैष्णवों के चारों सम्प्रदायों (रामानुज, निम्बार्क,
 माध्वाचार्य, तथा विष्णु श्याम) के साधु जन आये। इसके
 अतिरिक्त चारों आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ,
 और सन्यास) और चारों वर्णों एवं चारों कोनों से लोग
 श्री प्राणनाथ जी की महिमा गाते हुए चरणों में आए।

आए गछ चौरासी जो अरहंती, दत्तजी दसनामी जो महंती।
 आए करम उपासनी वेदांती, भई नई रे नवों खंडों आरती॥१३॥
 जैन मत के ८४ सिद्ध तथा तीर्थंकर भी उस आरती में

आए। इसके अतिरिक्त दत्तात्रेय के अनुयायी सन्यासी जन और दश नाम मत (तीर्थ, आश्रम, वन, पर्वत, अरण्य, सागर, गिरि, पुरी, भारती, और सरस्वती) के साधु-महन्त भी श्री जी की उस अलौकिक आरती में शामिल हुए। वेदान्त के ज्ञान काण्ड का अनुसरण करने वाले, उपासना मार्ग पर चलने वाले, तथा कर्मकाण्डी लोग भी उस मधुर बेला में सम्मिलित हुए।

आए खट दरसन खट सास्त्र भेदी, बहत्तर फिरके आए अथर वेदी।

आए सकल कैदी और बे कैदी, भई नई रे नवों खंडों आरती॥१४॥

छः दर्शनों (सांख्य, योग, वेदान्त, न्याय, मीमांसा, तथा वैशेषिक) के रचनाकार एवं तत्त्वज्ञ (कपिल, पतञ्जलि, वेद व्यास, गौतम, जैमिनि, एवं कणाद ऋषि) भी उस दिव्य आरती में शामिल हुए। उनके साथ इस्लाम

मत के ७२ फिरके और अथर्व वेद के रहस्यों को जानने का दावा करने वाले भी आये। शरीयत (कर्मकाण्ड) के बन्धनों में रहने वाले तथा उससे मुक्त होकर प्रेम की राह अपनाने वाले भी उस आरती में भाग लिये। इस प्रकार नवों खण्डों के लोगों ने श्री प्राणनाथ जी की (समर्पण की) आरती उतारी।

भावार्थ— हरिद्वार के कुम्भ मेले में इस्लाम मत के ७२ फिरकों का आना सम्भव नहीं है। एकमात्र योगमाया ही वह स्थान है, जहाँ हिन्दू, मुस्लिम, तथा क्रिश्चियन (ईसाई) आदि की दीवार मिट जायेगी, एवं सभी लोग एक स्वर से श्री प्राणनाथ जी को अपना धाम धनी मानकर समर्पण की आरती उतारेंगे।

बुध जी की जोतें कियो प्रकास, त्रैलोकी को तिमर कियो नास।

लीला खेलें अखंड रास विलास, भई नई रे नवों खंडों आरती॥१५॥

जाग्रत बुद्धि के ज्ञान की ज्योति ने तीनों लोकों (पृथ्वी, स्वर्ग, तथा वैकुण्ठ) की अज्ञानता के अन्धकार को दूर कर दिया तथा सत्य ज्ञान का उजाला कर दिया। श्री प्राणनाथ जी इस जागनी ब्रह्माण्ड में अखण्ड रास की लीला कर रहे हैं। इन्हीं की आरती नवों खण्डों के प्राणियों ने उतारी।

भावार्थ— यह जिज्ञासा पैदा होती है कि जागनी ब्रह्माण्ड में लीला करने वाले श्री जी के स्वरूप तथा योगमाया के ब्रह्माण्ड में सिंहासन पर विराजमान होकर न्याय की लीला करने वाले स्वरूप में क्या अन्तर है?

यह ध्रुव सत्य है कि श्री महामति जी के धाम हृदय में अक्षरातीत अपनी पाँचों शक्तियों (जोश, श्यामा जी,

अक्षर की आत्मा, हुक्म स्वरूप आवेश, तथा जाग्रत बुद्धि) सहित विराजमान हैं, लेकिन इस मायावी जगत् में उनके स्वरूप को लोग पहचान नहीं पा रहे हैं।

किन्तु योगमाया में न्याय के सिंहासन पर जो स्वरूप विराजमान होगा, उसमें न तो युगल स्वरूप होंगे और न अक्षर ब्रह्म होंगे। श्री राज जी की हूबहू शोभा को श्री मिहिरराज जी का जीव धारण कर लेगा तथा उस नूरी किशोर तन में जोश एवं जाग्रत बुद्धि की शक्ति होगी। धनी का आवेश न होते हुए भी उस तन को सभी अक्षरातीत का ही स्वरूप मानेंगे। इस सम्बन्ध में सनन्ध ग्रन्थ में २६/८ में कहा गया है—

ज्यों ज्यों दुलहा देखहीं, त्यों त्यों उपजे दुःख।
ऐसे मौले मेहेबूब सों, हाए हाए हुए नहीं सनमुख॥

प्रगट वाणी का यह कथन भी इसी सन्दर्भ में है—
सब दुनिया मिलसी एक ठौर, कोई न कहे धनी मेरा और।

पिया हुकमें गावें महामत, उड़ाए असत थाप्यो सत।
सब पर कलस हुआ आखिरत, भई नई रे नवों खंडों आरती॥१६॥
अपने धाम धनी के आदेश से श्री महामति जी इस
ब्रह्मवाणी को कह (गा) रहे हैं। उन्होंने संसार के झूठे
अज्ञान को हटाकर परमधाम के सत्य ज्ञान को स्थापित
कर दिया है। ब्रह्मवाणी का यह जाग्रत ज्ञान सबके ऊपर
कलश के रूप में सुशोभित है। ऐसी महिमा वाले श्री जी
की नवों खण्डों के प्राणियों द्वारा आरती उतारी गयी
(जायेगी)।

प्रकरण ॥५६॥ चौपाई ॥६२८॥

भोग

राग श्री काफी

यह कीर्तन हरिद्वार में उतरा है। इसमें श्री प्राणनाथ जी को पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द के रूप में चित्रित किया गया है।

कृपा निध सुन्दरवर स्यामा, भले भले सुंदरवर स्याम।

उपज्यो सुख संसार में, आए धनी श्री धाम॥१॥

आत्मा के प्रियतम अति सुन्दर श्याम श्यामा (श्री राज श्यामा) हैं, जो कृपा के भण्डार हैं। ऐसे धाम-धनी के इस नश्वर संसार में आने से चारों ओर आनन्द पैदा हो गया है।

प्रगटे पूरन ब्रह्म सकल में, ब्रह्म सृष्ट सिरदार।

ईश्वरी सृष्ट और जीव की, सब आए करो दीदार॥२॥

अब सबके बीच में पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द श्री प्राणनाथ जी प्रकट हो गये हैं। ये ब्रह्मसृष्टियों के प्रियतम हैं, तथा ईश्वरी सृष्टि और जीव सृष्टि के प्रभु हैं। हे संसार के लोगों! आप सभी आकर इनका दर्शन करो।

नित नए उछव आनंद, होत किरंतन सार।

वैष्णव जो कोई खट दरसन, आए इष्ट आचार॥३॥

प्रतिदिन ही यहाँ नये-नये आनन्दमयी उत्सव मनाये जा रहे हैं, सार रूप कीर्तन का गायन हो रहा है। वैष्णव, षट् दर्शनों के आचार्य, एवम् अनेकों इष्ट तथा नियमों के अनुयायी भी इसमें सम्मिलित हुए।

भोजन सर्वे भोग लगावत, पांच सात अनं पाक।

मेवा मिठाई अनेक अथाने, बिध बिध के बहु साक॥४॥

सभी मिलकर स्वादिष्ट भोजन तैयार करते हैं और अपने धाम धनी को भोग लगाते हैं। भोग में ५-७ प्रकार के अन्न के व्यन्जन, अनेक प्रकार के मेवे और अचार होते हैं। इसके अतिरिक्त कई प्रकार की सब्जियाँ तथा मिठाइयाँ भी होती हैं।

अठारे बरन नर नारी आए, साजे सकल सिनगार।

प्रेम मगन होए गावें पिया जी के, धवल मंगल चार॥५॥

इस कार्यक्रम में १८ वर्णों के स्त्री-पुरुष भी आये हुए हैं, जो सभी प्रकार के श्रृंगार से युक्त हैं। वे अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत के प्रेम में मग्न होकर अति मनोहर मंगल गीत गा रहे हैं।

द्रष्टव्य- गुण, कर्म, और स्वभाव के अनुसार मात्र चार वर्ण होते हैं। जन्म के आधार पर कोई भी वर्ण निर्धारित नहीं होता। यही वैदिक मान्यता है, किन्तु कलियुग में पौराणिक मान्यताओं के प्रबल हो जाने से जन्मना वर्ण निर्धारित किया जाने लगा। इन चारों वर्णों के परस्पर अन्तर्जातीय सम्बन्धों से १४ उपवर्णों (उपजातियों) की उत्पत्ति हुई, जैसे सूत, भूमिहार इत्यादि। इन्हें ही १८ वर्ण कहते हैं।

कई गंधर्व गुन गावें बजावें, कई नट नाचन हार।

कई रिखि मुनी वेद पढ़त हैं, बरतत जय जयकार॥६॥

प्रियतम परब्रह्म के प्रकट होने की खुशी में गायन तथा वादन में निपुण (गन्धर्व) लोग श्री जी की महिमा गा रहे हैं तथा सुन्दर वाद्य बजा रहे हैं। नृत्य कला में प्रवीण

लोग नाच रहे हैं। कई ऋषि-मुनि वेद पाठ कर रहे हैं।
इस प्रकार चारों ओर श्री प्राणनाथ जी की जय-जयकार
हो रही है।

जब की माया ए भई पैदा, ए लीला न जाहेर कब।

बृज रास और जागनी लीला, ए जो प्रगटी अब॥७॥

अनादि काल से अक्षर ब्रह्म की माया से सृष्टि पैदा होती
रही है तथा लय को प्राप्त होती रही है, किन्तु अक्षरातीत
द्वारा यह जो अब ब्रज, रास, तथा जागनी की लीला की
गयी है, ऐसी लीला न तो पहले कभी हुई है और न कभी
पुनः होगी।

चारों तरफों चौदे लोकों, ए सुध हुई सबों पार।

बाजे दुन्दुभि भई जीत सकल में, नेहेचल सुख बे सुमार॥८॥

चौदह लोक में चारों ओर निराकार से परे के ज्ञान की सुध हो गयी, जिससे सभी के लिये बेहद के अखण्ड और अनन्त सुख का मार्ग प्राप्त हो गया। अब हृद का ज्ञान रखने वाले धर्माचार्यों पर श्री जी की विजय के नगाड़े बज रहे हैं।

द्रष्टव्य- चौदह लोक में ब्रह्मवाणी का ज्ञान फैलने की बात अतिशयोक्ति में कही गयी है। यह बात योगमाया के ब्रह्माण्ड में ही यथार्थ रूप से चरितार्थ होगी।

जोत उद्योत कियो त्रिलोकी, उड़यो मोह तत्व अंधेर।

बरस्यो नूर वतन को, जिन भान्यो उलटो फेर॥९॥

परमधाम से अवतरित होने वाले तारतम ज्ञान के उजाले ने तीनों लोकों में फैले हुए माया के अन्धकार को समाप्त कर दिया। इस अद्वितीय ज्ञान ने सभी के जन्म-

मरण के उल्टे चक्र को समाप्त कर दिया अर्थात् अखण्ड मुक्ति प्रदान की।

प्रगटे ब्रह्म और ब्रह्मसृष्टि, और ब्रह्म वतन।

महामत इन प्रकास थे, अखंड किए सब जन॥१०॥

श्री महामति जी कहते हैं कि इस समय पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द तथा उनकी ब्रह्मसृष्टियों का प्रकटन हो चुका है। ब्रह्मवाणी से परमधाम का ज्ञान भी प्रकाश में आ चुका है और इस ज्ञान को आत्मसात् करने से सभी के लिये शाश्वत् मुक्ति का द्वार भी खुल चुका है।

प्रकरण ॥५७॥ चौपाई ॥६३८॥

राग श्री कटको

यह कीर्तन श्री ५ पद्मावती पुरी धाम में उतरा है। इसमें हिन्दू राजाओं को धर्म रक्षा हेतु तैयार होने का आह्वान किया गया है।

राजाने मलोरे राणें राए तणों, धरम जाता रे कोई दौड़ो।
जागो ने जोधा रे उठ खड़े रहो, नींद निगोड़ी रे छोड़ो॥१॥
हे भारतवर्ष के राजा, राणा, तथा राय गणों! धर्म रक्षा के लिये तुम सभी मिल जाओ। तुम्हारा धर्म समाप्त किया जा रहा है। इसलिये इसकी रक्षा के लिये दौड़ो। हे योद्धा गणों! अपनी इस झूठी निद्रा को छोड़कर जाग्रत हो जाओ और धर्म रक्षा के लिये तैयार हो जाओ।

छूटत है रे खरग छत्रियों से, धरम जात हिंदुआन।

सत न छोड़ो रे सत वादियो, जोर बढ़यो तुरकान॥२॥

क्षत्रियों ने तलवारें पकड़ना छोड़ रखा है अर्थात् उन्होंने युद्ध का कार्य बन्द कर दिया है, जिससे हिन्दू धर्म समाप्त होता जा रहा है। सत्य का बखान करने वाले हिन्दुओं! तुम किसी भी स्थिति में सत्य (धर्म) का आश्रय नहीं छोड़ना। तुकों (मुसलमानों) की शक्ति बहुत बढ़ गयी है।

कुलिए छकाए रे दिलड़े जुदे किए, मोह अहं के मद माते।

असुर माते रे असुराई करें, तो भी न मिले रे धरम जाते॥३॥

कलियुग ने सबको मोह और अहंकार में मस्त कर रखा है, जिसके कारण सभी के दिलों में खटास हो गयी है। सभी हिन्दू राजा लड़-झगड़कर अलग हो गये हैं। उधर मुसलमान अपनी शक्ति के मद में हिन्दुओं पर जुल्म ढा

रहे हैं, फिर भी हिन्दू अपनी धर्म रक्षा के लिये मिल नहीं पा रहे हैं।

त्रैलोकी में रे उत्तम खंड भरथ को, तामें उत्तम हिंदू धरम।
ताकी छत्रपतियों के सिर, आए रही इत सरम॥४॥

तीनों लोक में भरत खण्ड सर्वश्रेष्ठ है, जिसमें हिन्दू धर्म सभी मतों में सर्वोपरि है। अब हिन्दू राजाओं के ऊपर ही यह उत्तरदायित्व है कि वे हिन्दू धर्म की रक्षा करें।

द्रष्टव्य— भरत खण्ड को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ इसलिये कहा गया है कि स्वर्ग से पुनः वापस आना पड़ता है, किन्तु भरत खण्ड में मोक्ष का साधन प्राप्त होता है। यद्यपि पृथ्वी पर बहुत से देश हैं जो भौतिक सुख-सुविधाओं की दृष्टि में भारत से बहुत आगे हैं, किन्तु उनके पास वह आध्यात्मिक सम्पदा नहीं है जो भारत में है।

पन ने धारी रे पन इत ले चढ़या, कोई उपज्यो असुर घर अंस।

जुध ने करनें उठया धरमसों, सब देखें खड़े राज बंस॥५॥

मुसलमानों में परमधाम की कोई आत्मा (शाकुमार) प्रकट हो चुकी है। उसे विदित हो चुका है कि आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिबुजमां हिन्दुओं में प्रकट होने वाले हैं। उनसे मिलने का उसने प्रण कर रखा है। उसे पूरा करने के लिये अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ वह हिन्दुओं से युद्ध कर रहा है। उसका युद्ध धर्म के नाम पर है। अपने ऊपर हमला होने पर भी हिन्दू राजा हाथ बाँधे खड़े हैं।

भावार्थ— दिल्ली में रहने वाले एक सूफी फकीर "शाह वलीउल्लाह" के सम्पर्क में आकर औरंगजेब बादशाह उनका शिष्य बन गया। उस फकीर ने ही बादशाह को बता दिया था कि आखरूल इमाम मुहम्मद महदी

हिन्दुओं में आयेंगे। इसी खोज में वह मन्दिरों को तुड़वाने लगा। किसी भी मन्दिर में जाकर वह तीन बार "हक, हक, हक" इस आशय से कहता था कि "मुहम्मद इमाम महदी" सामने आ जायेंगे। "इमाम" का दर्शन न होने पर उसने निष्ठुरतापूर्वक मन्दिरों को नष्ट करवाना शुरू कर दिया।

भरथ खण्ड रे हिंदू धरम जान के, मांगे विष्णु संग्राम अरथ।

फिरत आप रे ढिंढोरा पुकारता, है कोई देव रे समरथ॥६॥

भरत खण्ड में हिन्दू धर्म का वर्चस्व जानकर औरंगज़ेब इस्लाम धर्म के विस्तार के लिये युद्ध की माँग करता है। वह चारों ओर इस बात का ढिंढोरा पीटता है कि यदि हिन्दुओं में विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक या आखरूल इमाम मुहम्मद महदी जाहिर हो गये हैं, तो वे मेरे सामने

आयें।

द्रष्टव्य- प्राचीन काल में सुर और असुर में होने वाले युद्धों में सतोगुण के स्वरूप भगवान विष्णु सुरों (देवताओं) के पक्ष में लड़ते थे, इसलिये असुरों के साथ होने वाले युद्ध को "विष्णु संग्राम" कहा गया है। इसी प्रकार हिन्दुओं (सुर) के साथ होने वाले औरंगज़ेब के युद्ध को भी विष्णु संग्राम कहकर सम्बोधित किया गया है।

असुर सत रे धरम जुध मांगहीं, सुर केहेलाए जो न दीजे।
 पूछो ने पंडितो रे जुध दिए बिना, धरम राज कैसे कहीजे॥७॥
 स्वयं को सत्य का अनुगामी कहने वाला औरंगज़ेब (असुर) हिन्दुओं से धर्म युद्ध की माँग कर रहा है। सुर (हिन्दू) कहलाकर भी यदि धर्म रक्षा के लिये युद्ध न

किया जाये, तो यह उचित नहीं है। हे राजाओं! तुम अपने पण्डितों से यह बात पूछ सकते हो। धर्म रक्षा के लिये युद्ध किये बिना किसी भी राजा को भला "धर्मराज" की पदवी धारण करने का क्या अधिकार है।

भावार्थ- सात्विक स्वभाव वाले देवता (सुर) कहलाते हैं, रजोगुणी स्वभाव वाले मनुष्य, तथा तामसिक स्वभाव वाले असुर कहलाते हैं। यह तीनों उपाधियाँ जन्मना न होकर वस्तुतः गुणात्मक हैं। अत्यधिक माँसाहार करने के कारण मनुष्य की बुद्धि तामसिक हो जाती है, इसलिये श्रीमुखवाणी में मुसलमानों को "असुर" कहकर वर्णन किया गया है। वर्तमान समय में माँस और शराब का सेवन करने वाले हिन्दू भी इसी कोटि में माने जायेंगे।

राज कुली रे रखन रजवट, जो न आया इन अवसर।

धरम जाते जो न दौड़िया, ताए सुर कहिए क्यों कर॥८॥

हे राजवंशियों! अपने राजधर्म को निभाने के लिये इस अवसर पर यदि तुम आगे नहीं आओगे तथा डूबते हुए धर्म की रक्षा के लिये पूर्ण प्रयास नहीं करोगे, तो तुम्हें हिन्दू कहलाने का भी क्या अधिकार है।

वेद ने व्याकरणी रे पंडित पढ़वैयो, गछ दीन इष्ट आचार।

पीछे रे बल कब करोगे, होत है एकाकार॥९॥

वेदों और व्याकरण के पण्डितों और शिक्षार्थियों! जैन मत तथा भिन्न-भिन्न मत-पन्थों के आचार्यों! सभी हिन्दू इस्लाम मत को ग्रहण करते जा रहे हैं, तो क्या बाद में अपना बल दिखाओगे।

सिध ने साधो रे संतों महंतो, वैष्णव भेख दरसन।

धरम उछेदे रे असुरें सबन के, पीछे परचा देओगे किस दिन॥१०॥

हे सिद्ध पुरुषों, साधू-सन्तों, महन्तों, वैष्णवों, तथा भिन्न-भिन्न प्रकार की वेशभूषा एवं दर्शन को मानने वालों! औरंगज़ेब सबका धर्म नष्ट करता जा रहा है। बाद में अपनी शक्ति का परिचय कब दोगे?

सुनियो पुकार रे स्यांने संत जनो, जो न दौड़या जाते सत।

गए ने अवसर पीछे कहा करोगे, कहां गई करामत॥११॥

हे बुद्धिमान सन्तजनों! आप मेरी पुकार सुनिए। धर्म रक्षा के लिये यदि आप आगे नहीं आयेंगे, तो अवसर बीत जाने पर क्या करोगे? आप लोगों की चमत्कारिक शक्तियाँ कहाँ चली गयीं?

भावार्थ- इस प्रकरण की चौपाई ९, १०, तथा ११ में

विद्वानों तथा साधु-महात्माओं को धर्म रक्षा हेतु आगे आने के लिये जो आह्वान किया गया है, उसका तात्पर्य यह है कि जब हिन्दू समाज में फैली हुई बुराइयाँ दूर हो जायेंगी तो स्वतः ही इसकी रक्षा हो जायेगी। विद्वानों का धर्म रक्षा हेतु यही कर्त्तव्य है कि वे वेदों, उपनिषदों, और दर्शनों के ब्रह्मवाद को स्थापित करें, जिससे बहुदेववाद और जड़-पूजा समाप्त हो। पौराणिक विकृतियों और धार्मिक शिक्षा के फैलाव न होने के कारण ही हिन्दू समाज एक हजार पन्थों तथा बारह सौ जातियों में बँटा हुआ है। धर्म रक्षा के लिये इनका एकजुट होना अति आवश्यक है। यह कार्य विद्वान और महात्माजन ही कर सकते हैं। इसलिये श्री जी ने उनको सम्बोधित करके आह्वान किया है।

लसकर असुरों का चहुं दिस फैलया, बाढ़यो अति विस्तार।
 बन ने जंगल रे हिंदू रहे पर्वतों, और कर लिए सब धुन्धुकार॥१२॥
 मुसलमानों की सेना चारों ओर फैल गयी है। उनके साम्राज्य का विस्तार बहुत अधिक बढ़ गया है। हिन्दू भय के कारण वनों और पर्वतों में छिप-छिपकर रह रहे हैं। उनके लिये चारों ओर निराशा का अन्धकार छाया हुआ है।

हरिद्वार ढहाए रे उठाए तपसी तीर्थ, गौवध कैयों विघन।
 ऐसा जुलम हुआ जग में जाहेर, पर कमर न बांधी रे किन॥१३॥
 हरिद्वार में मन्दिर गिराये जा रहे हैं। तपस्वियों के साधना-स्थल तीर्थों को उजाड़ बनाया जा रहा है। गायों का वध किया जा रहा है। धार्मिक क्रियाकलापों में विघ्न डाले जा रहे हैं। सारे संसार में यह बात फैल गयी है कि

हिन्दुओं पर घोर अत्याचार किया जा रहा है, लेकिन उनकी रक्षा करने के लिये कोई भी तैयार नहीं हुआ।

सुर ने केहेलाए रे सेवा करे असुर की, जो दारूवाए उड़ावे दयोहर।
 हिंदु नाम रे सैन्या तिनकी होए खड़ी, ऐसा कुलिऐं किया रे केहेर॥१४॥
 जो मुसलमान बारूद से मन्दिरों को नष्ट करते हैं, उन्हीं की सेवा में हिन्दू लगे हुए हैं। कलियुग ने ऐसा कहर ढाया है कि बड़े-बड़े हिन्दू योद्धा मुसलमानों की सेना में रहकर युद्ध करते हैं।

भावार्थ- मुस्लिम शासन काल में अयोध्या, मथुरा, काशी सहित हजारों मन्दिरों को तोड़ा गया। यदि जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्त सिंह तथा जयपुर नरेश जयसिंह औरंगज़ेब को सहयोग नहीं देते, तो दिल्ली का सिंहासन समाप्त हो जाता। इसी प्रकार यदि मानसिंह का सहयोग

नहीं होता, तो अकबर का साम्राज्य नहीं फैल सकता था।

प्रभु प्रतिमां रे गज पांउ बांध के, घसीट के खंडित कराए।

फरस बंदी ताकी करके, तापर खलक चलाए॥१५॥

यह मुसलमान लोग भगवान की मूर्तियों को हाथी के पैरों में बँधवाकर घसीटवाते हैं तथा टुकड़े-टुकड़े करवा देते हैं। वे उसे अपने महलों की सीढ़ियों तथा मार्गों में जमींदोज कर (जमीन में गड़वा) देते हैं और लोगों के पैरों से कुचलवाते हैं।

असुरें लगाया रे हिंदुओं पर जजिया, वाको मिले नहीं खान पान।

जो गरीब न दे सके जजिया, ताए मार करे मुसलमान॥१६॥

औरंगज़ेब ने हिन्दुओं पर जज़िया कर लगा दिया है,

जिसके कारण हिन्दू बहुत गरीब हो गये हैं और उनके लिये अपने भोजन की व्यवस्था करना भी कठिन हो गया है। जो हिन्दू गरीबी के कारण जज़िया (कर) नहीं दे पाता है, उसे मार-पीटकर जबरन मुसलमान बना दिया जाता है।

सास्त्रें आवरदा कही कलजुग की, चार लाख बत्तीस हजार।

काटे दिन पापें लिख्या मांहे सास्त्रों, सो पाइए अर्थ अंदर के विचार॥१७॥

यद्यपि शास्त्रों में कलियुग की उम्र चार लाख बत्तीस हजार वर्ष कही गयी है, किन्तु ऐसा भी लिखा है कि पापों के कारण कलियुग की उम्र कम हो जाती है। यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि यह भेद शास्त्रों के आन्तरिक अर्थों को जानने पर ही पता चलता है।

भावार्थ— चाहे प्राणियों की उम्र हो या युग की, पापों की

बढ़ोत्तरी से कम हो जाती है। बुद्ध गीता आदि ग्रन्थों तथा कबीर वाणी में यह बात कही गयी है कि एक सूर्य ग्रहण या चन्द्र ग्रहण लगने से कलियुग की उम्र १२५ वर्ष कम हो जाती है। इस प्रकार पापों के कारण कलियुग की उम्र बहुत ही थोड़ी रह जाती है।

सोले सै लगे रे साका सालवाहन का, संवत सत्रह सै पैंतीस।

बैठाने साका विजिया अभिनन्द का, यों कहे सास्त्र और जोतीस॥१८॥

अब शालिवाहन शाका के १६०० तथा वि.सं. १७३५ का समय पूर्ण हो गया है तथा शास्त्रों और ज्योतिष की भविष्यवाणियों के अनुसार श्री विजयाभिनन्द बुद्ध जी का शाका प्रारम्भ हो गया है।

कलियुगें चेहेन रे अंत के सब किए, लोक बतावें अजू दूर अंत।

अर्थ अंदर का कोई न पावे, बारे अर्थ बाहेर के ले डूबत॥१९॥

यद्यपि कलियुग के समाप्त हो जाने के सारे चिह्न प्रकट हो चुके हैं, किन्तु लोगों का कथन है कि अभी तो कलियुग की उम्र पूरी ही नहीं हुई है। ग्रन्थों के आन्तरिक भावों को कोई भी नहीं समझता। सभी लोग बारह प्रकार के बाहरी अर्थों को ही सब कुछ मानकर अन्धकार में भटकते रहते हैं।

भावार्थ- ग्रन्थों के वास्तविक अभिप्राय को तो मात्र परब्रह्म की कृपा या समाधिस्थ प्रज्ञा (ऋतम्भरा) द्वारा ही जाना जा सकता है। व्याकरण ज्ञान के बल पर तो केवल शब्दों का बाह्य अर्थ ही निकाला जा सकता है, आन्तरिक नहीं।

बातने सुनी रे बुंदेले छत्रसाल ने, आगे आए खड़ा ले तरवार।
सेवाने लई रे सारी सिर खँच के, सांझ किया सैन्यापति सिरदार॥२०॥

श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप श्री प्राणनाथ जी के प्रकट होने तथा औरंगज़ेब के अत्याचारों की बात जब महाराजा छत्रसाल जी ने सुनी, तो वे धर्म रक्षा हेतु तलवार लेकर समर्पित हो गये। उन्होंने औरंगज़ेब से लड़ने तथा धर्म-रक्षा की सारी सेवा अपने सिर पर ले ली। प्रियतम प्राणनाथ जी ने अपनी कृपा दृष्टि से उन्हें सेनापतियों का प्रमुख (सरदार) अर्थात् महाराजा बना दिया।

प्रगटे निसान रे धुमरकेतु खय मास, पर सुध न करे अजूं कोई इत।
बेगेने पधारो रे बुध जी या समे, पुकार कहे महामत॥२१॥
धर्मग्रन्थों की भविष्यवाणी के अनुसार धूम्रकेतु का तारा

प्रकट हो गया है तथा इस वर्ष में एक माह की कमी भी हो गयी है, परन्तु संसार में किसी को भी इसकी वास्तविकता का पता नहीं है। श्री महामति जी पुकार कर कह रहे हैं कि हे धाम धनी ! श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप में आप शीघ्र पधारिये।

प्रकरण ॥५८॥ चौपाई ॥६५९॥

राग श्री

यह कीर्तन भी श्री पद्मावती पुरी धाम में ही उतरा है।

ऐसा समे जान आए बुध जी, कर कोट सूर समसेर।

सुनते सोर सब्द बानन को, होए गए सब जेर॥१॥

हिन्दू धर्म पर भयानक संकट की इस घड़ी में श्री प्राणनाथ जी ज्ञान के करोड़ों सूर्यों का स्वरूप धारण कर प्रकट हुए। उनकी वाणी रूपी धनुष से निकलने वाले ज्ञानमयी तीरों के उच्च स्वर को सुनने मात्र से ही वे अन्यायी लोग हार गये, जो धर्म की ओट में अत्याचार कर रहे थे।

भावार्थ- दिल्ली में सिद्धीक फौलाद द्वारा दी गयी यातना को सहन करने के पश्चात् उन १२ सुन्दरसाथ ने काजी शेख इस्लाम को नतमस्तक कर दिया। इसके अतिरिक्त

उस समय के सभी मौलवियों ने भी आन्तरिक रूप से यह अवश्य स्वीकार किया कि श्री प्राणनाथ जी के मारिफत ज्ञान रूपी सूर्य के समक्ष हम कहीं भी ठहरने की स्थिति में नहीं हैं।

काटे विकार सब असुरों के, उड़ायो हिरदे को अंधेर।

काढ़यो अहंकार मूल मोह मन को, भान्यो सो उलटो फेर॥२॥

मुसलमानों के हृदय में शरीयत का अन्धकार फैला हुआ था। श्री जी ने उनके अज्ञान रूपी इस विकार को दूर कर दिया तथा सबके मन में स्थित उस मोह-अहंकार को भी नष्ट कर दिया, जो सभी विकारों का मूल है। इस प्रकार उनका संसार-चक्र समाप्त हो गया अर्थात् अखण्ड मुक्ति का द्वार खुल गया।

भावार्थ- ब्रह्मज्ञान ही वह महान औषधि है, जिसके

प्राप्त होने पर मोह और अहंकार से उत्पन्न होने वाले सभी विकार (काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या आदि) नष्ट हो जाते हैं और शाश्वत आनन्द रूपी मोक्ष की प्राप्ति होती है।

वेद कतेब के जो अर्थ, ढांपे हुते सबों पास।

विष्णु संग्राम मांगे जो असुर, ताको कियो कोट प्रकास॥३॥

उस समय हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी आदि सभी वेद और कतेब (चारों वेद + दर्शन + उपनिषद् एवं तौरेत, इन्जील, जम्बूर, कुरआन आदि) का बाह्य अर्थ ही करते थे। किसी को भी आन्तरिक गुह्य अर्थों का बोध नहीं था। मुसलमान जो औरंगजेब के नेतृत्व में धर्म के नाम पर युद्ध चाहते थे, उनके हृदय में भी करोड़ों सूर्यों के प्रकाश वाले तारतम ज्ञान को स्थापित कर दिया।

भावार्थ— औरंगजेब कुरआन के बाह्य अर्थों को लेकर ही

सभी को कलमा पढ़ाना चाहता था। जब सभी धर्मग्रन्थों में छिपे हुए शाश्वत सत्य का प्रकाश हो गया, तो विरोध का मिट जाना स्वाभाविक था। श्री प्राणनाथ जी की शरण में आने वाले शेख बदल, मिहीन खाँ, नूर मुहम्मद आदि ने अपना सर्वस्व धनी पर न्योछावर कर दिया।

तब पेहेचान भई सकल, हुए सब सर्वग्यन।

नेहेचल सूर ऊग्यो निज वतनी, हुआ मन को भायो सबन॥४॥

जब श्री कुलजम स्वरूप के रूप में परमधाम के ज्ञान का अखण्ड सूर्य उग गया, तो सभी को एक सच्चिदानन्द परब्रह्म की वास्तविक पहचान हो गयी। सभी लोग अध्यात्म के सब रहस्यों को जानने लगे तथा अखण्ड मुक्ति पाने की उनकी इच्छा पूर्ण हो गयी।

बाल लीला भई बृज में, लीला किसोर वृन्दावन।

जगन्नाथ बुध जी जागनी, भई भोर लीला बुढ़ापन॥५॥

ब्रज में बाल लीला हुई तथा नित्य वृन्दावन में रास की किशोर लीला हुई। सारे ब्रह्माण्ड के स्वामी तथा जाग्रत बुद्धि के स्वरूप श्री प्राणनाथ जी द्वारा होने वाली जागनी लीला बुढ़ापे की है। इस लीला में अज्ञान रूपी रात्रि समाप्त हो गयी तथा ज्ञान का सवेरा हो गया।

भावार्थ- ब्रज में अपने मूल घर तथा सम्बन्ध का बोध नहीं था। बाल्यावस्था में ज्ञान का अभाव होता है , इसलिये उस लीला को "बाल लीला" कहा गया है। रास में सम्बन्ध का पता तो था, किन्तु घर का पता नहीं था। किशोरावस्था में अधूरा ज्ञान होता है तथा प्रेम की मस्ती होती है। इसलिये उस लीला को "किशोर लीला" के नाम से कहा जाता है। जागनी लीला में निसबत, इश्क,

तथा वाहिदत की मारिफत का भी ज्ञान है, जो ब्रज, रास, एवं परमधाम में भी नहीं था। पूर्ण ज्ञान की लीला होने से इस जागनी लीला को "बुढ़ापे की लीला" कहते हैं, क्योंकि वृद्धावस्था में ही सम्पूर्ण जीवन का अनुभव प्राप्त होता है।

राजा प्रजा बाला बूढ़ा, नर नारी ए सुमरन।

गाए सुने ताए होवहीं, लीला तीनों का दरसन॥६॥

राजा, प्रजा, बालक, वृद्ध, नर-नारी आदि कोई भी यदि तारतम ज्ञान के प्रकाश में इन तीनों लीलाओं का स्मरण, गायन, तथा श्रवण करता है, तो उसे इन तीनों लीलाओं का प्रत्यक्ष दर्शन होता है।

भावार्थ- यद्यपि संसार में श्री कृष्ण जी के करोड़ों भक्त हैं, किन्तु तारतम ज्ञान से रहित होने के कारण उन्हें

अखण्ड ब्रज तथा अखण्ड रास का कोई भी स्पष्ट ज्ञान नहीं है। वल्लभ मत के अनुयायी भी ब्रज-रास का वर्णन तो करते हैं, किन्तु उन्हें यह बोध ही नहीं है कि ये लीलायें कहाँ हो रही हैं। श्रीमुखवाणी द्वारा जब श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की पहचान हो जाती है, तो ध्यान करने पर प्रियतम की कृपा से तीनों लीलाओं (ब्रज, रास, जागनी) का वर्तमान समय में भी प्रत्यक्ष दर्शन हो सकता है। यह अगली चौपाई में भी स्पष्ट है।

सुर असुर सबों को ए पति, सब पर एकै दया।

देत दीदार सबन को सांई, जिनहूं जैसा चाहया॥७॥

श्री प्राणनाथ जी सभी (हिन्दुओं तथा मुसलमानों) के प्रियतम अक्षरातीत हैं। उनकी कृपा सब पर समान रूप से होती है। उनको जो भी जिस रूप में चाहता है, उसे

उसी रूप में दर्शन देते हैं।

भावार्थ- वि.सं. १७४०-१७५१ तक की लीला में जो भी सुन्दरसाथ अपने भावों के अनुसार श्री जी को परमधाम के श्री राजश्यामा जी, ब्रज-रास के श्री कृष्ण, अरब के मुहम्मद साहिब, अथवा सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के स्वरूप में मानता था, उसे उसी स्वरूप में दर्शन होता था।

साहेब के हुकमें ए बानी, गावत हैं महामत।

निज बुध नूर जोस को दरसन, सबमें ए पसरत॥८॥

अक्षरातीत परब्रह्म के आदेश से श्री महामति जी इस श्रीमुखवाणी (श्री कुलजम स्वरूप) का गायन (कथन) कर रहे हैं। इससे सबको यह आभास हो रहा है कि श्री महामति जी के अन्दर धनी का जोश, निज बुद्धि, तथा

तारतम ज्ञान का प्रकाश विराजमान है।

प्रकरण ॥५९॥ चौपाई ॥६६७॥

राग श्री गौड़ी

प्रकरण ६०-६३ तक के कीर्तन श्री ५ पद्मावती पुरी धाम (पन्ना) में उतरे हैं।

कुली बल देखो रे, ए जो देखन आइयां तुम।

खेल किया तुमारी खातिर, सुनियो हो सृष्ट ब्रह्म॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे ब्रह्मसृष्टि सुन्दरसाथ जी सुनिए! यह मायावी खेल आपके देखने के लिये बनाया गया है। इसमें आप देखने के लिये ही आये हैं। इसमें कलियुग की शक्ति को देखिए।

अथाह थाह नहीं ऊंचा नीचा, गेहेरा गिरदवाए मोह जल।

लोक चौदे खेलें जीव याके, याकी सूझे न याकी कल॥२॥

चारों ओर फैला हुआ यह भवसागर अथाह है, कहीं ऊँचा है तो कहीं नीचा है। बहुत अधिक गहरा भी है। चौदह लोक के प्राणी इसमें डूबने-उतराने की क्रीड़ा करते रहते हैं। किसी को इससे पार जाने का मार्ग नहीं मिल पाता है।

भावार्थ- भवसागर के जल को कहीं ऊँचा और कहीं नीचा कहने का आशय यह है कि वैकुण्ठ से लेकर स्वर्ग तक के लोकों में सतोगुण की अधिकता है तथा पृथ्वी पर रजोगुण की अधिकता है। पृथ्वी के निचले भागों (पाताल आदि सात लोकों) में तमोगुण की अधिकता है। इस प्रकार सत्व, रज, तथा तम की मात्रा के कम-अधिक होने से इसे विषम (ऊँचा-नीचा) कहा गया है। माया के बन्धन रूप सुखों की तृष्णा बहुत लुभावनी है, इसलिए इस मोहजल को बहुत गहरा कहा गया है।

सत ढांप्या पीठ देवाई पिया को, झूठ ल्याया नजर।

नेहेचल राज सोहाग धनी को, सो भुलाए दियो घर॥३॥

इस कलियुग ने सुन्दरसाथ से सत्य ज्ञान को छिपा दिया तथा झूठे संसार में फँसा दिया, जिससे सभी अपने धाम धनी से विमुख हो गये। सभी ने इस माया में आकर अपने अखण्ड घर तथा अपने प्राण प्रियतम के प्रेम के सुखों को भुला दिया है।

नेहेचल घर थें आइयां खेल देखने, सत सरूप परवान।

सो अंकूरी भूले क्यों यामें, जाए दई पिउ पेहेचान॥४॥

परम सत्य के स्वरूप ब्रह्ममुनि इस माया का खेल देखने के लिये परमधाम से आये हैं। धनी के चरणों से उनका अखण्ड सम्बन्ध है, इसलिये जिन्हें ब्रह्मवाणी से अपने प्रियतम की पहचान हो चुकी है, वे इस संसार में कभी

भी भूल नहीं सकते हैं।

भावार्थ- सत्य के दो स्वरूप होते हैं- १. सापेक्ष सत्य
२. निरपेक्ष सत्य। निरपेक्ष सत्य को किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। वेद की भाषा में इसे ही "ऋत्" कहते हैं- "ऋत् च सत्यं च" अर्थात् परम् सत्य ही सत्य का मूल होता है। इस चौपाई में अक्षरातीत की अर्धांगिनी ब्रह्मसृष्टियों को "परम सत्यं" कहकर सम्बोधित किया गया है।

बिन वाए चढ़या बगरूला, सबको देखे बिन आंखें।

खिनमें फिरवले सब लोकों, पाँऊ बिना बिन पांखें॥५॥

यह कलियुग बिना हवा का बवण्डर (भयानक आँधी) है। बिना आँखों के यह सबको देखता है। न तो इसके पैर हैं और न पंख, फिर भी एक ही क्षण में सभी लोक -

लोकान्तरों में घूम आता है।

भावार्थ- इस प्रकरण में कलियुग या दज्जाल उस "अज्ञान" को कहा गया है, जिससे निज स्वरूप की विस्मृति हो जाती है तथा माया के झूठे सुख ही वास्तविक लगते हैं। यहीं से जन्म-मरण तथा सुख-दुःख का चक्र प्रारम्भ हो जाता है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही मोहमयी (अज्ञानमयी) है। इसलिये इस अज्ञान रूपी कलियुग (राक्षस) को कहीं आने-जाने के लिये न तो पैरों की आवश्यकता है और न ही पँखों की। जीवों को अपने जाल में फँसाने हेतु देखने के लिये इसे आँखों की भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सारा ब्रह्माण्ड ही इसी का स्वरूप है। जिस प्रकार बिना हवा के ही भयानक तूफान का दृश्य उपस्थित होने की कल्पना की जाती है, उसी प्रकार शरीर न होते हुए भी यह कलियुग सबको बन्धन में

बाँधे रहता है।

कुली दज्जाल अंधेर सरूपे, त्रिगुन को पाड़े त्रास।

सूर सिरोमन साध संग्रामें, पीछे पटक किए निरास॥६॥

कलियुग रूपी यह शैतान अज्ञान का ही स्वरूप है, जिसने ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव को भी भयभीत कर रखा है। ज्ञान, भक्ति, तथा वैराग्य के क्षेत्र में अग्रगण्य शिरोमणि महात्माओं को भी इसने मायावी युद्ध में हराकर निराश कर दिया।

भावार्थ— यहाँ कलियुग से तात्पर्य उस मोहसागर से है, जिसे कोई पार नहीं कर पाता। सृष्टिकर्ता आदिनारायण भी जब इसके बन्धन में हैं, तो उनके अंश से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव का इससे भयभीत रहना स्वाभाविक ही है। महानारायण उपनिषद् में कहा गया है

कि उनके रोम-रोम में चौदह लोक सहित असंख्य ब्रह्मा,
विष्णु, तथा शिव स्थित हैं।

मोह फांस बंध दिए दुनी को, सब अंगों बस आने।

राज करे सिर सबन के, चलावत ज्यों जित जाने॥७॥

इस कलियुग ने सभी प्राणियों को मोह रूपी फाँसी के
बन्धन में डाल रखा है और सबके दिल को अपने अधीन
कर लिया है। इस प्रकार वह सभी जीवों के ऊपर शासन
करता है और जैसे चाहता है वैसे ही नचाता है।

प्रथम मूल से बुध फिराई, अहंमेव दियो अंधेर।

या बिध इंड रच्यो त्रैलोकी, मूल तें दियो मन फेर॥८॥

सृष्टि के प्रारम्भ में ही इस कलियुग रूपी अज्ञान ने बुद्धि
के चिन्तन को माया के सुखों के भोग की ओर मोड़

दिया। जीव का अहं भी अध्यात्म से विमुख होकर भौतिक शरीर पर ही केन्द्रित हो गया। स्वर्ग, पृथ्वी, तथा वैकुण्ठ वाले इस ब्रह्माण्ड की रचना ही उस स्वाप्निक मन से हुई है, जो अखण्ड धाम (अव्याकृत) से हटकर स्वयं को मोह सागर में अनुभव करने लगा है।

भावार्थ- अहंकार (मैं कौन हूँ) के अनुसार ही बुद्धि की विवेचना होती है। चित्त का चिन्तन तथा मन का मनन भी उसी पर अवलम्बित होता है। ब्रह्मज्ञान के अभाव में जब निज स्वरूप का बोध नहीं हो पाता, तो शरीर को ही सब कुछ मान लिया जाता है। ऐसी स्थिति में बुद्धि, चित्त, मन, तथा इन्द्रियों की सम्पूर्ण प्रक्रिया शरीर में ही केन्द्रित हो जाती है। जिस आदिनारायण के "एकोऽहं बहुस्याम" के संकल्प से इस सम्पूर्ण सृष्टि का अस्तित्व है, उन्हीं का प्रकटीकरण उस मोह सागर में होता है, जो

अज्ञान का स्वरूप है। ऐसी स्थिति में यह कैसे सम्भव है कि उनके ही प्रतिबिम्ब से प्रकट होने वाले चिदाभास स्वरूप जीवों तथा प्रकृति की विकृति से उत्पन्न होने वाले अन्तःकरण में माया में फँसने की प्रवृत्ति न हो।

उदयो लोभ विखे रस विख्या, सैन्या पति सैतान।

दसो दिस आग लगाई दुनियां, सुध बुध खोई सान॥९॥

यह कलियुग रूपी शैतान विषयों की सेना का सेनापति है। विषयों का रस विष से भी अधिक भयंकर होता है। इस कलियुग रूपी अज्ञान के कारण ही विषयों का रसपान करने का लोभ पैदा होता है। इसी शैतान ने दसों दिशाओं में षड् विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर यानि ईर्ष्या) की आग लगा रखी है, जिसमें सभी प्राणी अपनी सुध-बुध एवम् सुख-शान्ति खो बैठे हैं।

बाढ़ी व्याध स्वाद गुन इंद्री, मद चढ़यो मोह अंध।

माता बेहेन पुत्री गोरानी, कासों नहीं सनमंध॥१०॥

इस कलियुग के दुष्प्रभाव के कारण ही विषय भोगों में आसक्ति का रोग बढ़ता जा रहा है। रजोगुण तथा तमोगुण के वशीभूत होने से इन्द्रियों के सुखों में ही स्वाद का अनुभव हो रहा है। मोह (अज्ञान) रूपी अन्धकार की वृद्धि होने से पल-पल मद (अहंकार) की वृद्धि होती जा रही है। मनुष्य में पाप की प्रवृत्ति इतनी अधिक बढ़ गयी है कि उसे माता (विमाता), बहन, पुत्री, तथा गुरु पत्नी से भी पवित्र सम्बन्ध निभाना एक दुष्कर कार्य लग रहा है।

भावार्थ- अज्ञानता के अन्धकार में विषयों के दलदल में फँस जाने पर मनुष्य इतना अन्धा हो जाता है कि उसे सामाजिक और पारिवारिक सम्बन्धों की पवित्रता का भी

ध्यान नहीं रहता। वर्तमान समय के समाचार पत्रों में तो इस तरह की घटनायें आती ही रहती हैं। वाममार्ग के ग्रन्थों में भी इस प्रकार का उल्लेख है कि "मातृ योनिं परित्यज्य विहरेत् सर्वेषु योनिषु", किन्तु मातंगी विद्या वाला वाममार्गी तो कहता है कि "मातरमपि न त्यजेत"। भला इन नर पिशाचों को शाश्वत शान्ति कैसे मिल सकती है।

खिन सज्जन खिन दुस्मन, दिवाना दाना प्रवीन।

बिध बिध के बंध फंद डार के, सब सूर किए आधीन॥११॥

यह कलियुग किसी क्षण मनुष्य को सज्जन बना देता है, तो किसी क्षण शत्रु। इसी के प्रभाव में आकर मनुष्य कभी तो किसी के लौकिक प्रेम में फँसकर दीवाना बन जाता है, तो कभी श्रेष्ठ ज्ञानी की तरह संसार को मिथ्या कहने

लगता है। इसने अनेक प्रकार के मायावी जाल के फन्दे तैयार किये हैं, जिनमें ज्ञान, वैराग्य, तथा भक्ति के क्षेत्र के बड़े-बड़े वीर (महात्मा) भी फँस जाते हैं और इसके अधीन हो जाते हैं।

भावार्थ- सतोगुण के प्रभाव में मनुष्य जहाँ सज्जन बन जाता है, वहीं तमोगुण से ग्रसित होने पर दुर्गुणों का शिकार बन जाता है और सबसे उसकी शत्रुता हो जाती है। वास्तविक ज्ञान की अवस्था तो ध्यान-समाधि में आत्म-साक्षात्कार के पश्चात् ही प्राप्त होती है। इस चौपाई में उन वाचक ज्ञानियों की तरफ संकेत किया गया है, जो अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त करके बोलते तो बहुत हैं, किन्तु स्वयं उसके आचरण से कोसों दूर रहते हैं।

ना कछू चोर न कोई साधू, कई डिंभके धरे ध्यान।

तान मान सब विद्या व्याकरण, बहुरंगी बहु ग्यान॥१२॥

यथार्थ में न तो कोई चोर होता है और न कोई साधू होता है। यह सब त्रिगुणात्मक माया के प्रभाव से होता है। आडम्बर में फँसे हुए कई लोग ध्यान का नाटक करते हैं। संगीत की कलाओं, व्याकरण आदि सभी प्रकार की विद्याओं, तथा ज्ञान की अनेक प्रकार की शाखाओं (विद्याओं) पर भी इसने अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया है।

भावार्थ— इस चौपाई का आशय यह कदापि नहीं है कि ध्यान-साधना, संगीत, व्याकरण आदि विद्याओं में विशारद होना बुरी बात है। ये उपलब्धियाँ तो मानव जीवन की शोभा है। श्री जी के कथन का तात्पर्य यह है कि भक्तिमय संगीत तथा सत्य ज्ञान द्वारा ध्यान-साधना

परब्रह्म की प्राप्ति के साधन हैं, किन्तु प्रेम-भक्ति से रहित शुष्क ज्ञान और भौतिकवादी संगीत जीवन में शाश्वत आनन्द की प्राप्ति नहीं करा सकते। सत्व, रज, और तम से मुक्त हुए बिना परम तत्व की प्राप्ति सम्भव ही नहीं है।

वेद कतेब सास्त्र सबे मुख, जुगें लिए सब जीत।

मंत्र धात करामात माहीं, पाक उत्तम पलीत॥१३॥

वेद-शास्त्र तथा कतेब ग्रन्थों के बड़े-बड़े प्रकाण्ड विद्वानों को भी इस कलियुग ने जीत लिया है। यह पवित्र तथा उत्तम लोगों को भी मन्त्रों की सिद्धियों, चमत्कारों, धातुओं, तथा रसायनों की विशेषज्ञता प्राप्त कराकर निम्न मार्ग में ढकेल देता है।

भावार्थ- वेद का ज्ञान शाश्वत सत्य माना जाता है। सांख्य दर्शन में वेद के ज्ञान को अपौरुषेय तथा ईश्वर

कृत कहा गया है- "अपौरुषेयत्वं हि वेदानां"। इसी प्रकार का कथन वेद में भी है। सत्य स्वरूप ज्ञान पर कलियुग का अधिकार नहीं हो सकता, उसके अध्येताओं पर उसका दबदबा अवश्य चल सकता है।

जिन अंगों मिलिए पिउसों, सो ए दिए उलटाए।

फेरी दुहाई वैराट चौखूंटों, कोई सिर न सके उठाए॥१४॥

जिस अन्तःकरण (मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार) से परब्रह्म प्राप्ति का मार्ग होता है, उसी को इस कलियुग ने मायावी सुखों के उल्टे मार्ग में भटका रखा है। सारे ब्रह्माण्ड में इसका इस प्रकार से डुँका बज रहा है कि कोई भी इसके सामने सिर नहीं उठा पाता।

चौदे लोक अग्याकारी, सिर सबन के हुकम।

या छलने ऐसे उरझाए, आप भूली सुध घर खसम॥१५॥

चौदह लोक में इसी का आदेश चलता है अर्थात् चौदह लोक के सभी प्राणी मायावी सुख को ही सर्वस्व मानने के अज्ञान में भटके हुए हैं। कोई भी इसके आदेश का उल्लंघन नहीं कर पाता। इसने ब्रह्मसृष्टियों को भी अपने छल में ऐसे फँसा रखा है कि वे भी अपने निज स्वरूप को, अपने प्रियतम अक्षरातीत को, तथा परमधाम को भुलाये बैठी हैं।

केती बिध कहूं कलजुग की, अलेखे अप्रमान।

बरना बरन कर मिने व्याप्या, काहूं न किसी की पेहेचान॥१६॥

कलियुग की वास्तविकता का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। किसी भी प्रकार के प्रमाण से इसका उल्लेख नहीं हो

सकता। सभी वर्णों के लोगों में इसकी ऐसी पैठ है कि कोई भी किसी की पहचान नहीं कर पाता है।

छूटी छोले लेहेरें पड़ियां बाहेर, छूट गई मरजाद।

भाने भेख पंथ पैंडे दरसन, ढाहे तीरथ प्रासाद॥१७॥

कलियुग रूपी महासागर के उछाल की कुछ लहरें ही बाहर आयीं, जिससे धर्म की सारी मर्यादायें समाप्त हो गयी हैं। लोगों में भौतिकता की इतनी अधिक बाढ़ आ गयी है कि उनमें भिन्न-भिन्न प्रकार की वेशभूषा वाले पन्थ-सम्प्रदायों, आध्यात्मिक मान्यताओं को पुष्ट करने वाले दार्शनिक सिद्धान्तों, मन्दिरों तथा तीर्थों के प्रति थोड़ी भी आस्था नहीं रह गयी है।

ग्रास किए त्रिगुन त्रैलोकी, ऐसो मोह अंध अहंकार।

सुध न होवे काहूँ धाम धनी की, पोहोँचने न देवे पुकार॥१८॥

इस मायावी मोह और अहंकार का चारों ओर ऐसा अन्धकार फैल गया है कि इसने सत्व, रज, और तम के बन्धन में फँसे हुए चौदह लोक के सभी प्राणियों को ही अपने वश में कर (निगल) लिया है। इसका हमेशा यही प्रयास रहता है कि किसी को भी अक्षरातीत परब्रह्म की पहचान न होने पावे, इसलिये यह किसी तक ब्रह्मज्ञान की ज्योति पहुँचने ही नहीं देता।

भावार्थ- चौदह लोक में इन तीन लोकों की विशेषता है- १. पृथ्वी २. स्वर्ग ३. वैकुण्ठ। अतल, वितल, सुतल आदि पाताल के सभी लोक पृथ्वी पर ही माने जायेंगे। इसलिये त्रिलोकी से १४ लोकों का ही तात्पर्य समझना चाहिए। माया के अन्धकार को मात्र ब्रह्मज्ञान का

प्रकाश और प्रियतम का प्रेम ही दूर कर सकता है।

पोहोंचे नहीं कल बल कुली को, कोई मिने चौदे भवन।

ऐसो महाबली ताए उड़ावें, बुध जी एकै खिन॥१९॥

इस कलियुग का मुकाबला करने की शक्ति चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में किसी के भी पास नहीं है। इतने शक्तिशाली कलियुग को श्री प्राणनाथ जी ने एक क्षण में ही समाप्त कर दिया।

भावार्थ- वर्तमान समय में तो यही देखा जा रहा है कि चारों ओर कलियुग का नंगा नाच हो रहा है। इस चौपाई में कलियुग को एक ही क्षण में समाप्त कर देने का भाव यह है कि जिसके हृदय में श्रीमुखवाणी की अमृत धारा प्रवेश कर जायेगी और प्रेम का अँकुर फूट जायेगा, उसके अन्दर माया का नामोनिशान भी नहीं रहेगा।

तारतम वाणी के यह कथन इस मान्यता की पुष्टि करते हैं—

माया गयी पोताने घेर, हवे आतम तु जाग्यानी केर।

रास २/१

जब आया प्रेम सोहागी, तब मोह जल लेहेरां भागी।

परिकरमा १/५४

हक इलम जित पोहोंच्या, तित अर्स हुआ दिल हक।

चलता पूर लिए दोऊ किनारे, डर धरता बुधजी का।

मद चढ़यो करी एकल छत्री, ले बैठा सिर टीका॥२०॥

पाताल से लेकर वैकुण्ठ तक कलियुग का वर्चस्व फैला हुआ है। उसके मन में केवल श्री प्राणनाथ जी का डर है। धनी ने कलियुग को यह आदेश दे दिया था कि

ब्रह्मसृष्टियों को अपने जाल में फँसाये रखना। इसी बात का उसे अहंकार चढ़ा हुआ है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर एकछत्र राज्य कर रहा है। वह धनी के आदेश को शिरोधार्य करके ही ऐसा कर रहा है।

बुध जी धनी हुकम मांहे, फरिस्ता असराफील।

तिन कान दिए सुनने अग्या को, अब हुकम को नहीं ढील॥२१॥

श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप श्री प्राणनाथ जी के अन्दर जाग्रत बुद्धि का फरिस्ता इस्राफील (बुद्ध जी) विराजमान है। वह सतर्क होकर इस बात की प्रतीक्षा में है कि धनी की ओर से सूर फूँकने का कब आदेश मिलेगा। निश्चित ही अब आदेश मिलने में देरी नहीं होनी चाहिए।

भावार्थ— "कान देना" एक मुहावरा है जिसका तात्पर्य

है, सावधान होकर सुनना। बाइबल तथा कुरआन में सूर फूँकने का बाह्य अर्थ तुरही या बारहसिंगा (trumpet) में स्वर पूरने से लिया गया है। वस्तुतः इसका आन्तरिक आशय यह है कि जाग्रत बुद्धि (बुद्ध जी) अक्षरातीत के आदेश पर उस ब्रह्मवाणी का इतना फैलाव करे, जिससे अज्ञान रूपी राक्षस (कलियुग) का विनाश हो जाये और सभी प्राणियों को अखण्ड मुक्ति प्राप्त हो जाये। इसी को विस्तार में कुछ ऐसे कहा गया है—

एक सूरे उड़ाए के दिए, दूसरे तेरहीं में कायम किए।

यों कयामत हुई जाहेर दिन, महंमदे करी उमत रोसन॥

बड़ा कयामतनामा २४/६

पोहोंची पुकार सुनी धनी श्रवनों, कही कुली की सब गम।

कलपे जुथ जान ब्रह्मसृष्ट के, मिले नूर बुध हुकम॥२२॥

चालीस ब्रह्मसृष्टियों के माया में बिलखने की करुण आहें धनी तक पहुँची। जाग्रत बुद्धि ने धनी से कलियुग के अत्याचार को बताया। धनी ने सब कुछ सुना और उनकी कृपा से महामति जी के धाम हृदय में अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि तथा आवेश शक्ति (इल्म और हुक्म) की लीला शुरू हो गयी।

भावार्थ- धनी ब्रह्मसृष्टियों के लिये "शाह-ए-रग" से भी अधिक नजदीक है। यद्यपि उनके और धनी के बीच किसी अन्य माध्यम की आवश्यकता नहीं है, किन्तु इस मायावी जगत में परामोशी के पर्दे (अज्ञान) को दूर करने के लिये जाग्रत बुद्धि के ज्ञान की आवश्यकता है।

इस चौपाई में जाग्रत बुद्धि द्वारा ब्रह्मसृष्टियों की खेल में दुःखी अवस्था का धनी से वर्णन करने का अभिप्राय यह है कि ब्रह्मवाणी के प्रकाश में जब सुन्दरसाथ को धनी की

एवं निजघर की पहचान हो गयी, तो उन्होंने खेल खत्म करने की प्रार्थना की। यदि उन्हें वाणी का प्रकाश नहीं मिलता, तो वे भी अन्य जीवों की तरह ही माया में मस्त होतीं। इस कार्य में जाग्रत बुद्धि ही माध्यम बनी। इसलिये उसे धनी और साथ के बीच का सेतु माना गया है।

हुक्म और इल्म के मिलने का तात्पर्य है, सम्पूर्ण ब्रह्मवाणी का अवतरित हो जाना।

उड़ाए अंधेर किया मिलावा, प्रकास कियो सब अंग।

काढ़यो मोह अहंकार मूल थें, जो करता सबन सों जंग॥२३॥

श्री प्राणनाथ जी ने अज्ञानता के अन्धकार को नष्ट कर दिया तथा ब्रह्मसृष्टियों के सम्पूर्ण हृदय में ब्रह्मवाणी का प्रकाश भरकर एकत्रित किया। उनके अन्दर से उस मोह-अहंकार को जड़ से निकाल दिया, जो माया रूप

होकर सबसे युद्ध करता था।

उदयो अखंड सूर निज वतनी, भई जोत कोटान कोट।

कहे महामत रात टली सबन को, आए सब धनी की ओट॥२४॥

श्री महामति जी कहते हैं कि अब परमधाम के अखण्ड ज्ञान का सूर्य उग गया है। करोड़ों सूर्यों के प्रकाश की भाँति उस ज्ञान रूपी सूर्य का प्रकाश फैल गया है। अब अज्ञान रूपी रात्रि के रहने का प्रश्न ही नहीं है। सभी लोग अक्षरातीत श्री राज जी की शरण में आ रहे हैं।

भावार्थ- करोड़ों सूर्यों की आभा वाले ब्रह्मज्ञान के सूर्य का प्रकाश फैलने का तात्पर्य आध्यात्मिक ज्ञान के क्षेत्र से है, संसार से नहीं, क्योंकि संसार में अभी भी करोड़ों लोग ऐसे हैं जो परमात्मा का अस्तित्व स्वीकार ही नहीं करते। करोड़ों लोग अध्यात्म से जुड़कर भी अक्षरातीत

के स्थान पर अन्य की उपासना करते हैं। श्री महामति जी का आशय यह है कि अध्यात्म जगत का ऐसा कोई भी कोना नहीं है, जिसकी भ्रान्तियों का निवारण ब्रह्मवाणी से न होता हो। सम्पूर्ण संसार योगमाया के ब्रह्माण्ड में ही धनी की महिमा को स्वीकार करेगा, यहाँ नहीं।

प्रकरण ॥६०॥ चौपाई ॥६९१॥

राग श्री नट

यह प्रकरण हकी सूरत श्री प्राणनाथ जी की पहचान से सम्बन्धित है।

साहेब तेरी साहेबी भारी।

कौन उठावे तुझ बिन तेरी, सो दई मेरे सिर सारी॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरे धाम धनी! आपकी साहिबी (प्रभुता, महानता) बहुत अधिक है। उसका बोझ आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं उठा सकता , लेकिन आपने अपनी साहिबी की सारी शोभा मुझे दे रखी है।

त्रिगुन तिर्थकर अवतार, कई फरिस्ते पैगंमर।

तिन सबकी सोभा ले स्याम, आया महंमद पर॥२॥

इस संसार में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, चौबीस तीर्थकर, अवतारों, फरिश्तों, तथा पैगम्बरों की बहुत अधिक शोभा है, किन्तु इन सबकी शोभा श्री कृष्ण जी में विलीन हो जाती है। अरब में प्रकट होने वाले "मुहम्मद" श्री कृष्ण जी के ही स्वरूप हैं।

भावार्थ— श्री कृष्ण जी के अन्दर सभी अवतारों तथा तीर्थकरों की शोभा के विलीन हो जाने का तात्पर्य यह है कि यह सभी महापुरुष जीव सृष्टि तथा ईश्वरी सृष्टि के अन्तर्गत हैं, जबकि श्री कृष्ण जी के स्वरूप में अक्षर ब्रह्म की आत्मा तथा अक्षरातीत का जोश और आवेश विराजमान है। रास के समय भी यही स्वरूप रहा। अरब में स्वरूप तो यही रहा, केवल नाम बदल गया। इस सम्बन्ध में बीतक का यह कथन देखने योग्य है—

रास लीला खेल के, आए बरारब स्याम।

तिरसठ बरस तहां रहे, वायदा किया इस ठाम॥

नूर नामे में पैगंमर, एक लाख बीस हजार।

सो सिफत सब महंमद की, सो महंमद स्याम सिरदार॥३॥

"नूरनामा" ग्रन्थ में एक लाख बीस हजार पैगम्बरों का वर्णन है। इन सभी पैगम्बरों की महिमा "मुहम्मद सल्लिलाहो अलैहि वसल्लम" में ही एकाकार होती है अर्थात् मुहम्मद साहिब की महिमा सर्वोपरि है। वे सभी पैगम्बरों में प्रमुख हैं। हिन्दू परम्परा में वे ही श्री कृष्ण हैं।

सो महंमद कासिद होए के, ले आया फुरमान।

वास्ते हमारे हम में, पोहोंचाय हैं निसान॥४॥

मुहम्मद साहिब संदेशवाहक (रसूल) के रूप में कुरआन का ज्ञान लेकर अवतरित हुए। वे हमारे लिये परमधाम तथा ब्रह्मलीला से सम्बन्धित अन्य प्रसंगों की साक्षी लेकर आये।

भावार्थ- कुरआन में परमधाम की साक्षियों के अतिरिक्त व्रज, रास, तथा जागनी ब्रह्माण्ड की अनेक घटनाओं का वर्णन संकेतों में है। इसके अवतरण का प्रमुख उद्देश्य श्री प्राणनाथ जी की पहचान देना है।

रूह अल्ला किल्ली अल्लाह थे, ले उतरे चौथे आसमान।

सो हम मांहें बैठ के, खोले कुलफ कुरान॥५॥

चौथे आकाश परमधाम से परब्रह्म की आनन्द स्वरूपा श्यामा जी तारतम ज्ञान की कुञ्जी लेकर आयीं। उन्होंने मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर कुरआन के सभी

रहस्यों को खोला।

सो फुरमान आप खोल के, करी जाहेर हकीकत।

खोले वेद कतेब के गुझ, आई सबों की सरत॥६॥

श्री श्यामा जी ने कुरआन के छिपे हुए सभी रहस्यों को खोलकर यथार्थ सत्य (हकीकत) को उजागर किया। उन्होंने कतेब के अतिरिक्त वैदिक परम्परा के सभी धर्मग्रन्थों के रहस्यों को भी स्पष्ट किया। भविष्यवाणियों के अनुसार "यही वह समय है, जब सभी धर्मग्रन्थों का वास्तविक अभिप्राय स्पष्ट होना है।"

कलीम अल्ला कह्या मूसे को, फुरमाया सब कहे।

सो कलाम अल्ला की रोसनी, ताबे हादी के रहे॥७॥

मूसा पैगम्बर को कुरआन में कलीम उल्लाह कहा गया

है, जिसका अर्थ होता है, खुदा से बात करने वाला। उनके द्वारा सुने गये तौरेत का रहस्य श्री प्राणनाथ जी के पास है।

भावार्थ- मूसा पैगम्बर के अनुयायियों ने उनसे प्रार्थना की कि आप हमें खुदा के नूर का दर्शन कराइये। मूसा पैगम्बर की प्रार्थना पर खुदा ने अपने नूर की एक हल्की सी झलक कोहतूर पर्वत पर दिखायी, जिसके परिणाम स्वरूप मूसा पैगम्बर बेहोश हो गये और कोहतूर भी जल कर खाक हो गया। होश में आने पर अल्लाहतआला की आवाज उन्हें सुनायी पड़ी कि जब यह कठोर पर्वत मेरे तेज को सहन नहीं कर सका, तो तुम्हारे इन वजूदों में मेरे तेज को सहन करने की शक्ति कहाँ से हो सकती है। इसी वार्ता के कारण मूसा पैगम्बर को कलीमुल्लाह की शोभा मिली। यह प्रसंग कुरआन के पारा ९ सूरे आराफ

७ आयत १४२-१४३ में वर्णित है। मूसा पैगम्बर के द्वारा खुदा का नूर सहन न होने का कारण यह था कि उनमें परमधाम का अँकुर नहीं था। एकमात्र ब्रह्मसृष्टि ही अक्षरातीत के नूर को सहन कर सकती है। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने अपनी बाह्य आँखों से धाम धनी का दीदार किया और बातें भी की। इस सम्बन्ध में सिनगार ग्रन्थ में कहा गया है—

जो हक देखे टिकया रहे, सोई अर्स के तन।

सोई करे मूल मजकूर, सोई करे बरनन॥

सिनगार २०/११

खलील अल्ला दोस्त खुदाए का, जाकी पोहोंची दुआ हजूर।

सो भी रहत इमाम में, कलाम अल्ला का जहूर॥८॥

इब्राहिम पैगम्बर को कुरआन में खुदा का दोस्त अर्थात्

खलीलुल्लाह कहा गया है। इनके द्वारा की गयी प्रार्थना खुदा द्वारा स्वीकार की गयी। अल्लाहतआला के वचनों का प्रकाश लेकर इब्राहिम पैगम्बर भी श्री जी की छत्रछाया में हैं।

भावार्थ- कुरआन के पारा ३ सूरे आले इमरान की आयत ३१-३३ में यह वर्णन है कि इब्राहीम पैगम्बर खुदा के दोस्त थे। इब्राहीम पैगम्बर को अल्लाह की कुदरत और दोस्ती की पहचान थी, इसलिये उन्हें खलीलुल्लाह कहा गया है। इसका वर्णन पारा ३ सूरा बकर आयत २५९-२६० में है।

अली वली सेर दरगाह का, जो दरगाह बड़ी खुदाए।

अवल सें किन पाई नहीं, सो आखिर प्रगटी आए॥९॥

अली, जिनको वली अल्लाह (अल्लाह का वारिस) या

शेर-ए-दरगाह (हुक्म की शक्ति) कहा गया है, भी इमाम मुहम्मद महदी के अन्दर विराजमान हैं। खुदा की दरगाह (परमधाम) के विषय में आज तक कोई भी नहीं जानता था। उसका भी ज्ञान आखिर में (कियामत के समय) श्री प्राणनाथ जी द्वारा ही जाहिर हुआ है।

भावार्थ- अल्लाह के वारिस होने का तात्पर्य है, खुदाई न्यामतों का वारिस होना। मुहम्मद साहिब ने हज़रत अली को तरीकत की बन्दगी सिखायी थी और अपना वारिस घोषित किया था, इसी कारण उन्हें "वली अल्लाह" कहते हैं। मुहम्मद साहिब की कब्र पर होने वाले विवाद में उन्होंने जो वीरता दिखायी, उसके कारण उन्हें शेर-ए-दरगाह भी कहा जाता है। वस्तुतः यह शोभा महाराजा छत्रसाल जी की है।

नूह नबी को वारसी, आदम दर्ई पोहोंचाए।

आए ईसा नूह नबी इमाम, सो आदम सफी अल्लाह॥१०॥

आदम सफी उल्लाह ने नूह पैगम्बर को अपना वारिस बनाया। वे नबी उल्लाह के नाम से जाने गये। आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिबुज्जमां श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में ईसा रुहउल्लाह, नूह नबीउल्लाह, आदम सफी उल्लाह, आदि सातों कलमे वाले पैगम्बर आए।

द्रष्टव्य- कलमे वाले इन सातों पैगम्बरों के नाम इस प्रकार हैं- १. आदम सफी उल्लाह २. नूह नबी उल्लाह ३. इब्राहीम खलील उल्लाह ४. मूसा कलीम उल्लाह ५. ईसा रुह उल्लाह ६. मुहम्मद रसूल उल्लाह ७. अली वली उल्लाह। सफी का अर्थ होता है प्रतिकृति (छाया)। आदम को खुदा ने अपनी छाया की तरह बनाया, इसलिए उन्हें "सफी उल्लाह" कहते हैं।

असराफील ले उतरया, जाग्रत बुध नूर।

सो बैठ बजाए इमाम में, मगज मुसाफी सूर॥११॥

अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि का स्वरूप इस्राफील फरिश्ता भी आखरूल इमाम मुहम्मद महदी (श्री प्राणनाथ जी) के अन्दर विराजमान हो गया है। वह कुरआन के सभी गुझ (गुह्य) रहस्यों को उजागर कर रहा है (ज्ञान का सूर फूँक रहा है)।

जबराईल जोस धनी का, सो आया गिरो जित।

करे वकीली उमत की, कहूं पैठ न सके कुमत॥१२॥

जिबरील धनी का जोश है। वह भी महामति (महदी) के अन्दर विराजमान है। वह ब्रह्मसृष्टियों की बुरी बुद्धि या विचारों से रक्षा करता है। वह सुन्दरसाथ में बुरे विचारों को पैठने नहीं देता है।

भावार्थ- कोई भी व्यक्ति अपना बुरा नहीं चाहता। इसी प्रकार ब्रह्मसृष्टि भी आन्तरिक रूप से माया में नहीं फँसना चाहती, किन्तु जीव के संस्कार एवं उसकी (रूह की) खेल देखने की इच्छा के कारण उसे भी मायावी विकारों से थोड़ा बहुत ग्रस्त हो जाना पड़ता है।

वकालत का अर्थ मत-समर्थन या रक्षा करना होता है। माया में न डूबने की आन्तरिक इच्छा की रक्षा करना ही इस्राफील तथा जिबरील का काम है। इस्राफील ज्ञान द्वारा तथा जिबरील शक्ति द्वारा इस कार्य को सम्पादित करते हैं।

धनी का जोश दो प्रकार का है- १. इश्क का जोश २. सत् का जोश। इश्क का जोश परमधाम की वाहिदत में है। सत् का जोश ही जिबरील है, जिसका ठिकाना सत्स्वरूप है। इसी कारण इसे अक्षर ब्रह्म का फरिश्ता भी

कहते हैं।

औलिये अंबिये गोस कुतब, सब आए बीच उमत।

रुहें पैगंमर फरिस्ते, सब मिले आखिरत॥१३॥

बड़े-बड़े औलिये, अंबिये, गौस कुतुब (इन्द्रियों को वश में रखने वाले) आदि फकीर तथा पैगम्बर, आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिबुज्जमां (श्री प्राणनाथ जी) का सान्निध्य पाने के लिये इस अन्तिम घड़ी (वक्त आखिरत) में प्रकट हुए। ब्रह्मसृष्टियों तथा ईश्वरी सृष्टि से भी इनका मिलन हुआ।

भावार्थ- पुराण संहिता तथा भागवत के कथनानुसार हिमालय के कलाप ग्राम में निवास करने वाले महान योगी देवापि एवं मरु ने जो तन (श्री देवचन्द्र जी और श्री मिहिरराज का) धारण किया था, उसी पर श्री श्यामा जी

एवं श्री इन्द्रावती जी की सुरताएँ विराजमान हुईं। धनी के चरणों के इच्छुक सभी महान योगियों, तपस्वियों, फकीरों, तथा पैगम्बरों पर यही सिद्धान्त लागू होगा।

यद्यपि कतेब परम्परा में "पुनर्जन्म" का सिद्धान्त मान्य नहीं है, किन्तु यह शाश्वत सत्य है। मुहम्मद साहिब ने कुरआन-हदीसों में पुनर्जन्म का वर्णन इसलिये नहीं किया कि उनका कथन है कि जो कियामत के समय में अल्लाह द्वारा न्याय पाने की इच्छा से तन छोड़ेगा, उसका पुनर्जन्म नहीं होगा। यह बात वेद, उपनिषद्, तथा गीता के अनुकूल है कि वासना से ग्रसित होने पर ही तन धारण करना पड़ता है। जो परब्रह्म से मिलन की इच्छा में व्याकुल रहेगा, वह सूक्ष्म शरीर से रह सकता है, किन्तु उस स्थिति में न होने पर तथा किसी लौकिक वासना से ग्रसित हो जाने पर निश्चित ही स्थूल शरीर धारण करना

पड़ेगा। इसे ही पुनर्जन्म कहते हैं।

आत्मा स्वयं गर्भ में नहीं जाती। वह जीव के ऊपर ही विराजमान होकर इस खेल को देखती है। ब्रज, रास, और जागनी लीला में यही स्थिति है। शाश्वत सत्य का नियम सब पर समान रूप से लागू होता है। पूर्वकाल में जिन महान ऋषि, मुनियों, योगी-यतियों, पीरों, फकीरों, तथा पैगम्बरों आदि ने श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप श्री प्राणनाथ जी का सान्निध्य पाना चाहा है, वे सुन्दरसाथ के समूह में शामिल होंगे। उनमें से किसी के ऊपर ब्रह्मसृष्टि की सुरता वास करेगी, तो किसी के ऊपर ईश्वरीसृष्टि की, तो कोई केवल जीव रूप में ही धनी के चरणों का सुख प्राप्त करेगा। यह सिद्धान्त श्रीमुखवाणी की इन चौपाइयों से सिद्ध होता है—

जोगारंभ कर देह रखी, नवनाथ जाए बसे वन।

सिद्ध चौरासी और कई जोगी, सो भी कारन या दिन॥

किरंतन ५५/१७

इमाम जाफर सादिक, उनों ने मांग्या हक पे।

मुझे उठाइयो आखिरत, मेंहेदी के यारो में॥

मूसा इबराहिम इस्माईल, जिकरिया एहिया सलेमान।

दाऊदें मांग्या मेंहेदी जमाना, उस बखत उठाइयो सुभान॥

सिनगार १/३५,३६

इन चौपाइयों में "उठाने" का तात्पर्य तन धारण करने से ही है, क्योंकि कब्र में सोने का तात्पर्य है सूक्ष्म शरीर में रहना या अज्ञान में भटकना। महदी के यारों में उठाने का तात्पर्य ही है – शरीर धारण करना। कुरआन में "पुनर्जन्म" का स्पष्ट विवरण है, किन्तु इसे तारतम ज्ञान की दृष्टि से देखने पर ही समझा जा सकता है। कुरआन

(२-२९-१९) में कहा गया है कि "क्या इन लोगों ने देखा नहीं कि अल्लाह पहली बार कैसे पैदा करता है और फिर उसकी पुनरावृत्ति करता है। वह अल्लाह पहली बार पैदा करता है। फिर बार-बार पैदा करता है।" कुरआन के इन उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि पुनर्जन्म ध्रुव सत्य है।

अक्षरातीत परब्रह्म सर्वशक्तिमान हैं। उन्हें किसी भी कार्य के लिये किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती है। कीर्तन ६१/८ में इमाम के अन्दर इब्राहीम पैगम्बर के विद्यमान होने की जो बात कही गयी है, वह श्री महामति जी की गरिमा को दर्शाने के सम्बन्ध में है। अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी की छत्रछाया में ही सभी पैगम्बरों और शक्तियों का वास है।

बनी असराईल जिकरिया, एहिया युसफ इस्माईल।

बखत बदल्या दाऊद आए, हुए जाहेर नूर जमाल॥१४॥

आखरूल इमाम मुहम्मद महदी के इस स्वरूप में इब्राहीम के पुत्र इस्माईल, जिकरिया, एहिया, युसुफ, इस्माईल, तथा दाऊद भी विराजमान हुए। इस प्रकार श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में अक्षरातीत जाहिर हुए।

इसहाक एलिया इद्रीस, आए बोहोना सलेमान।

मुलक हुआ नबियन का, मार दिया सैतान॥१५॥

श्री जी की छत्रछाया में इस्हाक, एलिया, इद्रीस, बोहोना, तथा सुलेमान भी आए। सभी पैगम्बरों के आ जाने से भारतवर्ष नबियों (पैगम्बरों) का देश बन गया। इससे कलियुग (अज्ञान) की शक्ति का विनाश हो गया।

कई किताबें कई कलमें, कई जो नामें और।

जो कोई कहावे बुजरक, सब आए मिले इन ठौर॥१६॥

अध्यात्म जगत में अब तक के वे महापुरुष जिन्होंने कई धर्मग्रन्थों, अनमोल वचनों, तथा अनेक पुस्तकों की रचना की है, उन्होंने भी श्री जी की शान्तिदायी छाँव के नीचे आकर विश्राम किया।

दई बड़ी बड़ाई आपसी, दियो सो अपनों नाम।

करनी अपनी दे थापी, दे साहेदी अल्ला कलाम॥१७॥

धनी ने मुझे अपने समान ही शोभा दी। मुझे अपना नाम भी दे दिया। सबका न्याय करके अखण्ड मुक्ति देने का काम भी उन्होंने मुझे सौंप दिया तथा इसकी साक्षी भी कुरआन से दिला दी।

भावार्थ— कुरआन में यह वर्णित है कि कियात्म के

समय अल्लाह तआला ही (मुहम्मद आखरुल इमाम महदी) के रूप में ही सबका न्याय करेंगे तथा सभी प्राणियों को बहिश्तों में अखण्ड मुक्ति देंगे। यह सारी शोभा श्री महामति जी को मिली। कुरआन के पारा एक सूरा तुल बकर में भी एहिया के प्रसंग से यह बात कही गयी है।

मोहे अपनों सब दियो, रही न कोई सक।

सही नाम दियो मोहोर अपनी, कर रोसन थापी हक॥१८॥

धनी ने मुझे अपनी सारी न्यामते (इश्क, इल्म, जोश, हुक्म आदि) अर्थात् सब कुछ दे दिया। इस सम्बन्ध में किसी को भी किसी प्रकार का कोई संशय नहीं रह गया। मेरे प्रियतम अक्षरातीत ने मुझे अपना सही नाम तथा मोहर दे दी, और सबके बीच में पूर्णब्रह्म अक्षरातीत के

रूप में जाहिर कर दिया।

भावार्थ- यह जिज्ञासा होती है कि अक्षरातीत का सही नाम क्या है, जो महामति जी को मिला?

यह कथन पूर्णतया हास्यास्पद है कि परमधाम में अक्षरातीत का नाम मात्र श्री कृष्ण ही है और श्री राज, प्राणनाथ, तथा वालाजी इत्यादि नाम सम्बन्ध, शोभा, और उपाधि से जुड़े हुए हैं।

सम्पूर्ण बीतक में कहीं भी ऐसा वर्णन नहीं आता कि कहीं भी सुन्दरसाथ ने श्री जी को श्री कृष्ण जी कहा हो, जबकि २२६ बार राज, २२ बार हक, तथा ४ बार अक्षरातीत कहा है। शब्दातीत परमधाम में वाणी के सिद्धान्तों की अवहेलना (इन्कार) करके किसी शब्द विशेष को थोपना उचित नहीं है। अक्षरातीत द्वारा ब्रज-रास में धारण किये गये तन का नाम अवश्य श्री कृष्ण है,

किन्तु वह भी तो आकर्षणशील होने के कारण शोभा की परिधि में बँधा है। बिना गुण के तो कोई भी नाम निरर्थक शब्द की कोटि में ही आयेगा। शब्दातीत परमधाम की भाषा में नाम भावात्मक अभिव्यक्ति के रूप में ही प्रयुक्त होगा। लौकिक तनों के नाम (श्री कृष्ण, देवचन्द्र, तथा मिहिरराज) से उसका कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

खुदा काजी होय के, कजा करसी सबन।

सो हिसाब जरे जरे को, लियो चौदे भवन॥१९॥

कुरआन में यह वर्णन है कि स्वयं अक्षरातीत कियामत के समय में न्यायाधीश बनकर सबका न्याय करेंगे। इसको सत्य सिद्ध करने के लिये धाम धनी ने मेरे स्वरूप में चौदह लोक के सभी प्राणियों का हिसाब लिया और सच्चे न्याय की लीला की।

त्रैलोकी तिमर नसाइयो, कर रोसन अति जहूर।

चौदे लोक चारों तरफों, बरस्या खुदा का नूर॥२०॥

अक्षरातीत की ब्रह्मवाणी का प्रकाश पृथ्वी, स्वर्ग, तथा वैकुण्ठ सहित चौदह लोक में चारों ओर इस प्रकार फैल गया कि अज्ञानता का अन्धकार पूर्ण रूप से नष्ट हो गया।

भावार्थ— इस प्रकरण की चौपाई १९-२३ तक का वर्णन भूतकाल में इसलिये किया गया है कि ये सारी घटनायें मूल स्वरूप के दिल में आ चुकी हैं, जो अवश्य ही होनी हैं। ये सारी बातें काव्य की अलंकृत भाषा में उसी प्रकार कही गयी हैं, जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने मन में ली गयी बात को अति आत्मविश्वास के साथ कहता है कि यह सारा कार्य मैंने कर लिया है। वर्तमान समय में धर्म के नाम पर फैले हुए आडम्बरों के कारण जब आध्यात्मिक क्षेत्र की दुर्दशा हो रही है, तो यह कैसे

कहा जा सकता है कि चौदह लोक की अज्ञानता का अन्धकार नष्ट हो गया है। यह सारी लीला तो योगमाया के ब्रह्माण्ड में घटित होनी है, इसलिये आगे की चौपाइयों का अर्थ भविष्यत् काल में किया जायेगा।

भई सोभा संसार में, अति बड़ी खूबी अपार।

दुनियां उठाई पाक कर, ना जरा रह्या विकार॥२१॥

अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी की महिमा अनन्त है। संसार में उनकी बहुत अधिक शोभा होगी। वे संसार के सभी प्राणियों को इतना अधिक पवित्र कर देंगे कि उनके अन्दर किसी भी प्रकार का विकार नहीं रहेगा। इसके पश्चात् वे सबको अखण्ड कर देंगे।

भावार्थ— वर्तमान समय में पाप की मात्रा इतनी अधिक हो चुकी है कि उसका वर्णन सुनते ही मन काँप उठता

है। ऐसी स्थिति में केवल योगमाया के ब्रह्माण्ड में ही सबके निर्मल होने की बात की जा सकती है।

पेहेले प्रले करके, उठाए लिए ततखिन।

मेरे हाथ कराए के, दई सोभा चौदे भवन॥२२॥

धाम धनी के आदेश से चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड का प्रलय कर दिया जायेगा तथा उसी क्षण योगमाया में अखण्ड कर दिया जायेगा। इस सम्पूर्ण कार्य को करने की शोभा मुझे (महामति जी को) ही मिलेगी।

काटे करम सबन के, काल मार किया दुख दूर।

हिरदे मांहेँ नूर के, लिए नजर तले हजूर॥२३॥

प्रियतम अक्षरातीत ने सभी जीवों के कर्मों के बन्धन समाप्त कर दिये, जिससे जन्म-जन्मान्तरों से सिर पर

मण्डराने वाले काल का भय समाप्त हो गया। अपनी कृपा की छाँव तले उन्होंने सभी को अक्षर ब्रह्म के हृदय (योगमाया के ब्रह्माण्ड) में अखण्ड कर दिया। इस प्रकार सबका दुःख समाप्त हो गया।

रोसनी पार के पार की, दर्ई साहेब नाम धराए।

भई दुनियां साफ मुसाफ से, मुझसे कजा कराए॥२४॥

मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत ने मुझे "श्री जी साहिब जी" नाम दिया और मेरे धाम हृदय में बैठकर हृद-बेहृद से परे परमधाम की ब्रह्मवाणी का अवतरण किया। इसी श्रीमुखवाणी से एक परब्रह्म की पहचान करके सभी जीव निर्मल होंगे। धनी ने सबका न्याय कराकर मुझसे ही अखण्ड मुक्ति दिलायी।

नूर अछर की नजरों, कई कोट ऐसे इंड।

त्रिगुन त्रैलोकी पल में, कई उपज फना ब्रह्मांड॥२५॥

अक्षर ब्रह्म की इच्छा मात्र से चौदह लोक जैसे करोड़ों त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्ड पल भर में उत्पन्न होते हैं तथा लय हो जाते हैं।

भावार्थ- मन में यह जिज्ञासा होती है कि जब अक्षर ब्रह्म का मन (अव्याकृत) स्वप्न में मोहसागर में प्रतिबिम्बित होकर आदिनारायण का स्वरूप बनता है तो सृष्टि का सृजन होता है, किन्तु इस चौपाई में अक्षर ब्रह्म की दृष्टि में ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति कही गयी है। इस प्रकार का विरोधाभास क्यों?

जाग्रत अवस्था में बनी हुई सृष्टि लय तो नहीं हो सकती। जिस अक्षर ब्रह्म की नजरों में सृष्टि बनने की बात कही गयी है, वह अक्षर धाम में विराजमान अक्षर

ब्रह्म का मूल स्वरूप है। उस अक्षर धाम में वे मात्र संकल्प करते हैं। उनके मन का स्वरूप अव्याकृत ही स्वप्न में प्रतिबिम्बित होता है। अव्याकृत के स्थूल में स्थित प्रणव ही प्रतिबिम्बित होकर आदिनारायण के रूप में हो जाता है तथा उनके अन्दर अव्याकृत के महाकारण में स्थित सुमंगला-पुरुष (सबलिक के स्थूल) की चेतना कार्य करती है। इस प्रकार सृष्टि-रचना में सबलिक और अव्याकृत का ही स्वप्न से सम्बन्ध रहता है, मूल अक्षर ब्रह्म का नहीं। इसी कारण उनकी नजरों में असंख्य ब्रह्माण्डों के बनने और लय की बात की गयी है।

सो नूर सरूप आवें नित, नूर तजल्ला के दीदार।

आस पुराई इन की, मेरे ऐसे इन आकार॥२६॥

ऐसे अक्षर ब्रह्म प्रतिदिन हमारे प्राण प्रियतम श्री राज जी

के दीदार के लिये आते हैं। उनकी इच्छा की पूर्ति भी मेरे इस तन में धनी ने कर दी है।

भावार्थ- अक्षर ब्रह्म चाँदनी चौक में खड़े होकर अक्षरातीत के मुखारविन्द की थोड़ी सी झलक ही पाते रहे हैं। उन्होंने युगल स्वरूप को नख-शिख तक पूर्ण रूप से कभी नहीं देखा था। अरब में जब उनकी सुरता आयी तो मेयराज में उन्हें दर्शन अवश्य हुआ, लेकिन श्यामा जी के श्रृंगार को बाद में उनकी सुरता भूल गयी, क्योंकि फरामोशी के ब्रह्माण्ड में वापस आने पर उसे याद रखना सम्भव ही नहीं था। जिबरील फरिश्ते को इसी कारण बार-बार सन्देश देना पड़ता था, किन्तु महामति जी के धाम हृदय में युगल स्वरूप का जी भरकर नख से शिख तक दीदार करने की जो अक्षर ब्रह्म की इच्छा थी, वह पूर्ण हो गयी।

ऐसी बड़ाई कई सिर मेरे, दे दे लई जो दाब।

सब दुनियां के दिल में आनी, दे साहेदी सब किताब॥२७॥

इस प्रकार धनी ने मुझे अनेक तरह की शोभा देकर अपनी मेहर के बोझ से दबा रखा है। उन्होंने सभी ग्रन्थों से साक्षियाँ दिलाकर सारे संसार के लोगों के मन में मेरे प्रति अक्षरातीत का भाव पैदा कर रखा है।

प्रकरण ॥६१॥ चौपाई ॥७१८॥

राग श्री

इस प्रकरण में इश्क की महत्ता दर्शायी गयी है।

मांगत हों मेरे दुलहा, मन कर करम वचन।

ए जिन तुम खाली करो, मैं अर्ज करुं दुलहिन॥१॥

श्री महामति जी कहती हैं कि हे मेरे प्राण प्रियतम! इस संसार में आपसे मैं अपने मन, वाणी, एवं कर्म से एक वस्तु माँगती हूँ। मेरी यही प्रार्थना है कि मेरी इस माँग को आप अवश्य ही पूर्ण कीजिए।

मेरे धनी तुमारी साहेबी, तुम अपनी राखो आप।

इस्क दीजे मोहे अपनों, मैं तासों करुं मिलाप॥२॥

हे धनी! आपने इस संसार में मुझे जो अक्षरातीत की

शोभा दे रखी है, इसे अपने ही पास रखिए। मुझे इसकी जरा भी आवश्यकता नहीं है। मुझे तो आप केवल अपना इश्क ही दीजिए जिससे मैं पल-पल आपका दीदार करती रहूँ।

भावार्थ- श्री इन्द्रावती जी का धनी से मिलाप (दीदार) तो हब्शे में हो ही चुका है। यहाँ मिलाप का मूल भाव इश्क में डूबकर पल-पल दीदार करने से है।

न चाहों मैं बुजरकी, न चाहों खिताब खुदाए।

इस्क दीजे मोहे अपना, मोहे याहीसों मुद्दाए॥३॥

मैं इस झूठे संसार में किसी भी प्रकार की बड़ाई नहीं चाहती। यहाँ तक कि अक्षरातीत कहलाने (खुदा का खिताब पाने) की भी मुझे जरा भी इच्छा नहीं है। मुझे तो केवल आपका इश्क चाहिए। इश्क ही मेरा मूल मुद्दा

(लक्ष्य) है।

इलम चातुरी खूबी अंग की, मोहे एही पट लिख्या अंकूर।

एही न देवे देखने, मेरे दुलहे के मुख का नूर॥४॥

ज्ञान के क्षेत्र में चतुराई हो जाना तो अंग (दिल) की विशेषता है। मेरे भाग्य में भी इसी चतुराई का पर्दा है। यह चतुराई ही मुझे अपने प्रियतम के मुख की शोभा का दीदार नहीं करने देती।

भावार्थ- इस प्रकरण की चौपाई ४, ५, और ६ में श्री महामति जी ने स्वयं के ऊपर कहकर सुन्दरसाथ को सिखापन दी है। श्री महामति जी वही कहते हैं जो अक्षरातीत उनसे कहलवाते हैं। उनके पास ज्ञान की चतुराई जरा भी नहीं है। यह कथन दूसरे सुन्दरसाथ को सिखापन के लिये है।

"अंग" का तात्पर्य दिल (हृदय) से है। बुद्धि हृदय का अंग है। बुद्धि के बल से वास्तविक सत्य को खींच-तानकर प्रस्तुत करना ही इल्म की चतुराई है। सुन्दरसाथ को इस विकृति से बचाने के लिये ही श्री जी ने ऐसा कहा है।

एही अंकूर साथ कारने, करत मिलाप अंतराए।

न तो एकै आह इन पिया की, देवे सब उड़ाए॥५॥

यह ज्ञान की चतुराई मुझे सुन्दरसाथ को जगाने के लिये ही मिली है। इसके कारण ही धनी से मिलन नहीं हो पा रहा है अन्यथा प्रियतम के विरह की एक ही आह शरीर और संसार से मोह का बन्धन हटा देती है।

भावार्थ- धनी तो महामति जी के धाम हृदय में विराजमान हैं ही। यह कथन शुष्क हृदय वाले उन वाचक

ज्ञानियों के लिये है, जो केवल शब्द ज्ञान में ही उलझकर प्रेम से दूर हो गये होते हैं।

एही खूबी मेरे अंग को, देत नाहीं दरद।

एही हांसी बुजरकी, करत इस्क को रद॥६॥

यह बौद्धिक चतुराई ही मेरे दिल में प्रियतम का दर्द पैदा नहीं होने देती। बौद्धिक प्रवीणता से जो श्रेष्ठता (बुजरकी) मिलती है, वह धाम में हँसी का कारण बनेगी और इसी कारण दिल में इश्क भी पैदा नहीं होता।

इलम आतम संग बुध के, ए जो आवत जुबांए।

फेर श्रवना देवें आतम को, एही परदा नाम खुदाए॥७॥

बुद्धि के संयोग से आत्मा में जो ज्ञान ग्रहण किया जाता है, वह सर्वप्रथम वाणी से कहा जाता है और कानों द्वारा

सुना जाता है। यदि चिन्तन की प्रक्रिया से उस ज्ञान को आचरण में न लाया जाये, तो मात्र कहने-सुनने का ही विषय होने से वह अहंकार के रूप में अपने और धनी के बीच पर्दा बन जाता है।

द्रष्टव्य- यहाँ "आत्मा" शब्द से प्रसंगानुसार आत्मा एवं जीव दोनों का भाव लिया जा सकता है। जीव के ऊपर ही विराजमान होकर आत्मा खेल को देखती है, इसलिये यहाँ आत्मा को सम्बोधित किया गया है।

ना तो क्यों न उड़े इन आत्मा, विचार के एह वचन।

इस्क जरे आत्म को, इत हो जाए सब अग्नि॥८॥

किन्तु यदि आत्मा ज्ञान के अनमोल वचनों पर विचार करे, तो वह शरीर और संसार की नश्वरता का बोध करके स्वयं को धनी के प्रेम में न्योछावर कर देगी। यदि

आत्मा में थोड़ा सा भी धनी का इश्क आ जाये, तो उसके लिये सारा संसार अग्नि की लपटों के समान कष्टकारी प्रतीत होने लगेगा।

एही बुजरकी साथ जी, भया गले में तौक।

धनी को न देवे देखने, एही खूबी इन लोक॥९॥

हे सुन्दरसाथ जी! इस संसार की यही विशेषता है कि यहाँ पर अपने को बड़ा मानने (बुजरकी) की प्रवृत्ति है। यह गले में बँधे हुए फन्दे के समान है, जो भवसागर में भटकाता रहता है और धनी का दीदार नहीं होने देता।

भावार्थ— जब तक मन में ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, रूप, यौवन, धन, तथा प्रतिष्ठा आदि में स्वयं को दूसरों से बड़ा मानने एवं संसार से सम्मान की आकांक्षा की प्रवृत्ति है, तब तक प्रियतम अक्षरातीत की वास्तविक प्राप्ति नहीं

हो सकती। इसलिये इन क्षेत्रों से सम्बन्धित किसी भी प्रकार की बुजरकी को गले का फन्दा माना गया है।

साथ मोको सुख चाहें, जान धाम की प्रीत।

मैं परबोधों जान वतनी, मोहे बंधन भयो इन रीत॥१०॥

सुन्दरसाथ मेरे धाम हृदय में अक्षरातीत के युगल स्वरूप की बैठक मानते हैं, इसलिये परमधाम के प्रेम की भावना से वे सेवा और सम्मान द्वारा मुझे सुखी देखना चाहते हैं। मैं भी सोचती हूँ कि वे परमधाम के सुन्दरसाथ हैं। अतः उनको जाग्रत करने के लिये मैं ज्ञान का अमृत देना चाहती हूँ। इस प्रकार मेरे लिये जागनी का कार्य भी एक तरह का बन्धन ही हो गया है।

वे सेवा करें बहु बिध, फेर फेर देवें बड़ाई।

हेत करें जान के साहेब, मोहे एही होत अंतराई॥११॥

मेरे प्रियतम! वे मुझे अक्षरातीत का ही स्वरूप मानते हैं और मुझसे बहुत अधिक प्रेम करते हैं। अनेक प्रकार से मेरी सेवा भी करते हैं तथा बारम्बार अत्यधिक सम्मान देते हैं। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि मेरे हृदय में प्रेम भावना कम हो जाती है तथा मेरे और आपके बीच कुछ पर्दा सा बन जाता है (अभेदता में हास होने लगता है)।

भावार्थ— इस चौपाई में प्रतिष्ठा और सम्मान को धनी के प्रेम में बाधक मानकर सब सुन्दरसाथ को इसके प्रति आसक्ति न रखने के लिये कहा गया है। दूसरों की प्रतिष्ठा से ईर्ष्या की अग्नि का प्रज्वलित होना स्वाभाविक है। भला ईर्ष्या भरे दिल में प्रियतम कहाँ से आ सकते हैं।

मैं भी हेत करत हों इनसों, जान के वतन सगाई।

मोहे प्यारा साथ मेरे धनी का, एही पट आड़े आई॥१२॥

मैं भी परमधाम का सम्बन्ध जानकर इनसे बहुत अधिक लाड-प्यार करती हूँ। मेरे प्रियतम का अंगरूप सुन्दरसाथ मुझे बहुत प्यारा है, किन्तु इससे मेरे और धनी के एकनिष्ठ प्रेम में पर्दा सा बन जाता है।

भावार्थ- सुन्दरसाथ को प्रेम देना बहुत अच्छा है, किन्तु प्रियतम अक्षरातीत के प्रति प्रेम पहली प्राथमिकता होनी चाहिये। अक्षरातीत से प्रेम किये बिना अध्यात्म की सर्वोच्च मन्जिल तक नहीं पहुँचा जा सकता।

जिन दयाएं परदा उड़ाइया, मैं फेर फेर मांगों सो मेहेर।

इस्क दीजे मोहे अपना, जासों लगे बुजरकी जेहेर॥१३॥

जिस प्रकार आपने अपनी मेहर भरी दया से मेरे

फरामोशी के पर्दे को हटाया है, मैं आपसे उसी मेहर को बार-बार माँगती हूँ। आप मुझे अपना इश्क दीजिए, जिससे मुझे इस संसार की बुजरकी जहर के समान लगने लगे।

मोहे सेवा प्यारी पिउ की, साहेब हो बैठो तुम।

अति सुख पाऊं इनमें, करों बंदगी खसम॥१४॥

हे धनी! मुझे आपकी सेवा बहुत प्यारी है। मेरी यही इच्छा है कि आप मेरे प्राणवल्लभ के रूप मेरे हृदय – सिंहासन पर विराजमान होइए, ताकि मैं आपको अपनी इश्क-बन्दगी (प्रेम-भक्ति) से रिझा सकूँ। इसी में मुझे बहुत अधिक आनन्द प्राप्त होगा।

भावार्थ- अक्षरातीत के प्रेम-आनन्द के सामने इस झूठे संसार की सारी बुजरकी (महानता, बड़प्पन) विष के

समान है, किन्तु यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि कोई विरला ही इसे छोड़ने के लिये राजी होता है। इस चौपाई में यह स्पष्ट रूप से बता दिया गया है कि हमें मात्र धनी के प्रेम की ही आकांक्षा करनी चाहिए।

बोझ अपनों निज वतन को, सो सब मेरे सिर दियो।

नाम सिनगार सोभा सारी, मैं भेख तुमारो लियो॥१५॥

हे धनी! परमधाम की सभी ब्रह्मसृष्टियों की जागनी का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व आपने मुझे सौंप दिया है। आपने अपना नाम, अपना शृंगार, तथा अपनी सारी शोभा मुझे सौंप दी है। इस प्रकार मैं इस संसार में अक्षरातीत के स्वरूप में जाहिर हो गयी हूँ।

भावार्थ— बीतक में सर्वत्र ही श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान धनी को श्री राज, वालाजी, प्राणनाथ

आदि के सम्बोधन से वर्णित किया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि परमधाम में श्री राज जी ही हैं। ब्रज-रास के नाम को हठपूर्वक परमधाम में थोपना तथा श्री जी को सन्तों और आचार्यों की पंक्ति में खड़ा करना यही दर्शाता है कि ब्रह्मवाणी के कथनों का उन लोगों के लिये कोई भी महत्व नहीं है।

अल्ला आसिक मासूक महंमद, इस्क दीजे हम।

हम आसिक नाम धराए के, मासूक करे हैं तुम॥१६॥

मेरे प्राणजीवन! आप आशिक हैं तथा श्यामा जी माशूक हैं। वाहिदत के सिद्धान्त से हम सभी अँगनायें भी आपकी माशूक हैं। हमारी एकमात्र यही इच्छा है कि आप हमें अपना इश्क दीजिए, ताकि हम आपके आशिक बन जायें और आपको माशूक के रूप में मानकर जी भरकर रिझा

सकें।

भावार्थ- इस चौपाई में "माशूक" का सम्बोधन श्यामा जी सहित सभी सुन्दरसाथ के लिये है, मात्र मुहम्मद (हकी सूरत) के लिये नहीं, क्योंकि तीसरे चरण में प्रयुक्त "हम" शब्द बहुवचन में माना जायेगा।

तुम दुलहा मैं दुलहिनी, और न जानूं बात।

इस्क सों सेवा करूं, सब अंगों साख्यात॥१७॥

मैं तो बस इतनी ही बात जानती हूँ कि आप मेरे प्राण-प्रियतम हैं और मैं आपकी अर्धांगिनी हूँ। मेरी केवल इतनी इच्छा है कि मैं अपने सभी अंगों में लबालब इश्क भरकर आपकी सेवा करूँ।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "सब अंगों साख्यात्" का तात्पर्य यह है कि मेरे शरीर के नख

से शिख तक रोम-रोम में इतना प्रेम हो जाये कि शरीर इश्क का मूर्तिमान स्वरूप ही प्रतीत होने लगे। यद्यपि "अंग" से हृदय (मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार) का भाव लिया जाता है, किन्तु यहाँ प्रसंग श्रीमुखवाणी के इस कथन से है- "रोम रोम में रमि रहया, पिउ आसिक के अंग।"

"साक्षात्" कहने का भाव ही यही है कि पूरा शरीर ही प्रेम का प्रत्यक्ष स्वरूप नजर आने लगे।

अब तो उमत मिली खासी, और उमत दूसरी।

तीसरी भी कायम हुई, अब काहे को ढील करी॥१८॥

ब्रह्मवाणी के प्रकाश में ब्रह्मसृष्टि तथा ईश्वरी सृष्टि आपके चरणों में आ चुकी हैं। जीव सृष्टि के लिये भी अब अखण्ड मुक्ति का द्वार खुल गया है। ऐसी स्थिति में खेल

को खत्म करने में देरी क्यों कर रहे हैं?

भावार्थ- जिस समय यह कीर्तन उतरा था, उस समय न तो छठे दिन की लीला शुरू हुई थी और न ही ३६००० सखियों की जागनी पूर्ण हुई थी। इस चौपाई का सम्पूर्ण कथन प्रेम की अत्यधिक भावुकता के कारण कहा गया है। १९वीं चौपाई में भी यही स्थिति है।

सकल काम भए पूरन, रही ना किसी की सक।

महामत चाहे पिउ वतन, आए मिलूं ले इस्क॥१९॥

अब तो सभी काम पूरे हो ही गये हैं। ब्रह्मवाणी के अवतरित हो जाने से किसी भी सुन्दरसाथ के मन में आपके तथा परमधाम के प्रति किसी भी प्रकार का कोई संशय नहीं रह गया है। अब मेरी केवल यही इच्छा है कि मैं आपका इश्क लेकर परमधाम में (अपने मूल तन में)

आ जाऊँ और आपके नूरी स्वरूप का दीदार करूँ।

प्रेम दरद इस्क तुमारा, मैं फेर फेर मांगूँ फेर।

प्यारें मिलूँ प्यारे पिउसों, प्यारी महामत कहे बेर बेर॥२०॥

अत्यधिक भावुक अवस्था में अक्षरातीत की प्यारी अर्धांगिनी महामति जी बार-बार कहती हैं कि हे मेरे प्यारे धनी! आपसे मैं केवल विरह का दर्द और इश्क (प्रेम) ही माँगती हूँ। आप इसे मुझे दीजिए, ताकि मैं आपसे मिलन (प्रेममयी दीदार) कर सकूँ।

प्रकरण ॥६२॥ चौपाई ॥७३८॥

राग श्री

जिन सुध सेवा की नहीं, ना कछू समझे बात।

सो काहे को गिनावे आप साथ में, जिन सुध ना सुन साख्यात॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि जो सेवा कार्य से कोसों दूर हैं तथा ज्ञान की किसी बात को सुनना भी नहीं चाहते, उन्हें न तो इस संसार की वास्तविकता का और न ही अखण्ड ब्रह्म का बोध हो पाता है। ऐसे लोगों को किसी भी स्थिति में सुन्दरसाथ नहीं माना जा सकता।

भावार्थ- सेवा, धर्म, और ज्ञान-ग्रहण की प्रवृत्ति से दूर रहकर निठल्लेपन की चादर ओढ़ना अध्यात्म जगत को कभी भी स्वीकार्य नहीं है। इस प्रकरण में सुन्दरसाथ में आ जाने वाली विकृतियों से दूर रहने का सिखापन है।

कमर बांधे देखा देखी, जाने हम भी लगे तिन लार।

ले कबीला कांध पर, हंसते चले नर नार॥२॥

इन आलसी लोगों ने सुन्दरसाथ की देखा-देखी अपने घर-द्वार का त्याग कर दिया है तथा हँसते हुए इस भावना से चल रहे हैं कि हम तो ब्रह्ममुनियों के मार्ग पर चल रहे हैं। ये लोग मोह रूपी कन्धों पर अपने परिवार का बोझ ढो रहे हैं।

भावार्थ- श्री जी के साथ पन्ना जी तक पहुँचने वाले सुन्दरसाथ में ऐसे भी लोगों की संख्या थी, जो वैराग्य से रहित थे। उनका चित्त परिवार की आसक्ति में बँधा हुआ था, किन्तु अपने को किसी भी ब्रह्ममुनि से कम कदापि नहीं समझते थे।

ए लोक राह न पावहीं, क्यों ए न सुनें पुकार।

ए चले चींटी हार ज्यों, बांधे ऊंट कतार॥३॥

संसार के ये लोग किसी प्रकार भी ब्रह्मवाणी की पुकार सुनने में रुचि नहीं दिखाते। इसका परिणाम यह होता है कि उन्हें वास्तविक सत्य की राह नहीं मिल पाती। जिस प्रकार नकेल से बन्धे हुए ऊँट पंक्तिबद्ध चलने के लिये मजबूर होते हैं तथा चींटियाँ भी मस्ती में पंक्तिबद्ध चला करती हैं, उसी प्रकार अज्ञानता की नकेल से बन्धे हुए ये लोग रूढ़िवादी मार्ग पर चलने के लिये विवश होते हैं।

इन लोकों की मैं क्या कहूं, जो जाए पड़े मुख काल।

जो साथ केहेलाए सामिल भए, सो भी कहूं नेक हाल॥४॥

जो जीव काल के अधीन होकर जन्म-मरण रूपी चक्र में भटकते ही रहते हैं, उनके विषय में मैं अधिक क्या

कहूँ। यहाँ मैं उनके विषय में थोड़ा सा वर्णन कर रहा हूँ, जो सुन्दरसाथ की जमात में शामिल होकर स्वयं को ब्रह्ममुनि समझते हैं।

भावार्थ- तारतम ज्ञान के प्रकाश से दूर रहने वाले लोग जन्म-मरण के काल-चक्र में भटकते रहते हैं, क्योंकि उन्हें परब्रह्म के धाम, स्वरूप, तथा लीला का बोध नहीं हो पाता। इस प्रकरण में उन सुन्दरसाथ के आचरण का थोड़ा सा वर्णन है, जिनमें परमधाम का अँकुर भले ही न हो किन्तु ब्रह्ममुनियों का दावा लेने में कोई भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता।

दुध तो देख्या नहीं, देख्या ऊपर का फैन।

दौड़ करें पड़े खैंच में, ए भी लगे दुख देन॥५॥

इन लोगों ने मेरे धाम हृदय में विराजमान युगल स्वरूप

(दूध) की पहचान तो नहीं की, बल्कि ये मेरे वक्तृत्व, चमत्कारों, तथा आकर्षक व्यक्तित्व आदि बाह्य रूप (झाग) को ही सब कुछ समझ बैठे हैं। इनके हृदय में सत्य का प्रकाश नहीं है, इसलिये ये लोग अध्यात्म की उच्च अवस्था में पहुँचने के लिये प्रयास तो करते हैं, किन्तु खींचतान (द्वन्द्वों) में फँसकर लक्ष्य से वंचित हो जाते हैं। इस प्रकार यह लोग दूसरों को दुःखी करने का भी कारण बनते हैं।

लेने को बुजरकियां, सेवें चातुरी चैन।

सेवा करत सब खैंच की, ए यों लगे दुख देन॥६॥

सुन्दरसाथ में उच्च पदों को प्राप्त करने के लिये यह लोग चतुराईपूर्वक आराम से सेवा करते हैं। इनकी सेवा में खींचतान कूट-कूटकर भरी होती है। इस प्रकार से यह

दुःखी करते हैं।

भावार्थ- खींचतान एवं चातुरी चैन की सेवा का तात्पर्य है कि श्रद्धा और समर्पण की भावना की कमी होते हुए भी यह प्रदर्शन करना कि इस क्षेत्र में उनसे कोई भी आगे नहीं है। सेवा में परिश्रम तो कम करना, किन्तु दूसरों की सेवा का अधिक से अधिक श्रेय स्वयं ले लेना और दूसरों को प्रभावशाली न बनने देना।

देखा देखी न छूटहीं, सेवत हैं दिन रैन।

खुस बखत होवें खैच में, ए यों लगे दुख देन॥७॥

यद्यपि यह सेवा तो दिन-रात करते हैं, किन्तु देखा-देखी की भावना से। उनसे यह प्रवृत्ति छूटती नहीं। यह आपसी खींचतान में ही खुश होते हैं। इस प्रकार यह दूसरों को दुःखी करते हैं।

भावार्थ- देखा-देखी की सेवा वह है, जो दूसरों को सेवा कार्य करते हुए देखकर प्रारम्भ की जाये। सेवा की पहल स्वयं करने की इनमें प्रवृत्ति नहीं होती। सेवा कार्य में अपना कम योगदान देकर भी यह इस तरह की बातें करते हैं, जिससे सामान्य व्यक्ति यही समझता है कि यदि इनका सहयोग न हो तो कोई भी कार्य पूरा ही नहीं होगा, वस्तुतः सेवा कार्य में यही कर्णधार हैं। यही सेवा सम्बन्धी खींचतान है।

क्यों ए न प्रबोधें समझें, कोई आद अमल ऐसा घेन।

क्या मूरख क्या समझू, सबे लगे दुख देन॥८॥

इनके हृदय में माया का ऐसा गहरा नशा छाया हुआ है कि इन्हें कितना भी क्यों न समझाया जाये, लेकिन कोई असर नहीं होता। इन लोगों में चाहे कोई मूर्ख हो या

समझदार, सभी एक रंग में रंगे होते हैं। इस तरह से ये लोग दूसरों को दुःखी करते हैं।

सनमुख होए सेवा करें, मुख बोलत मीठे बैन।

तित भी खँच ऐसी भई, ए भी लगे दुख देन॥९॥

ये लोग मेरे सामने अपनी सेवा भावना को दर्शाते हैं तथा अपनी विनम्रता प्रदर्शित करने के लिये बहुत ही मीठे शब्दों में बोलते हैं। इतना होते हुए इनमें आपस में खींचतान मची रहती है, अर्थात् कोई भी दूसरों की उच्च आध्यात्मिक या सामाजिक स्थिति को सहन नहीं कर पाता। इस प्रकार की मानसिकता बहुत ही दुःखदायी है।

निपट नजीकी सेवहीं, दौड़े एक दूजे पैं लेन।

खँचा खँच ऐसी करें, ए भी लगे दुख देन॥१०॥

कुछ सुन्दरसाथ मेरे बहुत ही नजदीकी बनकर सेवा को प्रदर्शित करने का प्रयास करते हैं। उनमें अपनी सेवा-भावना को दर्शाने की ऐसी प्रवृत्ति होती है कि वे दौड़-दौड़कर दूसरों की सेवा को स्वयं करते हैं, किन्तु उनकी आपसी खैंच नहीं जाती। इस प्रकार ये भी दूसरों को दुःखी करते हैं।

भावार्थ- सेवा का मुख्य उद्देश्य होता है- अपने अहम् का त्याग, जिससे अध्यात्म जगत की ऊँची उड़ान भरी जा सके। सेवा की सुगन्धि प्रेम और गोपनीयता है। सेवा का बाह्य प्रदर्शन करके किसी आध्यात्मिक विभूति का नजदीकी बनना तथा दूसरों को उनकी सामीप्यता से दूर रखने का प्रयास करना, सेवा की पवित्र चादर को दागदार बनाना है।

मन वाचा कर सेवहीं, गलित गात रोवें नैन।

तहां भी खेंच छूटी नहीं, ए भी लगे दुख देन॥११॥

कुछ सुन्दरसाथ सच्चे मन एवं वाणी से सेवा करते हैं, अर्थात् जो कुछ उनके मन में होता है, वही वाणी में भी होता है। ऐसे सुन्दरसाथ ब्रह्मवाणी की चर्चा में भावविह्वल (गलितगात) होकर आँखों से गर्म आँसू बहाते हैं। इतनी ऊँची स्थिति को प्राप्त करने के बाद भी उनके मन से खेंचा-खेंच नहीं जाती, जो बहुत ही दुःखदायी है।

सेवक कई समझावहीं, साखी सबे मुख केहेन।

इन भी खेंच छूटी नहीं, ए भी लगे दुख देन॥१२॥

कई सुन्दरसाथ दूसरों को समझाते हैं। वे दूसरों को समझाने के लिये साक्षी रूप में श्रीमुखवाणी की चौपाइयों तथा अन्य धर्मग्रन्थों के उद्धरण भी देते हैं, लेकिन

आपसी खींचतान से ये भी स्वयं को अलग नहीं कर पाते। इस प्रकार ये भी दुःखी करते हैं।

अर्थ अंदर का लेवहीं, समझें इसारत सेन।

खेंच उनकी भी ना गई, वे भी लगे दुख देन॥१३॥

कई सुन्दरसाथ ऐसे भी हैं जो संकेत मात्र से ही चौपाइयों का गुह्य रहस्य समझ जाते हैं , लेकिन खींचतान की अग्नि उनके अन्दर भी जलती रहती है। इस तरह यह सुन्दरसाथ भी दुःखी करने के कारण बन जाते हैं।

भावार्थ— धनी की कृपा से चौपाइयों का गुह्य रहस्य समझ जाना ही सर्वोपरि लक्ष्य नहीं है। जब हृदय में युगल स्वरूप विराजमान हो जाते हैं, तभी राग-द्वेष के बन्धन समाप्त होते हैं और खींचतान की ज्वाला बुझ

पाती है।

अंदर बाहेर उजले, दोष देखें सब ऐन।

ताए भी खँच छूटी नहीं, ए भी लगे दुख देन॥१४॥

कुछ सुन्दरसाथ अन्दर-बाहर दोनों तरफ से निर्मल होते हैं, अर्थात् जो कुछ उनके मन में होता है, वही वाणी से व्यक्त होता है। उनमें किसी भी तरह का बनावटी व्यवहार नहीं होता, किन्तु दूसरों के दोषों की व्याख्या करने की प्रवृत्ति उनमें भी होती है। इस प्रकार ये भी खींचतान के बन्धनों से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाते और दूसरों को दुःखी करते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई द्वारा सुन्दरसाथ को यह सिखापन दी गयी है कि यदि हम मन, वाणी, और कर्म से अतिशय पवित्र हैं, तो दूसरों के गन्दे-दामन पर बार-बार चर्चा

करने से बचना चाहिए क्योंकि वैसा करने पर बुरे विचारों के संस्कार अपने चित्त में वैसे ही प्रवेश करते हैं जैसे गन्दगी के कीचड़ में पत्थर फेंकने पर उसकी छींटे अपने ऊपर भी पड़ जाया करती हैं।

तारतम सब समझहीं, धाम सैयां हम बेहेन।

तित भी ब्रोध छूटा नहीं, ए भी लगे दुख देन॥१५॥

सब सुन्दरसाथ श्रीमुखवाणी के रहस्यों को समझते हैं। उनके मन में यह बात तो घर कर गयी होती है कि परमधाम से आयी हुई आत्मा रूप हम सभी सखियाँ सगी बहनों के तुल्य हैं। इतना जानने के बाद भी उनका विरोध समाप्त नहीं होता। इस तरह ज्ञान की उच्च अवस्था को प्राप्त होकर भी सुन्दरसाथ दूसरों को दुःखी करते हैं।

भावार्थ- जिस प्रकार सगी बहनों का रूप-रंग प्रायः समान होता है, उसी प्रकार वाहिदत स्वरूपा आत्माओं को यहाँ बहनों के दृष्टान्त से वर्णित किया गया है। आत्मायें प्रियतम अक्षरातीत की अर्धांगिनी हैं, इसलिये सभी आत्माओं को यहाँ सखी रूप में चित्रित किया गया है। यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि परमधाम में प्रिया-प्रियतम का सम्बन्ध लौकिक सम्बन्धों जैसा नहीं होता है, बल्कि उस शब्दातीत प्रेम को व्यक्त करने के लिये ही इस भाव का प्रयोग किया जाता है।

ए खेल है इन भांत का, क्यों ए न खुले मूल नैन।

निज नजर खुले बिना, कोई न देवे सुख चैन॥१६॥

यह मायावी खेल ही ऐसा है, जिसमें धनी की कृपा के बिना किसी की आत्मिक दृष्टि (मूल नेत्र) खुल नहीं

पाती। आत्म-दृष्टि खुले बिना इन नश्वर संसार में किसी को भी वास्तविक सुख-शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

भावार्थ- बाह्य चर्म-चक्षुओं से मात्र शरीर और संसार को ही देखा जा सकता है, जो जन्म-मरण रूपी दुःख का कारण है। ब्रह्मज्ञान से अपने निज स्वरूप का बोध होने पर ही प्रियतम का दीदार होता है, जिससे वास्तविक सुख-शान्ति की प्राप्ति होती है। इसलिये इस चौपाई में आत्म-दृष्टि को वास्तविक नेत्र की दृष्टि कहा गया है।

राह निपट बारीक है, तिन बारीक पर बारीक।

साथें लई लीक जाहेरी, सो उतरी लीक थें लीक॥१७॥

परमधाम के साक्षात्कार के लिये अनन्य प्रेम की राह

सबसे सूक्ष्म है। अत्यन्त खेद के साथ कहना पड़ता है कि सुन्दरसाथ ने बाह्य कर्मकाण्ड का मार्ग अपना रखा है और एक-दूसरे की नकल करते जाते हैं।

भावार्थ- जप, हवन, पूजा-पाठ आदि से भी सूक्ष्म ध्यान-समाधि का मार्ग है। तारतम ज्ञान के अभाव में जो लोग ध्यान मार्ग का अवलम्बन करते हैं, वे वैकुण्ठ-निराकार तक ही जा पाते हैं, अर्थात् अध्यात्म का सत्य मार्ग अति सूक्ष्म है जो कर्मकाण्डों से सर्वथा परे है। बेहद का मार्ग उससे भी सूक्ष्म (परे) है। बेहद के मार्ग से भी परे परमधाम की अनन्य परा प्रेम लक्षणा भक्ति का मार्ग है। बारीक से बारीक से भी बारीक कहने का यही भाव है कि यह बहुत ही आश्चर्य का विषय है कि तारतम ज्ञान ग्रहण करके भी सुन्दरसाथ हद के कर्मकाण्डों के जाल में फँसा हुआ है।

काहूं न दरवाजा नजीक, कहां कुलफ किल्ली कल गत।

राह भी नजरों न आवहीं, ए चले जाहेरी ले मत॥१८॥

कर्मकाण्ड की राह पर चलने वालों में से किसी को भी यह पता नहीं चल पाता कि इस माया के भवसागर से पार होने का दरवाजा कहाँ है? उसमें लगा हुआ ताला कहाँ है? उसे खोलने की चाबी कहाँ है तथा खोलने की कला कैसे प्राप्त होती है? यहाँ तक कि दरवाजा खुलने के पश्चात् उस मार्ग का भी इन्हें बोध नहीं होता, जिस पर चलकर बेहद और परमधाम का साक्षात्कार किया जाता है। ये तो बाह्य कर्मकाण्डों को ही सब कुछ मानकर उसका अन्धानुकरण करते जाते हैं।

भावार्थ— पाताल से लेकर वैकुण्ठ—सात शून्य तक मायावी जाल फैला है। इसके परे मोह सागर का पर्दा है, जिसके हटे बिना अखण्ड में प्रवेश सम्भव ही नहीं है।

इसे ही भवसागर का ताला कहा गया है। इसे खोलने के लिये तारतम ज्ञान की कुन्जी चाहिए। श्रद्धा, समर्पण, और अटूट विश्वास (ईमान) की कला के बिना चाबी होने पर भी वह ताला नहीं खुल सकता। यदि खुल भी जाये तो विरह और प्रेम के मार्ग का अवलम्बन किये बिना बेहद और परमधाम के आनन्द की अनुभूति असम्भव है।

अब कहा कहूं मैं इन पर, कोई ऐसी बनी जो आए।

ए जान बूझ तो भूलहीं, जो इनका कछु न बसाए॥१९॥

कर्मकाण्डों के जाल में फँसे हुए इन सुन्दरसाथ को मैं क्या कहूँ। माया ने इनकी ऐसी हालत कर दी है कि इनका माया के हथियारों पर कुछ भी वश नहीं चल पा रहा है। इसलिये तारतम ज्ञान से सब कुछ जानते-समझते हुए भी ये भूले हुए हैं (खींचतान में फँसे हुए हैं)।

राह जुदी दोऊ पेड़ से, तो कहा सके कोई कर।

उन आड़ो पट अंतर, इनो बाहेर पड़ी नजर॥२०॥

जब ब्रह्मसृष्टि तथा जीव सृष्टि का मार्ग प्रारम्भ से ही अलग-अलग है, तो कोई भी क्या कर सकता है। ब्रह्मसृष्टि के सामने जहाँ माया की फरामोशी का पर्दा है, वहीं जीव सृष्टि की आत्मिक दृष्टि नहीं है। वह बाह्य कर्मकाण्डों को ही सब कुछ माने बैठी है।

भावार्थ- सुन्दरसाथ के समूह में ब्रह्मसृष्टि तथा जीवसृष्टि दोनों ही शामिल होती हैं। ब्रह्मसृष्टि जहाँ इश्क और ईमान (प्रेम और अटूट विश्वास) की राह अपनाती है, वहीं जीवसृष्टि खींचतान तथा कर्मकाण्ड के बन्धनों से स्वयं को अलग नहीं कर पाती। इस प्रकरण में जीवसृष्टि के साथ-साथ उन ब्रह्मसृष्टियों के लिये भी सम्बोधन है, जो फरामोशी के खेल में आने के कारण खेंचा-खेंच का

शिकार बन जाती हैं।

न तो सूरें क्यों ना बल करें, कोई बुरा न आपको चाहे।

दौड़त हैं निस वासर, किन पट न टाल्यो जाए॥२१॥

यह बहुत ही आश्चर्य का विषय है कि सुन्दरसाथ में ज्ञान, प्रेम, विरह, सेवा, तथा समर्पण के क्षेत्र में ऊँची से ऊँची उपलब्धियाँ प्राप्त करने वाले वीर तो बहुत हैं, किन्तु वे माया के पर्दे को क्यों नहीं हटा पा रहे हैं। वास्तविकता यह है कि इस संसार में कोई भी अपना बुरा नहीं चाहता। सभी सुन्दरसाथ दिन-रात प्रयास तो बहुत करते हैं, किन्तु इस फरामोशी के पर्दे को कोई हटा नहीं पाता।

महामत केहेवें यों कर, हम सैयां दौड़ी धाए।

पर ए पट सुन्दरबाई बिना, किन्हूं न खोल्यो जाए॥२२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हम सभी सुन्दरसाथ ने इस मायावी पर्दे को हटाने के लिये बहुत प्रयास किया, किन्तु श्री श्यामा जी के बिना कोई भी इसे दूर नहीं कर सका।

भावार्थ- श्यामा जी के साथ ही सब सुन्दरसाथ भी इस खेल में आये, किन्तु सर्वप्रथम श्यामा जी ने ही अपने प्राणवल्लभ का दीदार किया तथा वह तारतम ज्ञान प्राप्त किया जिसके द्वारा भवसागर को पार करने का मार्ग मिला।

बात सुन्दर बाई और है, और उनकी और खेस।

गत मत उनकी और है, हम लिया सब उनका भेस॥२३॥

श्यामा जी की बात सबसे अलग है। उनकी करनी, रहनी, और बुद्धि सबसे अलग है। हम सब सुन्दरसाथ ने तो उनके द्वारा दिखाये गये परमधाम के मार्ग का अनुसरण किया है।

मोहे सिखापन उनकी, दे फुरमान करी रोसन।

इन्द्रावती तो केहेवहीं, जो दोऊ बिध करी चेतन॥२४॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी (श्री श्यामा जी) ने मुझे भागवत तथा कुरआन के रहस्यों को समझाकर हर प्रकार की शिक्षा दे दी और मुझे निजघर तथा संसार के कर्त्तव्यों के प्रति सावचेत कर दिया।

भावार्थ— सदगुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने श्री मिहिरराज जी को केवल भागवत के ही रहस्यों से परिचित कराया।

दूसरे जामे में उन्होंने (श्यामाजी ने) कुरआन के रहस्यों को स्पष्ट किया क्योंकि यह ब्रह्मवाणी उनकी रसना है।

इस चौपाई में "दोऊ बिध" का तात्पर्य है— परमधाम के मूल सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुए अपना आचरण इस प्रकार बनाना कि इत (संसार में) भी धन्य—धन्य हो सकें और उत (परमधाम में) भी।

प्रकरण ॥६३॥ चौपाई ॥७६२॥

राग श्री

इस प्रकरण में कर्मकाण्ड और अज्ञानता के अन्धकार में भटकने वाले वल्लभमार्गी वैष्णवों की समीक्षा की गयी है।

तमें वाणी विचारी न चाल्या रे वैष्णवो, तमें वाणी विचारी न चाल्यो।

अखर एकनो अर्थ न लाध्यो, मद मस्त थईने हाल्यो॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे वैष्णवों ! तुम श्री वल्लभाचार्य जी की वाणी का विचार करके आचरण नहीं करते हो। तुम माया के नशे में इतने अधिक मस्त हो गये कि तुमने सुबोधिनी टीका के एक अक्षर का भी अभी तक अर्थ नहीं समझा।

भावार्थ- एक अक्षर का अर्थ न आने का कथन आलंकारिक है। इसका भाव है- "थोड़ा भी ज्ञान न होना।" अज्ञान, विलासिता, तथा रूढ़िवादिता में कण्ठ

तक डूबे हुए वैष्णवों को इसमें कठोर शब्दों से समझाया गया है।

सत वाणी वैष्णव ने समझावूं, जेसूं मूल डाल प्रकासी।

श्री मुख आचारज जे ओचरया, तेणे जाए भरमना नासी॥२॥

श्री वल्लभाचार्य जी ने अपने श्रीमुख से श्रीमद्भागवत् की सुबोधिनी टीका में जो कुछ भी कहा है, उससे मैं वैष्णव जनों को समझाता हूँ। इस टीका से सभी संशयों का नाश हो जायेगा तथा इस संसार रूपी वृक्ष की जड़ (कारण) एवं शाखाओं (लोकों के विस्तार) का प्रकाश हो जायेगा।

वैष्णव वाणी जो जो विचारी, ए भोम देखी पामो त्रास।

चौद भवनथीं ए वाणी न्यारी, तेमां पेर पेरना प्रकास॥३॥

हे वैष्णव जनों! यदि आप इस सुबोधिनी टीका का चिन्तन-मनन करें, तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि इसमें चौदह लोकों से परे (बेहद) का ज्ञान छिपा हुआ है। इसमें सृष्टि रचना, निराकार मण्डल, बेहद आदि का अनेक प्रकार से ज्ञान दिया गया है। इसके ज्ञान के प्रकाश में तुम इस दुःखमय संसार की नश्वरता देखकर भयभीत हो जाओगे।

प्रथम मोह तत्व नी उत्पन्न, ते माहें थी तत्व पांचे।

ए पांच तत्व थकी चौद लोक प्रगटया, एमा वैष्णव होय ते न राचे॥४॥

सबसे पहले मोह तत्व की उत्पत्ति हुई, जिससे पाँच तत्व प्रकट हुए। इन पाँच तत्वों से १४ लोक उत्पन्न हुए। जो भी सच्चा वैष्णव होगा, वह इन १४ लोकों में मग्न नहीं होगा।

भावार्थ- चौदह लोक का यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मायाजनित है। इसलिए सच्चे वैष्णव को वैकुण्ठ आदि नश्वर लोकों के मोह में नहीं फँसना चाहिए।

एमा प्रेमें पारब्रह्म पांमिए, ए वाणी बोले रे एम।

अनेक कसोटी आवे जो आड़ी, तो ए निध मूकिए केम॥५॥

श्री वल्लभाचार्य जी की सुबोधिनी टीका में कहा गया है कि इस संसार में अनन्य प्रेम से ही उस सच्चिदानन्द परब्रह्म को पाया जा सकता है। इस मार्ग में भले ही कितने कष्ट क्यों न आवें, किन्तु कभी भी प्रेम की राह नहीं छोड़नी चाहिए।

वैष्णवो सत वस्त एक देखाड्यूं, बीजो कहयो सर्वे नास।

महाप्रले मां तत्व लेवासे, आंहीं मुझ थकी अजवास॥६॥

हे वैष्णव जनों! मैं आपको अखण्ड बेहद के ज्ञान की एक बात बताता हूँ। उस बेहद के अतिरिक्त अन्य सभी लोकों का नाश हो जाता है। महाप्रलय में पाँचों तत्व भी नहीं रहते हैं। उस अखण्ड धाम का ज्ञान आप मुझसे प्राप्त कीजिए।

वैष्णवो मोहं थकी निध न्यारी दीधी, आपण ने अविनास।

नाम तत्व कहयूं श्री कृष्ण जी, जे रमे अखंड लीला रास॥७॥

हे वैष्णवों! हमें जो अखण्ड न्यामत मिली है, वह इस मोह तत्व से अलग है। इस अखण्ड तत्व का नाम "श्री कृष्ण" है, जो अखण्ड रास की लीला कर रहे हैं।

भावार्थ— जिस प्रकार कालमाया की प्रत्येक वस्तु मोह (अज्ञान, भ्रम, नींद) से बनी होती है इसलिये इस ब्रह्माण्ड को मोह तत्व का ब्रह्माण्ड कहते हैं, उसी प्रकार

रास लीला के ब्रह्माण्ड में प्रत्येक वस्तु श्री कृष्णमयी है, इसलिये रास के ब्रह्माण्ड को "श्री कृष्ण तत्त्व" से सम्बोधित किया गया है।

एहने सरणे सोप्या वैष्णवने, जिहां विध विध ना विलास।

हवे नेहेचल रंग कीजे ते पुरुख सों, दर्ई प्रेमनो पास॥८॥

इन्हीं श्री कृष्ण जी की शरण में जाने के लिये वैष्णवों को श्री वल्लभाचार्य जी का उपदेश है। इस रास के ब्रह्माण्ड में अनेक प्रकार से प्रेम के विलास की लीला हो रही है। हे वैष्णवो! अब आप अपने हृदय में प्रेम भरकर उन अखण्ड स्वरूप वाले श्री कृष्ण जी से अखण्ड आनन्द को प्राप्त कीजिए।

भावार्थ- "विलास" का अर्थ होता है- विशेष रूप से सुशोभित होना। प्रेम रूपी फल का रस ही आनन्द है।

उस आनन्द रस का प्रवाहित होना ही प्रेम का विलास है। प्रेम का यह विलास पूर्ण रूप से निर्विकार, शब्दातीत, त्रिगुणातीत, और अखण्ड है।

पुरुखपणें ए दृष्टें न आवे, ए अबलापणें कीजे अंग।

पुरुख नथी ए विना कोई बीजो, जे रमे नेहेचल लीला रंग॥९॥

अपने अन्दर पुरुष का भाव बनाये रखने पर इन रास विहारी श्री कृष्ण जी का दर्शन नहीं हो सकता। इन्हें पाने के लिये अपने दिल में अँगना भाव (सखी भाव) लेना पड़ेगा। अखण्ड रास की क्रीड़ा करने वाले इन श्री कृष्ण जी के अतिरिक्त वहाँ पर कोई भी दूसरा पुरुष नहीं है।

भावार्थ— गोपियों ने रास में श्री कृष्ण जी को अपना अनन्य प्रियतम माना था, इसलिये अँगना भाव और सखी भाव एक ही है। प्रायः वैष्णव लोग स्वयं को श्री

कृष्ण जी का दास समझते हैं। प्रेम "एकत्व" में ही फलित होता है, उसमें दासत्व का प्रवेश कदापि सम्भव नहीं है। इसलिये उस अखण्ड रास की अनुभूति करने के लिये अँगना भाव का होना अनिवार्य है। यह ध्यान रखने योग्य है कि अँगना भाव आत्मिक रूप से ही होना चाहिए, लौकिक दृष्टि से या शारीरिक रूप से नहीं।

ए प्रीछो तो पारब्रह्म चित आवे, समझे सुपन परं थाय।

अखंड तणां सुख एणी पेरे लीजे, लाहो मायामां लेवाय॥१०॥

इस सत्य की पहचान कर लेने पर ही हृदय में प्रियतम परब्रह्म का ध्यान आता है और स्वप्नमयी ब्रह्माण्ड से सम्बन्ध टूटता है। हे वैष्णवों! इस प्रकार इस माया के ब्रह्माण्ड में आप अखण्ड रास का आनन्द ले सकते हैं।

सत वस्त घणूं स्या ने प्रकासूं, अर्थी बिना नव कहिये।

एहेना नेहेचल नेहड़ा गोप भला, आ उलटीमां प्रगट न थैये॥११॥

इस अखण्ड लीला के ज्ञान को मैं अधिक क्यों प्रकाशित (जाहिर) करूँ। बिना पात्रता के किसी से नहीं कहना चाहिए। अखण्ड धाम की लीला के प्रेम को गोपनीय रखना ही अच्छा होता है। इसे झूठी माया में प्रत्यक्ष रूप से नहीं कहना चाहिए क्योंकि उस निर्विकार अद्वैत प्रेम को इस संसार के लोग यथार्थ रूप से नहीं समझ पाते हैं।

अर्थी होय ते आवी ने पूछे, मोटी मत तेहेने दाखूं।

ए निध देवा जोग नहीं, तेथीं अंतर राखूं॥१२॥

जो इस महान ज्ञान को पाने की पात्रता रखता हो, वह आकर यदि मुझसे पूछे तो मैं उसे अवश्य ही बताऊँगा,

किन्तु जिसमें इसको ग्रहण करने की पात्रता नहीं है, उसे देना ठीक नहीं है। इसलिये इस ज्ञान को मैं उनसे छिपाकर ही रखता हूँ।

भावार्थ- इस चौपाई का आशय यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि इसमें ज्ञान को छिपाने की बात कही गयी है। जिस प्रकार ऊसर भूमि में बीज बोने पर अँकुर नहीं उगता, उसी प्रकार पात्रता से रहित व्यक्ति को ब्रह्मज्ञान देना निष्फल हो जाता है। अयोग्य व्यक्ति उसकी गरिमा नहीं जानता और उसके ऊपर ज्ञान थोपना ब्रह्मज्ञान का अपमान करना भी है।

गुण मुख बोली भलूं न मनावूं, अवगुण न राखूं छानो।
सत वस्त देवाने सत भाखूं, एमा दुख मानो ते मानो॥१३॥
मैं अपने मुख से व्यर्थ में किसी की महिमा गाना अच्छा

नहीं मानता और उसके दोषों को छिपा भी नहीं सकता। सत्य का ज्ञान देने के लिये मैं सत्य ही कहता हूँ। इस बात से यदि किसी को दुःख मानना हो तो वह मानता रहे, मुझे इसकी कोई भी परवाह नहीं है।

पतलीने तमें पगला भरिया, लाग्यो स्वाद संसार।

पुरूखपणे रमया माया मां, तो आड़ी आवी अंधार॥१४॥

तुम्हें इस संसार के झूठे सुखों का चस्का (स्वाद) लग गया है। उसकी पूर्ति के लिये तुमने वेश्याओं जैसी राह अपना रखी है। तुम स्वयं को पुरुष मानकर मायावी सुखों के भोग में लिप्त हो गये हो, इसलिये तुम्हारे सामने संसार का बन्धन है।

भावार्थ— अनन्य प्रेम का तात्पर्य है, अपने प्रियतम से मिलन के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु की इच्छा न

करना। अपनी लौकिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये हनुमान जी, लक्ष्मी, गणेश आदि की भक्ति में लग जाना प्रेम की पवित्रता में कलंक लगाना है। इस चौपाई में रास विहारी श्री कृष्ण जी को छोड़कर अन्य देवी-देवताओं की भक्ति को उस वेश्या के आचरण के समान बताया गया है, जो मात्र धन के लिये प्रेम की पवित्रता पर कालिख पोतती है।

जोयूं नहीं तमें जागीने, अमृत ढोलीने विख पीधूं।

असत मंडल ने सतकरी समझया, अखंड ने वांसो दीधूं॥१५॥

हे वैष्णवों! तुमने अज्ञान रूपी निद्रा को छोड़कर स्वयं को जाग्रत नहीं किया और वास्तविक सत्य को नहीं पहचाना। तुमने अखण्ड योगमाया के अमृतमय अनन्त सुखों को छोड़ दिया तथा मायावी विष का पान किया।

तुमने अज्ञानतावश अखण्ड धाम की लीला को पीठ दे दी है तथा स्वर्ग, वैकुण्ठ आदि नश्वर लोकों को ही सत्य समझ लिया है।

भावार्थ- सांसारिक सुख विष तुल्य हैं, जो अपनी तृष्णा के जाल में फँसाकर जीव को चौरासी लाख योनियों में भटकाते हैं। इसके विपरीत अखण्ड धाम का आनन्द उस अमृत के समान है, जिसको पीकर जीव मृत्यु के बन्धन से परे हो जाता है।

अंध थके तमें ए निध खोई, जे तमने सत स्वामिएँ दीधी।
 कठण वचन तो कहूं छूं तमने, जो तमें दुष्टाई कीधी॥१६॥

स्वामी वल्लभाचार्य जी ने जो तुम्हें अखण्ड धाम का ज्ञान दिया था, उसे तुमने अपनी नादानी के कारण खो दिया। तुम्हारे इस बुरे कर्म के कारण ही मुझे मजबूर

होकर तुम्हें कठोर शब्दों से सम्बोधित करना पड़ रहा है।

नहीं तो करुं कटका जे जिभ्या वदे वांकू, पणतमें लछणें आप एम कहावो।

जे स्वामी अविचल सुख आपे, तेहने तमें कां निंदावो॥१७॥

नहीं तो जिस जिह्वा से इतने कटु शब्दों का उच्चारण हो, मैं उसके टुकड़े-टुकड़े कर दूँ। लेकिन क्या करूँ, तुम्हारे लक्षण ही इतने बुरे हैं कि मुझे विवश होकर तुम्हारे लिये इस तरह की भाषा प्रयोग करनी पड़ रही है। जिन स्वामी वल्लभाचार्य जी ने तुम्हें अखण्ड सुख का ज्ञान दिया है, उन्हीं की तुम निन्दा क्यों करते हो?

ओलख्या नहीं तमें आचारज जी ने, तो भरम माहें भमया।

वैष्णव सकलने तमें वांकू कहावो, तो तमें नीचा नमया॥१८॥

तुमने श्री वल्लभाचार्य जी को यथार्थ में नहीं पहचाना ,

इसलिये अभी भी अज्ञानता के अन्धकार में भटक रहे हो। हे वैष्णवजनों! तुम सबमें अपनी उलटी चाल के लिये प्रसिद्ध हो (उल्टा कहलाते हो), इसलिये तुम्हें सबके बीच लज्जित होना पड़ता है।

पतिव्रता नारी ते पति ने पूजे, सेवे ते अनेक पेरे।

पिउ पर वचन सुणे जो वांकू, तो देह त्याग तिहां करे॥१९॥

पतिव्रता नारी अपने पति की पूजा करती है तथा अनेक प्रकार से सेवा भी करती है। यदि उसके सामने किसी ने उसके पति को अपशब्द कह दिया, तो वह उसके लिये असह्य हो जाता है तथा वह तड़प-तड़पकर अपना शरीर छोड़ देती है।

तमें वांकू विसमूं कांई नव जोयूं, जेम भामनी भूंडी भंडावे।

कुकरम करतां कांई न विचारे, पछे नाहो ने नीचू जोवरावे॥२०॥

जिस प्रकार कोई दुष्ट स्त्री अपने पति की निन्दा करती है, उसी प्रकार तुम भी वल्लभाचार्य जी की निन्दा करने में कुछ भी आगे-पीछे नहीं देखते हो अर्थात् किसी भी बात पर विचार नहीं करते हो। बुरे कर्म करते समय जो भी व्यक्ति उसके दुष्परिणामों पर विचार नहीं करता, वह निश्चित रूप में सबके बीच नीच समझा जाता है।

एणी पेरे सेव्या तमें स्वामीने, चितसूं जुओ विचारी।

दुष्टपणें तमें धणी ने दुखवया, हवे केही पेर थासे तमारी॥२१॥

हे वैष्णवों! यदि आप अपने मन में विचार करके देखो तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि आप लोगों ने दुष्टा स्त्री की तरह अपने श्री कृष्ण जी की सेवा की है। अपनी दुष्टता

से आपने जब अपने प्रियतम को दुःखी किया है, तो आपका क्या हाल होगा? इस बात पर विचार कीजिए।

भावार्थ— इस प्रकरण की चौपाई १८ में "स्वामी" शब्द का प्रयोग श्री वल्लभाचार्य जी के लिये किया गया है। इससे यह प्रश्न खड़ा होता है कि चौपाई २१ में "स्वामी" शब्द का प्रयोग किसके लिये किया जाये?

वर्तमान समय में वल्लभाचार्य जी के पञ्चभौतिक तन से रहित होने के कारण सेवा-पूजा की बात श्री कृष्ण जी के ऊपर ही घटेगी, वल्लभाचार्य जी के ऊपर नहीं, क्योंकि आचार्य जी के कथन को तो श्रेयस्कर माना जा सकता है, किन्तु उनको प्रियतम मानकर सेवा नहीं की जा सकती। यद्यपि रास विहारी श्री कृष्ण किसी भी प्रकार के दुःख से रहित हैं, किन्तु उनके दुःखी होने की बात भावुकता में कही जाती है क्योंकि सेवा-पूजा की प्रक्रिया

भी भावुकता में ही होती है, यथार्थता में नहीं।

सत कहे संतोख उपजे, कुली तणे कांधे चढ़या।

ते वैष्णव नहीं तेथी रहिए वेगला, जे ए निध मूकी पाछा पडया॥२२॥

सत्य कहने से मन में सन्तोष पैदा होता है। इसे झूठ रूपी कलियुग के कन्धे पर सवार होना अर्थात् अधिकार करना कहा जाता है। जो लोग इस अखण्ड ब्रज-रास की लीला को न मानकर क्षर जगत में ही भटकते रहते हैं, वे यथार्थ में सच्चे वैष्णव कहलाने के अधिकारी ही नहीं हैं। उनसे दूर रहने में ही भलाई है।

केहेतां सवलूं आंणे चित अवलूं, वस्त विना करे विवाद।

महामत कहे तेहने केम मलिए, जे करे अवला उदमाद॥२३॥

श्री महामति जी कहते हैं कि जो सीधा (सत्य) कहने में

उलटा (झूठा) समझते हैं, बिना किसी आधार (प्रसंग) के लड़ना-झगड़ना जानते हैं, और अहंकार में मग्न होकर दुर्व्यवहार करते हैं, उनसे मिलने-जुलने और चर्चा-सत्संग करने का कोई भी लाभ नहीं है।

भावार्थ- यद्यपि धर्मोपदेश से बड़े-बड़े अपराधियों को सुधारा जा सकता है, किन्तु तमोगुण और अज्ञान से ग्रसित जो लोग अध्यात्म की बाह्य चादर ओढ़े रहते हैं, उनको सुधारना कठिन होता है। आध्यात्मिकता की अमृतमयी बातें इन्हें अच्छी नहीं लगती, इसलिये इस चौपाई में अध्यात्म के गुह्य रहस्यों को ऐसे लोगों के सामने व्यक्त न करने के लिये कहा गया है।

प्रकरण ॥६४॥चौपाई ॥७८५॥

राग श्री

ए माया आद अनाद की, चली जात अंधेर।

निरगुन सरगुन होए के व्यापक, आए फिरत हैं फेर॥१॥

अनादि ब्रह्म की यह माया (कालमाया) सृष्टि के प्रारम्भ से ही अज्ञान स्वरूपा है, जो सभी प्राणियों को अपने जाल में फँसाती रही है। यद्यपि यह अपने मूल रूप में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि गुणों से रहित है, किन्तु सगुण रूप में इन गुणों को धारण कर लेती है। इसका मूल रूप कार्यरूप जगत (सगुण) में अति सूक्ष्म रूप से व्यापक ही रहता है। सभी प्राणी इसके जाल में उलझकर जन्म-मरण के चक्र में भटकते रहते हैं।

भावार्थ- माया को आदि-अनादि कहने का तात्पर्य यह है कि अक्षर ब्रह्म अनादि हैं तथा उनकी योगमाया भी

अनादि है। महामाया (मोह तत्व) का प्रकटन अव्याकृत (सुमंगला-पुरुष) से होता है, किन्तु महाप्रलय में उसका भी लय हो जाता है। यह प्रवाह अनादि काल से चलता आ रहा है तथा अनन्त काल तक चलता रहेगा। निराकार माया (निर्गुण) ही स्थूल रूप में (सगुण) कार्य रूप जगत में परिवर्तित हो जाती है और सभी आकारवान पदार्थों में आकाश व्यापक होता है। इस प्रकार माया का सूक्ष्म स्वरूप दृश्यमान वस्तुओं में अवश्य ही व्यापक होता है। इसे ही निर्गुण का सगुण में व्यापक होना कहते हैं। सृष्टि में निराकार से साकार में और प्रलय में साकार से निराकार में रूपान्तरण होता रहता है।

ना पेहेचान प्रकृत की, ना पेहेचान हुकम।

ना सुध ठौर नेहेचल की, और ना सुध सरूप ब्रह्म॥२॥

इस संसार में तारतम ज्ञान के अवतरण से पूर्व न तो किसी को प्रकृति के स्वरूप की पूरी पहचान थी और न धनी के आदेश (हुकम) की पहचान थी। किसी को अखण्ड बेहद तथा परमधाम की भी पहचान नहीं थी। किसी को यह भी पता नहीं था कि परब्रह्म का स्वरूप क्या है।

भावार्थ- प्रकृति का स्वरूप क्या है? यह कहाँ से प्रकट होती है तथा महाप्रलय में कहाँ लीन हो जाती है? यह अनादि है या आदि? इन गुह्य प्रश्नों का समाधान तारतम ज्ञान के बिना कदापि सम्भव नहीं है। इसी प्रकार ब्रह्म के धाम और स्वरूप के बारे में भी अब तक कोई नहीं बता सका था।

सुध नहीं निराकार की, और सुध नहीं सुंन।

सुध ना सरूप काल की, ना सुध भई निरञ्जन॥३॥

इस अलौकिक ज्ञान के अवतरण से पहले यह किसी को भी मालूम नहीं था कि निराकार की वास्तविक पहचान क्या है, शून्य क्या है, और निरञ्जन से क्या भाव स्पष्ट होता है? सबके विनाश में मुख्य भूमिका निभाने वाले काल का स्वरूप क्या है?

भावार्थ- प्रकृति का सूक्ष्मतम स्वरूप ही मोहतत्व है, जिसे काल, निराकार, और निरञ्जन की संज्ञा प्राप्त है। निराकार उसे कहते हैं, जिसकी कोई भी आकृति या आकार न हो। इसी प्रकार अवयव (अंग-प्रत्यंग) से रहित पदार्थ निरञ्जन कहलाता है। आकाश, अहंकार, महत्तत्व, तथा मोहतत्व को निराकार तथा निरञ्जन दोनों ही कहा जाता है। जिस मोह सागर में अनन्त ब्रह्माण्ड

विलीन हो जाते हैं, उसे काल कहते हैं। दूसरे शब्दों में काल उस समय को कहते हैं, जिसकी पहचान सूर्य या चन्द्रमा से न हो अर्थात् दिन-रात्रि, माह-वर्ष से भी परे वह अवधि जो सर्वथा बनी रहे, उसे भी काल कहते हैं। शून्य के तीन भेद हैं- १. शून्य (आकाश) २. सात शून्य ३. महाशून्य (मोह तत्व)। जिसमें अवकाश (खाली स्थान) हो, उसे आकाश या शून्य कहते हैं।

ना सुध जीव सरूप की, ना सुध जीव वतन।

ना सुध मोह तत्व की, जिनथें अहं उत्पन॥४॥

किसी को भी न तो जीव के स्वरूप की यथार्थ पहचान थी और न उसके निज घर की पहचान थी। उस मोह तत्व की भी पहचान नहीं थी, जिससे अहंकार की उत्पत्ति होती है।

भावार्थ- आदिनारायण की चेतना का प्रतिभास (चिदाभास) ही जीव है, जिसे भ्रमवश "आत्मा" की संज्ञा दी जाती है। महाप्रलय में जीव अपने मूल स्वरूप आदिनारायण को ही प्राप्त हो जाता है।

सास्त्रों जीव अमर कह्यो, और प्रले चौदे भवन।

और प्रले पांचों तत्व, और प्रले कहे त्रिगुन॥५॥

गीता, उपनिषद आदि शास्त्रों में जीव को मृत्यु से रहित अमर कहा गया है और यह भी कहा गया है कि महाप्रलय में चौदह लोक, पाँच तत्व, तथा तीन गुणों का लय हो जाता है।

भावार्थ- गीता का यह कथन "न हन्यते हन्यमाने शरीरे" तथा "न एनम् छिन्दन्ति शास्त्राणि" सिद्ध करते हैं कि जीव मृत्यु से रहित है। केवल शरीर ही बारम्बार जन्म

और मृत्यु को प्राप्त होता रहता है।

और प्रले प्रकृत कही, और प्रले सब उत्पन।

ना सुध ब्रह्म अद्वैत की, ए कबहूँ न कही किन॥६॥

शास्त्रों में यह तो बताया गया है कि प्रकृति तथा उससे उत्पन्न हुआ यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड नश्वर है, किन्तु कभी भी किसी ने यह नहीं कहा कि प्रकृति से परे वह अद्वैत ब्रह्म कहाँ है और कैसा है।

द्रष्टव्य— इस चौपाई में प्रकृति से तात्पर्य कालमाया से है, योगमाया से नहीं। वस्तुतः मोहतत्व (महामाया, महाशून्य) ही वह प्रकृति है, जिसके गर्भ से अनन्त ब्रह्माण्डों का सृजन होता है।

ए त्रिगुन की पैदास जो, सो समझे क्यों कर।

त्रिगुन उपजे अहं थें, और हिजाब अहं के पर॥७॥

भला यह त्रिगुणात्मिका सृष्टि अध्यात्म जगत के इन गूढ़ रहस्यों को कैसे समझ सकती थी। सत्त्व, रज, और तम का प्रकटीकरण तो अहंकार से होता है, जबकि मोहतत्त्व का पर्दा अहंकार से भी परे है। ऐसी अवस्था में अहंकार से परे उस अद्वैत ब्रह्म को कैसे जाना जा सकता था।

ए आद के संसे अबलों, किनहूं न खोले कब।

सो साहेब इत आए के, खोल दिए मोहे सब॥८॥

श्री महामति जी कहते हैं कि ये सभी संशय सृष्टि के प्रारम्भ से ही चले आ रहे थे, किन्तु किसी भी मनीषी ने इन्हें स्पष्ट नहीं किया था। अब मेरे हृदय धाम में विराजमान होकर स्वयं अक्षरातीत ने ही इन सभी रहस्यों

को स्पष्ट कर दिया है।

रुहअल्ला की मेहेर से, उपज्यो एह इलम।

और महंमद की मेहेर थें, सुध कहूं माया ब्रह्म॥९॥

प्रियतम अक्षरातीत के आनन्द स्वरूप श्री श्यामा जी की कृपा से मेरे हृदय में यह अलौकिक ज्ञान प्रकट हुआ। अब मैं उन्हीं की कृपा से ब्रह्म तथा माया के स्वरूप की पहचान कराता हूँ।

प्रकृति पैदा करे, ऐसे कई इंड आलम।

ए ठौर माया ब्रह्म सबलिक, त्रिगुन की परआतम॥१०॥

जिस प्रकृति से चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड जैसे अनेक ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती है , उस प्रकृति तथा आदिनारायण का मूल स्थान सबलिक ब्रह्म के स्थूल

(अव्याकृत के महाकारण) में स्थित है।

भावार्थ- इस चौपाई में प्रकृति का तात्पर्य मोह सागर से है। यहाँ "कई इंड" शब्द का अभिप्राय अनेक से है। यद्यपि प्रकटवाणी में "कोट ब्रह्माण्ड नजरों में आवे" कहा गया है, फिर भी किसी विशेष संख्या की सीमा में बाँधना उचित नहीं है। यह जिज्ञासा पैदा होती है कि असंख्य ब्रह्माण्डों को उत्पन्न करने वाली उपादान कारण प्रकृति (महामाया) तो जड़ है, उसका मूल निवास अव्याकृत के महाकारण में कैसे सम्भव है?

यथार्थता यह है कि प्रतिबिम्बवाद के सिद्धान्त "ए तो पड़यो सब प्रतिबिम्ब" के अनुसार सुमंगला-पुरुष (अव्याकृत के महाकारण) से मोह सागर तथा आदिनारायण का स्वरूप प्रकट होता है, जो स्वप्नवत् है। अव्याकृत या सबलिक की प्रकृति तो चेतन है, किन्तु

वहाँ के नूरी कणों का प्रतिबिम्ब वैसे ही होगा जैसे किसी सफेद रीछ का प्रतिबिम्ब काला और जड़ होता है। आदिनारायण से ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव का स्वरूप प्रकट होता है, इसलिये इन्हें तीनों की परात्म का स्वरूप कहते हैं।

कई इंड अछर की नजरोँ, पल में होय पैदास।

ऐसे ही उड़ जात हैं, एकै निमख में नास॥११॥

अक्षर ब्रह्म की दृष्टि में अनेक ब्रह्माण्ड एक ही पल में उत्पन्न हो जाते हैं तथा एक ही पल में लय को प्राप्त हो जाते हैं।

भावार्थ— मन में यह प्रश्न उठता है कि जाग्रत अक्षर ब्रह्म की दृष्टि में यदि ब्रह्माण्ड बनते हैं, तो उन्हें प्रलय में नहीं आना चाहिए और यदि स्वप्न में नक्षर ब्रह्माण्ड बनते हैं

तो सर्वदा जाग्रत और ज्ञान स्वरूप उस ब्रह्म को निद्रा के आगोश में कैसे माना जा सकता है?

यह तो पूर्णरूपेण सत्य है कि अक्षर धाम में विराजमान अक्षर ब्रह्म के ऊपर कभी भी नींद या अज्ञान का आवरण नहीं पड़ सकता। अक्षर ब्रह्म के स्वप्न को मात्र संकल्प माना जा सकता है, जो इस अलौकिक रूप में सम्पादित होता है कि उसकी स्पष्ट व्याख्या करने में मानवीय बुद्धि समर्थ नहीं हो पाती है। दृष्टि का तात्पर्य सत्ता या आदेश भी होता है। सृष्टि की इस प्रक्रिया में अव्याकृत या सबलिक की ही विशेष भूमिका होती है। केवल, सत्स्वरूप, या अक्षर ब्रह्म तो अपने आनन्द की लीला में निमग्न होते हैं। इस प्रकार नक्षर ब्रह्माण्डों का सृजन अव्याकृत के स्वप्न स्वरूप आदिनारायण से ही माना जा सकता है।

केवल ब्रह्म अक्षरातीत, सत-चित-आनन्द ब्रह्म।

ए कहयो मोहे नेहेचेकर, इन आनन्द में हम तुम॥१२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि श्री श्यामा जी ने मुझे यह बात बहुत दृढ़ता से कही कि एकमात्र अक्षरातीत धाम धनी ही सच्चिदानन्द परब्रह्म हैं और उनके उस आनन्दमयी परमधाम में हम और तुम सभी सुन्दरसाथ रहते रहे हैं।

कहे कतेब साहेदी साहेब की, दे न सके कोई और।

खुदाए की खुदाए बिना, किन पाया नहीं ठौर॥१३॥

कतेब ग्रन्थों में कहा गया है कि सच्चिदानन्द परब्रह्म कहाँ है, इसका वास्तविक ज्ञान परब्रह्म के सिवाय अन्य किसी को भी नहीं है और न कोई अन्य उनके स्वरूप तथा लीला सम्बन्धी पहचान की कोई साक्षी दे सकता है।

ए कतेब यों कहत है, हादी सोई हक।

बिना साहेब साहेब वतन की, कोई और न मेटे सक॥१४॥

कतेब ग्रन्थों में कहा गया है कि हादी का स्वरूप हक के समान है। अक्षरातीत के बिना न तो कोई परमधाम की पहचान दे सकता है और न ही सभी संशयों को मिटा सकता है।

भावार्थ- "हादी" का अर्थ है— हिदायत करने वाला। जो ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम का ज्ञान देकर उसके साक्षात्कार के मार्ग पर लगाये, वही हादी है। यह शोभा मात्र तीन सूरतों को ही है, अन्य को नहीं।

संसे मिटाया सतगुरें, साहेब दिया बताए।

सो नेहेचल वतन सरूप, या मुख बरन्यो न जाए॥१५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि मेरे सद्गुरु (हादी) श्री

निजानन्द स्वामी ने मेरे सभी संशयों को दूर कर दिया तथा अक्षरातीत परब्रह्म की पहचान करायी। उस अखण्ड परमधाम और प्रियतम की शोभा का वर्णन करना इस मुख से सम्भव नहीं है।

साख पुराई वेद ने, और पूरी साख कतेब।

अनुभव करायो आतमा, जो न आवे मिने हिसेब॥१६॥

मुझे प्रियतम अक्षरातीत के सम्बन्ध में वेदों और कतेबों से पूर्ण साक्षियाँ मिलीं। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने अपनी कृपा दृष्टि से मुझे अपने निज स्वरूप का भी अनुभव कराया, जिसके आनन्द का वर्णन शब्दों की सीमा में नहीं आ सकता।

हबीब बताया हादिएं, मेरा ही मुझ पास।

कर कुरबानी अपनी, जाहेर करूं विलास॥१७॥

हादी (सद्गुरु) श्री निजानन्द स्वामी ने मुझे प्रियतम अक्षरातीत की पहचान कराते हुए कहा कि "वह तो तुम्हारे अति निकट हैं, प्राण की नली शाहरग से भी अधिक नजदीक।" अब मेरा यही लक्ष्य है कि अपनी आत्मा को प्रियतम के प्रेम में न्योछावर (कुर्बान) करके आनन्द में डूब जाऊँ।

तुम देखत मोहे इन इंड में, मैं चौदे तबक से दूर।

अंतरगत ब्रह्मांड तैं, सदा साहेब के हजूर॥१८॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! आप मुझे इस ब्रह्माण्ड में देखते हैं क्योंकि मैंने पञ्चभौतिक तन धारण किया हुआ है, लेकिन मेरी परआत्म का निज

स्वरूप तो १४ लोक के इस ब्रह्माण्ड से सर्वथा परे है। वह निराकार, बेहद से भी परे परमधाम में मूल मिलावा में धनी के सम्मुख सर्वदा विराजमान है।

ब्रह्मसृष्टि और ब्रह्म की, है सुध कतेब वेद।

सो आप आखिर आए के, अपनो जाहेर कियो सब भेद॥१९॥

वेद और कतेब में अक्षरातीत परब्रह्म तथा उनकी अंगरूपा ब्रह्मसृष्टियों की पहचान छिपी हुई है, किन्तु उसे अब तक कोई भी जान नहीं पाया था। अब स्वयं परब्रह्म ने श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर अपने सारे भेदों को स्पष्ट कर दिया है।

महामत जो रूहें ब्रह्म सृष्ट की, सो सब साहेब के तन।

दुनियां करी सब कायम, सही भए महंमद के वचन॥२०॥

श्री महामति जी कहते हैं कि सभी ब्रह्मसृष्टियाँ उस अक्षरातीत के तन हैं अर्थात् उनके स्वरूप में अक्षरातीत ही विराजमान हैं। ब्रह्मसृष्टियों के इस संसार में आने के कारण ही धनी ने इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अखण्ड करने की कृपा की है। इस प्रकार मुहम्मद साहिब की वह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हो गयी, जो उन्होंने कही थी कि वक्त-ए-आखिरत को खुद खुदा ही आकर सबका न्याय करेंगे और सबको अखण्ड मुक्ति देंगे।

प्रकरण ॥६५॥ चौपाई ॥८०५॥

सैयां मेरी सुध लीजियो, जो कोई अहेल किताब।

तुम ताले लिख्या नूरतजल्ला, सुनके जागो सिताब॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! कुरआन के वारिस आप ही हैं अर्थात् उसके गुह्य भेदों को खोलने की शोभा आपको ही प्राप्त है। अक्षरातीत का प्रेम तो आपके भाग्य में स्वतः ही प्राप्त है। इस बात को सुनकर आप शीघ्रातिशीघ्र जाग्रत हो जाइए एवं मेरे स्वरूप की पहचान कीजिए।

ना छूटी सरीयत करम की, ना छूटी तरीकत उपासन।

मगज न पावे माएना, चले सब बस परे मन॥२॥

मुसलमानों से न तो शरीयत और तरीकत की राह छूटती है, और न हिन्दुओं से कर्मकाण्ड और उपासना छूटते हैं। इन्हें अपने धर्मग्रन्थों के वास्तविक रहस्यों का

जरा भी बोध नहीं है। ये अपने मन के वशीभूत होकर प्रकृति-मण्डल के अन्दर ही भटक रहे हैं।

भावार्थ- मन तथा इन्द्रियों से कर्म एवं उपासना होती है। परब्रह्म मन, वाणी, और इन्द्रियों से परे है। इसलिये इन्द्रियों तथा मन से होने वाली भक्ति उस प्रियतम परब्रह्म का साक्षात्कार नहीं करा सकती। शरीरगत तथा तरीकत (कर्मकाण्ड और उपासना) को इस चौपाई में निरर्थक कहने का यही भाव है।

दोऊ दौड़ करत हैं, हिंदू या मुसलमान।

ए जो उरझे बीच में, इनका सुन्य मकान॥३॥

हिन्दू और मुसलमान दोनों ही उस परब्रह्म का साक्षात्कार करने के लिये पूरा प्रयास करते हैं, किन्तु तारतम ज्ञान न होने से अखण्ड धाम में नहीं जा पाते

और चौदह लोक तथा बेहद के बीच निराकार मण्डल (मोहतत्व, महाशून्य) में भटक जाते हैं।

जोगारंभी या कसबी, पोहोंचे ला मकान।

मोहतत्व क्यों ए न छूटहीं, कहा परदा ऊपर आसमान॥४॥

योग साधना करने वाले हिन्दू या मुसलमान निराकार (शून्य मण्डल) तक पहुँचते हैं। मोहतत्व (निराकार) को यह पार नहीं कर पाते। इनके लिये निराकार उस परदे के समान हो जाता है, जो प्रियतम का दीदार नहीं करने देता।

भावार्थ— कस्ब करने का तात्पर्य उस बन्दगी से है, जिसकी प्रक्रिया योगाभ्यास जैसी है।

एक इलम ले दौड़हीं, और ले दौड़े ग्यान।

तित बुध न पोहोंचे सब्द, ए भी थके इन मकान॥५॥

धर्मग्रन्थों का ज्ञान लेकर हिन्दुओं और मुसलमानों ने परब्रह्म का साक्षात्कार करने का बहुत अधिक प्रयास किया, किन्तु वे भी निराकार में जाकर उलझ गये। उन्होंने स्पष्ट रूप से कह दिया कि ब्रह्म के धाम तक बुद्धि एवं शब्दों की पहुँच नहीं है।

भावार्थ— ज्ञान मार्ग के अवलम्बन का तात्पर्य यहाँ धर्मग्रन्थों के अध्ययन से है, समाधि की अवस्था में प्राप्त होने वाले आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान से नहीं।

दूजी कुरसी इत तरीकत, जाहेरी ऊपर फुरमान।

हकीकत मारफत की, ना किन किया बयान॥ ६॥

कुरआन में कहा गया है कि शरीयत के बाद की जाने

वाली तरीकत (उपासना) की बन्दगी से वैकुण्ठ (मलकूत) की प्राप्ति होती है। यह दोनों प्रकार की जाहिरी बन्दगी जीव सृष्टि द्वारा की जाती है। आज दिन तक किसी ने भी हकीकत और मारिफत (ज्ञान-विज्ञान) की बन्दगी का वर्णन नहीं किया है।

भावार्थ- इसी प्रकरण की पाँचवी चौपाई में ज्ञान मार्ग का वर्णन किया गया है। यद्यपि "हकीकत" शब्द का तात्पर्य ज्ञान मार्ग से लिया जाता है, किन्तु अब तक इस संसार के लोगों ने जिस ज्ञान का आधार लिया है, वह स्वप्न की बुद्धि का ही होता है। हकीकत का भाव यथार्थता से होता है। तारतम ज्ञान के न होने से जब ब्रह्म के धाम-स्वरूप की पहचान ही नहीं थी, तो यथार्थ भक्ति कहाँ सम्भव थी। ऐसी स्थिति में मारिफत (स्वलीला अद्वैत, विज्ञानमय) की बन्दगी की कल्पना

भी नहीं की जा सकती। मनीषियों ने जिस हकीकत और मारिफत की बन्दगी का वर्णन किया है, वह आदिनारायण, निराकार, या चतुष्पाद विभूति से सम्बन्धित रही है, अक्षर-अक्षरातीत से नहीं।

सो खिताब खोलन का, हुकम हादी पर।

जो औलाद आदम हवा की, सो खोले क्यों कर॥७॥

हकीकत और मारिफत की बन्दगी के रहस्यों को खोलने की शोभा हादी (हकी सूरत श्री प्राणनाथ जी) को ही है। आदम और हव्वा से पैदा होने वाली जीव सृष्टि भला हकीकत और मारिफत के रहस्यों को कैसे खोल सकती थी।

भावार्थ- प्रणव की आह्लादिनी शक्ति रोधिनी है, जिसके द्वारा मोह सागर (निराकार, हवा) उत्पन्न होता है। प्रणव

का प्रतिबिम्ब ही आदिनारायण है। कतेब परम्परा में जिसे आदम और हव्वा कहते हैं, उसे ही वेद-परम्परा में आदिनारायण और माया कहते हैं। संसार के सभी प्राणियों की उत्पत्ति मोहसागर (महामाया) में प्रकट होने वाले आदिनारायण से होती है, इसीलिये सभी जीवों को आदिनारायण की सन्तान कहा जाता है। इसे ही कतेब परम्परा में आदम और हव्वा का नाम दिया गया है। यहाँ मनु और श्रद्धा का प्रसंग नहीं है, क्योंकि वैवस्वत मनु का सम्बन्ध केवल पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाली मानवीय सृष्टि से है, जबकि आदिनारायण का सम्बन्ध कालमाया में उत्पन्न होने वाले सभी लोक के जीवों से है।

पातसाह अबलीस दिल पर, सब पर हुआ हुकम।

इन दोऊ की अकल सों, कहें खोलें बातून हम॥८॥

संसार के जीवों के दिल पर इब्लीश (माया में आसक्त मन) का अधिकार है। सभी लोग अपने मन के आदेश पर ही चलते हैं। संसार के यह जीव इन दोनों की बुद्धि से अध्यात्म के गुह्य रहस्यों को खोलने का दावा करते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में वर्णित "इन दोऊ की अकल सों" का भाव आदिनारायण और निराकार की बुद्धि से है। निराकार भी मोह, अज्ञान, या नींद का स्वरूप है। उसमें प्रकट होने वाले आदिनारायण के ही अंश रूप जीव हैं, जिनकी बुद्धि स्वप्नमयी होती है। इस प्रकार तारतम ज्ञान के प्रकाश में प्रियतम अक्षरातीत की कृपा के बिना अध्यात्म के गुह्य रहस्यों को कदापि नहीं जाना जा सकता।

जहां कछुए है नहीं, सब कहें बेचून बेचगून।

सुन्य निराकार निरंजन, बेसबी बे निमून॥९॥

जिस महाशून्य में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि की कोई भी अनुभूति नहीं होती है, उसे हिन्दू लोग शून्य, निराकार, तथा निरञ्जन कहते हैं, और मुसलमान उसे बेचून (बिना रूप का), बेचगून (बिना गुण का), बेसबी (बिना रूप का), और बेनिमून (उपमा से रहित) कहते हैं।

इत खावंद तो न पाइए, बीच आप के ऐब।

पीछे कहें हम पाया बातून, हम हीं हैं साहेब॥१०॥

स्वयं के अहंकार से ग्रसित होने के कारण इस संसार के जीवों को परब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हो पाता, किन्तु ये लोग गर्व से कहा करते हैं कि हम साक्षात् परब्रह्म हैं

(अहम् ब्रह्मास्मि, तत् त्वम् असि) और हमारे पास अध्यात्म के सारे रहस्य हैं।

भावार्थ- योगदर्शन का कथन है- "समाधि सिद्धिः ईश्वर प्रणिधानात्" अर्थात् परब्रह्म पर सर्वस्व समर्पण किये बिना समाधि की अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती और उस अवस्था में आये बिना ब्रह्म का साक्षात्कार भी सम्भव नहीं है। अहंकार से ग्रसित व्यक्ति समर्पण की भाषा जानता ही नहीं। इसलिये इस चौपाई में कहा गया है कि संसारी जीव न तो अहंकार छोड़ पाते हैं और न ब्रह्म का दर्शन ही कर पाते हैं।

आतम रूह न चीन्ह हीं, ले माएने इलम ग्यान।

आप खुदा हो बैठहीं, ए अबलीसैं फूके कान॥११॥

इन्हें आत्मा (रूह) के स्वरूप की पहचान नहीं है।

धर्मग्रन्थों के ज्ञान (इल्म) को लेकर ये स्वयं को ही ब्रह्म मानने लगते हैं। इनको इस प्रकार का उल्टा ज्ञान इब्लीश ही देता है।

भावार्थ- कान फूँकना या भरना एक मुहावरा है, जिसका अभिप्राय होता है उल्टी राह बताना। मायावी तृष्णाओं से ग्रसित हो जाने पर मनुष्य में अध्यात्म के सूक्ष्म तत्वों को समझने की क्षमता नहीं रहती। इस चौपाई में यही भाव व्यक्त किया गया है।

लोक जिमी आसमान के, तिनके सब्द अकल चित मन।

सो आगूं ना चल सके, रहे हवा बीच सुन॥१२॥

चौदह लोक के प्राणियों के शब्द, मन, चित्त, तथा बुद्धि की पहुँच निराकार-शून्य तक ही रह जाती है। इससे आगे इनकी गति नहीं हो पाती।

भावार्थ- आकाश और पृथ्वी के प्राणियों से तात्पर्य चौदह लोक के सभी प्राणियों से है। पाताल आदि नीचे के सात लोक पृथ्वी पर ही हैं, क्योंकि "पादस्य तले यो देशः स पातालः।" अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि की गणना पाताल लोकों में ही की जाती है, शेष लोक आकाश में स्थित हैं। इस प्रकार यहाँ चौदह लोकों का ही भाव लिया जायेगा।

एह सिपारे दूसरे, या बिध कर लिखे बयान।

बीच हवा के पलना, चौदे तबक झुलान॥१३॥

कुरआन के दूसरे पारः सयकूल में इस प्रकार लिखा है कि चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड आकाश में झूले की तरह झूल रहा है।

भावार्थ- आकाश में स्थित सभी लोक-लोकान्तर

एक-दूसरे के आकर्षण से स्थित हैं। इसी कारण इन्हें झूले के रूप में वर्णित किया गया है।

भूले सब जुदे पड़े, माएना सबों का एक।

ए सतगुर हादी बिना, क्यों कर पावे विवेक॥१४॥

यद्यपि सभी धर्मग्रन्थों का आशय एक ही होता है , किन्तु अज्ञानतावश संसार के लोग अलग-अलग मत-पन्थों में भटक रहे हैं। सद्गुरु और हादी की शोभा को धारण करने वाले श्री प्राणनाथ जी की कृपा के बिना इन्हें विवेकदृष्टि भला कैसे प्राप्त हो सकती है।

भावार्थ- "हादी" का तात्पर्य होता है- हिदायत करने वाला। ब्रह्मसृष्टियों को हिदायत (सिखापन) मात्र अक्षरातीत ही कर सकते हैं। इसी प्रकार सद्गुरु का अभिप्राय अक्षरातीत से ही लिया जाता है क्योंकि "सद्गुरु

मेरा स्याम जी।" कीर्तन के इस प्रकरण के अवतरण के समय पाँचवे दिन की लीला चल रही थी, इसलिये यहाँ सतगुरु भी श्री जी को ही कहा जायेगा, न कि श्री देवचन्द्र जी को। तारतम ज्ञान को लाने वाले युगल स्वरूप महामति जी के धाम हृदय में ही विराजमान हैं। अतः सदगुरु या हादी का यह प्रसंग श्री प्राणनाथ जी के लिये ही प्रयुक्त होगा।

हवा पार महंमद नूर कह्या, नूर पार तजल्ला नूर।

अर्ज करी वास्ते उमत, पोहोंच के हक हजूर॥१५॥

मुहम्मद सल्लिल्लाहो अलैहि वसल्लम ने कहा है कि निराकार के परे अक्षर ब्रह्म है तथा उसके भी परे अक्षरातीत है। उन्होंने मेयरज (दर्शन की रात्रि) में परमधाम जाकर अक्षरातीत का दीदार किया और अपनी

उम्मत के लिये प्रार्थना भी की।

भावार्थ- यहाँ उम्मत का भाव ब्रह्मसृष्टियों के लिये न होकर मुहम्मद साहिब के अनुयायियों के लिये है क्योंकि कयामतनामा में कहा गया है – "महंमद की जो उमत कही, दस बिध दोजख तिनको भई।" यह तो सर्वविदित ही है कि दोजख मात्र जीवसृष्टियों के लिये ही है , ब्रह्मसृष्टियों के लिये नहीं। मुहम्मद साहिब के समय में तो ब्रह्मसृष्टि आयी ही नहीं थी , इसलिये उनके लिये अर्जी करने का प्रश्न ही नहीं है।

अर्स रुहें आई नहीं, तो यों करी सरत।

कह्या खुदा हम इत आवसी, फरदा रोज कयामत॥

इस प्रकार यह निश्चित है कि यहाँ उनके अनुयायियों के लिये "उमत" शब्द का प्रयोग किया गया है।

नब्बे हजार हरफ कहे, यों कर किया हुकम।

तीस हजार जाहेर करो, आखिर बाकी खोलें हम॥१६॥

अल्लाह तआला ने मुहम्मद साहिब से नब्बे हजार शब्दों (हरफ) में बातें की और यह आदेश दिया कि शरीयत के तीस हजार शब्दों को तुम जाहिर करो। शेष कियामत के समय में मैं स्वयं (आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिबुज्जमां के रूप में) आकर स्पष्ट करूँगा।

सो जाहेरी सब जानत, जो ले खड़े सरीयत।

और मुदा बिलंदी गुझ रख्या, सो खोलसी बीच आखिरत॥१७॥

शरीयत की राह पर चलने वाले ये मुसलमान इस बात को बहुत अच्छी तरह से जानते हैं कि हकीकत और मारिफत के छिपे हुए भेदों को स्वयं खुदा ही कियामत के समय प्रकट होकर खोलेंगे। इन भेदों को उस समय

छिपाकर रखा गया था। इसके खुलने पर ही आखरूल
इमाम की पहचान होगी।

सोई साहेब आखिर आवसी, किया महंमद सों कौल।

भिस्त दरवाजे कायम, सबको देसी खोल॥१८॥

जिस अल्लाह तआला ने मुहम्मद साहिब से कियामत के
समय आने का वायदा किया, वे निश्चित रूप से वक्त-
ए-आखिरत (कियामत के समय) में आयेंगे और सम्पूर्ण
ब्रह्माण्ड के जीवों के लिये अखण्ड बहिशतों का दरवाजा
खोल देंगे।

काजी होए के बैठसी, हिसाब लेसी सबन।

पल में प्रले करके, उठाए लेसी ततखिन॥१९॥

वे सबके न्यायाधीश होकर संसार में विराजमान होंगे

और सबका न्याय करेंगे। एक पल में ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का प्रलय करके योगमाया के ब्रह्माण्ड में अखण्ड कर देंगे।

भावार्थ- खुदा का न्याय कालमाया तथा योगमाया दोनों ही ब्रह्माण्डों में होगा। इस नश्वर जगत में वे आखरूल इमाम मुहम्मद महदी के रूप में प्रकट होकर ज्ञान दृष्टि से न्याय करेंगे अर्थात् तारतम ज्ञान (इल्मे लदुन्नी) से सभी मत-मतान्तरों के विवादों को समाप्त करके एक परम सत्य का उद्घोष करेंगे। इसके पश्चात् योगमाया के ब्रह्माण्ड में कर्मों के अनुसार बहिश्तों का सुख देंगे।

ए सब उमत कारने, आखिर करी सरत।

देसी भिस्त सबन को, सो रूहअल्ला की बरकत॥२०॥

खासलखास ब्रह्मसृष्टियों के कारण ही धनी ने कियामत के समय में आने का वायदा किया था। श्री श्यामा जी की कृपा से ही सभी जीवों को अखण्ड बहिश्तों का सुख प्राप्त होगा।

भावार्थ- इस चौपाई में खुदा की उम्मत अर्थात् ब्रह्मसृष्टियों का प्रसंग है क्योंकि उनको जाग्रत करने के लिये धाम धनी को आना पड़ा, किन्तु इसी प्रकरण की चौपाई १५ में "उमत" शब्द का प्रयोग उन जीवों के लिये किया गया है जो मुहम्मद साहिब के ऊपर ईमान लाये।

सो हुकम हादी का छोड़ के, छोड़ साहेब के पाए।

बीच अंधेरी सुन्य के, जाए जल बिन गोते खाए॥२१॥

शरीयत की राह पर चलने वाले ये मुसलमान हादी श्री प्राणनाथ जी के आदेशों तथा मूल स्वरूप श्री राज जी

(अल्लाह तआला) के चरणों की कृपा का सहारा छोड़ चुके हैं। वे अज्ञान रूपी महाशून्य के अन्धेरे तथा बिना जल वाले इस भवसागर में गोते खा रहे हैं।

भावार्थ- इस संसार को बिना जल वाला भवसागर इसलिये कहा गया है कि इस संसार की प्रत्येक वस्तु स्वप्नवत् है। जिस प्रकार स्वप्न की कोई वस्तु यथार्थ में नहीं होती है किन्तु प्रतीत होती है, उसी प्रकार इस जगत की प्रत्येक वस्तु नश्वर है। उसका अस्तित्व मात्र कुछ समय के लिये ही प्रतीत हो रहा है।

अब पूछो दिल अपना, इत कहां रह्या आकीन।

मुख से कहें हम महंमद के, कायम खड़े बीच दीन॥२२॥

शरीयत की राह पर चलने वाले हे मुसलमानों! अब तुम अपने दिल से पूछकर बताओ कि तुम्हारा विश्वास कहाँ

पर है? तुम तो मात्र दिखावे के लिये ही मुख से कहते हो कि हम मुहम्मद साहिब के बताये हुए मार्ग पर दृढ़ता से खड़े हैं।

ए विचारे क्या करें, सुख ताले लिख्या नाहें।

न तो जान बूझ पढ़े आरिफ, क्यों पड़े दोजख माहें॥२३॥

ये शरीयती मुसलमान बेचारे क्या करें। इनके भाग्य में अध्यात्म का सच्चा आनन्द मिलना लिखा ही नहीं है, अन्यथा धर्मग्रन्थों का इतना ज्ञान प्राप्त करके भी ये दोजक की अग्नि में क्यों जलते।

भावार्थ— प्रायश्चित की अग्नि में जलना ही दोजख की अग्नि में जलना है। जो इस जागनी ब्रह्माण्ड में प्रकट होने वाले परब्रह्म स्वरूप श्री प्राणनाथ जी की पहचान नहीं करेगा, उसे प्रायश्चित की अग्नि में जलना ही पड़ेगा।

तो आंखां मूंदे कहे, और बेहेरे कहे श्रवण।

पढ़े तो पावें नहीं, कुलफ दिलों पर इन॥२४॥

इन लोगों को आँखों से अन्धा और कानों से बहरा कहा गया है। इनके दिलों पर ताला लगा है। भले ही यह धर्मग्रन्थों को पढ़ते रहें, किन्तु अध्यात्म के गुह्य रहस्यों से यह कोसों दूर होते हैं।

भावार्थ— माया में अत्यधिक आसक्त होने के कारण न तो आत्म-दृष्टि खुलती है और न दूसरों की सत्य बातें ही अच्छी लगती हैं। इसे ही अन्धा और बहरा होना कहते हैं। दिल में प्रेम भाव का उदय न होना ही ताला लगना है।

सो पोहोंची सरत सबन की, हुए वेद कतेब रोसन।

ए सदी अग्यारहीं बीच में, होसी दोजख भिस्त सबन॥२५॥

ग्यारहवीं सदी में सबके द्वारा आखरूल इमाम मुहम्मद महदी श्री प्राणनाथ जी के प्रकट होने की जो भविष्यवाणियाँ की गयी थीं, उनके सत्य सिद्ध होने का समय आ गया है। अब वेद और कतेब के गुह्य भेद भी स्पष्ट होने लगे हैं। अब श्री प्राणनाथ जी सबका हिसाब लेकर बहिश्त और दोजक देंगे।

दिया दोऊ हाथों कर, सिर साहेबें खिताब।

महामत खोले सो माएने, आगे अहेल किताब॥२६॥

श्री महामति जी कहते हैं कि धाम धनी ने मेरे सिर पर अपने दोनों वरद हस्त रखते हुए वेद-कतेब के छिपे हुए रहस्यों को खोलने की शोभा दी।

ए अहमद अल्ला के हुकमें, महंमद कहा समझाए।

अब क्या कहिए तिनको, जो ए सुनके फेर उरझाए॥२७॥

श्री महामति जी (मुहम्मद) के धाम हृदय में श्री राज जी (अल्लाह) और श्यामा जी (अहमद) विराजमान हैं। उनके हुकम से मैंने ये सारी बातें समझाकर कही हैं। इन अनमोल वचनों को सुनने के पश्चात् भी जो शरीयत के जाल में पुनः उलझ जाये, उस भाग्यहीन (बदनसीब) को क्या कहा जाये।

प्रकरण ॥६६॥ चौपाई ॥८३२॥

राग सिंधुड़ा

वाटडी विसमी रे साथीडा बेहदतणी, ऊवट कोणे न अगमाय।

खांडानी धारे रे एणी वाटें चालवूं, भाला अणी केहेने न भराय॥१॥

हे सुन्दरसाथ जी! बेहद की राह बहुत कठिन और ऊँची-नीची है। इस पर हर कोई नहीं चल पाता। इसकी राह पर चलना भाले की नोक तथा तलवार की धार पर चलने के समान इतना कठिन है कि उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

भावार्थ- बेहद की राह को भाले की नोक तथा तलवार की धार पर चलने के समान कठिन बताया गया है, क्योंकि स्वर्ग, वैकुण्ठ में तो कर्मकाण्ड, पुण्य-संचय, और तप से प्रवेश कर लिया जाता है, किन्तु बेहद की प्राप्ति इन साधनों से नहीं हो पाती। इसकी प्राप्ति के लिये

शुद्ध ब्रह्मज्ञान तथा प्रेम भरे कोमल और निर्विकार हृदय की आवश्यकता होती है। इस राह पर सांसारिक जीव चल नहीं पाते। उनके लिये यह मार्ग बहुत ही कष्टकारी प्रतीत होता है।

आडी ने आडी रे अग्नी जोने पर जले, वैराट माहें न समाय।
ब्रह्मांड फोडीने झालो जोने नीसरी, ओलाडी ते केहेने न जाये॥२॥

इस ब्रह्माण्ड में चारों ओर अज्ञानता की भरपूर अग्नि जल रही है, जिसमें भक्ति, वैराग्य, शील, सन्तोष आदि के पंख जल जाया करते हैं। अज्ञानता की अग्नि की लपटें इस ब्रह्माण्ड के बाहर भी फैली हुई हैं, जिनको उलंघकर कोई भी अखण्ड धाम में नहीं जा पाता।

इहां हस्ती थई ने एणी वाटे हींडवूं, पेंसवूं सुईना नाका मांहें।

आल न देवी रे भाई आकार ने, झांप तो भैरव खाए॥३॥

बेहद के इस मार्ग पर हाथी की तरह चलना है। सुई के छिद्र में से धागे की तरह निकल जाना है। हे भाइयों! अपने शरीर को थोड़ा भी आलस्य न देकर अपने आत्मिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिये भैरव झाँप खानी है।

भावार्थ— जिस प्रकार हाथी अपनी मस्ती भरी चाल में चलता जाता है, किसी की भी परवाह नहीं करता, उसी प्रकार बेहद के राही को मान-अपमान, सुख-दुःख, और जय-पराजय में सम रहते हुए साधना-पथ पर आगे बढ़ते जाना चाहिए। सुई के सूक्ष्म छिद्र में जिस प्रकार बहुत सावधानी से धागा डाला जाता है, उसी प्रकार अपनी वृत्तियाँ को संसार से सिकोड़कर (एकाग्र कर) उस परब्रह्म के ध्यान में डूब जाना चाहिए। जिस

प्रकार भैरव देवता को खुश करने के लिये पहाड़ से छलांग लगाई जाती है, उसी प्रकार प्रियतम अक्षरातीत को पाने के लिये अपने तन, मन, एवं जीव को न्योछावर करने में थोड़ी सी भी झिझक नहीं रखनी चाहिए।

ओतड दीसे रे अति घणूं दोहेली, हाथ न थोभे रे पाय।

काम नहीं रे इहां कायर तणूं, सूरें पूरे घायलें लेवाय॥४॥

यह बेहद का ऊँचा-नीचा मार्ग बहुत ही कठिन है। यहाँ पर विषयों की आसक्ति रूपी ऐसी फिसलन है, जिस पर हाथ और पैर टिकते ही नहीं हैं। यहाँ कायरों का काम नहीं है। ज्ञान और प्रेम के क्षेत्र में वीरता दिखाने वाले पूर्ण वीर पुरुष ही इस मार्ग पर चल सकते हैं, जो माया के अस्त्रों-शस्त्रों से घायल होने पर भी आगे बढ़ते जायें।

सागरना पंथ रे बीजा जो ने पाधरा, चाले चाले उतरता उजाए।
स्वांत लई ने सेहेजल सुखमां, प्रघल जाये रे प्रवाहे॥५॥

इस संसार-सागर में कर्मकाण्ड के दूसरे रास्ते सरल हैं, जो बहुत ही आराम से चलकर पार किये जा सकते हैं। कर्मकाण्ड की राह पर चलने से शान्तिपूर्वक एवं सरलता से माया के सुख प्राप्त हो जाते हैं, किन्तु इससे माया के प्रवाह में बहना (डूबना) पड़ता है।

ते तो आकार करे रे जोने उजला, माहें तो अधम अंधार।
खाय ने पिए रे सेज्या सुख भोगवे, एणी वाटे चालतां करार॥६॥

कर्मकाण्डों की राह पर चलने वाले लोग अपने शरीर को साफ-सुथरा रखने में ही सारा ध्यान लगा देते हैं, किन्तु उनके हृदय में माया का घना अन्धकार छाया होता है। वे स्वादिष्ट भोजन करने, मधुर पेय पीने, और कोमल

सेज्या (शैया) का सुख भोगने में ही अपने जीवन की सार्थकता तथा आनन्द समझते हैं।

भ्रांत माहेली जिहां भाजे नहीं, तिहां लगे जाये नहीं कपट।

भेख ने बनावो रे अनेक विधना, पण मूके नहीं वेहेवट॥७॥

जब तक अपने अन्दर की भ्रान्तियों का नाश नहीं होता, तब तक मन से कपट नहीं निकल सकता। हे संसार के लोगों! भले ही तुम अनेक प्रकार की वेशभूषा बना लो, लेकिन माया में फँसे रहने की जो लोकरीति है, वह तुमसे नहीं छूट पाती है।

भावार्थ— कपट का अर्थ होता है— मन में कुछ हो तथा वाणी में कुछ और हो। जब तक तारतम ज्ञान से मन के संशय नहीं मिटते और एक परब्रह्म की पहचान नहीं होती, तब तक उससे प्रेम नहीं हो सकता। वेशभूषा और

कर्मकाण्डों से परब्रह्म के प्रेम में डूबे रहने का दावा करना, किन्तु मन को तृष्णाओं के जाल में फँसाये रखना ही कपट है।

वेहद वाटे रे कपट चाले नही, राखें नहीं रज मात्र।
 जेने आवो रे ते तो पेहेलूं आगमी, पछे ने करूं प्रेम ना पात्र॥८॥
 बेहद की राह में थोड़ा भी छल-कपट नहीं चल सकता।
 इस राह पर चलने के लिये जो सबसे पहले मेरे पास
 आयेगा, उसे मैं प्रेम का पात्र बना दूँगा।

भ्रांत माहेली रे महामत भाजवी, रदे माहें करवो प्रकास।
 पछे ने देखाडूँ घेर मुख आगल, जेम सोहेलो आवे मारो साथ॥९॥
 श्री महामति जी कहते हैं कि अपने पास आने वालों का
 मैं तारतम ज्ञान से संशय मिटाऊँगा तथा उनके हृदय में

तारतम ज्ञान का प्रकाश कर दूँगा। उन्हें निज घर एवं
अक्षरातीत की शोभा का अनुभव कराऊँगा, जिससे मेरा
सुन्दरसाथ बहुत ही सरलता से धनी के चरणों में
आयेगा।

प्रकरण ॥६७॥ चौपाई ॥८४१॥

राग श्री धौल धना

इस प्रकरण में हृद से बेहृद में जाने के मार्ग पर प्रकाश डाला गया है।

अटकलें ए केम पांमिए, ए तो नहीं पंथ प्रपंच मारा संमंधी।

एणे पगले न पोहोंचाय, जिहां चोकस न कीजे चित मारा संमंधी॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि परमधाम से आये हुए मेरे आत्म-सम्बन्धी सुन्दरसाथ जी! अटकल के (संशयात्मक) ज्ञान से परब्रह्म को नहीं पाया जा सकता। यह झूठ का मार्ग नहीं है। जब तक चित्त को दृढ़तापूर्वक प्रियतम की ओर न लगाया जाये, तब तक मिथ्या मार्गों से धनी तक नहीं पहुँचा जा सकता।

जिहां अटकल तिहां भ्रांतडी, अने भ्रांत तो थई आडी पाल।

पार जवाय पूरण दृष्टे, इहां रज न समाय पंपाल॥२॥

जहाँ अटकल का ज्ञान होता है, वहाँ भ्रान्ति अवश्य होती है। मन में भ्रान्ति ही प्रियतम के दीदार में परदे का काम करती है। निराकार से परे जाने के लिये ज्ञान की पूर्ण दृष्टि होनी चाहिए। इस मार्ग पर रंचमात्र भी झूठ नहीं चल सकता।

भावार्थ— जिस प्रकार यश में कीर्ति और अहंकार में अस्मिता का अस्तित्व बीज रूप में होता है, उसी प्रकार संशय में भ्रान्ति की स्थिति होती है। परब्रह्म को पाने के लिये संशयरहित ज्ञान होना अनिवार्य है।

भ्रांत आडी जिहां भाजे नहीं, तिहां माहें थी न पूरे साख।

वचन रुदे प्रकासी ने, जिहां आतमा न देखे साख्यात॥३॥

प्रियतम के दीदार में बाधक इस भ्रान्ति का जब तक विनाश नहीं होगा, तब तक अन्तरात्मा से धनी के प्रति समर्पण की साक्षी नहीं मिल सकती। जब तक हृदय में तारतम ज्ञान का प्रकाश नहीं होता, तब तक आत्मा को भी अपने प्राणवल्लभ का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं प्राप्त होता।

इहां सर्व ने साख पुराविए, गुण अंग इंद्री ने पख।

आउध सर्वे संभारिए, ए तो अलख नी करवी छे लख॥४॥

यदि उस अलख अगोचर परब्रह्म का साक्षात्कार करना है, तो सभी धर्मग्रन्थों से साक्षी लेकर परब्रह्म के धाम, स्वरूप, तथा लीला की पहचान करनी पड़ेगी। अपने गुण, अंग, इन्द्रियों, एवं पक्षों को परब्रह्म के प्रति समर्पित करना (लगाना) पड़ेगा। इसके साथ ही ईमान, इश्क, शुक्र, गरीबी (विनम्रता), एवं सन्तोष रूपी हथियारों को

भी तैयार रखना होगा।

वाट बिना इहां चालवूं, अने पग बिना करवूं पंथ।

अंग विना आउध लेवा, जुध ते करवूं निसंक॥५॥

बेहद में प्रवेश के लिये बिना मार्ग के ही चलना है, वह भी बिना पैरों के। बिना अंगों के हथियार भी पकड़ना है और निडर होकर माया से युद्ध भी करना है।

भावार्थ- महाशून्य का विस्तार मानवीय बुद्धि के लिये अनन्त है। इससे होकर ऐसा कोई निश्चित मार्ग नहीं जाता है, जिससे बेहद मण्डल में प्रवेश किया जा सके। धाम धनी की कृपा, समर्पण, और विरह के आसुओं से ही अहंकार को छोड़कर निराकार को पार किया जा सकता है। वहाँ स्थूल पैरों से नहीं, बल्कि ध्यान द्वारा ही जाया जा सकता है। इसे ही बिना मार्ग और पैरों के जाना कहते

हैं। श्रद्धा, समर्पण, इश्क, ईमान (अटूट विश्वास), विनम्रता आदि हथियारों को धारण करने के लिये किसी स्थूल अंग की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि ये तो हृदय में ही धारण किये जाते हैं।

सुपन माहें सुख साख्यात लेवूं, तो निद्रामा केम लेवाए।

जागी अखण्ड सुख ओलखिए, आ सुपन लगाडिए वली ताहें॥६॥

इस स्वप्न के ब्रह्माण्ड में यदि बेहद के अखण्ड सुखों को प्रत्यक्ष रूप से लेना है, तो माया की नींद में उन्हें कैसे लिया जा सकता है। यदि आत्मिक दृष्टि से जाग्रत होकर अखण्ड सुखों की पहचान हो जाती, तो इस स्वप्न के ब्रह्माण्ड में भी उन सुखों की अनुभूति हो सकती है।

भावार्थ— जब आत्मा तारतम ज्ञान द्वारा जाग्रत होकर

माया से परे अपने अखण्ड सुखों की पहचान कर लेती है, तो प्रेम-विरह में डूबकर उन सुखों की अनुभूति इसी नश्वर ब्रह्माण्ड में कर लेती है।

एम ने अखण्ड सुख उदे थयूं, ज्यारे समझया सुपन मरम।
जागी साख्यात बेठा थैए, त्यारे आगल पूरण पारब्रह्म॥७॥

जब इस स्वप्न के ब्रह्माण्ड का रहस्य समझ में आ जाता है, तो आत्मा के हृदय में बेहद एवं परमधाम के अखण्ड सुख का प्रकटन हो जाता है। आत्मा अपने प्रियतम के प्रेम में डूबकर जाग्रत हो जाती है तथा अपनी दृष्टि से पूर्ण ब्रह्म का साक्षात्कार भी कर लेती है।

वचने कामस धोई काढिए, राखिए नहीं रज मात्र।
जोगवाई सर्वे जीतिए, त्यारे थैए प्रेमना पात्र॥८॥

ब्रह्मवाणी के वचनों से अपने हृदय को धोकर अन्दर के विकारों को इस प्रकार निकाल दीजिए कि रंचमात्र भी अंश न रह जाये। आप उस दिव्य प्रेम के पात्र तभी बन सकते हैं, जब आपका अपने दिल (मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार) एवं इन्द्रियों पर अधिकार हो।

भावार्थ— शुद्ध ब्रह्मज्ञान द्वारा जीव के अन्दर यह विवेक पैदा होता है कि मेरा निज स्वरूप शुद्ध-बुद्ध है। इन मायावी विकारों में ही फँसे रहना मेरे जीवन का उद्देश्य नहीं है। इस प्रकार विकारों से दूर होने का वह दृढ़तापूर्वक संकल्प करता है। विरह और प्रेम की अग्नि उसके सभी विकारों को भस्मीभूत कर डालती है।

ए पगले एणे पंथडे, प्रेम विना न पोहोंचाय।

वैकुण्ठ सुन्य ने मारगे, बीजी अनेक कथनी कथाय॥९॥

बेहद की इस राह पर बिना प्रेम की चाल के नहीं चला जा सकता। वैकुण्ठ और शून्य तक जाने के लिये तो संसार में अनेक मार्ग बताये गये हैं।

भावार्थ- जहाँ तप और धर्माचरण द्वारा वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है, वहीं राजयोग, नादयोग, लययोग, हठयोग आदि साधनाओं से महाशून्य की प्राप्ति होती है। बिना प्रेम के बेहद में पहुँचना मात्र कल्पना है।

ए तो हद नहीं आ तो बेहद, इहां अनेक अटकलो तणाय।

अनेक सूरुा संग्राम करे, अनेक उथडतां जाये॥१०॥

यह हद का नहीं अपितु शब्दातीत बेहद का ब्रह्माण्ड है, जिसके विषय में अनेक ज्ञानीजन अटकलों के सहारे काम चलाते रहे। ऋषि, मुनि, योगी, यति आदि अनेक मनीषियों ने इसकी प्राप्ति के लिये माया से संघर्ष किया,

किन्तु वे महाशून्य में ही उलझकर रह गये।

साध सूरधीर अनेक मलो, अनेक जाओ वैकुंठ पार।

पण अखण्ड तणां दरवाजा कोणें, ते तो नव उघडे निरधार॥११॥

यदि इस संसार के बड़े-बड़े साधू, तथा ज्ञान एवं भक्ति के क्षेत्र में वीरता दिखाने वाले महात्माजन मिलकर प्रयास करें, तो भी वे वैकुण्ठ और उसके परे निराकार में ही जा सकते हैं, किन्तु उसके परे बेहद के अखण्ड धाम में कोई भी नहीं जा सका है।

भावार्थ— अक्षर ब्रह्म की पञ्चवासनाओं तथा उनके कृपापात्रों के अतिरिक्त अन्य कोई भी जीव अब तक बेहद में प्रवेश नहीं कर सका है।

तमने मोटी मतवाला साध देखाडूं, जेणे भरया ब्रह्मांडमां पाय।

कोई वैकुण्ठ कोई सुन्य मंडलमां, एटला लगे पोहोंचाय॥१२॥

मैं आपको इस ब्रह्माण्ड में ज्ञान का भण्डार कहे जाने वाले महात्माओं के विषय में बताता हूँ, जिन्होंने बेहद में पहुँचने का प्रयास किया। उनकी प्राप्ति इतनी ही रही कि उनमें से कोई या तो वैकुण्ठ में पहुँचा या शून्य-निराकार में।

पारब्रह्म पाम्यां तणां, अनेक उदम करे साध।

चढ़ी वैकुण्ठ आघा वहे, तिहां तो आडी छे अगम अगाध॥१३॥

सच्चिदानन्द परब्रह्म को पाने के लिये साधू-महात्माओं ने बहुत प्रयास किया। वे वैकुण्ठ को पार करके जैसे ही आगे बढ़े, तो सामने चारों ओर महाशून्य (निराकार) का मण्डल आड़े आ गया जिसका विस्तार अनन्त है और

जिसे कोई पार नहीं कर पाता।

साध आउध सर्वे साचवी, जुध ते करतां जाये।

लोही मांस न रहे अंग ऊपर, वचमां स्वांस न खाय॥१४॥

साधू-महात्मा अपने ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, और तप आदि आयुधों को लेकर माया से युद्ध करते हैं। वे दसवें द्वार (सहस्रार) में अपनी प्राणवायु को इस प्रकार रोक देते हैं कि उन्हें साँस लेने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। अत्यधिक कठोर साधना के कारण उनके शरीर में रक्त और माँस भी नहीं रह जाता है (बहुत थोड़ा रह जाता है)।

भावार्थ- स्वाँस न लेना एक मुहावरा भी है, जिसका अर्थ होता है- बिना रुके लगातार कार्य करते जाना। यह प्रसंग योग से जुड़ा हुआ है, अतः यहाँ हठयोग की उस

जड़ समाधि का वर्णन है, जिसमें भूख, प्यास, तथा श्वास लेने और बाहर छोड़ने की क्रिया नहीं होती। इस प्रकार की जड़ समाधि से परब्रह्म का दर्शन नहीं हो सकता।

चौदे चढी चाले एणी विधें, आगल निराकार केहेवाय।

तिहां पंथ न थाय पग थोभ बिना, साध इहां जईने समाय॥१५॥

इस प्रकार चौदह लोकों को पार करके जब वे आगे जाते हैं, तो आगे निराकार का मण्डल आ जाता है। उस शून्य मण्डल में न तो कोई रास्ता है और न कोई चलने के लिये सहारा। विवश होकर महात्मा लोग निराकार में भटक जाते हैं।

भावार्थ— स्थूल शरीर की लीला पृथ्वी लोक पर ही है। स्वर्ग, वैकुण्ठ आदि लोकों में सूक्ष्म शरीर की लीला होती है। महाशून्य में स्थूल पैरों से चलने की बात ही नहीं है,

अतः पैरों के सहारे से रहित कहा गया है। स्थूल जगत में सूक्ष्म, कारण, तथा महाकारण शरीरों से भ्रमण किया जा सकता है, किन्तु महाशून्य (मोह तत्व, महाकारण) में मात्र महाकारण और कैवल्य शरीर ही भ्रमण कर सकता है, सूक्ष्म या कारण नहीं। यहाँ पर ध्यान द्वारा जाने का प्रसंग है, शरीर द्वारा जाने का नहीं।

केटलाक जोर करे जुध करवा, पण पग पंथ सब्द न कोय।

सूं करे साध सनंध विना, मोटी मत वाला जोय॥१६॥

माया से होने वाले इस युद्ध में साधू-महात्मा कितनी ही शक्ति क्यों न लगायें, कोई सार्थक परिणाम नहीं निकल पाता, क्योंकि वहाँ न तो कोई जाने का मार्ग है और न कोई शब्द है। ज्ञान के सागर कहे जाने वाले बड़े-बड़े साधू-महात्मा भी इस महाशून्य की वास्तविकता को

जाने बिना भला क्या कर सकते हैं।

आ पांचे तणूं मूल कोय न प्रीछे, अनेक करे छे उपाय।

साध मोटा पोहोंचे सुन्य लगे, पण सत सुख केणे न लेवाय॥१७॥

इन पाँच तत्त्वों का मूल कहाँ पर है, यह जानने के लिये बहुत से साधू-महात्मा प्रयास तो करते हैं, लेकिन वे बता नहीं पाते। बड़े-बड़े साधू-महात्मा निराकार तक तो पहुँच जाते हैं, लेकिन उनमें से कोई भी अखण्ड धाम का सुख नहीं ले पाता।

वेदें वैराट जोयूं दसों दिसा, कही आ पांच चौदनी उतपन।

चौद लोक जोया चारे गमा, चाल्या आघा जोवा माहें सुन॥१८॥

वेदों के आधार पर साधू-महात्माओं ने इस ब्रह्माण्ड की दशों दिशाओं में देखा। उन्होंने यह बात कही कि इन

पाँच तत्वों से ही चौदह लोकों की उत्पत्ति हुई है। जब उन्होंने चौदह लोकों के चारों ओर देखा, तो आगे केवल अनन्त महाशून्य ही दिखायी दिया।

भावार्थ- इस प्रकरण की चौपाई १८, १९, २०, तथा २१ में वेद का वर्णन आलंकारिक भाषा में एक मनुष्य की तरह किया गया है, जो परमात्मा की खोज करता है। वस्तुतः वेद सृष्टि का प्राचीनतम् धर्मग्रन्थ है, जो ईश्वरीय वाणी होने के कारण अपौरुषेय माना जाता है। वेदों का अध्ययन करके मनीषियों ने जो कुछ समझा, उसे वेदों का कथन माना गया, किन्तु यह भी सम्भव है कि वेद में शाश्वत सत्य के जो अनमोल मोती बिखरे पड़े हैं, उन पर मनीषियों का अधिकार न हो पाया हो। तारतम ज्ञान के बिना वेदों के अनसुलझे रहस्यों को कदापि नहीं जाना जा सकता। इस प्रकार की इन चारों चौपाइयों में "वेद"

नाम से ऋषि-मुनियों द्वारा लिखित वैदिक ग्रन्थों (ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, दर्शन इत्यादि) का कथन मानना चाहिए, मूल वेद (संहिता भाग) का नहीं।

सुन्य जोयूं घणूं श्रम करी, त्यारे नाम धराव्या निगम।

सनंध न लाधी सुन्य तणी, त्यारे कहीनें वल्या अगम॥१९॥

महाशून्य को पार करने के लिये वैदिक ग्रन्थों के आधार पर मनीषियों ने बहुत अधिक परिश्रम किया, किन्तु जब वे निराकार मण्डल को पार न कर सके, तो उन्होंने निराश होकर परब्रह्म को मन, वाणी, और शून्य से परे "अगम" कहकर वर्णन किया।

भावार्थ- इस चौपाई में "निगम" शब्द का प्रयोग वेदों के व्याख्या ग्रन्थों के लिये होता है। मनुस्मृति के कथन "निगमांश्चैव वैदिकान्" से इसकी पुष्टि होती है। मनीषियों

द्वारा वेदों की व्याख्या में लिखे गये ग्रन्थों में निराकार से आगे का वर्णन नहीं है। इस चौपाई में यही बात दर्शायी गयी है। यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि मूल संहिता भाग में ब्रह्म को निराकार मानने का कथन नहीं है।

वेदे वलतां वाणी जे ओचरी, ते तां चढी वैराट ने मुख।

कुलिए ते लई मुख विप्रोने, करी आपी व्रत भख॥२०॥

महाशून्य का अनुभव करने के पश्चात् (लौटते हुए) मनीषियों ने वैदिक धर्मग्रन्थों के रूप में जो कुछ भी कहा, उसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ने ग्रहण कर लिया। कलियुग में मात्र जन्म के आधार पर पण्डित कहलाने वाले लोगों ने उसे अपनी आजीविका का साधन बना लिया।

वेद सनमुख चढ़या ज्यारे ऊंचा, त्यारे मूल हता पाताल।

फरीने वाणी पाछी वली, त्यारे थया मूल ऊंचा ने नीची डाल॥२१॥

वेदों के चिन्तन-मनन के आधार पर होने वाली खोज जब आगे बढ़ी, तो यह कार्य पाताल से प्रारम्भ हुआ था अर्थात् वह मूल (जड़ या प्रारम्भ) था। महाशून्य की खोज के पश्चात् जब वर्णन प्रारम्भ हुआ (लौटने लगे), तो ब्रह्माण्ड से भी ऊपर अनन्त विस्तार वाले निराकार से प्रारम्भ हुआ और समापन हुआ पाताल के वर्णन से। इसी को सबसे नीचा अर्थात् बाद का वर्णन माना गया।

भावार्थ- कठोपनिषद्, गीता १५/१, और अन्य धर्मग्रन्थों में इस संसार की तुलना ऐसे वृक्ष से की गयी है, जिसकी जड़ें ऊपर आकाश में तथा डालियाँ नीचे पाताल में लटकी हुई हैं। इसका भाव यह है कि निराकार (महाशून्य) ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति का उपादान

कारण (मूल या जड़) है। जिस प्रकार एक वृक्ष में बहुत सी शाखायें (डालियाँ) होती हैं, उसी प्रकार निराकार रूपी मोहसागर से अनन्त ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती रहती है।

कल्प विरिख तिहां वेद थयो, तेहेनूं फल निपनूं भागवत।

बन पकव रस ग्रही मुनि थया, एम सुकें परसव्या संत॥२२॥

वेद उस कल्प वृक्ष के समान है जो धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष रूपी फल को प्रदान करता है। उस वृक्ष का फल भागवत है। श्री शुकदेव मुनि जी ने उस भागवत रूपी पके हुए फल के रस "रास पंचाध्यायी" को ग्रहण करके सन्तों में बाँटा।

भावार्थ- वेद का मूल विषय अक्षर ब्रह्म और योगमाया का ब्रह्माण्ड है। गीता का यह कथन "यदक्षरं ब्रह्मविदो वदन्ति" इसकी दृढ़ता से पुष्टि करता है। भागवत के रास

"पंचाध्यायी" में योगमाया के ब्रह्माण्ड में अखण्ड रूप से होने वाली उस महारास का वर्णन है, जो ब्रह्मानन्द को दर्शाती है। इस प्रकार वेद ने ब्रह्म के धाम, स्वरूप, और लीला पर जो प्रकाश डाला है, उसका प्रत्यक्ष प्रमाण पंचाध्यायी रास है। इसी कारण वेद रूपी कल्पवृक्ष का फल भागवत (दशम स्कन्ध) माना गया है। दशम स्कन्ध का भी रस "पंचाध्यायी" रास है, जो जीवन के सर्वोपरि लक्ष्य की ओर संकेत करती है। मात्र दशम स्कन्ध में ही परब्रह्म द्वारा की गयी व्रज और रास की लीला का वर्णन है, शेष स्कन्धों में लौकिक विषयों का ही ज्ञान है।

ए रस सनमुख साध लई ने, वैकुण्ठ सुन्य समाय।

बीजा काष्ट भखी जन जे हेठां उतरया, तेतां जल बिना लेहेरें पछटाय॥२३॥

शुकदेव जी द्वारा बाँटे गये इस अखण्ड रस को पाकर

भी साधू-महात्मा वैकुण्ठ-निराकार तक ही जा पाते हैं। फल के रस को छोड़कर लकड़ी चबाने वाले, अर्थात् कर्मकाण्डों में लिप्त रहने वाले, नीचे के लोकों में ही भटकते रहते हैं और बिना जल वाले इस भवसागर की लहरों में दुःखी होते रहते हैं।

भावार्थ- पंचाध्यायी रास का ज्ञान पाने के पश्चात् भी तारतम्य ज्ञान के न होने से बड़े-बड़े ज्ञानी अभी तक यह नहीं जान पाये हैं कि अखण्ड महारास कहाँ पर हो रही है। इस प्रकार वे भी वैकुण्ठ-निराकार से आगे नहीं बढ़ पाते। कर्मकाण्ड को ही सर्वस्व मानने वाले लोग तो जन्म-मरण के चक्र से ही नहीं निकल पाते क्योंकि उन्हें परब्रह्म के धाम, स्वरूप, तथा लीला के विषय में कोई भी जानकारी नहीं हो पाती।

प्रकरण ॥६८॥ चौपाई ॥८६४॥

इस प्रकरण में महाशून्य के ऊपर प्रकाश डाला गया है।

सुन्य मंडल सुध जो जो मारा संमंधी, आ इंडू जेहेने आधार।

नेत नेत कही ने निगम वलिया, निगम ने अगम अपार॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरे आत्म –सम्बन्धी सुन्दरसाथ जी! इस महाशून्य मण्डल की वास्तविकता को समझिए (ज्ञान दृष्टि से देखिए)। इस ब्रह्माण्ड का आधार भी यही है अर्थात् इसी महाशून्य से यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है। इसी अनन्त और पार न किये जा सकने वाले महाशून्य (मोहसागर) से सभी मनीषियों को लौटना पड़ा। उन्होंने वेदों की व्याख्या में इसी कारण परब्रह्म के लिये "नेति-नेति" शब्द का प्रयोग किया।

इहां आद अंत नहीं थावर जंगम, अजवास न कांई अंधार जी।

निराकार आकार नहीं, नर न केहेवाय कांई नार जी॥२॥

महाशून्य (मोहसागर) का यह मण्डल इतना विचित्र है कि इसका न तो आदि (प्रारम्भ) है और न अन्त है। न इसे स्थावर (स्थिर रहने वाला) और न ही जंगम (चलने वाला) कह सकते हैं। न तो यह उजाला है और न ही अंधेरा है। न निराकार है और न ही साकार है। न तो इसे पुरुष और न ही स्त्री कह सकते हैं।

भावार्थ- मोहसागर ही महामाया है, जिसका स्वरूप अव्यक्त है। मन-बुद्धि से उसके स्वरूप का स्पष्ट निर्धारण नहीं किया जा सकता। तारतम ज्ञान द्वारा इस प्रकरण में उसके स्वरूप के सम्बन्ध में सांकेतिक निर्देश दिया गया है। उसे स्थावर या जंगम इसलिये नहीं कह सकते क्योंकि सृष्टि से पूर्व उसकी स्थिति "सुषुप्ति" जैसी

होती है, किन्तु ब्रह्म के संकल्प से सूक्ष्मतम कणों में गति प्रकट होती है जिससे सृष्टि का प्रकटन होता है। इसका मूल स्वरूप अन्धकारमय है, किन्तु यह असंख्य सूर्यों को उत्पन्न करने वाला है, अर्थात् अपने अन्धकारमय स्वरूप में यह असंख्य सूर्यों को छिपाये बैठा है, इसलिये न तो इसे अन्धकार और न प्रकाश का स्वरूप कह सकते हैं। स्वयं निराकार होते हुए भी साकारमयी सृष्टि को अपने गर्भ में छिपाये हुए है, इसलिये न इसे निराकार और न साकार कह सकते हैं। सभी नर-नारियों के शरीर इसी से उत्पन्न होते हैं। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठता है कि इसे स्त्रीलिंग में माना जाये या पुल्लिंग में।

नाम न ठाम नहीं गुन निरगुन, पख नहीं परवान जी।

आवन गवन नहीं अंग इन्द्री, लख न काँई निरमान जी॥३॥

इस महाशून्य के अन्दर न तो सम्बोधन के लिये नाम के रूप में कोई शब्द प्रयुक्त हो सकता है और न ही निवास के लिये कोई स्थान है। यहाँ गुणों से युक्त या गुणों से रहित कोई भी पदार्थ नहीं है। निश्चित रूप से यहाँ अन्तःकरण, इन्द्रियों, या पक्ष का भी अस्तित्व नहीं है। यहाँ गमन, आगमन, तथा पहचान की भी प्रक्रिया नहीं है।

इहां रूप न रंग नहीं तेज जोत, दिवस न कांई रात जी।

भोम न अगिन नहीं जल वाए, न सब्द सोहं आकास जी॥४॥

यहाँ पर किसी भी प्रकार का रूप-रंग नहीं है। न ही किसी प्रकार के तेज या ज्योति का अस्तित्व है। दिन या रात्रि की लीला भी यहाँ नहीं है। यहाँ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, तथा आकाश का भी अस्तित्व नहीं है। यहाँ तक

कि "सोऽहम्" शब्द भी नहीं है।

भावार्थ- महाशून्य का स्वरूप इतना सूक्ष्म है कि उसमें इस चौपाई में वर्णित रूप, रंग, तेज, ज्योति, तथा पाँचों तत्वों का स्वरूप व्यक्त रूप में नहीं है, किन्तु ये सभी उसी से प्रकट होते हैं।

इहां रस न धात नहीं कोई तत्व, गिनान नहीं बल गंध जी।

फूल न फल नहीं मूल बिरिख, भंग न कांई अभंग जी॥५॥

यहाँ किसी भी प्रकार के रस, धातु, या तत्व का व्यक्त रूप नहीं है। यहाँ किसी भी प्रकार के ज्ञान, शक्ति, या गन्ध का भी अहसास नहीं है। किसी भी प्रकार के फल-फूल और वृक्ष के मूल अर्थात् बीज का भी कोई व्यक्त रूप में अस्तित्व नहीं है। जीवन और मरण का भी यहाँ पर चिह्न नहीं है।

अखंड तणां दरवाजा आडी, सुन्य मंडल विस्तार जी।

एणें ठेकाणें बेठी अच्छी, बांधी ने हथियार जी॥६॥

महाशून्य का यह अनन्त मण्डल अखण्ड धाम के परदे के रूप में है। इसका विस्तार बेहद के दरवाजे (अव्याकृत) तक है। इसी महाशून्य में कालमाया की वह शक्ति हथियार लेकर बैठी है, जिसको कोई जीत नहीं पाता।

भावार्थ- प्रणव (ॐ) की आह्लादिनी शक्ति रोधिनी है। यह किसी को भी अखण्ड धाम में प्रवेश नहीं करने देती, इसलिये इसको आलंकारिक रूप में हथियार बाँधे हुए दर्शाया गया है। रोधिनी शब्द का अर्थ ही होता है अवरुद्ध कर देने वाली। अव्याकृत के स्थूल को प्रणव (ॐ) से व्यक्त करते हैं। उनके प्रतिबिम्बित रूप आदिनारायण को भी जब ॐ से व्यक्त किया जाता है,

तो कालमाया की उस शक्ति को भी रोधिनी ही कहा जायेगा।

ए बल जो जो बलवंती नूं, एहनो कोई न काढे पार जी।
 अनेक उपाय कीधां घणें, पण कोए न पोहोंता दरबार जी॥७॥
 इस अति शक्तिशालिनी रोधिनी के बल को देखिए। कोई भी इससे पार नहीं पाता है अर्थात् इसे हराकर निराकार को उलंघ नहीं पाता है। इसको जीतने के लिये बहुत लोगों ने अनेक प्रयास किये, किन्तु कोई भी बेहद में नहीं पहुँच सका।

कोई न पोहोंतो इहां लगे, एहनो बोली मारे प्रताप जी।
 आ पांचो एहनी छाया पड़ी छे, ए सुन्य मंडल विस्तार जी॥८॥
 कोई भी व्यक्ति (पञ्चवासनाओं और ब्रह्मसृष्टियों को

छोड़कर) इस रोधिनी शक्ति को पार करके अखण्ड बेहद में नहीं जा सका है। सबको रोकने की अपनी इच्छा शक्ति (बोली) से ही यह बड़े-बड़े योगिराजों की शक्ति को क्षीण कर देती है। ये पाँचों तत्व इस अनन्त विस्तार वाले महाशून्य की छाया मात्र हैं।

भावार्थ- यह जिज्ञासा पैदा होती है कि पाँचों तत्व किसकी छाया हैं- काल निरञ्जन शक्ति की, रोधिनी शक्ति की, या महाशून्य की?

काल निरञ्जन का प्रतिबिम्ब तो महत्तत्त्व है। रोधिनी शक्ति प्रणव की आनन्द शक्ति होने से चेतन होनी चाहिए। उसके प्रतिबिम्ब स्वरूप जड़ रूप में पाँच तत्व नहीं हो सकते। महाशून्य का जब रूप ही नहीं, तो उसका प्रतिबिम्ब कैसे बनेगा?

इन प्रश्नों का समाधान श्रीमुखवाणी से होता है-

ए पेड़ काली किन देखी नहीं, सब रहे छाया में उरझाए।

गम छाया की भी न पड़ी, तो पेड़ पार क्यों लखाए॥

इस चौपाई से यह स्पष्ट होता है कि उस महामाया (कालमाया, महाशून्य) का छाया रूप पंच तत्व, अष्टावरण, महत्तत्व आदि हैं। छाया का अर्थ मात्र प्रतिबिम्ब ही नहीं होता।

छाया शब्द का प्रयोग आलंकारिक रूप में भी होता है, जैसे किसी व्यक्ति में किसी दूसरे के आचरण, शक्ति, या ज्ञान का अंश होता है, तो यही कहा जाता है कि उस व्यक्ति में उसकी छाया है। उसी प्रकार मोह सागर त्रिगुणात्मिका प्रकृति का सूक्ष्मतम स्वरूप है। उसमें विकृति होने से पंचभूतात्मक ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं, इसलिये पाँच तत्वों को महाशून्य की छाया मात्र कहते हैं। यद्यपि शास्त्रीय मान्यता में मोह तत्व से महत्तत्व, उससे

अहंकार, तत्पश्चात् आकाश आदि पंचभूतों का प्रकटन होता है।

प्रकरण ॥६९॥ चौपाई ॥८७२॥

मूलगी चाल

इस प्रकरण में हृद को छोड़कर बेहृद तथा परमधाम की ओर चलने के लिये आह्वान किया गया है।

हवे वासना हसे जे वेहदनी, ते जागीने जोसे निरधार।

सत असत बंने जुआ करसे, एहनो तेहज उघाडसे बार॥१॥

अब जो भी बेहृद की आत्मा होगी, वह निश्चित रूप से जाग्रत होकर देखेगी। वह झूठ और सत्य (माया और ब्रह्म) दोनों को अलग-अलग रूपों में देखेगी तथा बेहृद का दरवाजा खोलेगी।

एहमां वासना पांचे प्रगट थई, रची रामत देखाडी रूडी पेर।

कारज करीने अखंडमां भलसे, अछर सरूप एहनूं घेर॥२॥

माया के इस खेल को अच्छी प्रकार से दिखाने के लिये अक्षर ब्रह्म की पाँच आत्मायें (शिव, सनकादिक, विष्णु भगवान, कबीर जी, और शुकदेव जी) इस खेल में आयी हुई हैं। अक्षर ब्रह्म का योगमाया का ब्रह्माण्ड इनका मूल घर है। ये अपना कार्य करके अपने अखण्ड घर (योगमाया के ब्रह्माण्ड) में चली जायेंगी।

रामत जोवा वाला ते जुआ, ते आगल वाणी थासे विस्तार।

माया देखाडी ने वार उघाडी, जावूं अछर ने पार॥३॥

इस खेल को देखने वाली ब्रह्मसृष्टियाँ इन सबसे अलग हैं। इनका विस्तारपूर्वक वर्णन श्रीमुखवाणी में आगे होगा। ये माया का खेल देखकर बेहद और अक्षर ब्रह्म से भी परे अपने निज घर (परमधाम) जायेंगी।

सास्त्र साधोनी वाणी सर्वे, आगम भाखी छे अनेक।

ते सर्वे आंही आवी ने मलसे, तेहना वंचासे ववेक॥४॥

शास्त्रों तथा साधू-महात्माओं की सभी भविष्यवाणियों में इनके आने का वर्णन है। वे सभी भविष्यवाणियाँ यहाँ आकर मिलेंगी, अर्थात् ब्रह्मसृष्टियों के आगमन से उनकी सार्थकता सिद्ध हो जायेगी और उनके ऊपर सूक्ष्म दृष्टि से चर्चा होगी।

छर थी तीत अछर थया, अने अछरातीत केहेवाय।

आपणने जावूं एणें घरें, इहां अटकले केम पोहोंचाय॥५॥

क्षर से परे अक्षर ब्रह्म हैं और उनसे भी परे पूर्ण ब्रह्म अक्षरातीत हैं। हमें उसी परमधाम में जाना है, जहाँ अटकलों के सहारे नहीं जाया जा सकता।

पार सुख थयूं एणी पेरे, हजी रमो तमें छाया माहें।

तमने फरी फरी आ भोम आडी आवे, तमें कामस न टालो क्याहें॥६॥

हे सुन्दरसाथ जी! इस प्रकार अखण्ड धाम का सुख प्राप्त होता है। आप अभी भी माया में खुश हो रहे हो। आपके और धनी के बीच में यह माया का संसार बार-बार बाधक बन जाता है। अखण्ड सुखों को पाने के लिए आप अपने मायावी विकारों को क्यों नहीं निकाल देते हैं?

हूं संमंधी माटे बार उघाडूं, आपवाने सुख सत।

खीजी बढीने हंसी तमारा, फरी फरी वालूं छूं चित॥७॥

हे सुन्दरसाथ जी! परमधाम के अखण्ड सुखों को देने के लिये मूल सम्बन्ध के कारण ही मैंने अखण्ड धाम का दरवाजा खोल दिया है। मैं आपके ऊपर क्रोध करके,

लड़-झगड़कर, या हँसकर भी आपके चित्त को बार-बार माया से हटाने का प्रयास करता हूँ।

भावार्थ- ब्राह्मी अवस्था का व्यवहार लौकिक व्यवहार की परिधि से परे होता है। उस अवस्था में होने वाले क्रोध, विवाद, या हँसी-मजाक को सांसारिक व्यवहार से परे ही माना जाता है, क्योंकि इस तरह का व्यवहार करने वाला व्यक्ति ब्राह्मी भावों से ओत-प्रोत होकर निष्काम भाव से व्यवहार करता है। ऐसी लीलाएँ विकारों से रहित मानी जाती हैं। इसी के सन्दर्भ में आदि शंकराचार्य जी का कथन है - "निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः" अर्थात् त्रिगुणातीत मार्ग (ब्राह्मी भाव) में विचरण करने वालों के लिये कर्मकाण्ड का कोई भी नियम या उसका निषेध नहीं होता।

तमें राखी रदेमां अंधेर, ओलाडवा हींडो छो संसार।

एणी पेरे उवट चढ़ाय नहीं, जवाय नहीं पेले पार॥८॥

आप अपने हृदय में माया का अन्धकार बसाकर इस भवसागर से पार होना चाहते हैं। इस तरह से तो बेहद के इस मार्ग पर नहीं चढ़ा जा सकता और अक्षर ब्रह्म से परे परमधाम में नहीं पहुँचा जा सकता।

सतगुर संग करे आप ग्रही, वचने धमावे निसंक।

रस थई कस पूरे कसोटी, त्यारे आडो न आवे प्रपंच॥९॥

जब आप सद्गुरु की शरण में जायेंगे, तो वे आपका हाथ पकड़ेंगे अर्थात् आपके आत्मिक कल्याण का उत्तरदायित्व सम्भालेंगे। वे अपने अमृतमयी वचनों से आपके संशयों को दूर कर देंगे, तत्पश्चात् वे आपके हृदय को विरह-प्रेम की कसौटी पर खरा सिद्ध कर देंगे, तब

आपके सामने यह माया का प्रपञ्च आड़े नहीं आयेगा।

भावार्थ- मन में यह संशय होता है कि जब श्रीमुखवाणी का कथन है कि "सतगुरु मेरा स्याम जी", तो इस प्रकरण की इस चौपाई में किस सद्गुरु की शरण में जाने को कहा गया है?

यह प्रकरण महामति जी के तन से उस समय उतरा है, जब सुन्दरसाथ ने उन्हें अक्षरातीत के रूप में पहचान लिया था। इसलिए "सद्गुरु" का सम्बोधन "महामति" जी को लक्ष्य करके कहा गया है। इससे पूर्व श्री देवचन्द्र जी को भी सद्गुरु की शोभा प्राप्त है, क्योंकि उनके धाम हृदय में विराजमान होकर अक्षरातीत ने लीला की थी। छठे दिन की लीला में किसी भी तन को तब तक सद्गुरु कहलाने की शोभा नहीं मिल सकती, जब तक उसका दिल धनी का अर्श न बन जाये।

तमसूं जुध करे घेन घारण, लज्या ने अहंकार।

कायर ने कंपावे ए बल, बीक ने भ्रांत विचार॥१०॥

माया का यह गहरा नशा, लज्जा, तथा अहंकार आपसे युद्ध कर रहे हैं, अर्थात् आपके हृदय में बैठकर आपको धनी के प्रेम में नहीं डूबने दे रहे हैं। माया का यह बल कायरों को कम्पा देता है और भय के कारण उनके विचारों में भ्रान्ति पैदा हो जाती है।

तमें गिनान तणो अजवास लईने, उपलो टालो छो अंधेर।

पण मांहेलो सूतो निद्रा माहें, तो केम जाए मननो फेर॥११॥

हे सुन्दरसाथ जी! आप ब्रह्मवाणी के ज्ञान के उजाले में ऊपर की अज्ञानता को तो हटा देते हैं, किन्तु अन्दर से माया की नींद में सो रहे होते हैं। ऐसी स्थिति में मन भला माया में भटकना कैसे छोड़ देगा।

भावार्थ- ज्ञान तो केवल लक्ष्य (परब्रह्म) को दर्शाता है।
विरह और प्रेम की अग्नि ही माया से पार कराकर प्रियतम
का दीदार करा सकती है।

ज्यारे वचने जगवसो वासना, त्यारे आप ओलखसो प्रकास।
त्यारे पारब्रह्म नों पार थकी, तमें आहीं देखसो अजवास॥१२॥

जब ब्रह्मवाणी के वचनों से आप अपनी आत्मा को ज्ञान
दृष्टि से जाग्रत कर लेंगे, तब उसके प्रकाश (स्वरूप) का
आप स्वयं अनुभव करेंगे। इसके अतिरिक्त यहाँ बैठे-बैठे
ही बेहद-अक्षर से परे उस अक्षरातीत परब्रह्म का भी
दर्शन होने लगेगा।

हवे जेणे आपणने ए निध आपी, तेहना चरण ग्रहिए चित मांहे।
निद्रा उडाडीने सुपन समावे, त्यारे जागी बेठा छैए जांहे॥१३॥

जिस अक्षरातीत ने परमधाम का ज्ञान रूपी यह अखण्ड धन हमें दिया है, उनके चरणों को अपने हृदय में बसाना चाहिए। जब धाम धनी हमारी माया की नींद को उड़ाकर स्वप्न को भगा देंगे, तब हम यथार्थ रूप से जाग्रत हो जायेंगे।

भावार्थ- नींद उड़ाने का तात्पर्य है- मोहमयी अज्ञानता का विनाश हो जाना। नींद हटते ही जिस प्रकार स्वप्न समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार माया की नींद के हटते ही "मैं और मेरा" समाप्त हो जायेगा। इसी को स्वप्न का समाप्त होना कहते हैं। ऐसी स्थिति में आत्मा के धाम हृदय में युगल स्वरूप की छवि बस जाती है, जिसे आत्मा का जाग्रत होना कहते हैं। जागनी लीला में कोई भी आत्मा मूल मिलावा में जाग्रत नहीं होगी, क्योंकि वहाँ की जागनी वाहिदत के अन्दर है।

हवे एणे चरणें तमें पांसो, अखंड सुख कहिए जेह।

सर्वा अंगे चित सुध करी, तमें सेवा ते करजो एह॥१४॥

परमधाम के अखण्ड सुख को आप सद्गुरु के चरणों में ही प्राप्त करेंगे। इसलिये अब अपने चित्त को सावधान कर सभी अंगों से सद्गुरु की सेवा कीजिए।

महामत कहे संमंधी सांभलो, मारा सब्दातीत सुजाण।

चरण सों चित पूरो बांधजो, जिहां लगे पिंडमा प्राण॥१५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि परमधाम के रहने वाले, ज्ञान में निष्णात् (श्रेष्ठ), मेरे आत्म सम्बन्धी सुन्दरसाथ जी! जब तक आपके शरीर में प्राण है, तब तक आप धनी के चरणों में अपना चित्त पूरी तरह से लगाये रहिए।

प्रकरण ॥७०॥ चौपाई ॥८८७॥

किरंतन आखिर के

राग श्री आसावरी

आखिर के कीर्तन का तात्पर्य है श्री ५ पद्मावती पुरी धाम में उतरे हुए कीर्तन। इस ग्रन्थ के प्रकरण ७१ से १०९ तक के प्रायः सभी कीर्तन श्री पद्मावती पुरी धाम में अलग-अलग प्रसंगों में उतरे हुए प्रतीत होते हैं।

लाडलियां लाहूत की, जाकी असल चौथे आसमान।

बड़ी बड़ाई इन की, जाकी सिफत करें सुभान॥१॥

अक्षरातीत की अर्धांगिनी ब्रह्मसृष्टियाँ उन्हें बहुत प्यारी हैं। इनके मूल तन चौथे आकाश परमधाम में हैं। इनकी महिमा बहुत अधिक है। स्वयं धाम धनी भी इनकी महिमा का बखान (वर्णन) करते हैं।

भावार्थ— चार आकाश इस प्रकार हैं— १. मृत्युलोक

(नासूत) २. वैकुण्ठ (मलकूत) ३. अक्षर धाम (जबरूत) ४. परमधाम (लाहूत)। यहाँ अक्षर धाम से तात्पर्य योगमाया के ब्रह्माण्ड से है। अक्षर ब्रह्म का मूल स्वरूप परमधाम के अन्दर ही है। अर्धांगिनी का भाव अँगना (प्रिया) से लिया जाता है।

सो उतरी अर्स अजीम से, रूहें बारे हजार।

साथ सेवक मलायक, पावे दुनियां सब दीदार॥२॥

परमधाम से १२,००० ब्रह्मसृष्टियाँ इस माया का खेल देखने के लिये इस संसार में उतरी हुई हैं। इनके साथ सेवकों की तरह से २४,००० ईश्वरी सृष्टि भी आयी हुई हैं। अब इस मायावी जगत के सभी जीव ब्रह्मसृष्टियों एवं ईश्वरी सृष्टियों का दर्शन प्राप्त करेंगे।

भावार्थ— परमधाम की सम्पूर्ण लीला वाहिदत के सागर

में डूबी हुई है। ब्रह्मसृष्टियों को इस खेल में जो कुछ भी अनुभव होगा, वह खूब खुशालियों के अनुभव में भी आ जायेगा। उनकी सुरता के इस नश्वर जगत में आने की आवश्यकता नहीं है। ईश्वरी सृष्टि को "सेवक" शब्द से सम्बोधित किया जाना ब्रह्मसृष्टियों की अलौकिक महिमा को प्रकट करता है।

मोती कहे जो इन को, जाको मोल न काहूं होए।

बारे डाली गिनती, सूरत आदमी सोए॥३॥

इन ब्रह्मसृष्टियों को कुरआन में परमधाम के अनमोल मोती कहकर वर्णित किया गया है। इनको यहाँ के भावों से १२,००० की संख्या में सीमित करके वर्णित किया गया है। यद्यपि परमधाम में इनकी संख्या अनन्त है। इस संसार में इनकी सुरता मनुष्यों के अन्दर आयी है अर्थात्

इनकी शक्ल मनुष्यों की तरह है।

मोमिन बड़े मरातबे, नूर बिलंद से नाजल।

इनों काम हाल सब नूर के, अंग इस्कै के भीगल॥४॥

ब्रह्मसृष्टियों का पद बहुत ऊँचा है। ये परमधाम से आयी हैं। इनका सारा कार्य व्यवहार नूरमयी अर्थात् पूर्णतया स्वच्छ और पारदर्शी होता है। इनका हृदय इश्क के रस में भीगा हुआ होता है।

साल नव सै नब्बे मास नव, हुए रसूल को जब।

रुहअल्ला मिसल गाजियों, मोमिन उतरे तब॥५॥

मुहम्मद सल्लिल्लाहो अलैहि वसल्लम को देह त्याग किये हुए जब ९९० वर्ष और ९ माह हो गये अर्थात् १,००० वर्षों में सवा नौ वर्ष कम थे , उस समय श्यामा जी

परमधाम से उन ब्रह्मसृष्टियों को लेकर उतरीं जो अपने प्रियतम पर सर्वस्व न्योछावर करने वाली हैं।

औलिया लिम्ना दोस्त, जाके हिरदे हक सूरत।

बंदगी खुदा और इनकी, बीच नाहीं तफावत॥६॥

इन ब्रह्मसृष्टियों को कुरआन-हदीसों में औलिया और खुदा का दोस्त कहा गया है। इनके धाम हृदय में प्रियतम परब्रह्म का स्वरूप विराजमान होता है। इनकी बन्दगी और खुदा की बन्दगी में कोई भी अन्तर नहीं होता है।

भावार्थ- वेद, उपनिषद्, सन्त वाणी आदि सभी धर्मग्रन्थों में एकेश्वरवाद का ही उल्लेख है। कुरआन एक अल्लाह तआला को छोड़कर अन्य की बन्दगी को सबसे बड़ा गुनाह मानता है। प्रश्न यह होता है कि क्या इस चौपाई के कथनानुसार ब्रह्ममुनियों की भी बन्दगी होनी

चाहिए?

श्रीमुखवाणी में अल्लाह को आशिक, तथा श्यामाजी और सुन्दरसाथ को माशूक कहा गया है— "आसिक कहा अल्लाह को, मासूक कहा महंमद।" यह सर्वविदित है कि आशिक के रोम-रोम में माशूक की शोभा बसी होती है— "रोम-रोम में रमि रह्या, पिउ आसिक के अंग।" ऐसी स्थिति में माशूक (ब्रह्मसृष्टियों) का अपमान या सम्मान, आशिक (श्री राज जी) का ही अपमान या सम्मान है। इसी भाव को दर्शाने हेतु चौपाई में खुदा की बन्दगी के समान रूहों की बन्दगी को बताया गया है। स्वलीला अद्वैत एक अक्षरातीत परब्रह्म को छोड़कर अन्यो की भक्ति संसार को विनाश की गर्त में धकेल देगी। इस चौपाई का मूल भाव ब्रह्ममुनियों के प्रति सम्मान का भाव रखने के लिये है।

एही गिरो इसलाम की, खड़ियां तले अर्स।

या दुनियां या दीन में, सब में इनको जस॥७॥

शान्ति के सच्चे धर्म पर चलने वाली ये ब्रह्मसृष्टियाँ ही हैं, जो परमधाम का अनुभव करने के मार्ग पर खड़ी हैं। धर्म क्षेत्र में या संसार में सर्वत्र ही इनका महान यश फैला हुआ है।

लोक जिमी आसमान के, साफ जो करसी सब।

बुजरकी इन गिरोह की, ऐसी देखी न सुनी कब॥८॥

पृथ्वी से लेकर वैकुण्ठ तक इन चौदह लोक के जीवों को यह ब्रह्मसृष्टि ही निर्मल करेगी। इन ब्रह्ममुनियों की महिमा इतनी अधिक है कि आज तक न तो अन्य किसी की देखी गयी है और न ही सुनी गयी है।

भावार्थ— इस संसार में बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, अवतार,

और तीर्थकर हो चुके हैं, किन्तु अक्षरातीत के अंग कहे जाने वाले ब्रह्ममुनियों की शोभा सर्वोपरि है।

गिरो उठाई अदल से, वास्ते पैगंमरों।

देवें ग्वाही आखिर को, ऊपर मुनकरों॥ ९॥

अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी के ऊपर ईमान (अटूट विश्वास) न लाने वाले मुनकरों के विरुद्ध पैगम्बरों से साक्षी दिलायी जायेगी। इसलिये न्याय की लीला होने के पहले ही ब्रह्मसृष्टियों की सुरताओं को परमधाम बुला लिया जायेगा।

भावार्थ— जिन लोगों ने एक परब्रह्म पर आस्था न रखकर बुरे कर्म किए हैं, उनका न्याय सत्स्वरूप की पहली बहिश्त में होगा। महाप्रलय से पहले ही, व्रज की तरह, ब्रह्मसृष्टियाँ अपने मूल तनों में जाग्रत हो जायेंगी।

करें इमारत भिस्त की, कोसिस सिफत कामिल।

देवें खुसखबरी खुदा तिनको, जिनके नेक अमल॥१०॥

ब्रह्ममुनि न्याय के दिन संसार के जीवों की अच्छी प्रशंसा करके अपने प्रयासों से अखण्ड बहिश्तें दिलायेंगे। जिन जीवों के कार्य श्रेष्ठ होंगे, उनको बहिश्तों में अखण्ड करने की खुशखबरी खुद खुदा देंगे।

भावार्थ- सामान्य रूप से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इस चौपाई के कथन और प्रकास हिंदुस्तानी के प्रकटवाणी के इस कथन "तब कोई नहीं किसी के संग, दुख सुख भुगते अपने अंग" में विरोधाभास है। वस्तुतः ऐसा नहीं है। जीवों के बुरे कर्मों पर जीवों द्वारा की जाने वाली सिफत का कोई भी प्रभाव नहीं होगा, किन्तु परब्रह्म की आनन्द स्वरूपा ब्रह्मसृष्टियों द्वारा की जाने वाली सिफत अवश्य ही जीवों को बहिश्त दिलायेगी,

क्योंकि ब्रह्मसृष्टि उनकी अंगरूपा हैं – "ब्रह्मसृष्ट कही वेद ने, ब्रह्म जैसी तदोगत।"

गिरो बनी असराईल, जित महंमद पैगंमर।

जिन कौल मकसूद सबन के, सो बीच इन आखिर॥११॥

इब्राहिम के पुत्र ईसाइल की जमात में मुहम्मद (हकी सूरत) पैगम्बर हुए। इन्होंने कियामत के समय (वक्त आखिरत में) प्रकट होकर सभी धर्मग्रन्थों की भविष्यवाणियों के वचनों को पूर्ण किया।

भावार्थ– इब्राहिम पैगम्बर के दो पुत्र हुए – ईस्माइल और इसहाक। इसहाक के पुत्र याकूब को ईसाइल की शोभा मिली थी। ईसाइल का तात्पर्य है – खुदा से लड़ने वाला।

सिन्धी ग्रन्थ में श्री महामति जी ने सुन्दरसाथ के लिये

श्री राज जी से प्रेमपूर्वक लड़ाई की है, इसलिये उनकी शोभा का नाम ईस्माइल है। श्री देवचन्द्र जी ही इब्राहिम पैगम्बर हैं। उनके दो पुत्र हैं— ईस्माइल और इसहाक। श्री देवचन्द्र जी की आध्यात्मिक सम्पदा ईस्माइल (बिहारी जी) को न मिलकर इसहाक को मिली। इस चौपाई में यही प्रसंग है कि ईस्माइल को ही जागनी ब्रह्माण्ड में जागनी की शोभा मिली।

मुलक हुआ नबियन का, आखिर हिंदुओं के दरम्यान।

गिरो भेख फकीर में, पातसाह महंमद परवान॥१२॥

कियामत के समय हिन्दुओं के बीच श्री प्राणनाथ जी के प्रकट होने से हिन्दुस्तान नबियों का मुल्क हो गया। हिन्दुस्तान में प्रकट होने वाली ब्रह्मसृष्टियों के बीच श्री प्राणनाथ जी (मुहम्मद नूर) वैरागी (फकीरी) भेष में

बादशाहत (स्वामित्व) करते हैं।

माणे रूजू सब इनसें, तौरेत दर्ई है जित।

होत पेहेचान खुदाए की, इन गिरो की सोहोबत॥१३॥

इन्हीं श्री प्राणनाथ जी द्वारा कलश (तौरेत) ग्रन्थ का अवतरण हुआ। सभी धर्मग्रन्थों (वेद-कतेब) के अनसुलझे रहस्यों का स्पष्टीकरण इन्हीं से होता है। इन ब्रह्मसृष्टियों की संगति करने से सबके प्रियतम श्री प्राणनाथ जी की पहचान होती है।

बरसे बयान राह वतनी, कही सूरत मेह इसलाम।

गिरे भुने मुग आसमान से, बनी असराईल पर तमाम॥१४॥

कुरआन हदीसों में ऐसा प्रसंग है कि ईसाइल की उम्मत (अनुयायियों, जमात) के लिये आकाश से भुने हुए मुर्गों

की वर्षा हुई। निजानन्द (दीन-ए-इस्लाम) सम्प्रदाय के ज्ञान की वर्षा परमधाम की राह पर ले जाने वाली है।

भावार्थ- मुर्ग का अर्थ होता है - सुरीली आवाज में बोलने वाला पक्षी। सुन्दरसाथ को यहाँ ईसाइल की जमात अर्थात् "श्री जी के अनुयायी" कहा गया है। आकाश से भुने हुए मुर्गों की वर्षा का भाव है- आत्मा को आनन्द देने वाली अमृतमयी ब्रह्मवाणी का अवतरण।

छे हजार बाजू दोए बगल, जबरईल ऊपर रूहन।

अग्यारैं सदी गिरह खोल के, चले महंमद संग मोमिन॥१५॥

तफसीर-ए-हुसैनी में यह वर्णन है कि जिबरील के दोनों पंखों पर छः - छः हजार ब्रह्मसृष्टियाँ बैठी हैं। वे ग्यारहवीं सदी में टोने की ग्यारह गाँठों को खोलकर आखिरी मुहम्मद (श्री प्राणनाथ जी) के साथ परमधाम

की राह अपनायेंगी।

भावार्थ- जिबरील कोई पक्षी नहीं, बल्कि अक्षरातीत का जोश या अक्षर ब्रह्म का फरिश्ता है। इस संसार में सभी ब्रह्मसृष्टियों के साथ जिबरील का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। ग्यारह गाँठों के खुलने का तात्पर्य ग्यारहवीं सदी में आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिब्बुजमां श्री प्राणनाथ जी का जाहिर होना है। श्री प्राणनाथ जी के साथ ब्रह्मसृष्टियों के जाने की बात शरीर छोड़कर परमधाम जाना नहीं, बल्कि परमधाम के दीदार की तरफ अपने कदम बढ़ाना है। इस सम्बन्ध में सनन्ध ग्रन्थ का यह कथन द्रष्टव्य है-

"पोहोंचे अर्स मेयराज में, हंस मिलिया रूहें खुदाए।"

खुदा देवे साहेदी खुदाए की, और न किनहूं होए।

करें बयान फुरमावें हुकम, लायक पूजने के सोए॥१६॥

परब्रह्म के पहचान की साक्षी मात्र ब्रह्म स्वरूप व्यक्तित्व वाला ही दे सकता है, अन्य कोई नहीं। वह स्वयं परब्रह्म के धाम, स्वरूप, तथा लीला का वर्णन करके भी यही कहता है कि यह मैं नहीं कह रहा हूँ, बल्कि उनका आदेश (हुकम) कह रहा है। ऐसा अलौकिक व्यक्तित्व (श्री प्राणनाथ जी) ही एकमात्र पूजने योग्य है।

भावार्थ- श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर अक्षरातीत ने अपने धाम, स्वरूप, तथा लीला का वर्णन किया। श्री महामति जी ने अक्षरातीत की सारी शोभा, नाम (प्राणनाथ, श्री राज, श्री जी), तथा श्रृंगार आदि को धारण करने के बाद भी केवल यही कहा कि मैं धनी के हुकम से ही यह सब कुछ कह रहा हूँ। "साहेब के

हुकमें, ए बानी गावत है महामति" इस चौपाई में यही भाव दर्शाया गया है।

अलिफ लाम मीम हरफ ए कहे, ए भेद न किन समझाए।

सो छीले गए कुरान से, ए भेद जानें एक खुदाए॥१७॥

आज तक किसी ने भी कुरआन के पहले पारः में वर्णित हरुफे मुक्तेआत "अलिफ, लाम, और मीम" के भेदों को यथार्थ रूप से समझाया नहीं था। इनके भेदों को एकमात्र परब्रह्म ही जानते हैं। इनके भेदों को न जानने वाले मुसलमान कुरआन के ज्ञान से वास्तविक लाभ नहीं उठा सके।

भावार्थ— अलिफ, लाम, और मीम का तात्पर्य है – सत्, आनन्द, और चिद्धन, अथवा बसरी, मलकी, और हकी सूरत। दूसरे शब्दों में मुहम्मद, अहमद, और महदी

भी कह सकते हैं।

इत हुज्रत न रही काहू की, तुम देखो एह सुकन।

एह खिताब महंमद मेंहेंदी पैं, जिन रोसन किए मोमिन॥१८॥

हे सुन्दरसाथ जी! इन वचनों पर विचार करके देखिए तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि इन हरुफे मुक्तेआत के भेद न खोल सकने के कारण कोई भी खुदाई दावा नहीं ले सका। यह शोभा तो हकी सूरत श्री प्राणनाथ जी की है, जिन्होंने इस संसार में ब्रह्मसृष्टियों को जाहिर कर दिया।

कुंन के रोज की साहेदी, देवे एही उमत।

सो कहे उस बखत की, जो ल्यावे एह हुज्रत॥१९॥

जिस समय श्री राज जी के "कुन्न" कहने मात्र से यह नश्वर ब्रह्माण्ड बना, उसकी साक्षी एकमात्र यह ब्रह्मसृष्टि

ही दे सकती है। उस समय की वास्तविक जानकारी का दावा भी एकमात्र यह ब्रह्मसृष्टि ही करती है, क्योंकि उस समय परमधाम में वही थी।

**तौरेत आई नूर बिलंद से, आखिर उमत करी बेसक।
भई चिन्हार महंमद मुसाफ, जैसे पेहेचानने का हक॥२०॥**

कलश ग्रन्थ की वाणी परमधाम से अवतरित हुई। इसके चिन्तन-मनन से ब्रह्मसृष्टियाँ शक-संशय से रहित हो गयीं। इस ग्रन्थ से श्री प्राणनाथ जी और श्रीमुखवाणी (आखिरी वेद, आखिरी कुरआन) की महिमा का पता चला। सबने इस ग्रन्थ से श्री प्राणनाथ जी को परब्रह्म के स्वरूप में पहचाना।

भावार्थ- रास से कयामतनामा तक की सम्पूर्ण वाणी महामति जी के धाम हृदय से अवतरित हुई है। कहने

वाले स्वयं अक्षरातीत हैं, इसलिये इस वाणी को परमधाम से अवतरित हुआ माना जाता है। कलश ग्रन्थ में वर्णित जागनी के प्रकरण से यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि श्री प्राणनाथ जी का स्वरूप अक्षरातीत का स्वरूप है, इसलिये बिहारी जी ने "कलश" ग्रन्थ को "क्लेश" कहा था।

सब सिफतें एक गिरोह की, लिखी जुदी जुदी जंजीर।
कोई पावे न दूजा माएना, बिना महंमद फकीर॥२१॥

कुरआन में अलग-अलग प्रसंगों में इन ब्रह्मसृष्टियों (मोमिनों) की महिमा लिखी हुई है, किन्तु इस रहस्य को वैरागी (फकीर) भेष में रहने वाले श्री प्राणनाथ जी के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं जानता है।

प्रकरण ॥७१॥ चौपाई ॥९०८॥

यद्यपि इस प्रकरण में छत्रसाल जी की छाप है, किन्तु इसका अवतरण श्री महामति जी के तन से ही हुआ है। इसी प्रकार जसिया और ललिता के नाम से जो कीर्तन उतरे हैं, वे भी महामति जी के तन से ही उतरे हैं। धाम धनी ने महाराजा छत्रसाल जी, जसिया, और ललिता के नाम को शोभा दी है।

जंजीरां मुसाफ की, मोतियों में परोइए जब।

जिनसें जिनस मिलाइए, पाइए मगज माने तब॥१॥

कुरआन के भिन्न-भिन्न प्रसंग रूपी मोतियों को जब तारतम वाणी के सूत्र में पिरोकर देखा जाएगा, तब कुरआन में छिपे हुए हकीकत (यथार्थ सत्य) के गुह्य भेदों का स्पष्टीकरण होता है।

देऊं हरफ हरफ की आयतें, जो हादिऐं खोले द्वार।

सब सिफत खास गिरोह की, लिखी बिध बिध बेसुमार॥२॥

छत्रसाल जी कहते हैं कि हादी श्री प्राणनाथ जी ने कुरआन की जिन आयतों के शब्द-शब्द के गुह्य भेद को स्पष्ट कर दिया है, उन्हें बता रहा हूँ। इन आयतों में ब्रह्मसृष्टियों की अनन्त महिमा का वर्णन अनेक प्रकार से किया गया है।

कलाम अल्ला की इसारतें, खोल दैयां खसम।

महामत पर मेहेर मेहेबूबें, करी ईसे के इलम॥३॥

कुरआन में संकेत में कही हुई गुह्य बातों का स्पष्टीकरण धनी ने कर दिया है। श्री महामति जी के ऊपर श्यामा जी के तारतम ज्ञान के रूप में प्राणवल्लभ अक्षरातीत की ऐसी कृपा है कि उनसे ही सारे छिपे हुए भेदों को खुलवाया

गया है।

ब्रह्मसृष्ट वेद पुरान में, कही सो ब्रह्म समान।

कई बिध की बुजरकियां, देखो साहेदी कुरान॥४॥

वेदों और पुराणों में ब्रह्मसृष्टियों को परब्रह्म का ही साक्षात् स्वरूप माना गया है। कुरआन में भी इनकी अनेक प्रकार से श्रेष्ठता (बुजरकी) दर्शायी गयी है।

भावार्थ— यद्यपि वेदों और उपनिषदों में एकेश्वरवाद "एकमेव अद्वितीयम्" का कथन है, फिर भी इसके साथ-साथ "अहम् ब्रह्मास्मि" का भी कथन है, जो आत्मा-परमात्मा की एकरूपता के आधार पर कहा जाता है। कुरआन तो एक परब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी की भी बन्दगी को अक्षम्य अपराध मानता है, किन्तु ब्रह्मसृष्टियों (मोमिनों) की महिमा के गायन में पीछे

नहीं है।

कहे छत्ता मगज मुसाफ के, जिनस जंजीरां जोर।

सब सिफत खास गिरोह की, ए समझें एही मरोर॥५॥

छत्रसाल जी कहते हैं कि कुरआन के भिन्न-भिन्न प्रसंगों के भावों को जोड़ने पर धनी की कृपा से हकीकत के गुह्य रहस्यों की महिमा गायी गयी है और इस ग्रन्थ के गुह्य भेदों को मात्र ब्रह्ममुनि (मोमिन) ही समझते हैं।

प्रकरण ॥७२॥ चौपाई ॥९१३॥

सास्त्रों की प्रणालिका (प्रणालिका)

राग श्री

प्रणालिका का तात्पर्य होता है – आध्यात्मिक ज्ञान धारा को क्रमबद्ध तरीके से संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करना। इस प्रकरण में हिन्दू धर्मग्रन्थों (वेदों, उपनिषदों, दर्शनों आदि) के सारभूत सिद्धान्तों को प्रणालिका के रूप में अति संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया है।

जो कोई सास्त्र संसार में, निरने कियो आचार।

त्रिगुन त्रैलोकी पांच तत्व, ए मोह अहंको विस्तार॥१॥

इस संसार में जो शास्त्र (धर्मग्रन्थ) हैं, उनके ज्ञान के आधार पर यह प्रणालिका (रीति) निश्चित की गयी है कि मोह और अहंकार के विस्तार में ही तीन गुणों (सत्त्व, रज, तम), पाताल सहित पृथ्वी, स्वर्ग, और वैकुण्ठ

आदि लोक, तथा पाँच तत्वों की उत्पत्ति हुई है।

भावार्थ- अध्यात्म जगत् में जिन ज्ञान रश्मियों द्वारा अज्ञानता का अन्धकार दूर करके सत्य का प्रकाश किया जाता है तथा मानव को सत्य की राह पर चलने के लिये अनुशासित किया जाता है, उन ज्ञान रश्मियों (किरणों) का संकलित रूप ही शास्त्र कहलाता है।

निराकार निरंजन सुन्य की, पाई न काल की विध।

ना प्रकृत पुरुष की, न मोह अहं की सुध॥२॥

तारतम्य ज्ञान के अवतरण से पूर्व संसार में किसी को भी निराकार, निरञ्जन, शून्य, या काल के वास्तविक स्वरूप की पहचान नहीं थी। इन्हें पुरुष - प्रकृति का भी वास्तविक बोध नहीं था कि इनका स्वरूप और धाम कहाँ है। इसके अतिरिक्त प्रकृति से उत्पन्न होने वाले

मोह-अहंकार का भी ज्ञान नहीं था।

उपज्या याको केहेवही, कहे प्रले होसी ए।

ब्रह्म बतावें याही में, कहे ए सब माया के॥३॥

संसार के ज्ञानीजन जिस जगत को उत्पन्न हुआ कहते हैं, उसको प्रलय में काल के गाल में समाने वाला भी कहते हैं। पुनः यह भी कहते हैं कि इस जगत् के कण-कण में ब्रह्म विराजमान है। पुनः यह भी सुना देते हैं कि यह सम्पूर्ण जगत् मायामयी है।

भावार्थ- तारतम ज्ञान से रहित होने के कारण संसार के बड़े-बड़े ज्ञानीजन यह नहीं विचार पाते कि काल के अधीन इस मायामयी जगत् के कण-कण में यदि ब्रह्म का स्वरूप विराजमान हो जाये, तो यह त्रिगुणात्मक जगत् ब्रह्मरूप हो जायेगा। क्या रात्रि के अन्धकार के कण-कण

में सूर्य विद्यमान हो सकता है।

उरझे सब याही में, पार सब्द न काढ़े एक।

कथ कथ ग्यान जुदे पड़े, द्वैत में देख देख॥४॥

सभी लोग इसी क्षर जगत में उलझ जाते हैं, निराकार से परे कोई एक शब्द भी नहीं बोल पाता। जीव और प्रकृति के इस द्वैत मण्डल में उस अद्वैत ब्रह्म की खोज करते-करते वे अधिकतर ज्ञान बघारने (कहने) में लगे रहे। अन्ततोगत्वा उन्हें निराशा का सामना करना पड़ा।

किन माया पार न पाइया, किन कहयो न मूल वतन।

सरूप न कहयो काहूं ब्रह्म को, कहे उत चले न मन वचन॥५॥

आज तक कोई भी माया का पार नहीं पा सका और न कोई अपने निज स्वरूप (जीव, आत्मा) के मूल घर का

ही बोध पा सका। किसी ने भी सच्चिदानन्द परब्रह्म के वास्तविक स्वरूप का वर्णन नहीं किया। सबका यही कहना रहा कि जहाँ पर ब्रह्म का अद्वैत स्वरूप है, वहाँ पर मन और वाणी की गति नहीं है।

जो सास्त्रों की प्रनालिका, कहियत हैं बिध इन।

सो कर देऊं जाहेर, समझो चित चेतन॥६॥

जो शास्त्रों की प्रणालिका है, वह इसी प्रकार की कही गयी है। मैं उसे स्पष्ट रूप से जाहिर करता हूँ। आप उसे सावधान होकर अपने चित्त में बसाइए।

जो सुख परआत्म को, सो आत्म न पोहोंचत।

जो अनुभव होत है आत्मा, सो नहीं जीव को इत॥७॥

परमधाम में परात्म (परात्म) को जिस सुख की

अनुभूति होती है, आत्मा को उस सुख की अनुभूति इस संसार में नहीं हो पाती। जो अनुभव आत्मा को होता है, वह जीव को नहीं हो पाता।

भावार्थ- परात्म की नजर (सुरता, प्रतिबिम्ब) ही आत्मा है। आत्मा इस नश्वर जगत् में जीव के ऊपर विराजमान होकर इस मायावी प्रपञ्च को देख रही है। अतः यह स्वाभाविक है कि स्वलीला अद्वैत परमधाम में वाहिदत के सुख का रसपान करने वाली परात्म जैसी अनुभूति आत्मा को इस संसार में नहीं हो सकती, और जो अनुभव आत्मा को होगा वह स्वप्न के जीव को कदापि नहीं हो सकता।

जो कछू सुख जीव को, सो बुध ना अंतस्करन।

सुख अंतस्करन इंद्रियन को, उतर पोहोंचावे मन॥८॥

ध्यान-समाधि में जो सुख जीव को होता है , वह अन्तःकरण रूप मन, चित्त, या बुद्धि में पूर्ण रूप से नहीं आ पाता। बहिर्मुखी अवस्था में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषयों का सुख इन्द्रियों के माध्यम से मन, चित्त, बुद्धि आदि (अन्तःकरण) तक पहुँचता है।

जो सुख मन में आवत, सो आवे ना जुबां मौं।

और जो सुख जुबां से निकसे, सो क्यों पोहोंचे परआत्म को॥१॥

मन जिस सुख का अनुभव करता है, वह वाणी से व्यक्त नहीं हो पाता। जिस सुख का वर्णन वाणी से होता है, वह भला परात्म तक कैसे पहुँच सकता है, अर्थात् परात्म के सुख का वर्णन वाणी से होना कदापि सम्भव नहीं है।

भावार्थ- परात्म का स्वरूप मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार, जीव, तथा आत्मा सबसे परे परमधाम में है। ऐसी स्थिति

में वाणी द्वारा परात्म के सुख का वर्णन सम्भव नहीं है।

तो कहया तीत सब्द से, जो कछू इत का पोहोंचे नाहें।

असत ना मिले सत को, ऐसा लिख्या सास्त्रों मांहें॥१०॥

शास्त्रों में लिखा है कि सत्य और झूठ का मेल नहीं हो सकता। सच्चिदानन्द परब्रह्म शब्दों की परिधि से परे हैं। इस नश्वर ब्रह्माण्ड की कोई भी वस्तु वहाँ नहीं जा सकती।

जो कछू पिंड ब्रह्मांड की, सब फना कही सास्त्रन।

अखंड के पार जो अखंड, तहां क्यों पोहोंचे झूठ सुपन॥११॥

शास्त्रों में कहा गया है कि पिण्ड (शरीर) और ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु नश्वर है। बेहद का ब्रह्माण्ड अखण्ड है, जो मन-वाणी से परे है। उससे भी परे परमधाम है। भला

वहाँ स्वप्नवत् झूठे इस ब्रह्माण्ड की कोई भी चीज कैसे जा सकती है।

भावार्थ— यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में कहा गया है— "वायुः अनिलम् अमृतम् अथ इदं शरीरं भस्मान्तं" अर्थात् एकमात्र चैतन्य स्वरूप ही अविनाशी और अमृतमय है, शरीर नश्वर है। केनोपनिषद् का स्पष्ट कथन है— "न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति न मनो न विद्मो न विजानीमो।" इसका अभिप्राय यह है कि उस ब्रह्म तक न तो नेत्रों की दृष्टि जाती है, न वाणी की, और न मन की। उसे हम यथार्थ रूप से न तो जानते हैं और न जान सकेंगे।

पंडित पढ़े सब इत थके, उत चले ना सब्द बुध मन।

निरंजन के पार के पार, पोहोंचाऊं याही सास्त्रन॥१२॥

संसार के विद्वान धर्मग्रन्थों को पढ़ते-पढ़ते थक गये। वे अखण्ड में नहीं पहुँच सके। अन्त में उन्होंने हारकर यही कह दिया कि उस ब्रह्म तक शब्दों तथा मन और बुद्धि की गति (पहुँच) नहीं है। अब मैं तारतम ज्ञान द्वारा उन्हीं ग्रन्थों से निराकार के परे बेहद और बेहद से भी परे उस अक्षर-अक्षरातीत की पहचान कराऊँगा।

मेरा अंग पाँच तत्व का, इन अंतस्करण विचार।

केहेनी लीला अक्षरातीत की, जो परमात्म के पार॥१३॥

मेरा यह शरीर पाँच तत्वों का है। यहाँ के ही इस अन्तःकरण के विचारों से उस सच्चिदानन्द अक्षरातीत की लीला का वर्णन करना है, जो परात्म से भी परे है।

भावार्थ- मन में यह जिज्ञासा होती है कि जब परमधाम की वाहिदत में परात्म को अक्षरातीत का ही तन और

अंग माना जाता है, तो यहाँ अक्षरातीत को परात्म से पार क्यों कहा गया है?

जिस प्रकार आत्मा को परात्म की नजर कहा जाता है, फिर भी लीला रूप में परात्म को आत्मा से परे कहकर वर्णित किया जाता है, उसी प्रकार ब्रह्मसृष्टियों को अक्षरातीत का तन कहा जाता है, फिर भी लीला रूप में ब्रह्मसृष्टियों के मूल तन परात्म से परे ही अक्षरातीत का स्वरूप वर्णित किया जाता है। इसको इस प्रकार से भी समझा जा सकता है कि अक्षर को अक्षरातीत का स्वरूप माना जाता है, फिर भी अक्षर से परे ही अक्षरातीत कहा जाता है।

ए देह मेरी हृद की, इसी देह की अकल।

धाम धनी सुख बरनन, केहेने चाहे असल॥१४॥

मेरा यह शरीर इस नश्वर जगत का है और मेरी बुद्धि भी इसी शरीर की है। फिर भी मेरे मन में यह इच्छा है कि मैं अपने प्रियतम अक्षरातीत के अखण्ड सुखों का वर्णन करूँ।

भावार्थ— यह प्रश्न उठता है कि जिस तन में अक्षरातीत अपनी पाँचों शक्तियों के साथ लीला कर रहे हों, जिसमें अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि के साथ – साथ धनी की निजबुद्धि की भी लीला चल रही हो, उसके द्वारा ऐसी विवशता क्यों प्रकट की जा रही है कि मैं इसी शरीर की बुद्धि से अखण्ड सुख का वर्णन करना चाह रही हूँ? ऐसी स्थिति में "महामति" की शोभा का औचित्य (महत्व) क्या है? पुनः उनमें तथा अन्य लोगों में अन्तर ही क्या रह गया?

जिस प्रकार मेयराज में धनी से होने वाली मारिफत की

बातें तो मुहम्मद की रूह को मालूम थीं लेकिन वे वाणी से व्यक्त करने में असमर्थ थे, उसी प्रकार की असमर्थता का अहसास महामति जी को भी है। इस संसार में सर्वशक्तिमान होते हुए भी प्रकृति की मर्यादाओं को निभाना ही पड़ता है। अक्षरातीत अपनी पाँचों शक्तियों के साथ श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में विराजमान हैं। उनके धाम हृदय में शक्ति, ज्ञान, प्रेम, और आनन्द का अनन्त भण्डार है, फिर भी उसका प्रकटन तो इस नश्वर जगत के तन से ही हो रहा है, इसी कारण वह पूरी तरह से व्यक्त नहीं हो सकता। इसी प्रकरण की १५वीं, १६वीं, १७वीं चौपाई में इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

आतम मेरी हद में, जीव कहे बुधें उतर।

बुध मन पें कहावे जुबान सों, सो जुबां कहे क्यों कर॥१५॥

मेरी आत्मा ने इस नश्वर जगत में पञ्चभौतिक तन को धारण किया हुआ है। आत्मा का ज्ञान जीव में उतरता है। जीव उस ज्ञान को बुद्धि में प्रकट करता है। बुद्धि से वह ज्ञान मन में आता है और मन वाणी से उसे व्यक्त करना चाहता है। ऐसी स्थिति में भला वाणी (जबान) कैसे उस अखण्ड सुख का वर्णन कर सकती है।

असलें आतम न पोहोंचहीं, क्यों पोहोंचे जीव ग्यान।

जो मन देत जुबांन को, सो जुबां करत बयान॥१६॥

जब परात्म के अनुभव में आने वाला ज्ञान एवं अखण्ड सुख यथार्थ रूप से आत्मा में नहीं पहुँच पाता, तो वह जीव तक कैसे पहुँच सकेगा। वाणी से तो वही वर्णन

होता है जो मन देता है। यह सर्वविदित है कि मन तक जीव का ज्ञान यथार्थ रूप में नहीं पहुँच पाता।

मैं बैठ सुपन की सृष्ट में, बोलूँ इन जुबांन।

जीव सृष्ट क्यों मानहीं, तो भी कर देऊँ नेक पेहेचान॥१७॥

मैं इस सपने के संसार में बैठकर यहाँ की स्वप्नमयी वाणी में बोल रहा हूँ। यद्यपि जीव सृष्टि मेरे वचनों को पूरी तरह से स्वीकार नहीं करेगी, फिर भी मैं थोड़ी सी पहचान कराता हूँ।

आत्म रोग मिटावने, ए सुख कहीं मांहें सब्द।

बेहद के पार के पार सुख, सो नेक बताऊँ मांहें हद॥१८॥

प्रियतम के दीदार की इच्छा ही आत्म-रोग है और प्रियतम का दीदार हो जाना ही आत्म-रोग का मिट

जाना है। इस लक्ष्य को पाने के लिये परमधाम के शब्दातीत सुखों को मैं शब्दों में व्यक्त कर रहा हूँ। बेहद के परे अक्षर ब्रह्म हैं। उसके भी परे अक्षरातीत का वह परमधाम है, जहाँ के अनन्त सुखों को अति अल्प मात्रा में मैं इस संसार में प्रकट कर रहा हूँ।

मेरे केहेना ब्रह्मसृष्ट को, इन मन जुबां माफक।

झूठी जिमिएं याही सास्त्रन सों, जाहेर कर देऊं हक॥१९॥

मुझे यहाँ के मन एवं वाणी की शक्ति के अनुसार परमधाम के अखण्ड सुखों का वर्णन ब्रह्मसृष्टियों के लिये करना है। इस झूठे संसार में यहाँ की स्वप्न वाली बुद्धि के ग्रन्थों से अब मैं पूर्णब्रह्म अक्षरातीत को जाहिर करूँगी।

साथ मेरा ब्रह्मसृष्ट का, तिन हिरदे साफ करन।

सो निरमल क्यों होवहीं, धाम अखंड देखाए बिन॥२०॥

मुझे ब्रह्मसृष्टि सुन्दरसाथ के हृदय को निर्मल करना है।
इसके साथ ही यह मानना पड़ेगा कि जब तक उनको
अखण्ड धाम की अनुभूति न करायी जाये, तब तक
उनका हृदय भी निर्मल नहीं हो सकेगा।

भावार्थ- श्री श्यामा जी के लाये हुए तारतम ज्ञान का
अनुसरण करने वाले सुन्दरसाथ की जमात (समूह) में
तीनों ही सृष्टियाँ शामिल हैं। इस चौपाई में विशेषकर उन
सुन्दरसाथ के लिये सम्बोधन है, जिनके अन्दर परमधाम
का अँकुर है।

सो हिरदे साफ हुए बिना, क्यों कर पोहोंचे धाम।

हम भेजे आए धनी के, एही हमारा काम॥२१॥

हृदय के निर्मल हुए बिना कोई भी अखण्ड धाम में नहीं जा सकता। सबको अखण्ड धाम की राह पर ले जाने के लिये ही धाम धनी ने मुझे यह उत्तरदायित्व सौंपा है।

भावार्थ- ब्रह्मसृष्टि जिस जीव पर विराजमान होती है, उसमें तो विकार आ सकता है, किन्तु ब्रह्मसृष्टि (आत्मा) में कदापि नहीं। २०वीं चौपाई में हृदय को निर्मल करने का तात्पर्य जीव के हृदय को विकारों से रहित करना तथा आत्मा के हृदय में युगल स्वरूप की छवि को बिठाना है। सागर ग्रन्थ का यह कथन इसी सन्दर्भ में है— "ताथें हिरदे आतम के लीजिए, बीच साथ सरूप जुगल।"

२१वीं चौपाई में तीनों सृष्टियों के जीव के हृदय को निर्मल करने के सम्बन्ध में कहा गया है। तीनों सृष्टियों के जीव योगमाया के अन्दर आठ बहिशतों में अखण्ड होंगे।

इसके लिये उन्हें ज्ञान और ध्यान द्वारा अखण्ड धाम की अनुभूति करके निर्मल होना आवश्यक है।

सास्त्रों तीनों सृष्ट कही, जीव ईश्वरी ब्रह्म।

तिनके ठौर जुदे जुदे, ए देखियो अनुकरम॥२२॥

शास्त्रों में तीन प्रकार की सृष्टि कही गयी है – १. जीव सृष्टि २. ईश्वरी सृष्टि ३. ब्रह्म सृष्टि। इन तीनों के धाम (निवास स्थान) भी क्रमशः अलग-अलग हैं।

जीव सृष्ट बैकुंठ लों, सृष्ट ईश्वरी अछर।

ब्रह्मसृष्ट अछरातीत लों, कहे सास्त्र यों कर॥२३॥

शास्त्रों में ऐसा वर्णन है कि जीव सृष्टि का घर वैकुण्ठ है। ईश्वरी सृष्टि का घर अक्षर ब्रह्म का हृदय अर्थात् योगमाया का ब्रह्माण्ड है, और ब्रह्मसृष्टि का घर अक्षरातीत का धाम

(परमधाम) है।

जो सृष्ट आई जिन ठौर से, घर पोहोंचे आप अपनी।

पार दरवाजे खोल के, आखिर पोहोंचे कर करनी॥२४॥

जो सृष्टि जहाँ से आयी है, वह वहीं पहुँचेगी। वह तारतम ज्ञान से निराकार के पार अखण्ड धाम का द्वार खोलेगी और अपनी करनी (विरह, प्रेम) से अखण्ड सुख को प्राप्त करेगी।

द्रष्टव्य— यद्यपि जीव सृष्टि का घर वैकुण्ठ-निराकार है, किन्तु तारतम ज्ञान ग्रहण करके धनी के प्रेम की राह अपनाने पर उसे बेहद मण्डल का अखण्ड सुख प्राप्त होगा।

आप अपने वतन पोहोंचते, अटकाव न होवे किन।

जो जहां से आइया, धनी तहां पोहोंचावें तिन॥२५॥

तारतम ज्ञान ग्रहण करके धनी पर ईमान लाने के पश्चात् तीनों सृष्टियों को अपने निज घर पहुँचने में कोई बाधा नहीं होगी। जो जहाँ से आयी है, धनी उसको वहीं पहुँचायेंगे।

जिन जानो सास्त्रों में नहीं, है सास्त्रों में सब कुछ।

पर जीव सृष्ट क्यों पावहीं, जिनकी अकल है तुच्छ॥२६॥

ऐसा नहीं मान लेना चाहिए कि शास्त्रों में कुछ है ही नहीं। शास्त्रों में प्रमाण के लिये सारा ज्ञान संक्षिप्त रूप में भरा पड़ा है। सपने की बुद्धि होने तथा तारतम ज्ञान से रहित होने के कारण जीव सृष्टि सत्य की मणियों (वास्तविक ज्ञान) को प्राप्त नहीं कर पाती।

लोक जिमी आसमान के, ए सुपन की अकल।

सो पांच तत्व को छोड़ के, आगे न सकें चल॥२७॥

पृथ्वी और आकाश के इन चौदह लोक के प्राणियों में स्वप्न की बुद्धि होती है। इनका चिन्तन-मनन पाँच तत्व के इस ब्रह्माण्ड से आगे जा ही नहीं पाता।

जो सुध आचारजों नहीं, सो जीवों नहीं बरतत।

जाग्रत बुध ब्रह्मसृष्ट में, लिख्या जाहेर होसी आखिरत॥२८॥

जिस ज्ञान की सुध आचार्यों को नहीं, वह सामान्य जीवों को कैसे प्राप्त हो सकता है। धर्मग्रन्थों की भविष्यवाणियों में ऐसा लिखा है कि जाग्रत बुद्धि का ज्ञान जागनी लीला के समय (वक्त-ए-आखिरत में) प्रकट होगा।

द्रष्टव्य- ब्रह्मसृष्टियों में जाग्रत बुद्धि का जाहिर होना या

जाग्रत बुद्धि के ज्ञान के प्रकटन का भाव एक ही है।

ऐसा सास्त्रों में लिख्या, ब्रह्म ब्रह्मसृष्टि सों।

इत आए करसी अदल, दे दीदार सब को॥२९॥

शास्त्रों में ऐसा लिखा है कि सच्चिदानन्द परब्रह्म इस नश्वर जगत में अपनी आत्माओं के साथ आयेंगे और सबका न्याय करेंगे।

भावार्थ- यह प्रसंग माहेश्वर तन्त्र, पुराण संहिता, तथा बुद्ध गीता में लिखा हुआ है।

ब्रह्मसृष्टि धाम पोहोंचावसी, और मुक्त देसी सबन।

कलजुग असुराई मेट के, पार पोहोंचावसी त्रिगुन॥३०॥

ब्रह्मसृष्टि अपने ज्ञान तथा कृपा-दृष्टि से कलियुग की

आसुरी प्रवृत्तियों को समाप्त कर देंगी, तथा सत्व, रज, और तम के बन्धन में फँसे हुए सभी प्राणियों को अखण्ड मुक्ति देकर निराकार के परे बेहद में पहुँचायेंगी।

और भी साख नीके देऊं, कर देखो विचार।

आखिर अथर्वन वेद पर, सब सृष्टों का मुद्धार॥३१॥

इसके अतिरिक्त और भी अच्छी साक्षी दे रहा हूँ। उस पर विचार कीजिए। चौथे अथर्व वेद पर ही सभी सृष्टियों का मुद्दा (दावा) है।

तीनों वेदों ने यों कहया, वेद अथर्वन सबको सार।

ए वेद कुली में आखिर, त्रिगुन को उतारे पार॥३२॥

तीनों वेदों का कथन है कि अथर्व वेद सबका सार है। यह वेद ही कलियुग में सम्पूर्ण जीव सृष्टि को इस

भवसागर से पार करेगा।

भावार्थ- यह जिज्ञासा का विषय है कि चारों वेद तो सृष्टि के प्रारम्भ से हैं। आखिर, कलियुग में ही इसके द्वारा जीव सृष्टि के भवसागर से पार होने की बात क्यों की जा रही है?

तीनों वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद) में ज्ञान, कर्म, तथा उपासना का विवेचन है, किन्तु ब्रह्मपुरी का स्पष्ट वर्णन नहीं है। अथर्व वेद के केन सूक्त में कई मन्त्रों में ब्रह्मपुरी का स्पष्ट वर्णन है। ब्रह्मपुरी से सम्बन्धित यह मन्त्र है—

"प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम्। पुरं हिरण्ययीम् ब्रह्मविवेशापराजिताम्" अर्थात् ब्रह्म के अतिशय तेज से युक्त, किसी के भी द्वारा प्रवेश न की गयी, उस ज्योतिर्मयी ब्रह्मपुरी में ब्रह्म विराजमान है।

तारतम ज्ञान द्वारा ही यह रहस्य खुलता है कि परब्रह्म बेहद के परे परमधाम (ब्रह्मपुर) में विराजमान है। इसी कथन से सम्बन्धित "अष्टाचक्रा नव द्वारा देवानां पुर अयोध्या" वाले मन्त्र को भी सभी ने शरीर में ही घटित कर लिया है। तारतम ज्ञान से ही इसका भेद खुलता है। इसलिए इस चौपाई का ऐसा भाव है कि जब तारतम ज्ञान से परब्रह्म के धाम, स्वरूप, और लीला सम्बन्धी अथर्ववेद के मन्त्रों के रहस्य स्पष्ट हो जायेंगे, तो समझ लेना चाहिए कि अब सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की मुक्ति का समय आ गया।

ऐसा जाहेर कर लिख्या, पर जिनको नहीं आकीन।

सो कैसे कर मानहीं, जिनकी मत मलीन॥३३॥

इस प्रकार स्पष्ट रूप से लिखा है, लेकिन जिनकी बुद्धि

में मलिनता है और अथर्व वेद के कथनों पर विश्वास ही नहीं है, भला वे इस बात को कैसे मान सकते हैं।

भावार्थ- ब्रह्म को जानने के पश्चात् जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा मिल जाता है। यह बात यजुर्वेद के पुरुष सूक्त "तमेव विदित्वाति मृत्युमेति" तथा अथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषद ३/८ के कथन "क्षीयते चास्य कर्माणि तस्मिन्नदृष्टे परावरे" से स्पष्ट होती है।

कहे रसूल खुदा मैं देखिया, और ले आया फुरमान।

कौल किया आखिर आवने, दीदार होसी सब जहान॥३४॥

रसूल मुहम्मद साहब कहते हैं कि मैंने खुदा का दीदार किया है और संसार के लोगों के लिये उनका आदेश लेकर आया हूँ। अल्लाह तआला ने मुझसे कियामत के समय आने का वायदा किया है। उस समय सारी दुनिया

उनका दीदार करेगी।

भावार्थ- परब्रह्म के आने के सम्बन्ध में जो बातें हिन्दू धर्मग्रन्थों (पुराण संहिता, माहेश्वर तन्त्र आदि) में लिखी हैं, उसी प्रकार की बातें कुरआन में भी लिखी हैं। इस चौपाई में यही भाव व्यक्त किया गया है।

लिख्या है फुरमान में, खुदा काजी होसी आखिर।

जरे जरे हिसाब लेय के, पोहोंचावे किसमत कर॥३५॥

कुरआन में लिखा है कि वक्त आखिरत को कियामत (रोज-ए-हश्र) के समय में अल्लाह तआला सबके काजी (न्यायाधीश) बनकर एक-एक का हिसाब लेकर करनी के अनुकूल बहिश्तों में अखण्ड करेंगे।

मोमिन मुतकी वास्ते, इत आवसी खुदाए।

भिस्त देसी सबन को, लिख्या है इमदाए॥३६॥

कुरआन में यह बात पहले से ही लिखी है कि ब्रह्मसृष्टि तथा ईश्वरी सृष्टि के लिये स्वयं परब्रह्म इस संसार में आयेंगे और सम्पूर्ण जीव सृष्टि को अखण्ड बहिश्ते देंगे।

सो समया सरतें सब लिखीं, बीच अथर्वन।

कहावें पढ़े महंमद के, पर पावें ना आकीन बिन॥३७॥

अथर्व वेद में वह समय (परब्रह्म के प्रकटन का) और शर्त भी लिखी हुई है। इसी प्रकार कतेब परम्परा में कुरआन पढ़ने वाले यही कहते हैं कि हम मुहम्मद साहिब के अनुयायी हैं, किन्तु उन्हें आन्तरिक रूप से न तो कुरआन पर यकीन होता है और न मुहम्मद साहिब पर। इसलिये वे आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिबुजमां

की पहचान नहीं कर पाते।

भावार्थ- वेद का ज्ञान वर्तमान के लिये होता है। उसमें भविष्य की कोई भी बात नहीं बतायी गयी है। "अथर्व" का अर्थ होता है "कम्पन से रहित"। अथर्व वेद के कथन को अन्तिम सत्य माना जाता है, किन्तु अथर्व वेद के कुछ ऐसे गुह्य रहस्य हैं जिनका उत्तर मानवीय बुद्धि से नहीं दिया जा सकता। इन प्रश्नों के समाधान से ही यह निर्णय हो जाता है कि इन प्रश्नों का निराकरण कोई ब्रह्म स्वरूप व्यक्तित्व ही कर सकता है। इसे ही समय और शर्त का पूरा होना कहते हैं। संक्षेप में वे प्रश्न इस प्रकार हैं-

१- यो वेतसं हिरण्ययं तिष्ठन्तं सलिले वेद।

स वै गुह्यः प्रजापतिः॥ (अथर्व. १०/७/४१)

जो सोने के बेत को जल में स्थित हुआ जानता है, वह

ही गुह्य प्रजा का स्वामी है। इस मन्त्र में स्वर्ण बेत अक्षर ब्रह्म है तथा जल अक्षरातीत है। इसके भेद को जानने वाला ब्रह्मसृष्टियों (गुह्य प्रजा) का प्रियतम अक्षरातीत ही है।

२- पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।

तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः॥

अथर्व वेद १०/८/४३

कमल के समान मनोहर वह दिव्य ब्रह्मपुर नव भूमियों वाला है तथा तीन गुणों सत्+चित+आनन्द से युक्त है। उसमें जो पूजनीय तत्त्व अक्षरातीत है, जो अक्षर ब्रह्म के सदृश स्वरूप वाला है, उसको मात्र ब्रह्मज्ञानी पुरुष ही जानते हैं। अथर्ववेद के इसी दसवें काण्ड में केन सूक्त है, जिसमें विशेषकर ब्रह्मपुरी का ही वर्णन है। तीनों वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, तथा सामवेद) में ब्रह्मपुरी का वर्णन

नहीं है। अथर्व वेद १० / २ / ३१ में ब्रह्मपुरी को "अयोध्या" शब्द से सम्बोधित किया गया है, जिसका तात्पर्य ही होता है कि आज तक किसी ने भी ज्ञान दृष्टि से साक्षात्कार द्वारा उसे देखा नहीं है। इस प्रकार ब्रह्मपुरी (परमधाम) का वर्णन ब्रह्मस्वरूप व्यक्ति ही कर सकता है, अन्य कोई भी नहीं।

श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप के जिस घोड़े का वर्णन पौराणिक ग्रन्थों में किया गया है, उसके एक पैर को ऊपर उठाये हुए वर्णित किया गया है। उसके पैर का नीचे जमीन पर होने का तात्पर्य है कि चौथे अथर्ववेद के रहस्य खुल गये हैं और उनको स्पष्ट करने वाले श्री प्राणनाथ जी का प्रकटन हो चुका है।

अथर्व वेद के कुछ कठिन प्रश्न इस प्रकार हैं—

१. तीन प्रकार के द्युलोक, तीन प्रकार की पृथ्वी, तीन

प्रकार के अन्तरिक्ष, चार प्रकार के समुद्र, तीन प्रकार के स्तोम, और तीन प्रकार के जल कौन-कौन से हैं?
(अथर्व वेद १९/२७/३)

२. अनन्त अरों का एक चक्र है। उसके आधे में विश्व है। बाकी आधा कहाँ है? (अथर्व वेद १०/८/००)

३. वह ब्रह्म शक्ति किस प्रकार एक पदी, द्विपदी, चतुष्पदी, अष्टपदी, नवपदी, तथा असंख्य रूपों में है?
(अथर्व वेद ९/१०/२१)

४ व ५. दो स्त्रियाँ छः खूँटी लगाकर दौड़-दौड़कर जाल बुनती हैं। एक ताना लगाती है, एक बाना, पर वे पूरा बुन नहीं पातीं। वे अन्त तक नहीं पहुँच पातीं। वे दोनों नाचती सी हैं। यह नहीं मालूम है कि उनमें कौन बड़ी है और कौन छोटी है, परन्तु एक पुरुष ही बुनता है और वही उकेलता है? (अथर्व १०/७/४२, ४३)

विस्तृत जानकारी के लिये कृपया "ज्ञान मंजूषा" ग्रन्थ का अवलोकन करें।

रब एक राह चलावसी, दे कर अपना इलम।

करसी कायम सबन को, अपना चलाए हुकम॥३८॥

अल्लाह तआला सबको इल्म-ए-लदुन्नी देकर परम सत्य की एकमात्र राह दिखायेंगे। वे अपने आदेश मात्र से सम्पूर्ण जीव सृष्टि को अखण्ड मुक्ति देंगे।

सरीयत सो माने नहीं, खुदा बेचून बेचगून।

कहे खुदाए की सूरत नहीं, बेसबी बेनिमून॥३९॥

शरीयत की राह पर चलने वाले मुसलमान कहा करते हैं कि खुदा की कोई सूरत नहीं है। वे खुदा को बिना रूप का, बिना गुण का (निर्गुण), बिना शक्ल का, तथा अनुपम

(उपमा से रहित) मानते हैं। इस प्रकार वे कुरआन में वर्णित सत्य को स्वीकार नहीं करते हैं।

भावार्थ- शरीयत से सिद्ध है कि अल्लाह तआला रोज-ए-हश्र को काजी (न्यायाधीश) बनकर बैठेंगे। यदि खुदा की सूरत नहीं है, अर्थात् बेचून, बेचगून, बेसबी, बेनिमून मान लिया जाये, तो न्यायाधीश (काजी) बनकर न्याय-सिंहासन पर कौन विराजमान होगा। यह शरा-तोरा को मानने वाले विचार करें एवं सत्य को स्वीकार करें कि अल्लाह तआला की नूरी (दिव्य) सूरत है और उन्होंने ही मुहम्मद साहब को आदेश (हुक्म) दिया कि लोगों को शरा पर लगाओ। अतः यह विचारणीय प्रश्न है कि यदि खुदा की सूरत नहीं है, तो वह कौन है जो कि आदेश दे सकता है। यह सर्वसिद्ध हो जायेगा कि खुदा नूरी है। उसकी सूरत भी नूरमयी है, जो कि श्री जी साहिब

(हुज्रतुल्लाह) ने अपनी दिव्य दलील से सिद्ध की है।

कहे आकीन महंमद पर, ऊपर कयामत और फुरमान।

और कहा न माने महंमद का, बड़ा देख्या ए ईमान॥४०॥

मुस्लिम लोग कहा करते हैं कि हम मुहम्मद सल्लिल्लाहो अलैहि वसल्लम, कुरआन-ए-पाक, तथा कियामत के ऊपर पक्का यकीन (दृढ़ विश्वास) रखते हैं, किन्तु व्यावहारिक रूप में मुहम्मद साहिब के कहे हुए वचनों को नहीं मानते। क्या यही इनका ईमान है!

भावार्थ- मुहम्मद (सल्ल.) का कथन है कि मैंने खुदा तआला का मे'राज किया। शरीयत के अधीन इस्लाम के तिहत्तर फिरकों (सम्प्रदायों) में यह एक विवादित मुद्दा है कि रसूल्लाह (सल्ल.) अर्शे अज़ीम (परमधाम) में जिस्म समेत गये अथवा रूह द्वारा गये?

कुछ जिस्म समेत मे'राज शरीफ़ में मुहम्मद साहब का जाना कहते हैं तथा कुछ रूह द्वारा मे'राज कहते हैं, लेकिन इन ज्वलन्त प्रश्नों को कोई भी नहीं विचारता—

१. अर्शे अज़ीम (परमधाम) में मुहम्मद (सल्ल.) को क्यों बुलवाया गया?

२. मुहम्मद (सल्ल.) से क्या बातचीत की गई?

३. अल्लाह तआला ने मुहम्मद (सल्ल.) को क्या आदेश दिया?

यदि यह विचार किया जाये कि रसूल अल्लाह को बुलवाने का आशय क्या था एवं किसने बुलवाया, यदि बुलवाने वाले की सूरत है तभी तो हुक्म देकर बुलवाया गया। अतः यह सिद्ध है कि खुदाई सूरत नूरी है क्योंकि निराकार आदेश देकर नहीं बुलवा सकता।

आदेश देते वक्त जो बातचीत हुई, उसमें शरीयत,

तरीकत, मारिफत, एवं हक़ीकत का ज्ञान दिया, जिसका स्पष्ट प्रमाण कुरआन मजीर के तीसरा पारः सूरः आल-ए-इमरान में है कि अल्लाह तआला की कुछ आयतें महुक्म हैं, कुछ मुतशाहबा हैं, एवं कुछ शब्द हरुफ़-ए-मुक्तेआत हैं, जिसके मायने श्री जी साहिब जी ने कहे हैं, जो कि अकाट्य प्रमाण है। अतः हमें अल्लाह तआला की नूरी सूरत का ख़याल करने का आदेश है। हम यह मानकर सिज्दा करे कि हक़ तआला देख रहा है। लेकिन आम लोग अमल से खाली होने के कारण बन्दगी का सिला (प्रतिफल) पूर्ण रूप से नहीं प्राप्त कर पाते , इसलिये हमें रसूलुल्लाह को पूर्ण रूप से स्वीकार करना चाहिये कि हक़ तआला नूरमयी है तथा वह सभी को देख रहा है। जो इस बात पर यकीन नहीं रखता, वह कैसा ईमान वाला कहा जायेगा तथा मुहम्मद (सल्ल.)

उसकी सिफायत किस अल्लाह तआला से करेंगे। यदि खुदा की सूरत नहीं है, तो किससे व कैसे सिफायत होगी? विचारिये एवं सत्य का दामन पकड़कर दो जहान में धन्य होइए। यही मुहम्मद साहेब का आदेश मानकर सिफायत करवाने की कुँजी है।

नास्तिक कर बैठे हते, देख वेद कतेब के मांहें।

पांच तत्व त्रिगुन बिना, कहे और कछुए नाहें॥४१॥

तारतम ज्ञान के अवतरण से पूर्व हिन्दू और मुसलमान वेद-कतेब को पढ़ने के बाद भी नास्तिकों जैसा जीवन व्यतीत कर रहे थे, क्योंकि उन्हें परब्रह्म की वास्तविक पहचान नहीं थी। वे (विशेषकर हिन्दू) पञ्चभूतमय त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्ड, और तीन गुणों की विशिष्टता को धारण करने वाले ब्रह्मा, विष्णु, और शिव के बिना और

किसी का अस्तित्व मानते ही नहीं थे।

और कहे नासूत मलकूत, और तिन पर ला-मकान।

पढ़ के वेद कतेब को, करत माएने एह निदान॥४२॥

हिन्दू-मुसलमान वेद-कतेब को पढ़ते तो हैं, किन्तु इस प्रकार का अर्थ करते हैं कि मृत्युलोक (नासूत) के ऊपर वैकुण्ठ लोक (मलकूत) है। उसके ऊपर निराकार (ला-मकान) का अनन्त मण्डल है। वह ही सबका परमात्मा है।

न तो ए सब्द सास्त्रों के, हुती सबों को सुध।

तो भी पकड़े ला मकान सुन्य को, ऐसी जीवों नास्तिक बुध॥४३॥

मृत्यु लोक, वैकुण्ठ, निराकार आदि शब्द शास्त्रों में विशेष रूप से पाये जाते हैं और सभी को इनके विषय में

जानकारी भी थी, फिर भी इन जीवों की ऐसी नास्तिकता वाली बुद्धि है कि यह निराकार-निरञ्जन को ही पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द मानते रहे।

अब जाहेर हुई सृष्टब्रह्म की, और जाहेर वतन ब्रह्म।

अर्स उमत जाहेर हुई, हुई जाहेर सूरत खसम॥४४॥

अब तारतम ज्ञान के प्रकट होने से परमधाम में रहने वाली ब्रह्मसृष्टियाँ जाहिर हुई हैं। यह भी स्पष्ट रूप से प्रकाश में आया है कि परब्रह्म का धाम कहाँ है और उनका अखण्ड स्वरूप कैसा है।

खेल देखाया ब्रह्मसृष्ट को, करके हुकम आप।

ए झूठा खेल कायम किया, करके इत मिलाप॥४५॥

स्वयं अक्षरातीत धाम धनी ने अपने आदेश से

ब्रह्मसृष्टियों को माया का यह झूठा खेल दिखाया है और इस नश्वर जगत में आकर सबको अखण्ड किया है।

महामत कहे ब्रह्मसृष्ट को, ऐसा हुआ न होसी कब।

गुझ सब जाहेर किया, ए जो लीला जाहेर हुई अब॥४६॥

श्री महामति जी ब्रह्मसृष्टियों से कहते हैं कि जागनी ब्रह्माण्ड में यह ब्रह्मलीला जाहिर हुई है। इसके अन्तर्गत सभी धर्मग्रन्थों के अनसुलझे रहस्यों का जो स्पष्टीकरण हुआ है, ऐसा पहले न तो कभी हुआ था और न ही कभी भविष्य में होगा।

प्रकरण ॥७३॥ चौपाई ॥९५९॥

राग श्री

इस प्रकरण में मोहसागर के विषय में बताया गया है।

भवजल चौदे भवन, निराकार पाल चौफेर।

त्रिगुन लेहेरी निरगुन की, उठें मोह अहं अंधेर॥१॥

चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड एक प्रकार से भवसागर ही है। इसके चारों ओर निराकार का घेरा है। इस निराकार रूपी अनन्त मोहसागर से मोह-अहंकार तथा सत्व, रज, और तम की अज्ञानमयी लहरें उठती रहती हैं।

भावार्थ- स्वर्ग तथा वैकुण्ठ आदि लोकों में भी माया का प्रपञ्च फैला हुआ है। निराकार (मोहसागर) से पानी के बुलबुलों की तरह चौदह लोकों के ब्रह्माण्ड बनते रहते हैं। यद्यपि मोहसागर को भी निराकार-निर्गुण ही कहते हैं, किन्तु यहाँ निराकार से मोह की जिन लहरों का उत्पन्न

होना वर्णित किया गया है, वह प्राणियों के अन्दर का व्यष्टि (व्यक्तिगत), मोह (अज्ञान), और अहंकार है जो त्रिगुणात्मक बन्धनों से मुक्त है।

तान तीखे ग्यान इलम के, दुन्द भमरियां अकल।

बहें पंथ पैँडे आड़े उलटे, झूठ अथाह मोह जल॥२॥

यह झूठा अथाह मोहजल का सागर है, जिसमें शुष्क शाब्दिक ज्ञान (इल्म) के तीखे बहाव हैं। निरर्थक तर्कों से भरी संशयात्मिका बुद्धि रूपी खतरनाक भँवरे हैं, जिनमें कभी भी डूबने का खतरा बना रहता है। इस मोहमयी भवसागर में सभी पन्थ-पैँडे (सम्प्रदाय) उल्टे और आड़े बहाव में बह रहे हैं।

भावार्थ- तारतम ज्ञान से रहित धर्मग्रन्थों का शुष्क ज्ञान यथार्थ सत्य को नहीं दर्शा सकता। ऋतम्भरा प्रज्ञा

या जाग्रत बुद्धि से सत्य का बोध होता है, न कि कुतर्क वाली संशय भरी बुद्धि से। इसके जाल में फँसने वाला व्यक्ति अध्यात्म के सच्चे आनन्द को खो बैठता है।

तामें बड़े जीव मोह जल के, मगर मच्छ विक्राल।

बड़ा छोटे को निगलत, एक दूजे को काल॥३॥

जिस प्रकार मगरमच्छ (घड़ियाल) बहुत ही क्रूरतापूर्वक दूसरे प्राणियों को निगल जाते हैं, इसी प्रकार मोहसागर के शक्तिशाली प्राणी जो तृष्णाओं की अग्नि में जल रहे होते हैं, अपनी इच्छा पूर्ण करने के लिये कमजोर प्राणियों को काल की तरह मिटा डालते हैं।

भावार्थ— तृष्णा के तीन भेद होते हैं— १. लोकेषणा (संसार में प्रतिष्ठा की इच्छा) २. वित्तेषणा (धन की इच्छा) ३. दारेषणा (स्त्री, पुत्र आदि सगे-सम्बन्धियों

का मोह)। संसार के सभी विवादों के मूल यही तीन तृष्णायें होती हैं। इन्हीं की पूर्ति के लिये मानव के खून की नदियाँ तक बहायी जाती हैं। इस चौपाई में कथित काल रूप में एक-दूसरे को निगलने का यही भाव है।

घाट न पाई बाट किने, दिस न काहूँ द्वार।

ऊपर तले मांहें बाहेर, गए कर कर खाली विचार॥४॥

इस मोह सागर से परे निकलने के लिये अब तक किसी को भी न तो घाट (जहाँ से चला जाये) का पता चल सका, न कोई ऐसी राह (शुद्ध ज्ञान और प्रेम की) मिल पायी, जिससे इस भवसागर को पार किया जा सके। यह इतना अनन्त है कि किसी को भी यह पता नहीं चल पाया कि इसके परे भी कुछ (दिशा) है, और न किसी को इसे पार करने का द्वार ही मिल सका। सभी लोग इस

भवसागर में गोते खाते रह गये। इस ब्रह्माण्ड में ऊपर (स्वर्गादि लोक), नीचे (पातालादि लोक), अन्दर (पृथ्वी), और बाहर (निराकार में) रहने वाले इस मोहसागर से पार होने के विषय में सोचते-सोचते थक गये। अन्त में उन्हें खाली हाथ ही रह जाना पड़ा।

जीवें आतम अंधी करी, मिल अंतस्करन अंधेर।

गिरदवाए अंधी इंद्रियां, तिन लई आतम को घेर॥५॥

जीव ने अपने अन्तःकरण में छिपी हुई अज्ञानता के अन्धकार के कारण आत्मा को अन्धा कर दिया। मायावी विषयों में अन्धी दौड़ लगाने वाली इन्द्रियों ने आत्मा को चारों ओर से घेर लिया।

भावार्थ- अन्धा उसे कहते हैं, जिसे दिखायी न दे। इस संसार में आत्मा के अन्धा होने का भाव है- सांसारिक

विषय सुखों की इच्छा में पड़कर प्रियतम अक्षरातीत के प्रेम से विमुख हो जाना। अन्तःकरण को कारण शरीर माना जाता है। उसमें छिपे हुए अज्ञान के कारण ही इन्द्रियाँ विषयों की ओर अन्धी होकर भागती हैं। अन्तःकरण और इन्द्रियों के विषय-जाल में फँसे होने के कारण जीव भी बन्धन में हो जाता है। इस प्रकार आत्मा भी जीव के ऊपर विराजमान होने के कारण बन्धन में मानी जाती है, जबकि वह अपने मूल स्वरूप में माया से सर्वथा परे है।

पांच तत्व तारा ससि सूर फिरें, फिरें त्रिगुन निरगुन।

पुरुख प्रकृति यामें फिरें, निराकार निरंजन सुन॥६॥

प्रकृति का सूक्ष्मतम स्वरूप मोहसागर है जिसे निराकार, निर्गुण, शून्य, और निरञ्जन कहते हैं। इसी

मोहसागर में अव्याकृत के स्वाप्निक रूप आदिनारायण का प्रकटन होता है। यथार्थतः पुरुष (आदिनारायण) तथा प्रकृति का भी स्वरूप परिवर्तनशील होता है। इस प्रकार पाँच तत्व, समस्त तारागण, चन्द्रमा, तथा त्रिगुणात्मक सभी पदार्थ नश्वर हैं।

ए चौदे पल में पैदा किए, पांच तत्व गुन निरगुन।

याही पल में फना हुए, निराकार सुन्य निरंजन॥७॥

अक्षर ब्रह्म के मन स्वरूप अव्याकृत के संकल्प मात्र से चौदह लोक का यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, पाँच तत्व, सभी सगुण और निर्गुण पदार्थ एक पल में ही उत्पन्न हो जाते हैं और एक पल में ही मोहसागर (निराकार, शून्य, निरञ्जन) में लीन हो जाते हैं।

ए चौदे चुटकी में चल जासी, गुन निरगुन सुन्य तत्व।

निराकार निरंजन सामिल, उड़ जासी ज्यों असत॥८॥

हाथों से चुटकी बजाने में जितना समय लगता है, उतने ही समय के अन्दर चौदह लोक का यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, सगुण-निर्गुण सभी पदार्थ, तथा मोह सागर (शून्य, निराकार, निरञ्जन) भी वैसे ही समाप्त हो जाते हैं, जैसे झूठा सपना नींद के टूटते ही समाप्त हो जाता है।

भावार्थ- इस चौपाई में चौदह लोक के एक ब्रह्माण्ड के लीन होने की जो बात कही गयी है, वह केवल हमें समझाने के लिये की गयी है। हम जिस ब्रह्माण्ड में रहते हैं, यहाँ उसी को सम्बोधित करके कहा गया है। "कोट ब्रह्माण्ड नजरों में आवें, खिन में देख के पल में उड़ावें" प्रकटवाणी (प्रकास हिंदुस्तानी) से यह स्पष्ट होता है कि हमारे चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड जैसे करोड़ों ब्रह्माण्ड

एक ही पल में उत्पन्न होते हैं तथा लय भी हो जाते हैं।

देत काल परिकरमा इनकी, दोऊ तिमर तेज देखाए।

गिनती सरत पोहोंचाए के, आखिर सबे उड़ाए॥९॥

पाताल से लेकर निराकार तक काल परिक्रमा कर रहा है अर्थात् यहाँ सब कुछ काल के अधीन है। यह काल ही दिन के रूप में उजाला करता है तथा रात्रि के रूप में अन्धेरा करता है। दिन-रात्रि की गणना से जिस-जिस की उम्र पूरी होती जाती है, काल उसको मृत्यु के बन्धन में डालता जाता है। अन्ततोगत्वा इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का लय हो जाता है।

ए इंड जो पैदा किया, ए जो विश्व चौदे भवन।

इनमें सुध न काहू को, ए उपजाए किन॥१०॥

चौदह लोक का यह जो ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है, उसमें किसी को भी आज दिन तक स्पष्ट रूप से यह सुध नहीं हुई कि इसकी रचना किसने की है।

भावार्थ- सृष्टिकर्ता कौन है?

इस सम्बन्ध में विद्वतजनों में बहुत अधिक मतभेद है। उनके कथनों में कोई तारतम्य नहीं है। कुछ लोगों का कहना है कि सच्चिदानन्द परब्रह्म ने ही इस सृष्टि को बनाया है। इससे प्रश्न खड़ा होता है कि सच्चिदानन्द परब्रह्म की सृष्टि में असत्, जड़, और दुःख की लीला क्यों है? वेद, उपनिषद, और वेदान्त आदि (जन्मादि यस्य यतः) के आधार पर कुछ का कहना है कि अक्षर ब्रह्म सृष्टिकर्ता हैं। इसमें भी शंका उत्पन्न होती है कि यदि अक्षर ब्रह्म सृष्टिकर्ता हैं, तो इस सृष्टि का प्रलय क्यों होता है? कुछ लोग आदिनारायण को, तो कुछ लोग

ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव को सृष्टि की उत्पत्ति, पालन, और संहार करने वाला कहते हैं। बौद्ध मतानुयायी तथा चार्वाक वाले शून्य से सृष्टि मानते हैं। वे किसी चेतन, अनादि सत्ता को स्वीकार ही नहीं करते, जो सृष्टिकर्ता है। इसी प्रकार जैन मतानुयायी भी सृष्टिकर्ता के रूप में अनादि परमात्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करते। इस प्रकार तारतम ज्ञान से रहित होने के कारण सृष्टि के रचनाकार के सम्बन्ध में तरह-तरह की भ्रान्तियाँ हैं। इस चौपाई में यही भाव दर्शाया गया है।

हम भी आए इन खेल में, बुध न कछुए सुध।

धनी आए अछरातीत, मोहे जगाई कई बिध॥११॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हम सुन्दरसाथ भी इस माया का खेल देखने के लिये आये। स्वप्न की बुद्धि वाले

इस ब्रह्माण्ड में हमें अपने धाम धनी की, निज घर की, तथा अपने स्वरूप की कोई भी सुध नहीं रही। अन्त में स्वयं अक्षरातीत ने श्री देवचन्द्र जी के धाम हृदय में विराजमान होकर मुझे अनेक प्रकार के उपायों से जाग्रत किया।

कह्या खेल किया तुम कारने, ए जो मांग्या खेल तुम।

खेल देख के घर चलो, आए बुलावन हम॥१२॥

धाम धनी ने मुझसे कहा कि तुमने मुझसे माया के इस खेल को देखने की इच्छा की थी, इसलिये तुम्हारी इच्छा को पूर्ण करने के लिये ही यह संसार बनाया गया है। मैं तुम्हें बुलाने के लिये ही यहाँ आया हूँ। इस मायावी खेल को देखकर तुम अपने निज घर (परमधाम) चलो।

निबेरा खीर नीर का, सास्त्र सबों का सार।

अठोतर सौ पख को, कर दियो निरवार॥१३॥

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के स्वरूप में प्राणवल्लभ अक्षरातीत ने सभी शास्त्रों का सार बताते हुए पानी और दूध को अलग-अलग कर दिया, अर्थात् माया और ब्रह्म के स्वरूप की वास्तविक पहचान दी। इसके अतिरिक्त उन्होंने पाताल से लेकर परमधाम तक के १०८ पक्षों की भी पहचान करा दी।

भावार्थ- सारा संसार आज तक दूध और पानी को अलग-अलग नहीं कर सका है। जिस प्रकार पानी के अन्दर दूध व्यापक होता है, उसी प्रकार माया के अन्दर ब्रह्म व्यापक है, ऐसी ही मान्यता सबकी रही है। तारतम्य ज्ञान से यह निर्णय हो जाता है कि अष्टावरण वाले इस ब्रह्माण्ड से परे सात शून्य, आदिनारायण, तथा मोह

सागर हैं, और उसके परे अखण्ड ब्रह्म का स्वरूप है। इस जगत में मात्र ब्रह्म की सत्ता है, स्वरूप नहीं। इसे ही दूध और पानी को अलग-अलग करना कहते हैं।

नवधा भक्ति के सत्व-रज-तम, तथा पुष्टि-प्रवाही-मर्यादित भाव से ८१ पक्ष होते हैं। ८२वाँ पक्ष वल्लभाचार्य जी का, ८३वाँ पक्ष कबीर जी का, और इसके परे २५ पक्ष परमधाम के हैं। ये कुल १०८ पक्ष होते हैं।

कई साखें सास्त्र साधुन की, दे दे कराई पेहेचान।

मूल स्वरूप देखाए धाम के, कर सनमंध दियो ईमान॥१४॥

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने मुझे अनेक शास्त्रों तथा सन्तों की वाणियों की साक्षी देकर प्रियतम अक्षरातीत की पहचान करायी। उन्होंने परमधाम के मूल स्वरूप (श्री राज श्यामा जी तथा परात्म) को दर्शाकर निसबत

(मूल सम्बन्ध) के प्रति अटूट आस्था पैदा कर दी।

अंतस्करण में रोसनी, और रोसन करी आत्म।

गुन पख इन्द्री रोसन, ऐसा बरस्या नूर खसम॥१५॥

धनी के तारतम ज्ञान का ऐसा प्रकाश फैला कि मेरे अन्तःकरण में उसकी आभा फैल गयी। मेरे तीनों गुणों, तीनों पक्षों, तथा इन्द्रियों में तारतम ज्ञान की ज्योति स्पष्ट रूप से नजर आने लगी। मेरी आत्मा तो दिव्य ज्ञान की अलौकिक आभा से पहले ही प्रकाशित हो चुकी थी।

भावार्थ— यद्यपि ज्ञान इन्द्रियों से ही ग्रहण किया जाता है, किन्तु वह व्यवहार में तब तक प्रयुक्त नहीं होता जब तक जीव और अन्तःकरण की ओर से ज्ञान की धारा न बहे। अन्तःकरण में स्थित ज्ञान भी पूर्ण रूप से उतना लाभकारी नहीं होता, जितना जीव के अन्दर स्थित

ज्ञान। इसका स्पष्ट प्रमाण यही देखने में आता है कि मन, बुद्धि, और चित्त में धर्माचरण की बात तो रहती है, किन्तु उसका आचरण नहीं हो पाता। ध्यान की गहन अवस्था में प्रियतम परब्रह्म की कृपा से जब आत्मा और जीव में तारतम ज्ञान का प्रकाश फैल जाता है, तो अन्तःकरण और इन्द्रियों में उसका प्रकाश स्वतः ही फैल जाता है।

बोहोत सोर किया मुझ ऊपर, रोए रोए कहे वचन।

अपनायत अपनी जान के, मोहे खोल दिए द्वार वतन॥१६॥

मेरी आत्मा को जाग्रत करने के लिये मेरे सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने मुझे बहुत अधिक चर्चा सुनायी (शोर किया)। उन्होंने रो-रोकर अपनी अमृतमयी वाणी सुनायी। परमधाम के मूल सम्बन्ध से, अपनेपन की

भावना से, उन्होंने अखण्ड परमधाम का द्वार खोल दिया।

क्यों कर कहूं मैं हेत की, जो धनिऐं किए भांत भांत।

जगाई धाम देखावने, कई विध करी एकांत॥१७॥

धाम धनी ने मुझसे तरह-तरह से जो इतना अधिक प्रेम किया, उसे मैं कैसे कहूँ। उन्होंने मुझे एकान्त में बैठाकर कई प्रकार से आध्यात्मिक चर्चा की और परमधाम को दिखाने के लिये मुझे जाग्रत किया।

जिनसों सब विध समझिए, ऐसी दई मोहे सुध।

सास्त्रों आगूं यों कहा, धनी ले आवसी जाग्रत बुध॥१८॥

धनी ने अपनी जाग्रत बुद्धि से मुझे ऐसी सुध दे दी है, जिससे अध्यात्म जगत के प्रत्येक तथ्य (बात, विषय)

को समझा जा सकता है। शास्त्रों में यह भविष्यवाणी पहले से ही लिखी हुई है कि जब परब्रह्म इस नश्वर जगत में आयेंगे, तो अपने साथ जाग्रत बुद्धि लेकर आयेंगे।

अनेक लिखी निसानियां, करावने हमारी पेहेचान।

जाने सब कोई सेवें इनको, कई किए साख निसान॥१९॥

धनी ने संसार को हमारी पहचान देने के लिये अनेक प्रकार के संकेत धर्मग्रन्थों में लिखवा दिए हैं। अनेक प्रकार की साक्षियाँ तथा संकेत धर्मग्रन्थों में इसलिये लिखवाये गये, ताकि संसार के लोग हमारी (ब्रह्मसृष्टियों की) पहचान करके, हमारी सेवा करके कृतार्थ हो सकें।

भावार्थ— "जाको मेहर करें मोमिन, ताए सुपने नहीं होए दोजक" तथा "बन्दगी इनकी और खुदाए की, बीच नहीं तफावत" से यह सिद्ध है कि ब्रह्ममुनियों की सेवा -

सम्मान करने वाला निश्चय ही अपने लिये कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर लेता है।

यों कई बिध समझाई दुनियां, देने हम पर ईमान इस्क।
धनी नाम खिताब दे अपनों, मुझे बैठाई कर हक॥२०॥

इस प्रकार अक्षरातीत ने संसार के लोगों को हमारे प्रति अटूट श्रद्धा और प्रेम (ईमान और इश्क) रखने के लिए धर्मग्रन्थों के माध्यम से अनेक प्रकार से समझाया। धनी ने मुझे अपना नाम तथा अपनी शोभा देकर सच्चिदानन्द परब्रह्म के रूप में जाहिर कर दिया।

भावार्थ- इस चौपाई से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि श्री प्राणनाथ जी का स्वरूप अक्षरातीत का स्वरूप है।

कई दिन सुनाई मुझ को, श्री मुख की चरचा।

और सबे विध समझी, पर लग्या न कलेजे घा॥२१॥

श्री देवचन्द्र जी के धाम हृदय में विराजमान होकर अक्षरातीत ने कई दिनों तक मुझे अपने श्रीमुख से चर्चा सुनायी। मैंने उस चर्चा को हर तरह से समझ भी लिया, लेकिन मेरे हृदय में चोट नहीं लगी।

भावार्थ- इस चौपाई में कई दिनों तक चर्चा सुनाने का प्रसंग उन २२ दिनों का है, जब सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के धामगमन का समय अति निकट था। हृदय में चोट न लगने का भाव यह है कि ज्ञान दृष्टि से धनी के स्वरूप की पहचान हो जाने के बाद उन्होंने अपने प्रियतम का वियोग कैसे सहन कर लिया।

चौदे भवन के जो धनी, विस्व पूजत सब ताए।

ए सुध नहीं काहू को, कोई और है इसदाए॥२२॥

सारा संसार चौदह लोकों के स्वामी आदिनारायण की पूजा करता है। यह कितने आश्चर्य की बात है कि इस संसार में किसी को भी आज तक इस बात की सुध नहीं हो पायी कि आदिनारायण के अतिरिक्त अन्य कोई परमात्मा अनादि काल से है।

त्रिगुन इस ब्रह्माण्ड के, तिनको भी ए सुध नाहें।

कहां से आए हम कौन हैं, कौन इन जिमी मांहें॥२३॥

इस ब्रह्माण्ड के देवता ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव को भी इस बात की सुध नहीं है कि हम कौन हैं, कहाँ से आये हैं, तथा कौन सी दुनिया में आकर फँस गये हैं।

महाविष्णु सुन्य प्रकृती, निराकार निरंजन।

ए काल द्वैत को कोहै, ए सुध नहीं त्रिगुन॥२४॥

तारतम ज्ञान के न होने से ब्रह्मा, विष्णु, और शिव जी को भी इस बात की सुध नहीं हो पायी कि आदिनारायण, प्रकृति, शून्य, निराकार-निरञ्जन, तथा काल के अधीन रहने वाले इस द्वैत मण्डल की वास्तविकता क्या है।

प्रले पैदा की सुध नहीं, तो ए क्यों जाने अछर।

लोक जिमी आसमान के, इनकी याही बीच नजर॥२५॥

जब इनको सृष्टि की उत्पत्ति तथा प्रलय की ही सुध नहीं है, तो भला ये अक्षर ब्रह्म को क्या जान सकते हैं। इस पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों तथा स्वर्ग-वैकुण्ठ आदि के देवों की नजर ब्रह्माण्ड-निराकार से परे नहीं

जा पाती, अर्थात् इसके कण-कण में वे ब्रह्म का स्वरूप मानते हैं।

अछर सरूप के पल में, ऐसे कई कोट इंड उपजे।

पल में पैदा करके, फेर वाही पल में खपे॥२६॥

चौदह लोक के हमारे इस ब्रह्माण्ड जैसे करोड़ों ब्रह्माण्ड अक्षर ब्रह्म के एक पल में उत्पन्न होते हैं तथा उसी पल में लय भी हो जाते हैं।

ए जो न्यारा पारब्रह्म, इनकी भी करी रोसन।

ए जो अछर अद्वैत, भी कहे तिनके पार वचन॥२७॥

अक्षर ब्रह्म अद्वैत हैं। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने मुझे उनसे भी परे स्वलीला अद्वैत सच्चिदानन्द परब्रह्म का ज्ञान दिया।

सो अछर मेरे धनी के, नित आवें दरसन।

ए लीला इन भांत की, इत होत सदा बरतन॥२८॥

वह अक्षर ब्रह्म मेरे प्रियतम अक्षरातीत के दीदार करने के लिये प्रतिदिन आते हैं। इस प्रकार की दर्शन लीला परमधाम में अनादि काल से होती चली आ रही है।

अक्षरातीत के मोहोल में, प्रेम इस्क बरतत।

सो सुध अछर को नहीं, जो किन विध केलि करत॥२९॥

अक्षरातीत परब्रह्म के रंगमहल में अनन्य प्रेम (इश्क) की लीला सर्वदा होती रहती है। अक्षरातीत अपनी प्रियाओं से किस प्रकार प्रेम की लीला करते हैं, इसकी खबर अक्षर ब्रह्म को भी नहीं थी।

सो धाम वतन मोहे कर दियो, मेरो अछरातीत धनी।

ब्रह्म सृष्ट मिनें सिरोमन, मैं भई सोहागिनी॥३०॥

मेरे प्रियतम अक्षरातीत मेरे धाम हृदय में विराजमान हो गये। उनकी इस मेहर से मैं सोहागिन इन्द्रावती सभी ब्रह्मसृष्टियों में सिरदार (प्रमुख) बन गयी, अर्थात् मेरी सोभा सबसे ऊपर हो गयी।

भावार्थ- सुन्दरसाथ में अनुचित मार्ग से सिरदारी करना या किसी भी प्रकार की शोभा की इच्छा करना यद्यपि एक प्रकार से अपराध है, किन्तु यदि यही शोभा या सम्मान अपने बलिदान (त्याग), समर्पण आदि गुणों और धनी की कृपा से होती है, तो उसमें कोई भी दोष नहीं है।

साख गुन पख इंद्रियां, आतम परआतम साख।

सास्त्र सब ब्रह्माण्ड के, देत भाख भाख कई लाख॥३१॥

इस बात की साक्षी मेरे शरीर के गुण, पक्ष, इन्द्रियाँ, तथा आतम-परात्म दे रही हैं। इस ब्रह्माण्ड के सभी धर्मग्रन्थ भी अनेक भाषाओं में इसकी साक्षी दे रहे हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में वर्णित "सास्त्र" शब्द से तात्पर्य मात्र छः शास्त्रों से नहीं, बल्कि सभी धर्मग्रन्थों से है। "लाख" शब्द का प्रयोग यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार के रूप में किया गया है। पुराण संहिता, माहेश्वर तन्त्र आदि ग्रन्थों में "इन्द्रावती जी (महामति)" द्वारा जागनी लीला का वर्णन है। इसी प्रकार कुरआन-हदीसों के अनुसार- "आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिबुज्जमां के रूप में कियामत के समय परब्रह्म की शक्ति कार्य करेगी।" इसी प्रकार अन्य धर्मग्रन्थों की भी साक्षियाँ हैं।

ऐसा सुच्छम सरूप देखाए के, दे धाम करी चेतन।

इत विलास कई बिध के, मांहे सिरदारी सैन॥३२॥

सद्गुरु ने उस त्रिगुणातीत अद्वैत परमधाम का स्वरूप दिखाकर मुझे माया के प्रति चेतन (सावधान) कर दिया। इस संसार में बैठे-बैठे मुझे परमधाम के कई प्रकार के आनन्द का भी अनुभव हुआ। अन्ततोगत्वा धनी ने मुझे ब्रह्मसृष्टियों में सबसे बड़ी शोभा दे दी, अर्थात् नेतृत्व करने वाला प्रमुख (सिरदार) बना दिया।

ऐसी साख देवाई कर सनमंध, आतम करी जाग्रत।

सो आए धनी मेरे धाम से, कही विवेके कयामत॥३३॥

इस प्रकार मेरे धाम धनी मेरी आत्मा को जाग्रत करने के लिये परमधाम से आए। उन्होंने अनेक साक्षियाँ देकर मुझे सम्बन्ध (निसबत) की पहचान करायी तथा मेरी

आत्मा को जाग्रत किया। सबको विवेक देने वाले उस कियामत के समय तथा पहचान का भी उन्होंने स्पष्ट वर्णन किया।

ऐसे कई सुख परआत्म के, अनुभव कराए अंग।

तो भी इस्क न आइया, नेहेचल धनी सों रंग॥३४॥

इस प्रकार धनी ने मेरी आत्मा के हृदय में परात्म के कई सुखों का अनुभव कराया, फिर भी धनी से अखण्ड आनन्द लेने के लिये मेरे अन्दर इश्क नहीं आ सका।

भावार्थ- चितवनि में डूबने पर आत्मा के हृदय में युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी, तथा सब सुन्दरसाथ, या अपनी परात्म का स्वरूप नजर आता है, इसे ही आत्मा के धाम हृदय में परात्म के सुख का प्रकट होना कहते हैं।

इन धाम की लीला मिने, इन धनी की अरधांग।

तो भी प्रेम ना उपज्या, कोई आतम भई ऐसी अंध॥३५॥

मैं परमधाम की लीला के अन्दर अपने प्रियतम अक्षरातीत की अर्धांगिनी हूँ, फिर इस मायावी जगत् में मेरी आत्मा इस प्रकार फँस गयी कि मेरे अन्दर धनी का प्रेम नहीं आ पाया।

भावार्थ— यह प्रसंग सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्तर्धान लीला से पूर्व का है। हब्से में तो श्री इन्द्रावती जी ने विरह और प्रेम (इश्क) की अवस्था को प्राप्त कर ही लिया था।

तब आप अंतरध्यान होए के, भेज दिया फुरमान।

हम को इस्क उपजावने, इत कई बिध लिखे निसान॥३६॥

तब मेरे सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने अपने पञ्चभौतिक

तन का त्याग कर दिया तथा मेरे अन्दर इश्क पैदा करने के लिये हब्शा में ब्रह्मवाणी दी। इनमें तीन ग्रन्थ प्रमुख थे— १. रास २. प्रकाश ३. षट्क्रतु। इन तीनों ग्रन्थों में प्रियतम की पहचान के काफी संकेत लिखे हुए हैं।

भावार्थ— सामान्य रूप से फुरमान का अर्थ होता है कुरआन या भागवत्, किन्तु यहाँ "फुरमान" शब्द से भाव लिया जायेगा रास, प्रकाश, तथा षट्क्रतु का। यद्यपि वहाँ चौथी किताब कलश गुजराती की भी दो चौपाइयाँ उतरिं थीं। रास, प्रकाश, एवं षट्क्रतु में स्पष्ट रूप से श्री प्राणनाथ जी की पहचान बतायी गयी है, तथा सुन्दरसाथ को धनी की पहचान करने एवं रहनी में आने का आदेश दिया गया है। इसलिये इन तीन ग्रन्थों को "फुरमान" शब्द से सम्बोधित किया गया है।

इन बिध देने ईमान, उपजावने इस्क।

सो इस्क बिना न पाइए, ए जो नूर तजल्ला हक॥३७॥

इस प्रकार धनी ने हमारे अन्दर ईमान और इश्क पैदा करने के लिये हमारे ऊपर मेहर की। इश्क के बिना उस प्रियतम अक्षरातीत से मिलन कदापि नहीं हो सकता।

प्रकरण ॥७४॥ चौपाई ॥९९६॥

राग श्री साखी

यह प्रकरण विरह से सम्बन्धित है। इसमें उस प्रसंग का वर्णन है, जब श्री इन्द्रावती जी की आत्मा को यह स्पष्ट पहचान हो जाती है कि श्री देवचन्द्र जी के अन्दर तो मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत की ही लीला हो रही थी। इस बोध के बाद वे विरह के सागर में डूब जाती हैं और उनके हृदय से विरह की पीड़ा के ये उद्गार फूट पड़ते हैं।

मेरे धनी धाम के दुलहा, मैं कर न सकी पेहेचान।

सो रोऊं मैं याद कर कर, जो मारे हेत के बान॥१॥

धाम के दुल्हा! मेरी आत्मा के प्राण प्रियतम! यह मेरा दुर्भाग्य है कि जब आप श्री देवचन्द्र जी के अन्दर विराजमान होकर लीला कर रहे थे, उस समय मैं आपकी पूरी पहचान नहीं कर सकी थी। आप मेरी

आत्म-जाग्रति के लिये अतिशय लाड-प्यार से जो अमृत भरे वचन कहा करते थे, अब मैं उनको याद कर-कर रोया करती हूँ।

सोई दरद अब आइया, लग्या कलेजे घाए।

अब ए अचरज होत है, जो मुरदे रहत अरवाहे॥२॥

अब मेरे हृदय में विरह का दर्द इस प्रकार सता रहा है कि मेरे कलेजे में घाव हो जा रहे हैं। मुझे अभी भी इस बात पर बहुत आश्चर्य हो रहा है कि विरह की इस अवस्था में भी मेरी आत्मा मुर्दे की तरह इस तन में क्यों पड़ी हुई है, वह इस शरीर को क्यों नहीं छोड़ देती।

अपनायत केती कहूं, जो करी हमसों तुम।

नींद उड़ाई बुलावने, पोहोंचाया कौल हुकम॥३॥

हे सद्गुरु महाराज! आपने परमधाम के मूल सम्बन्ध से जो अपनेपन का प्रेम किया, उसका मैं शब्दों में कैसे वर्णन कर सकती हूँ। मुझे जाग्रत करने के लिये आपने मेरी माया की नींद उड़ा दी और मुझे जाग्रत करने के लिये धनी के आदेश के वचनों को मुझ तक पहुँचाया।

भावार्थ- इस चौपाई में श्री इन्द्रावती जी ने श्री देवचन्द्र जी के अन्दर विराजमान श्री श्यामा जी को सम्बोधित करके कहा है। जब श्री राज जी ने श्यामा जी को दर्शन दिया, तब श्री राज जी का आदेश हुआ कि "ल्याओ बुलाए तुम रूह अल्ला, जो रूहें मेरी आसिक।" यह बात इन्द्रावती जी तक पहुँचाना ही कहा जायेगा- "पोहोंचाया कौल हुकम।"

क्या रोई क्या रोऊंगी, उठी आग इस्क।

थिर चर सारा जलिया, जाए झालां पोहोंची हक॥४॥

हे धनी! अब मेरे अन्दर इश्क की आग जल रही है। आपके विरह में मैं पहले ही इतना रो चुकी हूँ कि लगता है भविष्य में मैं क्या रोऊँ। आपके इश्क की अग्नि में मेरा शरीर रूपी चर-अचर सारा ब्रह्माण्ड जल रहा है। इसकी लपटें भी आप तक पहुँच चुकी हैं।

भावार्थ- अत्यधिक विरह में सारे आँसू अन्दर ही अन्दर सूख जाते हैं। ऐसी स्थिति में रोने और आँसू बहने की प्रक्रिया बन्द हो जाती है। इस प्रकरण की चौपाई ५ और ७ से १४ में शरीर की तुलना वन और ब्रह्माण्ड से की गयी है। इन चौपाइयों में विरह की अग्नि में जँगल , पहाड़, रसातल, पाताल, निराकार, पुरुष, प्रकृति, आकाश आदि के रोने की बात जो कही गयी है, वह

सम्भव नहीं है क्योंकि व्यवहार में तो यही देखा जाता है कि कोई व्यक्ति रो रहा होता है और उसके पास के लोग हँस रहे होते हैं। यह संसार वाहिदत के विपरीत स्वार्थमयी है। श्री इन्द्रावती जी के विरह के कारण जब परमधाम की आत्मा होते हुए भी बिहारी जी नहीं रोये, तो माया के जीवों से भरा यह ब्रह्माण्ड क्यों रोयेगा। ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है, उसका सूक्ष्म अंश शरीर में अवश्य है। उसी को लक्ष्य करके इन चौपाइयों में सारा वर्णन किया गया है। शरीर के कुछ अंग बिल्कुल स्थिर रहते हैं तथा कुछ गतिमान रहते हैं। इन्हें ही स्थिर और चर के नाम से इस चौथी चौपाई में वर्णन किया गया है।

जो साहेब मैं देखिया, सो मिले होए सुख चैन।

तब लग आतम रोवत, सूके लोहू पानी नैन॥५॥

यदि मैंने अपने प्रियतम का दीदार कर लिया होता, तो मेरे हृदय में सुख-चैन हो जाता। जब तक मैं अपने धनी को नहीं पा लूँगी तब तक मेरी आत्मा बिलखती रहेगी, शरीर का रक्त सूखता रहेगा, तथा नेत्रों से आँसुओं की धारा बहती रहेगी।

भावार्थ- यह कीर्तन जिस समय महामति जी के धाम हृदय से उतरा है, उस समय उनके अन्दर धनी तो विराजमान थे ही। हृब्शा में विरह की अवस्था को दर्शाने के लिये ही यहाँ यह बात कही गयी है कि यदि मैंने अपने प्रियतम का दीदार कर लिया होता, तो मुझे सुख-चैन प्राप्त हो जाता।

जो पट आड़े धाम के, मैं ताए देऊं जार बार।

कोई बिध करके उड़ाइए, ए जो लाग्यो देह विकार॥६॥

परमधाम की राह में जो भी रुकावटें होंगी, उनको मैं पूरी तरह से जला दूँगी। मेरे शरीर में माया के जो भी विकार हैं, उनको समाप्त करने के लिये मैं कोई भी उचित रास्ता अपना लूँगी।

बन बेली सब रोइया, और जंगल जानवर।

कई पसु पंखी केते कहूं, जले जो दरदा कर॥७॥

मेरे शरीर रूपी वन की सभी लतायें और जानवर रो रहे हैं। विरह के दर्द में बेशुमार पशु-पक्षी भी जलकर खाक हो रहे हैं।

भावार्थ— इस चौपाई में शरीर की तुलना उस वन से की गई है जो लताओं, पशु-पक्षियों, और जानवरों की शोभा से रहित हो गया हो। आगे की चौपाई में भी यही प्रसंग है।

जंगल रोया जलिया, जल बल हुआ खाक।

इनमें पंखी क्यों रहे, जो पर जल हुए पाक॥८॥

हे धनी! आपके विरह में रोते-रोते मेरे शरीर की हालत ऐसी हो गयी है, जैसे अग्नि में जलकर राख हुआ जँगल। विरह की अग्नि में जलकर जिस जीव रूपी पक्षी के पँख (अन्तःकरण) निर्मल हो चुके हों, भला वह इस शरीर रूपी वन में क्यों रहना चाहेगा।

पहाड़ रोए टूटे टुकड़े, हुए हैं भूक भूक।

भवजल रोया सागर, सो गया सारा सूक॥९॥

हे धनी! आपके विरह में अस्थियों के ढेर रूपी पहाड़ भी रो-रोकर टुकड़े-टुकड़े हो गये तथा उनका चूरा बन गया। विरह की अग्नि में भवसागर रूपी जल भी सूख गया।

भावार्थ- इस चौपाई में सिर से लेकर पैर तक के अस्थि-समूह को पहाड़ कहा गया है। विरह में शरीर की अस्थियाँ सूखी लकड़ी के समान हो जाती हैं। इसे टुकड़े-टुकड़े हो जाना कहा है। मानव शरीर में लगभग ८५% जल होता है। विरह की अग्नि में सम्पूर्ण शरीर का जल सूख जाता है। इस चौपाई में शरीर को भवसागर माना गया है तथा उसमें स्थित जल को भवसागर का जल कहा गया है, जो विरह में सूख जाया करता है।

भोम रोई भली भांत सों, टूट गई रसातल।

नाग लोक सब रोइया, सो पड़या जाए पाताल॥१०॥

मेरे प्रियतम! आपके विरह में पृथ्वी पूरी तरह से रोने लगी। रसातल की धरती भी टूट गयी। सम्पूर्ण नागलोक भी रोने लगा और वह टूटकर पाताल लोक में जा मिला।

भावार्थ- शरीर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का एक सूक्ष्म रूप है। सिर से लेकर पैर तक का भाग १४ लोकों का प्रतिनिधित्व करता है। सिर ब्रह्मलोक का प्रतीक है। कमर पृथ्वी लोक का और इसके नीचे के अंग पाताल लोकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कमर से लेकर सिर तक का भाग ऊपर के सात लोकों का प्रतीकात्मक रूप है। विरह की अवस्था में कमर से नीचे के हिस्से जर्जर हो जाते हैं। इस चौपाई में इसी भाव को आलंकारिक रूप में दर्शाया गया है।

रोए पांच तत्व तीन गुन, निरंजन निराकार।

रोई द्वैत पुरुष प्रकृति, पट उड़यो अंतर आकार॥११॥

आपके विरह में पाँचों तत्व , तीनों गुण , निरञ्जन-निराकार, और पुरुष-प्रकृति भी रो पड़े। मेरे शरीर में

मायावी विकारों का जो पर्दा पड़ा था, वह भी हट गया।

भावार्थ- शरीर में आदिनारायण का ही प्रतिबिम्बित चैतन्य जीव है। प्रकृति (रोधिनी शक्ति) से ही मोहतत्व उत्पन्न होता है, जिसे निराकार-निरञ्जन कहते हैं। उससे ही तीन गुण तथा पाँच तत्व का प्रकटन होता है, जो सूक्ष्म रूप से शरीर में विद्यमान हैं। विरह की अवस्था में जीव सहित शरीर का अणु-अणु प्रभावित होता है। यहाँ यही भाव दर्शाया गया है।

आकास रोया सब अंगों, मोह अहं गल्यो चहुं ओर।

निराकार निरंजन गलया, जाए रह्या अंतर ठौर॥१२॥

मेरे धाम धनी! आपके विरह में मेरे शरीर के सभी अंगों में व्याप्त आकाश भी रो पड़ा। सर्वत्र व्यापक रहने वाले मोह और अहंकार भी विरह में गल गये (समाप्त हो गये)।

विरह की अग्नि ने निराकार-निरञ्जन को इस प्रकार समाप्त कर दिया कि वे शरीर से परे ही हो गये।

भावार्थ- मोह तत्व, अहंकार, तथा आकाश का स्वरूप निराकार ही होता है, जिसे निरञ्जन भी कहते हैं। अन्तर केवल इतना ही होता है कि ये प्रकृति के महाकारण, कारण, और सूक्ष्म स्वरूप हैं। विरह की अग्नि में चेतना का धरातल सूक्ष्म, कारण, तथा महाकारण को पार करके त्रिगुणातीत ब्रह्म की सान्निध्यता को प्राप्त कर लेता है। इसे ही आकाश, अहंकार, तथा मोह तत्व का गल जाना कहते हैं।

इस्कें आग फूंक दई, लाग्यो सब ब्रह्माण्ड।

जब पोहोंची झालां अंतर लों, तब क्यों रहे ए पिंड॥१३॥

मेरे अन्दर इश्क की अग्नि ऐसी जली कि वह सारे

ब्रह्माण्ड में फैल गयी। जब इसकी लपटें ब्रह्माण्ड और बेहद से भी परे परमधाम तक पहुँची, तब वैसी स्थिति में भला यह तन कैसे रह सकता था।

भावार्थ— सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में इश्क की अग्नि के फैल जाने का वर्णन आलंकारिक है। जब इश्क में आत्मा पूर्ण रूप से गलतान हो जाती है, तो उसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड वैसे ही इश्कमयी लगने लगता है जैसे सावन के अन्धे को चारों ओर हरा ही हरा दिखता है। इसी को कहते हैं— सारे ब्रह्माण्ड का इश्कमयी हो जाना।

आग इस्क ऐसी उठी, लोहू रोया वैराट।

खाक हुआ जल बल के, उड़ गया सब ठाट॥१४॥

मेरे अन्दर इश्क की ऐसी अग्नि लग गई कि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड (शरीर) खून के आँसू बहाने लगा। सारा शरीर

जलकर राख हो गया और उसका सारा ठाट-बाट चला गया, अर्थात् संसार के सुखों से पूर्णतया विरक्ति हो गयी।

भावार्थ- "खून के आँसू बहाना" एक मुहावरा है, जिसका अभिप्राय होता है- बहुत अधिक दुःखी हो जाना। इश्क की अग्नि में जलने पर धनी के बिना संसार में पल-भर भी रहना अच्छा नहीं लगता। यहाँ यही भाव दर्शाया गया है।

महामत कहे मेहेबूब जी, खेल देख्या चाह्या दिल।

हांसी करी भली भांत सों, अब उठो सुख लीजे मिल॥१५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरे प्रियतम! हमने माया में जिस प्रकार के खेल देखने की इच्छा की थी, वैसा देख लिया। आपने बहुत अच्छी तरह से हमारी हँसी की है। अब हमारी आत्माओं को जाग्रत करके परमधाम के

आनन्द में डुबाइये तथा हमारे साथ मिलकर उस प्रेम के
रस में सहभागी बनिए।

प्रकरण ॥७५॥ चौपाई ॥१०११॥

राग श्री

यह सम्पूर्ण प्रकरण चितवनि से सम्बन्धित है।

निजनाम सोई जाहेर हुआ, जाकी सब दुनी राह देखत।

मुक्त देसी ब्रह्माण्ड को, आए ब्रह्म आत्म सत॥१॥

अब अनादि अक्षरातीत सच्चिदानन्द परब्रह्म का वह नाम (पहचान) जाहिर हो गया है, जिसकी बाट सारी दुनिया देख रही थी। परमधाम में रहने वाले अखण्ड स्वरूप वाले वे ब्रह्ममुनि इस संसार में प्रकट हो गये हैं, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अखण्ड मुक्ति देंगे।

भावार्थ- इस चौपाई में "नाम" शब्द से तात्पर्य "पहचान" से है, किसी सम्बोधनात्मक शब्द विशेष से नहीं। श्री कृष्ण, श्री राज, श्री प्राणनाथ आदि शब्द बहुत पहले से चले आ रहे हैं। वेद, रामायण, माहेश्वर तन्त्र

आदि अनेक ग्रन्थों में इन शब्दों का प्रयोग हुआ है।
 वस्तुतः सारा संसार तो सृष्टि के प्रारम्भ से ही यह जानने
 की कोशिश करता रहा है कि उस सच्चिदानन्द परब्रह्म का
 स्वरूप, धाम, और लीला क्या है? परब्रह्म की पहचान
 इन्हीं तीन शब्दों में छिपी हुई है।

हो मेरी सत आत्मा, तुम आओ घर सत खसम।

नजर छोड़ो री झूठ सुपन, आए देखो सत वतन॥२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि परमधाम की अखण्ड
 स्वरूप वाली हे मेरी आत्माओं (सुन्दरसाथ)! तुम ध्यान
 (चितवनि) द्वारा अपने प्रियतम के अखण्ड घर परमधाम
 में आओ। इस स्वप्नमयी झूठे संसार से अपनी दृष्टि
 हटाकर अखण्ड परमधाम में आओ और यहाँ की
 अलौकिक शोभा को देखो।

तुम निरखो सत सरूप, सत स्यामाजी रूप अनूप।

साजो री सत सिनगार, विलसो संग सत भरतार॥३॥

हे सुन्दरसाथ जी! आप ध्यान द्वारा अपने अखण्ड स्वरूपों तथा श्री श्यामा जी की अनुपम एवं अखण्ड शोभा को देखिए। स्वयं परात्म का श्रृंगार सजकर अपने प्रियतम श्री राज जी के साथ परमधाम के आनन्द में डूब जाइए।

भावार्थ- "आत्मा" परात्म का प्रतिबिम्ब है। अपने पञ्चभौतिक तन को पूर्णतया भुलाकर, परात्म के श्रृंगार जैसा ही स्वयं का श्रृंगार सजाकर, ध्यान में डूबना चाहिए। यही "साजो री सत सिनगार" का अभिप्राय है।

सत धनी सों करों हांस, पीछे करो प्रेम विलास।

सत बरनन कीजो एह, उपजे सत प्रेम सनेह॥४॥

ध्यान में अपने प्रियतम से मीठी-मीठी बातें कीजिए। तत्पश्चात् प्रेम के आनन्द में डूब जाइए। अन्य सुन्दरसाथ से परमधाम की अखण्ड शोभा तथा लीला का वर्णन कीजिए, जिससे उनके हृदय में भी धनी के प्रति अखण्ड प्रेम प्रकट हो जाये।

सत साथ देत देखाई, सत आनन्द अंग न माई।

सत साथ सों करो प्रीत, देखो सत घर की ए रीत॥५॥

चितवनि में डूब जाने पर धनी की कृपा से मूल मिलावा में विराजमान सुन्दरसाथ के अखण्ड तन दिखायी देते हैं। वहाँ का अखण्ड आनन्द इतना अधिक है कि वह हृदय में समाता नहीं है, overflow होने के कारण। परमधाम में जिनके मूल तन हैं या जो धनी के प्रेम में डूबे रहने वाले सुन्दरसाथ हैं, उनके साथ गहन प्रीति रखनी

चाहिए। प्रेम का मार्ग अपनाना ही अपने अखण्ड घर
(परमधाम) की रीति (परम्परा) है।

सत रेहेस सत रंग, सत साथ को सुख अभंग।

तुम संग करो सत बातें, सत दिन और सत रातें॥६॥

परमधाम की प्रेममयी लीला और आनन्द हमेशा ही
अखण्ड है। अखण्ड स्वरूप वाले सुन्दरसाथ का सुख भी
अखण्ड है। वहाँ दिन तथा रात्रि भी मनचाहे हैं। हे
सुन्दरसाथ जी! आप परमधाम की इन आनन्दमयी बातों
में डूबे रहिए।

सत चांद और सत सूर, हिसाब बिना सत नूर।

सत सोभा सत मन्दिर, सत सुख सेज्या अंदर॥७॥

परमधाम में अखण्ड चन्द्रमा और सूर्य की शोभा है।

उनमें अनन्त नूर की अखण्ड शोभा आयी है। अखण्ड मन्दिरों की शोभा भी अखण्ड है। उसमें रंच मात्र भी हास नहीं होता। मन्दिरों के अन्दर की सेज्या का सुख भी शाश्वत है।

सत जिमी सत बन, खुसबोए सत पवन।

लेहेरी लेवे सत जल, सत आकास निरमल॥८॥

परमधाम की धरती तथा वनों की शोभा अखण्ड है। सुगन्धित पवन अबाध गति से बहता रहता है। सागरों, नहरों, तथा यमुना जी का जल लहरों के रूप में अखण्ड रूप से शोभायमान है। शाश्वत आकाश हमेशा ही स्वच्छ दिखायी देता है।

भावार्थ— सत्य का अर्थ होता है— हमेशा अखण्ड रहने वाला। सत्य चेतन होता है। उसमें प्रेम और आनन्द का

रस प्रवाहित होता रहता है। इस प्रकार परमधाम की प्रत्येक वस्तु सच्चिदानन्दमयी है।

सत पसु पंखी अलेखें, सत खेल राज साथ देखें।

सत खेलें बोलें बन माहीं, सत सुख हिसाब काहूं नाहीं॥९॥

परमधाम में अनन्त पशु-पक्षी हैं, जिनकी नूरी शोभा शाश्वत है। पशु-पक्षियों के खेल को सखियाँ श्री राज जी के साथ देखा करती हैं। वनों में पशु-पक्षियों की क्रीड़ा और बोलने की लीला हमेशा चलती रहती है। इन लीलाओं में अखण्ड और अनन्त आनन्द छिपा हुआ है।

रूत रंग रस नए नए, अलेखे सदा सुख कहे।

सत जमुना त्रट किनारें, दोऊ तरफ बराबर हारें॥१०॥

परमधाम में ऋतुओं के आनन्द का रस नित्य नूतन बना

रहता है। वह सुख सर्वदा ही अनन्त रहता है। यमुना जी के किनारे दोनों ओर अति सुन्दर वृक्षों की हारें अखण्ड रूप से शोभा ले रही हैं।

सत डारी झलूबे ऊपर जल, खुसबोए हिंडोले सीतल।

सत सुख तलाब के त्रट, खोल देखो नैना पट॥११॥

यमुना जी के पाल पर आये हुए वृक्षों की डालियाँ जल के ऊपर झूलती रहती हैं। इन डालियों में हिंडोले लगे हुए हैं, जिनमें झूलने पर सुगन्धित और शीतल हवा के झोंके आनन्दित करते हैं। हे सुन्दरसाथ जी! अपने आत्मिक नेत्रों से हौज कौसर तालाब के किनारे की अखण्ड शोभा को देखिए।

पसु गाए लगावें रट, गिरदवाए दयोहरी निकट।

बड़ा अचरज मोहे एह, ए सुन क्यों रहे झूठी देह॥१२॥

हौज कौसर तालाब के चारों ओर घेरकर दयोहरियों की शोभा आयी है। उनके निकट विचरण करने वाले जानवर गा-गाकर धाम धनी के नाम की रट लगाया करते हैं। मुझे इस बात पर बहुत आश्चर्य हो रहा है कि परमधाम की इस लीला के आनन्द को सुनकर भी यह तन अभी तक क्यों खड़ा है।

ए खेल झूठा तो छोड़या जाए, जो सत सुख अंग में भराए।

जब सत सुख देखो केलि, तब झूठा दुख देओगे ठेलि॥१३॥

माया के इस झूठे खेल को हम तभी छोड़ पायेंगे, जब हमारे हृदय में परमधाम के अखण्ड सुख आ जायें। हे सुन्दरसाथ जी! जब आप प्रेम में डूबकर परमधाम के

अखण्ड सुखों का अनुभव करेंगे, तब आप झूठे संसार के दुःखों को स्वतः ही छोड़ देंगे।

सत साईं सों करो विलास, तब टूट जाए झूठी आस।
 ज्यों ज्यों लेओगे सत सुख, त्यों त्यों छूटे असत दुख॥१४॥
 हे सुन्दरसाथ जी! जब आप ध्यान द्वारा अपने प्रियतम से आनन्द की लीला में मग्न रहेंगे, तब मायावी सुखों से शाश्वत सुख पाने की झूठी आशा समाप्त हो जायेगी।
 जैसे-जैसे आप चितवनि में डूबकर परमधाम के अखण्ड सुखों को प्राप्त करेंगे, वैसे-वैसे माया का यह दुःखमय संसार छूटता जायेगा।

ज्यों ज्यों उठें सत सुख के तरंग, त्यों त्यों उड़े सुपन को संग।
 जब याद आवे सुख अपनों, तब छूटेगो झूठो सुपनो॥१५॥

जैसे-जैसे आपके हृदय में परमधाम के अखण्ड सुखों की लहरें आने लगेंगी, वैसे-वैसे सांसारिक सुखों से आसक्ति हटती जायेगी। जब ध्यान में परमधाम के सुखों की अनुभूति होने लगेगी, तब यह झूठा स्वप्नमयी जगत् छूट जायेगा।

देखो मन्दिर मोहोल झरोखे, ज्यों छूट जाए दुख धोखे।

देखो झूठी फेर फेर मारे, सत सुख बिना कोई न उबारे॥१६॥

हे सुन्दरसाथ जी! अब आप चितवनि में बैठकर परमधाम के महलों, मन्दिरों, तथा झरोखों की शोभा को देखिए। इससे छलमयी जगत् के दुःखों से आपका सम्बन्ध छूट जायेगा। इस बात पर विचार कीजिए कि यह झूठी माया बारम्बार आपको अपने जाल में फँसाती रहती है। परमधाम के अखण्ड सुखों की अनुभूति हुए बिना इस

मायावी जगत से कोई भी पार नहीं हो सकता, अर्थात् प्रेममयी चितवनि में डूब जाने के अतिरिक्त माया से उबारने वाला अन्य कोई भी साधन नहीं है।

छोड़ घर को सुख अलेखे, आतम काहे को दुखड़ा देखे।

आतम परआतम पेखे, सुख उपजे सत अलेखे॥१७॥

अपने परमधाम के अनन्त सुखों को छोड़कर आत्मा को क्या आवश्यकता है कि वह इस दुःखमयी जगत को देखे। जब आत्मा चितवनि में अपने मूल तन परात्म को देख लेती है, तो उसके हृदय में धाम का अनन्त सुख प्रकट हो जाता है।

जब आतम ने दर्ई साख, सार्थें भी कही बेर लाख।

सत धनिएं साख आए दर्ई, सो तो सत वतन वालों ने लई॥१८॥

जब मेरी आत्मा ने प्रियतम के दीदार के सुख का अनुभव किया तथा उसकी साक्षी दी, कुछ अनुभवी सुन्दरसाथ ने अपने आत्मिक अनुभव को अनेक बार (लाखों बार) कहा। अनादि प्रियतम अक्षरातीत ने भी मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर ब्रह्मवाणी द्वारा साक्षी दी, तो उसे अखण्ड वतन वालों (ब्रह्मसृष्टि एवं ईश्वरी सृष्टि) ने आत्मसात् किया अर्थात् अनुसरण किया।

आत्म ने सत परचे पाए, तो भी झूठा दुख छोड़या न जाए।

जब सत सुख पाया रस, जीवरा तबहीं चल्या निकस॥१९॥

जब आत्मा को सत्य की पूरी पहचान हो जाती है, तब भी इस दुःखमयी झूठे जगत को नहीं छोड़ा जाता। जब जीव को अखण्ड सुख का कुछ रस मिल जाता है, तभी वह इस शरीर को छोड़ देने की इच्छा करता है।

भावार्थ- प्रियतम के दीदार के पश्चात् आत्मा को संसार का जरा भी मोह नहीं रहता, किन्तु धनी के हुक्म (आदेश) से बँधी होने के कारण वह अपने शरीर का परित्याग नहीं कर पाती, अन्यथा माया के जीव भी उस अवस्था में आने के पश्चात् तन को रखना निरर्थक समझते हैं।

जब सत सुख लाग्यो रंग, तब क्यों रहे झूठे को संग।

जब धनीसों उपज्यो सत सनेह, तब क्यों रहे झूठी देह॥२०॥

जब आत्मा को अखण्ड सुख का रंग लग जाता है, अर्थात् उसे अखण्ड आनन्द की प्राप्ति हो जाती है, तब वह माया के झूठे सुखों में नहीं फँसना चाहती। जब प्रियतम अक्षरातीत से अखण्ड प्रेम हो जाता है, तब वह इस झूठे शरीर के बन्धन में रहना नहीं चाहती, अर्थात्

शारीरिक आवश्यकताओं के मोह से परे रहकर वह दिन-रात धनी के प्रेम में ही डूबी रहना चाहती है।

जब सत सुख हिरदे में आवे, अरवा तबहीं निकस के जावे।

जब सत सुख धनी पाया, तब जीवरा क्यों कर पकरे काया॥२१॥

जब चितवनि द्वारा आत्मा के हृदय में अखण्ड सुख आ जाते हैं, तो आत्मा इस शरीर से निकल जाना चाहती है। जब जीव धनी के अखण्ड सुख को पा जाता है, तो वह भी इस शरीर में बँधकर नहीं रहना चाहता अर्थात् त्याग देना चाहता है।

भावार्थ- इस प्रकरण की चौपाई १९, २०, तथा २१ को पढ़ने पर सामान्य रूप से यही भाव निकलता है कि परमधाम और युगल स्वरूप का दर्शन पाने के पश्चात् जब वहाँ का अखण्ड आनन्द मिलने लगता है, तो आत्मा या

जीव इस झूठे शरीर में नहीं रह सकते। व्यवहार में यही देखा जाता है कि उपरोक्त अवस्था में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी, महामति जी, श्री लालदास जी, एवं अन्य बहुत से परमहंस पहुँचे थे, किन्तु किसी का भी तन नहीं छूटा, बल्कि वे लम्बे समय तक जागनी कार्य करते रहे। इस तरह के कथनों का भाव यह होता है कि ब्राह्मी अवस्था में पहुँचने के बाद जीव और आत्मा की अवस्था जल में रहते हुए उस कमल की तरह हो जाती है, जो जल में रहते हुए भी नहीं रहता है। यथार्थतः ब्रह्मसृष्टि तो वही है, जो प्रियतम के दीदार के पश्चात् भी अपने शरीर को न छूटने दे। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी का यह कथन देखने योग्य है—

जो हक देखे टिकया रहे, सोई अर्स के तन।

सोई करे मूल मजकूर, सोई करे बरनन॥

जब अंतर आंखां खुलाई, तब तो बाहेर की मुंदाई।

जब अंतर में लीला समानी, तब अंग लोहू रह्या न पानी॥२२॥

जब आत्मिक नेत्र खुल जाते हैं, तो बाहर के नेत्र बन्द हो जाते हैं। जब आत्मा के हृदय में परमधाम की लीला बस जाती है, तब शारीरिक अंगों में खून और पानी नहीं रहता।

भावार्थ— शरीर में खून और पानी के न रहने की बात आलंकारिक रूप में कही जाती है। मात्र हठ योग की वह जड़ समाधि, जिसमें प्राण दशम द्वार में आकर ठहर जाते हैं और हृदय की धड़कन बन्द हो जाती है। उसमें ही कई दिनों तक बिना रक्त और पानी के रहा जा सकता है। शेष सभी अवस्थाओं में इनकी अनिवार्य आवश्यकता होती है। शरीर में रक्त या जल के न होने के कथन का मूल अभिप्राय यह है कि हृदय में ब्रह्मलीला का आनन्द बस

जाने पर, विरह और प्रेम की अधिकता में, शरीर या संसार की ओर कोई ध्यान ही नहीं रहता। उनके लिये शरीर जीवित रहते हुए भी मरे हुए के समान होता है।

जब देख्या हांस विलास, गल गया हाड मांस स्वांस।

जब अंतर आया सुमरन, रहयो अंग न अंतस्करन॥२३॥

जब आत्मा ध्यान द्वारा परमधाम की उस लीला को देखती है जिसमें अक्षरातीत अपनी ब्रह्मसृष्टियों के साथ अति मधुर हँसी भरी वार्ता (हाँस-परिहास) में डूबे होते हैं, तो पल-पल हृदय में उसी का स्मरण होता रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि उसके शारीरिक अंगों तथा अन्तःकरण की क्रियाओं में बहुत न्यूनता हो जाती है। विरह-प्रेम की इस गहन अवस्था में शरीर की हड्डियाँ और माँस गल जाते हैं, तथा श्वाँस-प्रश्वास की गति भी

बहुत कम रह जाती है।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में कहा गया है कि प्रेम की उस गहन अवस्था में शारीरिक अंगों और अन्तःकरण (हृदय) का अस्तित्व नहीं रहता। ऐसा भाव शब्दों के स्थूल (जाहिरी) अर्थ में ही होता है। सूक्ष्म अर्थ यह है कि विरह और प्रेम की गहन अवस्था में शरीर की प्रतीति (आभास) नहीं रह जाती। वह प्रियतम की प्रेरणा मात्र से जीवन यापन के लिये अनचाहे रूप में ही कुछ क्रियायें कर पाती है। उसका चिन्तन, मनन, विवेचन, खान-पान, सभी कुछ धनी की इच्छा पर निर्भर करता है, अपने पर नहीं।

जब याद आयो सुख अखंड, तब रहे न पिंड ब्रह्मांड।

जब चढ़े विकट घाटी प्रेम, तब चैन ना रहे कछू नेम॥२४॥

हृदय में परमधाम के अखण्ड सुख की याद आने पर शरीर और संसार की स्मृति नहीं रहती। जब प्रेम की बहुत गहन अवस्था प्राप्त हो जाती है, उस समय कर्मकाण्ड के नियमों का कोई बन्धन नहीं रह जाता और प्रियतम के दीदार बिना चैन भी नहीं आता।

महामत कहे सुनो साथ, देखो खोल बानी प्राणनाथ।

धनी ल्याए धामसे वचन, जिनसे न्यारे न होए चरन॥२५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! मेरी एक विशेष बात सुनिये। प्रियतम प्राणनाथ जी की इस श्रीमुखवाणी को खोलकर देखिए, अर्थात् आन्तरिक रूप से इसके गहन भावों में स्वयं को डुबोइए। इस ब्रह्मवाणी के वचनों को धनी परमधाम से लेकर आये हैं। इन वचनों से धनी के चरण (स्वरूप) कभी भी अलग नहीं होते।

भावार्थ- वाणी को खोलकर देखने का तात्पर्य है – उसके गहन चिन्तन-मनन में डूबना। इस चौपाई में प्रयुक्त "चरन" शब्द का भाव पैरों से नहीं, बल्कि नख से शिख तक पूर्ण स्वरूप से लेना चाहिए। श्री जी के वाङ्मय कलेवर के रूप में १४ ग्रन्थों का यह संकलित रूप श्री कुलजम स्वरूप (श्रीमुखवाणी) है।

प्रकरण ॥७६॥ चौपाई ॥१०३६॥

राग श्री

वतन बिसारिया रे, छलें किए हैरान।

धनी आप बुध भूलियां, सुध न रही वृद्धि हान॥१॥

इस मायावी प्रपञ्च ने ब्रह्मसृष्टियों को परेशान कर रखा है। वे अपने निज घर परमधाम को तो भूल ही चुकी हैं, स्वयं को, अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत को, तथा जाग्रत बुद्धि को भी भूल चुकी हैं। उन्हें इस बात की भी सुध नहीं है कि किन कार्यों को करने से उन्हें लाभ होगा तथा किनको करने से हानि होगी।

ब्रह्मसृष्ट सखियां धाम की, आइयां छल देखन।

जुदे जुदे घर कर बैठियां, खेलें भुलाए दिया वतन॥२॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ इस मायावी छल के ब्रह्माण्ड

को देखने के लिये आयी हुई हैं। इस मायावी खेल ने उनसे निज घर को भुला रखा है। वे इस झूठे संसार में अपना अलग घर बनाकर बैठ गयी हैं।

धाम से रब्द करके, हम कब आवें दूजी बेर।

सब भूले सुध हार जीत की, तो मैं कह्या फेर फेर॥३॥

परमधाम में अपने धनी से रब्द करके ब्रह्मसृष्टियाँ इस खेल में आयी हुई हैं। उन्हें यह मालूम है कि अब दोबारा इस खेल में नहीं आना है। श्री महामति जी कहते हैं कि मैं यह बात बार-बार इसलिए कह रहा हूँ कि इस माया में आने के बाद सभी को इस बात की सुध भी भूल गयी है कि उन्हें प्रेम के सम्बन्ध में हार खानी है या जीतना है।

मांहो मांहें कई प्रीत रीतसों, खेले हंसें रस रंग।

पेहेचान जिनों को पेड़ की, धनी को रिझावें सेवा संग॥४॥

इस खेल में कई सुन्दरसाथ आपस में बहुत प्रेमपूर्वक, हँसते-खेलते, आनन्दपूर्वक रहते हैं। जिन सुन्दरसाथ को श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान युगल स्वरूप की पहचान हो गयी है, वे उनके चरणों में रहकर सेवा करते हुए उनको रिझाते हैं।

कई मिनो मिने काल क्रोध सों, लड़ाई करते दिन जाए।

सेवा धनी न प्रीत सैन्य सों, सो डारी आसमान से पटकाए॥५॥

कई सुन्दरसाथ आपस में एक-दूसरे से क्रोधपूर्वक लड़ते-झगड़ते हुए अपनी उम्र गँवा रहे हैं। जो न तो धनी की सेवा करते हैं और न ही सुन्दरसाथ से प्रेम भाव रखते हैं, उन्हें आकाश से धरती पर पटक दिया गया

अर्थात् अपनी शोभा खोकर वे गुन्हेगारों की पंक्ति में आ गये।

कई सेवें धनीय को, करके प्रेम सनेह।

हम सैयों को पेहेचान पेड़ की, होसी धाम में धन धन एह॥६॥

कई सुन्दरसाथ धनी के स्वरूप की पहचान करके प्रेम-स्नेह से सेवा करते हैं। ब्रह्मसृष्टियों को मूलतः धनी के आवेश स्वरूप की पहचान होती है। पहचान करके धनी की सेवा करने वाले ये सुन्दरसाथ परमधाम में धन्य-धन्य होंगे।

कई अवगुन लेवें धनीय का, करें आप भी अवगुन।

नाहीं सनेह सुख साथ सों, यों वृथा खोवें रात दिन॥७॥

कई सुन्दरसाथ ऐसे भी हैं, जो श्री जी के अन्दर भी

लौकिक अवगुण (दोष) ढूँढने की कोशिश करते हैं। स्वयं तो वे अवगुणों में नख से शिख तक डूबे ही रहते हैं। इन्हें सुन्दरसाथ के प्रेम का सुख प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार ये लोग व्यर्थ में ही अपना जीवन गँवा देते हैं।

भावार्थ- श्री जी के साथ श्री ५ पद्मावती पुरी धाम में पहुँचने वाले कुछ सुन्दरसाथ ऐसे भी थे, जो पूर्ण रूप से श्री जी के स्वरूप की पहचान नहीं कर सके थे। उनकी मानसिकता केवल अवगुण ढूँढने की थी। पूर्ण ब्रह्म की लीला में इस तरह की मानसिकता वाले सुन्दरसाथ को अन्ततोगत्वा प्रायश्चित की अग्नि में जलना पड़ा।

तुम सूती धनिएं जगाइया, कहा आगे मौत का दिन।

कई साख पुराई आपे अपनी, तो भी छूटे न दुख अग्नि॥८॥

हे सुन्दरसाथ जी! आप माया की अज्ञानता रूपी नींद में

सो रहे थे। धनी ने अपनी वाणी से आपको जाग्रत किया और स्पष्ट रूप से यह बताया कि निकट भविष्य में महाप्रलय की घड़ी आने वाली है। उन्होंने आपको जाग्रत करने के लिये अनेक प्रकार से साक्षियाँ भी दीं, फिर भी दुःखों की अग्नि रूपी यह माया आपसे नहीं छूट पा रही है।

सुख देखाए वतन के, सो भी कायम सुख अलेखे।

तो भी छल छूटे नहीं, जो आपे आंखें अपनी देखे॥९॥

प्रियतम प्राणनाथ ने आपको ज्ञान द्वारा परमधाम के सुखों की अनुभूति करायी। वे सुख भी अखण्ड और अनन्त हैं। किसी भी तरह वाणी से उन्हें व्यक्त नहीं किया जा सकता। आपने अपने ज्ञानमयी चक्षुओं से उन सुखों को देखा भी है, किन्तु यह कितने आश्चर्य की बात है कि

मायावी छल का आकर्षण आपसे नहीं छूट रहा है।

देख के अवसर भूलहीं, बहोरि न आवे ए अवसर।

जानत हैं आग लगसी, तो भी छूटे ना छल क्यों ए कर॥१०॥

परमधाम के अखण्ड सुखों को ज्ञान दृष्टि से देखकर भी जो इस स्वर्णिम अवसर का लाभ नहीं उठाते, उनको पुनः यह अवसर मिलने वाला नहीं है। आप सब सुन्दरसाथ इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं कि जो इस सुनहरे अवसर का लाभ नहीं उठायेगा, उसे प्रायश्चित की अग्नि में जलना पड़ेगा। पता नहीं क्यों माया का यह छलमयी आकर्षण फिर भी आप से छूट नहीं पा रहा है।

भावार्थ— आज तक इस सृष्टि में परब्रह्म के धाम की अखण्ड और अनन्त आनन्द से भरपूर लीलाओं का

ज्ञान नहीं था। परब्रह्म के स्वरूप का बोध नहीं था। इसलिये कोई भी उसका साक्षात्कार नहीं कर सका, चाहे वह कितना ही बड़ा योगी, तपस्वी, विद्वान, तीर्थंकर, या अवतार ही क्यों न हो। श्रीमुखवाणी से यह अलौकिक ज्ञान प्राप्त हो जाने के बाद उसका साक्षात्कार करने का यह सुनहरा अवसर है। जो इस अवसर का लाभ नहीं उठाते, उनसे अधिक हतभाग्य (बदनसीब) भला दूसरा और कौन हो सकता है।

पीछे पछतावा क्या करे, जब गया समया चल।

ऐसे क्यों भूलें अंकूरी, जाके सांचे घर नेहेचल॥११॥

जब यह स्वर्णिम अवसर बीत जायेगा, तो बाद में पछताने से क्या लाभ होगा। परमधाम की ब्रह्मसृष्टि तथा अक्षर धाम (सत्स्वरूप) की ईश्वरी सृष्टि इस सुनहरे

अवसर को कदापि नहीं भूलेंगी, क्योंकि उनका निज घर तो शाश्वत रूप से अखण्ड है और माया से परे है।

जो जाग बातें करें उमंगसों, सो हंस हंस ताली दे।

जिन नींद दई सुख इंद्रियों, सो उठी उंघाती दुख ले॥१२॥

जो आत्मायें यहाँ ज्ञान और प्रेम द्वारा जाग्रत हो जायेंगी, जब वे परमधाम में अपने मूल तनों में उठेंगी तो अति उमंग से ताली बजाते हुए हँसते-हँसते बातें करेंगी। जो माया की अज्ञानमयी रात्रि में सोती ही रहीं और विषय – सुखों से इंद्रियों को तृप्त करती रहीं, वे जब परमधाम में जाग्रत होंगी तो वे अपनी नींद भरी आँखों को मलती हुई उठेंगी तथा उनके चेहरे पर पश्चात्ताप का दुःख भरा होगा।

क्या बल केहेसी कायर माया को, जो गए सागर में रल।

सामें पूर जो चढ़या होसी, सो केहेसी तिखाई मोह जल॥१३॥

जो सुन्दरसाथ कायरों की तरह माया के प्रवाह में बह गये, भला वे माया की शक्ति का क्या वर्णन करेंगे। जिन सुन्दरसाथ ने माया के पूरे प्रवाह के साथ संघर्ष किया है, एकमात्र वे ही मोहजल के तीखेपन को कह सकते हैं।

दे साख धनिऐं जगाइया, दई बिध बिध की सुध।

भांत भांत दई निसानियां, तो भी ठौर न आवे निजबुध॥१४॥

धनी ने अनेक धर्मग्रन्थों की साक्षी देकर सुन्दरसाथ को जाग्रत किया। अनेक प्रकार से परमधाम तथा निज स्वरूप की सुध दी और अनेक प्रकार के ऐसे निशान (सांकेतिक तथ्य) भी बताये, जिससे परमधाम तथा परब्रह्म की पहचान होती है। इतना होने पर सुन्दरसाथ

के हृदय में निज बुद्धि का प्रवेश यथार्थ रूप से नहीं हो रहा है।

भावार्थ- श्रीमुखवाणी में जाग्रत बुद्धि तथा निज बुद्धि दोनों का ज्ञान है। ब्रह्मवाणी का मनन करके कोई भी उस ज्ञान को ग्रहण कर सकता है, किन्तु निज बुद्धि का प्रवेश सबके अन्दर नहीं हो सकता। श्रीमुखवाणी का यह कथन इस विषय पर अच्छी तरह से प्रकाश डालता है- "निज बुध आवे अग्याएं, तोलो न छूटे मोह।" निज बुद्धि धनी के हुक्म से आती है, और धनी का हुक्म तब होगा जब युगल स्वरूप की शोभा को दिल में बसाया जायेगा।

महामत कहे जो होवे धाम की, सो पेहेचान के लीजो लाहा।

ले सको सो लीजियो, फेर ऐसा न आवे समया॥१५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि जो परमधाम के

सुन्दरसाथ हैं, वे धाम धनी श्री प्राणनाथ जी तथा ब्रह्मवाणी की गरिमा को पहचान कर लाभ उठावें अर्थात् अपनी आत्मा को जाग्रत करें। दोबारा यह अवसर नहीं मिलने वाला है। इसलिए जिसे लाभ उठाना हो, वह इस स्वर्णिम अवसर को व्यर्थ में न जाने दें।

प्रकरण ॥७७॥ चौपाई ॥१०५१॥

राग श्री

सखी री जान बूझ क्यों खोइए, ऐसा अलेखे सुख अखण्ड।

सो जाग देख क्यों भूलिए, बदले सुख ब्रह्माण्ड॥१॥

हे सुन्दरसाथ जी! परमधाम के सुख अखण्ड हैं और शब्दों से परे हैं। उसे आप जान-बूझकर क्यों गँवा रहे हैं? आप ब्रह्मवाणी के ज्ञान से जाग्रत हो चुके हैं और परमधाम के सुखों की पहचान भी कर चुके हैं, फिर भी इस संसार के झूठे सुखों के मोह में आप परमधाम के शाश्वत सुखों को भुला बैठे हैं।

कई कोट राज बैकुंठ के, न आवें इतके खिन समान।

सो जनम वृथा जात है, कोई चेतो सुबुध सुजान॥२॥

परमधाम के एक पल के दीदार में इतना आनन्द प्राप्त

होता है कि उसके सामने करोड़ों वैकुण्ठ के राज्य कहीं भी नहीं ठहरते। हे सुन्दरसाथ जी! आप तो बहुत अधिक बुद्धिमान और समझदार हैं। आप में से कोई तो सावचेत (सावधान) हो जाये, क्योंकि माया में भटकने से मानव तन की यह अनमोल उम्र व्यर्थ में व्यतीत हो रही है।

एक खिन न पाइए सिर साटें, कई मोहोरों पदमों लाख करोड़।

पल एक जाए इस समें की, कछू न आवे इन की जोड़॥३॥

लाखों, करोड़ों, पद्मों स्वर्ण मुद्रायें (मोहरें) खर्च करने तथा सिर कटाने पर भी एक क्षण की कीमत नहीं दी जा सकती। इस जागनी ब्रह्माण्ड में धनी की पहचान होने के पश्चात् जो एक-एक पल बीतता जा रहा है, वह इतना मूल्यवान है कि उसकी बराबरी में कोई भी वस्तु संसार में नहीं है।

भावार्थ- इस चौपाई का मुख्य आशय यह है कि तारतम ज्ञान ग्रहण करने के पश्चात् हमें अपना एक-एक पल धनी के प्रेम में ही लगाना चाहिए। पद्म का मान इस प्रकार है- १ पद्म = १०,००,००० करोड़ या १०,००० अरब या १०० खरब।

इन समें खिन को मोल नहीं, तो क्यों कहूं दिन मास बरस।

सो जनम खोया झूठ बदले, पिउसो भई ना रंग रस॥४॥

जब इस जागनी ब्रह्माण्ड में एक पल की कीमत इतनी है तो दिन, महीने, तथा वर्ष की कीमत क्या होगी, इसका सहज में अनुमान लगाया जा सकता है। जिस सुन्दरसाथ ने प्रियतम अक्षरातीत के प्रेम में स्वयं को डुबोकर उस अखण्ड आनन्द को प्राप्त नहीं किया, उसके विषय में बस इतना ही कहा जा सकता है कि उसने माया के झूठे

सुखों की चाहत में अपना यह मानव जन्म खो दिया।

काहूँ बदले न पाइए, कई दौड़त मुझ देखत।

पर रास न आया किनको, जो लों धनी नहीं बकसत॥५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि परमधाम का वह अखण्ड आनन्द संसार की किसी भी कीमती वस्तु के बदले में नहीं पाया जा सकता। जिस तरह हब्शा में विरह में डूबकर मैंने अपने प्रियतम अक्षरातीत के प्रेम और आनन्द को पा लिया था, उसी तरह धनी को पाने का प्रयास तो अनेक करते हैं, लेकिन जब तक प्रियतम अक्षरातीत की कृपा न हो तब तक कोई भी पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

भावार्थ- "रास आना" एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है- अच्छा लगना, लक्ष्य को प्राप्त करना। इस

चौपाई में इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि धनी को पाने के लिये देखा-देखी की भक्ति की आवश्यकता नहीं है, बल्कि शुद्ध, निश्छल प्रेम, और प्रियतम की मेहर की आवश्यकता होती है।

सुख अखण्ड अछरातीत को, इन समें पाइयत हैं इत।

कहा कहूं कुकरम तिनके, जो माहें रहे के खोवत॥६॥

यही वह सुनहरा समय है जब अक्षरातीत के अखण्ड सुख को पाया जा सकता है। जो सुन्दरसाथ के बीच में रहकर भी उस अखण्ड सुख को खो रहे हैं, उनके इस कुकर्म के विषय में मैं क्या कहूँ।

भावार्थ— श्रीमुखवाणी का ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् धनी के प्रेम में डूबकर चितवनि करनी चाहिए और अपने अखण्ड धन (ब्रह्मानन्द, प्रियतम के दीदार) को प्राप्त

करना चाहिए। जो इस ओर अपने कदम नहीं बढ़ाते और व्यर्थ की चीजों में अपने अनमोल समय को गँवाते हैं, उनके इस कार्य के लिये इस चौपाई में बहुत कठोर शब्द "कुकरम" का प्रयोग किया गया है।

कैयों खोया जनम अपना, रहे धनी के जमाने माहें।

हाए हाए कहा कहूं मैं तिनको, जो इनमें से निरफल जाए॥७॥

अनेक सुन्दरसाथ श्री जी के साथ रहते रहे, लेकिन धनी के प्रेम (युगल स्वरूप को दिल में बसाने) से कोसों दूर रहे। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि उन्होंने अपना यह मानव तन व्यर्थ में ही खो दिया। हाय! हाय! मैं उन हतभाग्य (बदनसीब) सुन्दरसाथ के विषय में क्या कहूँ, जो श्री जी (धाम धनी) के साथ रहकर भी उस अखण्ड आनन्द को न ले सके।

कैयों जनम सुफल किए, ऐसा पिउ का समया पाए।

सेवा सनमुख जनम लों, लिया हुकम सिर चढ़ाए॥८॥

धाम धनी श्री प्राणनाथ जी की सान्निध्यता पाकर अनेक सुन्दरसाथ ने अपना जीवन (जन्म) सफल कर लिया। इन सुन्दरसाथ ने धनी के आदेश को शिरोधार्य करते हुए जीवन भर उनके साथ रहकर सेवा की।

एक साइत वृथा न गई, धनी किए सनकूल।

चले चित्त पर होए आधीन, परी ना कबहूं भूल॥९॥

इन सुन्दरसाथ ने अपना एक पल भी व्यर्थ में नहीं गँवाया। धाम धनी श्री प्राणनाथ जी की मनचाही इच्छा के अनुसार उन्होंने आचरण किया और सेवा कार्य में किसी भी प्रकार की भूल नहीं होने दी। इस प्रकार उन्होंने धाम धनी को रिझा लिया।

सो इत भी होए चले धन धन, धाम धनी कहें धन धन।
 साथ में भी धन धन हुइयां, याके धन धन हुए रात दिन॥१०॥
 सेवा में समर्पित ये सुन्दरसाथ इस संसार में भी धन्य-
 धन्य हुए और परमधाम में भी जाग्रत होने पर श्री राज
 जी इन्हें धन्य-धन्य कहेंगे। सुन्दरसाथ में ये धन्य-धन्य
 कहलाये। वे रात्रि और दिन भी धन्य-धन्य हो गये,
 जिसमें इन्होंने सेवा करके अपने प्रियतम को रिझाया।

कई छिपे रहे माहें दुस्मन, और मारें राह औरन।
 चाल उलटी चल देखावहीं, तो भी धनी न तजें तिन॥११॥
 सुन्दरसाथ में कुछ ऐसे भी लोग थे, जो अन्दर से
 कपटपूर्ण व्यवहार करते थे। वे स्वयं तो उल्टी चाल
 (माया वाली) चलते ही थे, दूसरों को भी सत्य से
 हटाकर अपने मिथ्या मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित करते

थे। इतना होने पर मेहर के सागर श्री जी ने उनका कभी परित्याग नहीं किया।

दृष्ट उपली सजन हो रहे, बोल देखावें मीठे बैन।

जनम सारा धनी संग रहे, कबूँ दिल न दिया सुख चैन॥१२॥

बाह्य दृष्टि में वे सज्जन प्रतीत होते थे, किन्तु आन्तरिक रूप से उनमें दुर्जनता थी। गले के ऊपर से मात्र दिखाने के लिये ही मीठे शब्दों का प्रयोग करते रहे। वे सारे जीवन श्री जी के साथ रहे, लेकिन कभी भी उन्होंने धनी को न तो अपना दिल दिया और न ही सेवा करके सुख-चैन लिया।

इन बिध कई रंग साथ में, यों बीते कई बीतक।

सब पर मेहेर मेहेबूब की, पर पावे करनी माफक॥१३॥

इस प्रकार सुन्दरसाथ में कई प्रकार की भावना के लोग थे, जिनके कारण अनेक घटनायें घटित हुईं। अक्षरातीत की मेहर तो सबके लिये बराबर है, लेकिन अपनी करनी के अनुकूल ही कोई इसे प्राप्त कर पाता है।

दुख माया धनीपें मांग के, हम आए जिमी इन।

सो छल सरूप अपनो देखावहीं, तो भी भूलें नहीं सोहागिन॥१४॥

हमने धनी से दुःखमयी माया का झूठा खेल माँगा और परमधाम से इस नश्वर संसार में आ गए। यह छलमयी माया हमें अपना प्रभाव दिखा रही है। फिर भी परमधाम की सुहागिन ब्रह्मसृष्टि किसी भी स्थिति में अपने प्रियतम को नहीं भुला सकती।

और भी देखो विचार के, तो हुकमें सब कछू होए।

बिना हुकम जरा नहीं, हार जीत देखावे दोए॥१५॥

हे सुन्दरसाथ जी! यदि आप और विचार करके देखें, तो यह स्पष्ट होता है कि श्री राज जी के हुकम (आदेश) से ही सब कुछ होता है। बिना आदेश के कुछ भी नहीं होता। हमारी हार या जीत सब कुछ धनी के हुकम से होती है।

महामत कहें लिया मांग के, ए धनिएं देखाया छल।

जो सनमुख रहेसी धनी धामसों, सो केहेसी छल को बल॥१६॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हमने धनी से माया का दुःख भरा खेल माँगकर लिया है। धनी ने हमारी इच्छा के अनुसार यह छल भरा खेल दिखाया है। जो हमेशा धाम धनी के प्रेम में डूबा रहेगा (सम्मुख रहेगा), एकमात्र वही

इस छलमयी माया की शक्ति का बखान करेगा।

भावार्थ- जब भी व्यक्ति प्रियतम अक्षरातीत की ओर कदम बढ़ाता है, तो माया पूरी शक्ति से उसे रोकने का प्रयत्न करती है। ऐसी स्थिति में संघर्ष होना स्वाभाविक है। माया से लड़ने वाला सुन्दरसाथ धनी की कृपा से उस पर विजय तो प्राप्त करता ही है, उसकी शक्ति का भी आंकलन कर उसका बखान कर देता है। इसके विपरीत माया में डूबा हुआ व्यक्ति, माया में बेसुध हो जाने के कारण, न तो उसकी शक्ति को समझ पाता है और न ही उसका वर्णन कर पाता है।

प्रकरण ॥७८॥ चौपाई ॥१०६७॥

राग श्री मारु

इस प्रकरण में तीनों सृष्टियों की पहचान दी गयी है।

साथ जी पेहेचानियो, ए बानी समया फजर।

हुई तुमारे कारने, खोल देखो निज नजर॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! इस बात की पहचान कीजिए कि ब्रह्मवाणी के अवतरण की यह लीला अज्ञानता के अन्धकार को दूर करके परम सत्य के उजाले का समय लाने वाली है। यदि अपनी आत्मिक दृष्टि खोल कर देखें, तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि इस ब्रह्मवाणी का अवतरण आपके कारण ही हुआ है।

भावार्थ- ब्रह्मसृष्टियों के मायावी खेल में आने के कारण ही उनको जाग्रत करने के लिये ब्रह्मवाणी की आवश्यकता पड़ी। इस ब्रह्माण्ड के लय होने के पश्चात् भी अनन्त

काल तक नये-नये ब्रह्माण्ड बनते रहेंगे, लीन होते रहेंगे, लेकिन इसके बाद किसी ब्रह्माण्ड में भी तारतम वाणी का अवतरण पुनः नहीं होगा।

त्रिविध दुनी तीन ठौर की, चले तीन विध मांहें।

कोई छोड़े न अंकूर अपना, होवे करनी तैसी तांहें॥२॥

इस संसार में तीन प्रकार की सृष्टि (ब्रह्मसृष्टि, ईश्वरी, और जीव) तीन स्थानों (परमधाम, योगमाया, तथा वैकुण्ठ) से आयी हुई हैं। तीनों सृष्टि तीन प्रकार की राह अपनाती हैं। ब्रह्मसृष्टि इश्क, ईमान, और हकीकत-मारिफत के इल्म की राह अपनाती है। ईश्वरी सृष्टि बन्दगी, ईमान, और हकीकत के ज्ञान की राह पर चलती है। जीव सृष्टि केवल शरीयत तथा तरीकत की राह अपनाती है। उसके ईमान का महल बालू की दीवारों से

बना होता है। कोई भी अपने अँकुर को नहीं छोड़ती तथा उसी के अनुसार आचरण करती हैं।

सुरता तीनों ठौर की, इत आई देह धर।

ए तीनों रोसन नासूत में, किया बेवरा इमामें आखिर॥३॥

तीनों स्थानों (परमधाम, योगमाया, तथा वैकुण्ठ-निराकार) से सुरताओं ने इस पृथ्वी लोक में आकर मानव तन को धारण किया है। आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिबुज्जमां श्री प्राणनाथ जी ने पृथ्वी मण्डल में आयी हुई इन तीनों सृष्टियों के ऊपर प्रकाश डाला है।

भावार्थ— यह स्वाभाविक जिज्ञासा पैदा होती है कि जीव सृष्टि का मूल घर कहाँ है— वैकुण्ठ या निराकार?

यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि निराकार मण्डल से असंख्य वैकुण्ठों सहित १४ लोकों की रचना होती रहती

है। मोह सागर में ही आदिनारायण का प्रकटन होता है। सभी जीवों का मूल आदिनारायण ही हैं, न कि वैकुण्ठवासी विष्णु भगवान। इस प्रकार जीव सृष्टि का मूल स्थान निराकार (मोहसागर) ही माना जायेगा। प्रायः जीव सृष्टि विष्णु भगवान की आराधना करके वैकुण्ठ को प्राप्त कर लेती है, इसी कारण कहीं-कहीं वैकुण्ठ को भी जीव सृष्टि का घर मान लिया जाता है जैसे इसी प्रकरण की चौपाई १३ में, लेकिन ध्यान-समाधि द्वारा इससे भी परे निराकार मण्डल में पहुँच जाती है।

इन बिध जाहेर कर लिख्या, सास्त्रों के दरम्यान।

तीन सृष्ट आई जुदी जुदी, पोहोंचे अपने ठौर निदान॥४॥

इस प्रकार शास्त्रों में स्पष्ट रूप से लिखा है। तीनों सृष्टियाँ अलग-अलग स्थानों से आयी हैं और महाप्रलय

के पश्चात् अपने-अपने निवास पर पहुँच जायेंगी।

भावार्थ- श्री जी की कृपा से जीव सृष्टि इस ब्रह्माण्ड के लय होने के पश्चात् वैकुण्ठ या निराकार में न जाकर योगमाया के ब्रह्माण्ड में शाश्वत मुक्ति को प्राप्त करेंगी।

त्रिगुन से पैदा हुई, ए जो सकल जहान।

सो खेले तीनों गुन लिए, नहीं एक दूजे समान॥५॥

यह सम्पूर्ण सृष्टि त्रिगुणात्मिका प्रकृति से पैदा हुई है। सभी प्राणियों में सत्व , रज, और तम गुण कम या अधिक मात्रा में विद्यमान हैं, इसलिये कोई भी पूर्ण रूप से एक-दूसरे के समान नहीं होता।

आतम एक्यासी पख ले, सब दुनियां में खेलत।

मोह अहं मूल इनको, सब याही बीच फिरत॥६॥

जीव सृष्टि सारे संसार में नवधा भक्ति के ८१ पक्षों के आधार पर भक्ति की राह अपनाती है। इनकी उत्पत्ति ही मोह-अहंकार से हुई होती है, इसलिये ये मोह-अहंकार (निराकार) से परे नहीं जा पातीं।

भावार्थ- इस चौपाई में "जीव" शब्द के स्थान पर "आत्मा" शब्द का प्रयोग इस अभिप्राय से किया गया है कि वह जीव के निज स्वरूप को दर्शाता है। कालमाया के ब्रह्माण्ड में जो भी चेतन है, यहाँ के धर्मग्रन्थों में उसे "आत्मा" शब्द से ही सम्बोधित किया गया है।

मोह अहं गुन की इंद्रियां, करे फैल पसु परवान।

फिरे अवस्था तीन में, ए जीव सृष्ट पेहेचान॥७॥

जीव सृष्टि की प्रमुख पहचान यही होती है कि इनकी इन्द्रियाँ (ज्ञानेन्द्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियाँ) मोह, अहंकार,

सत्व, रज, और तम से उत्पन्न होती हैं। ये जाग्रत, स्वप्न, तथा सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में पशुओं की तरह विषयों में ही भटकती रहती हैं।

सुबुध निकट न आवहीं, चले बेहेर दृष्ट।

आतम दृष्ट न लेवहीं, तो कही सुपन की सृष्ट॥८॥

इनकी दृष्टि बहिर्मुखी होती है और सद्बुद्धि इनके पास नहीं फटकती अर्थात् कोसों दूर रहती है। इनका ध्यान आत्मिक दृष्टि को जाग्रत करने पर नहीं होता, अतः इन्हें स्वप्न की सृष्टि भी कहते हैं।

जाग्रत तरफ दुनीय की, सोवत सुपना ले।

देखत सुपना नींद से, ए तीनों अवस्था जीव के॥९॥

जीव सृष्टि जाग्रत अवस्था में प्रायः माया के ही कार्यों में

लगी रहती है। स्वप्न में भी वह मायावी दृश्यों को ही देखती है। सुषुप्ति की गहरी अवस्था में वह तमोगुण के अज्ञान से ग्रसित रहती है, अर्थात् माया-जाल में फँसी रहती है। इस प्रकार जीव सृष्टि तीनों अवस्थाओं में माया में ही उलझी रहती है।

भावार्थ- यद्यपि जीव सृष्टि में भी बड़े -बड़े योगी, तपस्वी, एवं भक्त हो गये हैं, जिन्होंने माया के सुखों को ठुकराकर अपने जीवन का पल-पल प्रियतम परब्रह्म के ध्यान में लगाया है, किन्तु उनकी संख्या अति न्यून रही है। यहाँ जीव सृष्टि को तीनों अवस्थाओं में माया में लिप्त होने का कथन बहुसंख्यक होने के कारण है।

और सृष्ट जो ईश्वरी, कही जाग्रत सृष्ट आतम।

सुबुध अंग करनी सुध, चले फुरमान हुकम॥१०॥

ईश्वरी सृष्टि को जाग्रत सृष्टि कहते हैं। उनके हृदय में सद्बुद्धि का निवास होता है। इनका आचरण भी बहुत पवित्र होता है। ये धर्मग्रन्थों में वर्णित सत्य की राह पर चलती हैं।

एही सृष्ट ईश्वरी जाग्रत, आई अक्षर नूर से जे।

मेहेर ले मेहेबूब की, रहे तुरी अवस्था ए॥११॥

अक्षर ब्रह्म से प्रकट होने वाली यह ईश्वरी सृष्टि है, जो जाग्रत कही जाती है। प्रियतम अक्षरातीत की कृपा से यह तुरीय अवस्था में डूबी रहती है।

भावार्थ— तुरीय अवस्था समाधि की वह स्थिति है, जिसमें चेतना प्रकृति (माया) से सम्बन्ध तोड़कर ब्रह्म के साक्षात्कार एवं आनन्द में डूब जाती है।

ब्रह्मसृष्टी आई अर्स से, जीत इंद्री सुध अंग।

छोड़ मांहें बाहेर दृष्ट अंतर, परआतम धनी संग॥१२॥

ब्रह्मसृष्टि परमधाम से आयी है। उसका अपनी इन्द्रियों पर अधिकार होता है। उसका अन्तःकरण भी बहुत पवित्र होता है। वह अपनी दृष्टि को, पिण्ड (मांहें) और ब्रह्माण्ड (बाहर) से परे, उस परमधाम से जोड़े रखती है। वह अपने मूल स्वरूप (परात्म) का श्रृंगार सजकर पल-पल धाम धनी के प्रेम में खोयी रहती है।

एक सुख नेहेचल धाम को, और सुख अखंड अछर।

तीसरो बैकुंठ सुपनों, ए त्रिधा सृष्ट यों कर॥१३॥

ब्रह्मसृष्टियों को अखण्ड परमधाम का सुख प्राप्त है। ईश्वरी सृष्टि को अखण्ड योगमाया का सुख मिलता है। तारतम ज्ञान से रहित जीव सृष्टि वैकुण्ठ-निराकार के ही

सुख को प्राप्त कर पाती है।

भावार्थ- तारतम ज्ञान को ग्रहण करके जो जीव श्री प्राणनाथ पर अटूट श्रद्धा रखते हैं तथा परमधाम की चितवनि करते हैं, उनको भी ब्रह्मसृष्टि की पहली बहिश्त मिल जायेगी। इस चौपाई में केवल उन जीवों का धाम वैकुण्ठ बताया गया है, जिनके पास श्रीमुखवाणी का ज्ञान नहीं है।

कृपा है कई बिध की, ए जो तीनों सृष्ट ऊपर।

एक एक पर कई विध, इनका बेवरा सुनो दिल धर॥१४॥

इन तीनों सृष्टियों के ऊपर प्रियतम परब्रह्म की अनेक प्रकार से कृपा बरस रही है। एक-एक सृष्टि पर या धनी के चरणों में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति पर धनी की कृपा अनेक प्रकार से होती है। इसका विवरण सुनकर अपने

दिल में धारण कीजिए।

कृपा करनी माफक, कृपा माफक करनी।

ए दोऊ माफक अँकूर के, कई कृपा जात ना गिनी॥१५॥

किसी पर भी कृपा करनी के अनुकूल होती है और कोई कृपा के अनुकूल करनी कर पाता है। करनी तथा कृपा अँकुर पर निर्भर करते हैं। इस प्रकार धनी की कृपा अनन्त है। उसका आँकलन बुद्धि से सम्भव नहीं है।

भावार्थ— ब्रह्मसृष्टि पर धनी की मेहर इश्क, ईमान, तथा मारिफत के इल्म (विज्ञान) के रूप में होती है तथा उसके अनुसार ही वह आचरण करती है। ईश्वरी सृष्टि पर बन्दगी, ईमान, तथा हकीकत के इल्म की मेहर होती है। उसका आचरण भी अपने अँकुर के अनुकूल होता है। जीव सृष्टि का ईमान संशयात्मक होता है। वह प्रेममयी

चितवनि की राह पर नहीं चल पाती। उसका हृदय शुष्क, कठोर, और बनावटी व्यवहार वाला होता है। धनी की कृपा से उसे अखण्ड मुक्ति प्राप्त हो जायेगी।

धाम अंकूर एक विध को, कई विध कृपा केलि।

ए माफक कृपा करनी भई, करने खुसाली खेलि॥१६॥

धाम का अंकूर सबका एक जैसा होता है, अर्थात् सबकी सुरता (आत्मा) एक जैसी होती है, किन्तु जीवों के स्वभाव अलग-अलग होने से सबकी करनी अलग-अलग हो जाती है और करनी के अनुसार कृपा भी अनेक प्रकार की हो जाती है। विविधता के इस खेल में आनन्द की वृद्धि के लिये धनी की कृपा के अनुकूल करनी हो जाती है।

भावार्थ— परात्म का स्वरूप वाहिदत के अन्दर है। वहाँ

सबकी लीला, शोभा, आनन्द, स्वभाव समान है। उनकी नजर रूप आत्मायें भी वैसे ही समान रूप, स्वभाव, और गुणों वाली हैं, किन्तु यहाँ के जिन जीवों पर वे विराजमान होती हैं, उनके गुण, कर्म, स्वभाव, संस्कार सभी अलग-अलग होते हैं। जैसे श्री मिहिरराज, बिहारी जी, श्री लालदास जी, मुकुन्ददास जी, महाराज छत्रसाल जी सबमें आत्मायें तो परमधाम की थीं, लेकिन इन सबके स्वभाव अलग-अलग थे। इसलिये करनी के अनुरूप मेहर भी अलग-अलग रूपों में हुई।

सृष्ट ईश्वरी कही अंकूरी, औरों अंकूर दिए कई।

तिन जुदा जुदा ठौर नेहेचल, कृपा अंकूर से भई॥१७॥

ईश्वरी सृष्टि को भी अँकूरी कहा जाता है। जिन जीवों पर ईश्वरी सृष्टि विराजमान हुई, उनमें भी योगमाया का अँकूर

पैदा हो गया। योगमाया में अखण्ड होने वाले जीवों की अलग-अलग अखण्ड बहिर्भूत बनेंगी। अखण्ड होने की यह कृपा अंकुर होने के कारण ही हुई।

भावार्थ- अंकुर क्या है?

इसको इस दृष्टान्त से सरलतापूर्वक समझा जा सकता है- जिस प्रकार किसी बीज से अंकुर निकलने पर एक पौधा तैयार होता है और वह उस बीज जैसे दूसरे बीज को पैदा कर देता है, अर्थात् अंकुर में बीज और बीज में अंकुर छिपा होता है। उसी प्रकार सुरतायें (आत्माएँ) अपने में परात्म के तनों के, या अपने प्रियतम और निज घर के लक्षण छिपाये होती हैं। जिन जीवों पर ब्रह्मसृष्टि या ईश्वरीसृष्टि विराजमान होती हैं, उन जीवों में भी अखण्ड धाम का अंकुर जाग्रत हो जाता है क्योंकि वे भी अङ्गना भाव से अक्षरातीत को रिझाने लगते हैं।

भिस्त होसी आठ विध की, और आठ विध का अंकूर।

हर अंकूर कृपा कई बिध, ले उठसी नेहेचल नूर॥१८॥

योगमाया के ब्रह्माण्ड में आठ तरह का अँकुर होने से आठ तरह की बहिश्तें होंगी। हर अँकुर पर कई प्रकार की कृपा होगी और वे नूरी शोभा को धारण करके अखण्ड हो जायेंगे।

भावार्थ—

१. योगमाया के ब्रह्माण्ड में पहला अँकुर उन जीवों का होगा, जिनके ऊपर ब्रह्मसृष्टियों ने विराजमान होकर (अधिष्ठान बनाकर) खेल को देखा है। इन जीवों ने ब्रह्मसृष्टियों का ही भाव लेकर धनी को रिझाया है, इसलिये यह पहली बहिश्त में ब्रह्मसृष्टियों जैसा रूप धारण करके लीला करेंगे। "जीव टल होसी आतम" का कथन यहीं पर सार्थक होगा। यह बहिश्त सत्स्वरूप के

"तुरियातीत निर्मल चैतन्य" में होगी। इनके साथ वे जीव भी रहेंगे, जिन्होंने श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की पहचान करके ब्रह्मसृष्टियों की तरह प्रेममयी चितवनि की राह अपनायी होगी।

२. दूसरा अँकुर ईश्वरी सृष्टि के जीवों का होगा। ये जीव ईश्वरी सृष्टि के साथ ही रहकर ब्रह्मानन्द का रसपान करेंगे।

३. तीसरा अँकुर उन जीवों का होगा, जो मुहम्मद साहिब पर ईमान लाकर सच्चे दिल से खुदा की बन्दगी करते रहे। यह प्रक्रिया १०वीं हिजरी तक चलती रही। इस राह पर चलने वालों में बड़े-बड़े सूफी फकीर हैं। तारतम ज्ञान के अवतरित होने के बाद हकीकत और मारिफत की बन्दगी को अपनाने के लिये मुहम्मद साहिब का आदेश है।

४. चौथा अँकुर रास के जीवों का होगा।
५. व्रज लीला में भाग लेने वालों का अँकुर पाँचवी बहिश्त में होगा।
६. छठा अँकुर मलकूती बहिश्त के लिये होगा।
७. श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की पहचान करके सच्चे हृदय से शरीयत की राह पर चलने वालों का अँकुर सातवीं बहिश्त का होगा।
८. आठवें अँकुर के रूप में संसार के शेष अन्य सभी प्राणी होंगे, जो प्रायश्चित की अग्नि में जलकर इसमें अखण्ड होंगे।

करनी देखाई अंकूर की, हुई तीनों की तफावत।

सो तीनों रोसन भए, चढ़ते तराजू बखत॥१९॥

श्री जी ने तारतम ज्ञान द्वारा तीनों सृष्टियों के अँकुर के

अनुकूल उनकी करनी को भी स्पष्ट रूप से दर्शा दिया। इससे तीनों में भेद स्पष्ट हो गया। सातवें दिन न्याय की लीला के समय तीनों सृष्टियाँ स्पष्ट रूप से जाहिर हो जायेंगी।

करनी छिपी ना रहे, न कछू छिपे अंकूर।

मेहेर भी माफक अंकूर के, उदे होत सत सूर॥२०॥

उस समय न तो किसी की करनी छिपी रहेगी और न किसी का मुख्य अंकूर छिपेगा। परमधाम के अखण्ड ज्ञान के सूर्य स्वरूप श्री कुलजम स्वरूप के अवतरण से अज्ञानता का अन्धकार दूर हो गया और सबने अक्षरातीत की पहचान की। पहचान होने के बाद अंकूर के अनुकूल ही धनी की मेहर हुई।

क्या गरीब क्या पातसाह, क्या नजीक क्या दूर।

निकस आया सबन का, तीन बिध का अंकूर॥२१॥

जागनी ब्रह्माण्ड में चाहे कोई गरीब रहा हो या बादशाह,
नजदीक रहा हो या दूर, न्याय के समय सबकी स्पष्ट
पहचान हो जायेगी कि तीनों सृष्टियों में किसका अंकुर
कहाँ का है।

हर एक के तीन तीन, तिन तीनों के सत्ताईस।

यों चढ़ते तराजू चढ़े, नफा नसल न नाते रीस॥२२॥

प्रत्येक जीव सत्व, रज, तम (तीन गुणों) तथा पुष्टि,
प्रवाही, मर्यादा (तीन प्रवृत्तियों) से बँधा होता है। इस
प्रकार तीनों सृष्टियों के जीवों की करनी के २७ भेद हो
गये। इस तरह २७ प्रकार की करनी का बोझ ढोने वाले
जीवों को जब न्याय के तराजू पर तौला जायेगा, तो उस

समय वंशानुगत श्रेष्ठता के दावे या क्रोध के कारण किसी को कोई भी लाभ नहीं मिल पायेगा, बल्कि सभी को अपनी करनी के अनुसार फल मिलेगा।

दया भी तिन पर होएसी, जिनके असल अंकूर।

अव्वल मध और आखिर, सनमुख सदा हजूर॥२३॥

उस समय धनी की दया भी उन पर ही होगी, जिनके अन्दर परमधाम का अँकुर है। इस मायावी जगत में आने के समय, अर्थात् अव्वल (ब्रज), मध्य (रास), तथा अन्त (जागनी) में, ब्रह्मसृष्टि ही धनी की सान्निध्यता में रही है।

भावार्थ— परमधाम, अक्षरातीत, तथा उनकी अँगनायें तीनों ही अनादि हैं। प्रारम्भ या अन्त शब्द परमधाम के लिये प्रयुक्त नहीं हो सकता। सातवें दिन न्याय की लीला

में ब्रह्मसृष्टियों के जीवों से होने वाले अपराधों को सारे संसार के सामने सार्वजनिक नहीं किया जायेगा, बल्कि केवल ब्रह्मसृष्टियों की हँसी के लिये रखा जायेगा। इस चौपाई में दया करने का यही भाव है।

ए छल जिमी करम करावहीं, आपको बुरा न चाहे कोए।
तो भी मेहेर न छोड़े मेहेबूब, पर करनी छल बस होए॥२४॥

इस संसार में कोई भी व्यक्ति अपना बुरा नहीं चाहता, लेकिन इस छलमयी माया-मण्डल का प्रभाव ही ऐसा है कि जीव से बुरे कर्म हो जाते हैं। यद्यपि धनी की मेहर सब पर हमेशा होती रहती है, लेकिन करनी (आचरण) के ऊपर माया-मण्डल का वर्चस्व है।

जाहेर हुई सबन की, आखिर गिरो आकल।

अंदर की उदे हुई, समें पावने फल॥२५॥

जब न्याय की लीला होगी, उस समय सबके अन्दर की बुद्धि में छिपी हुई बातें जाहिर हो जायेंगी तथा सभी को उनके कर्मों के अनुसार फल (बहिश्त) प्राप्त होगा।

छिपी किसी की ना रहे, करना धनी अदल।

सांच झूठ जैसा जिनों, चढ़ आया तराजू दिल॥२६॥

धनी के न्याय में कोई भी बात छिपी नहीं रहेगी। न्याय के तराजू पर सत्य और झूठ साफ नजर आ जायेगा।

वतन के अंकूर बिना, इत दुनी करे कई बल।

मुक्त सुख इत होएसी, पर पावे न धाम नेहेचल॥२७॥

परमधाम का अँकुर न होने पर भी संसार के जीव अखण्ड सुख पाने के लिए बहुत अधिक प्रयास करते हैं। उन्हें अखण्ड मुक्ति तो प्राप्त हो जायेगी , लेकिन वे परमधाम में नहीं जा सकेंगे।

कई आए अनुभव लेयके, सो पीछे दिए पटकाए।

धनी दया अंकूर बिना, किन सत सुख लियो न जाए॥२८॥

संसार में ज्ञान और साधना के क्षेत्र में गहन अनुभव रखने वाले बहुत से लोग हो गये हैं, किन्तु वे माया में इसलिये भटक गये क्योंकि परमधाम का अँकुर न होने से वे धनी की दया के पात्र नहीं बन सके। धनी की मेहर और परमधाम का अँकुर हुए बिना कोई भी अखण्ड का सुख नहीं ले सकता।

भावार्थ— प्रश्न यह है कि दया के अनन्त सागर

अक्षरातीत की दया केवल ब्रह्मसृष्टियों के जीवों पर ही क्यों होती है, सामान्य जीवों पर क्यों नहीं? क्या ऐसा न्याय की दृष्टि से उचित है?

अक्षरातीत का न्याय पूर्णतया निष्पक्ष है। "मेहर सब पर मेहेबूब की, पर पावे करनी माफक।" जीव सृष्टि को पूरा अवसर समान रूप से मिलता है, लेकिन कठोर और शुष्क हृदय होने के कारण वह विरह-प्रेम की राह पर नहीं चल पाती। प्रेम की राह पर चलने वाला जीव तो पहली बहिश्त में चला जायेगा। परमधाम पूर्णातिपूर्ण है। उसमें किसी का प्रवेश या निष्कासन सम्भव ही नहीं है।

कदी सौ बरस रहो साथ में, धनी अनुभव सौ बेर।

मूल अंकूर दया बिना, ले करमें डाले अंधेर॥२९॥

भले ही कोई व्यक्ति सौ वर्ष तक सुन्दरसाथ के समूह में

रहे और ज्ञान दृष्टि से उसे सौ बार भी धनी का अनुभव हो जाये, फिर भी यदि उसमें परमधाम का अंकुर नहीं है और धनी की दया नहीं है तो वह दुष्कर्मों के कारण माया में भटकता रहेगा।

भावार्थ- सुन्दरसाथ कहलाकर भी यदि हृदय में प्रियतम की छवि नहीं बसी तो निश्चय ही बुरे कर्मों के कारण माया में भटकना पड़ेगा, भले ही ज्ञान दृष्टि से उसने अक्षरातीत के बारे में कितना ही अनुभव क्यों न कर लिया हो। धनी की मेहर और परमधाम का अंकुर ही जीव को माया में भटकने से बचा सकता है। यदि परमधाम का अंकुर नहीं है किन्तु उसने स्वयं को विरह की अग्नि में जलाकर निर्मल कर लिया है, तो भी माया उसका कुछ नहीं बिगाड़ पायेगी क्योंकि वह धनी की मेहर का अधिकारी बन जायेगा।

दया और अंकुर की, छिपे न करनी नूर।

मन वाचा करम बांध के, दूजा ऐसा कर न सके जहूर॥३०॥

जिनके ऊपर धनी की दया होती है और परमधाम का अंकुर होता है, उनकी करनी का प्रकाश इतना अधिक होता है कि वह छिपा नहीं रह सकता। मन, वाणी, और कर्मों के बन्धन से परे होकर ब्रह्मसृष्टि के अतिरिक्त अन्य कोई भी करनी (दिव्य आचरण) का प्रकाश नहीं फैला सकता।

महामत कहे तिन वास्ते, ए तीनों हैं सामिल।

करनी कृपा अंकुर, वाके छिपे न अमल॥३१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि सुन्दरसाथ में तीनों प्रकार की सृष्टि शामिल हैं। इसलिये इन तीनों के लिये ही करनी, कृपा, और अंकुर के विषय में विशेष रूप से

बताया गया है। इन तीनों का व्यवहार किसी भी प्रकार से छिपा नहीं रह सकता।

प्रकरण ॥७९॥ चौपाई ॥१०९८॥

राग श्री

श्री ५ पद्मावती पुरी धाम में अवतरित इस कीर्तन में
चितवनि के लिये प्रेरित किया गया है।

मेरे मीठे बोले साथ जी, हुआ तुमारा काम।

प्रेम में मगन होइयो, खुल्या दरवाजा धाम।

सखी री धाम जईए॥१॥ टेक ॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! धाम
धनी द्वारा मेरे तन से कहलवायी हुई इस श्रीमुखवाणी के
मीठे वचनों से आपका काम हो गया है, अर्थात् आपको
अपने प्रियतम अक्षरातीत के धाम, स्वरूप, तथा लीला
का ज्ञान हो गया है। अब आपके लिये परमधाम के दीदार
का मार्ग प्रशस्त (प्राप्त) हो गया है। इसलिये अब आप
सभी अपने प्राणवल्लभ के प्रेम में मग्न हो जाइए और

चितवनि (ध्यान) में डूब जाइए।

भावार्थ- "दरवाजा खुल जाना" एक मुहावरा है, जिसका तात्पर्य होता है - प्राप्त हो जाना। इस जागनी ब्रह्माण्ड में सुन्दरसाथ का प्रमुख कार्य था - स्वयं को, निज घर को, तथा अपने प्रियतम को जानना, जो श्रीमुखवाणी के अवतरण से पूर्ण हो गया। इस ज्ञान की सार्थकता इसी में है कि धाम धनी की चितवनि की जाये।

दौड़ सको सो दौड़ियो, आए पोहोंच्या अवसर।

फुरमान में फुरमाइया, आया सो आखिर॥२॥

चितवनि की राह में अब जो जितना परिश्रम (दौड़) कर सकता है, उतना करे। प्रियतम अक्षरातीत के दीदार का यही उचित समय है। कुरआन में कहा गया है कि "वक्त आखिरत को कियामत के समय में मोमिन (ब्रह्ममुनि)

अपने अल्लाह तआला के दीदार के लिये हकीकत एवं मारिफत की बन्दगी करेंगे।" वह समय आ पहुँचा है।

बरनन करते जिनको, धनी केहेते सोई धाम।

सेवा सुरत संभारियो, करना एही काम॥३॥

मेरे धाम हृदय में बैठकर अक्षरातीत धाम धनी जिस स्वलीला अद्वैत परमधाम का वर्णन करते रहे हैं, उसी परमधाम में अपनी सुरता लगाना (ध्यान करना) एवं सुन्दरसाथ की सेवा करना ही अपना मुख्य काम है।

बन विसेखे देखिए, माहें खेलन के कई ठाम।

पसु पंखी खेलें बोलें सुन्दर, सो मैं केते लेऊं नाम॥४॥

हे सुन्दरसाथ जी! अब चितवनि द्वारा विशेष रूप से परमधाम के उन वनों (बड़ोवन, मधुवन, महावन) को

देखिए, जिनमें खेलने के बहुत से शोभा वाले स्थान हैं। उनमें अनन्त प्रकार के सुन्दर-सुन्दर पशु-पक्षी खेला करते हैं और मीठी वाणी बोलते हैं। उनकी संख्या इतनी अधिक है कि मैं उनमें से कितनों के नाम बताऊँ।

स्याम स्यामा जी सुन्दर, देखो करके उलास।

मन के मनोरथ पूरने, तुम रंग भर कीजो विलास॥५॥

हे साथ जी! अब चितवनि द्वारा मूल मिलावा में विराजमान युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी की अति सुन्दर शोभा को आनन्दपूर्वक देखिए। अपने मन की इच्छाओं को पूर्ण करने के लिये चितवनि से मिलने वाले दीदार के रस में डूबकर आनन्द में मग्न हो जाइए।

इस्क आयो पिउ को, प्रेम सनेही सुध।

विविध विलास जो देखिए, आई जागनी बुध॥६॥

प्रेम की राह पर चलने वाली ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम के उस अलौकिक प्रेम की वास्तविक पहचान देने के लिये ही उनके हृदय में प्रियतम का प्रेम आ गया है। अब हृदय में जाग्रत बुद्धि के भी आ जाने से सबके लिये यही सुनहरा अवसर है कि परमधाम की अनेक आनन्दमयी लीलाओं को ध्यान द्वारा देखें।

भावार्थ- इस चौपाई में ब्रह्मसृष्टियों को "प्रेम सनेही" इसलिये कहा गया है कि एकमात्र वही प्रेम की सच्ची (परमधाम की) राह को अपनाती हैं।

आनंद वतनी आइयो, लीजो उमंग कर।

हंसते खेलते चलिए, देखिए अपनों घर॥७॥

इस प्रेममयी चितवनि में डूब जाने से परमधाम के आनन्द का रस मिलने लगा है, जिसे अपने हृदय में बहुत उत्साहपूर्वक ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार प्रियतम की शोभा एवं लीला के नियमित ध्यान में आनन्दपूर्वक डूबे रहकर अपने निज घर को देखना चाहिए।

भावार्थ- हँसते-खेलते हुए चलने का तात्पर्य है – चितवनि में अपने भौतिक शरीर एवं ब्रह्माण्ड को भूलकर स्वयं को परात्म का स्वरूप मानते हुए प्रियतम के प्रेम में खो जाना।

सुख अखंड जो धाम को, सो तो अपनों अलेखें।

निपट आयो निकट, जो आंखां खोल के देखे॥८॥

अपने परमधाम के अखण्ड सुख तो अनन्त हैं। यद्यपि

उन्हें मन, वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता, किन्तु यदि हम अपने आत्मिक नेत्रों से देखें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि वह अनन्त सुख भी चितवनि द्वारा हृदय धाम में बहुत सुगमता से प्राप्त हैं।

भावार्थ- पञ्चभौतिक शरीर के नेत्रों से मात्र बाह्य जगत को ही देखा जा सकता है। अखण्ड परमधाम के अनन्त सुखों की अनुभूति करने के लिये आत्मिक दृष्टि का होना अनिवार्य है।

अंग अनुभवी असल के, सुखकारी सनेह।

अरस परस सबमें भया, कछु प्रेमें पलटी देह॥९॥

जब आत्मा के हृदय में परमधाम की शोभा एवं लीला का अनुभव होने लगता है, तो आनन्द देने वाले उस अलौकिक प्रेम से सभी अरस-परस हो जाते हैं, अर्थात्

चितवनि में डूबा हुआ प्रत्येक सुन्दरसाथ प्रेम से ओत-प्रोत हो जाता है। इस प्रेम की थोड़ी भी अनुभूति पञ्चभूतात्मक तन से मोह छुड़ा देती है।

भावार्थ- इस चौपाई में आत्मा और परात्म के अरस-परस होने का प्रसंग नहीं है, बल्कि यह बताया गया है कि परमधाम के उस दिव्य प्रेम की अनुभूति उन्हीं को हो पाती है जो प्रेम और आनन्द के सागर युगल स्वरूप को अपने धाम हृदय में बसाते हैं। ऐसे सुन्दरसाथ को इस नश्वर शरीर से कोई भी आसक्ति नहीं रह जाती। इसे ही देह (शरीर) का पलट जाना कहते हैं।

मंगल गाइए दुलहे के, आयो समें स्यामा वर स्याम।

नैनों भर भर निरखिए, विलसिए रंग रस काम॥१०॥

इस प्रेम रस में डूब जाने पर अब प्रियतम के दीदार की

मधुर घड़ी आ गयी है, इसलिये मिलन का मंगल गीत गाये जाने की आवश्यकता है। अब आत्म-चक्षुओं से अपने प्रियतम को जी भरकर देखिए और स्वयं को उनके दिव्य (अलौकिक) प्रेम एवं आनन्द के रस में डुबो दीजिए।

भावार्थ- चितवनि की गहन अवस्था में कुछ भी गाना या जपना सम्भव नहीं है। इस चौपाई में मंगल गीत गाये जाने का भाव यह है कि जब आत्मा प्रियतम के दीदार के सन्निकट (बहुत ही नजदीकी स्थिति) पहुँच जाती है, तो उसके हृदय में एक विशेष प्रकार के आनन्द की अनुभूति होती है जिसे मंगल गीत गाना कहते हैं।

इस चौपाई में वर्णित "काम" शब्द का प्रयोग उस दिव्य प्रेम के लिये किया गया है, जो पूर्णतया निर्विकार एवं अलौकिक है। वासना जन्य लौकिक काम के लिये

अध्यात्म में कोई भी स्थान नहीं है।

धाम के मोहोलों सामग्री, माहें सुखकारी कई बिध।

अंदर आंखें खोलिए, आई है निज निध॥११॥

परमधाम के महलों में सुख देने वाली अनेक प्रकार की सामग्री हैं। हे सुन्दरसाथ जी! आप अपने आत्मिक नेत्रों से उस शोभा को देखिए। यही हमारी अखण्ड सम्पत्ति है, जो चितवनि से प्राप्त होती है।

विलास वैसेखें उपज्या, अंदर कियो विचार।

अनुभव अंगे आइया, याद आए आधार॥१२॥

अन्तर्मुखी होकर अपने हृदय में परमधाम का चिन्तन करने से विशेष प्रकार का आनन्द प्रकट हुआ। चितवनि में डूब जाने से जीवन के आधार युगल स्वरूप की छवि

दिल में बस गयी, जिसका प्रत्यक्ष अनुभव मेरे हृदय धाम में हुआ।

दरदी विरहा के भीगल, जानों दूर थें आए विदेसी।

घर उठ बैठे पल में, रामत देखाई ऐसी॥१३॥

विरह के दर्द में डूबी हुई ब्रह्मसृष्टि चितवनि में जब परमधाम पहुँचती है, तो उसे ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह अब तक विदेश (कालमाया के ब्रह्माण्ड) में रह रही थी और अब अपने निज घर में प्रियतम के पास पहुँच गयी है। धनी ने हमें ऐसा खेल दिखाया है, जिसमें चितवनि के माध्यम से एक पल में ही हमारी ऐसी स्थिति हो जाती है, जैसे हम परमधाम में ही जाग्रत हो गये हैं।

भावार्थ— यद्यपि परात्म में एक पल में ही सबकी जागनी हो जायेगी, किन्तु इस चौपाई में चितवनि द्वारा ही जाग्रत

होने का प्रसंग चल रहा है।

उठ के नहाइए जमुना जी, कीजे सकल सिनगार।

साथ सनमंधी मिल के, खेलिए संग भरतार॥१४॥

हे सुन्दरसाथ जी! अब आप चितवनि से परमधाम पहुँचिए और यमुना जी में स्नान करके जल-रौंस की दयोहरियों में अँगना भाव का श्रृंगार कीजिए। परमधाम से आए हुए सभी सुन्दरसाथ वहाँ आत्मिक दृष्टि से एक स्वरूप होकर प्रियतम के साथ लीला विहार का आनन्द लें।

भावार्थ- इस चौपाई में "उठ के" का तात्पर्य परमधाम के मूल तनों में उठने से नहीं है, बल्कि इस संसार की मोहमयी निशा को छोड़कर परमधाम में सुरता द्वारा पहुँचने से है। कीर्तन का यह प्रकरण चितवनि द्वारा

जाग्रत करने के सम्बन्ध में है, इसलिये यहाँ आत्मा के जाग्रत होने का प्रसंग है, परात्म के जाग्रत होने का नहीं। मूल स्वरूप के आदेश से मूल तनों में सबकी जागनी एक साथ ही होनी है, इसलिये इस चौपाई में पाँचवें और छठें दिन की जागनी लीला के सन्दर्भ में कहा गया है।

महामत कहे मलपतियां, आओ निज वतन।

विलास करो विध विध के, जागो अपने तन॥१५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! अब आप मुस्कराते हुए चितवनि द्वारा परमधाम पहुँचिए और अपने मूल तनों की शोभा को धारण करके अनेक प्रकार से आनन्दमयी लीलाएँ कीजिए।

भावार्थ— इस चौपाई में प्रयुक्त "जागो अपने तन" का भाव यह कदापि नहीं मानना चाहिए कि यहाँ अपने मूल

तनों में जागने की बात कही गयी है। यह वाणी पाँचवें दिन की लीला में उतरी है। छठे दिन की लीला में आत्माओं को क्रमशः जाग्रत होना है और श्री जी के चरणों में छत्तीस हजार का मेला होना है। यदि एक-एक आत्मा चितवनि द्वारा या शरीर छोड़कर अपने मूल तन में पहुँचती जायेगी, तो "पौढ़े भेले जागसी भेले" का कथन झूठा हो जायेगा जो कदापि सम्भव नहीं है। "जागो अपने तन" का मूल भाव यह है कि आत्मा अपना वही स्वरूप समझे जो उसकी परात्म का है, क्योंकि आत्मा परात्म का प्रतिबिम्ब है। आत्मा को परात्म के श्रृंगार में सजाकर प्रियतम को धाम हृदय में बसाना चाहिए।

प्रकरण ॥८०॥ चौपाई ॥१११३॥

राग मारू

प्रकरण ८० से प्रकरण १०० तक के सभी कीर्तन श्री ५ पद्मावती पुरी धाम (पन्ना) में उतरे हैं। इस प्रकरण में धनी के गुणों की महिमा को दर्शाया गया है।

सुन्दरसाथ जी ए गुन देखो रे, जो मेरे धनिएं किए अलेखे॥टेक॥

क्यों ए न छोड़े माया हम को, हम भी छोड़ी न जाए।

अरस-परस यों भई बज्र में, सो मेरे धनिएं दर्ई छुटकाए॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! मेरे प्रियतम अक्षरातीत हमारे ऊपर बेशुमार मेहर कर रहे हैं। आप अपने आत्मिक नेत्रों से धनी के इस गुण की पहचान कीजिए। न तो यह माया हमें किसी भी स्थिति में छोड़ना चाह रही है और न ही हम माया को छोड़ पा रहे हैं। यह माया हमसे इस प्रकार अमिट रूप से अरस-

परस हो गयी थी कि लगता था कि यह नहीं छूट सकेगी, किन्तु धनी ने छुड़ा ही दिया।

भावार्थ- माया में डूबकर स्वयं को पूर्णरूपेण भूला देना ही माया से अरस-परस होना है। इस जागनी के ब्रह्माण्ड में श्रीमुखवाणी द्वारा धनी के स्वरूप की पहचान कर अपने धाम हृदय में बसाने पर माया स्वतः ही दूर भाग जाती है। इसे ही माया से छूटना कहते हैं।

**कोई न निकस्या इन माया से, अव्वल सेती आज दिन।
सो धनिएं बल ऐसो दियो, हम तारे चौदे भवन॥२॥**

जब से यह सृष्टि बनी है, आज दिन तक कोई भी माया के बन्धनों से निकलकर मुक्त नहीं हो सका। लेकिन धाम धनी ने हमें तारतम ज्ञान का ऐसा अलौकिक बल दिया है, जिसके द्वारा हम चौदह लोक के सभी प्राणियों को

अखण्ड मुक्ति देंगे।

भावार्थ- माया के बन्धनों से न निकल पाने का कथन मात्र जीव सृष्टि के लिये है, अक्षर ब्रह्म की पञ्चवासना (शुकदेव, सनकादिक, शिव, विष्णु भगवान, कबीर जी) के लिये नहीं।

आगे हुई ना होसी कबहूँ, हमें धनिएं ऐसी सोभा दई।

सब पूजें प्रतिबिम्ब हमारे, सो भी अखण्ड में ऐसी भई॥३॥

धाम धनी ने हमें ऐसी शोभा दी है, जो न तो इसके पहले कभी किसी को मिली है और न भविष्य में किसी को मिलेगी। सत्स्वरूप की पहली बहिश्त में हमारे जीव हमारे मूल तनों जैसा रूप धारण करके विराजमान होंगे, और ईश्वरी सृष्टि सहित सभी बहिश्तों के जीव हमारी पूजा किया करेंगे। योगमाया के अखण्ड ब्रह्माण्ड में यह

लीला हमेशा चलती रहेगी।

धनिएं भिस्त कराई हमपे, किल्ली हाथ हमारे।

लोक चौदे हम किए नेहेचल, सेवें नकल हमारी सारे॥४॥

धनी ने हमें तारतम ज्ञान की कुञ्जी देकर हमारे द्वारा चौदह लोक के जीवों को बहिश्तों में अखण्ड कराया। इन बहिश्तों में अखण्ड होने वाले सभी जीव तथा ईश्वरी सृष्टि भी सत्स्वरूप में स्थित हमारे प्रतिबिम्ब के तनों की पूजा करेंगे।

ऐसी बड़ाई दई हम गिरो को, और किए औरों के अधीन।

फेर कहे इन पिउ पेहेचाने, याही में आकीन॥५॥

यद्यपि धनी ने हम ब्रह्मसृष्टियों को योगमाया के ब्रह्माण्ड में इतनी बड़ी शोभा दी है, किन्तु इस कालमाया के

ब्रह्माण्ड में हमें आदिनारायण और उनकी माया के अधीन कर दिया। इसके साथ ही धनी ने हमारे लिये शोभा के ये शब्द कहे कि एकमात्र ब्रह्मसृष्टियों को ही मेरी वास्तविक पहचान हो पाती है और यही मेरे ऊपर दृढ़ विश्वास रखती हैं।

भावार्थ- इस ब्रह्माण्ड में यदि कोई ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव की भक्ति न करे तथा उनका अस्तित्व न स्वीकार करे तो भी उसका कुछ अनिष्ट नहीं होगा, किन्तु इस सृष्टि के स्वामी आदिनारायण तथा उनकी प्रकृति के नियमों के अधीन हर कोई बँधा हुआ है। किसी को भी यहाँ की प्रकृति की मर्यादाओं का उल्लंघन करने का अधिकार नहीं है। "किए औरों के अधीन" का कथन इसी सन्दर्भ में है।

चौदे भवन को दिया आकीन, सो भी कहे गिरो बल दिया।
 सोभा अलेखें कहूं मैं केती, ऐसा धनिँ हमसों किया॥६॥

धाम धनी ने अपनी कृपा से चौदह लोक के प्राणियों को अपने ऊपर विश्वास दिलाया, किन्तु यह शोभा उन्होंने हम ब्रह्मसृष्टियों को यह कहकर दी कि ब्रह्मसृष्टियों की शक्ति एवं कृपा से ही ऐसा हुआ है। धनी ने हमें जो अनन्त शोभा दी है, उसे मैं कितना कहूँ।

बिन जाने बिन पेहेचाने कई सुख, ऐसे धनिँ हमको देखाए।
 अबलों गिरो न जाने धनी गुन, सो जागनी हिरदे चढ़ आए॥७॥

इस संसार में धनी ने हमें कई ऐसे सुखों का भी अनुभव कराया, जिनके विषय में हमारी कोई भी जान-पहचान नहीं थी। आज तक ब्रह्मसृष्टि धनी के गुणों को पूरी तरह नहीं जान पायी थी। अब इस जागनी ब्रह्माण्ड में

सुन्दरसाथ को धनी के अलौकिक गुणों की पहचान हो गयी है।

ऐसे ब्रह्मांड अलेखें अछरथें, पलथें पैदा फना होत।

ऐसे इंड में चींटी बराबर, हम गिरो हुई उद्योत॥८॥

अक्षर ब्रह्म के एक पल में हमारे ब्रह्माण्ड जैसे अनन्त ब्रह्माण्ड पैदा होते हैं और लय को प्राप्त होते हैं। इस ब्रह्माण्ड में हम ब्रह्मसृष्टियों का अस्तित्व एक चींटी के बराबर है।

भावार्थ- कहीं पर एक पल में अक्षर ब्रह्म द्वारा करोड़ों ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति का वर्णन है , तो कहीं अनन्त ब्रह्माण्डों के प्रलय होने का वर्णन है। वस्तुतः अनन्त शक्ति वाले अक्षर ब्रह्म की सृष्टि भी अनन्त है। उसे करोड़ या किसी संख्या में बाँधना मात्र बुद्धिगम्यता के लिये है।

सो चींटी सहूर दे समझाई, धनिएं आप जैसे कर लिए।
 कर सनमंध अछरातीत सों, ले धनी धाम के किए॥९॥

चींटी जैसा अस्तित्व रखने वाली ब्रह्मसृष्टियों को धनी ने श्रीमुखवाणी का चिन्तन कराकर समझाया और उनका सम्बन्ध स्वयं से जोड़ा। उनकी सुरता को परमधाम में घुमाकर उनके धाम हृदय में विराजमान हो गये तथा उन्हें भी अपने जैसा ही बना लिया।

अवगुन अलेखें हम किए पिउ सों, तापर ऐसे धनी के गुन।
 कई विध सुख ऐसे धनीय के, क्यों कर कहूं जुबां इन॥१०॥

हमने धनी के प्रति अनन्त अवगुण किये, फिर भी धनी हमारे ऊपर अपने गुण ही दर्शाते रहे अर्थात् मेहर करते रहे। इस तरह धाम धनी ने हमें कई प्रकार के ऐसे सुख दिए, जिनका वर्णन यहाँ की वाणी से होना कदापि

सम्भव नहीं है।

इन विध सुख दिए अलेखें, ऐसे गुन मेरे पिउ।

तामें एक गुन जो याद आवे, तो तबहीं निकस जाए जिउ॥११॥

इस प्रकार धाम धनी ने इस संसार में भी हमें अनन्त सुख दिये। धनी के अनन्त गुणों में से यदि एक की भी हमें याद आ जाये (पहचान हो जाये), तो उसी समय हमारा जीव विरह में व्याकुल होकर इस शरीर को छोड़ देगा।

महामत कहे गुन इन धनी के, सो इन मुख कहे न जाए।

एक गुन जो याद आवे, तो तबहीं उड़े अरवाए॥१२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि धनी के गुणों का वर्णन इस मुख से होना सम्भव ही नहीं है। यदि धनी के एक गुण

की भी पहचान हो जाये तो धनी के विरह में आत्मा उसी क्षण इस नश्वर शरीर का परित्याग कर देगी।

प्रकरण ॥८१॥ चौपाई ॥११२५॥

राग श्री

इस प्रकरण में मेहर की विवेचना की गयी है।

सखी री मेहर बड़ी मेहेबूब की, अखंड अलेखे।

अंतर आंखां खोलसी, ए सुख सोई देखे॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! प्रियतम अक्षरातीत की मेहर बहुत बड़ी है, अनन्त है, और अखण्ड है। जो अपने आत्मिक नेत्रों को खोलेगा, एकमात्र वही मेहर की वास्तविक पहचान कर सकेगा।

न था भरोसा हम को, जो भवजल उतरें पार।

इन जुबां केती कहूं, इन मेहेर को नहीं सुमार॥२॥

हमें तो इस बात का विश्वास ही नहीं था कि हम इस

भवसागर से पार हो सकेंगे। लेकिन धनी की उस अपार मेहर का वर्णन मैं इस वाणी से कैसे करूँ, जिसने हमें इस भवसागर से पार तो किया ही, यहाँ बैठे-बैठे परमधाम की अनुभूति भी करा दी।

मेरे दिल की देखियो, दरद न कछू इस्क।

ना सेवा ना बंदगी, एह मेरी बीतक॥३॥

हे साथ जी! मेरे दिल की असलियत (वास्तविकता) तो देखिए कि मेरे अन्दर न तो धनी का कुछ भी दर्द रहा और न ही इश्क। न तो मैंने कुछ सेवा की और न ही बन्दगी की। यही अब तक की मेरी आपबीती है।

भावार्थ- विरह, इश्क, और सेवा के क्षेत्र में श्री महामति जी की किसी से कोई तुलना नहीं। इस चौपाई का कथन महामति जी की विनम्रता की पराकाष्ठा को दर्शा रहा है,

जो सुन्दरसाथ के लिये अनिवार्य रूप से अनुकरणीय है।

मेहरें हमको ऐसा किया, करी वतन रोसन।

मुक्त दे सचराचर, हम तारे चौदे भवन॥४॥

धाम धनी की मेहर ने हमें ऐसा कर दिया कि हमने ब्रह्मवाणी के प्रकाश से परमधाम को संसार में जाहिर कर दिया। हम चौदह लोक के चर-अचर सभी प्राणियों को इस भवसागर से पार करके अखण्ड मुक्ति देंगे।

क्यों मेहेर मुझ पर भई, ए थी दिल में सक।

मैं जानी मौज मेहेबूब की, वह देत आप माफक॥५॥

मेरे दिल में इस बात का संशय रहता था कि एकमात्र मेरे ऊपर ही धनी की इतनी अधिक मेहर कैसे हो गयी? अब मुझे यह विदित हो गया है कि इस प्रकार की मेहर

का होना तो धाम धनी की अपनी मौज (प्रेम भरी मस्ती) है। उनकी महिमा अनन्त है। उनकी मेहर भी महिमा के अनुकूल ही होती है।

बढ़त बढ़त मेहेर बढ़ी, वार न पाइए पार।

एक ए निरने में ना हुई, वाकों वाही जाने सुमार॥६॥

धनी की मेहर बढ़ते-बढ़ते इतनी बढ़ी कि उसकी कोई भी सीमा नहीं रही। मैं तो धनी की एक मेहर को भी नहीं समझ पाया। उनकी मेहर तो अनन्त है। उसकी सीमा को उनके सिवाय अन्य कोई भी नहीं जान सकता।

और मेहेर ए देखियो, कर दियो धाम वतन।

साख पुराई सब अंगों, यों कई विध कृपा रोसन॥७॥

और धनी की इस मेहर को देखिए, जिसने निज घर

"परमधाम" की पहचान करा दी। मेहर से ही हृदय के सभी अंगों ने यह साक्षी भी दी। इस प्रकार कई तरह से धनी की कृपा होती रही है।

अंदर सब मेरे यों कहें, धाम से आए माहें सुपन।

है सनमंध धनी धामसों, ए साख मेहेर से उत्पन॥८॥

मेरे हृदय के अन्दर से मन, चित्त, बुद्धि, अहं आदि सबकी यही आवाज है कि हम परमधाम से इस स्वप्नमयी संसार में आए हुए हैं। हमारा मूल सम्बन्ध केवल धाम धनी अक्षरातीत से है। इस प्रकार की साक्षी तो केवल धनी की मेहर से ही सम्भव है।

मेरे सतगुर धनिं यों कह्या, और कह्या वेद पुरान।

सो खोल दिए मोहे माएने, कर दई आतम पेहेचान॥९॥

इसी प्रकार की बात सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के रूप में धाम धनी ने की। वेद-पुराणों ने भी इस कथन की पुष्टि की। धाम धनी ने मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर मेरी आत्मा को सारी पहचान करा दी और सभी धर्मग्रन्थों के भेद भी स्पष्ट कर दिये।

सब मिल साख ऐसी दई, जो मेरी आत्म को घर धाम।
सनमंध मेरा सब साथ सों, मेरो धनी सुंदर वर स्याम॥१०॥

सबने (हृदय, आत्मा, सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी, एवं वेद-शास्त्रों ने) मिलकर इस प्रकार की साक्षी दी कि मेरी आत्मा का घर परमधाम है। मेरे प्रियतम अति सुन्दर श्री राज जी हैं। सब सुन्दरसाथ से मेरा आत्मिक सम्बन्ध है।

भावार्थ- सामान्यतः "सुंदर वर स्याम" का अर्थ सुन्दरबाई (श्यामा जी) के प्रियतम श्री राज जी भी ले

लिया जाता है, किन्तु यह उचित नहीं है। "श्याम" शब्द से पूर्व में आने वाला शब्द "सुंदर" विशेषण के रूप में प्रयुक्त है, न कि संज्ञा (सुन्दरबाई) के रूप में। यदि "वर" की जगह "बाई" शब्द प्रयुक्त होता, तो इस प्रकार का अर्थ गठन सम्भव हो सकता था।

इत अछर आवे नित्याने, मेरे धनी के दीदार।

ए निसबत भई हम गिरोह की, क्यों कहूं इन सुख को पार॥११॥

मेरे प्रियतम का दीदार करने के लिये अक्षर ब्रह्म प्रतिदिन परमधाम आते हैं। हम ब्रह्मसृष्टियों का अखण्ड रूप में मूल सम्बन्ध ऐसे सकल गुण निधान धनी से है। ऐसे धनी की अर्धांगिनी होने के इस गौरवमयी सुख को सीमा में बाँधकर भला मैं कैसे कह सकता हूँ।

भावार्थ— यद्यपि अक्षर धाम भी परमधाम के अन्दर है,

किन्तु लीला रूप में अलग मान लिया जाता है। वस्तुतः अक्षर और अक्षरातीत अंग-अंगी हैं।

ए आतम को नेहेचे भयो, संसे दियो सब छोड़।

परआतम मेरी धाम में, तो कही सनमंध संग जोड़॥१२॥

मेरी आत्मा ने सभी प्रकार के संशयों से किनारा कर लिया है। उसमें इस बात की पूर्ण रूप से दृढ़ता आ गयी है कि मेरी परात्म परमधाम के मूल मिलावा में विराजमान है और उससे अपना सम्बन्ध जोड़ना है।

भावार्थ- आत्मिक दृष्टि से अपनी परात्म को देखना ही परात्म से सम्बन्ध जोड़ना है। इस सम्बन्ध में कीर्तन का यह कथन द्रष्टव्य है- "आतम दृष्टि जुड़ी परात्म, तब भयो आतम निवेद।"

परआत्म के अंतस्करण, जेती बीतत बात।

तेती इन आत्म के, करत अंग साख्यात॥१३॥

परात्म के अन्तःकरण (मन, चित्त, बुद्धि, तथा अहंकार) में धनी की प्रेरणा से जो भी बात आती है, वही बात इस संसार में आत्मा के अंग (हृदय) में स्पष्ट रूप से आती है।

ए भी धनिएं श्री मुख कह्या, और दई साख फुरमान।

ए दोऊ मिल नेहेचे कियो, यों भई दृढ़ परवान॥१४॥

आत्मा तथा परात्म के सम्बन्ध का इस प्रकार का वर्णन सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने भी किया। आदेश पत्रों (श्रीमद्भागवत् तथा कुरआन) ने भी इसकी साक्षी दे दी। इन दोनों (धनी और फुरमान) की दी हुई साक्षी से मेरे अन्दर पूर्ण दृढ़ता आ गयी।

और मेहर ए देखियो, ऐसा कर दिया सुगम।

बिन कसनी बिन भजन, दियो धाम धनी खसम॥१५॥

हे साथ जी! धनी की इस मेहर को देखिए कि उसने अब तक के असम्भव रहे कार्य को भी बहुत अधिक सरल कर दिया। मेहर ने बिना कसनी और बिना भजन के धाम धनी अक्षरातीत का दीदार कराया और मेरे धाम हृदय में बिठा दिया।

भावार्थ- श्रीमुखवाणी में अन्यत्र आया है- "ए निध लई मैं कसनी कर" तथा "भजन बिना सब नरक है, पचि-पचि मरिए मांहें।" श्री इन्द्रावती जी की कसनी और भजन हकीकत-मारिफत की प्रेममयी राह से सम्बन्धित हैं, किन्तु इस चौपाई में जिस कसनी और भजन का वर्णन है, वह हठयोग की कसनी और शरीयत-तरीकत का भजन है।

ना जप तप ना ध्यान कछू, ना जोगारंभ कष्ट।

सो देखाई बृज रास में, एही वतन चाल ब्रह्मसृष्ट॥१६॥

अब मुझे जप, तप, या ध्यान कुछ भी नहीं करना पड़ता है, और न योगाभ्यास का कष्ट उठाना पड़ता है। ब्रज और रास में भी हमने यही राह अपनायी थी। परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों की राह प्रेम वाली है।

भावार्थ- सर्वस्व समर्पण (प्राणिधान), विरह, तथा प्रेम की मन्जिल सर्वोपरि होती है। तारतम ज्ञान के बिना जप, तप, ध्यान, तथा योगाभ्यास करने से अक्षरातीत से मिलन नहीं हो पाता। अक्षरातीत के धाम, स्वरूप, तथा लीला का बोध हो जाने पर अनन्य प्रेम द्वारा उसका साक्षात्कार किया जा सकता है, किन्तु शुष्क हृदय वाला होकर शरीर की परिधि से बाहर निकले बिना केवल जप, तप, ध्यान, तथा योगाभ्यास द्वारा उस अक्षरातीत को

नहीं पाया जा सकता। इस चौपाई में यही बात विशेष रूप से बतायी गयी है।

विरह और प्रेम में डूबकर उठते-बैठते, सोते-जाग्रते, बिना माला के हृदय से युगल स्वरूप का नाम लेने (जप), मन एवं इन्द्रियों को विषयों में न जाने देने (तप), तथा परमधाम और युगल स्वरूप की शोभा में डूब जाने (ध्यान) में कोई भी दोष नहीं है।

चलत चाल घर अपने, होए न कसाला किन।

आयस कछू न आवहीं, सब अपनी में मगन॥१७॥

परमधाम वाली अपनी प्रेम की राह अपनाने में किसी को भी कष्ट नहीं होता। इसमें कुछ आलस्य भी नहीं आता। सभी सुन्दरसाथ इस प्रेम की राह को अपनाकर आनन्द में मग्न हो जाते हैं।

भावार्थ- जप, योगाभ्यास आदि में तो कुछ विशेष आसनों पर बैठना पड़ता है, किन्तु प्रेम की राह सभी बन्धनों से परे है। यदि हृदय में निर्मलता, कोमलता, और भाव-विह्वलता है, तो प्रेम की सरिता स्वाभाविक रूप से प्रवाहित हो जाती है। वास्तविक प्रेम युगल स्वरूप को हृदय में बसाने पर ही प्राप्त होता है।

सोई गुन पख इंद्रियां, धाम वतन की देह।

सोई मिलना परआत्म का, सब सुखै के सनेह॥१८॥

धनी के प्रेम में खो जाने पर सुरता (आत्मा) अपने परमधाम के मूल तन परात्म से मिलती है, जिससे अनन्त प्रेम और आनन्द की अनुभूति होती है। इस मायावी जगत के विपरीत वहाँ के नूरमयी शरीरों की इन्द्रियाँ प्रेम से भरपूर होती हैं। मन की प्रवृत्ति (पक्ष)

केवल प्रेम और आनन्द में डूबे रहने की होती है। शरीर का अंग-अंग सत्-चित्-आनन्दमयी होता है।

सोई सेहेज सोई सुभाव, सोई अपना वतन।

सोई आसा लज्या सोई, सोई करना न कछू अन॥१९॥

वास्तविक प्रेम की प्राप्ति हो जाने पर आत्मा को ऐसा अनुभव होता है कि मेरा नूरी तन परमधाम के उस स्वाभाविक व्यवहार में संलग्न है , जिसमें कोई भी कृत्रिमता नहीं है। अपना स्वभाव भी प्रेम का पुञ्ज बन जाता है। पल-पल निज घर की अनुभूति होती रहती है। पल-पल धनी के दीदार की आशा रहती है। हृदय में प्रेममयी अलौकिक लज्जा का अहसास बना रहता है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी करना अच्छा नहीं लगता।

सोई लोभ सोई लालच, सोई अपनों अहंकार।

सोई काम प्रेम करतब, सोई अपना वेहेवार॥२०॥

प्रेम में आत्मा की ऐसी अलौकिक अवस्था हो जाती है, जिसमें माया का कोई भी लोभ, लालच, अहंकार, या काम विकार नहीं रह जाता। मन में केवल यही बात (दिव्य अहंकार की) गूँजती रहती है कि मैं प्रियतम अक्षरातीत की प्राणेश्वरी, प्राणवल्लभा हूँ। मैं एक पल भी उनसे अलग न होऊँ। मैं अधिक से अधिक उनके आनन्द में डूबी रहूँ (यह दिव्य लोभ-लालच है)। धनी के प्रेम में वह आत्मा स्वयं को इतना भुला देती है कि उसे अपने अस्तित्व का आभास तक नहीं रहता। इसी को वह अपना कर्तव्य मानती है। उसका अष्ट प्रहर का व्यवहार यही बना रहता है।

भावार्थ- परमधाम में लोभ, लालच, या अहंकार की

कल्पना भी नहीं आ सकती। इस चौपाई में जिस लोभ, लालच, और अहंकार की बात की गयी है, वह अलौकिक है। परमधाम की लीला को समझने के लिये इन शब्दों को मात्र आधार बनाया गया है।

सोई मन बुध चितवन, सोई मिलाप सैन्यन।

सोई हांस विलास सोई, करते रात दिन॥२१॥

अनन्य प्रेम की उस शब्दातीत अवस्था में पहुँच जाने पर आत्मा को यह अनुभूति होती है कि मेरा मन और मेरी बुद्धि भी परमधाम के हैं, जिनमें धनी के सिवाय अन्य कोई वस्तु बस ही नहीं सकती। युगल स्वरूप के अतिरिक्त अन्य किसी का कभी ध्यान रहता ही नहीं है। सखियों की मधुर एकरूपता वाले वाहिदतमयी मिलन का पल-पल अहसास होता रहता है। दिन-रात एक-दूसरे

के साथ हँसते हुए आनन्द-विहार की अनुभूति होती रहती है।

धाम लीला जाहेर करी, विध विध की रोसन।

दिया सुख अखंड दुनी को, और कायम किए त्रिगुण॥२२॥

धनी की मेहर ने परमधाम की अखण्ड लीला को इस नश्वर जगत में भी जाहिर कर दिया और अनेक प्रकार से सुख दिया। सत्व, रज, और तम के बन्धन में फँसे हुए समस्त ब्रह्माण्ड के जीवों को शाश्वत मुक्ति का अखण्ड सुख दिया।

जो जागो सो देखियो, ए लीला सब्दातीत।

मेहेरें इत प्रगट करी, मूल धाम की रीत॥२३॥

परमधाम की यह लीला शब्दातीत है। जो सुन्दरसाथ

जाग्रत हो गये हैं, वे इस लीला को देखें। धाम धनी की मेहर ने ही परमधाम की उस प्रेममयी लीला का ज्ञान और व्यवहार इस संसार में प्रकट किया है।

हुकम सरत इत आए मिली, जो फुरमाई थी फुरमान।

महामत साथ को ले चले, कर लीला निदान॥२४॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! धाम धनी ने जो कुरआन में कहला भेजा था कि मैं कियामत के समय में प्रकट होकर अर्श-ए-अजीम की लीला को जाहिर करूँगा, अब वह समय आ गया है। श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी ने परमधाम की शोभा एवं लीला को जाहिर किया तथा सब सुन्दरसाथ को उस लीला के ध्यान में डुबोया।

भावार्थ- मूल स्वरूप श्री राज जी ने परमधाम में अपने दिल में जो कुछ ले लिया, उसे इस संसार में हुक्म कहते हैं। धनी ने मुहम्मद साहिब से इस संसार में आकर जो कुछ भी करने का वायदा किया, उसे शर्त कहते हैं। इस प्रकार इस चौपाई में हुक्म और शर्त का तात्पर्य है – श्री राज जी द्वारा संसार में आकर परमधाम को जाहिर करने की इच्छा करना और मुहम्मद साहिब से वायदा करना।

प्रकरण ॥८२॥ चौपाई ॥११४९॥

राग श्री

इस प्रकरण में जागनी लीला का वर्णन है।

धन धन ए दिन साथ आनंद आयो॥ टेक ॥

अखंड में याद देने, ए जो बैन बजायो।

चित दे साथ को ले, आप में समायो॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि यह दिन धन्य – धन्य है, जिसमें सुन्दरसाथ को परमधाम के आनन्द की अनुभूति हुई। धाम धनी ने जो ब्रह्मवाणी की बाँसुरी बजाई है, वह इसलिये ताकि अखण्ड धाम में भी इस खेल की याद बनी रहे। धनी ने सुन्दरसाथ को अपना दिल दिया और उन्हें अपने दिल में समा लिया।

भावार्थ- ब्रह्मवाणी से जो सुन्दरसाथ की जागनी हो रही है, उसकी स्मृति परमधाम में जागने पर बनी रहेगी।

इस ब्रह्मवाणी द्वारा ही सुन्दरसाथ को धनी की पहचान होती है। पहचान के पश्चात् जब वह धनी के प्रेम की तरफ अपने कदम बढ़ाता है, तो प्रेम के अनन्त सागर वह प्रियतम सुन्दरसाथ को अपने प्रेम के आगोश में समा लेते हैं। यह घड़ी धन्य-धन्य है।

अखंड में याद देने, ए जो खेल बनायो।

बृज रास जागनी में, ए जो खेल खेलायो॥२॥

परमधाम में याद देने के लिये ही यह खेल बनाया गया है। ब्रज, रास, और जागनी के रूप में धनी ने हमें यह खेल खेलाया है।

पिउ ने प्रकास्यो पेहेले, आयो सो अवसर।

बृज ले रास में खेले, खेले निज घर॥३॥

धनी ने जिस बात के लिये हमें कहा था , अब वह अवसर आ गया है। हम सबसे पहले व्रज में आये। उसके पश्चात् रास में गये। अब हम इस समय जागनी ब्रह्माण्ड में परमधाम की लीला का अनुभव कर रहे हैं।

भावार्थ- धनी ने कहा था कि माया में जाकर तुम सभी मुझे भूल जाओगे। इस बात पर सबका यही कहना था कि यदि आप सौ बार भी अजमा कर देखें , तो हम आपको नहीं भूलेंगी। अब अपने कथन को सत्य सिद्ध करने का यही अवसर है। स्वयं को धनी के प्रेम रूपी सागर में डुबाकर हमें यही सिद्ध करना होगा कि हम माया में धनी को कभी भी भूले नहीं हैं।

विध विध विलास हांस, अंग थें उत्पन।

नए नए सुख सनेह, हुए हैं रोसन॥४॥

इन लीलाओं में हमने दिल में अनेक प्रकार से हँसी और आनन्द का अनुभव किया। इस जागनी लीला में तो प्रेम के नये-नये सुखों की अनुभूति हुई।

चेहेन चरित्र चातुरी, बृज रास की लई।

अनुभव असलू अंग में, आए चढ़ी धाम की सही॥५॥

इस जागनी लीला में हमने ब्रज और रास का अँगना भाव वाला प्रेममयी स्वभाव या चरित्र (धनी के प्रति एकनिष्ठा और धनी को रिझाने की चतुराई भरी कला) को अपने आचरण में अपनाया। इसका परिणाम यह हुआ कि हमारी आत्मा के हृदय में परमधाम की लीला प्रतिबिम्बित होने लगी।

भावार्थ- ब्रज-रास में धनी के प्रति हमारे हृदय में जो अटूट और एकनिष्ठ प्रेम था, भाव विह्वलता थी, वह यदि

इस जागनी ब्रह्माण्ड में भी आ जाये, तो जाग्रत होने में देर नहीं लगेगी। "असलू अंग" का तात्पर्य आत्मा का हृदय होगा, जीव का हृदय अलग है।

बढ़त बढ़त प्रीत, जाए लई धाम की रीत।

इन बिध हुई है इत, साथ की जीत॥६॥

इस प्रकार हमारे हृदय में धनी के प्रति प्रेम क्रमशः बढ़ता ही गया। अन्ततोगत्वा हमारा सम्पूर्ण व्यवहार परमधाम जैसा प्रेममयी हो गया। इस प्रकार इस संसार में सुन्दरसाथ माया से जीत गया।

भावार्थ— यद्यपि मायावी तनों में परमधाम के नूरी तनों जैसा इश्क तो नहीं आ सकता, लेकिन यहाँ के तन जितने सक्षम हो सकते हैं उतना प्रेम आ गया। इस चौपाई में परमधाम का प्रेम आ जाने का यही आशय है।

झूठी जिमी में बैठाए के, देखाए सुख अपार।

कौन देवे सुख दूजा ऐसे, बिना इन भरतार॥७॥

इस झूठे संसार में भी धनी ने हमें अपनी मेहर से परमधाम के अनन्त सुखों का रसास्वादन कराया है। बिना प्राणवल्लभ अक्षरातीत के ऐसा दूसरा कौन है, जो हमें उन सुखों का यहाँ अनुभव कराये।

भावार्थ- परमधाम के सुखों का तात्पर्य है – युगल स्वरूप, पच्चीस पक्षों की शोभा, तथा अष्ट प्रहर की लीला के दीदार एवं आनन्द की अनुभूति होना।

मैं सुन्यो पिउ जी पे, श्री धाम को बरनन।

सो भेदयो रोम रोम मांहें, अंग अंतस्करन॥८॥

मैंने जब सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के मुखारविन्द से परमधाम की शोभा तथा लीला का वर्णन सुना, तो वह

मेरे हृदय तथा शरीर के अंग-अंग के रोम-रोम में भेद गया अर्थात् फैल गया।

छक्यो साथ प्रेम रस मातो, छूटे अंग विकार।

परआत्म अन्तस्करण उपज्यो, खेले संग आधार॥९॥

सुन्दरसाथ धनी के प्रेम के रस में मस्त हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि मायावी अंगों के विकार समाप्त हो गये। हमारी परात्म के अन्तःकरण में भी यह बात आ गयी कि धनी के साथ हमारी प्रेममयी लीला हो। परिणामस्वरूप हमने अपने प्राणाधार श्री राज जी के साथ प्रेम में विहार किया।

भावार्थ- परात्म के अन्तःकरण में जो कुछ भी होता है, वही आत्मा के अन्तःकरण में आता है। जब आत्मा इस नश्वर जगत में धनी के प्रेम की ओर अपने कदम बढ़ाती

है, तो परात्म के अन्दर धनी के प्रेम का अनुभव होने की प्रेरणा मूल स्वरूप द्वारा की जाती है। इसके परिणामस्वरूप, आत्मा पूरी तरह से धनी के प्रेम रस का पान करने लगती है।

दुलहे ने दिल हाल दे, खँच लिए दिल सारे।

कहा कहूँ सुख इन विध, जो किए हाल हमारे॥१०॥

प्राण प्रियतम श्री राज जी ने हमारे दिल में प्रेम की रहनी स्थित कर दी और सबके दिल को अपनी ओर खींच लिया। इसके परिणामस्वरूप हमारा हाल ऐसा हो गया कि हम पल-पल धनी के प्रेम के रस में मग्न रहने लगे। अब हमें जिस अलौकिक आनन्द की अनुभूति हो रही है, उसे मैं शब्दों में कैसे व्यक्त करूँ।

मद चढ़यो महामत भई, देखो ए मस्ताई।

धाम स्याम स्यामा जी साथ, नख सिख रहे भराई॥११॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! मेरे हृदय में धनी के आनन्द का नशा छा गया है। अब आप मेरी इस मस्ती को देखिए। मेरे नख से शिख तक इस शरीर के रोम-रोम में परमधाम के पच्चीस पक्षों तथा युगल स्वरूप की शोभा बस गयी है।

अन्तस्करण निसान आए, ले आत्म को पोहोँचाए।

इन चोटें ऐसे चुभाए, नींद दई उड़ाए॥१२॥

परात्म के अन्तःकरण में अखण्ड रूप से विराजमान युगल स्वरूप तथा परमधाम के पच्चीस पक्षों की शोभा मेरी आत्मा के अन्दर आ गयी। धनी के प्रेम और शोभा के दिल में आ जाने से माया की नींद उड़ गयी।

भावार्थ- चोट से चुभने का तात्पर्य है- विरह और प्रेम की रसधारा में युगल स्वरूप तथा पच्चीस पक्षों की शोभा का दिल में अखण्ड हो जाना।

चढ़ते चढ़ते रंग सनेह, बढ़यो प्रेम रस पूर।

बन जमुना हिरदे चढ़ आए, इन विध हुए हजूर॥१३॥

आत्मा के हृदय में प्रेम का रंग चढ़ता गया। ऐसी स्थिति भी आ गयी कि हृदय में प्रेम रस के पूर के पूर प्रवाहित होने लगे। मेरी आत्मा के धाम हृदय में यमुना जी तथा वनों की शोभा झलकने लगी। इस प्रकार युगल स्वरूप का भी दीदार हो गया।

भावार्थ- परिक्रमा ग्रन्थ के चौथे प्रकरण में "इश्क उत्पन्न करने" का प्रकरण है। जैसे-जैसे हम परमधाम तथा युगल स्वरूप की शोभा को बसाने की ओर अपने

कदम बढ़ाते हैं, वैसे-वैसे परमधाम का इश्क हमारे अन्दर आने लगता है तथा माया के विकार शरीर से बाहर निकलने लगते हैं। यही चितवनि (ध्यान) का परिणाम है। इस प्रकार धनी की मेहर और चितवनि से इश्क आता है। यह निर्विवाद सिद्ध है।

पिए हैं सराब प्रेम, छूटे सब बन्धन नेम।

उठ बैठे मांहे धाम, हंस पूछे कुसल खेम॥१४॥

हमने परमधाम के प्रेम की अलौकिक शराब पी है, जिसका नशा नहीं उतरता। इस स्थिति को प्राप्त कर लेने के बाद कर्मकाण्ड के नियमों के बन्धन टूट जाते हैं। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि हम परमधाम में अपने मूल तनों में जाग्रत हो गये हैं और हँसते हुए एक-दूसरे से हाल-चाल पूछ रहे हैं।

भावार्थ- प्रेम की शुद्ध स्थिति को प्राप्त कर लेने पर आरती, पूजा, परिक्रमा, रोजा, हज, नमाज आदि कर्मकाण्डों का बन्धन छूट जाता है। वस्तुतः कर्मकाण्ड की राह पर चलकर प्रेम की गहन गति नहीं पायी जा सकती।

महामत महामद चढ़ी, आयो धाम को अहमद।

साथ छक्यो सब प्रेम में, पोहोंचे पार बेहद॥१५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! मेरे अन्दर धनी का प्यारा स्वरूप विराजमान हो गया है और मुझे प्रेम की अखण्ड मस्ती प्राप्त हो गयी है। सब सुन्दरसाथ भी प्रेम में छक (सराबोर हो) गया है। इस प्रकार सभी सुन्दरसाथ प्रेम की राह अपनाकर बेहद से परे परमधाम की अनुभूति कर रहे हैं।

प्रकरण ॥८३॥ चौपाई ॥११६४॥

राग श्री धना श्री

हब्से में श्री इन्द्रावती जी को युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी का दीदार हुआ। यद्यपि यह कीर्तन उसी सन्दर्भ में उतरा है, किन्तु इसके अवतरण का स्थान हब्सा न होकर श्री ५ पद्मावतीपुरी धाम है।

धन धन सखी मेरे सोई रे दिन,

जिन दिन पिया जी सो हुआ रे मिलन।

धन धन सखी मेरे हुई रे पेहेचान,

धन धन पिउ पर भई मैं कुरबान॥१॥

सुन्दरसाथ को सम्बोधित करते हुए श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि हे सुन्दरसाथ जी! मेरे लिये वह दिन धन्य-धन्य है, जिस दिन प्रियतम अक्षरातीत से मेरा मिलन हुआ। मैंने अपने धाम धनी की जो पहचान की,

वह धन्य-धन्य है। मैंने पहचान करके अपने धनी पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। मेरा यह न्योछावर भी धन्य-धन्य ही कहा जायेगा।

भावार्थ- इस सम्पूर्ण प्रकरण में धन्य-धन्य होने की बात बार-बार दोहरायी (कहलायी) गयी है। सत्यता, निष्पक्षता, समदर्शिता, तथा मानवीय भूलों को स्वीकार करने की प्रवृत्ति से ऊपर उठ जाने वाला व्यक्तित्व सामान्य व्यक्तियों से अलग ही नजर आता है। अति श्रेष्ठ बात के प्रसंग में धन्य-धन्य का सम्बोधन किया जाता है।

धंन धंन सखी मेरे नेत्र अनियाले,

धंन धंन धनी नेत्र मिलाए रसाले।

धंन धंन मुख धनी को सुन्दर,

धंन धंन धनी चित चुभायो अन्दर॥२॥

मेरे वे बाँके नेत्र धन्य-धन्य हैं, जिनसे धनी ने अपने प्रेम रस से भरे नयनों को मिलाया। प्रियतम का वह सुन्दर मुखारविन्द भी धन्य-धन्य है, जो मेरे चित्त में बस गया है।

धन धन धनी के वस्तर भूखन,

धन धन आतम से न छोड़ूं एक खिन।

धन धन सखी मैं सजे सिनगार,

धन धन धनिएं मोकों करी अंगीकार॥३॥

मेरे प्राण प्रियतम के वस्त्र तथा आभूषण अति धन्य – धन्य हैं। मैं उनकी शोभा-सुन्दरता को एक क्षण के लिये भी अपने हृदय से अलग नहीं कर सकती। प्रियतम को रिझाने के लिये मैंने जो अपना शृंगार किया है, वह धन्य-धन्य है। धनी ने मुझे स्वीकार किया, इसलिये मैं भी धन्य-धन्य हो गयी हूँ।

धन धन सखी मैं सेज बिछाई,

धन धन धनी मोको कंठ लगाई।

धन धन सखी मेरे सोई सायत,

धन धन विलसी मैं पिउसो आयत॥४॥

हे साथ जी! मैंने अपने धाम हृदय में प्रेम की अति सुन्दर व कोमल सेज्या बिछाई। ऐसी सेज्या धन्य-धन्य है, जिस पर मेरे प्रियतम विराजमान हुए और मुझे प्रेमपूर्वक गले लगाया। वह शुभ घड़ी धन्य-धन्य है, जिसमें मैंने अपने धनी के साथ बहुत अधिक प्रेमपूर्वक आनन्द का रसपान किया।

धंन धंन सखी मेरी सेज रस भरी,
धंन धंन विलास मैं कई विध करी।
धंन धंन सखी मेरे सोई रस रंग,
धंन धंन सखी मैं किए स्याम संग॥५॥

प्रेम के रस से भरपूर मेरी वह सेज्या धन्य-धन्य है,
जिस पर मैंने अपने प्राणवल्लभ के साथ अनेक प्रकार से
आनन्द की लीला की। अपने धनी के साथ मैंने जो-जो
आनन्द की लीलायें की, वे भी धन्य-धन्य हैं।

धन धन सखी मोको कहे दिल के सुकन,

धन धन पायो मैं तासों आनंद घन।

धन धन मनोरथ किए पूरन,

धन धन स्यामैं सुख दिए वतन॥६॥

हे साथ जी! धनी ने मुझसे जो दिल के रहस्य-भरे, अमृतमयी वचन कहे, वे धन्य-धन्य हैं। उन वचनों को सुनकर मैं बहुत अधिक आनन्दित हुई। इस बात से मैं धन्य-धन्य हूँ कि श्री राज जी ने मेरे मन की सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण कर दिया। उन्होंने मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर परमधाम के सुखों की अनुभूति करायी।

धन धन सखी मेरे पिउ कियो विलास,

धन धन सखी मेरी पूरी आस।

धन धन सखी मैं भई सोहागिन,

धन धन धनी मुझ पर सनकूल मन॥७॥

मेरे प्रियतम ने मेरे साथ आनन्द की लीला की और मेरी प्रेम की चाहना को पूर्ण किया। इस प्रकार मैं सोहागिन बनकर धन्य-धन्य हो गयी। रीझे हुए मन से धनी ने मेरे ऊपर अपना प्रेम उड़ेल दिया। धनी का ऐसा रीझ जाना धन्य-धन्य है।

धन धन सखी मेरे मन्दिर सोभित,

धन धन सरूप सुन्दर प्रेम प्रीत।

धन धन चौक चबूतरे सुन्दर,

धन धन मोहोल झरोखे अन्दर॥८॥

परमधाम के अति शोभायमान मेरे मन्दिर धन्य-धन्य हैं। प्रेम-प्रीति के रस में सराबोर धनी का सुन्दर स्वरूप धन्य-धन्य है। परमधाम के अति सुन्दर चौक, चबूतरे, तथा महलों के अन्दर के झरोखे भी धन्य-धन्य हैं।

धन धन जवेर नकस चित्रामन,

धन धन देखत कई रंग उत्पन।

धन धन थंभ गलियां दिवाल,

धन धन सखियां करे लटकती चाल॥९॥

परमधाम के थम्भों, गलियों, और दीवारों पर जवेरों की नक्शकारी वाले चित्र धन्य-धन्य हैं, जिनसे अनेक रंगों की किरणें उठती रहती हैं। इन महलों में रहने वाली सखियाँ प्रेम की मस्ती में (लटकती हुई चाल से) लीला करती हैं। उनकी यह लीला धन्य-धन्य है।

धन धन सखी मेरे भयो उछरंग,

धन धन सखियों को बाढ़यो रस रंग।

धन धन सखी मैं जोवन मदमाती,

धन धन धाम धनी सों रंगराती॥१०॥

प्रियतम से प्रेम करने के लिये मेरे हृदय में बढ़ने वाले उमंग (उत्साह) धन्य-धन्य है। सुन्दरसाथ में भी धनी के प्रति बढ़ने वाले प्रेम रस को धन्य-धन्य है। धाम धनी के आनन्द में आकण्ठ डूबी हुई मैं इन्द्रावती (महामति) प्रेम रूपी यौवन के नशे में मस्त हूँ। इस स्थिति में मैं अब धन्य-धन्य हो गयी हूँ।

धन धन साथ मुख नूर रोसन,

धन धन सुख सदा धाम वतन।

धन धन सखी मेरे भूखन झलकार,

कौन विध कहूं न पाइए पार॥११॥

परमधाम में सुन्दरसाथ के झिलमिलाते हुए नूरी मुख धन्य-धन्य हैं। निज घर (परमधाम) के वे शाश्वत सुख भी धन्य-धन्य हैं। झलकार करने वाले मेरे वे आभूषण धन्य-धन्य हैं, जिनकी शोभा का माप (आँकलन) कोई भी किसी भी प्रकार से नहीं कर सकता।

धन धन नूर सबमें रह्यो भराई,

देखे आतम सो मुख कह्यो न जाई।

धन धन साथ छक्यो अलमस्त,

धन धन प्रेम माती महामत॥१२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि परमधाम का कण –कण नूरी शोभा से ओत-प्रोत है। इस नूर को धन्य-धन्य है। आत्मा परमधाम की नूरी शब्दातीत शोभा को देखकर स्वयं को भूल जाती है। उस शोभा का वर्णन यहाँ के मुख (वाणी) से नहीं हो सकता। वे सुन्दरसाथ धन्य-धन्य हैं, जो धनी के प्रेम में तृप्त होकर बेसुध हो रहे हैं। प्रियतम के प्रेम में मस्त होकर मैं भी धन्य-धन्य हो गयी हूँ।

प्रकरण ॥८४॥ चौपाई ॥११७६॥

राग श्री

तीन विध का चलना

इस प्रकरण में जागनी के ऊपर प्रकाश डाला गया है।

ए जो कही जागन, सखी री जाग चलो॥ टेक ॥

वचन नीके विचारियो, जो कोई सोहागिन।

जाग चलो पिउ सों मिलो, सुख अखण्ड आनन्द अति घन॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! यह जागनी का ब्रह्माण्ड है। इसमें सभी को जाग्रत होना पड़ेगा। जिनके अन्दर परमधाम का अँकुर है, उन्हें श्रीमुखवाणी के वचनों का गम्भीरतापूर्वक चिन्तन-मनन करना पड़ेगा। हे साथ जी! आप जाग्रत होकर अपने प्रियतम से मिलन कीजिए, जिससे आपकी आत्मा को परमधाम के अनन्त और अखण्ड सुखों की अनुभूति हो

सके।

भावार्थ- वस्तुतः धनी के स्वरूप का दिल में विराजमान हो जाना ही जागनी है, किन्तु इस चौपाई में "जाग चलो पिउ सों मिलों" का भाव है- ज्ञान दृष्टि से जाग्रत होकर प्रेमपूर्वक युगल स्वरूप को दिल में बसाना। यहाँ जाग्रति का सम्बन्ध ज्ञान के प्रकाश में विवेक धारण करने से है कि मुझे लौकिक सुखों का मोह छोड़कर प्रियतम के प्रेम में स्वयं को डुबो देना चाहिए।

जाग्रत सब्द धनीय के, ततखिन करें मकसूद।

सोई सब्द लिए बिना, होए जात नाबूद॥२॥

अक्षरातीत के मुखारविन्द से निकली हुई इस ब्रह्मवाणी के शब्द भी जाग्रत हैं, जो मन की इच्छाओं को पूर्ण करते हैं। उन शब्दों को अन्तर्मन में न बसाने के कारण ही

अज्ञानता के अन्धकार में सुन्दरसाथ भटकते जा रहे हैं, अर्थात् ज्ञान दृष्टि से अपना अस्तित्व खोते जा रहे हैं। ब्रह्मवाणी के ज्ञान को आचरण में लाये बिना जागनी होना सम्भव नहीं है।

कई किताबें या बानियां, कही मैं साथ कारन।

इनमें से मैं मेरे सिर, लिया ना एक वचन॥३॥

सुन्दरसाथ की आत्मा को जाग्रत करने के लिए मैंने अनेक ग्रन्थों और मनीषियों की वाणी का ज्ञान दिया, किन्तु मैंने स्वयं इन ग्रन्थों की शिक्षाओं में से एक बात को भी आचरण में नहीं लिया।

भावार्थ- हादी का तात्पर्य ही होता है - हिदायत देने वाला, मार्गदर्शन करने वाला। यह कार्य ज्ञान को स्वयं आचरण में उतारे बिना सम्भव नहीं है। श्री महामति जी

को हादी की शोभा इसलिये प्राप्त है कि उन्होंने स्वयं आचरण करके ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम की राह पर चलना बताया। इस चौपाई में तथा ५वीं और ७वीं चौपाई में स्वयं को ज्ञान के आचरण में न उतारने की बात विनम्रता तथा निरभिमानिता को दर्शाने के लिये है।

ए जो जाग्रत वचन, सुपन रहे ना आगूं जाग।

पर लिया ना सिर अपने, तो रही सुपन देह लाग॥४॥

ब्रह्मवाणी के जाग्रत वचनों द्वारा जाग्रत हो जाने पर इस स्वप्नमयी संसार तथा शरीर का अस्तित्व नहीं रहता, लेकिन मैंने श्रीमुखवाणी के वचनों को व्यवहार में प्रयुक्त नहीं किया, इसलिये मैं अभी तक इस स्वप्नमयी शरीर के मोह-बन्धन में फँसी हुई हूँ।

भावार्थ— कितनी निरभिमानिता है महामति जी के धाम

हृदय में! अक्षरातीत की शोभा को धारण करके भी स्वयं की शक्ति का बखान नहीं करते, बल्कि यह कहते हैं कि मैं मायावी शरीर के मोह-बन्धन में हूँ। छठे दिन की लीला में यह सबके लिये सिखापन है। जाग्रत होने पर संसार और शरीर का अस्तित्व तो रहता है, किन्तु उसके प्रति मोह-बन्धन नहीं रहता।

अबहीं जो सिर लीजिए, एक वचन जाग्रत।

तो तबहीं जाग के बैठिए, उड़ जाए सुपन सुरत॥५॥

हे साथ जी! यदि आप इस समय श्रीमुखवाणी के जाग्रत वचनों में से एक वचन को भी अपने आचरण में उतार लें, तो आपकी सुरता इस स्वप्नमयी संसार से परे होकर परमधाम में विचरण करने लगेगी तथा आप यथार्थ रूप से जाग्रत हो जायेंगे।

भावार्थ- श्रीमुखवाणी के शब्दों को जाग्रत कहने का तात्पर्य यह है कि यह किसी विद्वान , सन्त, मनीषी, अवतार, या पैगम्बर की रचना न होकर सच्चिदानन्द परब्रह्म के आवेश से कही गयी है।

ए वचन ऐसे जाग्रत, जगावत ततखिन।

जो न लीजे सिर अपने, तो कहा करे वचन॥६॥

ब्रह्मवाणी के वचन इस प्रकार जाग्रत हैं कि हृदय में प्रवेश करते ही तुरन्त जाग्रत कर देते हैं, किन्तु यदि कोई ब्रह्मवाणी के वचनों को आचरण में ही न उतारे तो भला वचन क्या कर सकते हैं, अर्थात् इसमें वचनों का कोई दोष नहीं बल्कि ज्ञान को आचरण में न उतारने का दोष है।

मैं न लिया सिर अपने, तो कहा देऊँ दोष औरन।

जागे सुपना क्यों रहे, पर हुआ हाथ इजन॥७॥

जब मैंने स्वयं ही श्रीमुखवाणी के वचनों को आचरण में नहीं उतारा , तो अन्य सुन्दरसाथ को दोषी कैसे ठहराऊँ? यद्यपि जाग्रत हो जाने पर शरीर का अस्तित्व नहीं रहना चाहिए, किन्तु धनी के हुक्म ने ही इसे अब तक सुरक्षित रखा है।

जाग्रत वचन अनुभवें, अखंड घर वतन।

अचरज बड़ो होत है, देह उड़त ना झूठ सुपन॥८॥

श्रीमुखवाणी के जाग्रत वचनों से अपने अखण्ड परमधाम का अनुभव होने लगता है। इस बात पर मुझे बहुत ही आश्चर्य होता है कि इतनी अनुभूति के बाद भी सपने का यह झूठा तन क्यों नहीं छूट जाता।

भावार्थ- इस प्रकार की अभिव्यक्ति विरह और प्रेम की एक गहन अवस्था में ही होती है। ज्ञान से होने वाला अनुभव मानसिक और बौद्धिक स्तर पर ही होता है, किन्तु विरह और प्रेम (चितवनि) द्वारा होने वाला अनुभव आत्म-चक्षुओं से होता है और यही यथार्थ होता है।

साख देवाई सब अंगों, दया और अंकुर।

अनुभव वतनी होत है, देह होत ना झूठी दूर॥९॥

धाम धनी ने मेरे सभी अंगों (मन, चित्त, बुद्धि, तथा अहंकार) से यह साक्षी दिलवायी कि मेरे ऊपर उनकी पूर्ण कृपा है, तथा मेरे अन्दर परमधाम का अँकुर है अर्थात् मैं ब्रह्मसृष्टि (इन्द्रावती की आत्मा) हूँ। परमधाम का मुझे अनुभव भी होता रहा है, फिर भी यह झूठा तन

नहीं छूट रहा।

मैं विध विध करके वचनों, मारे तरवारों घाए।

टूक टूक जुदे करहीं, तो भी उड़त नहीं अरवाहे॥१०॥

जिस प्रकार तलवारों के प्रहार से शरीर के टुकड़े – टुकड़े हो जाते हैं, उसी प्रकार हृदय को टुकड़े-टुकड़े करने वाले अनेक प्रकार के मर्मभेदी वचनों से मैंने अपनी आत्मा को प्रबोधित किया, फिर भी धनी के प्रेम में डूबकर मेरी आत्मा शरीर को नहीं छोड़ पा रही है।

सब्द बान सतगुर के, रोम रोम निकसे फूट।

बड़ा अचंभा होत है, देह जात न झूठी टूट॥११॥

सद्गुरु के शब्द रूपी बाण मेरे शरीर के रोम-रोम से फूटकर निकल रहे हैं। मुझे इस बात का बड़ा आश्चर्य हो

रहा है कि फिर भी मेरा यह झूठा शरीर क्यों नहीं छूट रहा।

भावार्थ- शब्द रूपी बाणों से हृदय के टुकड़े-टुकड़े होने की प्रक्रिया दो रूपों में होती है। यदि शब्दों में मिठास का जादू है, तो अत्यधिक भाव-विह्वलता एवं प्रसन्नता के कारण हृदय और शरीर की स्थिति सामान्य अवस्था से भिन्न हो जाती है। इसी प्रकार यदि शब्दों में कटुता, घृणा, और रुखापन है, तो भी अत्यधिक दुःख के कारण हृदय और शरीर की अवस्था सामान्य से भिन्न हो जाती है। इन दोनों अवस्थाओं में हृदय टुकड़े-टुकड़े होता है, किन्तु अवस्था एक-दूसरे के विपरीत होती है। इस चौपाई में शरीर के रोम-रोम से अमृतमयी वचनों के बाणों के निकलने का आशय यह है कि श्री महामति जी के रोम-रोम में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के वचन

विराजमान थे, जो बार-बार यह प्रेरणा कर रहे थे कि "इन्द्रावती! अपने धनी को पाने के लिये तुम संसार की इच्छाओं का परित्याग कर दो।"

मैं जान्या अपने तन को, मारों भर भर बान।

तिनसे झूठी देह को, फना करों निदान॥१२॥

मैंने पहले यही सोचा था कि सद्गुरु के अमृतमयी वचनों के बाणों से अपने इस झूठे शरीर को टुकड़े-टुकड़े कर समाप्त कर दूँगी, अर्थात् धनी के प्रेम में अपने को पूर्ण रूप से न्योछावर कर दूँगी।

ए सब्द धनी फुरमान के, भी ले अनुभव आतम।

तिनसे उड़ाऊं सुपना, पर कोई साइत हाथ हुकम॥१३॥

श्रीमुखवाणी के ये शब्द, धाम धनी के आदेश से, मेरे

धाम-हृदय से अवतरित हुए हैं। मेरी आत्मा ने भी इस बात का अनुभव किया कि यदि मैं श्रीमुखवाणी को आत्मसात् कर धनी के प्रेम में स्वयं को न्योछावर कर दूँ तो धनी मिल जायेंगे, किन्तु यह शुभ घड़ी तो प्रियतम श्री राज जी के ही हाथ में है।

भावार्थ- जब श्री इन्द्रावती जी के अन्दर युगल स्वरूप विराजमान हुए, तभी से श्रीमुखवाणी का अवतरण प्रारम्भ हुआ। इस चौपाई में धनी को पाने के लिये प्रेम की राह पर स्वयं को समर्पित करने की जो बात कही गयी है, वह मात्र सुन्दरसाथ को सिखापन देने के लिये है।

अब तो आत्म ने ए दृढ़ किया, देह उड़े ना बिना इस्क।
जोस इस्क दोऊ मिलें, तब उड़े देह बेसक॥१४॥

अब तो मेरी आत्मा ने भी यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि धनी का इश्क आये बिना इस शरीर के अस्तित्व का आभास नहीं छूटेगा। जब धनी का जोश और इश्क आत्मा को मिलते हैं, तब शरीर की प्रतीति (अस्तित्व का अनुभव) और आसक्ति से निश्चय ही छुटकारा मिल जाता है।

भावार्थ- इस चौपाई में शरीर छूटने का भाव मृत्यु को प्राप्त होना नहीं है बल्कि जीते जी मरने से है , अर्थात् अध्यात्म की उस अवस्था में आ जाना है जिसमें ऐसा प्रतीत हो कि शरीर है ही नहीं।

दुख ना दीजे देह को, सुखे छोड़िए सरीर।

ए सिध इन विध होवहीं, जो जोस इस्क करे भीर॥१५॥

इसलिये प्रियतम को पाने के लिये हठयोग या कर्मकाण्ड

के साधनों से शरीर को कष्ट देने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। धनी का इश्क लेकर सुखपूर्वक शरीर के अस्तित्व को समाप्त कर देने का भाव लेना चाहिए। जब धनी का जोश और इश्क अपना प्रभाव दिखाते हैं, तब धनी का दीदार होना बहुत सरल हो जाता है।

अब दौड़े जोस इस्क को, याद कर साथ धनी धाम।

ए धनी बिना ना आवहीं, जोस इस्क प्रेम काम॥१६॥

अब सुन्दरसाथ के लिये यह अति आवश्यक है कि वे धाम धनी को याद करते हुए उनका जोश और इश्क पाने के लिये पूर्ण प्रयास करें। धनी के जोश तथा इश्क (अनन्य प्रेम) की इच्छा भी धनी की मेहर के बिना किसी के अन्दर नहीं आ सकती।

तामस राजस स्वांतस, चलें माहें गुन तीन।

वचन अनुभव इस्क, हुआ जाहेर आकीन॥१७॥

सुन्दरसाथ के जीव का लौकिक व्यवहार भी सत्व, रज, और तम, इन तीन गुणों से बँधा हुआ होता है। श्रीमुखवाणी के अमृतमयी वचनों तथा इश्क के अनुभव से ही सुन्दरसाथ का धनी के प्रति अटूट विश्वास (ईमान) इस संसार में जाहिर (प्रत्यक्ष) होता है।

भावार्थ- जिन सुन्दरसाथ में ब्रह्मवाणी के वचनों के प्रति अगाध आस्था होती है तथा धनी के प्रेम में भी डूबे रहते हैं, वे ही धनी के प्रति सच्ची निष्ठा (विश्वास) रखने वाले होते हैं।

हंसे खेले बिध तीन में, छोड़े देह सुपन।

महामत कहें सुख चैन में, धनी साथ मिलन॥१८॥

श्री महामति जी कहते हैं कि सुन्दरसाथ को इन तीनों गुणों के व्यवहार में हँसते-खेलते हुए इस नश्वर शरीर का मोह त्याग देना चाहिए। इस प्रकार अनन्य प्रेम-लक्षणा का मार्ग अपनाते हुए बहुत आराम से धाम धनी से मिलन हो जायेगा।

प्रकरण ॥८५॥ चौपाई ॥११९४॥

राग श्री

साथ जी जागिए, सुनके सब्द आखिर।

सकल आउध अंग साज के, दौड़ मिलिए धनी निज घर॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी !
ब्रह्मवाणी के शब्दों को सुनकर आप जाग्रत हो जाइए।
अपने हृदय में इश्क, ईमान, शुक्र (कृतज्ञता), गरीबी
(विनम्रता), और सन्तोष आदि हथियारों को धारण कर
दौड़ते हुए परमधाम में अपने प्रियतम से मिलन कीजिए।

भावार्थ- श्रीमुखवाणी को आखिरत (अन्तिम समय)
की वाणी इसलिये कहते हैं कि इसके ज्ञान को
आत्मसात् कर लेने के पश्चात् सम्पूर्ण संसार का
महाप्रलय हो जायेगा तथा सभी को अखण्ड मुक्ति की
प्राप्ति हो जायेगी।

धनी के केहेलाए मैं कहे, तुमको चार सब्द।

किन ज्यादा किन कम लिए, किन कर डारे रद।।२।।

हे साथ जी! आपकी आत्मा को जाग्रत करने के लिये धाम धनी ने मेरे तन से इस श्रीमुखवाणी (चार वचन) का अवतरण कराया है। इस ब्रह्मवाणी के वचनों को किसी ने कुछ ज्यादा ग्रहण किया, तो किसी ने कम ग्रहण किया। कुछ ऐसे भी बदनसीब थे, जिन्होंने इस ब्रह्मवाणी को मानने से ही स्पष्ट रूप से मना कर दिया।

भावार्थ- "चार सब्द" की भाषा आलंकारिक है। यह उस प्रसंग में प्रयुक्त हुआ है, जब किसी अधिक वस्तु को अति अल्प करके व्यक्त किया जाये। १८७५८ चौपाइयों वाले श्री कुलजम स्वरूप को "चार सब्द" से सम्बोधित करना यही दर्शाता है।

किन कम किन ज्यादा जीतिया, कोई हाथ पटक चल्या हार।
साथ जी यों बाजी मिने, कोई जीत्या बेसुमार॥३॥

हे साथ जी! यह जागनी ब्रह्माण्ड एक प्रकार की बाजी है, जिसमें माया से कदम-कदम पर आपका युद्ध होना है। इस खेल में माया पर किसी ने थोड़ी, तो किसी ने ज्यादा विजय प्राप्त की। कोई माया से हारकर इस संसार से चलते (शरीर छोड़ते) समय हाथ पटकता रह गया। इस प्रकार इस खेल में किसी-किसी ने सीमा से भी अधिक विजय प्राप्त की।

अब सो समया आए पोहोंचिया, मेरे तो लेना सिर।

धनिएं बानी करता मुझे किया, सो मैं मुख फेरों क्यों कर॥४॥

अब श्रीमुखवाणी के वचनों को शिरोधार्य करने का सुनहरा अवसर आ गया है। धाम धनी ने मेरे ही तन से

इस ब्रह्मवाणी का अवतरण कराया है, इसलिये मुझे तो इसके वचनों को सिर पर चढ़ाना ही होगा। मैं किसी भी स्थिति में इस वाणी से मुख नहीं फेर सकती।

कोई सिर ल्यो तो लीजियो, धनिएं केहेलाए साथ कारन।

न तो मेरे सिर जरूर है, एही सब्द बल वतन॥५॥

धाम धनी ने सुन्दरसाथ के लिये ही इस ब्रह्मवाणी को संसार में अवतरित किया है। इसलिये यदि कोई इसे आत्मसात् करता है (दिल में बसाता है) तो बहुत अच्छा है, उसे अवश्य यह परम पुनीत कार्य करना चाहिए। अन्यथा मैं तो इस ब्रह्मवाणी को अपने दिल और आचरण में अवश्य ही बसाऊँगा। ब्रह्मवाणी के शब्द ही तो परमधाम की शक्ति है, अर्थात् इस अज्ञानमयी संसार में श्रीमुखवाणी के शब्दों से ही हृदय-पटल पर परमधाम

का दृश्य अंकित हो जाता है।

ए नीके मैं जानत हों, करी है तुम पेहेचान।

तुममें विरला कोई पीछे पड़े, आखिर ल्योगे सिर निदान॥६॥

मैं इस बात को बहुत अच्छी तरह से जानता हूँ कि आपने भी "श्रीमुखवाणी" की महत्ता को पूरी तरह से पहचान लिया है। मुझे इस बात का दृढ़ विश्वास है कि आपमें से शायद ही कोई विरला होगा जो इसको आत्मसात् करने में पीछे रहेगा, अर्थात् प्रत्येक ब्रह्मसृष्टि इसे अच्छी तरह शिरोधार्य करेगी। कदाचित् कोई पीछे रह भी जाये, तो उसे अपनी आत्म-जाग्रति के लिये अवश्य ही ब्रह्मवाणी की शरण लेनी पड़ेगी।

मेरे तो आगूं होवना, धनिएं दिया सिर भार।

समझ सको सो समझियो, कर आतम अंतर विचार॥७॥

धाम धनी ने इस महान कार्य का उत्तरदायित्व मेरे सिर पर दिया है, इसलिये मुझे तो अग्रणी होना ही पड़ेगा। हे साथ जी! आप अपनी अन्तरात्मा में विचार कर लीजिएगा तथा इस बात को यदि समझ सकते हैं तो समझ भी लीजिएगा।

भावार्थ— इस प्रकरण में जिस मुख्य कार्य के लिये बार-बार संकेत किया जा रहा है, वह है श्रीमुखवाणी के ज्ञान को हृदय में धारण करना तथा प्रेम में डूबकर अपनी आत्म-जाग्रति करना।

अब मैं दिल विचारिया, लिया ना सिर सब्द।

तो झूठी देह लग रही, जो बांधी माहें हद॥८॥

मैंने अपने दिल में विचार किया कि मैंने तो अब तक श्रीमुखवाणी के वचनों को यथार्थ रूप में अपने जीवन में उतारा ही नहीं। यही कारण है कि मेरी आत्मा इस नश्वर जगत के झूठे तन के बन्धन में पड़ी रही।

भावार्थ- हृद के झूठे शरीर से बँधे रहने का तात्पर्य है— शरीर के सुखों को ही सब कुछ समझकर उनके पीछे भागते रहना तथा परमधाम के शाश्वत आनन्द को मात्र कल्पना समझना।

एक शब्द जो जाग्रत, अंतर आत्म चुभाए।

तो ए देह झूठी सुपन की, तबहीं देवे उड़ाए॥९॥

ब्रह्मवाणी श्री कुलजम स्वरूप के शब्द जाग्रत हैं। यदि इसका एक शब्द भी आत्मा के अन्दर चुभ जाये, तो सपने का यह झूठा शरीर समाप्त हो जायेगा अर्थात्

निरर्थक व अस्तित्व-विहीन लगने लगेगा।

आगूं जाग्रत वचन के, क्यों रहे देह सुपन।

मोहे अचरज आगूं सांच के, देह झूठी राखी किन॥१०॥

ब्रह्मवाणी के जाग्रत वचनों से बोध प्राप्त हो जाने पर भला यह सपने का शरीर कैसे रह सकता है। मुझे इस बात पर बहुत आश्चर्य हो रहा है कि उस शाश्वत सत्य परमधाम का साक्षात्कार हो जाने के बाद किसी ने भी अब तक अपने झूठे तन को रखना नहीं चाहा है, किन्तु मैं कैसे रख पा रहा हूँ।

ए भी फेर विचारिया, सांच आगे न रहे अनित।

एह बल हुकम के, देह सुपन रही इत ॥११॥

फिर मैंने इस बात पर भी विचार किया कि सत्य

(परमधाम) के समक्ष भला यह झूठा शरीर कैसे रह सकता है। इसका उत्तर यह निकला कि धनी के हुक्म से ही यह शरीर खड़ा है।

सोई हुक्म आए पोहोंचिया, जो करी थी सरत।

सब्द भी सिर पर लिए, आया वतन बल जाग्रत॥१२॥

धाम धनी ने जो वायदा किया था, उसके अनुसार उनका हुक्म भी आ गया है। हमने श्रीमुखवाणी के वचनों को भी आत्मसात् किया है। अब हमारे दिल में जाग्रत बुद्धि के ज्ञान की शक्ति भी विराजमान है।

भावार्थ- यहाँ जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि कौन सा हुक्म आया? यहाँ अरब वाले हुक्म के स्वरूप का प्रसंग है या हुक्म नाम की कोई अलग शक्ति है?

सनन्ध ग्रन्थ में कहा गया है – "बांधे आप हुक्म के,

काजी हुए इत आए।" इससे यह स्पष्ट होता है कि अपने दिल की इच्छा से बँधकर धाम धनी सबके काजी (न्यायाधीश) के रूप में आये, अर्थात् धनी की इच्छा ही उनका "हुक्म" है। इस प्रकार इस जागनी ब्रह्माण्ड में धनी का आवेश ही "हुक्म" के रूप में लीला कर रहा है।

अब हुक्म धनीय के, सब्द बिध दई पोहोंचाए।

चेत सको सो चेतियो, लीजो आतम जगाए॥१३॥

अब धनी के हुक्म से आप तक हर तरह से यह अलौकिक ज्ञान पहुँचा दिया गया है। हे सुन्दरसाथ जी! अब भी समय है। यदि आप माया से सावधान हो सकते हैं तो हो जाइए और अपनी आत्मा को जाग्रत कर लीजिए।

अब भली बुरी इन दुनीय की, ए जिन लेओ चित ल्याए।

सुरत पकी करो धाम की, परआतम धनी मिलाए॥१४॥

कोई भी व्यक्ति आपके साथ या दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार कर रहा है या बुरा, इसको अपने चित्त में जरा भी न बसाइये। अपनी सुरता को माया से हटाकर परमधाम में युगल स्वरूप तथा अपनी परात्म (परात्म) की ओर लगाए रखिए।

दुख सुख डारो आग में, ए जो झूठी माया के।

पिंड ना देखो ब्रह्मांड, राखो धाम धनी सुरत जे॥१५॥

इस झूठे मायावी जगत् में आपने सुख या दुःख जो कुछ भी भोगा है, उसे आग में डाल दीजिए अर्थात् पूर्ण रूप से भुला दीजिए। न तो शरीर की ओर ध्यान दीजिए और न इस संसार की ओर। अपनी सुरता मात्र श्री राज जी की

ओर बनाए रखिए।

भावार्थ- ब्राह्मी अवस्था प्राप्त करने के लिये अपने हृदय में मात्र युगल स्वरूप को ही बसाना होगा। इसके लिये आवश्यक है कि हम दूसरों के दोषों तथा सांसारिक सुख-दुःख को पूर्णतया भुला दें। चित्त में बुरे संस्कारों के बस जाने पर प्रेम की प्राप्ति नहीं हो सकती।

कोई देत कसाला तुमको, तुम भला चाहियो तिन।

सरत धाम की न छोड़ियो, सुरत पीछे फिराओ जिन॥१६॥

यदि आपको कोई कष्ट भी देता है, तो भी आप उसका कुछ बुरा न कीजिए, बल्कि हमेशा उसकी भलाई करने की इच्छा कीजिए। अपनी सुरता को माया में नहीं फँसने देना तथा परमधाम में दूसरों को जगाने के लिए किये हुए अपने वायदे को कभी भी नहीं भूलना।

जो कोई होवे ब्रह्मसृष्ट का, सो लीजो वचन ए मान।

अपने पोहोरे जागियो, समया पोहोंच्या आन॥१७॥

जो भी ब्रह्मसृष्टि हो, वह मेरी बात को स्वीकार करे कि अब जागनी का समय आ चुका है, इसलिये इस उचित अवसर पर प्रत्येक सुन्दरसाथ जाग्रत हो जाये।

सूता होए सो जागियो, जाग्या सो बैठा होए।

बैठा ठाढ़ा होइयो, ठाढ़ा पांऊ भरे आगे सोए॥१८॥

सोया हुआ सुन्दरसाथ जाग्रत हो जाये। जाग्रत हुआ सुन्दरसाथ उठकर बैठ जाये। बैठा हुआ खड़ा हो जाये तथा खड़ा हुआ धनी की ओर अपने प्रेम के कदम तेजी से बढ़ाये।

भावार्थ- इस चौपाई में ज्ञान दृष्टि से जागने का वर्णन है। ब्रह्मवाणी का प्रकाश मिलने से पूर्व आत्मा अज्ञानता

की नींद में सो रही थी। ज्ञान का प्रकाश मिलते ही वह उठकर बैठ गयी। ईमान के सहारे वह खड़ी हो गयी तथा प्रेम का बल पाकर धनी का दीदार पाने के लिये दौड़ पड़ी। ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण में इन अवस्थाओं को क्रमशः कलियुग, द्वापर, त्रेता, तथा सतयुग कहा गया है।

यों तैयारी कीजियो, आगूं करनी है दौड़।

सब अंग इस्क लेय के, निकसो ब्रह्मांड फोड़॥१९॥

हे सुन्दरसाथ जी! इस प्रकार आत्मा को जाग्रत करने के लिये ज्ञान, ईमान, विरह, तथा प्रेम का आधार लेकर अपनी तैयारी करनी पड़ेगी। भविष्य में जाग्रति के लिये दौड़ लगानी है, अर्थात् अति तीव्र गति से स्वयं को करनी और रहनी के साँचे में ढालना है। हमें अपने सभी अंगों में धनी का इश्क लेना होगा तथा मायावी ब्रह्माण्ड

को छोड़कर परमधाम की ओर ध्यान करना होगा।

महामत कहें मेरे साथ जी, लीजो आखिर के वचन।

हुकम सरत पोहोंची दया, कछू अंग अपने करो रोसन॥२०॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरे सुन्दरसाथ जी! धनी द्वारा मेरे तन से कहलाए हुए वचनों को अपने मन में धारण कीजिए। अपने वायदे के अनुसार स्वयं धाम धनी अपने आवेश द्वारा "हुकम" की लीला कर रहे हैं। सब सुन्दरसाथ पर उनकी मेहर भी बरस रही है। ऐसी स्थिति में आप अपने हृदय में कुछ तो जागनी का प्रकाश भरिए।

प्रकरण ॥८६॥ चौपाई ॥१२१४॥

राग श्री

इस प्रकरण में परमधाम की चितवनि (ध्यान) के लिये सुन्दरसाथ को प्रेरित किया गया है।

आग परो तिन कायरों, जो धाम की राह न लेत।

सरफा करे जो सिर का, और सकुचे जीव देत॥१॥

जो परमधाम की राह पर नहीं चलते और सिर को झुकाने में कन्जूसी करते हैं, अर्थात् मैं-खुदी को पूर्ण रूप से छोड़ना नहीं चाहते (धनी के प्रेम में जीव को न्योछावर करने में संकोच करते हैं), वे कायर हैं और ऐसे व्यक्तियों को अग्नि में कूद पड़ना चाहिए।

भावार्थ- आग में कूद पड़ना या जल मरना एक मुहावरा है, जो बहुत फटकार की भाषा में ही प्रयोग किया जाता है। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि इसमें

सचमुच ही जल मरने की बात कही गयी है। इस कथन का आशय यह है कि जो धाम की राह पर नहीं चल रहे हैं, उनके लिये बहुत अधिक धिक्कार है। परमधाम के पच्चीस पक्ष तथा युगल स्वरूप की शोभा-शृंगार का ज्ञान प्राप्त करना और उसका ध्यान करना ही परमधाम की राह अपनाना है। मैं-खुदी के त्याग से ही प्रेम की रसधारा बहती है और धनी का दीदार होता है।

पाइयत झूठ के बदले, सत सुख अखण्ड।

सो देख पीछे क्यों होवहीं, करते कुरबानी पिंड॥२॥

मायावी सुखों का मोह छोड़ने पर परमधाम के अखण्ड सुखों की प्राप्ति होती है। यह सब जानते हुए भी आप अपने शरीर को धनी पर न्योछावर करने में पीछे क्यों हटते हैं।

भावार्थ- धनी पर शरीर को न्योछावर करने का अर्थ है- ब्रह्मवाणी का ज्ञान प्राप्त करना, तथा सेवा एवं चितवनि में होने वाले कष्टों की परवाह न करना। जो स्थिरतापूर्वक सुख से बैठकर ध्यान भी नहीं कर सकता, उसे प्रियतम से मिलन की कल्पना नहीं करनी चाहिए।

इन विध कहे संसार में, धनी रंचक दिलासा दे।

टूक टूक होए जाए फना, सब अंग आसिक के॥३॥

संसार में इस प्रकार की बात कही जाती है कि यदि माशूक इश्क का थोड़ा सा भी इशारा कर देता है, तो आशिक अपने अंग-अंग को टुकड़े-टुकड़े (सर्वस्व समर्पण) करके माशूक पर न्योछावर कर देता है।

धनिएं दर्ई दिलासा मुझको, कई पदमों लाख करोड़।

तब आतम ने यों कहा, परआतम धनी संग जोड़॥४॥

धाम धनी ने मुझे लाखों, करोड़ों, और पद्मों बार प्रेम का आश्वासन दिया। इसके पश्चात् मेरी अन्तरात्मा से यह आवाज आयी कि हे इन्द्रावती! अब तुम अपनी आत्मा को अपने मूल तन (परआत्म) तथा श्री राज जी से जोड़ो।

भावार्थ- परआत्म को धनी के साथ जोड़ने की बात अनुचित है, क्योंकि दोनों उस वाहिदत में हैं, जहाँ सर्वदा जाग्रत अवस्था रहती है। आत्मा इस फरामोशी (मोह, अज्ञान) के ब्रह्माण्ड में है। ज्ञान और प्रेम का आधार लेकर उसे ही अपने मूल तन तथा युगल स्वरूप से जुड़ना होगा।

देख दिलासा धनीय की, भी साख दई सबन।

मांहें बाहेर अंतर मिने, सब अंग किए रोसन॥५॥

धाम धनी द्वारा प्रेम का आश्वासन मिल जाने पर अन्य सभी धर्मग्रन्थों ने भी साक्षी दे दी। इस प्रकार पिण्ड (मांहे), ब्रह्माण्ड (बाहर), बेहद, और परमधाम (अन्तर) से सम्बन्धित सारी बातें मेरे सम्पूर्ण हृदय में प्रकाशित हो गयीं।

तूं पूछ मन चित बुध को, और गुन अंग इन्द्री पख।

देख तत्व सब सास्त्रों का, फेर फेर नीके लख॥६॥

हे मेरी आत्मा! तुम अपने मन, चित्त, बुद्धि, गुण, अंगों, इन्द्रियों, तथा पक्षों (जाग्रत, स्वप्न, एवं सुषुप्ति) से अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत तथा अपनी जागनी के सन्दर्भ में पूछो। तुम सभी शास्त्रों का सार ग्रहण करो।

पुनः धनी की अच्छी तरह से पहचान करो।

भावार्थ- इस चौपाई में अंग का तात्पर्य अन्तःकरण से नहीं, बल्कि शरीर के अंगों से है।

तूं बल कर कछू अपना, चल राह तामसी सूर।

ब्रह्मसृष्ट निकसी बृज से, देख क्यों कर पोहोंची हजूर॥७॥

हे मेरी आत्मा! अपने प्रियतम को पाने के लिये कुछ तो बल कर। इस प्रेम के मार्ग पर व्रज की बहादुर तामसी सखी की तरह चल। इस बात को तुम अच्छी तरह देख लो कि व्रज में ब्रह्मसृष्टि किस तरह माया छोड़कर निकली और अपने धनी से मिली।

भावार्थ- तामसी सखी का तात्पर्य क्रोधी स्वभाव नहीं, बल्कि धनी के प्रेम में इतना डूब जाना कि उसे शरीर या संसार की कोई भी चिन्ता न रह जाये।

कर कबीला पार का, अंकूर बल सूर धीर।

एक धनी नजर में लेय के, उड़ाए दे सरीर॥८॥

तू निराकार-बेहद से परे परमधाम के सुन्दरसाथ को ही अपना परिवार समझ। सुन्दरसाथ में ही परमधाम का मूल अंकूर है, प्रेम का बल है, और समर्पण की राह पर चलने का सूरधीरपना (धैर्य युक्त बहादुरी के गुण का भाव) है। अपनी आत्मिक दृष्टि में मात्र धनी को ही बसाओ और इस शरीर के अस्तित्व के भाव को बिल्कुल छोड़ दो।

भावार्थ- "उड़ाए दे सरीर" का भाव यह कभी भी नहीं समझना चाहिए कि इसमें शरीर को छोड़ने के लिये कहा गया है। प्रेम के नाम पर जानबूझकर शरीर छोड़ना तो आत्महत्या का मार्ग होगा, जो प्रत्येक ग्रन्थ की दृष्टि में निन्दनीय कर्म है। वस्तुतः इस कथन का मूल भाव यह है

कि प्रियतम के प्रेम में इस प्रकार खो जाना कि जीवित ही मृत्यु जैसी अवस्था हो जाये, अर्थात् यह प्रतीत ही न हो कि मेरा कोई शरीर भी है। इस अवस्था में शरीर के भोजन, वस्त्र, स्नान, शयन आदि का विचार भी नहीं आता।

पूछ नीके अपने धनी को, भी नीके देख तारतम।

नीके देख फुरमान को, भी पूछ नीके आत्म॥९॥

हे मेरी आत्मा! तू श्रीमुखवाणी का गहराई से चिन्तन करके अपने धनी की पहचान कर (अच्छी तरह जानकारी कर)। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत् तथा कुरआन (फुरमान) का चिन्तन करके अपनी अन्तरात्मा से भी जागनी के सन्दर्भ में पूछो।

भी पूछ संगी तूं अपने, जो हुए पिंडथे दूर।

कई साखें अजूं ले खड़ी, देख रोसन अपना नूर॥१०॥

तुम परमधाम के अपने उन साथियों से भी पूछ, जो धनी के प्रेम में शरीर के मोह से अलग हो चुके हैं। मेरी आत्मा! तू इतनी साक्षियाँ लेकर भी इस संसार में क्यों फँसी पड़ी है? तुम जरा अपने मूल तन के नूरी प्रकाश को तो देखो।

एती साखें लेय के, कहा लगत झूठे अंग।

अजूं न लगे तोकों धाम को, सांचो सनमंध संग॥११॥

हे मेरी आत्मा! इतनी साक्षियाँ लेने के पश्चात् भी तू किस झूठे शरीर के मोह में पड़ी हुई है। ऐसा लगता है कि तुझे अब तक परमधाम के अखण्ड सम्बन्ध की पहचान ही नहीं है।

सास्त्र संगी सब यों कहें, विचार देख महामत।

जैसी होए हिरदे मिने, तैसी पाइए गत॥१२॥

श्री महामति जी अपनी आत्मा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे मेरी आत्मा! तुम इस बात पर अच्छी तरह से विचार कर लो। सभी शास्त्रों तथा परमधाम के साथियों का यही कहना है कि जिसके हृदय में जैसी भावना होती है, उसको वैसा ही फल प्राप्त होता है।

महामत कहे पीछे न देखिए, नहीं किसी की परवाहे।

एक धाम हिरदे में लेय के, उड़ाए दे अरवाहे॥१३॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! अपनी आत्मा की जागनी के कार्य में पीछे मुड़कर न देखिए, अर्थात् अन्य सांसारिक उलझनों में स्वयं को न फँसाइये। निन्दा-स्तुति करने वाले किसी व्यक्ति की जरा

भी चिन्ता न कीजिए। अपने धाम हृदय में परमधाम को बसाकर धनी के प्रेम में अपनी आत्मा को न्योछावर कर दीजिए।

प्रकरण ॥८७॥ चौपाई ॥१२२७॥

राग श्री

प्रकरण ८८, ८९, ९२, और ९३ में धाम चलने का प्रसंग है, जिसका सामान्य अर्थ "देह त्यागकर धनी के चरणों में पहुँचने से लगाया जाता है।" वास्तविकता यह है कि इन सभी प्रकरणों में अपनी सुरता द्वारा परमधाम की चितवनि करके दर्शन करने का प्रसंग है। विक्रम सम्वत् १७४८ में "मारिफत सागर" ग्रन्थ अवतरित हो गया। उसके पश्चात् कोई भी ग्रन्थ नहीं उतरा। श्री महामति जी विक्रम सम्वत् १७४८-१७५१ तक गुम्मट मन्दिर के ईशान कोण वाली गुमटी में ध्यानावस्थित रहे। उस समय चितवनि की महत्ता का प्रतिपादन करने वाले यह कीर्तन उतरे। जब सम्पूर्ण वाणी श्री महामति जी के धाम हृदय से ही उतरी है, तो उनके ही तन से धामगमन से सम्बन्धित कीर्तन कैसे उतर सकते हैं। इन प्रकरणों

के अवतरण का यही उद्देश्य है कि जिस प्रकार सबसे बड़ी शोभा पाकर भी श्री महामति जी अपनी लीला के आखिरी तीन वर्षों में चितवनि में संलग्न रहे , उसी प्रकार छठें दिन की लीला में सुन्दरसाथ को भी चाहिए कि वे चितवनि को अपने जीवन का अभिन्न अंग बनायें।

सैयां हम धाम चले॥ टेक ॥

जो आओ सो आइयो, पीछे रहे ना एक खिन।

हम पीठ दर्ई संसार को, जाए सुरत लगी वतन॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! अब मेरी सुरता ध्यान (चितवनि) द्वारा परमधाम की ओर चल रही है। जिसको भी मेरी राह पर चलना है, वह मेरा अनुकरण करे। अब मैं चितवनि के इस कार्य में एक पल की भी देरी नहीं कर सकता। हमने अपना ध्यान संसार

से हटा लिया है और अब मेरी आत्मा अपने निज घर का दीदार कर रही है।

सुध महूरत ले कूच किया, साइत देखी अति सारी।

अब दौड़ सको सो दौड़ियो, न रहे दौड़ पकड़ी हमारी॥२॥

मैंने सही समय और बहुत अच्छा अवसर देखकर ही इस संसार से अपनी सुरता को परमधाम की ओर मोड़ा है। अब आप मेरी चितवनि की राह पर तेजी से दौड़ (अनुकरण कर) सकते हैं तो दौड़िए। अब मेरी दौड़ को कोई भी पकड़ नहीं सकता है, अर्थात् मेरी चितवनि की राह में कोई भी बाधायें नहीं खड़ा कर सकता।

कोई दिन राह देखी साथ की, पीछे नजर फिराए।

पोहोंचे दिन आए आखिर, अब हम रह्यो न जाए॥३॥

कुछ दिन तक तो मैंने इस बात की प्रतीक्षा की कि सुन्दरसाथ परमधाम की चितवनि में स्वयं को लगा दे। इसके पश्चात् मैंने परमधाम की ओर अपना ध्यान केन्द्रित कर दिया। अब आखिरत का समय आ गया है, अर्थात् तारतम ज्ञान का प्रकाश फैलने के पश्चात् संसार के लिये अन्तिम समय है। ऐसी स्थिति में परमधाम तथा युगल स्वरूप के विरह-प्रेम के अतिरिक्त मुझे इस संसार में रहना जरा भी अच्छा नहीं लगता है।

हम संग चलो सो ढील जिन करो, छोड़ो आस संसार।

सुरत हमारी कछू ना रही, हम छोड़ी आस आकार॥४॥

हमारे साथ जो भी सुन्दरसाथ परमधाम की राह पर चलना चाहते हैं, उन्हें चितवनि में जरा भी ढिलाई नहीं करनी चाहिए। अनावश्यक सम्पूर्ण सांसारिक इच्छाओं

का परित्याग कर दीजिए। इस संसार में तो मेरा जरा भी ध्यान नहीं रह गया है। मैंने तो अपने शरीर की भी चिन्ता छोड़ दी है।

नेक बसे हम बृज में, नेक बसे रास मांहें।

अब तो धाम आइया, तब तो आंखे खुल जाए॥५॥

ब्रज में हम थोड़े समय (११ वर्ष ५२ दिन) तक रहे। उसके पश्चात् रास में थोड़े समय (एक रात्रि) तक हमने लीला की। इस जागनी ब्रह्माण्ड में तो श्रीमुखवाणी के माध्यम से परमधाम का ज्ञान हो चुका है, जो ब्रज और रास में नहीं था। इस समय अपनी आत्म-जाग्रति के लिये सबको सावधान हो जाना चाहिए, अर्थात् युगल स्वरूप और पच्चीस पक्षों के ध्यान में डूब जाना चाहिए।

साथ चले जो ना चलिया, ताए लगसी आग दोजख।

तलफ तलफ जीव जाएसी, जिन जानों यामें सक॥६॥

कुछ सुन्दरसाथ तो मेरे साथ चल रहे हैं अर्थात् मेरी तरह युगल स्वरूप एवं परमधाम के ध्यान में मग्न हैं , किन्तु जो इस राह को नहीं अपनायेगा (चितवनि नहीं करेगा) उसे प्रायश्चित (दोजख) की अग्नि में जलना पड़ेगा। उसे मायावी दुःखों में तड़प –तड़पकर अपना शरीर छोड़ना पड़ेगा। इस बात में कोई जरा भी संशय न करे।

भावार्थ- इस चौपाई से उन सुन्दरसाथ को सबक सीखना चाहिए, जो या तो चितवनि का विरोध करते हैं, या न करने के तरह-तरह के बहाने गढ़ा करते हैं।

पीछे अटकाव न राखो रंचक, जो आओ संग हम।

तुम जानोगे वह नेक है, पर जरा होसी जुलम॥७॥

यदि आप मेरे साथ आते हैं, तो माया का कोई भी आकर्षण अपने मन में न रखना। आपको बाह्य रूप से तो यही लगता है कि यह माया बहुत अच्छी है, किन्तु इसके प्रति जरा सा भी आकर्षण आत्मिक सुख के लिये घातक होता है।

जो न आवे सो जुदा होइयो, ना तो होसी बड़ी जलन।

हम तो चले धाम को, तुम रहियो माहें करन॥८॥

जो मेरे साथ परमधाम की चितवनि की राह पर नहीं चल सकता, वह मुझसे अलग हो जाये। सुन्दरसाथ की जमात में रहकर भी जो ध्यान की मेरी राह नहीं अपनाता है, वह एक प्रकार से दोरंगी चाल चल रहा होता है। ऐसे

व्यक्ति को बहुत अधिक पश्चाताप की अग्नि में जलना पड़ेगा। मैं तो अब मात्र परमधाम की चितवनि में ही तल्लीन हूँ। तुम अपनी झूठी माया में मस्त रहो।

भावार्थ- इस चौपाई में चितवनि करने के लिये कितना कठोर आदेश है कि जो चितवनि नहीं कर सकता, वह मुझसे अलग हो जाये। जो सुन्दरसाथ धाम चलने के प्रकरणों को देह त्याग के प्रसंग मानते हैं, उन्हें इस विषय पर गहनता से विचार करना चाहिए कि "जिन जुबां मैं दुख कहूँ, सो जुबां करुं सत टूक" (कलस हिंदुस्तानी) का उद्धोष करने वाले श्री महामति जी सुन्दरसाथ को तन छोड़ने के लिये इस प्रकार दबाव से (जबरन) क्यों प्रेरित करेंगे।

हम छोड़े सुख सुपन के, आए नजरों सुख अखंड।

विरहा उपज्या धाम का, पीछे हो गई आग ब्रह्मांड॥९॥

मैंने संसार के झूठे सुखों को छोड़ दिया है। मुझे परमधाम के अखण्ड सुखों का अनुभव भी हो रहा है। अब मुझे परमधाम का विरह सता रहा है। इस विरह के कारण ही यह सम्पूर्ण संसार मेरे लिये अग्नि की लपटों के समान कष्टदायी प्रतीत हो रहा है।

भावार्थ— छठें दिन की लीला में सब सुन्दरसाथ को परमधाम की चितवनि की ओर ले जाने के उद्देश्य से ही महामति जी की ओर से ऐसी बात कही जा रही है कि मुझे परमधाम के सुखों का अनुभव हो रहा है तथा मुझे धाम का विरह सता रहा है। उनके धाम हृदय में तो युगल स्वरूप विराजमान ही थे, फिर विरह, दर्शन, और आनन्द की बात मात्र लीला रूप में दूसरों को सिखापन

देने के लिये है।

मैं आग देऊं तिन सुख को, जो आड़ी करे जाते धाम।

मैं पिंड न देखूं ब्रह्मांड, मेरे हिरदे बसे स्यामा स्याम॥१०॥

परमधाम की चितवनि की राह में माया के जो भी सुख बाधा डालेंगे, उन्हें मैं जड़-मूल से नष्ट कर दूँगी। अब तो मेरे धाम हृदय में युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी बस चुके हैं। अब न तो मुझे शरीर और न ही संसार दिखायी देता है।

कई किताबें करी साथ कारने, सो भी गाई जगावन।

ए सुन के जो न दौड़िया, जिमी ताबा होसी तिन॥११॥

सुन्दरसाथ को जाग्रत करने के लिये धनी ने मेरे तन से अनेक ग्रन्थों का अवतरण कराया। इस ब्रह्मवाणी की

आवाज को सुनकर जो धनी के प्रेम में दौड़ नहीं लगायेगा, उसके लिये यह धरती तपाये हुए तवे के रंग के समान हो जायेगी अर्थात् उसे प्रायश्चित के दुःख से गुजरना पड़ेगा।

कई लोभें लिए लज्जा लिए, कई लिए अहंकार।

यों छलें पीछे कई पटके, जो केहेते हम सिरदार॥१२॥

सुन्दरसाथ की जमात में बहुत से सुन्दरसाथ ऐसे भी हैं जिनका यह दावा है कि वे सबमें सरदार (ब्रह्मसृष्टि) हैं, किन्तु मायावी सुखों का लोभ उनसे छूटता नहीं। किसी से ज्ञान ग्रहण करने, सेवा करने, और चितवनि करने में उन्हें लज्जा लगती है। अपने कुल, रूप, और विद्या के अहंकार में मग्न रहते हैं। इस प्रकार माया ने उन्हें अज्ञानता के अन्धकार में पटक (फँसा) रखा है।

विखे स्वाद जिन लग्यो, सो लिए इंद्रियों घेर।

जो एक साइत साथ आगे चल्या, पीछे पड़े माहें करन अंधेर॥१३॥

विषयों का स्वाद जिनको लग जाता है, वे इंद्रियों के अधीन हो जाते हैं। विषयों में फँसकर यदि कोई व्यक्ति एक पल के लिये धनी के प्रेम की राह पर आगे चलता भी है, तो बाद में माया के गहन अन्धकार में डूब जाता है।

गुन अवगुन सबके माफ किए, जो रहो या चलो हम संग।

हम पीछे फेर ना देखहीं, पिउसों करें रस रंग॥१४॥

सबके गुणों और अवगुणों को मैंने क्षमा कर दिया है। अब जिसकी इच्छा माया में फँसे रहने की हो, वह फँसा रहे, तथा जो मेरे साथ परमधाम की राह अपनाना चाहे, वह मेरे साथ चले अर्थात् चितवनि में डूब जाये। हमें तो

अब वापस माया की ओर जरा भी नहीं देखना है। अब तो हम ध्यान में डूबकर अपने प्रियतम से आनन्द का रसपान करते रहते हैं।

भावार्थ- अवगुणों को क्षमा करने की बात तो चला करती है, किन्तु इस चौपाई में गुणों को भी क्षमा करने की बात क्यों की गयी है, यह गहन रहस्य की बात है?

विद्वता मनुष्य का श्रेष्ठ गुण है, किन्तु यदि उसके कारण अहम् भावना में वृद्धि होती है, तो ऐसी विद्वता अहम् रूपी विकार का कारण है। इसी प्रकार कोई पूरी निष्ठा से सेवा तो करता है, किन्तु प्रेम के सच्चे रस से दूर होने के कारण वह दूसरों पर जबरन अपने विचारों को थोपने का प्रयास करता है। इस प्रकार सेवा-भावना गुण होते हुए भी अवगुण (आलस्य, लापरवाही) का कारण बन जाती है।

साथ होवे जो धाम को, सो भूले नहीं अवसर।

सनमंधी जब उठ चले, तब पीछे रहे क्यों कर॥१५॥

जो सुन्दरसाथ परमधाम से आए हैं, वे इस सुनहरे अवसर को नहीं भूलेंगे। जब उनके अन्य साथी धनी के प्रेम में डूबने लगे, तो भला वे इस कार्य में पीछे क्यों रहेंगे।

महामत कहें मेहेबूब का, सांचा स्वाद आया जिन।

परीछा तिनकी प्रगट, छेद निकसें बान वचन॥१६॥

श्री महामति जी कहते हैं कि जिन सुन्दरसाथ को अपने प्रियतम के प्रेम का सच्चा स्वाद मिल चुका है, उनके लिये यह परीक्षा की घड़ी है कि वे संसार को छोड़कर स्वयं को धनी के प्रेम में कितना डुबो पाते हैं। उनके लिये ये वचन वाण की तरह छेदकर निकल जायेंगे, अर्थात् उनके

ऊपर इन वचनों का अटूट प्रभाव होगा।

प्रकरण ॥८८॥ चौपाई ॥१२४३॥

राग वसंत

चलो चलो रे साथ, आपन जईए धाम ।

मूल वतन धनिएं बताया, जित ब्रह्मसृष्ट स्यामा जी स्यामा॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! अब हमें ध्यान द्वारा अपने परमधाम में पहुँचना है। धाम धनी ने हमें उस मूल घर की पहचान करा दी है, जहाँ मूल मिलावा में ब्रह्मसृष्टियाँ तथा श्री राजश्यामा जी विराजमान हैं।

मोहोल मंदिर अपने देखिए, देखिए खेलन के सब ठौर।

जित है लीला स्याम स्यामा जी, साथ जी बिना नहीं कोई और॥२॥

अब चितवनि (ध्यान) में अपने परमधाम के महलों, मन्दिरों, तथा खेलने के सभी स्थानों की शोभा को

देखिए। सम्पूर्ण परमधाम में युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी तथा सुन्दरसाथ की ही लीला है। उस स्वलीला अद्वैत वाहिदत में इनके सिवाय अन्य किसी का भी अस्तित्व नहीं है।

भावार्थ- यहाँ शंका हो सकती है कि जब परमधाम में युगल स्वरूप तथा सखियों के सिवाय अन्य कोई नहीं है, तो खूब-खुशालियों तथा पशु-पक्षियों का वर्णन क्यों किया गया है?

इसका समाधान यह है कि खूब-खुशालियाँ तथा पशु-पक्षी भी इन्हीं के स्वरूप हैं, इसलिये इस चौपाई के कथन से कोई विरोधाभास नहीं है।

रेत सेत जमुना जी तलाब, कई ठौर बन करे विलास।

इस्क के सारे अंग भीगल, रहेस रंग विनोद कई हांस॥३॥

यमुना जी के किनारे श्वेत मोतियों के समान चमकती हुई रेती की शोभा है। इसी प्रकार हौज कौसर तालाब तथा वन में बहुत से अति सुन्दर स्थान हैं, जहाँ प्रेम की लीला होती रहती है। सभी के अंग इश्क के रस में भीगे हुए हैं तथा सभी आपस में प्रेम, आनन्द, तथा हास्य-विनोद की लीलायें करते रहते हैं।

पसु पंखी माहें सुन्दर सोभित, करत कलोल मुख मीठी बान।
 अनेक विध के खेल जो खेलत, सो केते कहूं मुख इन जुबान॥४॥

परमधाम में पशु-पक्षियों की बहुत सुन्दर शोभा है। वे अपने मुख से अति मीठी वाणी बोलते हुए तरह-तरह की क्रीड़ाएँ करते हैं। वे अनेक प्रकार के ऐसे-ऐसे खेल खेलते हैं, जिनका वर्णन मैं इस मुख और वाणी से कैसे करूँ।

ऐही सुरत अब लीजो साथ जी, भुलाए देओ सब पिंड ब्रह्मांड।

जागे पीछे दुख काहे को देखें, लीजे अपना सुख अखंड॥५॥

हे साथ जी! अब धनी के प्रेम में अपने शरीर और संसार को बिल्कुल ही भुला दीजिए। जाग्रत होने के पश्चात् जानबूझकर मायावी दुःखों को देखते रहने से क्या लाभ है। आप अपने परमधाम के अखण्ड सुखों में रसमग्न हो जाइए।

साथ मिल तुम आए धाम से, भूल गए सो मूल मिलाप।

भूलियां धाम धनी के वचन, न कछू सुध रही जो आप॥६॥

हे सुन्दरसाथ जी! आप परमधाम से इस माया का खेल देखने के लिये आये हैं। आप परमधाम के उस मिलावे को तो भूल ही गये हैं। धाम धनी के उन वचनों को भी भूल गये हैं, जो उन्होंने खेल में आते समय कहे थे। इस

खेल में आपको अपनी जरा भी सुध नहीं है।

धनी भेज्या फुरमान बुलावने, कहा आइयो सरत इन दिन।

खेल में लाहा लेय के आपन, चलिए इत होए धन धन॥७॥

धाम धनी ने हमें परमधाम वापस बुलाने के लिये कुरआन भेजा है। उन्होंने कुरआन में कहा है कि जब जागनी लीला का समय आ जाए, उस समय संसार छोड़कर परमधाम के ध्यान में डूब जाना चाहिए। इसलिये हे सुन्दरसाथ जी! इस माया के खेल में आप सभी धनी के प्रेम में डूबने का लाभ लीजिए और यहाँ धन्य-धन्य कहलाकर परमधाम चलिए।

भावार्थ- कुरआन के तीसवें पारे में लिखा है-

दसवीं ईसा ग्यारहीं इमाम, बारहीं सदी फजर तमाम।

ए लिख्या बीच सिपारे आम, तीसमां सिपारा जाको नाम॥

पुनः लिखा है-

कायम सदी तेरहीं, उथींदा निरवाण।

महामति जोए इमाम जी, जाहेर कराऊं फुरमान।

किन्तु चौदहवीं सदी के बाद का वर्णन नहीं है। वर्तमान में चौदहवीं सदी की गणना जन्म से की जाती है, किन्तु हिजरी सन् के प्रारम्भ से होना चाहिए था। मक्के से मदीने की यात्रा हिजरी कहलाती है। यहीं से हिजरी सन् शुरू होता है। उस समय से की गयी गणना ही यथार्थ है। कुरआन में वर्णित दसवीं से चौदहवीं सदी तक का समय अति महत्वपूर्ण है, जिसमें मोमिनो (ब्रह्मसृष्टियों) को परमधाम के ध्यान में डूबने के लिये अक्षरातीत का सिखापन है।

चौदे लोक में झूठ विस्तरयो, तामें एक सांचे किए तुम।

हंसते खेलते नाचते चलिए, आनंद में बुलाइयां खसम॥८॥

चौदह लोक के सभी प्राणी झूठे हैं अर्थात् महाप्रलय में लय हो जाने हैं। इसके विपरीत धनी ने तुम्हें अखण्ड (सत्य) कहलाने की शोभा दी है। हे साथ जी! धनी हमें परमधाम में बुला रहे हैं। इसलिये आनन्द में मग्न होकर हँसते, खेलते, और नाचते हुए परमधाम चलिए।

भावार्थ- इस चौपाई में हँसते, खेलते, और नाचते हुए परमधाम चलने का प्रसंग है। इस प्रसंग को बाह्य अर्थों में नहीं लेना चाहिए। परमधाम तथा युगल स्वरूप के ध्यान से जो आनन्द प्राप्त होता है, उसे ही "हंसते, खेलते, और नाचते हुए" चलना कहा गया है। चितवनि से प्राप्त होने वाला प्रथम श्रेणी का वह आनन्द, जिसमें न तो शरीर की सुध रहे और न संसार की, नाचना कहा

जायेगा। मध्यम श्रेणी का आनन्द खेलते हुए चलने वाला कहा गया है, तथा तृतीय श्रेणी का आनन्द हँसते हुए चलने वाला कहा गया है।

अब छल में कैसे कर रहिए, छोड़ देओ सब झूठ हराम।

सुरत धनी सो बांध के चलिए, ले विरहा रस प्रेम काम॥९॥

ऐसी अवस्था में अब माया के इस झूठे छल वाले संसार में भला कैसे रहा जा सकता है। यह सारा संसार झूठा है और नष्ट हो जाने वाला है। इसमें फँसे रहना पाप है। इस झूठे संसार को छोड़ दीजिए, और धनी के विरह-रस तथा प्रेम में डूबकर अपनी सुरता से उनमें खोये रहिए।

जो जो खिन इत होत है, लीजो लाभ साथ धनी पेहेचान।

ए समया तुमें बहुरि न आवे, केहेती हों नेहेचे बात निदान॥१०॥

मैं एक विशेष बात निश्चय करके कहती हूँ कि इस जागनी लीला में जो एक-एक पल बीता जा रहा है, उसमें धाम धनी तथा सुन्दरसाथ के स्वरूप की पहचान करके सेवा का लाभ लेना चाहिए। इस प्रकार का अनमोल समय आपको दोबारा प्राप्त होने वाला नहीं है।

अब जो घड़ी रहो साथ चरने, होए रहियो तुम रेनु समान।
इत जागे को फल एही है, चेत लीजो कोई चतुर सुजान॥११॥
 हे सुन्दरसाथ जी! आपमें जो अति चतुर और ज्ञानवान सुन्दरसाथ हैं, वे इस बात में सावधान हो जायें कि इस ब्रह्माण्ड में जाग्रत होने का यही फल (लक्षण, परिणाम) है कि जितने समय तक इस संसार में रहना है, उतने समय तक सुन्दरसाथ के चरणों में तुम धूलि के समान बनकर रहना, अर्थात् अभिमान से रहित होकर विनम्रता

की गहनतम् स्थिति तक पहुँचने का प्रयास करना।

ज्यों ज्यों गरीबी लीजे साथ में, त्यों त्यों धनी को पाइए मान।

इत दोए दिन का लाभ जो लेना, एही वचन जानो परवान॥१२॥

जैसे-जैसे आप सुन्दरसाथ में अधिक से अधिक विनम्र होते जायेंगे, वैसे-वैसे धनी का प्यार (मान) अधिक से अधिक मिलेगा। इस बात को निश्चित रूप से जान लीजिए कि सुन्दरसाथ के बीच में यह अवसर मात्र दो दिनों का है।

भावार्थ- इस प्रकरण की ११वीं चौपाई में समय के लिये "घड़ी" तथा १२वीं चौपाई में "दो दिन" का कथन किया गया है। इस प्रकार का वर्णन आलंकारिक होता है। साढ़े २२ मिनट की एक घड़ी होती है। एक दिन में ६४ घड़ी होती हैं। सुन्दरसाथ के चरणों में महीनों और वर्षों

तक रहने का सुअवसर प्राप्त होता है, किन्तु उसे "घड़ी" के सम्बोधन से व्यक्त किया गया है। इसी प्रकार का कथन १२वीं चौपाई में भी है, जिसमें महीनों और वर्षों की अवधि को "दो दिन" कहा गया है।

अब जो साइत इत होत है, सो पिउ बिना लगत अगिन।
 ए हम सह्यो न जावहीं, जो साथ में कहे कोई कटुक वचन॥१३॥

प्रियतम के दीदार बिना एक-एक पल जो बीता जा रहा है, अग्नि के समान कष्टकारी प्रतीत हो रहा है। यदि सुन्दरसाथ में कोई व्यक्ति किसी के प्रति कटु शब्दों को प्रयोग करता है, तो वह मुझे सह्य नहीं है।

भावार्थ- कटु शब्दों के घाव अस्त्रों-शस्त्रों के घाव से अधिक तीखे होते हैं। इस चौपाई से तो यह पूर्णतया स्पष्ट है कि जो सुन्दरसाथ किसी को भी कटु शब्दों से

सम्बोधित करते हैं, वे स्वप्न में भी श्री जी की कृपा के पात्र नहीं बन सकते।

ज्यों ज्यों साथ में होत है प्रीत, त्यों त्यों मोही को होत है सुख।
 ज्यों ज्यों ब्रोध करत हैं साथ में, अंत वाही को है जो दुख॥१४॥
 सुन्दरसाथ में जैसे-जैसे प्रेम बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उतना ही अधिक मुझे आनन्द होता है। किन्तु यदि कोई सुन्दरसाथ में जितना अधिक विरोध बढ़ाता है, वह उतना ही अधिक दुःखी होता है।

भावार्थ- इस चौपाई से सुन्दरसाथ को यह सिखापन लेनी चाहिए कि कोई किसी का विरोध करके या कराकर अपने लिये ही दुःख को निमन्त्रण देता है।

इत खिन का है जो लटका, जीत चलो भावें हार।

महामत हेत कर कहें साथ को, बिध बिध की करत पुकार॥१५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! मैं आपसे बहुत प्यार करके, तरह-तरह से समझाकर, यह बात कह रहा हूँ कि यह संसार क्षणभंगुर (क्षण में नाश होने वाला) है अर्थात् पल-पल परिवर्तनशील है। इसमें धनी से प्रेम करके, या तो माया से विजयी होकर परमधाम चलिए, या माया में डूबकर हारते हुए परमधाम चलिए, यह सब आपके हाथ में है।

प्रकरण ॥८९॥ चौपाई ॥१२५८॥

राग मारु

साथ जी सोभा देखिए, करे कुरबानी आतम।

वार डारों नख सिख लों, ऊपर धाम धनी खसम॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! अपने प्राणवल्लभ धाम धनी अक्षरातीत श्री राज जी के ऊपर अपना नख से शिख तक तन-मन न्योछावर कीजिए और अपनी आत्मा को उनके प्रेम में डुबाकर प्रियतम की नूरी शोभा का दीदार कीजिए।

लिख्या है फुरमान में, करसी कुरबानी मोमिन।

अग्यारे सै साल का, सो आए पोहोंच्या दिन॥२॥

कुरआन में यह बात लिखी हुई है कि जब परमधाम के मोमिन (ब्रह्ममुनि) इस संसार में आएँगे तो अपने धाम

धनी पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देंगे। अब से (ग्यारहीं सदी से) ग्यारह सौ वर्ष पहले कुरआन में ब्रह्ममुनियों तथा अक्षरातीत के प्रकटन का जो समय लिखा हुआ था, वह अब आ गया है।

भावार्थ- कुर्बानी का तात्पर्य किसी पशु की बलि नहीं, बल्कि अक्षरातीत के प्रेम में अपनी सांसारिक इच्छाओं को पूर्णतया परित्याग कर देने से है।

देख्या मैं विचार के, हम सिर किया फरज।

बड़ी बुजरकी मोमिनो, देखो कौन क्यों देत करज॥३॥

मैंने इस बात को अच्छी तरह से विचार करके देखा तो यह स्पष्ट हुआ कि श्री राज जी ने हमारे ऊपर जागनी का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व सौंपा है। ब्रह्ममुनियों की गरिमा बहुत अधिक (सर्वोपरि) है। अब देखना यह है कि कौन

सुन्दरसाथ जागनी के उत्तरदायित्व को कितना अधिक निभाता है।

करी कुरबानी तिन कारने, परीक्षा सबकी होए।

करें कुरबानी जुदे जुदे, सांच झूठ ए दोए॥४॥

अपने इस उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिये ही मैंने धनी की कृपा से जागनी की राह में कुर्बानी की। अब तो सभी सुन्दरसाथ के लिये यह परीक्षा का समय है कि कौन इस कार्य में कितना न्योछावर होता है। सुन्दरसाथ अलग-अलग रूपों में न्योछावर होंगे। यद्यपि कुर्बानी (न्योछावर) का दावा करने वालों में ब्रह्मसृष्टि (सत्य) तथा जीव सृष्टि (झूठ) दोनों ही होंगे।

कस न पाइए कसौटी बिना, रंग देखावे कसौटी।

कच्ची पक्की सब पाइए, मत छोटी या मोटी॥५॥

जिस प्रकार कसौटी पर कसे बिना शुद्ध सोने की पहचान नहीं होती, उसी प्रकार कुर्बानी रूपी कसौटी के बिना किसी के प्रेम की पहचान नहीं होती। कुर्बानी से ही कच्चे ईमान एवं छोटी बुद्धि वाले जीवों, तथा पक्के ईमान एवं महान बुद्धि वाली ब्रह्मसृष्टियों की पहचान होती है।

कसौटी कस देखावहीं, कसनी के बखत।

अबहीं प्रगट होएसी, जुदे झूठ से निकस के सत॥६॥

धनी के प्रेम की कसौटी के समय जो न्योछावर हो जाते हैं, उनके लिये यह परीक्षा का समय आ गया है। कसौटी पर खरा सिद्ध होने पर ही वास्तविक सत्य की पहचान होती है। परीक्षा की इस घड़ी में ब्रह्मसृष्टि ही इस झूठे

संसार से नाता तोड़कर अपने शाश्वत सत्य परमधाम को दिल में बसायेगी।

करत कुरबानी सकुचें, मोमिन करे ना कोए।

तीन गिरो की परीछा, अब सो जाहेर होए॥७॥

कोई भी ब्रह्मसृष्टि स्वयं को धनी के ऊपर न्योछावर करने में जरा भी संकोच नहीं करती है। कौन धनी पर कितना न्योछावर हो सकता है, इसी में तीनों सृष्टियों की परीक्षा है। अब तीनों सृष्टियों की स्पष्ट रूप से परीक्षा हो जायेगी कि किसमें कहाँ का अँकुर है।

कहा कहुं वतन सैयां, जो मगज लगे अर्थ।

कुरबानी समे देख्या चाहिए, सांचे सूर समर्थ॥८॥

धर्मग्रन्थों के अभिप्राय में परम तत्त्व की खोज करने

वाले परमधाम के ब्रह्ममुनियों की गरिमा के विषय में मैं क्या कहूँ। यह तो धनी पर पूर्ण रूप से न्योछावर होने का समय है। अब यह देखने की आवश्यकता है कि सुन्दरसाथ की जमात में प्रेम की राह पर चलने वाला सच्चा सामर्थ्यवान वीर (ब्रह्मसृष्टि) कौन है।

कुरबानी को नाम सुन, मोमिन उलसत अंग।

पीछे हुते जो मोमिन, दौड़ लिया तिन संग॥९॥

अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत पर न्योछावर होने की बात सुनते ही ब्रह्मसृष्टियों के हृदय में उमंग भर जाती है। किसी कारणवश जो ब्रह्मसृष्टियां स्वयं को न्योछावर करने की राह में पीछे रह गयी थीं, उन्होंने भी आगे वालों की बराबरी करने के लिये तेज दौड़ लगा ली।

भावार्थ— यहाँ किसी लौकिक दौड़ का वर्णन नहीं है,

बल्कि धाम धनी के प्रति इश्क , ईमान, पल-पल धन्यवाद देने की प्रवृत्ति, विनम्रता, तथा सन्तोष की राह में कौन कितनी तेजी से चल सकता है, उसका प्रसंग है।

मोमिन एही परीछा, जोस न अंग समाए।

बाहेर सीतलता होए गई, मांहें मिलाप धनी को चाहे॥१०॥

ब्रह्मसृष्टियों के लिये यह परीक्षा की घड़ी है। उनके हृदय में धनी के प्रेम का इतना अधिक जोश भरा होता है कि वह अन्दर समा नहीं पाता, अर्थात् उनमें सीमा से परे इतने अधिक प्रेम का प्रवाह होता है कि उनका हृदय उसे पूरी तरह सम्भाल नहीं पाता। उनके मन में बाहरी संसार के प्रति कोई आकर्षण न होने से शीतलता बन जाती है, अर्थात् वे सांसारिक सुखों से पूर्णतया विरक्त हो गये होते हैं, किन्तु अन्दर प्रियतम (श्री राजश्यामा जी) से मिलने

के लिये विरह की अग्नि जलती रहती है।

सुनत कुरबानी मोमिन, होए गए आगे से निरमल।

इत एक एक आगे दूसरा, जाने कब जासी हम चल॥११॥

धनी पर न्योछावर होने की बात सुनते ही ब्रह्ममुनि पहले से ही निर्मल होने की तैयारी कर लेते हैं। उनमें एक-दूसरे के प्रति यह होड़ बन जाती है कि हम सबसे पहले परमधाम की शोभा को दिल में बसा लें।

भावार्थ- तन, मन, जीव, और आत्मा को धनी के प्रेम में न्योछावर वही कर सकता है, जिसका हृदय निर्मल होता है। इस चौपाई के चौथे चरण में धाम चलने का नहीं, बल्कि परमधाम की शोभा को दिल में बसाने का प्रसंग है।

मोमिन बड़ा मरातबा, सो अब होसी जाहेर।

छिपे हुते दुनियां मिने, सो निकस आए बाहेर॥१२॥

ब्रह्ममुनियों (मोमिनों) का पद सबसे बड़ा है। उनकी गरिमा अब सारे संसार में प्रत्यक्ष हो जायेगी। ब्रह्ममुनि अब तक संसार में छिपे पड़े थे। अब इस जागनी लीला में उनकी कुर्बानी एवं ब्रह्मवाणी ने उन्हें जाहिर कर दिया।

सांचे छिपे ना रहें, अपने समें पर।

दोस्त कहे धनी के, सो छिपे रहें क्यों कर॥१३॥

ब्रह्ममुनि अपने प्रियतम अक्षरातीत पर न्योछावर होने के समय छिपे नहीं रह सकते। जिनको सच्चिदानन्द परब्रह्म का दोस्त कहा गया है, भला वे छिपे कैसे रह सकते हैं।

भावार्थ- वेद के अनेक मन्त्रों में परब्रह्म को मित्र (दोस्त) के सम्बोधन से वर्णित किया गया है। "येषाम

इन्द्रो युवा सखा" (सामवेद २/४/२/९) एवं "इन्द्रस्य युज्यः सखा" का कथन यही स्पष्ट करता है। इसी प्रकार का कथन कुरआन में भी है।

जो होए आतम धाम की, सो अपने समें पर।

अपना सांच देखावहीं, भूले नहीं अवसर॥१४॥

जो परमधाम की आत्मा होगी, वह धनी पर सर्वस्व न्योछावर करने के समय निश्चय ही अपना अपनापन दिखायेगी। वह इस स्वर्णिम अवसर को व्यर्थ नहीं जाने देगी।

जो भूले अब को अवसर, सो फेर न आवे ठौर।

नेहेचे सांचे न भूलहीं, इत भूलेंगे कोई और॥१५॥

धनी को रिझाने का जो यह सुनहरा अवसर प्राप्त हुआ

है, इसे भुला देने (व्यर्थ करने) वाला पुनः इस प्रकार का अवसर प्राप्त नहीं कर सकेगा। निश्चित रूप से ब्रह्मसृष्टि नहीं भुलाएगी। इस प्रकार की भूल तो किसी माया के जीव से ही हो सकती है।

आया दरवाजा धाम का, सांचों बाढ़या बल।

आए गए छाया मिने, धनी छाया निरमल॥१६॥

परमधाम का ध्यान करने से ब्रह्ममुनियों (सत्य) का आत्मिक बल बढ़ गया है। सब सुन्दरसाथ अब धनी की शोभा को दिल में बसाने लगे हैं। धनी की शोभा का ध्यान हृदय को निर्मल करता है।

साफ सेहेजे हो गए, करने पड़या न जोर।

रात मिटी कुफर अंधेरी, भयो रोसन वतनी भोर॥१७॥

परमधाम और धनी की शोभा का ध्यान करने से सुन्दरसाथ बहुत ही सरलता से निर्मल हृदय वाले हो गये। उन्हें संसार के अन्य भक्तों की तरह बहुत अधिक शक्ति नहीं लगानी पड़ी। परमधाम के ज्ञान का सूर्य उग गया, जिससे अज्ञानता के गहन अन्धकार की रात्रि समाप्त हो गयी तथा प्रातःकाल का उजाला फैल गया।

भावार्थ- ध्याता (आत्मा के हृदय) में ध्येय (श्री राज जी) के गुण आना स्वाभाविक है। श्री राज जी की शोभा को दिल में बसाते ही सभी मायावी विकार समाप्त हो जाते हैं। अपने हृदय को निर्मल करने का इससे अच्छा अन्य कोई मार्ग नहीं है। कर्मकाण्ड की भक्ति से कदापि अपने को निर्मल नहीं बनाया जा सकता।

कुरबानी सुन सखियां, उलसत सारे अंग।

सुरत पोहोंची जाए धाम में, मिलाप धनी के संग॥१८॥

धनी के प्रेम में न्योछावर होने की बात सुनते ही ब्रह्मसृष्टियों के सभी अंगों में आनन्द छा जाता है। उनकी सुरता परमधाम पहुँच जाती है तथा अपने प्राणवल्लभ का दीदार करती है।

मोमिन बल धनीय का, दुनी तरफ से नाहें।

तो कहे धनी बराबर, जो मूल सरूप धाम माहें॥१९॥

धनी के प्रति अटूट प्रेम होना ही ब्रह्मसृष्टियों की शक्ति है। उनमें संसार के प्रति न तो कोई लगाव होता है और न लौकिक अहं की भावना होती है। उनके मूल तन परमधाम में धनी के सम्मुख ही विराजमान हैं, इसलिये उन्हें धनी के बराबर कहा गया है।

भावार्थ- परमधाम की वाहिदत में सभी एक स्वरूप होते हैं, इसलिये परमधाम की दृष्टि से देखने पर ब्रह्ममुनि भी सच्चिदानन्द परब्रह्म के ही स्वरूप माने जायेंगे। यद्यपि वेद ("न त्वावां अन्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते" -अथर्ववेद) और कुरआन में परब्रह्म की किसी से भी तुलना की कोई कल्पना नहीं है, किन्तु ऐसा ब्रह्म की सर्वपूज्यता को सिद्ध करने के लिये ही किया गया है। यह सर्वांश सत्य है कि हृद के इस मण्डल में कोई भी व्यक्ति उनके समकक्ष खड़ा होने की कल्पना भी नहीं करता, किन्तु परमधाम के इश्क और वाहिदत की लीला में अंग-अंगी होने के कारण सभी एक ही स्वरूप हैं, इसलिये इस चौपाई में ब्रह्मसृष्टियों को धाम धनी के "बराबर" कहा गया है।

लड़कपने सुध न हुती, तो भी मोमिन मूल अंकूर।

कोई कोई बात की रोसनी, लिए खड़े थे जहूर॥२०॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि पहले अनजानेपन में मुझे सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्दर विराजमान युगल स्वरूप की पहचान नहीं थी, फिर भी परमधाम का मूल अँकुर (आत्मा) होने से मेरे हृदय में ज्ञान की कुछ-कुछ बातों का प्रकाश अवश्य था।

अब तो किए धनिएं जाग्रत, दर्ई भांत भांत पेहेचान।

तोड़ दर्ई आसा छल की, क्यों सकुचें करत कुरबान॥२१॥

अब तो धाम धनी ने अपनी वाणी से हमें जाग्रत कर दिया है तथा अनेक प्रकार से अपनी पहचान भी दे दी है। धनी ने अपनी मेहर द्वारा हमारे हृदय से छलमयी माया की इच्छाओं को हटा दिया है। ऐसी स्थिति में धनी पर

सर्वस्व न्योछावर करने में कैसा संकोच।

अब तो धनी बल जाहेर, आयो अलेखे अंग।

ए जिन दिया सो जानहीं, या जिन लिया रस रंग॥२२॥

अब तो मेरे प्रियतम की शब्दातीत एवं अलौकिक शक्ति प्रत्यक्ष रूप से मेरे अन्दर आ गयी है। इस भेद को या तो देने वाले श्री राज जी जानते हैं या इसके आनन्द का रसपान करने वाली मेरी आत्मा जानती है।

ए दुनी न जाने सुपन की, न जाने मलकूती फरिस्तन।

ए अछर को भी सुध नहीं, जाने स्याम स्यामा मोमिन॥२३॥

धनी से मिलने वाले मेरे आत्मिक आनन्द को न तो स्वप्न की दुनिया के जीव और न ही वैकुण्ठ में रहने वाले देवी-देवता जानते हैं। अक्षर ब्रह्म को भी इस प्रेम –

आनन्द की सुध नहीं है। इसके भेद को तो मात्र श्री राजश्यामा जी और सुन्दरसाथ ही जानते हैं।

मैं मेरे धनीय की, चरन की रेनु पर।

कोट बेर वारों अपना, टूक टूक जुदा कर॥२४॥

इस तरह का अलौकिक प्रेम और आनन्द देने वाले अपने प्रियतम के चरणों की धूलि पर करोड़ों बार अपने शरीर को टुकड़े-टुकड़े करके न्योछावर कर देना चाहती हूँ।

भावार्थ- प्रेमी (आशिक) अपने प्रेमास्पद (माशूक) से कोई मायावी चाहत या लाभ नहीं चाहता। अपने शरीर को करोड़ों बार टुकड़े-टुकड़े करके न्योछावर करने का कथन उन सुन्दरसाथ के लिये सिखापन है, जो थोड़ी देर की चितवनि में कमर, पीठ, या पैरों में दर्द का राग

अलापते हैं और चितवनि न करने के बहाने खोजते हैं।

अंग अंग सब उलसत, कुरबानी कारन।

जरे जरे पर वार हूं, ए जो बीच जरे राह इन॥२५॥

धनी के ऊपर कुर्बान होने के लिये मेरे सभी अंगों में उल्लास (हर्ष) पैदा हो जाता है। धनी के प्रेम में अपना सर्वस्व न्योछावर करने की राह पर जो चलते हैं, मैं उस राह के एक-एक कण पर अपने आप को समर्पित करती हूँ।

भावार्थ- ज्ञान, प्रेम, और सेवा की राह में स्वस्थ और कल्याणमयी प्रतिद्वन्दिता तो ठीक है, किन्तु ईर्ष्या-द्वेष से भरी प्रतिद्वन्दिता विनाश की खाई में ढकेलती है। सुन्दरसाथ में इस प्रकार का नासूर पैदा न हो जाये, इसके लिये यह आवश्यक है कि हम ज्ञान, प्रेम, तथा

सेवा की राह पर चलने वालों के प्रति सम्मान का भाव रखें। इस प्रकार का सिखापन देने के लिये ही २४वीं चौपाई में महामति जी ने जहाँ धनी की चरण-रज पर स्वयं को करोड़ों बार न्योछावर करने की बात कही है, वहीं इस चौपाई में धनी पर न्योछावर होने वालों की राह में जो धूलि के कण होते हैं उन पर भी स्वयं को करोड़ों बार न्योछावर करने की बात कही है। इस तरह की प्रवृत्ति यदि सुन्दरसाथ में हो जाये , तो इश्क और वाहिदत की एक छोटी सी झलक इस संसार में भी मिल सकती है।

जिन दिस मेरा पिउ बसे, तिन दिस पर होऊँ कुरबान।
 रोम रोम नख सिख लों, वार डारों जीव सों प्रान॥२६॥
 जिस दिशा में मेरे प्रियतम श्री राजश्यामा जी बसते हैं,

उस दिशा पर भी मैं कुर्बान होती हूँ। मैं अपने नख से शिख तक शरीर के रोम-रोम, जीव, और प्राणों को भी उस दिशा पर न्योछावर करती हूँ।

सूरातन सखियन का, मुख थें कह्यो न जाए।

महामत कहें सो समया, निपट निकट पोहोंच्या आए॥२७॥

श्री महामति जी कहते हैं कि ब्रह्मसृष्टियों की शूरवीरता (बहादुरी) को इस मुख से नहीं कहा जा सकता। धनी के ऊपर अपना सर्वस्व न्योछावर करने की वीरता का वह समय अब बिल्कुल नजदीक आ गया है। देखना है कि कौन सुन्दरसाथ कितनी बहादुरी दिखाता है।

प्रकरण ॥९०॥ चौपाई ॥१२८५॥

राग श्री

इस प्रकरण में आशिक द्वारा अपने माशूक पर न्योछावर होने के प्रसंग को अति सुन्दर ढंग से व्यक्त किया गया है।

आगूं आसिक ऐसे कहे, जो माया थें उतपन।

कोट बेर मासूक पर, उड़ाए देवें अपना तन॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि इस मायावी जगत में भी ऐसे-ऐसे आशिक हो चुके हैं, जिन्होंने हमेशा ऐसी मानसिकता रखी है कि वे आवश्यकता पड़ने पर करोड़ों बार अपने तन को माशूक पर न्योछावर कर सकते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में "कोट" शब्द का प्रयोग अतिशयोक्ति के रूप में किया गया है। आशिक-माशूक का करोड़ों जन्मों में साथ-साथ रहना बहुत कठिन है, लगभग असम्भव। जीवों के संस्कार अलग-अलग होने

से कुछ ही जन्मों में साथ-साथ रहना सम्भव होता है। इस चौपाई का मूल भाव यह है कि एक सच्चा आशिक अपने माशूक पर करोड़ों बार अपने शरीर को कुर्बान कर सकता है। लैला-मजनू, ससी-पुन्नू आदि इसी प्रसंग में माने जा सकते हैं।

जीव माया के ऐसी करें, कैयों देखे दृष्ट।

ओ भी उन पर यों करें, तो हम तो हैं ब्रह्मसृष्ट॥२॥

इस तरह अपने माशूक पर न्योछावर होने वाले अनेक आशिक हो गये हैं। माया के जीव होते हुए भी जब वे अपने माशूक पर इतनी बड़ी कुर्बानी करते हैं, तो हम तो परमधाम की ब्रह्मसृष्टि कहलाते हैं। हम धनी पर न्योछावर होने से पीछे क्यों हटें।

धिक धिक पड़ों तिन समझ को, जो पीछे देवें पाए।

कुरबानी को नाम सुन, क्यों न उड़े अरवाहें॥३॥

जो अपने प्राण-प्रियतम पर न्योछावर होने में अपने कदम पीछे खींच लेते हैं, उनकी नासमझी को बारम्बार धिक्कार है। धनी के ऊपर न्योछावर होने की बात सुनते ही ब्रह्मसृष्टि को अपनी आत्मा उन पर पूर्ण रूप से समर्पित कर देनी चाहिए, अर्थात् शरीर और संसार का थोड़ा सा भी मोह नहीं रखना चाहिए।

भावार्थ- यद्यपि इस चौपाई के चौथे चरण का बाह्य अर्थ शरीर छोड़ना ही होगा, किन्तु आन्तरिक आशय है धनी के प्रेम में इतना डूब जाना कि शरीर और संसार के प्रति नाम मात्र की भी आसक्ति न रह जाये। शरीर छोड़ने के बाद भी यदि संसार से आसक्ति बनी रहती है, तो वह सच्चा समर्पण नहीं है। न्योछावर हो जाने की स्थिति में

तो केवल "तू" ही दिखता है, "मैं" नहीं।

जो नकल हमारे की नकल, तिनका होए ए हाल।

तो पीछे पाऊं हम क्यों देवें, हम सिर नूरजमाल॥४॥

ईश्वरी सृष्टि हमारी नकल का रूप है और जीव सृष्टि ईश्वरी सृष्टि की नकल है। जब इस मायावी जगत के जीव अपने माशूक पर इतनी कुर्बानी करते हैं, तो हमारे सिर पर तो प्रियतम अक्षरातीत का साया है। हम अपने धनी पर स्वयं को न्योछावर करने में पीछे क्यों रहें।

भावार्थ- ईश्वरी सृष्टि को ब्रह्मसृष्टि की नकल कहने का आशय यह है-

सत् अंग अक्षर ब्रह्म और अक्षरातीत का स्वरूप एक ही है। बेहद में रहने वाली ईश्वरी सृष्टि अक्षर ब्रह्म की सुरता है। इसी प्रकार अक्षर ब्रह्म के मन (अव्याकृत) का

स्वाप्निक रूप आदिनारायण है। इसी कारण आदिनारायण के अंश से प्रकट होने वाले जीवों को ईश्वरी सृष्टि की नकल का रूप कहा गया है, किन्तु इन तीनों में सूक्ष्म अन्तर अवश्य है। ब्रह्मसृष्टि और ईश्वरी सृष्टि का स्वरूप नूरमयी है, किन्तु वाहिदत की जो लीला ब्रह्मसृष्टि में है, वह ईश्वरी सृष्टि में नहीं है। इसी प्रकार जीव सृष्टि का शरीर पञ्चभूतात्मक है तथा जन्म-मरण, रोग, बुढ़ापे, और भूख-प्यास से ग्रसित होता है, जबकि परमधाम और बेहद की सृष्टि में यह दोष नहीं है।

**जो आसिक असल अर्स की, सो क्यों सकुचे देते जिउ।
करे कुरबानी कोट बेर, ऊपर अपने पिउ॥५॥**

जो परमधाम के रहने वाले धनी के सच्चे आशिक हैं, वे धनी पर अपने जीव को न्योछावर करने में जरा भी

संकोच नहीं करेंगे। वे तो अपने प्रियतम अक्षरातीत पर करोड़ों बार कुर्बानी कर सकते हैं।

सो भी पिउ अछरातीत, इत कायर न होवे कोए।

सुनत कुरबानी के आगे हीं, तन रोम रोम जुदे होए॥६॥

अपने प्रियतम अक्षरातीत पर कुर्बानी करने में किसी को भी कायर नहीं होना चाहिए। धनी के ऊपर न्योछावर होने की बात सुनते ही शरीर के रोम-रोम को पूर्ण रूप से समर्पित हो जाना चाहिए।

भावार्थ- इस चौपाई के चौथे चरण में शरीर के रोम-रोम के अलग होने की जो बात कही गयी है, वह पूर्ण समर्पण के सन्दर्भ में कही गयी है। समर्पण में उस वस्तु पर अपना कोई भी अधिकार नहीं रहता। शरीर का रोम-रोम धनी का हो जाना ही जुदा होना है।

इन खसम के नाम पर, कई कोट बेर वारों तन।

टूक टूक कर डार हूँ, कर मन वाचा करमन॥७॥

श्री महामति जी कहते हैं कि मैं अपने प्रियतम श्री राज जी के नाम पर मन, वाणी, और कर्म से करोड़ों बार अपने शरीर को टुकड़े-टुकड़े करके न्योछावर करने को तैयार हूँ।

भावार्थ- इस चौपाई में शरीर को टुकड़े-टुकड़े करने का तात्पर्य तलवार से टुकड़े-टुकड़े करना नहीं है, अपितु यदि प्रियतम को पाने में किसी कारणवश शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो भी जायें तो यह खुशी की बात है। यही भाव ग्रहण करना उचित है।

जो आसिक अर्स अजीम के, तिन सिर नूरजमाल।

परीछा तिनकी जाहेर, सब्द लगें ज्यों भाल॥८॥

जो परमधाम के आशिक ब्रह्ममुनि हैं, उनके सिर पर अक्षरातीत श्री राज जी का वरदहस्त है। उनके लिये यह प्रत्यक्ष परीक्षा है कि धनी पर कुर्बान होने के शब्द उनके हृदय में भाले की चोट की तरह घाव कर देते हैं।

भावार्थ- जिस प्रकार भाले के प्रहार से घाव बन जाता है और उस स्थान की स्थिति सामान्य अवस्था से भिन्न (पीड़ादायक) हो जाती है, उसी प्रकार धनी के ऊपर न्योछावर होने की बातों को सुनकर ब्रह्ममुनियों का हृदय विरह में इतना व्याकुल हो जाता है कि उनका हृदय सामान्य अवस्था से बहुत भिन्न हो जाता है। उस समय हृदय में स्वयं को धनी पर कुर्बान करने की प्रवृत्ति बहुत तीव्र हो जाती है। इसे ही भाले की तरह घाव होना कहते हैं।

जो सोहागिन वतनी, ताकी प्रगट पेहेचान।

रोम रोम सब अंगों, जुदी जुदी दे कुरबान॥९॥

जो परमधाम की रहने वाली ब्रह्मसृष्टि है, उसकी प्रत्यक्ष पहचान यह है कि वह अपने धनी के ऊपर अपने शरीर के सब अंगों के रोम-रोम को अलग-अलग करके न्योछावर कर देगी।

कुरबानी को सब अंग, हंस हंस दिल हरखत।

पिउ पर फना होवने, सब अंगों नाचत॥१०॥

धनी के ऊपर कुर्बान होने के लिये ब्रह्मसृष्टि के हृदय में अपार हर्ष होता है। वह अपने सभी अंगों को हँसते-हँसते कुर्बान कर देती है। धनी पर न्योछावर होने के लिये उसके सभी अंग खुशी से नाचते हैं।

भावार्थ- धनी के ऊपर रोम-रोम को कुर्बान

(न्योछावर) करने का तात्पर्य यह है कि वह प्रियतम के विरह और ध्यान में इतना खो जाये कि उसे अपने शरीर की जरा भी सुध न रहे। धनी से मिलने के लिये उसके अन्दर इतनी तड़प हो जाये कि रोम-रोम में सिहरन सी पैदा हो जाये।

आसिक कबूँ ना अटके, करत अंग कुरबान।

ना जीव अंग आसिक के, जीव पिउ अंग में जान॥११॥

अपने प्रियतम पर स्वयं को कुर्बान करने में आशिक रूह कभी पीछे नहीं हटती। आशिक का जीव अपने अंग (दिल) में नहीं होता है, बल्कि अपने प्यारे माशूक के अंग में होता है।

भावार्थ- वह माँस खण्ड, जिसमें रक्त का प्रवाह होता है, स्थूल हृदय कहलाता है। इसके अन्दर अति सूक्ष्म

हृदय या अन्तःकरण (मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार) होता है, जिसे किसी भी सूक्ष्मदर्शी से नहीं देखा जा सकता। सूक्ष्म हृदय के भी अन्दर जीव का वास होता है। आशिक अपने माशूक के प्रेम में इतना डूबा होता है कि उसे अपने शरीर की कोई भी सुध नहीं रहती। उसके जीवन का अस्तित्व माशूक के दिल से मिलने वाले प्रेम पर निर्भर करता है। इसी को इस चौपाई में दर्शाया गया है कि आशिक का जीव माशूक के दिल में रहता है।

अंग आसिक आगूं हीं फना, जीवत मासूक के मांहे।

डोरी हाथ मेहेबूब के, या राखे या फनाए॥१२॥

माशूक (श्री राज जी) ही आशिक (रूह) के जीवन के आधार हैं। आशिक के अंग अपने माशूक पर पल-पल फना रहते हैं। उसके जीवन की डोरी उसके प्रियतम (श्री

राज जी) के हाथों में ही होती है। उसके तन को धनी जब तक चाहे रखें, या समाप्त कर दें, उसे कोई मोह नहीं होता।

तो अंग आधा अरधांग, मासूक का आसिक।

तो दोऊ तन एक भए, जो इस्क लाग्या हक॥१३॥

इस प्रकार आशिक (रूह) माशूक (श्री राज जी) के दिल की अर्धांगिनी कहलाता है। जब प्रियतम श्री राज जी से इश्क हो जाता है, तो आशिक और माशूक का स्वरूप एक ही हो जाता है।

सोई कहावत आसिक, जिन अंग जोस फुरत।

अहनिस पिउ के अंग में, रहेत आसिक की सुरत॥१४॥

आशिक वही है, जिसके दिल में अपने माशूक के लिये

इश्क के जोश की तरंगे उठती रहती हैं। उसकी सुरता रात-दिन अपने प्रियतम के दिल से जुड़ी रहती है।

भावार्थ- प्रेम का वास्तविक केन्द्र दिल होता है, शोभा नहीं। इसलिये इस चौपाई में आशिक के दिल को माशूक की शोभा से न जोड़कर दिल से जोड़ा गया है। यद्यपि माशूक की शोभा आशिक को आकर्षित करती है, किन्तु वास्तविक प्रेम का तार दिलों से ही जुड़ा होता है। परमधाम की दृष्टि से शोभा में हकीकत और दिल में मारिफत का स्वरूप विराजमान होता है।

मासूक की नजर तले, आठों जाम आसिक।

पिए अमीरस सनकूल, हुकम तले बेसक॥१५॥

आशिक (रूह) अपने माशूक (श्री राज जी) की नजरों से, आनन्द में डूबकर, प्रेम रूपी अमृत का पान करती

है। निश्चित रूप से यह धनी के हुक्म से ही होता है।

न्यारा निमख न होवहीं, करने पड़े न याद।

आसिक को मासूक का, कोई इन विध लाग्या स्वाद॥१६॥

आशिक को माशूक के प्रेम का ऐसा नशा चढ़ा रहता है कि वह एक पल के लिये भी माशूक को अपने से अलग नहीं समझता। उसे अन्य सांसारिक लोगों की तरह याद करने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती।

भावार्थ- इस चौपाई से उन लोगों को सिखापन लेनी चाहिए, जो नाम जप या मन्त्र (तारतम) जप के नाम पर माला के प्रयोग पर जोर देते हैं। वेद, उपनिषद, दर्शन, गीता आदि में कहीं भी माला के प्रयोग का विधान नहीं है।

इस चौपाई से यह भाव लेना मिथ्या है कि धनी तो

पल-पल दिल में याद आते ही रहते हैं, इसलिये बैठकर ध्यान करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस सम्बन्ध में संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि चलते - फिरते उठते-बैठते श्री राज जी के नाम का जप तो किया जा सकता है या युगल स्वरूप की शोभा पर एक हल्की सी नजर डाली जा सकती है, किन्तु उसमें डूबा नहीं जा सकता। इस प्रकार की स्थिति "भावलीनता" कही जाती है। प्रियतम का दीदार करने एवं वास्तविक ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त करने के लिये तो स्थिर आसन पर बैठकर प्रेमपूर्वक चितवनि करनी ही पड़ेगी। तभी शरीर के अस्तित्व का भान समाप्त होगा और प्रकृति के बन्धनों को पार करके प्रियतम को अपने धाम हृदय में बसाया जा सकेगा।

रोम रोम बीच रमि रह्या, पिउ आसिक के अंग।

इस्कें ले ऐसा किया, कोई हो गया एकै रंग॥१७॥

प्रियतम (माशूक) आत्मा (आशिक) के अंग-अंग के रोम-रोम में रम रहा होता है। स्वलीला अद्वैत परमधाम के अनन्य प्रेम ने ऐसी स्थिति ला दी है कि दोनों एक ही अद्वैत स्वरूप के आनन्द में मग्न हो गये हैं।

इन जुबां इन आसिक का, क्यों कर कहूँ सो बल।

धाम धनी आसिक सों, जुदा होए न सकें एक पल॥१८॥

इस वाणी (जबान) से आशिक के प्रेम और समर्पण के बल का वर्णन नहीं हो सकता। प्रेम के सागर में गोता लगाने वाले आशिक से धाम धनी श्री राज जी एक पल के लिये भी अलग नहीं हो सकते।

महामत कहें मेहेबूब के, रोम रोम लगे घाए।

इन अंग को अचरज होत है, अजूं ले खड़ा अरवाए॥१९॥

श्री महामति जी कहते हैं कि प्रियतम अक्षरातीत की बातों की चोट से मेरे शरीर के रोम-रोम में घाव हो रहे हैं। फिर भी यह कितने आश्चर्य की बात है कि मेरी आत्मा अभी भी इस तन को धारण किये बैठी है।

प्रकरण ॥१९॥ चौपाई ॥१३०४॥

राग श्री

अब हम धाम चलत हैं, तुम हूजो सबे हुसियार।

एक खिन की बिलम न कीजिए, जाए घरों करें करार॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! अब मैं परमधाम की चितवनि में लग रहा हूँ। आप सभी सावचेत हो जाइए। अब तो चितवनि (ध्यान) करने में एक क्षण की भी देरी करना उचित नहीं है। आप भी मेरे साथ ध्यान में लग जाइए, जिससे परमधाम की अनुभूति करके सबके हृदय में आनन्द की वर्षा हो सके।

साथ देखो ए अवसर, वासना करो पेहेचान।

आए पोहोंचे बृज में, याद करो निसान॥२॥

सुन्दरसाथ जी! इस सुनहरे अवसर का लाभ उठाइए।

अब चितवनि द्वारा अपनी आत्मा के स्वरूप की पहचान कीजिए। अब ध्यान द्वारा उन पूर्व की लीलाओं को याद कीजिए। सबसे पहले हम ब्रज में आये थे।

धनिएं देखाया नजरों, सुरतां दैयां फिराए।

अब पैठे हम रास में, उछरंग हिरदे चढ़ आए॥३॥

धनी ने अपनी मेहर की दृष्टि से हमारी सुरता को कालमाया से परे योगमाया के अखण्ड ब्रज में भेजा, जिसे हमने अपनी आत्मिक दृष्टि से देखा। इसके पश्चात् हम रास के ब्रह्माण्ड में गये, जहाँ की अखण्ड प्रेममयी लीला को देखकर हमारे हृदय में आनन्द भर गया।

भावार्थ— इस चौपाई में ध्यान में डूबने पर होने वाली उन अनुभूतियों का वर्णन है कि किस प्रकार हमारी सुरता (आत्मिक दृष्टि) कालमाया के ब्रह्माण्ड से परे

अखण्ड ब्रज और रास में पहुँचती है। परमधाम में परात्म की लीला है, किन्तु परमधाम से बाहर हृद और बेहृद में आत्मा की ही लीला सम्भव है। आत्मा को परात्म (परात्म) का प्रतिबिम्ब कहते हैं। "सिफत ऐसी कही मोमिन की, जाके अक्स का दिल अर्स" का कथन यही सिद्ध करता है। ध्यान में आत्मिक दृष्टि द्वारा ही परमधाम, युगल स्वरूप, तथा अपने मूल तन को देखा जाता है। आत्मा, सुरता, और वासना सभी एकार्थवाची हैं। यह गहन रहस्य का विषय है कि परमधाम में विराजमान परात्म की नजर ही आत्मा या सुरता के रूप में कही जायेगी। "यामें सुरत आई स्यामा जी की सार" (प्रकटवाणी) का कथन यही सिद्ध करता है। ध्यान में आत्मा की दृष्टि ही परमधाम पहुँचती है।

जाग्रत बुध हिरदे आई, अब रहे ना सकें एक खिन।

सुरत टूटी नासूत से, पोहोंची सुरत वतन॥४॥

इस जागनी ब्रह्माण्ड में हमारे हृदय में जाग्रत बुद्धि का प्रवेश है, जिससे हमें निज घर और धनी के स्वरूप की पहचान हो गयी है। अब विरह की अग्नि में एक क्षण के लिये भी इस संसार में नहीं रहा जाता। अब मेरी सुरता इस पृथ्वी लोक से परे परमधाम के ध्यान में लग गयी है।

चिन्हार भई सब साथ में, आई धाम खुसबोए।

प्रेम उपज्या मूल का, सुपन रहेना क्यों होए॥५॥

अब जाग्रत बुद्धि के ज्ञान का प्रकाश फैलने से सुन्दरसाथ को धनी एवं निज घर की सारी पहचान हो गयी है। चितवनि में लग जाने से परमधाम की सुगन्धि भी मिलने लगी है अर्थात् अनुभूति होने लगी है। अब

हृदय में परमधाम का प्रेम पैदा हो गया है। ऐसी स्थिति में भला इस स्वप्नमयी संसार में कैसे रहा जा सकता है।

अब नींद हमारी क्यों रहे, इन बख्त दिए जगाए।

जागे पीछे झूठी भोम में, क्यों कर रहयो जाए॥६॥

धाम धनी ने जाग्रत बुद्धि के ज्ञान से हमें जाग्रत कर दिया है। ऐसी स्थिति में हमारे अन्दर माया की नींद कैसी रह सकती है। जाग्रत हो जाने के पश्चात् इस झूठे ब्रह्माण्ड में भी कैसे रहा जा सकता है।

देख तैयारी साथ की, ओ समया रह्या न हाथ।

अवसर नया उदे हुआ, उमंगियो सब साथ॥७॥

सुन्दरसाथ परमधाम के गहन ध्यान में डूबने के लिये इस प्रकार तैयार हैं कि उनके लिये समय बहुत तेजी से

बीतता हुआ प्रतीत हो रहा है (उनके हाथ में नहीं है)। अब सब सुन्दरसाथ बहुत अधिक उमंग में हैं, क्योंकि परमधाम की वाणी के अवतरित हो जाने के पश्चात् केवल चितवनि के आनन्द में ही डूबे रहने का नया अवसर प्राप्त हुआ है।

भावार्थ- इस चौपाई में श्री लालदास जी और गोवर्धन दास जी के विवाद का कोई प्रसंग नहीं है। विक्रम सम्वत् १७४८ में "मारिफत सागर" की वाणी के अवतरण के पश्चात् श्री महामति जी दिन-रात ध्यान में डूबे रहने लगे तथा सुन्दरसाथ भी उसी राह का अनुसरण करने लगा। इसी को नया अवसर या सुन्दरसाथ की तैयारी कहा गया है।

"समय हाथ में न रहना" एक मुहावरा है, जिसका अभिप्राय यह है कि सुन्दरसाथ चितवनि की ऐसी गहन

अवस्था में पहुँचने लगे कि समय कितनी तेजी से बीतता जा रहा है, इसका पता ही नहीं चलता था।

क्यों रहे सुरतें पकड़ी, एक दूजे के आगे होए।

दौड़ा दौड़ ऐसी हुई, पीछे रहे न कोए॥८॥

भला अब परमधाम की आत्मायें इस संसार को क्यों पकड़े रहेंगी। सभी ध्यान में एक-दूसरे से आगे निकल जाना चाहती हैं। धनी के प्रेम में सर्वस्व न्योछावर करने की ऐसी होड़ (दौड़) पैदा हो गयी है कि कोई भी सुन्दरसाथ किसी से पीछे नहीं रहना चाहता।

कई हुती देस परदेस में, ए बातें सुनियां तिन।

तिनकी सुरतें इत बांधियां, तित रहे न सके एक खिन॥९॥

तारतम ज्ञान का प्रकाश पाने वाले सभी सुन्दरसाथ श्री

पन्ना जी नहीं आ सके थे। कुछ कारणवश उन्हें अपने देश-प्रदेश में ही रह जाना पड़ा था। परमधाम की ब्रह्मवाणी के अवतरण तथा सुन्दरसाथ के चितवनि में डूब जाने की बात जब उन तक पहुँची, तो उन्होंने भी श्री जी के चरणों में अपना ध्यान केन्द्रित कर लिया। वे अपने घरों में एक क्षण के लिये भी माया में नहीं रह सके, अर्थात् वे भी दिन-रात ध्यान में डूब गये।

परदेसैं साथ पसरयो हुतो, तित सबे पड़यो सोर।

यों ठौर ठौर रंग फैलिया, हुआ महंमदी दौर ॥१०॥

बहुत से सुन्दरसाथ पन्ना जी से दूर के प्रदेशों में निवास करते थे। पन्ना जी के सुन्दरसाथ के चितवनि में डूब जाने की खबर उन तक भी जा पहुँची। इस प्रकार चारों ओर परमधाम और युगल स्वरूप की चितवनि का रंग फैल

गया। सभी सुन्दरसाथ श्री जी को अक्षरातीत का स्वरूप मानकर उनके बताये हुए मार्ग पर चलने लगे।

पीछला साथ आए मिलसी, पर अगले करें उतावल।

केताक साथ विचार नीका, सो जानें चलें सब मिल॥११॥

ब्रह्मवाणी से धनी के स्वरूप की पहचान करने वाले सुन्दरसाथ तो भविष्य में ध्यान में लग ही जायेंगे, किन्तु जिनको प्रियतम अक्षरातीत की पहचान हो चुकी है, वे इस बात के लिये उतावले हो रहे हैं कि कब हम युगल स्वरूप तथा परमधाम की चितवनि में डूब जायें। कुछ सुन्दरसाथ के विचार बहुत अच्छे हैं। वे सोचते हैं कि हम सब मिलकर परमधाम के ध्यान में लग जायें।

इन बिध सोर हुआ साथ में, ठौर ठौर पड़ी पुकार।

एक आए एक आवत हैं, एक होत हैं तैयार॥१२॥

इस प्रकार जगह-जगह सुन्दरसाथ में परमधाम की चितवनि की आवाज जोर-शोर से सुनायी पड़ने लगी। धाम धनी के चरणों में कुछ सुन्दरसाथ आ चुके हैं, कुछ आ रहे हैं, तथा कुछ आने के लिये तैयार हो रहे हैं।

ऐसा समया इत हुआ, आए पोहोंचे इन मजल।

कोई कोई लाभ जो लेवहीं, जिन जाग देखाया चल॥१३॥

जागनी का यह ऐसा दौर है, जिसमें सुन्दरसाथ उस मन्जिल पर पहुँच चुका है जहाँ युगल स्वरूप की शोभा को दिल में बसाने के सिवाय अन्य कोई भी चाहत नहीं होती। जिन-जिन सुन्दरसाथ ने चितवनि द्वारा अपने दिल में धनी को बसाया और अपनी आत्मा को जाग्रत

किया, वे ही इस अनमोल समय का लाभ ले सके।

सुध बुध आई साथ में, सुरता फिरी सबन।

कोई आगे पीछे अक्वल, सबे हुए चेतन॥१४॥

धनी की मेहर से सुन्दरसाथ में जाग्रति आई। सबकी सुरता माया से हटकर युगल स्वरूप की शोभा में लग गयी। इस कार्य में कोई तो बहुत आगे हो गया, तो कोई पीछे रह गया। कोई शुरु से ही चितवनि में लगा हुआ था। इस प्रकार अपनी आत्म-जाग्रति के सम्बन्ध में सभी पूरी तरह से सावचेत हो गये।

कोई कोई पीछे रहे गई, तिनकी सुरत रही हम माहें।

ढील करी ज्यों स्वांतसियों, आए अंग पोंहोंचे नाहें॥१५॥

जिस प्रकार ब्रज में बाँसुरी की आवाज सुनने पर भी

स्वांतसी सखियाँ तुरन्त अपने घरों को नहीं छोड़ सकी थीं, उसी प्रकार मेरी वाणी रूपी बाँसुरी की आवाज सुनकर भी कुछ सुन्दरसाथ अपने घरों में ही रह गये। उनके हृदय में ब्रह्मवाणी का प्रकाश तो पहुँचा, किन्तु वे अपना घर-द्वार छोड़कर मेरे पास पन्ना जी तक नहीं पहुँच सके, किन्तु उनकी सुरता मुझसे जुड़ी रही।

कहे महामत परीछा तिन की, जो पेहेले हुए निरमल।

छूटे विकार सब अंग के, आए पोहोंचे इस्क अव्वल॥१६॥

श्री महामति जी कहते हैं कि ब्रह्मवाणी के प्रकाश में स्वयं को जागरुक कर लेने वाले सुन्दरसाथ के लिये यह परीक्षा की घड़ी है। जो सुन्दरसाथ युगल स्वरूप को तथा परमधाम को अपने दिल में ध्यान द्वारा बसाने की राह पर चले, उन्हें सबसे पहले इश्क (अनन्य प्रेम) की

प्राप्ति हुई। उनके हृदय के सभी विकार दूर हो गये तथा वे सबसे पहले निर्मल हो गये।

प्रकरण ॥९२॥ चौपाई ॥१३२०॥

राग श्री

अब हम चले धाम को, साथ अपना ले।

लिख्या कौल फुरमान में, आए पोहोंच्या ए ॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि कुरआन में लिखे हुए वचनों के पूर्ण होने का समय आ गया है। अब मैं परमधाम के सुन्दरसाथ के साथ चितवनि में मग्न हो रहा हूँ।

भावार्थ- कुरआन के पार: ७ व इज़ा समिअू सूर: ६ आयत ३६ में कहा गया है कि मुर्दों को खुदा क्रियामत के दिन उठाएगा और फिर वापस अर्श-ए-अजीम ले जायेगा, अर्थात् रूहों (ब्रह्ममुनियों) को एक जमां की नमाज पढ़ाकर वापस ले जायेगा।

"अर्स बका पर सिजदा, करावसी इमाम।" श्री जी के

द्वारा सबको शरीयत और तरीकत से हटाकर परमधाम की चितवनि में लगाया गया , जिससे हकीकत और मारिफत की राह मिली। अपनी आत्मा को जाग्रत करने के लिये प्रेममयी चितवनि के अतिरिक्त अन्य कोई हकीकत और मारिफत की राह नहीं है। इस सम्पूर्ण प्रकरण में परमधाम की शोभा और लीला का वर्णन करके सबको चितवनि करने के लिये प्रेरित किया गया है।

सखी हम तो हमारे घर चले, तुम हूजो हुसियार।

सुरता आगे चल गई, हम पीठ दई संसार॥२॥

हे सुन्दरसाथ जी! हम तो अपने परमधाम के ध्यान में तल्लीन हो गये हैं। आप भी सावचेत (सावधान) हो जाना अर्थात् इस छलनी माया के जाल में न फँसना। हमने

संसार से नाता तोड़ दिया है और अपनी सुरता को परमधाम में लगा दिया है।

भावार्थ- "पीठ देना" एक मुहावरा है जिसका भाव होता है- सम्बन्ध तोड़ लेना या बिल्कुल ही भुला देना। योग दर्शन का कथन है - "चित्तवृत्ति निरोधः योगः" अर्थात् चित की वृत्तियों का निरोध ही योग है। इसका अभिप्राय यह है कि अपनी चित्त-वृत्तियों को माया में भटकने (फँसने) से रोक देने पर योग की स्थिति प्राप्त होती है। इसी को बोलचाल की भाषा में "चितवनि" कहते हैं, जिसका तात्पर्य होता है- संसार से अपना ध्यान हटाकर प्रियतम में लग जाना।

हममें पीछे कोई ना रहे, और रहो सो रहो।

गुन अवगुन सबके माफ़ कीऐ, जिन जो भावे सो कहो॥३॥

मुझे आशा है कि हममें से कोई भी सुन्दरसाथ अब चितवनि में पीछे नहीं रहेगा। यदि आलस्य और प्रमाद के कारण कोई इसमें भी पीछे रहता है, तो वह रहे। इससे अधिक मैं और क्या कहूँ। मैंने अब सभी के गुणों और अवगुणों को क्षमा कर दिया है। अब जिसको जो भी अच्छा लगे, वह कहा करे। मुझे उस पर कोई भी आपत्ति नहीं।

भावार्थ- गुण और अवगुण की विशेष व्याख्या ८८/१४ में हो चुकी है। इस चौपाई का मुख्य भाव यही है कि जिसको श्री जी पर थोड़ी सी भी श्रद्धा होगी, वह परमधाम की चितवनि अवश्य करेगा। इससे आगे की चौपाइयाँ इसी बात को प्रमाणित करती हैं।

अब हम रह्यो न जावहीं, मूल मिलावे बिन।

हिरदे चढ़ चढ़ आवहीं, संसार लगत अगिन ॥४॥

मूल मिलावा के दीदार बिना इस संसार में मुझसे नहीं रहा जा रहा है। मेरी आत्मा के हृदय में मूल मिलावा की शोभा बार-बार आ रही है। अब मुझे संसार अग्नि के समान कष्टकारी लग रहा है।

भावार्थ- महामति जी के तन से तो सम्पूर्ण परिक्रमा, सागर, तथा श्रृंगार ग्रन्थ का अवतरण हुआ है। उनके द्वारा मूल मिलावा के दर्शन की व्याकुलता का जो वर्णन है, वह सुन्दरसाथ को सिखापन देने के लिये है। जिस प्रकार किसी मकान में आग लग जाने पर उसे छोड़ना ही पड़ता है, उसी प्रकार इस चौपाई में संसार को अग्नि के समान त्याज्य बताया गया है। "संसार लगत अगिन" का यही भाव है।

सोई बस्तर सोई भूखन, सोई सेज्या सिनगार।

सोई मेवा मिठाइयां, अलेखें अपार ॥५॥

मेरी आत्मा परमधाम के नूरी वस्त्रों-आभूषणों, सेज्या (शैय्या), तथा श्रृंगार को देख रही है। शब्दों में वर्णन न हो सकने वाली अनन्त प्रकार की मिठाइयों तथा मेवों का भी अनुभव हो रहा है।

भावार्थ- स्वलीला अद्वैत परमधाम में मेवा, मिठाइयों, तथा वस्त्र-आभूषणों का वर्णन लौकिक रूप में नहीं समझना चाहिए। यह सभी मात्र लीला रूप में हैं और परब्रह्म के ही नूरी स्वरूप हैं। आगे की चौपाइयों में वर्णित शोभा में भी यही भाव होगा।

सोई धनी सोई वतन, सोई मेरो सुन्दरसाथ।

सोई विलास अब देखिए, दोरी खँची उनके हाथ ॥६॥

हे सुन्दरसाथ जी! अब अपने परमधाम की उस शोभा और आनन्द को देखिये। उस मूल मिलावा में हमारे धनी कैसे विराजमान हैं तथा उनको घेरकर किस प्रकार मेरे सुन्दरसाथ बैठे हुए हैं। मेरी सुरता की रस्सी तो धनी के ही हाथों में है। उसे खींचकर वे परमधाम ले जा रहे हैं।

सोई चौक गलियां मंदिर, सोई थंभ दिवालें द्वार।

सोई कमाड़ सोई सीढ़ियां, झलकारों झलकार॥७॥

मेरी आत्मा की नजरों के सामने झलकार करते हुए वही चौक, गलियाँ, मन्दिर, थम्भ, दीवारें, और दरवाजे दिखायी पड़ रहे हैं। झिलमिलाते हुए कपाटों तथा सीढ़ियों की शोभा अति मनोहारी है।

सोई मोहोल सोई मालिए, सोई छजे रोसन।

सोई मिलावे साथ के, सोई बोलें मीठे वचन॥८॥

परमधाम के नूर से प्रकाशमान वही महल, उनकी मन्जिलें (भोमें), तथा जगमगाते हुए छजे दिखायी पड़ रहे हैं। सुन्दरसाथ के बीच में होने वाली अमृतमयी-मीठी बातों का हृदय में अनुभव हो रहा है।

सोई झरोखे धाम के, जित झांकत हम तुम।

सो क्यों ना देखो नजरों, बुलाइयां खसम ॥९॥

हे सुन्दरसाथ जी! आपको धनी परमधाम में बुला रहे हैं। आप अपनी आत्मिक नजरों से परमधाम के उन झरोखों को क्यों नहीं देखते हैं, जिनमें से हम और आप झाँककर बाहर की शोभा को देखते रहे हैं।

सोई खेलना सोई हंसना, सोई रस रंग के मिलाप।

जो होवे इन साथ का, सो याद करो अपना आप॥१०॥

जो परमधाम के सुन्दरसाथ हैं, वे स्वयं अपनी उस लीला को याद करें, जिसमें वे आपस में अति प्रेमपूर्वक हँसते-खेलते रहे हैं और आनन्दपूर्वक मिलते रहे हैं।

सोई चाल गत अपनी, जो करते माहें धाम।

हंसना खेलना बोलना, संग स्यामा जी स्याम॥११॥

हे साथ जी! आप चितवनि द्वारा परमधाम की अपनी उस चाल (लीला या व्यवहार) और उस अवस्था को याद कीजिए, जिसमें आप श्री राजश्यामा जी के साथ अति प्रेमपूर्वक हँसते-खेलते रहे हैं और अमृत से भी अधिक मीठे शब्दों से बातें करते रहे हैं।

सोई बातें प्रेम की, सोई सुख सनेह।

सुख अखंड को भूल के, क्यों रहे झूठी देह॥१२॥

हे साथ जी! परमधाम के प्रेम की वही बातें तथा प्रेम के वही सुख मेरे हृदय में अनुभूत हो रहे हैं। आप परमधाम के उन अखण्ड सुखों को भूलकर माया के झूठे शरीर के मोह में क्यों फँसे पड़े हैं।

सोई सेज्या सोई मन्दिर, सोई पिउ जी को विलास।

सोई मुख के मरकलड़े, छूटी अंग की आस॥१३॥

मुझे परमधाम के मन्दिरों, उनमें स्थित सुख-सेज्याओं, तथा प्रियतम के साथ होने वाली आनन्दमयी लीलाओं की अनुभूति हो रही है। प्रियतम श्री राज जी के मुस्कराते हुए मुख की शोभा को देखकर तो इस झूठे शरीर में रहने की इच्छा ही नहीं होती।

सोई रसीले रंग भरे, निरखें नेत्र चढ़ाए।

सुन्दर मुख सनकूल की, भर भर अमृत पिलाए॥१४॥

मुझे यह अनुभव हो रहा है कि श्री राज जी का मुखारविन्द अति सुन्दर है और प्रसन्नता की मस्ती से भरपूर है। उनके नेत्र इश्क के रस और आनन्द से लबालब भरपूर हैं। अपने उन नेत्रों से वे हमारी तरफ निहारते हैं और उसमें प्रेम का अमृत भर-भरकर हमें पिलाते हैं अर्थात् हमें प्रेम का आनन्द देते हैं।

सोई कटाछे स्याम की, सींचत सुरत चलाए।

बंके नैन मरोर के, दृष्टें दृष्ट मिलाए॥१५॥

प्रियतम के नेत्र बाँके (तिरछे) हैं। उनकी नजर भी तिरछी (प्रेममयी) है। जब वे अपनी तिरछी नजरों से हमारे नेत्रों की ओर देखते हैं, तो हमारी आत्मा उनके

प्रेम रूपी अमृत से सिंचित हो जाती है अर्थात् प्रेम में मदमस्त हो जाती है।

कहा कहूं सुख साथ को, देखें भृकुटी भौंह चढ़ाए।

सुखकारी सीतल सदा, सुख कहा केहेसी जुबांए॥१६॥

श्री राज जी की प्रेममयी तिरछी नजर हमेशा सुखकारी और शीतल होती है। जब वे अपनी भौंहों को टेढ़ा करके अति प्रेममयी दृष्टि से सुन्दरसाथ को देखते हैं, तो उस समय सुन्दरसाथ को इतना अधिक सुख होता है कि उसका यहाँ की वाणी (जबान) से वर्णन नहीं हो सकता।

भावार्थ— दोनों भौंहों के बीच के स्थान को भृकुटी कहते हैं। इसकी स्थिति वैसे ही होती है— जैसे लकड़ी के धनुष के बीचों-बीच बाण रखने वाले स्थान की होती है। जिस नेत्र से प्रेममयी तीर चलाया जाता है, उसकी तरफ से

भृकुटी तक का हिस्सा कुछ टेढ़ा हो जाता है, इसे ही "भृकुटी भौंह चढ़ाए" कहते हैं।

सुच्छम सरूप ने सुंदरता, उनमद सारे अंग।

बराबर एकै भांत के, और कई विध के रस रंग॥१७॥

श्री राज जी का स्वरूप अति सुन्दर और त्रिगुणातीत (सूक्ष्म) है। उनके सभी अंग प्रेम की मस्ती से भरे हुए हैं। सभी अंगों की सुन्दरता समान रूप से बराबर है, अर्थात् किसी भी अंग की सुन्दरता कम या अधिक नहीं है। उनके अंग-अंग में अनेक प्रकार के इश्क और आनन्द के रंग भरे पड़े हैं।

एक दूजे के चित्त पर, चाल चले माहों माहें।

पात्र प्रेम प्रीत के, हांस विनोद बिना कछू नाहें॥१८॥

परमधाम में सुन्दरसाथ आपस में एक-दूसरे के चित्त के अनुसार ही व्यवहार करता है। प्रेम-प्रीति ही इनका स्वरूप है, अर्थात् इनके रोम-रोम में प्रेम समाया होता है। इनकी लीला में प्रेममयी हँसी और विनोद के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं होता।

भावार्थ- जिस प्रकार यश में बीज रूप से कीर्ति, अहंकार में अस्मिता, तथा सौन्दर्य में शोभा का अस्तित्व होता है, उसी प्रकार प्रेम में प्रीति का अस्तित्व होता है। परमधाम की हँसी और विनोद को लौकिक रूप से नहीं देखना चाहिए। इसका वास्तविक अनुभव ब्राह्मी अवस्था में आने पर ही होता है।

बोए नेक आवे इन घर की, तो अंग निकसे आहे।

सो तबहीं ततखिन में, पिउ जी पे पोहोंचाए॥१९॥

यदि ऐसे परमधाम की थोड़ी भी सुगन्धि आ जाये , अर्थात् थोड़ा भी अनुभव हो जाये, तो हृदय से निकलने वाली विरह की एक ही आह में आत्मा शरीर को छोड़कर अपने प्रियतम के पास पहुँच जायेगी।

भावार्थ- यदि परमधाम की थोड़ी सी अनुभूति से विरह में शरीर के छूट जाने की सम्भावना होती है, तो यह प्रश्न खड़ा होता है कि श्री लालदास जी तथा युगलदास जी ने परमधाम का इतना विस्तारपूर्वक वर्णन कैसे कर दिया? यदि यह कहा जाये कि धनी के हुक्म से वैसा वर्णन करवाना था इसलिये शरीर को सुरक्षित रखा गया, तो यह भी शंका पैदा होती है कि अनेक परमहंसों ने परमधाम का दीदार तो किया किन्तु उसे लेखनी में बद्ध नहीं किया। दीदार पाने के बाद भी वे कई वर्षों तक जागनी कार्य करते रहे। तो क्या श्रीमुखवाणी की इस

चौपाई का इन घटनाओं से विरोध है?

वस्तुतः इस चौपाई का मुख्य भाव यही है कि अनन्त शोभा वाले परमधाम की जरा सी भी झलक मिल जाने पर आत्मा में विरह की ऐसी अग्नि पैदा हो जाती है कि उसको सारा संसार अग्नि की लपटों के समान कष्टकारी प्रतीत होने लगता है। इस चौपाई में विरह की अभिव्यक्ति है। "ए दोऊ तन तले कदम के, आतम परआतम।" शरीर का छूटना या न छूटना धनी की कृपा पर निर्भर है। इसका दीदार से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। यदि परमधाम और युगल स्वरूप के दीदार से शरीर छूटने की सम्भावना हो सकती है, तो परिक्रमा, सागर, और श्रृंगार ग्रन्थ की उपयोगिता क्या है। पुनः कीर्तन (किरंतन) ग्रन्थ के इन प्रकरणों में चितवनि के लिये बार-बार क्यों प्रेरित किया जा रहा है।

याद करो जो मांगिया, धनिएं खेल देखाया कर हेत।

महामत कहें मेहेबूब के, सुख में हो सावचेत॥२०॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! आप उस प्रसंग को याद कीजिए, जिसमें आपने परमधाम में धनी से माया का खेल माँगा था। धनी ने हमारी इच्छा पूरी करने के लिये बहुत लाड-प्यार से यह खेल दिखाया है। अब आप इस बात के लिये सावधान हो जाइए कि इस माया में बैठे-बैठे प्रियतम के अखण्ड सुखों का अनुभव करना है।

प्रकरण ॥९३॥ चौपाई ॥९३४०॥

राग श्री गौड़ी

सुनो साथ जी सिरदारो, ए कीजो वचन विचार।

देखो बाहेर माहें अन्तर, लीजो सार को सार जो सार॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सरदार (प्रमुख) सुन्दरसाथ जी! मेरे इन वचनों का जाग्रत बुद्धि से विचार कीजिए। आप अपने अन्दर (पिण्ड), बाहर (ब्रह्माण्ड), एवं उससे भी परे अखण्ड परमधाम को आत्मिक ज्ञान की दृष्टि से देखिए। और इन सबके सार रूप तारतम, उसके भी सार जागनी, एवं उसके भी सार धनी के स्वरूप की पहचान कीजिए।

द्रष्टव्य— यद्यपि वाहिदत की दृष्टि से सुन्दरसाथ में कोई प्रमुख नहीं होता, किन्तु इस जागनी ब्रह्माण्ड में जिनके अन्दर ईमान, इश्क, इलम है, तथा जिन्हें जागनी का

विशेष उत्तरदायित्व सौंपा गया है, उन्हें ही प्रमुख (सरदार) सुन्दरसाथ कहा गया है।

सुन्दरबाई कहे धाम से, मैं साथ बुलावन आई।

धाम से ल्याई तारतम, करी ब्रह्माण्ड में रोसनाई॥२॥

सुन्दरबाई (श्री श्यामा जी) कहती हैं कि मैं परमधाम से सुन्दरसाथ को बुलाने के लिये आयी हूँ। मैंने परमधाम से तारतम ज्ञान का उजाला लाकर इस ब्रह्माण्ड में अखण्ड ज्ञान का उजाला कर दिया है।

द्रष्टव्य— सुन्दरबाई और श्यामा जी को अलग-अलग मानना श्रीमुखवाणी के विपरीत है। यह मान्यता पुराण संहिता की देन है, जिसमें कहा गया है कि "स्वामिनी वासना साक्षात् आविष्टा सुन्दरी मनः" (पुराण संहिता ३४/४३)। यथार्थ में प्रकास हिन्दुस्तानी का यह कथन

पूर्णतया मान्य है, जिसमें कहा गया है कि "सुन्दरबाई श्यामा जी नाम, मत्तू मेहता घर अवतार।" इस प्रकार सुन्दरबाई नाम श्यामा जी का ही सिद्ध होता है।

सो सुन्दरबाई धाम चलते, जाहेर कहे वचन।

आड़ी खड़ी इन्द्रावती, कहे मैं रहे ना सकों तुम बिन॥३॥

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने अपने पञ्चभौतिक तन का त्याग करते समय यह बात प्रत्यक्ष में कही थी कि मेरी राह में इन्द्रावती की आतम खड़ी है। वह कह रही है कि इस संसार में मैं आपके बिना नहीं रह सकती हूँ।

भावार्थ— "राह में खड़े होना" एक मुहावरा है जिसका अर्थ होता है— प्रतिरोध करना। यहाँ बाह्य अर्थ लेना उचित नहीं है।

दई दिलासा बुलाए के, मैं लई सिखापन।

रूह अल्लाह के फुरमान में, लिखे जामे दोए तन॥४॥

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने मुझे बुलाकर सान्त्वना दी और समझाया। मैंने उनके द्वारा दी हुई सिखापन को ग्रहण किया। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने बताया कि कुरआन में लिखा हुआ है कि श्यामा जी दो तनों में विराजमान होकर लीला करेंगी।

मूल सरूप बीच धाम के, खेल में जामें दोए।

हरा हुल्ला सुपेत गुदरी, कहे रूह अल्ला के सोए॥५॥

परमधाम में श्यामा जी का मूल तन एक है, किन्तु इस जागनी ब्रह्माण्ड में उन्हें दो तनों में लीला करनी है। कुरआन में कहा गया है कि पहले तन का वस्त्र हरे रंग का होगा तथा दूसरे तन का वस्त्र श्वेत रंग का होगा।

भावार्थ- हरा रंग परमधाम के ऐश्वर्य तारतम ज्ञान के अवतरण का प्रतीक है। श्री इन्द्रावती जी कहती हैं-

बोहोत धन ल्याए धनी धाम थे, विध विध को प्रकार।

सो ए सब मैं तोलिया, तारतम सबमें सार॥

कलस हिन्दुस्तानी २३/५४

इसी प्रकार श्वेत रंग ज्ञान की पूर्णता का प्रतीक है। संसार के सभी रंगों को मिलाने पर श्वेत रंग बनता है। इसी प्रकार संसार के सभी धर्मग्रन्थों का सारभूत रहस्य जिस ब्रह्मवाणी में निहित है, उसे अवतरित करने वाले स्वरूप को श्वेत रंग से दर्शाया गया है।

हदीसों भी यों कह्या, आखिर ईसा बुजरक।

इमाम ज्यादा तिन सैं, जिन सबों पोहोंचाए हक॥६॥

हदीसों में भी ऐसा कहा गया है कि वक्त आखिरत को

(कियामत के समय) ईसा रूह अल्लाह (श्यामा जी) की महिमा बहुत होगी। किन्तु उनसे भी अधिक महिमा आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिब्बुज्जमां (श्री प्राणनाथ जी) की होगी। यही स्वरूप सबको सच्चिदानन्द परब्रह्म की पहचान करायेगा।

भावार्थ- मुहम्मद (सल्ल.) ने हदीस में कहा है कि मेरे बाद नबुवत नहीं है। केवल एक "अहमद बुखारी शरीफ" अवतरित होंगे, वह बकैतुल्लाह (बाकी रहने वाले) एवं हुज्जतुल्लाह (दिव्य तर्कों) से पूर्ण हैं। उनकी वाणी की कोई काट नहीं होगी। वही इस्लाम में फैली बुराइयों को दूर करके दीन को ताज़ा करके (नये सिरे से खड़ा करके) सारे धर्म-सम्प्रदायों का एकीकरण कर देंगे। अतः इनकी महिमा अनन्त है। आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिब (श्री जी साहिब) या मुहम्मद साहिब ही हैं, जिन्होंने दो

जामे में जागनी लीला करके सबका एकीकरण किया है।

खासी गिरो के बीच में, आखिर इमाम खावंद होए।

ए जो लिख्या फुरमान में, रुहअल्ला के जामें दोए॥७॥

कुरआन में लिखा है कि श्यामा जी दो तनों को धारण करेंगी और आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिबबुज्जमां ब्रह्मसृष्टियों और ईश्वरी सृष्टि के अन्दर सच्चिदानन्द परब्रह्म के रूप में माने जायेंगे।

भी कहा बानीय में, पांच सरूप एक ठौर।

फुरमान में भी यों कहा, कोई नहीं या बिन और॥८॥

वाणी में भी यह बात कही गयी है कि धनी की पाँचों शक्तियाँ (जोश, श्यामा जी, अक्षर ब्रह्म, जाग्रत बुद्धि, तथा हुक्म के रूप में धनी की आवेश शक्ति) एक ही तन

(श्री इन्द्रावती जी) के अन्दर लीला करेंगी। कुरआन में भी इन पाँचों शक्तियों का वर्णन (सूरा नास में) लिखा है। कुरआन में यह बात स्पष्ट रूप से कही गयी है कि इनके अतिरिक्त अन्य कोई भी हादी या पूज्य नहीं होगा।

भावार्थ— इस चौपाई में "बानीय" शब्द से तात्पर्य हिन्दू धर्मग्रन्थों पुराण संहिता, माहेश्वर तन्त्र, तथा बुद्ध गीता आदि से है। यद्यपि इन ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से यह नहीं लिखा है कि परब्रह्म की पाँचों शक्तियाँ एक तन में होंगी, किन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थ के सार तत्व का विवेचन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है। कुरआन में पाँचों शक्तियों के एक तन में लीला करने का वर्णन है।

कहे सुन्दरबाई अछरातीत से, खेल में आया साथ।

दोए सुपन ए तीसरा, देखाया प्राणनाथ॥९॥

श्यामा जी कहती हैं कि अक्षरातीत के परमधाम से सुन्दरसाथ खेल में आया हुआ है। धाम धनी श्री प्राणनाथ जी हमें ब्रज और रास का सपने का खेल, तत्पश्चात् जागनी का यह तीसरा खेल दिखा रहे हैं।

भावार्थ- यह जिज्ञासा होती है कि जागनी का यह ब्रह्माण्ड भी तो ब्रज की तरह कालमाया का है, फिर भी इसे जागनी लीला से जोड़ते हैं, जबकि योगमाया के अन्दर होने वाली अखण्ड रास लीला को स्वप्न की लीला क्यों मानते हैं?

योगमाया का ब्रह्माण्ड नूरी एवं त्रिगुणातीत होते हुए भी स्वप्न के समान इसलिये माना गया है, क्योंकि रास में हमें परमधाम के बारे में कोई भी जानकारी नहीं थी। जागनी लीला यद्यपि स्वप्न के ब्रह्माण्ड में हो रही है, फिर भी ब्रह्मवाणी के अवतरित हो जाने के कारण यहाँ

सुन्दरसाथ परमधाम के सुखों का रसास्वादन कर रहा है, इसलिये इसे जागनी का ब्रह्माण्ड कहते हैं।

कहे फुरमान नूर बिलंद से, खेल में उतरे मोमिन।

खेल तीन देखे तीन रात में, चले फजर इनका इजन॥१०॥

कुरआन में लिखा है कि परमधाम से माया का खेल देखने के लिये ब्रह्ममुनि (मोमिन) अवतरित हुए हैं। रात्रि के तीन हिस्सों में इन्होंने तीन खेल देखे हैं। ज्ञान दृष्टि से प्रातःकाल हो जाने पर संसार पर इनका ही हुक्म चलेगा।

भावार्थ— कुरआन के अम्म पारः तीसवें पारे सूरः कद्र ९७ इन्ना अन्ज़ल्लानाहु फ़ी लै— लतिल् कद्रि— ज ला (१) व मां अद्रा— क मा लै— लतुल् कदर— त (२) लै— लतुल् कदरि ला ५ ख़ैसम् मिन् अल्फ़ि शहर — त (३) त— नज़्ज़लुल् मलोइ — कतु वरूहु फ़ीहा बि— इज्जिन

रब्बिहिम् मिन् कुल्लि अम्रिन् - ला (४) सलामुन का फ़
हि-य हत्ता मत- लअिल् फ़ज्रि - ए (५) में वर्णित है
कि इन्ना-इन्जुलाना हू फिल। इसमें रूहों और फरिश्तों
(ईश्वरी सृष्टि) का इस नश्वर जगत् में आना वर्णित है।

(लैल तुल कद्र) इस प्रकार की लम्बी रात्रि के तीन
तकरार (हिस्से) हैं- १. ब्रज २. रास ३. जागनी।
जिसको जिस तन से अक्षरातीत की पहचान होगी, उस
पर उसका हुक्म चलेगा ही।

यों बिध बिध दृढ़ कर दिया, दे साख धनी फुरमान।

अपनी अकल माफक, केहे केहे मुख की बान॥११॥

इस प्रकार सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने कुरआन की
साक्षियाँ देकर अनेक प्रकार से दृढ़ कर दिया। उन्होंने
अपने मुखारविन्द से अपनी समझ के अनुसार संक्षिप्त

रूप में कुरआन की बातों को स्पष्ट किया।

भावार्थ- सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्दर इस्राफिल (जाग्रत बुद्धि) अवश्य विराजमान था, लेकिन अक्षर ब्रह्म की आत्मा (मुहम्मद) के न होने से कुरआन का विशिष्ट ज्ञान होना सम्भव नहीं था। यह कार्य दूसरे जामें में मेड़ता से प्रारम्भ हुआ।

इत महम्मद को मिल चले, तब अहमद पाया खिताब।

ईसा और महंमद मिले, मारे दज्जाल सिताब।।

बीतक

इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित "अपनी अकल माफक" का यही भाव है।

धनी फुरमान साख लेय के, देखाए दई असल।

सो फुरमाया छोड़ के, करें चाह्या अपने दिल॥१२॥

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने धनी के आदेश पत्र कुरआन की साक्षी देकर मेरे अन्दर बैठे हुए युगल स्वरूप की पहचान करा दी है। फिर भी नस्लवाद के समर्थक, जो बिहारी जी के अनुयायी हैं, उनके कथनों को छोड़कर अपने मन के अनुसार वंशानुगत गादीवाद को थोपना चाह रहे हैं।

भावार्थ- सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने सबके सामने यह बात कही थी कि मेरे बाद मिहिरराज के तन से लीला होनी है, फिर भी बालबाई के नेतृत्व में वंशवाद के आधार पर बिहारी जी को गादी पर बैठाया गया।

तोड़त सरूप सिंघासन, अपनी दौड़ाए अकल।

इन बातों मारे जात हैं, देखो उनकी असल॥१३॥

बिहारी जी के अनुयायी श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय

के सिंहासन पर विराजमान युगल स्वरूप को न मानकर अपनी लौकिक बुद्धि से बिहारी जी को मात्र इसलिए ही अक्षरातीत मानते हैं कि वे सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के पुत्र हैं और गादी पर बैठे हैं। यदि इनके आध्यात्मिक स्तर को देखा जाये, तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि इन्हें धनी के वास्तविक स्वरूप की पहचान नहीं है, जिसके कारण ये लोग अन्धकार में ही भटकते रहते हैं।

भावार्थ- अपनी सांसारिक बुद्धि से इन्होंने यह मान्यता बना ली है कि गादी पर विराजमान हो जाने एवं सद्गुरु महाराज के सुपुत्र होने से ही बिहारी जी अक्षरातीत के स्वरूप हैं। इन्हें श्री मिहिरराज जी के धाम हृदय में विराजमान युगल स्वरूप की कोई पहचान नहीं है। ये लोग गादी और अपने स्थान (चाकला मन्दिर) की महिमा गाकर श्री मिहिरराज जी को बिहारी जी की

छत्रछाया में रखना चाहते हैं। इसी को कहा गया है –
"तोड़त सरूप सिंघासन।"

बिना दरद दौड़ावे दानाई, सो पड़े खाली मकान।

इस्क नाहीं सरूप बिना, तो ए क्यों कहिए ईमान॥१४॥

जिनके हृदय में विरह का दर्द नहीं होता, केवल वाक् चातुर्य भरा होता है, उनका हृदय उस सूने मकान की तरह होता है जिसमें कोई रहने वाला (प्रियतम) नहीं होता। जब प्रियतम की पहचान ही नहीं, तो इश्क भला कहाँ से आ जायेगा। ऐसे लोगों को धनी के ईमान पर भी आस्थावान कैसे कहा जा सकता है।

भावार्थ– श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की पहचान के बिना हृदय में इश्क आना सम्भव नहीं है। बिहारी जी महाराज के समर्थक श्री जी से द्वेष करते रहे और सद्गुरु

धनी श्री देवचन्द्र जी के प्रति अपनी आस्था का ढोल पीटते रहे। उन्हें यह पहचान ही नहीं हो पायी कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी (युगल स्वरूप) तो श्री मिहिरराज जी के धाम हृदय में ही विराजमान हैं। इस चौपाई में यही बात बतायी गयी है।

दरदी जाने दिल की, जाहेरी जाने भेख।

अंतर मुस्किल पोहोंचना, रंग लाग्या उपला देख॥१५॥

धाम हृदय में विराजमान होने वाले स्वरूप की पहचान तो विरह की तड़प का अनुभव करने वाली (ब्रह्मसृष्टि) ही कर सकती है। जीव सृष्टि (जाहिरी) तो मात्र वेष-भूषा (गादी या वंशवाद) के ही महिमा-गायन में स्वयं को कृतार्थ मानती है। वे बाहरी चमक-दमक को ही सब कुछ मान लेते हैं। उनके लिये धाम हृदय में विराजमान

धनी को पहचानना बहुत कठिन होता है, अर्थात् बिहारी जी के सुन्दरसाथ के लिये श्री जी की पहचान बहुत कठिन रही।

इन विध सेवें स्याम को, कहे जो मुनाफक।

कहावें बराबर बुजरक, पर गई न आखिर लों सक॥१६॥

ऊपर से सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के प्रति निष्ठावान तथा अन्दर से बिहारी जी के कट्टर समर्थक एक प्रकार से मुनाफिक ही हैं, क्योंकि जिस श्री देवचन्द्र जी के प्रति वे श्रद्धा रखते हैं, वे श्री मिहिरराज जी के अन्दर हैं जिनसे वे द्वेष रखते हैं। इस प्रकार श्री राज जी के प्रति उनकी श्रद्धा भावना अन्धेरे में भटकने जैसी है। गादी स्थान से जुड़े होने के कारण वे अपने आपको बड़ा समझते हैं, लेकिन अन्त तक उनका संशय नहीं गया कि

हमारे धनी कहाँ हैं- श्री बिहारी जी के अन्दर या श्री मिहिरराज जी के अन्दर।

मूल न लेवें माएना, लेत उपली देखा देख।

असल सरूप को दूर कर, पूजत उनका भेख॥१७॥

ये लोग वास्तविक सत्य को जानने का कोई भी प्रयास नहीं करते, बल्कि एक-दूसरे की देखा-देखी ऊपरी चीजों को ही सब कुछ मान लेते हैं। श्री देवचन्द्र जी (युगल स्वरूप) को श्री मिहिरराज जी के धाम हृदय में न खोजकर गादी, फोटो, वृक्ष आदि में खोजा करते हैं। इस प्रकार ये स्वरूप से दूर होकर बाह्य रूप की पूजा में स्वयं को लगा देते हैं।

भावार्थ- स्वरूप को छोड़कर रूप की पूजा अध्यात्म की वास्तविक राह से भटकाने वाली है। इस सम्बन्ध में

कुरआन पारा ७ आयत १४२-१५४ में स्पष्ट रूप से वर्णन है। उसका संक्षिप्त भाव इस प्रकार है-

जब मूसा पैगम्बर चालीस दिनों के लिये कोहतूर पर्वत पर गये, तो उन्होंने हारून को अपनी उम्मत की जिम्मेदारी सौंप दी। जब वे लौटकर आये तो उन्होंने देखा कि मेरी उम्मत तो सोने के बछड़े को ही खुदा का स्वरूप मानकर पूजा कर रही है। इस बात पर उन्होंने हारून को बहुत अधिक फटकार लगाई।

इत बात बड़ी है समझ की, और ईमान का काम।

साथ जी समझ ऐसी चाहिए, जैसा कहा अल्ला कलाम॥१८॥

हे सुन्दरसाथ जी! यहाँ बहुत अधिक विवेक दृष्टि तथा धाम धनी पर अटूट ईमान की आवश्यकता है। धनी ने अपने आदेश पत्र कुरआन में जो कुछ कहा है, वह सत्य

है। हमारी धनी के प्रति वैसी ही एकनिष्ठ भावना होनी चाहिए, जैसा कुरआन में लिखा है।

भावार्थ- कुरआन का स्पष्ट कथन है कि एकमात्र सच्चिदानन्द परब्रह्म ही उपास्य हैं। इसी प्रकार वेद का कथन है कि परब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कोई भी उपास्य नहीं है। वेदान्त का स्पष्ट निर्देश है कि साधना में किसी अनात्म (जड़) वस्तु में धारणा न करके चेतन ब्रह्म के स्वरूप में ही करनी चाहिए। अब हमारे ईमान की यह परीक्षा है कि हम किसका ध्यान करते हैं।

जेती बातें कहूँ साथ जी, तिनके देऊं निसान।

और मुख थें न बोलहूँ, बिना धनी फुरमान॥१९॥

हे सुन्दरसाथ जी! मैं जो कुछ भी आपसे कहूँगा, उसका कोई न कोई प्रमाण अवश्य दूँगा। धनी के आदेश पत्र

कुरआन या अन्य धर्मग्रन्थों की साक्षी दिए बिना मैं अपने मुख से कुछ भी नहीं कहूँगा।

भावार्थ- मन में स्वाभाविक रूप से बार-बार यह जिज्ञासा पैदा होती है कि साक्षी के रूप में कुरआन को इतनी महत्ता क्यों दी गयी है?

इस सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि कुरआन का अवतरण ब्रह्ममुनियों के इस संसार में आने से लगभग १००० वर्ष पहले हुआ है। इसका मूल उद्देश्य है कियामत के समय में अवतरित होने वाले अलौकिक ब्रह्मज्ञान तथा श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की पहचान कराना। वेद, उपनिषद, पुराण संहिता, माहेश्वर तन्त्र आदि में परब्रह्म के धाम, स्वरूप, लीला, तथा उनके प्रकटन के सम्बन्ध में स्पष्ट प्रमाण हैं। किन्तु कतेब परम्परा में कुरआन के अतिरिक्त इस प्रकार का कोई भी

स्पष्ट ज्ञान नहीं है। जागनी लीला में घटित होने वाली अनेक घटनाओं की भविष्यवाणी भी कुरआन में है, इसलिये अनेक प्रसंगों में कुरआन की साक्षियों का उल्लेख है।

इन फुरमान में ऐसा लिख्या, करे पातसाही दीन।

बड़ी बड़ाई होएसी, पर उमराओं के आधीन॥२०॥

कुरआन में ऐसा लिखा है कि धर्म के अग्रगण्य (उत्तराधिकारी, गादीपति) लोगों का धर्म में वर्चस्व होगा। यद्यपि उस समय ब्रह्मवाणी की बहुत महिमा होगी, लेकिन धार्मिक क्षेत्र में आधिपत्य धर्माधिकारियों का ही होगा।

भावार्थ— "उमराह" का अर्थ होता है— उत्तराधिकारी, धर्माधिकारी, या धार्मिक पद पर बैठा हुआ धनवान धर्म

अधिकारी। वस्तुतः प्रत्येक मत, पन्थ में प्रायः इन्हीं का वर्चस्व देखा जाता है। धर्माधिकारी वर्ग, धर्म और अध्यात्म के गहन रहस्यों का सम्यक बोध न होने पर भी अपने पद के उपयोग से अपनी मान्यताओं को थोपने में सफल हो जाता है, क्योंकि पद के प्रभाव से उन्हें काफी जन-समर्थन मिलता है।

कहे कुरान बंद करसी, इनके जो उमराह।

एक तो करसी बन्दगी, और जो कहे गुमराह॥२१॥

कुरआन में यह बात स्पष्ट रूप से कही गयी है कि भविष्य में होने वाले धर्माधिकारी वास्तविक ज्ञान का प्रचार बन्द कर देंगे। वे मात्र शरीयत-तरीकत की ही बन्दगी करेंगे, और दूसरों को भी इसी में उलझाकर भटका देंगे, तथा हकीकत और मारिफत की राह पर

नहीं चलने देंगे।

मैं करुं खुशामद उनकी, मैं डरता हों उनसे।

जो कहावें मेरे उमराह, और मेरे हुकम में॥२२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि मेरे आदेश पर चलने वाले जो मेरे उत्तराधिकारी या धर्माधिकारी होंगे, मुझे उनसे इस बात का डर है कि वे सुन्दरसाथ को परमधाम की सच्ची राह से भटकाकर शरीयत में उलझा देंगे। मैं उनसे यह खुशामद करता हूँ कि मेरे परमधाम के सुन्दरसाथ को सच्ची राह से न भटकावें।

ऐसा न कोई उमराह, जो भाने दिल का दुख।

जब करसी तब होएसी, दिया साहेब का सुख॥२३॥

मुझे इस बात का दुःख है कि आने वाले समय में

सुन्दरसाथ वाणी के ज्ञान से दूर होकर सत्य से विमुख हो जायेगा। मुझे भविष्य में कोई ऐसा धर्माधिकारी नहीं दिखाई दे रहा जो मेरे इस दुःख को मिटा सके, अर्थात् उसके द्वारा जागनी का कार्य इस प्रकार किया जाये कि सुन्दरसाथ वाणी के वास्तविक सत्य से दूर न होने पायें। भविष्य में जब धाम धनी की कृपा होगी, तब ऐसा कोई धर्माधिकारी होगा, जो सबको परमधाम की राह पर ले चलकर धनी का सुख दिलायेगा।

भावार्थ- यह प्रश्न खड़ा होता है कि श्री महामति जी ने ऐसा क्यों कहा है कि भविष्य में ब्रह्मवाणी के ज्ञान को सारे संसार में यथार्थ रूप में फैलाने वाला मुझे दिखायी नहीं पड़ रहा है? क्या महाराजा छत्रसाल जी, श्री लालदास, व मुकुन्ददास जी यह सेवा नहीं कर सकते थे?

निःसन्देह उपरोक्त सभी ब्रह्ममुनि इस सेवा को अच्छी तरह से निभा सकते थे, लेकिन श्री महामति जी ने भविष्य के घटना क्रम को अन्तर्दृष्टि से अच्छी प्रकार से देख लिया था कि भविष्य में क्या-क्या होना है। श्री बाई जी तथा श्री जी की अन्तर्धान लीला के समय अधिकतर ब्रह्ममुनियों ने अपना शरीर त्याग दिया। श्री लालदास जी ने भी "बीतक" की रचना के पश्चात् अपने शरीर का परित्याग कर दिया। महाराजा छत्रसाल जी के तन से अवश्य सात साल आवेश लीला तथा २४ वर्ष श्यामा जी की बादशाही के बीते। उनके द्वारा चारों ओर ब्रह्मवाणी की गूँज करायी गयी, किन्तु उसके पश्चात् देश में सामाजिक, राजनैतिक, व आर्थिक स्थितियाँ ऐसी बदलीं कि जागनी कार्य में शून्यता सी पैदा हो गयी। ब्रह्माण्ड का सर्वोपरि ज्ञान कुछ लोगों की साम्प्रदायिक परिधि में

दबकर रह गया। श्री महामति जी की व्यथा इसी घटनाक्रम की ओर है।

एही बड़ा अचरज, कहावत हैं बंदे।

जानों पेहेचान कबूं ना हुती, ऐसे हो गए दिल के अंधे॥२४॥

यह बहुत आश्चर्य की बात है कि एक तरफ तो ये धर्माधिकारी मेरे बन्दे (श्रद्धालु) कहलाते हैं, दूसरी तरफ अपने पद और प्रतिष्ठा में मग्न होकर इस प्रकार दिल के अन्धे हो जाते हैं कि इन्हें मेरे स्वरूप की जरा भी पहचान नहीं हो पाती। इनका व्यवहार भी ऐसा होता है, जैसे मुझसे इनकी कोई पहचान ही न हो।

भावार्थ— श्री प्राणनाथ जी की वाणी और आत्मिक बल के कारण ही किसी भी विभूति का सम्मान होता है। कदाचित् कोई सुन्दरसाथ (महापुरुष) संसार से मिलने

वाले सम्मान में इतना मग्न हो जाये कि उसे श्री प्राणनाथ जी की महिमा गायन में रुचि न होकर व्यक्तिगत महिमा मण्डन में ही रुचि हो जाये, तो यह स्थिति निश्चित ही पीड़ादायक है। इस चौपाई में धर्माधिकारियों से होने वाली इस प्रकार की भयंकर भूल की तरफ श्री जी ने संकेत किया है।

मैं बुरा ना चाहूँ तिनका, पर वे समझत नहीं सोए।

यार सजा दे सकत हैं, पर सो मुझसे न होए॥२५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि विशिष्ट स्थानों के अधिपति कहलाने वाले इन धर्माधिकारियों का मैं बुरा नहीं चाहता। उनका यह दुर्भाग्य है कि उनको मेरे स्वरूप की पहचान नहीं है। जिसकी वाणी से संसार में उन्हें सम्मान मिल रहा है, उसी से आँखें फेरने में इन्हें अपना

गौरव प्रतीत होता है। धाम धनी की ओर से इन्हें अपने गुनाहों की सजा तो मिल सकती है, लेकिन यह मुझे स्वीकार नहीं है।

भावार्थ- इस जागनी ब्रह्माण्ड में एकमात्र श्री महामति जी को ही अक्षरातीत कहलाने की शोभा है। छठे दिन की लीला में किसी भी सुन्दरसाथ को चाहे कितनी भी बड़ी शोभा क्यों न मिल जाये, उसे श्री प्राणनाथ जी के चरणों में हमेशा नतमस्तक रहना चाहिए। इस कथन को हमेशा अपने मन में धारण किये रहना चाहिए कि "इन्द्रावती को उपमा, मैं दर्ई मेरे हाथ" (कलस हिंदुस्तानी २३/६२)।

मेरे दिल के दरद की, एक साहेब जाने बात।

ऐसा कोई ना मिल्या, जासों करों विख्यात॥२६॥

समस्त सुन्दरसाथ की आत्मिक जाग्रति के लिये मेरे

हृदय की पीड़ा को मात्र अक्षरातीत ही जानते हैं। मुझे अब तक ऐसा कोई भी सुन्दरसाथ नहीं मिला, जिससे मैं जागनी सम्बन्धी अपनी इस पीड़ा का वर्णन कर सकूँ।

भावार्थ- श्री महामति जी के तन से होने वाली जागनी लीला में पाँच सौ ब्रह्ममुनियों का समूह था, जिनमें से लगभग प्रत्येक ने युगल स्वरूप तथा परमधाम का दर्शन प्राप्त किया था। फिर भी श्री महामति जी का यह कथन कि "मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला, जिससे मैं जागनी के सन्दर्भ में होने वाली अपने हार्दिक पीड़ा को व्यक्त कर सकूँ" में बहुत ही गहरा रहस्य छिपा हुआ है।

यदि व्यक्तित्व की दृष्टि से देखा जाये तो इस जागनी ब्रह्माण्ड में कोई भी आत्मा अध्यात्म के किसी भी क्षेत्र (समर्पण, त्याग, विनम्रता, विरह, इश्क) में उनके पास बैठने का साहस नहीं कर सकती। जिस आत्मा को धनी

ने अपनी सारी शोभा दी हो, "नाम सिनगार सोभा सारी,
मैं भेख तुमारो लियो" (किरन्तन ६१/१८), उसकी
विनम्रता की एक छोटी सी झलक यहाँ प्रस्तुत है—

तुम सयाने मेरे साथ जी, जिन रहो विखे रस लाग।

पाऊँ पकड़ कहे इन्द्रावती, उठ खड़े रहो जाग॥

प्रकास हिंदुस्तानी २१/१७

रोम रोम कई कोट अवगुन, ऐसी मैं गुन्हेगार।

ए तो कही मैं गिनती, पर गुन्हे को नहीं सुमार॥

किरन्तन ४१/१०

विनम्रता की पराकाष्ठा (अन्तिम सीमा) तक पहुँच जाना
सम्भव हो सकता है, किन्तु सभी को अपने समान बनाने
का दृढ़ संकल्प महानता के उच्चतम् शिखर पर पहुँचे हुए
व्यक्तित्व के लिये ही सम्भव है— "सब साथ करुं मैं
आपसा, तो मैं जागी परवान।" आत्म-जाग्रति की इस

मन्जिल तक कोई भी अब तक नहीं पहुँच पाया है और न भविष्य में पहुँचने की कोई सम्भावना है। इसी कारण ५०० ब्रह्ममुनियों की उपस्थिति में भी श्री महामति जी को यह कहना पड़ा— "ऐसा कोई ना मिल्या, जासों करों विख्यात।"

जो कोई साथ में सिरदार, लई धाम धनी रोसन।

खँच छोड़ सको सो छोड़ियो, ना तो आपे छूटे हुए दिन॥२७॥

सुन्दरसाथ समूह में जो नेतृत्व करने वाले अग्रणी (सरदार) सुन्दरसाथ हैं, जिन्होंने ब्रह्मवाणी को आत्मसात् किया है, उनसे मेरा यही कहना है कि आप सभी आपसी खींचतान को पूर्णतया समाप्त कर दीजिए। यदि आप ऐसा नहीं करते हैं तो श्रीमुखवाणी के ज्ञान का उजाला पाकर एक दिन अवश्य आपको खँचा-खँच

छोड़नी पड़ेगी।

मेरे तो गुजरान होएसी, जो पड़या हों बंध।

जो कदी न छूटया रात में, तो फजर छूटसी फंद॥२८॥

धनी के हुक्म से मैं सुन्दरसाथ की जागनी के दायित्व के बन्धन से बँधा हुआ हूँ, किन्तु धनी की कृपा से मेरा निर्वाह हो जायेगा। सुन्दरसाथ में माया का बन्धन यदि अज्ञानता की रात्रि में नहीं छूटता है , तो ब्रह्मवाणी के ज्ञान से उजाला होने पर अवश्य ही छूट जायेगा।

धाम धनी दई रोसनी, जो बड़े जमात दार।

सोभा दई अति बड़ी, जिनके सिर मुद्धार॥२९॥

जो ब्रह्ममुनियों में प्रमुख (यूथ पत्नियाँ) हैं, धाम धनी ने उनके हृदय में ब्रह्मवाणी के ज्ञान का उजाला किया है

तथा उनके ऊपर जागनी का उत्तरदायित्व भी सौंपा है। धनी की कृपा से सुन्दरसाथ के बीच में उन्हें बहुत अधिक शोभा भी मिली है।

मैं इन सुख दुख थें ना डरूं, मेरे धनी चाहिए सनमुख।
मोहे एही कसाला होत है, जब कोई देत साथ को दुख॥३०॥
मैं इस झूठे संसार के सुखों के मोह में न तो पड़ता हूँ और न ही दुःखों से घबराता हूँ। मुझे तो केवल धनी का पल-पल दीदार चाहिए। मुझे दुःख का अनुभव केवल उस समय होता है, जब कोई मेरे लाड़ले सुन्दरसाथ को दुःखी करता है।

भावार्थ- अपने सुख से सुखी तो हर कोई रहता है, किन्तु कोई विरला ही होता है जो दूसरों के सुख से सुखी और दूसरों के दुःख से दुःखी होता है। हादी श्री

प्राणनाथ जी के दर्शये हुए इस मार्ग का अवलम्बन सबको करना चाहिए, अर्थात् हमें भी दूसरों के दुःख से दुःखी और दूसरों के सुख से सुखी रहना चाहिए।

मेरी एक दृष्ट धनीय में, दूजी साथ के माहें।

तो दुख आवे मोहे साथ को, ना तो दुख मोहे कहूं नाहें॥३१॥

मेरी एक दृष्टि तो श्री राज जी की ओर रहती है तथा दूसरी दृष्टि सुन्दरसाथ के बीच में रहती है , अर्थात् परमधाम के सम्बन्ध से मैं सुन्दरसाथ से भी धनी की तरह प्रेम करता हूँ। इसी कारण सुन्दरसाथ को जब किसी कारणवश दुःखी होना पड़ता है तो मैं भी दुःखी हो जाता हूँ, अन्यथा संसार का कोई भी दुःख मुझे जरा भी प्रभावित नहीं कर पाता है।

कोई कोई अपनी चातुरी, ले खँच करें मूढ़ मत।

अकल ना दौड़ी अंतर लों, खँचें ले डारे गफलत॥३२॥

संसार में कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जो बहुत मूर्ख बुद्धि के होते हैं, किन्तु अपनी चतुराई से आध्यात्मिक विषयों पर खींचतान मचाये रहते हैं। उनकी बुद्धि ब्रह्माण्ड – निराकार से परे परमधाम तक नहीं जा पाती। अपनी खींचतान से वे अज्ञानता के अन्धकार में भटकते रहते हैं।

ए तो गत संसार की, जो खँचा खँच करत।

आपन तो साथी धाम के, है हम में तो नूर मत॥३३॥

यह बात उन सांसारिक लोगों की है, जो ज्ञान सम्बन्धी विषयों की खींचतान में फँसे रहते हैं। हमारे सुन्दरसाथ तो परमधाम से आये हैं, जिनमें तारतम ज्ञान का प्रकाश

है। ऐसी स्थिति में खेंचा-खेंच का प्रश्न ही नहीं है।

मोमिन बड़े आकल, कहे आखिर जमाने के।

इनकी समझ लेसी सबे, आसमान जिमी के जे॥३४॥

कुरआन में लिखा है कि आखिरी जमाने (कियामत के समय) में प्रकट होने वाले मोमिन (ब्रह्ममुनि) बहुत बुद्धिमान होंगे। इनके ज्ञान को पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्य तथा आकाश में रहने वाले देवी-देवता भी ग्रहण करेंगे।

भावार्थ- मन में यह संशय उठता है कि इस चौपाई में तो श्रीमुखवाणी के ज्ञान की महत्ता के विषय में कहा गया है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इसे ग्रहण करेगा, किन्तु वर्तमान स्थिति इसके विपरीत क्यों है?

वस्तुतः यह खेल ब्रह्मसृष्टियों को माया दिखाने के लिये

बनाया गया है। उनको जगाने के लिये ही यह ब्रह्मवाणी अवतरित हुई है। सांसारिक प्राणियों सहित देवी – देवताओं को भी यह ज्ञान अवश्य मिलेगा, किन्तु बाद में। ब्रह्ममुनियों की जागनी में होने वाली देर के कारण ही यह ब्रह्मवाणी सम्पूर्ण विश्व में अभी तक यथार्थ रूप से नहीं फैल पायी है।

जो कोई निजधाम की, सो निकसो रोग पेहेचान।

सो सुरत पीछी खँचहीं, सो जानो दुस्मन छल सैतान॥३५॥

जो परमधाम की आत्मा हो, वह इस भव रोग की पहचान करके ब्रह्माण्ड-निराकार से परे निकले। जो भी आपकी आत्मा को संसार में खींचता है, उसे अपना शत्रु और माया (शैतान) का ही रूप समझना चाहिए।

अब बोहोत कहूँ मैं केता, करी है इसारत।

दिल आवे तो लीजो सलूक, सुख पाए कहे महामत॥३६॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! अब मैं आपसे बहुत अधिक कितना कहूँ। मैंने संकेतों में बहुत कुछ कह दिया है। यदि आपके हृदय में मेरी ये बातें अच्छी लगती हैं तो इन्हें आत्मसात् करना (सिखापन लेना), जिससे मेरे हृदय को आनन्द प्राप्त हो।

प्रकरण ॥९४॥ चौपाई ॥१३७६॥

राग श्री

सोई सोहागिन धाम में, जो करसी इत रोसन।

तौल मोल दिल माफक, देसी सुख सबन॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि परमधाम में उस ब्रह्मसृष्टि (सोहागिन) की सबसे अधिक शोभा होगी, जो इस संसार में अपने प्राण प्रियतम अक्षरातीत को जाहिर करेगी। वह इश्क व ईमान से भरपूर अपने दिल के अनुकूल ही श्री राज जी के स्वरूप की पहचान करेगी, अपने दिल में बसायेगी, तत्पश्चात् सबको उस आत्मिक सुख का रसपान करायेगी।

साथ मांहें सैयां धाम की, ईमान वाली सिरदार।

सो धन धाम को तौलसी, करसी दृढ़ निरधार॥२॥

सुन्दरसाथ के अन्दर परमधाम की जो भी प्रमुख (सरदार) ब्रह्मसृष्टि होगी, उसमें ईमान कूट-कूट कर भरा होगा। वह परमधाम के धन (तारतम ज्ञान, इश्क, वाहिदत, निसबत आदि) का मूल्यांकन करेगी और दृढ़तापूर्वक वास्तविक सत्य का निर्णय करेगी।

भावार्थ- यद्यपि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के लाये हुए तारतम ज्ञान का अनुशरण करने वाले सभी व्यक्ति सुन्दरसाथ ही कहे जाते हैं, किन्तु मूल रूप से सुन्दरसाथ वह है जो सुन्दरबाई (श्यामाजी) का अंग हो तथा उसकी परात्म परमधाम में विराजमान हो।

पेहेले तौलें बुध जाग्रत, पीछे तौलें धनी आवेस।

और तौलें इस्क तारतम, तब पलटे उपलो भेस॥३॥

सबसे पहले वह जाग्रत बुद्धि का मूल्यांकन करती है।

इसके पश्चात् वह इस बात की गहन विवेचना करती है कि इस समय धनी का आवेश कहाँ विराजमान होकर लीला कर रहा है (बिहारी जी में या श्री मिहिरराज जी में)। इसके पश्चात् जब वह इश्क और तारतम ज्ञान का वास्तविक मूल्यांकन कर लेती है तो उसका बाहरी भेष बदल जाता है, अर्थात् उसकी बाह्य दृष्टि समाप्त हो जाती है और वह स्वयं को मात्र आत्मिक दृष्टि से ही देखती है।

तब तौलासी वासना, और तौलासी हुकम।

सब बल तौलें बलवंतियां, और तौले सरूप खसम॥४॥

इसके पश्चात् वह अपने निज स्वरूप तथा हुकम की भी पूरी पहचान कर लेती है। धनी की लाडली अँगनायें अपने प्रियतम के सभी बलों तथा उनके स्वरूप का भी यथार्थ रूप से मूल्यांकन कर लेती हैं।

भावार्थ- "तौलने" का अर्थ होता है मूल्यांकन करना, पहचान करना, या गहन विवेचना करना। एकमात्र ब्रह्मांगना ही अपने प्रियतम के स्वरूप तथा उनकी शक्तियों को पहचानती है। वही इस भेद को जानती है कि किस प्रकार उसके प्रियतम की इच्छा ही हुक्म के रूप में कार्य करने लगती है तथा किस प्रकार इस जागनी ब्रह्माण्ड में धनी का आवेश ही हुक्म के रूप में लीला कर रहा है।

रोसन करसी आपे अपना, जो सैंया जमातदार।

ए कौल अव्वल जोस का, जो किया है करार॥५॥

युत्थों (यूथ, समूह) की प्रमुख सखियाँ (सरदार) स्वयं ही अपने ब्रह्मसृष्टि होने के गौरव को स्पष्ट करेंगी। इश्क रब्द के समय ही सखियों ने अपने धनी को न भूलने का

वायदा किया था।

भावार्थ- इस चौपाई में प्रयुक्त "आपे अपना" का विशेष भाव है। एक सोहागिन के नाते ब्रह्मसृष्टि का यह कर्तव्य है कि वह माया को पीठ देकर धाम धनी को अपने दिल में बसाये तथा संसार को उनके स्वरूप की पहचान कराये। ब्रह्मसृष्टि का गौरव इसी में छिपा हुआ है। इस कार्य को करना "आपे अपना" जाहिर करना है।

जो सैंया हम धाम की, सो जानें सब को तौल।

स्याम स्यामा जी साथ को, सब सैंयो पे मोल॥६॥

परमधाम की हम ब्रह्मसृष्टियाँ ही प्रत्येक वस्तु का मूल्यांकन जानती हैं। परमधाम में तथा यहाँ जाग्रत अवस्था में ब्रह्मांगनाओं के अन्दर युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी तथा सुन्दरसाथ की शोभा बसी होती है।

नूर रोसन बल धाम को, सो कोई न जाने हम बिन।

अंदर रोसनी सो जानहीं, जिन सिर धाम वतन॥७॥

तारतम ज्ञान के उजाले में ही परमधाम की शक्ति छिपी हुई है। इसे हम ब्रह्मसृष्टियों के सिवाय अन्य कोई भी नहीं जानता। जिनका मूल घर परमधाम है तथा जिनके हृदय में तारतम ज्ञान का उजाला है, एकमात्र वही इस रहस्य को जानते हैं।

भावार्थ- तारतम ज्ञान का प्रकाश फैलने पर ही परब्रह्म के धाम, स्वरूप, तथा लीला का बोध होता है। उनकी साहिबी को भी तभी वास्तविक रूप से जाना जा सकता है। इसलिए तारतम ज्ञान को परमधाम का बल कहा गया है।

इस्क ईमान धनी धाम को, और जोस जाग्रत पेहेचान।

तौलें धनी धन धाम का, यों कहे कुरान निसान॥८॥

कुरआन में यह बात संकेतों में लिखी हुई है कि परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ धनी के प्रति अपने इश्क और ईमान, धनी के निज स्वरूप, जोश, जाग्रत अवस्था की पहचान, एवं धाम के धन तारतम ज्ञान का भी सही मूल्यांकन करेंगी।

साथ अंग सिरदार को, सिरदार धनी को अंग।

बीच सिरदार दोऊ अंग के, करे न रंग को भंग॥९॥

सुन्दरसाथ श्यामा जी के अंग हैं और श्यामा जी धनी की अंग हैं। इस प्रकार श्री श्यामा जी सुन्दरसाथ और राज जी के बीच के आनन्द को भंग नहीं होने देतीं अर्थात् पल-पल बढ़ाती रहती हैं।

भावार्थ- स्वलीला अद्वैत परमधाम में सब कुछ राज जी का ही स्वरूप है। दिल सबसे प्रिय वस्तु होती है। राज जी का दिल श्यामा जी हैं और श्यामा जी के दिल का स्वरूप सुन्दरसाथ हैं, जिससे यह स्पष्ट है कि परमधाम में सभी एक-दूसरे के आशिक हैं। ऐसी स्थिति में आनन्द में रंचमात्र भी कमी की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

साथ धाम के सिरदार को, मोमिन मन नरम।

मिलावे और धनीय की, दोऊ इनके बीच सरम॥१०॥

परमधाम के सुन्दरसाथ के प्रमुख (सरदार) श्यामा जी को ब्रह्मांगनाओं से बहुत प्रेम है। उनके दिल में सुन्दरसाथ और धनी के प्रति प्रेम और आनन्द की लीला में सहभागिता (शर्म) है।

भावार्थ- शर्म या लज्जा का विकृत भाव इस चौपाई में नहीं होगा। शर्म या लज्जा के दो रूप होते हैं। पहला रूप वह होता है, जो किसी अपराध के कारण होता है, किन्तु दूसरा रूप प्रेम की अधिकता के कारण होता है। सुन्दरसाथ श्यामा जी के अंग हैं और श्यामा जी श्री राज जी के दिल का स्वरूप हैं। इस प्रकार संसार के भावों में यही माना जा सकता है कि बिना श्यामा जी (दिल) के परमधाम की प्रेममयी लीला नहीं हो सकती। "इनके बीच सरम" का यही भाव है।

इत परीछा प्रगट, उठावे अपना भार ।

बोझ निबाहें साथ को, और बोझ मसनंद भरतार॥११॥

इस जागनी ब्रह्माण्ड में अब यह परीक्षा की घड़ी है कि जो सुन्दरसाथ में अग्रगण्य हों, वे अपने उत्तरदायित्व का

निर्वाह करें। धाम धनी ने जिन्हें अपनी बातूनी (बातिन, गुह्य) गादी (इश्क, इलम, ईमान, शान्ति, सन्तोष, सहूर, सेवा, समर्पण आदि) सौंप रखी है, उनकी गरिमा इसी में है कि वे सुन्दरसाथ को परमधाम की ओर ले चलें।

भावार्थ- धाम धनी की गादी का तात्पर्य किसी स्थान विशेष की गादी पर विराजमान होना नहीं, बल्कि धनी की बातूनी (बातिन) मेहर को प्राप्त करना है। बिहारी जी को जाहिरी गद्दी (स्थान विशेष की), जबकि श्री मिहिरराज जी को बातूनी मिली। "ऊपर तले अर्स न कह्या, अर्स कह्या मोमिन कलूब।" जाहिरी गादी तो धन-बल, जन-बल, या किसी विशिष्ट व्यक्ति की कृपा से मिल जाती है, किन्तु बातूनी गादी को पाने के लिये क्या चाहिए, यह आगे की चौपाई में बताया गया है।

ए तो पातसाही दीन की, सो गरीबी से होए।

और स्वांत सबूरी बिना, कबहूँ न पावे कोए॥१२॥

धर्म की बादशाहत (एकछत्र अधिकारपना) तो विनम्रता से होती है। ऐसा कोई भी व्यक्ति जिसके पास शान्ति और सन्तोष का गुण नहीं है, धार्मिक क्षेत्र में एकाधिकार नहीं रख सकता।

भावार्थ— सहनशीलता सबसे बड़ा अस्त्र है और विनम्रता महानता का विज्ञापन है। शान्ति और सन्तोष से यह स्पष्ट होता है कि व्यक्तित्व में आध्यात्मिक उपलब्धियों की कितनी गहराई है। इस चौपाई से उन सुन्दरसाथ को सिखापन लेना चाहिए जो अनुशासन और प्रबन्धन की ओट में कटु शब्दों की तलवारें चलाते हैं।

ए लसकर सारा दिल का, सो दिलबरी सब चाहे।

दिल अपना दे उनका लीजिए, इन विध चरनों पोहोँचाए॥१३॥

सभी सुन्दरसाथ श्री राज जी के दिल स्वरूप श्यामा जी के दिल (अंग) हैं, इसलिये सभी प्रेम चाहते हैं। उनको धनी के चरणों में पहुँचाने (जाग्रत करने) के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि पहले उनको अपना दिल दीजिए, तत्पश्चात् उनका दिल लीजिए, अर्थात् पहले आप उनकी ओर प्रेम भरे कदम बढ़ाइये, तभी वे आपकी तरफ आयेंगे।

जो कोई उलटी करे, साथी साहेब की तरफ।

तो क्यों कहिए तिन को, सिरदार जो असरफ॥१४॥

जो कोई सुन्दरसाथ और धनी के प्रति उल्टी राह अपनाते हैं, अर्थात् जिनके दिल में सुन्दरसाथ के प्रति

श्रद्धा और सेवा की भावना नहीं होती तथा धनी के लिये हृदय में इश्क और ईमान नहीं होता, ऐसे व्यक्ति प्रमुख (सरदार) या श्रेष्ठ सुन्दरसाथ कहलाने का अधिकार नहीं रखते।

कह्या कुराने बंद करसी, इन के जो उमराह।

आधीन होसी तिन के, जो होवेगा पातसाह॥१५॥

कुरआन में यह बात लिखी है कि भविष्य में होने वाले धर्माधिकारी ज्ञान का प्रचार बन्द कर देंगे। अपना आधिपत्य जमाने वाले इन धर्माधिकारियों के ही अधीन होकर सुन्दरसाथ समय व्यतीत किया करेगा।

भावार्थ- व्यक्तिवाद और स्थानवाद घाव के रोग की तरह कष्टकारी हैं। उसमें खाज की भूमिका निभाती है वाणी के ज्ञान की अज्ञानता। जिन महान विभूतियों की

छत्रछाया में ज्ञान का प्रकाश फैलता है, उन महान पुरुषों का सम्मान अवश्य करना चाहिए, किन्तु उनकी अति प्रशंसा में दूसरे परमहंसों और महान पुरुषों को हेय दृष्टि से देखना अपराध है। यदि किसी स्थान विशेष से हमारा लगाव है तो दूसरे स्थानों से घृणा की भावना हमारी उस कूप-मण्डूकता की संकुचित भावना को दर्शाती है, जिसका परिणाम होता है समाज का विघटन।

लटी तिनसे न होवहीं, जो कहे सिरदार।

सबों सिरदार एक होवहीं, मिने बारे हजार॥१६॥

सुन्दरसाथ में अग्रगण्य कहे जाने वाले ब्रह्ममुनियों से धर्म विरुद्ध कोई कार्य हो ही नहीं सकता। बारह हजार ब्रह्मसृष्टियों का नेतृत्व करने वाली तो एकमात्र श्यामा जी ही हैं।

भावार्थ- श्यामा जी का सम्बन्ध केवल श्री देवचन्द्र जी के तन से ही नहीं है, बल्कि वह तो उनका पहला तन है। दूसरे श्री मिहिरराज जी के तन से जागनी की लीला हुई। "ए इलम ले रुह अल्ला आया, खोल माएने इमाम केहेलाया" का कथन यह स्पष्ट करता है कि दोनों तनों में श्यामा जी की लीला रही है, शोभा अवश्य श्री इन्द्रावती जी को मिली है।

लिख्या है कुरान में, छिपी गिरो बातन।

सो छिपी बातून जानहीं, ए धाम सैंया लछन॥१७॥

कुरआन में ब्रह्मसृष्टियों से सम्बन्धित बहुत सी गुह्य (छिपी हुई) बातें लिखी हुई हैं। ब्रह्मसृष्टियों की पहचान ही यह है कि वह उन छिपी हुई बातों के रहस्य को यथार्थ रूप से जानती हैं।

भी लिख्या कुरान में गिरो की, सोहोबत करसी जोए।

निज बुध जाग्रत लेय के, साहेब पेहेचाने सोए॥१८॥

कुरआन में यह बात भी लिखी हुई है कि जो इन ब्रह्ममुनियों (मोमिनों) की संगति करेगा, वह परमधाम की निज बुद्धि एवं अक्षर ब्रह्म की जाग्रत बुद्धि द्वारा सच्चिदानन्द परब्रह्म की पहचान कर लेगा।

फुरमान कहे गिरो साहेदी, देसी कारन पैगंमर।

सब केहेसी महंमद का देखिया, तब कुफर तोड़सी मुनकर॥१९॥

मुहम्मद साहिब ने कुरआन में कियामत के समय अल्लाह तआला के प्रकटन की जो भविष्यवाणी की है, उसकी साक्षी ब्रह्मसृष्टियाँ देंगी। जब वे संसार को बतायेंगी कि श्री प्राणनाथ जी के ज्ञान के आधार पर हमने परमधाम की अनुभूति कर ली है, तो अक्षरातीत को न मानने वाले

लोग भी अपने पापों को छोड़कर धनी के चरणों में आ जायेंगे।

करे पाक जिमी आसमान को, ऐसी बुजरक गिरो सोए।
 होसी रुजू माएने सब इनसे, इन जैसी दूजी न कोय॥२०॥
 ब्रह्मसृष्टियों की इतनी महान गरिमा है कि इनके इस जगत में आने से पृथ्वी और आकाश सहित यह सम्पूर्ण चौदह लोक का ब्रह्माण्ड पवित्र हो जायेगा। धर्मग्रन्थों के सभी भेद इनसे ही स्पष्ट होंगे। इनके समान न तो कोई है, न था, और न ही भविष्य में कोई होगा।

गिरो माफक सिरदार चाहिए, जैसा कह्या रसूल।
 खँच लेवें दिल साथ को, सब पर होए सनकूल॥२१॥
 जिस प्रकार ब्रह्मसृष्टि प्रेम का स्वरूप होती है, उसी

प्रकार उसके अग्रगण्य (प्रमुख) को भी प्रेममयी होना चाहिए। उसका व्यक्तित्व इतना कोमल और प्रेम से भरपूर होना चाहिए कि वह सब सुन्दरसाथ के दिल को आनन्दित करके अपनी तरफ हमेशा के लिए खींच लेवे।

ए मैं कही तुम समझने, ए है बड़ो विस्तार।

बोहोत कहा मेरे धनी ने, तुम करोगे केता विचार॥२२॥

हे साथ जी! जागनी लीला के सन्दर्भ में मैंने इतनी बातें आपको समझ में आ जाने के लिये कही हैं। इस लीला का विस्तार बहुत अधिक है। मेरे धाम धनी ने इस जागनी लीला के सन्दर्भ में भूत और भविष्य से सम्बन्धित बहुत सी बातें कही हैं। उसे मैं आपसे कितना कहूँ। आप उन बातों का कितना विचार करेंगे।

भावार्थ— जिस तन में अक्षरातीत की लीला हो रही हो

उससे भविष्य की कोई भी बात छिपी नहीं रहती, किन्तु प्रकृति की मर्यादाओं को निभाते हुए श्री जी ने सभी बातें प्रकाश में नहीं आने दीं। लच्छीदास जी द्वारा सोने का मन्दिर बनाने के प्रयास को रोकना यही स्पष्ट करता है कि श्री महामति जी ने भविष्य का पूर्णदृष्टा होकर ही ऐसा किया।

ले साख धनी फुरमान की, महामत कहें पुकार।

समझ सको सो समझियो, या यार या सिरदार॥२३॥

धनी के आदेश पत्र कुरआन की साक्षी से महामति जी पुकार-पुकारकर सुन्दरसाथ से कहते हैं कि चाहे आपमें से कोई ब्रह्मसृष्टि हो या उनके युत्थों की प्रमुख, यदि जागनी लीला से सम्बन्धित इन बातों को आप समझ सकते हैं, तो समझकर सावधान हो जाना। अधिक क्या

कहूँ।

प्रकरण ॥९५॥ चौपाई ॥१३९९॥

राग श्री

तो भी घाव न लग्या रे कलेजे।

ना लग्या रे कलेजे, जो एते देखे धनी गुन।

कोट ब्रह्मांड जाकी पलथें पैदा, सो चाहे हमारा दरसन॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! यह कितने आश्चर्य की बात है कि धनी के इतने गुणों को देखने के पश्चात् भी हमारे हृदय में विरह और प्रेम की चोट नहीं लगी। हमारी गरिमा तो इतनी अधिक है कि जिस अक्षर ब्रह्म के आदेश मात्र से करोड़ों ब्रह्माण्ड एक पल में पैदा हो जाते हैं, वह भी हमारे दर्शन की तीव्र इच्छा करते हैं।

अचरज एक साथ जी, सुनो कहूं अपनी बीतक।

धनिए मोको मेहेर कर, ले पोहोंचाई हक॥२॥

हे सुन्दरसाथ जी! मैं अपनी आपबीती एक बहुत ही आश्चर्य की बात सुना रही हूँ। धाम धनी ने मेरे ऊपर ऐसी मेहर की है कि मुझे साक्षात् अपना ही स्वरूप बना लिया।

ईमान ल्याओ सो ल्याइओ, कहूं अनुभव की बात।

मोको मिले इन विध सों, श्री धाम धनी साख्यात॥३॥

मैं आपसे अपने अनुभव की बात बता रही हूँ। मेरी इस बात पर यदि आपको विश्वास होता है, तो कर लेना। हब्से में विरह में तड़पने के पश्चात् मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत साक्षात् मिले।

पीछे ईमान सब ल्यावसी, ए जो चौदे तबक।

अव्वल आकीन ब्रह्मसृष्ट का, जिनमें ईमान इस्क॥४॥

बाद में (सातवें दिन की लीला में) तो चौदह लोक के सभी प्राणी मेरी इस बात पर विश्वास कर ही लेंगे, लेकिन इस समय सबसे पहले विश्वास ब्रह्मसृष्टि ही करेगी, क्योंकि उनमें इश्क और ईमान कूट-कूटकर भरा होता है।

ए बात नीके विचारियों, ज्यों तुमें साख देवे आतम।

पीछे साख दुनी सब देयसी, ऐसा किया खसम॥५॥

इस बात का आप अच्छी तरह से विचार करना और ऐसा निर्णय लेना कि आपकी आत्मा भी उसकी साक्षी देवे। सातवें दिन की लीला में तो सारे संसार के प्राणी ही इस बात को स्वीकार करेंगे कि मुझे धाम धनी हब्से में

साक्षात् मिले थे।

मैं तो कछू न जानती, श्री स्यामा जी दर्ई खबर।

आपन आए खेल देखने, धाम अपना घर॥६॥

मैं तो इस संसार में आने के पश्चात् परमधाम या अक्षरातीत के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानती थी। श्री श्यामा जी ने ही मुझे सारी बातें बतायीं। उन्होंने मुझसे यह बातें स्पष्ट रूप से कही कि हमारा घर परमधाम है और हम इस मायावी जगत का खेल देखने के लिये आये हुए हैं।

मोहे भेजी धनीने, तुम को बुलावन ।

साथ जी मिल के चलिए, जाइए अपने वतन॥७॥

मुझे धनी ने तुम्हें जाग्रत करके वापस परमधाम बुलाने

के लिये भेजा है। हे सुन्दरसाथ जी! अब हम सबको जाग्रत होना चाहिए और सबको मिलकर एकसाथ परमधाम चलना चाहिए।

हम ब्रह्मसृष्टि आई धाम से, अछर खेल देखन।

खेल देख के जागिए, घर असलू अपने तन॥८॥

हम सभी सुन्दरसाथ परमधाम से अक्षर ब्रह्म की माया का खेल देखने के लिये आये हुए हैं। हमारे मूल तन परमधाम में हैं। हे साथ जी! अब आप इस मायावी खेल को देखकर जाग्रत हो जाइए और परमधाम चलिए।

साहेब तो पूरा मिल्या, तब थी मैं लड़कपन।

पेहेचान करावने अपनी, बोहोतक कहे वचन॥९॥

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के रूप में मुझे साक्षात्

अक्षरातीत मिले थे, लेकिन मैं उस समय नादान
(नासमझ) थी। मुझे अपनी पहचान देने के लिये उन्होंने
बहुत सी बातें कहीं।

सो मैं कछू ना दिल धरे, भूल गई अवसर।
कई विध करी जगावने, पर मैं जागी नहीं क्यों ए कर॥१०॥
दुर्भाग्यवश, उनके कहे हुए वचनों को मैंने अपने हृदय में
धारण नहीं किया। मैंने वह सुनहरा अवसर गँवा दिया।
मुझे जगाने के लिये उन्होंने अनेक उपाय किये, किन्तु मैं
किसी भी प्रकार से नहीं जागी।

मोहे चलते बखत बुलाए के, जाहेर करी रोसन।
धाम दरवाजे इंद्रावती, ठाढ़ी करे रूदन॥११॥
सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने अपना तन छोड़ते समय

मुझे बुलवाकर यह बात स्पष्ट रूप से सबके सामने कह दी कि धाम के दरवाजे पर इन्द्रावती खड़ी होकर रुदन (विलाप) कर रही है।

भावार्थ- श्री इन्द्रावती जी का दिल ही वह धाम है, जिसमें युगल स्वरूप को विराजमान होना है। विगत नौ वर्षों से श्री मिहिरराज अपने सद्गुरु को प्रणाम नहीं कर सके थे। ऐसी अवस्था में उनका हृदय बहुत व्यथित (दुःखी) था। इसी को "धाम के दरवाजे पर खड़ी होकर रोना" कहा गया है।

कहे मोहे अकेली छोड़ के, तुम धाम चलो क्यों कर।

पीछे मैं दुनियां मिने, क्यों रहूंगी तुम बिगर॥१२॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे धाम धनी ! मुझे अकेला छोड़कर आप कैसे धाम जा सकते हैं। आपके

बिना मैं इस संसार में कैसे रह सकती हूँ।

भावार्थ- यद्यपि श्री मिहिरराज जी को मालूम था कि सद्गुरु महाराज उनके ही धाम दिल में विराजमान होंगे, फिर भी अकेला छोड़कर जाने का भाव यह है कि श्री मिहिरराज जी को यह सहन (सह्य) नहीं था कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी स्थूल शरीर से उनसे अलग हों।

एह वचन स्यामाजीएं, सब साथ को कहे सुनाए।

इन्द्रावती आए बिना, हम धाम चल्यो न जाए॥१३॥

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने सब सुन्दरसाथ को सुनाते हुए यह बात कही थी कि श्री मिहिरराज (श्री इन्द्रावती जी) के आए बिना मैं धाम नहीं जा सकता अर्थात् इस तन का त्याग नहीं कर सकता।

एक रस आतम करके, आप हुए अन्तराए।

अनुभव कराए जुदे हुए, पर लग्या न कलेजे घाए॥१४॥

तब सद्गुरु महाराज ने मुझे बुलाकर अपने पास २२ दिनों तक रखा और मेरे हृदय का कष्ट दूर करके स्वयं अन्तर्धान हो गये (देह त्याग कर दिया)। उन्होंने अपने धामगमन के समय अध्यात्म की बहुत सी बातों का अनुभव कराया, फिर भी मेरे इस कठोर कलेजे में चोट नहीं लगी।

भावार्थ- "कलेजे में चोट लगना" एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है- किसी बात को आत्मसात् न कर पाना, प्रभावित न हो पाना, या संवेदनशील न हो पाना। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने श्री मिहिरराज जी को बुलाकर भविष्य में होने वाली सारी लीला की जानकारी दे दी।

अन्तरगत में रहे गए, धनी के दो एक सुकन।

ए दरद न काहूं बांटिया, सो मैं कहा न आगे किन॥१५॥

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्तर्धान होने के पश्चात् मुझे विरह का इतना अधिक कष्ट हुआ कि उनकी कही हुई एक-दो बातें ही मेरे दिल में रह सकी। कोई दूसरा तो विरह की उस अवस्था में मेरा सहभागी हो नहीं सकता था। मैं भी धनी के विरह में डूबा रहा और उनकी बातें किसी को भी नहीं बता सका।

मोहे बोहोत कही समझाए के, पर पेहेचान न हुई पूरन।

तब आप अंदर आए के, बहु विध करी रोसन॥१६॥

धामगमन से पूर्व सद्गुरु महाराज ने मुझे बहुत समझाया था, लेकिन मैं उनके स्वरूप की पूर्ण पहचान नहीं कर सका। तब धाम धनी मेरे धाम हृदय में आकर विराजमान

हो गये और अनेक प्रकार से तारतम ज्ञान का उजाला किया।

अंदर मेरे बैठ के, कई विध कियो विस्तार।

सो रोसनी जुबां क्यों कहे, वाको वाही जाने सुमार॥१७॥

मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर उन्होंने अनेक प्रकार से ब्रह्मवाणी का विस्तार (अवतरण) किया। तारतम ज्ञान के उस उजाले को भला मेरी यह वाणी (जबान) कैसे कह सकती है। ब्रह्मवाणी की महत्ता को तो यथार्थ रूप में धाम धनी ही जानते हैं।

तब कछुक मोको सुध भई, कछुक भई पेहेचान।

ए दरद कहूं मैं किनको, धनी हो गए अन्तरध्यान॥१८॥

जब धाम धनी अक्षरातीत मेरे धाम हृदय में आकर बैठ

गये, तब मुझे कुछ थोड़ी सी सुध हुई और उनके स्वरूप की कुछ पहचान भी हुई। धाम के धनी के अन्तर्धान होने के पश्चात् मेरे हृदय में जो विरह का दर्द पैदा हुआ, उसे मैं भला किसके आगे सुनाऊँ।

मोहे दिल में ऐसा आइया, ए जो खेल देख्या ब्रह्मांड।

तो क्या देखी हम दुनियां, जो इनको न करें अखंड॥१९॥

मेरे दिल में एक बात आयी कि हमने इस मायावी ब्रह्माण्ड का खेल देखा है। यदि हमने ब्रह्माण्ड को अखण्ड नहीं किया तो इस खेल में हमारे आने की क्या सार्थकता है।

भावार्थ— यद्यपि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अखण्ड करने का अधिकार तो अक्षरातीत को ही है, किन्तु इस चौपाई में ब्रह्मसृष्टियों द्वारा ब्रह्माण्ड को अखण्ड करने की जो बात

की गयी है, वह अँगना भाव के अधिकार द्वारा ही कही गयी है।

बड़ी बड़ाई अपनी, सुनी हमारी हम ।

हम दें मुक्त सबन को, जाए मिलें खसम ॥२०॥

हमने संसार के लोगों से अपनी बहुत अधिक महिमा सुनी है। संसार के लोग कह रहे हैं कि हम सभी ब्रह्ममुनि, जो इस संसार में आये हैं, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अखण्ड मुक्ति देकर परमधाम में अपने प्रियतम से मिलेंगे।

वचन हमारे धाम के, फैले हैं भरथ खंड।

अब पसरसी त्रैलोक में, जित होसी मुक्त ब्रह्मांड ॥२१॥

परमधाम की यह ब्रह्मवाणी अभी तो केवल भारतवर्ष में ही फैली हुई है। भविष्य में यह तीनों लोकों में फैलेगी ,

जिससे यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अखण्ड हो जायेगा।

भावार्थ- तीनों लोकों (पृथ्वी, स्वर्ग, तथा वैकुण्ठ) से तात्पर्य चौदह लोकों से है। नीचे के सातों पाताल लोक पृथ्वी लोक में समाहित हो जाते हैं। वस्तुतः चौदह लोकों की यह दुनिया योगमाया के ब्रह्माण्ड में ही धनी को यथार्थ रूप से पहचान पायेगी।

धनी भेजी किताब हाथ रसूल, जाए कहियो होए अमीन।

आखिर धनी आवसी, तब ल्याइयो सब आकीन॥२२॥

धाम धनी ने मुहम्मद साहिब के हाथ कुरआन भिजवाया और कहा कि संसार में पैगम्बर के रूप में जाकर यह बात बताना कि कियामत के समय जब अल्लाह तआला (श्री प्राणनाथ जी) आयें, तो तुम उन पर विश्वास लाना।

ए बंध धनिँ पेहेले बांधे, सो लिखे मांहेँ फुरमान।

इन जिमी साहेब आवसी, दीदार होसी सब जहान॥२३॥

धनी के आदेश से कुरआन में यह बात पहले से ही लिखी है कि इस संसार में पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द आयेंगे और सारे संसार को उनका दर्शन होगा।

ले हिसाब सबन पे, करसी कजा अदल।

भिस्त देसी सचराचर, कर साफ सबन के दिल॥२४॥

वह सातवें दिन की लीला में योगमाया के अन्दर सभी जीवों का हिसाब लेंगे तथा पूर्ण न्याय करेंगे। इसके पश्चात् चर-अचर सभी प्राणियों के हृदय को निर्मल करके बहिश्तों में अखण्ड मुक्ति देंगे।

भावार्थ- सभी धर्मग्रन्थों में मात्र मानव तन में ही मुक्ति का वर्णन है, किन्तु सातवें दिन की लीला में मनुष्य के

अतिरिक्त सभी चर (पशु-पक्षी, कीट) तथा अचर (पेड़-पौधों) की मुक्ति की बात क्या हास्यास्पद नहीं लगती है?

सभी धर्मग्रन्थों में ब्रह्म के ज्ञान एवं प्रेम द्वारा मुक्ति की बात की गयी है, जो केवल मानव योनि में ही सम्भव है। असुर, देव, ऋषि, मुनि, यक्ष, किन्नर आदि भी मानव योनि के ही अलग-अलग रूप हैं। पशु-पक्षियों में ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति न हो सकने के कारण मुक्ति की बात नहीं सोची गयी, किन्तु अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी की कृपा से होने वाली यह अखण्ड मुक्ति चौदह लोक के इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के लिये है। चेतना का वह स्वरूप जो भले ही पशु-पक्षियों तथा वृक्षों और पौधों में प्रविष्ट है, आदिनारायण की चेतना का प्रतिबिम्ब होने से शाश्वत शान्ति को प्राप्ति करेगा। यदि पेड़-पौधे सुख-दुःख का

अनुभव करें, प्रजनन करें, विष के सेवन से मृत्यु को प्राप्त हो जायें, और संगीत भी पसन्द करें, जैसा कि भारतीय धर्मग्रन्थों और विज्ञान की मान्यता है, तो उन्हें भी मुक्ति क्यों नहीं मिलनी चाहिए।

जो साहेब किन देख्या नहीं, न कछु सुनिया कान।

सो साहेब इत आवसी, करसी कायम सब जहान॥२५॥

जिस पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द अक्षरातीत को आज तक किसी ने देखा नहीं, और न अपने कानों से उनके बारे में कुछ सुना है, वे स्वयं इस संसार में श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में आयेंगे और इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अखण्ड मुक्ति देंगे।

भावार्थ— मन में यह जिज्ञासा होती है कि इस चौपाई में ऐसा क्यों कहा गया है कि उस अक्षरातीत परब्रह्म के बारे

में आज तक किसी ने अपने कानों से नहीं सुना था ? क्या इतने बड़े-बड़े धर्मग्रन्थों में अक्षरातीत का कोई वर्णन है ही नहीं?

वेदों का मूल विषय अक्षर ब्रह्म है। "यदक्षरं वेदविदो वदन्ति" अर्थात् कठोपनिषद् का यह कथन कि "वेद के जानने वाले, जिस अक्षर ब्रह्म का वर्णन करते हैं" यही सिद्ध करता है। यद्यपि कहीं-कहीं अक्षरातीत का भी वर्णन है, किन्तु सांकेतिक रूप में। उपनिषदों तथा छः दर्शनों की भी यही स्थिति है। पुराण संहिता और माहेश्वर तन्त्र में यद्यपि विषय -वस्तु तो अक्षर-अक्षरातीत हैं, किन्तु धाम और लीला का वर्णन सबलिक एवं केवल ब्रह्म का है। कुरआन में विशेष रूप से शरीयत और तरीकत का ज्ञान होने से अक्षरातीत के धाम, स्वरूप, तथा लीला की कोई पहचान नहीं है। पौराणिक और

तन्त्र ग्रन्थों, तौरेत, जंबूर, तथा इन्जील से अक्षरातीत का ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नहीं है। इस चौपाई में कथित "ना कछु सुनिया कान" का यही आशय है।

फुरमान महंमद ल्याइया, किया अति घना सोर।

कह्या रब आलम का आवसी, रात मेट करसी भोर॥२६॥

मुहम्मद (सल्ल.) इस संसार में कुरआन का ज्ञान लेकर आये और उन्होंने कियामत के समय परब्रह्म के प्रकट होने की बात बहुत जोर-शोर से की। उन्होंने स्पष्ट कहा कि उस समय सबके इष्ट परब्रह्म का प्रकटन होगा। वे परमधाम का ज्ञान लाकर अज्ञानता का अन्धकार मिटायेंगे और परम सत्य का उजाला करेंगे।

रूह अल्ला की आवहीं, जो ईश्वरों का ईस।

सो इन जिमी में पातसाही, करसी साल चालीस॥२७॥

उन्होंने यह भी कहा कि सच्चिदानन्द परब्रह्म के आनन्द स्वरूप श्री श्यामा जी (रूह अल्लाह) प्रकट होंगे। वे ईश्वरों के भी ईश्वर हैं। वे इस संसार में चालीस वर्षों तक राज्य करेंगे।

भावार्थ— सामान्यतः श्रीमुखवाणी में ईश्वर शब्द का प्रयोग आदिनारायण के लिये किया जाता है, जो अक्षर ब्रह्म के मन के स्वप्न के स्वरूप हैं। जिस प्रकार अक्षर ब्रह्म अक्षरातीत के सत् अंग हैं, उसी प्रकार श्री श्यामा जी अक्षरातीत के आनन्द अंग हैं। इसीलिए श्यामा जी को ईश्वरों का भी ईश्वर कहा गया है। चालीस वर्षों तक राज्य करने का तात्पर्य है— अलौकिक ज्ञान का अवतरण और उसका चारों ओर प्रसार करना।

मारेगा कलजुग को, ए जो चौदे तबक अंधेर।

तिनको काट काढ़सी, टालसी उलटो फेर ॥२८॥

श्री श्यामा जी चौदह लोक में फैले हुए अज्ञानता के अन्धकार रूपी कलियुग को मारेंगी। वे सबके हृदय से कलियुग को निकालकर जन्म-मरण के उल्टे चक्र से सभी को मुक्ति दिलायेंगी।

दज्जाल सरूप अंधेर को, आखिर ईसा मारसी ताए।

पेहेले निरमल करके, लेसी कदमों सुरत लगाए॥२९॥

कुरआन के अनुसार, रूह अल्लाह (श्यामा जी) कियामत के समय प्रकट होंगे और अज्ञानता के अन्धकार रूपी दज्जाल (शैतान या कलियुग) को मार डालेंगे। वे सबके हृदय को निर्मल करके उनकी सुरता को परब्रह्म से जोड़ देंगे।

पीछे प्रले करके, लेसी तुरत उठाए ।

चौदे तबक सचराचर, देसी भिस्त बनाए॥३०॥

इसके पश्चात् चौदह लोक के इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को महाप्रलय में लीन करेंगे और चर-अचर सभी प्राणियों को बहिश्तों में अखण्ड मुक्ति देंगे।

खासी उमत जो अहमदी, आई अर्स से उतर।

ताए अपना इलम देय के, ले चलसी अपने घर॥३१॥

परमधाम से माया का खेल देखने के लिये प्रेम का स्वरूप कही जाने वाली ब्रह्मसृष्टियाँ आयी हुई हैं। उन्हें श्री श्यामा जी अपना तारतम ज्ञान देंगी और जाग्रत करके परमधाम ले जायेंगी।

यों लिख्या फुरमान में, आखिर बीच हिंदुअन।

मुलक होसी नबियन का, धनी दई बड़ाई इन॥३२॥

कुरआन में ऐसा लिखा है कि कियामत के समय ब्रह्मसृष्टियाँ विशेष रूप से हिन्दुओं में अवतरित हैं। हिन्दुस्तान (भारत) नबियों का मुल्क हो जायेगा। धाम धनी ने हिन्दुस्तान और हिन्दुओं को यह शोभा दी है।

फुरमान जाहेर पुकारहीं, बीच हिंदुओं भेख फकर।

पातसाही करसी महंमद, आखिरी पैगंमर॥३३॥

कुरआन में यह बात स्पष्ट रूप से कही गयी है कि हिन्दुओं में ब्रह्मसृष्टियाँ अवतरित होंगी। उसमें श्री प्राणनाथ जी (आखिरी मुहम्मद) की लीला होगी। उनके अन्दर आखिरी पैगम्बर रसूल मुहम्मद साहिब भी होंगे।

सो महंमद आगूं भेजिया, केहेने वचन आगम।

सो खास उमत आई इत, ए जो लेने आए हम॥३४॥

मुहम्मद साहिब को धाम धनी ने ब्रह्मसृष्टियों के संसार में आने से ९९० वर्ष ९ माह पहले ही अरब में भेजा दिया, ताकि वे सबको भविष्य में प्रकट होने वाले आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिबबुज्रमां की पहचान करा सकें। यह ब्रह्मसृष्टि जो परमधाम से आयी है, उसे जाग्रत करके ले जाने के लिये ही हम (श्री जी) आये हुए हैं।

ए सब्द सारे महंमदें, आए पेहेले किया पुकार।

महंमद मेंहेदी रूहअल्ला, आखिर वाही सिर मुद्धार॥३५॥

मुहम्मद साहिब ने बहुत वर्ष पहले ही आकर सारी बातें संसार में बता दीं कि कियामत के दिन मुहम्मद महदी श्री प्राणनाथ जी और रूह अल्लाह (मलकी सूरत सद्गुरु धनी

श्री देवचन्द्र जी) प्रकट होंगे। उनके ऊपर ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अखण्ड मुक्ति देने का उत्तरदायित्व है।

खोल हकीकत मारफत, बताए कयामत के दिन।

कई विध बंध धनिएं बांधे, अपनी उमत के कारन॥३६॥

वे कियामत का दिन स्पष्ट करेंगे, तथा हकीकत एवं मारिफत का ज्ञान देंगे। इस प्रकार अपनी ब्रह्मसृष्टियों को प्रमाण देने के लिये धाम धनी ने कुरआन में अनेक प्रकार के छिपे हुए संकेत लिखवाये हैं।

भावार्थ- "बँध बाँधने" का अर्थ होता है, वे गुह्य भेद या संकेत जिनका स्पष्टीकरण हो जाने पर सत्य का प्रकाश हो जाये।

विजिया अभिनंद बुधजी, और नेहेकलंक इत आए।

मुक्त देसी सबन को, मेट सबे असुराए॥३७॥

हिन्दू धर्मग्रन्थों में भी यही बात लिखी है कि विजयाभिनन्द बुद्ध जी (सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी) और विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप (श्री प्राणनाथ जी) प्रकट होंगे, तथा सबके अन्दर की आसुरी प्रवृत्तियों को मिटाकर सबको अखण्ड मुक्ति देंगे।

भावार्थ- सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी को विजयाभिनन्द बुद्ध इसलिये कहते हैं कि उनके अन्दर जाग्रत बुद्धि (इस्राफील) विराजमान थी। उनके द्वारा ब्रह्मवाणी का अवतरण नहीं हुआ तथा जागनी की लीला नहीं हुई, इसलिये "निष्कलंक स्वरूप" की शोभा नहीं मिली। ये दोनों कार्य श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप से हुए, इसलिये उन्हें पूर्ण स्वरूप श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक माना

जाता है।

दिन भी लिखे जाहेर, बीच किताब हिंदुआन।

जो साख लिखी इनमें, सोई साख फुरमान॥३८॥

हिन्दू धर्मग्रन्थों में इनके प्रकट होने का समय भी स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है। जिस प्रकार की साक्षी हिन्दू धर्मग्रन्थों में लिखी हुई है, वही साक्षी कुरआन में भी लिखी है।

भावार्थ- भविष्योत्तर पुराण के ७२वें अध्याय में लिखा है- "विक्रमस्यगतेऽब्दे सप्तदशाष्ट त्रिकं यदा। तदायं सच्चिदानन्दो अक्षरात्परतः परः॥" अर्थात् जब वि.सं. १७३५ का समय होगा, उस समय अक्षर से भी परे रहने वाले सच्चिदानन्द अक्षरातीत का प्रकटन होगा। इसी प्रकार भविष्य दीपिका ग्रन्थ में शालिवाहन शाका के

१६०० वर्ष व्यतीत होने पर श्री जी का प्रकटन होना लिखा है- "शालिवाहन शाकात् तु गत षोडशकं शतम्। जीवोद्धाराय ब्रह्माण्डे कल्किः प्रादुर्भविष्यति॥" इसी तरह पुराण संहिता तथा बुद्ध गीता में भी समय का संकेत दिया गया है।

कुरआन पारा २२ आयत २९,३० में कहा गया है कि कियामत फरदा रोज (कल) को होगी। पारा ७ आयत ३६ का कथन है कि कियामत के समय तुम्हें अल्लाह का दीदार होगा। पारा १७ आयत ४७ के अनुसार दुनिया के हजार वर्षों के बराबर खुदा का एक दिन होता है तथा १०० वर्षों के बराबर एक रात्रि होती है। कुरआन के इन कथनों के आधार पर ११वीं सदी में कियामत का समय स्पष्ट होता है।

इस प्रकार की विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि

वि.सं. १७३५, शालिवाहन शाका १६००, तथा हिजरी १०९० (ग्यारहवीं सदी) का समय एक ही है, जो श्री प्राणनाथ जी का संसार में विख्यात (जाहिर) होने का समय है।

कई विध धनिएं ऐसा लिख्या, देने चौदे तबकों ईमान।

सो धाम धनी इत आए के, कराई सबों पेहेचान॥३९॥

धाम धनी ने हिन्दू धर्मग्रन्थों तथा कतेब ग्रन्थों में इस प्रकार की अनेक साक्षियाँ इसलिये लिखवायी हैं, ताकि चौदह लोक के प्राणियों को यह विश्वास हो जाये कि श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में सच्चिदानन्द परब्रह्म ही प्रकट हुए हैं। अब धाम धनी ने स्वयं इस संसार में प्रकट होकर सबको उनके ही ग्रन्थों से अपनी पहचान करायी है।

यों साख आतम देवहीं, वचन आगम के देख।

देने ईमान सबन को, यों बिध बिध लिखे विसेख॥४०॥

इस प्रकार धर्मग्रन्थों की इन भविष्यवाणियों को देखकर आत्मा भी साक्षी देती है कि सचमुच श्री प्राणनाथ जी अक्षरातीत परब्रह्म के ही स्वरूप हैं। सभी मतों के लोगों को श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप पर ईमान दिलाने के लिये ही धर्मग्रन्थों में तरह-तरह के प्रमाण विशेष रूप से लिखे हैं।

महामत कहें धनी धाम के, मुझसों कियो मिलाप।

आखिर सुख इन साथ में, मोहे कर थापी आप॥४१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत मुझसे हृद्भा में साक्षात् मिले और अन्ततोगत्वा उन्होंने

सब सुन्दरसाथ को परमधाम के सुखों की अनुभूति
कराने का उत्तरदायित्व मुझे ही सौंप दिया।

प्रकरण ॥९६॥ चौपाई ॥१४४०॥

राग श्री

इस प्रकरण में हृदय में प्रेम उत्पन्न होने के विषय पर प्रकाश डाला गया है।

इन धनी के बान मोको ना लगे।

मोको ना लगे, कहा कियो करम अधम।

तो भी इस्क न आया मोको, ए कैसा हुआ जुलम॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा ! तुम्हारे जीव ने ऐसे कौन से खोटे काम किये हैं, जिसके कारण धनी के अमृतमयी वचनों के वाणों की चोट भी तुम्हारे हृदय को नहीं पिघला पा रही है। इस जीव के ऊपर माया का यह बहुत बड़ा अत्याचार है। इस माया ने तो मेरे अन्दर धनी का इश्क नहीं आने दिया।

रंचक इसारत धनी की, जो पावे आसिक जिउ।

सो जीव खिन एक लों, रहे ना सके बिना पिउ॥२॥

अपने माशूक की ओर से कुर्बानी का संकेत मिलते ही आशिक जीव एक पल के लिये भी अपने को रोक नहीं पाता। वह अपने माशूक पर समर्पित हो जाता है। उसके बिना तो वह एक पल के लिये भी संसार में नहीं रह सकता।

सो भी पिउ जीउ इन जिमी के, ए जो फना ब्रह्मांड।

मेरो तो जीउ पिउ धाम को, ए जो अछरातीत अखंड॥३॥

जब इस नश्वर ब्रह्माण्ड के जीव अपने प्रियतम (माशूक) पर इतनी कुर्बानी करते हैं जो इस संसार के हैं, तो मेरे जीव के प्रियतम तो परमधाम के हैं जो अक्षरातीत हैं और अखण्ड हैं।

ऐसी प्रीत जीव सृष्ट की, जाके पिउ विष्णु सेखसाईं।

वाको रटत जात अहनिस, ब्रह्म अछर सुध न पाई॥४॥

जीव सृष्टि को अपने प्रियतम शेषशायी नारायण (आदिनारायण या महाविष्णु) के प्रति इतनी अधिक प्रीति होती है कि वह दिन-रात उनका नाम जपती रहती है। इतना करने पर भी उन्हें अक्षर ब्रह्म का जरा भी बोध नहीं है कि वे कहाँ और कैसे हैं।

भावार्थ- शेषशायी नारायण का अर्थ होता है – शेष अर्थात् महाशून्य (मोह तत्व) में शयन करने वाला। श्रीमुखवाणी के शब्दों में नारायण और विष्णु एकार्थवाची हैं – "वैकुण्ठ मिने नारायण जी, जिन मुख स्वांसां वेद।" अर्थात् वैकुण्ठ में नारायण (विष्णु भगवान) हैं। इसी प्रकार शेषशायी नारायण, आदिनारायण, या महाविष्णु भी समान अर्थ वाले हैं। शेषशायी नारायण को अष्टावरण

के अन्दर मानना सत्य को झुठलाना है।

कोट ब्रह्मांड नूर के पल थें, यों कहे सास्त्र त्रिगुन।

सो अछर किने न दृढ़ किया, न दृढ़ किया इनों वतन॥५॥

शास्त्रों एवं त्रिगुण (ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव) का कथन है कि हमारे चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड जैसे करोड़ों ब्रह्माण्ड अक्षर ब्रह्म के एक पल में ही उत्पन्न होते हैं और लय को प्राप्त हो जाते हैं। उस अक्षर ब्रह्म के विषय में आज दिन तक किसी ने भी दृढ़तापूर्वक यह नहीं कहा कि वे कौन हैं, कैसे हैं, तथा उनका धाम कहाँ है।

सो अछर अछरातीत के, आवे दरसन नित।

तले झरोखे आए के, कर मुजरा घरों फिरत॥६॥

वह अक्षर ब्रह्म प्रतिदिन अक्षरातीत श्री राज जी के दर्शन

करने के लिये आते हैं। वे तीसरी भूमिका के झरोखे के नीचे चाँदनी चौक में खड़े होकर श्री राज जी का दर्शन करते हैं और अक्षर धाम लौट जाते हैं।

सो ए धनी अछरातीत, इत आए मुझ कारन।

अंग दियो मोहे जान अंगना, दिल सनमंध आन वतन॥७॥

ऐसे अक्षरातीत धाम धनी मेरे लिये इस संसार में आये। उन्होंने मुझे अपनी अँगना जानकर अंगीकार किया, तथा परमधाम और अपने दिल के सम्बन्ध अर्थात् निसबत की पहचान करायी।

मोहे दर्ई सिखापन, धोखे दिये सब भान।

अन्तर पट उड़ाए के, कर दर्ई सब पेहेचान॥८॥

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के रूप में अक्षरातीत ने मेरे

सभी संशयों को दूर कर दिया और मुझे आत्म-जाग्रति का सिखापन दिया। उन्होंने पिण्ड-ब्रह्माण्ड से परे निराकार के परदे को हटाकर परमधाम की सारी पहचान करा दी।

अछर पार द्वार जो हुते, सो ए दिए सब खोल।

ऐसी कुन्जी दई कृपा की, जो किनहूँ न पाया मोल॥९॥

मेरे प्रियतम ने अक्षर से परे परमधाम के सभी दरवाजे खोल दिये, अर्थात् परमधाम के साक्षात्कार की सारी बाधाओं को दूर कर दिया। धाम धनी ने मेरे ऊपर कृपा करके तारतम ज्ञान की ऐसी कुञ्जी दी, जिसका मूल्य आज दिन तक किसी ने नहीं आँका अर्थात् जो अनमोल है।

सब ब्रह्मसृष्टी आई धाम से, अछरातीत इन धनी।

मोको सबे बिध समझाई, आप जान अपनी॥१०॥

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने परमधाम के मूल सम्बन्ध के अपनेपन से मुझे हर तरह से समझा दिया। उन्होंने यह बात स्पष्ट रूप से बतायी कि सभी ब्रह्मसृष्टियाँ परमधाम से माया का खेल देखने के लिये आयी हुई हैं और उनके प्रियतम अक्षरातीत हैं।

धनिएं हेत करके मुझको, कई विध दर्ई समझाए।

साख सास्त्र सब सब्द, मोहे विध विध दर्ई जगाए॥११॥

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने मुझे बहुत लाड-प्यार से समझाया। उन्होंने अनेक शास्त्रों तथा महापुरुषों के वचनों का उदाहरण दिया और ज्ञान द्वारा अनेक प्रकार से जाग्रत किया।

बोहोत धनिएं मोको चाह्या, जाने प्रेम उपजे इन।

सो प्रेम क्योंए न आइया, ऐसा हिरदे निपट कठिन॥१२॥

धाम धनी ने इस उद्देश्य से मुझे बहुत प्यार किया, ताकि मेरे अन्दर प्रेम उत्पन्न हो जाये। पर न जाने क्यों, उस समय मेरा हृदय इतना कठोर हो गया था कि मेरे अन्दर प्रेम नहीं आ सका।

तो भी प्रेम न उपज्या, धनी कर कर थके सनेह।

ढीठ निपट निठुर भई, धनी क्योंए न सके ले॥१३॥

धाम धनी मुझसे स्नेह कर-कर थक गये, लेकिन मेरे हृदय में प्रेम उत्पन्न नहीं हो सका। मैं बिल्कुल निष्ठुर और निडर दिल वाली हो गयी थी। मैं उस समय अपने प्रियतम को न तो किसी प्रकार से रिझा सकी और न ही उनका प्रेम अपने में आत्मसात् कर सकी।

भावार्थ- इस चौपाई में प्रयुक्त "ढीठ" शब्द का अर्थ होता है- अपराधी होते हुए भी निडरता प्रदर्शित करना। जिस प्रकार किसी के अभिवादन का उत्तर न देना अपराध माना जाता है, उसी प्रकार सच्चे प्रेम का प्रत्युत्तर न देना भी अपराध है। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के आत्मिक प्रेम को श्री मिहिरराज जी उस समय समझ नहीं पाये और अपनी भूल मानकर उसका यथार्थ प्रत्युत्तर भी नहीं दे पाये। "निडर" कहे जाने का यही आशय है।

फुरमान भेज्या जुदे होए, देने को साख दोए।

सो मेहेर धनी की मैं ही जानों, और न समझे कोए॥१४॥

अब धाम धनी ने श्री देवचन्द्र जी के तन का परित्याग कर दिया तथा मेरे धाम हृदय में विराजमान हो गये।

हिन्दू और मुस्लिम दोनों को साक्षी देने के उद्देश्य से उन्होंने मुझे कुरआन की साक्षियाँ दी। धाम धनी की इस मेहर को केवल मैं ही पहचानती हूँ, अन्य कोई भी नहीं।

भावार्थ- श्री महामति जी के धाम हृदय में कुरआन के ज्ञान को अवतरण मेड़ता की जागनी लीला के पश्चात् शुरु हुआ। अनूप शहर में सनन्ध के अवतरण के पश्चात् कुरआन का वास्तविक ज्ञान सबके लिये सुलभ हो गया।

सो ए सुकन दिए लदुन्नी, फुरमान याही से खुले।

और न कोई खोल सके, जो चौदे तबक मिले॥१५॥

मेरे प्राणवल्लभ ने मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर तारतम ज्ञान की वाणी (श्री कुलजम स्वरूप) अवतरित की, जिससे कुरआन के सभी गुह्य रहस्य खुल गये। यदि चौदह लोक के सभी प्राणी मिलकर भी कुरआन के भेदों

को जानना चाहें, तो बिना तारतम ज्ञान के सम्भव नहीं है।

सो मैं समझाऊं साथ को, ले फुरमान वचन।

फैले हैं भरथ खण्ड में, अब पोहोंचे चौदे भवन॥१६॥

अब मैं तारतम ज्ञान से कुरआन के भेदों को खोलकर सुन्दरसाथ को समझाता हूँ। अभी तो सुन्दरसाथ केवल भारतवर्ष में ही हैं, किन्तु भविष्य में १४ लोकों में यह ब्रह्मवाणी फैल जायेगी।

भावार्थ- चौदह लोकों में तारतम वाणी का प्रकाश फैलने की बात कई बार कही गयी है। मुख्य प्रश्न यह होता है कि जब ४०० वर्षों में भारत के सभी प्रान्तों में वाणी नहीं फैल सकी है, तो शरीयत के बन्धनों में जकड़े हुए अरब देशों में कैसे फैलेगी ? अपनी-अपनी

मान्यताओं का दृढ़तापूर्वक पोषण करने वाले अन्य मतावलम्बी श्रीमुखवाणी को कैसे स्वीकार करेंगे? जब पृथ्वी लोक की यह स्थिति है, तो स्वर्ग और वैकुण्ठ लोक में ब्रह्मवाणी का प्रकाश कैसे फैलेगा?

कलस हिंदुस्तानी में कहा गया है कि "हम जाहेर होए के चलसी, सब भेले निजघर।" इस संसार में तो केवल जाहिर ही हुआ जा सकता है। वर्तमान समय में कट्टरता और अज्ञानता की जो आँधी चल रही है, उसमें यह सम्भव नहीं दिखता कि पृथ्वी लोक का प्रत्येक प्राणी तारतम ज्ञान ग्रहण करेगा, किन्तु यदि विष्णु भगवान को तारतम ज्ञान का प्रकाश मिल जाता है तो सभी प्राणियों को मिल जायेगा। कलस हिंदुस्तानी में यह बात स्पष्ट रूप से कही गयी है—

खबर देसी भली भांते, विष्णु जागसी तत्काल।

तब आवसी नींद इन नैनों, प्रले होसी पंपाल॥

योगमाया के ब्रह्माण्ड में जब चौदह लोकों के प्राणी न्याय की लीला के समय एकत्रित होंगे, उस समय उनको अपनी भूलों पर पश्चाताप होगा और वे एक अक्षरातीत को ही पूर्ण ब्रह्म के रूप में स्वीकार करेंगे। "सब जातें मिली एक ठौर, कोई ना कहे धनी मेरा और।" इसे ही चौदह लोकों में ब्रह्मवाणी का फैलाव होना कहते हैं।

ऐसी जगाए खड़ी करी मुझे, और सब पर मेरी बुध।

खबर न अछर ब्रह्म को, सो ए भई मुझे सुध॥१७॥

धाम धनी ने मुझे इस प्रकार जाग्रत कर उस मन्जिल पर पहुँचा दिया कि मेरी जाग्रत बुद्धि के ज्ञान की गरिमा

सर्वोपरि हो गयी। परमधाम की जिस लीला की हकीकत और मारिफत की जानकारी अक्षर ब्रह्म को भी नहीं है, उसकी भी मुझे सुध हो गयी।

आप जैसी कर बैठाई, तो भी प्रेम न उपज्या इत।

सो रोवत हों अन्दर, फेर फेर जीव बिलखत॥१८॥

हे धनी! आपने मुझे अपने समान बना लिया, फिर भी मेरे हृदय में प्रेम पैदा नहीं हुआ। इसलिये मैं अन्दर ही अन्दर रो रही हूँ। मेरा जीव बार-बार प्रेम पाने के लिये बिलख रहा है।

भावार्थ— प्रेम के बिना न तो धनी का दीदार हो सकता है और न ही धनी अन्दर बैठकर अपनी जैसी शोभा दे सकते हैं। श्री महामति जी का यह कथन कि मेरे अन्दर प्रेम पैदा ही नहीं हुआ, उनकी अभिमान से रहित निर्मल

प्रवृत्ति एवं विनम्रता की पराकाष्ठा का परिचय दे रहा है। दूसरे शब्दों में ऐसा भी कहा जा सकता है कि ज्ञान के प्रचार में लग जाने पर प्रेम की वह पूर्व स्थिति नहीं रहती, जो दीदार के समय रहा करती थी। श्री महामति जी अपनी हब्शा वाली स्थिति को याद करके कहते हैं कि उस प्रेम के रस को पाने के लिये मेरा जीव फूट-फूटकर रो रहा है। यद्यपि आत्मा द्रष्टा होने के कारण रो तो नहीं सकती, किन्तु प्रेम की पीड़ा का अहसास करती है क्योंकि प्रेम ही उसका जीवन है, इसलिये इस चौपाई में लोक-रीति में आत्मा द्वारा रोने की बात कही गयी है।

मेहेबूब ऐसी मैं क्यों भई, ले प्रेम न खड़ी हुई।

महामत दुष्टाई क्यों करी, ले विरहा मांहे न मुई॥१९॥

श्री महामति जी कहती हैं कि हे मेरे धाम धनी! मैं इस

प्रकार के अपराध से ग्रसित कैसे हो गयी? मैंने आपके प्रेम से अलग रहने की दुष्टता क्यों की? मैं आपके विरह-सागर में क्यों नहीं डूब मरी? मुझे तो यही चाहिए था कि मैं आपका प्रेम लेकर खड़ी हो जाती अर्थात् जाग्रत हो जाती।

प्रकरण ॥९७॥ चौपाई ॥९४५९॥

राग श्री

तो भी चोट न लगी रे आत्म को, जो एती साख धनिएं दर्ई।

कठिन कठोर निपट ऐसी आत्म, एती साखें ले गल ना गई॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा ! धाम धनी ने तुझे जगाने के लिये इतनी अधिक साक्षियाँ दी, फिर भी तुम्हें चोट क्यों नहीं लगी अर्थात् तुम्हारा हृदय द्रवित क्यों नहीं हुआ। तू इतनी कठिन और कठोर हृदय वाली क्यों हो गयी। इतनी साक्षियों को पाने के बाद भी तू धनी के प्रेम में गलतान (निमग्न, रल) क्यों नहीं हो सकी।

भावार्थ— आत्मा तो परात्म की नजर, सुरता, या प्रतिबिम्ब है। उसका हृदय कठोर नहीं हो सकता। जिस प्रकार जीव के गुनाहों को आत्मा के साथ जोड़ा जाता है, उसी प्रकार जीव के कठोर हृदय की बात आत्मा के

साथ कह दी जाती है। इस चौपाई में वही प्रसंग है।

कई साखें धनिएं दई मुझे, श्री स्यामा जी आए इत।

सो तारतम कह्या मैं तुमें, देखो साख देत है चित॥२॥

धाम धनी ने श्री देवचन्द्र जी के अन्दर विराजमान होकर मुझे अनेक प्रकार की साक्षियाँ दी। उन्होंने मुझे तारतम ज्ञान देकर कहा कि अब तुम अपने दिल से पूछो कि वह साक्षी के रूप में क्या कहता है।

कह्या साहेब इत आवसी, सो झूठ न होय फुरमान।

सब का हिसाब लेय के, कायम करसी जहान॥३॥

कुरआन में लिखा है कि कियामत के समय पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द इस संसार में (अपने आवेश स्वरूप से) आयेंगे और कर्मों के अनुसार सबका न्याय करेंगे। इसके

पश्चात् वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अखण्ड मुक्ति भी देंगे।
कुरआन का यह कथन कदापि झूठा नहीं हो सकता।

पूछो अपनी आत्म को, कोई दूजा है इसदाए।

रूह-अल्ला इलम ल्याए के, केहेलावें इत खुदाए॥४॥

हे सुन्दरसाथ जी! अब आप अपनी आत्मा से पूछिए कि अनादि काल से अक्षरातीत श्री राज जी के अतिरिक्त कोई दूसरा भी सच्चिदानन्द पूर्णब्रह्म है? परब्रह्म की आनन्द शक्ति श्यामा जी (अल्लाह की रूह) इस संसार में तारतम ज्ञान लेकर आयेंगीं। जब उनके धाम हृदय में विराजमान होकर परब्रह्म लीला करेंगे, तो उन्हें भी परब्रह्म (खुदा) कहलाने की शोभा मिलेगी।

सो बिना हिसाबें हदीसैं, भी अनुभव इत बोलत।

साथ जी दिल दे देखियो, जो हम तुम में बीतत॥५॥

हदीसों में इस तरह की बातें बहुत जगहों पर लिखी हुई हैं और हमारा अनुभव भी यही बात कहता है। हे सुन्दरसाथ जी! आप अपने दिल में इस बात का विचार कीजिए कि जो कुछ हमारे-आपके साथ बीत रहा है (घटित हो रहा है), वह धाम धनी द्वारा पहले से ही निश्चित है।

भावार्थ- "बिना हिसाब" का अर्थ होता है, ऐसी संख्या जिसकी गणना न हो सके अर्थात् अनन्त। इस संसार में हदीसों और उनमें लिखित प्रमाणों की संख्या सीमित ही मानी जायेगी, अनन्त कदापि नहीं। ऐसा अतिशयोक्ति अलंकार के रूप में ही कहा गया है।

वसीयत नामे आए दरगाह से, तिन साख दई बनाए।

अग्यारै सदी जाहेर लिखी, सो कौल पोहोंच्या आए॥६॥

मक्का-मदीना से जो वसीयतनामे लिखकर आये हैं, उनमें यह बात साक्षी रूप में स्पष्ट लिखी हुई है कि ग्यारहवीं सदी में आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिब्बुज्जमां (श्री प्राणनाथ जी) का प्रकटन होगा। अब वही समय आ गया है।

कई किताबें हिंदुअन की, साखें लिखी मांहें इन।

आए धनी झूठ उड़ावने, करसी सत रोसन॥७॥

हिन्दुओं के बहुत से धर्मग्रन्थों में इस प्रकार की साक्षियाँ लिखी हुई हैं कि पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द (वि.सं. १७३५ में) इस संसार में आयेंगे तथा मिथ्या अज्ञान को हटाकर सत्य ज्ञान का प्रकाश करेंगे।

भावार्थ- पुराण संहिता, माहेश्वर तन्त्र, बुद्ध गीता, भविष्योत्तर पुराण, श्रीमद्भागवत्, तथा भविष्य दीपिका आदि में इस प्रकार की साक्षियाँ हैं।

देखो कई साखें धनीय की, भी देखो अनुभव आतम।
कई साखें देखो फुरमान में, जो मेहेर कर भेज्या खसम॥८॥
हे सुन्दरसाथ जी! धनी द्वारा लीला रूप में दी जाने वाली साक्षियों के ऊपर विचार कीजिए। अपनी आत्मा द्वारा होने वाले अनुभवों को देखिए। धाम धनी ने मेहर कर जो कुरआन भेजा है, उसमें श्री प्राणनाथ जी की पहचान से सम्बन्धित जो साक्षियाँ लिखी हैं, उन पर भी विचार कीजिए।

और हदीसों में कई साखें, कई वसीयत नामे साख।

कई किताबें हिंदुअन की, देत भाख भाख कई लाख॥९॥

इस प्रकार मक्का से आने वाले वसीयतनामों तथा हदीसों में श्री प्राणनाथ जी की पहचान से सम्बन्धित बहुत सी साक्षियाँ हैं। हिन्दुओं के अनेक धर्मग्रन्थों में लाखों वचनों में इस प्रकार की साक्षियाँ लिखी हुई हैं।

भावार्थ— "लाखों वचनों " का प्रसंग अतिशयोक्ति अलंकार के रूप में किया गया है।

कई साखें साधो संतो, बोले बानी आगम।

कहे ना सकूं तुमको साथ जी, दोष देख अपना हम॥१०॥

हे साथ जी! साधू-सन्तों की वाणियों में भी श्री जी के स्वरूप की पहचान से सम्बन्धित अनेकों साक्षियाँ हैं। भविष्य का कथन करने वाले धर्मग्रन्थों में भी श्री

प्राणनाथ जी की पहचान की साक्षियाँ हैं। इतनी साक्षियों के होते हुए भी आपसे कहने में मुझे झिझक महसूस हो रही है, क्योंकि सुन्दरसाथ का यह दोष रहा है कि उसने श्री प्राणनाथ जी की पहचान करने में अब तक बहुत अधिक शिथिलता का परिचय दिया है।

एक साखें आवे ईमान, कई साखें देन बांधे बंध।

तो भी ईमान न आया हमको, कोई हिरदे भया ऐसा अंध॥११॥

ईमान आने के लिये तो एक ही साक्षी पर्याप्त (काफी) होती है, लेकिन धनी ने हमें ईमान पर खड़ा करने के लिये अनेक धर्मग्रन्थों में अनेक साक्षियाँ दे रखी हैं, लेकिन हम लोगों का हृदय माया में इस प्रकार अन्धा हो गया है कि हमने इतनी साक्षियों के होने पर भी श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप की यथार्थ पहचान नहीं की।

देखो विचार के साथ जी, साख दई आतम महामत।

सो आतम साख सबों की देयसी, पोहोंच्या इलम हमारा जित॥१२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! इस बात पर विचार करके देखिए। मेरी आत्मा यह साक्षी दे कर कह रही है कि जहाँ भी हमारा तारतम ज्ञान पहुँचेगा, वहाँ पर सभी की आत्मा यह साक्षी देकर कहेगी कि श्री प्राणनाथ जी का स्वरूप अक्षरातीत का स्वरूप है।

प्रकरण ॥९८॥ चौपाई ॥१४७१॥

राग श्री

इस प्रकरण में सुन्दरसाथ को आत्म-जाग्रति के लिये प्रेरित किया गया है।

धिक धिक पड़ो मेरी बुध को।

मेरी सुध को, मेरे तन को, मेरे मन को, याद न किया धनी धाम।

जेहेर जिमी को लग रही, भूली आठों जाम॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि मेरी इस बुद्धि को धिक्कार है, जिसने ब्रह्मवाणी के सहारे आत्म-जाग्रति की विवेचना नहीं की। मेरी इस विवेकशीलता को भी धिक्कार है कि उसने संसार को छोड़कर धनी के प्रेम में डूबने का निर्णय नहीं लिया। मेरे इस शरीर को धिक्कार है, जिसने सेवा और चितवनि में स्वयं को समर्पित नहीं किया। इस चञ्चल मन को भी धिक्कार है, जिसने धाम धनी को याद

नहीं किया। माया की फरामोशी में होने से मेरी आत्मा इस जहर भरी दुनिया में ही फँसी रह गयी और आठों प्रहर अपने प्रियतम को भूली रही।

भावार्थ- यह सारी स्नेह भरी फटकार और सिखापन सुन्दरसाथ के लिये है, जो श्री महामति जी ने स्वयं अपने ऊपर लेकर कहा है। इन चौपाइयों में वर्णित स्थितियों में एक भी बात महामति जी के ऊपर घटित नहीं होती है। यह प्रकरण हमारे लिये अत्यधिक प्रेरणाप्रद है।

मूल वतन धनिएं बताइया, जित साथ स्यामा जी स्याम।

पीठ दर्ई इन घर को, खोया अखंड आराम॥२॥

धाम धनी ने मुझे उस परमधाम की पहचान करायी है, जहाँ मूल मिलावा में युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी

और सुन्दरसाथ विराजमान हैं। मायावी सुखों की तृष्णा में मैंने अपने निज घर को भुला दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि मैंने अपनी आत्मा के अखण्ड आनन्द को खो दिया।

सनमंध मेरा तासों किया, जाको निज नेहेचल नाम।

अखंड सुख ऐसा दिया, सो मैं छोड़या विसराम॥३॥

धाम धनी ने मेरा सम्बन्ध स्वलीला अद्वैतमयी उस अखण्ड परमधाम से किया था। वहाँ के अखण्ड सुखों का दरवाजा भी मेरे लिये खोल दिया था, लेकिन मैंने प्रमादवश उस आनन्द को गँवा दिया।

खिताब दिया ऐसा खसमैं, इत आए इमाम।

कुंजी दर्ई हाथ भिस्त की, साखी अल्ला कलाम॥४॥

धाम धनी ने इस संसार में मुझे "आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिब्बुज्जमां" की शोभा दी। इसके साथ ही उन्होंने १४ लोक के सभी जीवों को अखण्ड मुक्ति देने का अधिकार दिया और इसकी साक्षी भी कुरआन से दे दी।

अखंड सुख छोड़या अपना, जो मेरा मूल मुकाम।

इस्क न आया धनीय का, जाए लगी हराम॥५॥

माया की फरामोशी के कारण मैंने अपने मूल घर परमधाम के अखण्ड सुखों को छोड़ दिया। मैं इस पापिनी माया के जाल में फँसती चली गयी, जिसके कारण मेरे अन्दर धनी का इश्क नहीं आ सका।

खोल खजाना धनिएं सब दिया, अंग मेरे पूरा न ईमान।

सो ए खोया मैं नींद में, करके संग सैतान॥६॥

धाम धनी ने परमधाम का सम्पूर्ण खजाना (आत्मिक धन) ही खोलकर दे दिया अर्थात् मेरे हृदय में आठों सागरों का रस उड़ेल दिया, लेकिन यह मेरा दुर्भाग्य है कि मेरे अन्दर धनी के प्रति पूर्ण ईमान नहीं आ सका। इसी कारण इस शैतान (कलियुग, दज्जाल) की संगति में मैंने उस अलौकिक धन को अज्ञानता की नींद में गँवा दिया।

उमर खोई अमोलक, मोह मद क्रोध ने काम।

विख्या विखे रस भेदिया, गल गया लोहू मांस चाम॥७॥

मैं काम, क्रोध, मोह, और अहंकार के वशीभूत हो गया, जिसके कारण मेरी अनमोल उम्र व्यर्थ हो गयी। विष रूपी

विषय विकारों के कीचड़ में फँस जाने से मेरे शरीर का रक्त, माँस, तथा चमड़ा भी गल गया अर्थात् शरीर नाम मात्र को ही रह गया।

भावार्थ- इस प्रकरण की चौपाई ५, ६, ७ में जो कुछ भी कहा गया है, वह श्री महामति जी के ऊपर स्वप्न में भी घटित नहीं हो सकता है। जिस तन में अक्षरातीत की लीला चल रही हो तथा जिसका जीव पूर्व जन्म में हिमालय स्थित कलाप ग्राम का महान योगी हो, वह काम, क्रोध, लोभ आदि विकारों से ग्रस्त हो, ऐसी कल्पना कभी की ही नहीं जा सकती। यदि श्री महामति जी के अन्दर धनी के प्रति इश्क और ईमान था ही नहीं, तो उनके अन्दर धाम धनी विराजमान कैसे हो गये। वस्तुतः इस प्रकरण में तो हम सुन्दरसाथ के लिये सिखापन है। उन्होंने उन सारे दोषों को अपने ऊपर ले

लिया है, जिसमें हम आकण्ठ डूबे हैं। यह महानता की पराकाष्ठा है।

अब अंग मेरे अपंग भए, बल बुध फिरी तमाम।

गए अवसर कहा रोइए, छूट गई वह ताम॥८॥

अब मेरे इस जर्जर शरीर के सभी अंग अपंग की तरह निरर्थक हैं। मेरे शरीर में जरा भी बल नहीं है। बुद्धि भी छू-मन्तर (समाप्त) सी हो गयी है। धनी के प्रेम में डूबकर आत्मिक आनन्द पाने का जो स्वर्णिम अवसर था, उसे तो मैंने खो ही दिया है। अब आत्मिक आनन्द के मिलने का कोई भी साधन नहीं दिखायी देता। ऐसी स्थिति में केवल रोते रहने से कोई लाभ नहीं है।

पार द्वार सब खोल के, कर दर्ई मूल पेहेचान।

संसे मेरे कोई न रह्या, ऐसे धनी मेहेरबान॥९॥

धाम धनी ऐसे मेहर के सागर हैं कि उन्होंने निराकार –
बेहद के परे के सभी द्वारों को खोलकर मूल स्वरूप
अक्षरातीत की पहचान करा दी। अब मेरे अन्दर किसी
प्रकार का कोई भी संशय नहीं है।

बोहोत कह्या घर चलते, वचन न लागे अंग।

इंद्रावती हिरदे कठिन भई, चली न पिऊजी के संग॥१०॥

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र
जी ने अन्तर्धान होने के समय मुझे बहुत अधिक
समझाया, लेकिन उनके वचनों का मेरे ऊपर कोई भी
प्रभाव नहीं पड़ा। मेरा हृदय उस समय इतना कठोर हो
गया था कि मेरे धाम धनी ने तो अपना शरीर छोड़ दिया,

लेकिन मैं शरीर छोड़कर इस संसार से अलग न हो सकी।

भावार्थ- इस प्रकरण की चौपाई १, २, ३, ५, ६, ७, और ८ में उस समय का वर्णन है, जब सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के तन से लीला चल रही थी। उस समय माया की थोड़ी सी छाया पड़ जाना स्वाभाविक है, किन्तु जो वर्णन है, वह अतिशयोक्ति अलंकार में है। किन्तु चौपाई ४, ९, १०, और ११ में सद्गुरु महाराज के अन्तर्धान होने के बाद की लीला का वर्णन है।

तब हार के धनिएं विचारिया, क्यों छोड़ूं अपनी अरधंग।
 फेर बैठे मांहे आसन कर, महामति हिरदे अपंग॥११॥

श्री महामति जी कहते हैं कि अन्ततोगत्वा धाम धनी ने अपने मन में विचारा कि मेरे विरह में तड़पती हुई अपनी

अर्धांगिनी (इन्द्रावती) को कैसे छोड़ सकता हूँ। यद्यपि संसार के आरोपों से व्यथित होकर मेरा मन बहुत टूट गया था, फिर भी वे मेरे टूटे हुए दिल में आकर अखण्ड रूप से विराजमान हो गये।

प्रकरण ॥९९॥ चौपाई ॥१४८२॥

इस प्रकरण में भी आत्मा की जाग्रति के लिये प्रबोधित किया गया है।

धनी एते गुन तेरे देख के, क्यों भई हिरदे की अंध।

कई साखें साहेदियां ले ले, याही में रही फंद॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरे धाम धनी ! मैंने आपके इन (अनन्त) गुणों को समझा तो है, किन्तु हृदय में अन्तर्दृष्टि न होने के कारण मैंने आपके स्वरूप की पहचान ही नहीं की है। मुझे इस बात पर बहुत अधिक आश्चर्य होता है कि इतनी साक्षियों का संकलन करने के पश्चात् भी मैं माया के फँदे में कैसे फँसी रह गयी।

कई साखें लई धनी की, कई साखें लई फुरमान।

कई साखें लई सास्त्रन की, अंतस्करन में आन॥२॥

धाम धनी ने लीला रूप में मुझे जो भी साक्षियाँ दी और कुरआन में जो कुछ भी लिखा हुआ था, उसे मैंने अपने हृदय में आत्मसात् किया। इसके अतिरिक्त शास्त्रों की साक्षियों को भी मैंने अपने दिल में ले लिया था।

कई साखें साधुन की, कई साखें सब्द ब्रह्मांड।

आतम मेरी अनुभव से, लगाए देखी अखंड॥३॥

मैंने अपनी आत्मा को प्रबोधित करने के लिये अनेक साधू-सन्तों के अनुभव-युक्त वचनों की साक्षी ली। इसके अतिरिक्त इस ब्रह्माण्ड के महापुरुषों के श्रेष्ठतम् वचनों को भी मैंने अपने हृदय में स्थान दिया। मेरी आत्मा साक्षात् अनुभव द्वारा जाग्रत हो सके, इसके लिये मैंने अखण्ड परमधाम की ओर सुरता भी लगायी।

जो कोई कबीला पार का, सो सारों ने दई साख।

धनी गुन आए आतम नजरोँ, सो कहे न जाए मुख भाख॥४॥

वैकुण्ठ-निराकार से परे अखण्ड का वर्णन करने वाले अध्यात्मवादियों का जो समूह था, उन सभी ने इस बात की साक्षी दी। मेरी आत्मिक दृष्टि ने धनी के गुणों की पहचान की। उन गुणों का वर्णन इस मुख से होना सम्भव नहीं है।

भावार्थ- इस प्रकरण में यह प्रश्न होता है कि श्री महामति जी ने किस प्रसंग में सबकी साक्षी ली?

वस्तुतः साक्षी का मूल विषय है- इस नश्वर जगत् में विषय सुख क्षणिक हैं। एकमात्र आत्म-जाग्रति ही शाश्वत् प्रेम, शान्ति, और आनन्द का मूल है। अक्षर की पञ्चवासनाओं तथा इनसे सम्बन्धित अध्यात्मवादियों का समूह ही वह कबीला (परिवार) है, जो निराकार से परे

अखण्ड बेहद की बातें करता है।

कई साखें गुन विचार विचार, बिध बिध करी पुकार।

तो भी घाव कलेजे न लग्या, यों गया जनम अकार॥५॥

मैंने इन सभी साक्षियों को लेकर धनी के गुणों के सम्बन्ध में बार-बार विचार किया। संसार में अनेक प्रकार से मैंने लोगों को आत्म-जाग्रति के सम्बन्ध में पुकार-पुकारकर सुनाया भी, लेकिन मेरे स्वयं के कठोर हृदय में चोट नहीं लगी। इस प्रकार मेरा जन्म निरर्थक ही व्यतीत हो गया।

भावार्थ- इस चौपाई में परोक्ष रूप से उन विद्वतजनों के लिये सिखापन है, जो मात्र चर्चा-प्रवचन में ही निपुणता प्राप्त करने को अपने जीवन का परम लक्ष्य मानते हैं।

कई साखें गुन मुख केहे केहे, उमर खोई मैं सब।

अजूं आतम खड़ी न हुई, क्यों पुकारूं मैं अब॥६॥

मैंने अपने मुख से साक्षियों तथा धनी के गुणों को सुना-सुनाकर अपनी सारी उम्र खो दी, फिर भी मेरी आत्मा अब तक जाग्रत नहीं हुई। इस प्रकार चर्चा-प्रवचन में लगे रहने से मुझे क्या लाभ हुआ।

भावार्थ- इस चौपाई में अपनी आत्मा के जाग्रत न होने की जो बात कही गयी है, वह मात्र सुन्दरसाथ को सिखापन देने के लिये है। महामति जी का स्वयं के प्रति कथन कि "धनी जगाए मोहे एकली, मैं जगाऊ बांधे जुथ" तथा "सब साथ करूं मैं आपसा, तो मैं जागी परवान" निश्चित रूप से पूर्व कथन के विपरीत है। स्वयं को अत्यधिक खेदपूर्वक जाग्रत न होने की बात कहना उन विद्वानों के लिये परोक्ष रूप से सिखापन है, जो

प्रेम-भक्ति से दूर होकर मात्र वाग्विलास (चर्चा सुनाने के आनन्द) को ही जीवन का परम लक्ष्य मान लेते हैं। यद्यपि ब्रह्मज्ञान सुनाकर दूसरों के जीवन में प्रकाश लाना बहुत ही महान एवं पुण्यमयी कार्य है, किन्तु परब्रह्म का प्रेम खो देना भी महान अपराध है। वस्तुतः दोनों में सामञ्जस्य होना चाहिए। महामति जी के कथन का मुख्य अभिप्राय यही है।

अब दिन बाकी कछू ना रहे, सो भी देखाए दई तुम सरत।

क्यों मुख उठाऊं आगूं तुम, चरनों लागूं जिन बखत॥७॥

हे धाम धनी! आपने मुझे इस बात की भी पहचान करा दी है कि मेरे तन से होने वाली जागनी लीला में कुछ ज्यादा दिन नहीं बचे हैं। मुझे इस बात की बहुत चिन्ता हो रही है कि इस खेल के खत्म होने के पश्चात् जब मैं

अपने मूल तन में उठूँगी और आपके चरणों में प्रणाम करूँगी, तो आपके सामने कैसे मुख उठाऊँगी।

भावार्थ- इस चौपाई के पहले चरण से ही यह स्पष्ट हो रहा है कि यह कीर्तन श्री ५ पद्मावती पुरी धाम में उतरा है। इस संसार में परब्रह्म के रूप में पूजित होने के पश्चात् भी श्री महामति जी के मन में यह चिन्ता बनी हुई है कि मैं धनी के सामने क्या मुख दिखाऊँगी। अग्रणी सुन्दरसाथ के लिये यह सिखापन है कि बड़ी से बड़ी शोभा पाने के बाद भी उन्हें आत्म-निरीक्षण की प्रवृत्ति नहीं छोड़नी चाहिए। चौपाई ८ एवं ९ में भी इसी प्रकार की अभिव्यक्ति है।

ज्यों ज्यों तुम कृपा करी, मैं त्यों त्यों किए अवगुन।

तिन पर फेर तुम गुन किए, मैं फेर फेर किए विघन॥८॥

मेरे प्राण प्रियतम! जैसे-जैसे आप मेरे ऊपर कृपा करते गये, मैं वैसे-वैसे अवगुण (अपराध) करती गयी। इसके पश्चात् भी आप मेरे ऊपर अपने गुण ही दर्शाते रहे अर्थात् पल-पल मेहर की वर्षा करते रहे। यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं ऐसे अवगुण करती रही, जो धनी की मेहर को आत्मसात् करने में बाधायें ही खड़ी करते रहे।

गुन धनी के गाते गाते, गई सारी आरबल।

अवगुन अपने भाखते, उमर खोई ना सकी चल॥९॥

धनी के गुणों को गाते-गाते मेरी सारी आयु व्यतीत हो गयी। अपने अवगुणों की पहचान करने में मैंने अपनी सारी उम्र लगा दी, लेकिन मैं यथार्थ मार्ग पर नहीं चल सकी।

भावार्थ- इस मायावी जगत में पूर्ण रूप से धर्माचरण

करना बहुत कठिन होता है। धनी के गुणों के गायन से हमारे अन्दर भी उन गुणों का अंश रूप में प्रवेश प्रारम्भ हो जाता है। अपने अवगुणों को त्यागने के लिये उनकी पहचान होना आवश्यक है। निष्पक्ष रूप से आत्म – निरीक्षण की प्रवृत्ति ही हमें अध्यात्म की राह पर तेजी से गतिशील बना सकती है। यदि कोई व्यक्ति मात्र स्वयं ही पूर्ण धर्माचरण का श्रेय लेता है तथा दूसरों में दोष ही दोष देखा करता है, तो निश्चय ही वह धर्म के चरम लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर सकता। इस चौपाई का मूल भाव यही है।

अब हुकम होए धनी सो करुं, मेरा बल ना चले कछु इत।

सुखरू तुम करोगे, पुकार कहे महामत॥१०॥

श्री महामति जी पुकार-पुकार कर कह रही हैं कि हे मेरे धाम धनी! अब आपका जो भी आदेश होगा, मैं वही

करूँगी। इस माया में मेरा कुछ भी बल नहीं चल रहा है।
मुझे माया के दोषों से एकमात्र आप ही मुक्त कर सकते
हैं।

प्रकरण ॥१००॥ चौपाई ॥१४९२॥

राग श्री

यह प्रकरण श्री ५ पद्मावती पुरी धाम में ही अवतरित हुआ है। इस मायावी जगत में सूर्य के ऊपर धूल फेंकने का प्रयास अवश्य होता है। श्री जी के चरणों में रहने वाले सुन्दरसाथ में से कुछ ऐसे भी थे, जिन्होंने उनके स्वरूप को नहीं पहचाना था और किसी न किसी बात पर दबी जबान से आक्षेप किया करते थे, यद्यपि वे बाह्य रूप से यही सिद्ध करते थे कि हम श्री जी के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित हैं। यह कीर्तन उन्हीं सुन्दरसाथ को सिखापन देने के लिये अवतरित हुआ है।

साथ जी सुनो सिरदारो, मुझ जैसी ना कोई दुष्ट।

धाम छोड़ झूठी जिमी लगी, चोर चंडाल चरमिष्ट॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरे अग्रणी सुन्दरसाथ!

मेरे समान इस संसार में कोई भी दुष्ट व्यक्ति नहीं है। मैं परमधाम के शाश्वत आनन्द को छोड़कर इस झूठे संसार में फँसा जा रहा हूँ। इस प्रकार मैं चोर, चाण्डाल, एवं चर्मदृष्टि रखने वाला नीच व्यक्ति हूँ।

भावार्थ- यदि कोई बहुत नजदीकी व्यक्ति आरोप लगाता है, तो हृदय से इसी प्रकार के पीड़ादायक स्वर निकलते हैं। इस चौपाई द्वारा श्री महामति जी ने बड़ी ही मार्मिक भाषा में उन सभी आक्षेपों का उत्तर दे दिया है, जो दबी जबान से सुन्दरसाथ किया करते थे। श्री महामति जी की यह मान्यता है कि धनी से छिपकर माया के विषय सुखों का सेवन करने वाला चोर है। खोटे कर्म करने वाला व्यक्ति चाण्डाल है, तथा शरीर को ही सब कुछ समझने वाला व्यक्ति "चरमिष्ट" अर्थात् चर्मदृष्टि वाला है। इन आरोपों को श्री महामति जी में आरोपित

करना वैसे ही मिथ्या है, जैसे कोई यह कहे कि मैंने खरगोश के सींगों या आकाश के फूलों का दर्शन किया है।

प्रेम खोया मैं बानी कर कर, हो गया जीव कोई भिष्ट।

साथ के चरन धोए पीजिए, ताको दिए मैं कष्ट॥२॥

मेरे तन से धनी ने वाणी कहलवायी। इस प्रकार ज्ञान में सारा ध्यान केन्द्रित हो जाने से मैं प्रेम से रहित हो गया। मैं आपकी नजरों में एक भ्रष्ट जीव की तरह हूँ, जो दिन-रात ज्ञान सुनाने में लगा रहता है। हे सुन्दरसाथ जी! आप तो इतने महान हैं कि मुझे आपके चरण धो-धोकर पीना चाहिए था, लेकिन मैंने आपको चर्चा सुना-सुनाकर बहुत कष्ट दिया है।

मुख बानी केहेलाई बड़ी कर, मांहे ब्रह्म सृष्ट।

पंथ पैडे संसार के ज्यों, होए चलाया इष्ट॥३॥

धाम धनी ने मुझे ब्रह्मसृष्टियों में शोभा दी और मेरे मुख से वाणी कहलवायी। जिस तरह संसार में अन्य मत – पन्थ चल रहे हैं, उसी तरह मैंने भी एक पन्थ (श्री निजानन्द सम्प्रदाय) चलाया और उस पन्थ का इष्ट (पूज्य) बन गया।

ले पंडिताई पड़ी प्रवाह में, कर कर ग्यान गोष्ट।

न्यारा हुआ न नेहेकाम होए के, मैं लिया न निरगुन पुष्ट॥४॥

संसार वालों की देखा-देखी मैंने भी विद्वता लेकर ज्ञान की बहुत सी गोष्ठियाँ की। मैंने यह कार्य निष्काम भावना से नहीं किया था, इसलिये संसार के मोह से अलग नहीं हो सका। मैंने यथार्थ रूप से दृढ़तापूर्वक वैराग्य का

आश्रय (निर्गुण मार्ग) नहीं लिया था।

अनेक अवगुन किए मैं साथसों, सो ए प्रकासूं सब।

छोड़ अहंकार रहूं चरनों तले, तोबा खैंचत हों अब॥५॥

हे सुन्दरसाथ जी! मैंने आपके प्रति बहुत अधिक अपराध किये हैं। अब मैं अपने अपराधों को स्पष्ट करता हूँ। मैं अपनी भूलों का प्रायश्चित्त करता हूँ। मैं बड़ा कहलाने की भावना छोड़कर आपके चरणों में ही रहना चाहता हूँ।

भावार्थ- इन पाँचों चौपाइयों से यह स्पष्ट होता है कि अपना कहलाने वाले सुन्दरसाथ ने उन पर पीठ पीछे कितने मर्मभेदी आरोप लगाये होंगे, तभी इस प्रकार की व्यथा भरी बातें श्री जी के मुखारविन्द से निकल रही हैं। अनुमान के आधार पर इन पाँचों चौपाइयों से कुछ इस

प्रकार के आरोप संकलित किये जा सकते हैं—

१. श्री महामति जी धाम की चितवनि छोड़कर सामान्य लोगों की तरह झूठे संसार में फँसे हुए हैं।

२. ये तो दिन-रात ज्ञान में ही लगे रहते हैं, भला इनके पास प्रेम कहाँ आ सकता है।

३. नया पन्थ चलाकर अपनी पूजा करवाते हैं।

४. ये पूर्ण रूप से न तो विरक्त हैं और न निष्काम हैं।

५. इन्हें अपने बड़प्पन का अभिमान है।

निश्चित रूप से श्री जी के ऊपर आक्षेप लगाना अक्षम्य अपराध है। कलस ८/५५ में स्पष्ट रूप से कहा गया है—

इन मोती का मोल कह्यो न जाए, ना किनहूँ कानों सुनाए।

सोई जले जो मोल करे, और सुनने वाला भी जल मरे॥

अर्थात् श्री प्राणनाथ जी की महिमा को शब्दों में व्यक्त

नहीं किया जा सकता। किसी के कानों में भी इतना सामर्थ्य नहीं है कि उसे पूर्ण रूप से सुन सके। जो श्री जी की अनन्त महिमा को संसार की सीमित मर्यादाओं (सन्त, कवि, गुरु, राजनीतिज्ञ, भाषाविद् आदि) में बाँधने का प्रयास करता है, निश्चित रूप से वह प्रायश्चित (दोजक) की अग्नि में जलेगा, और जो इसे सुनकर चुप रहेगा (विरोध नहीं करेगा), वह भी प्रायश्चित की अग्नि का भागीदार होगा।

अब सनन्ध में स्पष्ट रूप से यह कह दिया गया है—
तारीफ महंमद मेंहदी की, ऐसी सुनी न कोई क्याहें।
कई हुए कई होएसी, पर किन ब्रह्माण्डों नाहें।।

अर्थात् कालमाया के किसी भी ब्रह्माण्ड में श्री प्राणनाथ जी की महिमा के बराबर वाला अब तक न तो कोई था, न है, और न ही भविष्य में कोई होगा।

श्रीमुखवाणी के इन कथनों के विपरीत जो श्री जी पर आक्षेप करते हैं, उनसे अधिक बदनसीब और मन्दबुद्धि वाला अन्य कोई भी नहीं, कोई भी नहीं।

एते दिन धनी धाम छोड़ के, दर्ई साथ को सिखापन।

अब साथें मोको समझाई, तिन थें हुई चेतन॥६॥

हे सुन्दरसाथ जी! आज दिन तक मैं धाम धनी का प्रेम छोड़कर, आपको चर्चा द्वारा तरह-तरह का सिखापन दिया करता था। अब सुन्दरसाथ ने मुझे बहुत अच्छा सिखापन दिया है, जिससे मैं सावचेत हो गया हूँ कि इतने महान सुन्दरसाथ को सिखापन देने का मुझे दुस्साहस नहीं करना चाहिए था।

कृपा करी साथ सिरदारों, मुझ पर हुए मेहेरबान।

निरगुन होए न्यारी रहूं, छोड़ बड़ाई गुमान॥७॥

मेरे ऊपर अग्रणी सुन्दरसाथ ने बहुत कृपा की है। उन्होंने मेरे ऊपर मेहरबान (कृपालु) होकर मुझे जो सिखापन दी है, उसके अनुसार अब मैं अपने अभिमान तथा प्रशंसा को छोड़कर पूर्ण विरक्त के रूप में सबसे अलग रहना चाहता हूँ।

भावार्थ- छठीं और सातवीं चौपाई से यह स्पष्ट होता है कि श्री महामति जी के अलौकिक व्यक्तित्व पर अति संकीर्ण मानसिकता वाले कुछ लोगों ने अवश्य ही दोषारोपण किया था, जिसका प्रतिफल इस चौपाई में व्यक्त किया है। दोषारोपण में निरंकुश इस संसार ने जब सच्चिदानन्द परब्रह्म को नहीं छोड़ा, तो अन्यो के साथ भला अच्छा व्यवहार कैसे कर सकता है। इस प्रकरण में

सुन्दरसाथ को यह सिखापन है कि आरोप लगाने वाले से भी बहुत विनम्रता और शालीनता से व्यवहार करना चाहिए।

दिन कयामत के आए पोहोंचे, अब कैसी ठकुराई।

धिक धिक पड़ो तिन बुध को, जो अब चाहे बड़ाई॥८॥

अब तो कियामत (ब्रह्मज्ञान के सर्वत्र फैलने) का समय आ गया है। ऐसे समय में प्रभुता की इच्छा करना नादानी है। उनकी बुद्धि को धिक्कार है, जो ऐसे अनमोल समय में अपनी प्रशंसा चाहते हैं।

भावार्थ— श्री महामति जी ने बहुत मीठे शब्दों में अपने ऊपर कानाफूसी किये जाने वाली बातों का उत्तर दिया है। महानता की यही कसौटी है कि किसी भी स्थिति में अपना आपा नहीं खोना चाहिए।

अब हुकम चढ़ाऊं सिर साथ को, बकसो मेरी भूल।

भी दीजो सिखापन मुझको, ज्यों होऊं सनकूल॥९॥

हे सुन्दरसाथ जी! मुझसे अब तक जो भूलें हुई हैं, उसके लिये मुझे क्षमा कीजिए। अब आपका जो भी आदेश होगा, वह मेरे लिये शिरोधार्य होगा। मैं तो आपसे सिखापन भी लेना चाहता हूँ, जिससे मेरा हृदय आनन्दित हो जाये।

भावार्थ- इस प्रकरण की चौपाई ९ और ११ को पढ़कर तो यही प्रतीत होता है कि श्री महामति जी के सम्बन्ध में उल्टी बातें कहने वाले बहुत ही बचकानी बुद्धि के होंगे। सम्भवतः उन लोगों का हृदय लोहे और चट्टानों से भी अधिक कठोर रहा होगा, जिन्होंने इतने निराधार आरोप लगाये।

इन जिमी में साथ में, जिनों करी सिरदारी।

पुकार पुकार पछताए चले, जीत के बाजी हारी॥१०॥

इस संसार में जो सुन्दरसाथ में अमर्यादित तरीके से अग्रणी बनने का प्रयास करते हैं, वे खेल में जीती हुई बाजी हार जाते हैं। अन्ततोगत्वा उन्हें सबके सामने अपनी भूलों का प्रायश्चित करना पड़ता है।

भावार्थ- कीर्तन ९५/२ में यह बात कही गयी है कि "साथ मांहे सैयां धाम की, ईमान वाली सिरदार" अर्थात् सुन्दरसाथ में परमधाम की अग्रणी आत्मायें ही दृढ़ ईमान वाली होती हैं।

इस प्रकार की अनेक चौपाइयाँ हैं जो यह सिद्ध करती हैं कि सुन्दरसाथ में वही अग्रणी होते हैं जो ज्ञान, ईमान, इशक, विनम्रता, और सन्तोष में भी अग्रणी होते हैं, किन्तु इस प्रकरण की दसवीं चौपाई से "सिरदारी" शब्द

कलंकित के रूप में प्रतीत होता है। यहाँ यह संशय होता है कि क्या श्रीमुखवाणी में भी विरोधाभास है?

इसका उत्तर यही होगा कि श्रीमुखवाणी में न तो कभी विरोधाभास था, न है, और न कभी होगा। प्रसंग के अनुकूल सामन्जस्य स्थापित करने की आवश्यकता होती है। इस चौपाई में उन अग्रणी सुन्दरसाथ को जीती हुई बाजी हारने वाला कहा गया है, जो योग्यता न होते हुए भी धन-बल, जन-बल, या किसी न किसी कूटनीतिक तरीके से धार्मिक और सामाजिक पदों पर अधिकार कर लेते हैं तथा व्यक्तिवाद, स्थानवाद, या अनुशासन की ओट में अपनी तानाशाही मानसिकता को सब पर थोपने का प्रयास करते हैं। इन्हें ही अपनी भूलों पर अन्त में पश्चात्ताप के आँसू बहाने पड़ेंगे। ज्ञान, प्रेम, विनम्रता, समर्पण, और श्रद्धा से भरपूर हृदय वाले सुन्दरसाथ को

धनी अपनी ओर से शोभा देते हैं, जिसमें किसी प्रकार का कलंक नहीं लगता।

सो देख के ना हुई चेतन, मूढ़मती अभागी।

अब लई सिखापन साथ की, महामत कहे पांऊं लागी॥११॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! मैं तो इतनी अधिक मूढ़मति वाला बदनसीब हूँ कि दूसरों को हारते हुए देखकर भी सावचेत नहीं हो सका। मैं तो आपके चरणों में रहकर आपकी दी हुई शिक्षा को ग्रहण करने के लिये तैयार हूँ।

प्रकरण ॥१०१॥ चौपाई ॥१५०३॥

राग श्री

इस प्रकरण में बुजरकी (झूठा सम्मान या बड़प्पन) की तृष्णा से होने वाली हानियों के ऊपर प्रकाश डाला गया है।

बुजरकी मारे रे साथ जी, बुजरकी मारे।

जिन बुजरकी लई दिल पर, तिनको कोई ना उबारे॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! झूठे सम्मान की इच्छा या स्वयं को सबसे बड़ा समझने की प्रवृत्ति बुजरकी कहलाती है। यह सबका पतन कराने वाली है। जिसके हृदय में यह पनप जाती है, उसका कोई भी इस तृष्णा या भवसागर से उद्धार नहीं कर सकता।

भावार्थ— सच्चिदानन्द अक्षरातीत से बढ़कर न तो कोई

था, न है, और न भविष्य में कोई होगा। मनुष्य की यह बहुत बड़ी कमजोरी है कि वह अपनी विद्या, धन, रूप, कुल आदि के कारण श्रेष्ठता का अभिमान करता है और प्रशंसा की अपेक्षा रखता है। संसार में प्रतिष्ठा या बड़ा कहलाने की तृष्णा ही बुजरकी कहलाती है। इसका मोह संसार सागर में भटकाने वाला होता है।

आगूं कई मारे बुजरकिएं, जिन दृढ़ कर लई विश्वास।

सो देखे मैं अपनी नजरों, निकस चले निरास॥२॥

मैंने अपनी आँखों से यह बात देखी है कि जिन्होंने बहुत दृढ़ विश्वास के साथ बुजरकी को अच्छा माना और गले लगाया है, उनका पतन हो गया। उनको इस संसार से (उस जन्म में) निराश होकर जाना पड़ा।

कई मारे कई मारत है, ऐसी बुजरकी एह।

न देत देखाई इन माया में, बिना बुजरकी जेह॥३॥

यह बुजरकी इस प्रकार से विनाश की गर्त में ले जाने वाली है कि इसने पहले बहुतों को पतन के मुख में झोंक दिया है तथा वर्तमान में भी विनाश कर रही है। इस मायावी जगत में ऐसा कोई भी नहीं दिखायी देता, जिसे किसी न किसी रूप में बड़प्पन की इच्छा न हो।

जेती बुजरकी बीच दुनी के, सो सब कुफर हथियार।

कुफरों में कुफर बुजरकी, काम क्रोध अहंकार॥४॥

इस मायावी जगत में बड़प्पन (बुजरकी) के जितने भी भेद हैं, वे सभी पाप के हथियार हैं अर्थात् पाप को बढ़ाने वाले हैं। यद्यपि काम, क्रोध, और अहंकार पाप की जड़ हैं, फिर भी बड़प्पन की भावना सबसे बड़ा पाप है।

भावार्थ- बुजरकी (बड़प्पन) को सबसे बड़ा पाप इसलिये कहा गया है, क्योंकि स्वयं को सबसे बड़ा समझने वाला व्यक्ति न तो आत्म-निरीक्षण करना पसन्द करता है और न ही अपनी भूलों को सुधारना। बड़ा से बड़ा कामी, क्रोधी, या अहंकारी व्यक्ति आत्म-निरीक्षण द्वारा अपने में सुधार लाता है, किन्तु बड़प्पन की भावना से ग्रसित व्यक्ति अपनी भूलों को सुधारना तो दूर की बात है, उसे स्वीकार करना भी पसन्द नहीं करता। यही कारण है कि बुजरकी को सबसे बड़ा पाप माना गया है।

इन माया में कोई बुजरकी, छूट खुदा जो लेवे।

सो तेहेकीक आपे अपना, पाया फल सो भी खोवे॥५॥

इस मायावी जगत में एक अक्षरातीत के अतिरिक्त अन्य कोई भी व्यक्ति जो बड़प्पन की तृष्णा रखता है, निश्चित

रूप से वह अपनी आध्यात्मिक उपलब्धियों को गँवा देता है।

भावार्थ— मात्र अक्षरातीत ही पूर्ण स्वरूप हैं। मानव सर्वांगीण पूर्णता की उस मन्जिल तक कदापि नहीं पहुँच सकता। बड़प्पन के रोग का शिकार व्यक्ति ज्ञान, प्रेम, सेवा आदि के क्षेत्र में उचित पुरुषार्थ नहीं कर पाता क्योंकि अपने से अधिक वह किसी को मानता ही नहीं है। ऐसी स्थिति में वह अपनी बौद्धिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों को खो बैठता है।

खोवे जोस बंदगी खोवे, और साहेब की दोस्ती।

बिना इस्क जो बुजरकी, सो सब आग जानो तेती॥६॥

बुजरकी का शिकार होने वाला व्यक्ति भक्ति का जोश और धनी का प्रेम (दोस्ती) खो बैठता है। धनी के प्रेम

बिना इस संसार की बुजरकी अग्नि की लपटों के समान कष्टकारी है।

भावार्थ- भक्ति में समर्पण अनिवार्य है। बड़प्पन की भावना रखने वाले व्यक्ति में अहम् की वृद्धि हो जाने से वह प्रेम-भक्ति से कोसों दूर चला जाता है। धनी के इश्क में डूबे रहने पर जो बुजरकी मिलती है, वह धनी की मेहर से मिलती है, किन्तु धनी के प्रेम से रहित होने पर मिलने वाली बुजरकी कदापि कल्याणकारी नहीं हो सकती।

दुनियां में दोऊ लड़त हैं, एक कुफर दूजा ईमान।

जीती कुफरें त्रैलोकी, ईमान दिया सबों भान॥७॥

इस संसार में झूठ (कुफ्र) और अटूट विश्वास (ईमान) में हमेशा से संघर्ष होता आया है। तीनों लोक (चौदह

लोक) में झूठ की ही विजय पताका फहरा रही है। झूठ ने सबके ईमान को नष्ट कर दिया है।

भावार्थ- चौदह लोक को ही संक्षिप्त रूप में त्रिलोकी अर्थात् तीन लोक (पृथ्वी, स्वर्ग, और वैकुण्ठ) कहते हैं।

कुफर की हुई पातसाही, चौदे तबक चौफेर।

सब दुनियां को बेमुख करके, बैठा बुजरकी ले अंधेर॥८॥

चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र झूठ का ही साम्राज्य फैला हुआ है। इस झूठ (कुफ़र) के कारण ही संसार के सभी प्राणी अज्ञान में भटक जाते हैं और परब्रह्म के प्रेम से दूर होकर बड़प्पन की चाहना करने लगते हैं।

भावार्थ- अज्ञानतावश ही जीव "तू और तेरा" को भूल जाता है और केवल "मैं और मेरा" की रट लगाया करता

है। यह "मैं" का बीज ही बड़प्पन (बुजरकी) रूपी वृक्ष के रूप में उग जाता है। सत, रज, और तम के इस ब्रह्माण्ड में जीव की स्वाभाविक प्रवृत्ति झूठ (कुफ्र) की ओर होती है। स्वयं को बड़ा मानकर वह उसमें और अधिक वृद्धि कर लेता है।

मोको मार छुड़ाई बंदगी, सो भी बुजरकी इन।

ऐसी दुस्मन ए बुजरकी, मैं देखी न एते दिन॥९॥

आज दिन तक मैंने बुजरकी से बढ़कर कोई दूसरा शत्रु नहीं देखा। इस बुजरकी ने मुझे अपने अधीन कर धनी की प्रेम लक्षणा भक्ति (चितवनि) से दूर कर दिया।

भावार्थ— धाम धनी ने इस चौपाई द्वारा उन अग्रगण्य सुन्दरसाथ को, जो मन्दिरों और आश्रमों के अधिपति हैं या ज्ञान चर्चा द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त हैं, सावधान किया है कि

प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाने पर भी धनी के प्रेम को गँवाना बहुत बड़ा अपराध है। यह बुजरकी हमारी इतनी बड़ी शत्रु है, जो हमें धनी के चरणों के प्रेम से दूर कर देती है।

पूरन मेहेर भई धनी की, दोऊ हादिएँ करी चेतन।

सो भी बुजरकी देखी दुस्मन, जो भिस्त दई सबन॥१०॥

मेरे ऊपर धाम धनी की पूर्ण मेहर हुई। युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी ने मुझे बुजरकी के प्रति सावधान कर दिया कि इससे दूर ही रहना चाहिए। धाम धनी ने मेरे तन से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अखण्ड बहिस्तों में मुक्ति दिलवायी। धनी की मेहर का ही यह परिणाम है कि इतनी बड़ी शोभा मिलने के पश्चात् भी मैं बुजरकी को शत्रु के समान मानता रहा।

जो कोई मारे इन दुस्मन को, करे सब दुनियां को आसान।

पोहोंचावे सबों चरन धनी के, तो भी लेना ना तिन गुमान॥११॥

यदि कोई सुन्दरसाथ अपने सबसे बड़े शत्रु इस बुजरकी को मार दे और दुनिया के सभी लोगों को बुजरकी के जाल से छुड़ाकर धाम धनी की पहचान करा दे, तो भी इस बात का उसे थोड़ा भी अभिमान नहीं करना चाहिए कि मैंने इतना बड़ा काम किया है।

भावार्थ- इस चौपाई द्वारा यह शिक्षा दी गई है कि बड़ी से बड़ी उपलब्धि हासिल करने के पश्चात् भी अपने मन में नाम मात्र का भी अहंकार नहीं रखना चाहिए। अपनी प्रत्येक उपलब्धि को धनी की मेहर का परिणाम ही मानना चाहिए।

महामत कहे ईमान इस्क की, सुक्र गरीबी सबर।

इन बिध रूहें दोस्ती धनी की, प्यार कर सके त्यों कर॥१२॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी !
ब्रह्मसृष्टियों के लिये पाँच प्रकार के अनमोल धन इस प्रकार हैं— १. ईमान (अटूट विश्वास) २. इश्क ३. धनी के प्रति पल-पल कृतज्ञता ४. विनम्रता ५. संतोष। इस धन को अपने हृदय में धारण करके ही धनी से दोस्ती होती है। आप, जैसे भी हो सके, इस धन को अपने दिल में बसाइए और अपने प्राण प्रियतम अक्षरातीत से प्रेम कीजिए।

प्रकरण ॥१०२॥ चौपाई ॥१५१५॥

राग श्री गौड़ी

इस प्रकरण में आत्म-जाग्रति के लिये प्रतिष्ठा और सांसारिक मोह को छोड़ने के सम्बन्ध में सिखापन है।

जो तूं चाहे प्रतिष्ठा, धराए वैरागी नाम।

साध जाने तोको दुनियां, वह तो साधों करी हराम॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा ! यदि तुम इस संसार में झूठी प्रतिष्ठा पाना चाहती हो, तो विरक्त का वेश धारण कर लो, ताकि दुनिया के लोग तुम्हें साधू-महात्मा जानने लगें। लेकिन यह ध्यान रखना होगा कि सच्चे साधुओं ने तो इस प्रतिष्ठा को बहुत ही बुरा माना है।

मार प्रतिष्ठा पैजारों, जो आए दगा देत बीच ध्यान।

एही सरूप दज्जाल को, उड़ाए दे इनें पेहेचान॥२॥

युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार के ध्यान में यह प्रतिष्ठा बहुत बाधा डालती है। ऐसी प्रतिष्ठा को जूतों से मारकर भगा दो। निःसन्देह यह प्रतिष्ठा ही दज्जाल का रूप है, जो धनी के प्रेम में डूबने नहीं देती। इसके दुष्परिणामों को पहचान कर इसका परित्याग कर देना चाहिए।

इस दुनियां के बीच में, कोई भला बुरा केहेवत।

तूं जिन देखे तिन को, ले अपनी अर्स खिलवत॥३॥

इस संसार में चाहे तुम्हें कोई अच्छा कहे या बुरा , उसकी तरफ जरा भी ध्यान न दो। तुम्हें अपना सारा ध्यान परमधाम के मूल मिलावा में ही बनाये रखना चाहिए।

दिल दलगीरी छोड़ दे, होत तेरा नुकसान।

जानत है गोविंद भेड़ा, याको पीठ दिए आसान॥४॥

हे मेरे दिल! तुम सांसारिक सुखों की तृष्णा को छोड़ दो। इनमें फँसने से तुम्हारी बहुत अधिक हानि हो रही है। तुम जानते ही हो कि यह संसार गोविन्द-भेड़ा की तरह भूतों का मायावी मण्डल है। सहजतापूर्वक इसको छोड़ने में ही सुख है।

भावार्थ- इस संसार को गोविन्द-भेड़ा कहा गया है, जिसका आशय यह है-

एक गाँव में गोविन्द पटेल नामक एक व्यक्ति रहता था। वह दुष्कर्मी था, इसलिये मृत्यु के पश्चात् प्रेत योनि का शिकार हो गया। प्रेत योनि में रहते हुए उसने गाँव के लोगों को मारकर प्रेतों की एक बस्ती ही बसा डाली। उस बस्ती में उसने बहुत कीमती वस्तुएँ सजा दीं। जो

कोई उन वस्तुओं को छूता, वह तुरन्त ही भूत बन जाता।

इसी प्रकार यह संसार भी भूतों की उस बस्ती की तरह है, जिसकी किसी भी वस्तु से मोह हो जाने पर जन्म लेना पड़ता है।

ए भोम देखे जिन फेर के, एही जान महामत।

ढील होत तरफ धाम की, जहां तेरी है निसबत॥५॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा! यह सम्पूर्ण संसार भूतों की उस बस्ती के ही समान है। इसकी वास्तविकता को जानकर तुम भूल से भी इस माया मण्डल की ओर न देखना। परमधाम के मूल मिलावा में तुम्हारे मूल तन विराजमान हैं। तुम इस झूठे संसार में फँसकर धाम की चितवनि करने में देरी कर रही हो। अब

सावचेत हो जाओ।

प्रकरण ॥१०३॥ चौपाई ॥१५२०॥

इस प्रकरण में कियामत के ऊपर प्रकाश डाला गया है।

कयामत आई रे साथ जी, कयामत आई।

वेद कतेब पुकारत आगम, सो क्यों न देखो मेरे भाई॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की अखण्ड मुक्ति पाने का समय (कियामत) आ गया है। यह वही सुनहरा समय है, जिसके बारे में हिन्दू धर्मग्रन्थों तथा भविष्य की बातें बताने वाले धर्मग्रन्थों में वर्णन किया गया है। हे भाइयों! आप इस समय की पहचान क्यों नहीं करते हैं।

आए स्यामाजीएं मोहे यों कहा, ए खेल किया तुम कारन।

तुम आए खेल देखने, मैं आई तुमें बुलावन॥२॥

श्यामा जी ने आकर मुझसे इस प्रकार कहा कि माया

का यह खेल तुम्हारे देखने के लिये ही बनाया गया है।
तुम इस संसार में माया का खेल देखने के लिये ही आये
हो और मैं तुम्हें यहाँ जाग्रत करके परमधाम ले चलने के
लिये आयी हूँ।

कागद आया वतन का, कासद होए ल्याए फुरमान।

आया खातिर अपने, देने को ईमान॥३॥

मुहम्मद (सल्ल.) खुदा के सन्देशवाहक बनकर कुरआन लाये हैं। इस कुरआन में परमधाम (अर्श-ए-अज़ीम) की पहचान दी गयी है। कुरआन के अवतरण का एकमात्र उद्देश्य यही है कि कियामत के समय में इस संसार में अवतरित होने वाली ब्रह्मसृष्टियों को अपने धनी और परमधाम के प्रति ईमान (अटूट विश्वास) आ जाये।

अग्यारे सै साल का, आए साखें लिखी आगम।

माहें अनुभव लिख्या अपना, सो पोहोंचाया खसम॥४॥

कुरआन में ग्यारह सौ वर्ष पहले से ही जागनी लीला में घटित होने वाली भविष्य की सारी बातें लिखी हुई हैं। धाम धनी ने मुहम्मद साहिब द्वारा जो कुरआन भिजवाया है, उसमें उनके द्वारा परमधाम के दीदार का सारा अनुभव लिखा हुआ है।

भावार्थ- कुरआन के पारा १५ सूरा १६ में मुहम्मद साहिब द्वारा अर्श-ए-अजीम जाकर अल्लाह तआला के दीदार की बातें लिखी हुई हैं। इसी प्रकार कुरआन के तीसवें पारे की "इन्ना आतेना" सूरत में हौज कोशर का भी वर्णन है। कुरआन में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी , श्रीजी, महाराजा छत्रसाल जी, व बीतक साहिब के अनेक प्रसंगों का सांकेतिक रूप में वर्णन है।

जो साहेब किने न देखिया, ना कछू सुनिया कान।

सो साहेब काजी होए के, जाहेर करसी कुरान॥५॥

कुरआन में यह बात लिखी है कि जिस अक्षरातीत परब्रह्म को आज दिन तक किसी ने देखा नहीं और न उसके विषय में अपने कानों से कुछ सुना है, वह स्वयं कियामत के समय सबके न्यायाधीश के रूप में प्रकट होंगे तथा कुरआन के छिपे हुए रहस्यों को उजागर करेंगे।

जेते वचन कुरान में, सो सब स्यामा जी दर्ई साख।

सो सारे इन लीला के, कहूं केते हजारों लाख॥६॥

परमधाम तथा जागनी लीला से सम्बन्धित जो भी बातें कुरआन में लिखी हैं, उसे सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने मुझे बता दिया था। इस प्रकार कुरआन में जागनी लीला से सम्बन्धित हजारों-लाखों प्रमाण हैं, जिनके विषय में

मैं कितना वर्णन करूँ।

भावार्थ- कुरआन के मुख्य-मुख्य प्रसंगों पर ही सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने श्री मिहिरराज जी को बताया था। हजारों और लाखों प्रमाणों की बात अतिशयोक्ति अलंकार में कही गई है।

सो कुंजी स्यामाजी दई, हकीकत वतन।

माणे खुले सब तिन से, जो छिपे हुते बातन॥७॥

श्यामा जी ने मुझे तारतम ज्ञान की वह कुञ्जी दी, जिसके द्वारा परमधाम का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त होता है। इसी तारतम ज्ञान से कुरआन के छिपे हुए सभी भेद खुल गये।

और भी फुरमान में लिख्या, कोई खोल ना सके किताब।

सोई साहेब खोलसी, जिन पर धनी खिताब॥८॥

कुरआन में भी यह बात स्पष्ट रूप से लिखी हुई है कि इसके भेदों को सृष्टि का कोई भी प्राणी नहीं खोल सकेगा। जिस स्वरूप को अक्षरातीत कहलाने की शोभा होगी, वे ही कुरआन की हकीकत एवं मारिफत के भेदों को स्पष्ट करेंगे।

भावार्थ— कुरआन में १२ हरुफे मुक्तेआत हैं, जिनके भेदों को पूर्ण ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं जानता। वे हरुफे मुक्तेआत इस प्रकार हैं— १. अलिफ २. लाम् ३. मीम् ४. साद् (रिझाना) ५. रा (लिये) ६. काफ (संसार) ७. हा (है) ८. या (हे, अरे, अहो) ९. अैन १०. ता (तक) ११. सीन (दूर) १२. नून (मछली)।

वसीयत नामे आए दरगाह सें, जाहेर करी कयामत।

ए हकीकत तुम पर लिखी, देखाए दिन सरत॥९॥

मक्का से वसीयतनामें लिखकर आये, जिनमें कियामत का समय स्पष्ट कर दिया गया था। बारहवीं सदी में कियामत का समय जाहिर होने की बात तुम्हारे लिये ही लिखी है, अर्थात् इसी समय में परमधाम के ब्रह्ममुनियों के भी जाहिर होने की बात कुरआन में है।

भावार्थ- कुरआन के पारा ३० की आयत "इन्ना इन्जुलना" से यह स्पष्ट होता है कि रुहें कियामत के समय में जाहिर होंगी।

या वेद या कतेब, सब आए तुम खातिर।

सब साख तुमारी देवहीं, जो देखो नीके कर॥१०॥

हे सुन्दरसाथ जी! चाहे वेद हो या कतेब, सभी का

अवतरण तुम्हारे लिये हुआ है। यदि इनका अच्छी तरह से मनन एवं विचार करके देखो, तो यह बात स्पष्ट होगी कि इन सभी ग्रन्थों में तुम्हारी साक्षियाँ हैं।

भावार्थ- मन में यह संशय होता है कि ब्रह्मसृष्टियों को वर्तमान समय में इस संसार में आये हुए लगभग ४२५ वर्ष ही हुए हैं, जबकि वेद सृष्टि के प्रारम्भ से हैं। इस समय सृष्टि सम्वत् १९६०८५३१०७ है। ऐसी स्थिति में करोड़ों वर्ष पूर्व ब्रह्मसृष्टियों की साक्षी की क्या आवश्यकता थी?

श्रीमुखवाणी में वेद शब्द से तात्पर्य केवल चार वेदों से ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण हिन्दू धर्मग्रन्थों से है। यद्यपि मूल वेदों में भविष्य की कोई बात नहीं है, किन्तु ब्रह्ममुनियों के लक्षणों से सम्बन्धित बहुत सी साक्षियाँ हैं, जैसे- अथर्ववेद १०/७/४१ में "गुह्य प्रजा" कहा गया है।

अथर्ववेद १०/२/३२ तथा १०/८/४३ में "ब्रह्मविद्" कहा गया है। उपनिषदों में "आत्मज्ञ और ब्रह्मविद्", तथा गीता में "स्थित प्रज्ञ" के रूप में वर्णित किया गया है। गुरु ग्रन्थ साहिब में "सोहागिन", और कबीर जी की वाणी में "परमहंस" कहकर ब्रह्ममुनियों के लक्षणों का वर्णन है। इसी प्रकार कुरआन-हदीसों में "मोमिन", और बाइबल में "chosen people" कहकर संकेत किया गया है।

साख देवे सब दुनियां, वैराट चौदे भवन।

समझे सारे देखहीं, जिनका दिल हुआ रोसन॥११॥

चौदह लोक की यह सम्पूर्ण दुनिया ही तुम्हारी साक्षी देती है। संसार के वे सभी प्राणी जिनका दिल तारतम ज्ञान से प्रकाशित हो गया है, इस बात को पूरी तरह से

समझते हैं और प्रत्यक्ष रूप में देखते भी हैं कि ब्रह्ममुनियों का इस ब्रह्माण्ड में आगमन हो गया है।

ए साखें सब पुकारहीं, निपट निकट कयामत।

आए गई सिर ऊपर, तुम क्यों न अजूं चेतत॥१२॥

ये सभी साक्षियाँ पुकार-पुकारकर कह रही हैं कि कियामत का समय बहुत निकट आ गया है। हे सुन्दरसाथ जी! आप इस बात से सावचेत क्यों नहीं हो रहे हैं कि कियामत तो सिर के ऊपर आ गयी है, अर्थात् वर्तमान समय कियामत का ही है।

भावार्थ- इस चौपाई में कियामत के समय का बहुत नजदीक होने से तात्पर्य है – ब्रह्मवाणी का चारों ओर प्रसार तथा ब्रह्माण्ड के सभी प्राणियों को अखण्ड हो जाने की कृपा का सौभाग्य प्राप्त हो जाना।

साथ जी साफ हुए बिना, अखंड में क्यों पोहोंचत।

चेत सको सो चेतियो, पुकार कहें महामत॥१३॥

श्री महामति जी पुकार-पुकारकर कह रहे हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! यदि आप सावधान हो सकते हैं, तो निश्चित रूप से हो जाइए। हृदय के निर्मल हुए बिना कोई भी अखण्ड धाम की प्राप्ति नहीं कर सकता।

भावार्थ- अखण्ड में पहुँचने का तात्पर्य है- सुरता द्वारा परमधाम का दर्शन या ध्यान द्वारा जीव का बेहद के आनन्द में रसमग्न हो जाना। हृदय के निर्मल न होने पर आत्मा जाग्रत नहीं हो पायेगी। यद्यपि मूल सम्बन्ध के कारण खेल खत्म होने पर वह परमधाम तो जायेगी, किन्तु इस खेल में न तो उसे परमधाम का और न ही युगल स्वरूप का दीदार होगा।

प्रकरण ॥१०४॥ चौपाई ॥१५३३॥

राग श्री

श्री ५ पद्मावती पुरी धाम (पन्ना) में सुन्दरसाथ ने श्री जी को अक्षरातीत का ही साक्षात् स्वरूप मानकर रिझाया था, किन्तु इस मायावी जगत् में भूलों का होना स्वाभाविक है। इस प्रकरण में उन्हीं तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है।

मैं पूछत हों ब्रह्मसृष्ट को, दिल की दीजो बताए॥ टेक ॥

जो कोई ब्रह्मसृष्ट का, सो देखियो दिल विचार।

कहियो तेहेकीक करके, जिनों जो किया करार॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि मैं ब्रह्मसृष्टि कहे जाने वाले सुन्दरसाथ से पूछता हूँ कि आप अपने दिल की बातें बताइए। जो यथार्थ में ब्रह्मसृष्टि होने का दावा रखता हो, वह अपने दिल में विचार करके देखे और निष्पक्षतापूर्वक

यह निर्णय करके बतायें कि परमधाम में उन्होंने धनी से जो वायदा किया था, इस समय उसे कितना निभा रहे हैं?

सब कोई बात विचारियो, देख अपनी अपनी अकल।

सृष्ट तीनों करम करत हैं, एक दूजे सों मिल॥२॥

हे सुन्दरसाथ जी! आप सभी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार इस बात पर विचार कीजिए कि ब्रह्मसृष्टि की कसौटी पर हम कितने खरे सिद्ध हो रहे हैं? इस समय सुन्दरसाथ की जमात में तीनों सृष्टियाँ आपस में मिलकर व्यवहार कर रही हैं।

सो तीनों अब जुदे होएसी, है हाल तुमारा क्यों कर।

दिन एते जान्या त्यों किया, अब आए पोहोंची आखिर॥३॥

अब तीनों सृष्टियाँ अपने आचरण से अलग-अलग दिख जायेंगी। ब्रह्मसृष्टि कहलाने वाले सुन्दरसाथ को यह सोचना होगा कि माया में उनका हाल इस तरह क्यों हो गया है? आज दिन तक तो तुमने जैसा चाहा वैसा कर लिया, लेकिन अब तो वक्त आखिरत का समय है।

भावार्थ- यद्यपि सुन्दरसाथ की जमात में प्रत्येक व्यक्ति ब्रह्मसृष्टि होने का ही भाव रखता है, लेकिन आचरण से अँकुर स्पष्ट हो जाता है। कियामत के समय की नजाकत को समझते हुए परमधाम की ब्रह्मसृष्टि हमेशा ही स्वयं को ब्रह्मवाणी के आदेशानुसार ढालने का प्रयास करती है।

पूजे परमेश्वर करके, दिल में रखें दोए।

तिन कारन पूछत हों, कौन विध याकी होए॥४॥

ऐसे भी कुछ सुन्दरसाथ हैं, जो ऊपर से तो मुझे परब्रह्म

का स्वरूप मानते हैं, किन्तु अन्दर से अपने दिल में दुविधा रखते हैं। इसलिये ब्रह्मसृष्टि कहलाने वाले इन सुन्दरसाथ से मैं यह पूछता हूँ कि इनका हाल क्या होगा?

कहें परमेश्वर मुख थें, दिल चोरावें जे।

दगा देवें माहें दुस्मन, क्या नहीं देखत हो ए॥५॥

मुख से तो ये मुझे पूर्णब्रह्म का स्वरूप मानते हैं, किन्तु अपने दिल की बातें छिपाते रहते हैं। सुन्दरसाथ के समूह (जमात) में रहकर भी ये शत्रुओं की तरह आपस में एक दूसरे को धोखा देते हैं (भीतरघात करते हैं)। क्या आप सब सुन्दरसाथ इस स्थिति को नहीं देख रहे हैं?

कहावत हैं ब्रह्म सृष्ट में, धनी सों छिपावें बात।

दिल की करें औरन सों, ए कौन सृष्ट की जात॥६॥

कहलाने को तो ये ब्रह्मसृष्टि कहलाते हैं, लेकिन मुझसे ही अपने दिल की बातें छिपाते रहते हैं। अपने दिल की बातें मुझसे न कहकर औरों से कहा करते हैं। ऐसी स्थिति में इन्हें किस सृष्टि का माना जाये?

ए जो दोए दिल राखत हैं, ए तो दुनियां की रीत।

मांहे मैले बाहेर उजले, ए जीव सृष्ट की प्रीत॥७॥

दो तरह के दिल रखना तो दुनिया के लोगों की प्रवृत्ति है। जो लोग अन्दर से तो छल, कपट, और ईर्ष्या की भावना रखते हैं, किन्तु ऊपर से श्रद्धा, समर्पण, और प्रेम दर्शाते हैं, इन्हें जीव सृष्टि का समझ लेना चाहिए।

भावार्थ— दिल तो एक ही होता है, उसकी भावनायें दो

तरह की होती हैं। बाहर से कुछ और, तथा आन्तरिक रूप से कुछ और, इसे ही दो दिल कहते हैं।

एकै बात ब्रह्मसृष्टि की, दोए दिल में नाहें।

सोई करें धनी सों जाहेर, जैसी होए दिल माहें॥८॥

ब्रह्मसृष्टि की एक सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि उसके दिल में दो तरह की बातें नहीं होती। जैसा उसके दिल में होता है, बिना किसी दिखावे के अक्षरशः मुझसे बता देती है।

भावार्थ— ब्रह्मसृष्टि का हृदय पूर्णतया निश्छल एवं निष्कपट होता है। उसके हाव-भाव एवं बातचीत में किसी भी प्रकार का बनावटीपन नहीं होता। इस चौपाई में श्री जी को ही धनी कहकर सम्बोधित किया गया है। यही स्थिति चौपाई ६, १०, और ११ में भी है।

मिनो मिनें गुझ करें, निस दिन एही चितवन।

बुरा चाहें तिनका, जिन देखाया मूल वतन॥९॥

आपस में ये दूसरों के सम्बन्ध में गोपनीय बातें करते रहते हैं। इनका सारा ध्यान इसी में लगा रहता है। जिस स्वरूप ने (मैंने) इन्हें निज घर की पहचान करायी है, उनका भी ये बुरा चाहते हैं।

भावार्थ— कोई व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर भी प्रत्यक्ष रूप से श्री जी का बुरा नहीं कर सकता था। इस चौपाई में श्री जी का बुरा चाहने का तात्पर्य है – ऐसा कार्य करना जिससे जागनी कार्य में बाधा पड़े।

पीठ चोरावें धनी सों, करें मिनो मिने खोल।

ए देखो अंदर की जाहेर, देखावें अपना मोल॥१०॥

ये मुझसे तो पीठ चुराते हैं, अर्थात् मुझसे अपने दिल

की बात यथार्थ रूप में कभी नहीं कहते। कुछ न कुछ अवश्य ही छिपाते रहते हैं, किन्तु आपस में अपने दिल की सारी बातें खोलकर कह देते हैं। हे सुन्दरसाथ जी! आप सावधान होकर देखिए कि उनके इस तरह के व्यवहार से अन्दर की वास्तविकता प्रकट हो ही जाती है। अपनी संकुचित बुद्धि से वे अपने हृदय की मानसिकता दर्शा ही देते हैं।

करें धनी सों चोरियां, चोरों सों तेहेदिल।

यों जनम खोवें फितुए मिने, रात दिन हिल मिल॥११॥

ये धाम धनी से (मुझसे) तो अपने दिल की बातें छिपाया करते हैं, किन्तु आपस में एक-दूसरे से दिल की गहराइयों में डूबकर बातें करते हैं। ये रात-दिन आपस में घनिष्टता से रहते हैं, किन्तु अन्यो के साथ विवाद खड़ा

करके अपना जन्म व्यर्थ में ही गँवा देते हैं।

भावार्थ- जिस प्रकार चोरी की जाने वाली वस्तु को छिपाया जाता है तथा इस क्रिया को करने वाले को चोर कहते हैं, उसी प्रकार धनी से अपने दिल की आवश्यक बातों को छिपाने वाले को चोर की संज्ञा दी गयी है। यह कहावत बिल्कुल सही है कि "चोर चोर मौसेरे भाई।" विवादों को जन्म देने वाले लोग आपस में मिल-जुलकर रहते हैं और दूसरों का जीना दूभर कर देते हैं।

करें लड़ाइयां आपमें, कहें हम हैं धाम के।

क्यों न विचारों चित में, कैसा जुलम है ए॥१२॥

ये आपस में भी खूब लड़ते हैं और कहते हैं कि हम परमधाम से आये हैं। हे सुन्दरसाथ जी! आप अपने दिल में इस बात का विचार क्यों नहीं करते कि इस प्रकार

आपस में लड़ते रहना बहुत बड़ा अपराध है।

भावार्थ- प्रायः विवाद करने वाले आपस में मिलजुल कर रहते तो हैं, किन्तु स्वार्थ में बाधा पड़ने पर आपस में भी लड़ने में इन्हें कोई संकोच नहीं होता। इतना अवश्य होता है कि ये आपस में भले ही कितना भी क्यों न लड़ें, शान्ति की राह पर चलने वालों के विरुद्ध ये तुरन्त ही एकजुट हो जाया करते हैं।

चरचा सुनें वतन की, जित साथ स्यामा जी स्याम।

सो फल चरचा को छोड़ के, जाए लेवत हैं हराम॥१३॥

ये उस परमधाम की चर्चा सुना करते हैं, जहाँ मूल मिलावा में सुन्दरसाथ के बीच में युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी विराजमान हैं। चर्चा का फल होना चाहिए था- माया छोड़कर धनी के प्रेम में डूब जाना, किन्तु

इन्हें माया में ही डूबना ज्यादा अच्छा लगता है।

बाहेर देखावें बंदगी, माहें करें कुकरम काम।

महामत पूछे ब्रह्मसृष्ट को, ए बैकुंठ जासी के धाम॥१४॥

ये ऊपर से तो बन्दगी करने का नाटक करते हैं, किन्तु छिप-छिपकर बुरे कर्म किया करते हैं। श्री महामति जी ब्रह्मसृष्टियों से पूछते हैं कि ये वैकुण्ठ जायेंगे या परमधाम?

भावार्थ- इस चौपाई के तीसरे चरण में कहा गया है "महामत पूछे ब्रह्मसृष्ट को" तथा इस प्रकरण की प्रथम चौपाई में भी इसी प्रकार के शब्द हैं, किन्तु दोनों के भावों में अन्तर है। पहली चौपाई में ब्रह्मसृष्टि का सम्बोधन उन सुन्दरसाथ के लिये है, जो दावा तो करते हैं किन्तु यथार्थ में नहीं हैं। आखिरी चौपाई में उनके

लिये सम्बोधन है जो यथार्थ में ब्रह्मसृष्टि हैं, क्योंकि चौथे चरण में "ए" शब्द का प्रयोग है जो सिद्ध करता है कि किसी अन्य के लिये कहा गया है।

प्रकरण ॥१०५॥ चौपाई ॥१५४७॥

राग श्री

इस प्रकरण में शरीर की अपवित्रता का वर्णन करते हुए उसे ध्यान का साधन बनाने का बात कही गयी है।

ए सुच कैसे होवहीं, तुम देखो याकी विध।

अनेक आचार कर कर थके, पर हुआ न कोई सुध॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! इस अपवित्र शरीर की वास्तविकता को देखिए। भला यह किसी भी साधन से पवित्र कैसे हो सकता है। इसको पवित्र करने के लिये लोग बहुत से उपाय कर-कर थक गये, लेकिन कोई भी पवित्र नहीं हुआ।

निस दिन ग्रहिए प्रेम सों, जुगल सरूप के चरन।

निरमल होना याही सों, और धाम बरनन॥२॥

दिन-रात युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी के चरणों तथा परमधाम के पच्चीस पक्षों के प्रेमपूर्वक ध्यान से ही निर्मल हुआ जा सकता है। इसका कोई भी विकल्प नहीं है।

भावार्थ- चरणों के ध्यान का तात्पर्य सम्पूर्ण नख से शिख तक के श्रृंगार से है। इस चौपाई से चितवनि की महत्ता स्पष्ट होती है।

इन विध नरक जो छोड़िए, और उपाय कोई नाहें।

भजन बिना सब नरक है, पच पच मरिए माहें॥३॥

इस प्रकार चितवनि (ध्यान) से ही माया के दुःखरूपी नरक से छुटकारा मिल सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी उपाय नहीं है। चितवनि ही वास्तविक भजन है, जिसके बिना यह सारा संसार नरक के समान कष्टकारी

है। इसी नरक रूपी संसार में बार-बार जन्म लेकर मरना पड़ता है।

भावार्थ- इस चौपाई में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि चितवनि के अतिरिक्त निर्मल होने तथा प्रियतम के दीदार का अन्य कोई मार्ग ही नहीं है। चितवनि ही वास्तविक भजन या प्रेम लक्षणा भक्ति है।

धनी बिना अंग निरमल चाहे, सो देखो चित ल्याए।

क्यों निरमल अंग होवहीं, जो इन विध रच्यो बनाए॥४॥

हे सुन्दरसाथ जी! यदि आप अपने दिल में इस बात का विचार करके देखें, तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि धाम धनी को अपने दिल में बसाये बिना कभी भी किसी का दिल निर्मल नहीं हो सकता। इस शरीर की रचना ही इस प्रकार हुई है कि बिना ध्यान के किसी का भी हृदय पवित्र

नहीं हो सकता।

भावार्थ- यद्यपि हृदय को निर्मल करने के लिये शुद्ध आहार, सत्संग, स्वाध्याय, तप आदि की भी महत्ता है, लेकिन गौण रूप में। यह स्पष्ट है कि ध्याता (ध्यान करने वाले) में ध्येय (जिसका ध्यान किया जाये) के गुण आने लगते हैं। निर्विकार ब्रह्म का ध्यान करने पर हृदय निर्विकार होगा ही। इस प्रकार यह सिद्ध है कि निर्मल होने के लिये चितवनि से श्रेष्ठ अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।

दोऊ मैले जब मिले, बांध गोली मांस रचाए।

नरक उदर दस मास लों, पूरो किया पचाए॥५॥

शुक्र और रज के संयोग से गर्भ की स्थापना होती है और बाद में उससे माँस-पिण्ड की रचना होती है।

गर्भस्थ जीव को नर्क के समान कष्टमयी स्थिति में पेट के अन्दर दस महीने तक तड़पना पड़ता है।

जठरा अग्नि तले करी, ऊपर ऊंधे मुख लटकाए।

बोल न सके ठौर सकड़ी, काढ़यो मुरदे ज्यों छुटकाए॥६॥

माता के गर्भ में जीव का शरीर इस प्रकार स्थित होता है कि उसके पैर ऊपर की ओर तथा मुख नीचे की ओर लटक रहा होता है। नीचे की जठराग्नि की अग्नि से वह जलता रहता है। गर्भाशय में जगह इतनी तंग होती है कि वह बोल भी नहीं पाता। माता के गर्भाशय से उसे वैसे ही निकलना पड़ता है, जैसे किसी मुर्दे को निकाला जाता है।

भावार्थ— जब जन्म होता है तो उस समय नवजात शिशु का शरीर मल, मूत्र, तथा रक्त से सना हुआ होता

है। बिना स्नान कराये उसके शरीर को देखने से यही कहा जा सकता है कि इतने समय (गर्भ में) तक वह नर्क के कष्ट में ही वास करता रहा।

हाड़ मांस लोहू रगां, ऊपर चाम मढ़ाए।

नव द्वार रचे नरक के, निस दिन बहे बलाए॥७॥

शरीर की रचना ऐसी है कि हड्डियों के ऊपर माँस चढ़ा होता है। नसों में रक्त बह रहा होता है। माँस और नसों के ऊपर चादर की तरह से चमड़े (त्वचा) को चढ़ाया गया होता है। शरीर में ९ द्वार (मुख + २ नासिका + २ कान + २ आँख + मूत्रेन्द्रिय + मल द्वार) नर्क के उन ९ द्वारों के समान हैं, जिनसे दिन-रात गन्दगी निकलती रहती है।

ऊपर बंध बालन के, जलस गुदा अंतर छाल।

चले नदी मल मूत्र की, कहूं केतो नरक को हाल॥८॥

शरीर के ऊपरी भाग में बालों का बन्धन होता है। मूत्रेन्द्रिय, गुदा, तथा त्वचा के अन्दर से मल-मूत्र एवं रक्त की नदी बहा करती है। ऐसे कष्टकारी नरक का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ।

पंचामृत पाक बनाए, भोजन भयो रूचाए।

अंग संग ले निकस्यो, कौन हाल भयो ताए॥९॥

दूध, दही, घी, शहद, तथा शक्कर को पञ्चामृत कहते हैं। इनके योग से अति स्वादिष्ट पकवान बनाकर बहुत रुचिपूर्वक भोजन तो किया जाता है, किन्तु उसका अन्तिम परिणाम क्या होता है? स्वादिष्ट एवं सुगन्धित पकवान भी पचने के पश्चात् दुर्गन्धित मल-मूत्र के रूप में

शरीर से बाहर निकलता है।

अंत आहार सूकर कूकर को, या कौआ कीरा खाए।

या तो अग्नि जलाए के, करके खाक उड़ाए॥१०॥

जीव के इस शरीर से निकलने पर, अर्थात् मृत्यु के पश्चात् जब इस शरीर को जल में प्रवाहित किया जाता है या मिट्टी में गाड़ा जाता है, तो शरीर सुअरों, कुत्तों, कोओं, और कीड़ों का भोजन बन जाता है। या जब इसे अग्नि में जलाया जाता है, तो यह राख के ढेर में परिवर्तित हो जाता है जिसे हवा में उड़ा दिया जाता है।

ए नरक निरमल क्यों होवहीं, जो ऊपर से अंग धोए।

अंग धोए मन निरमल, कबहूँ न हुआ कोए॥११॥

नर्क रूपी इस शरीर को ऊपर से कितना भी धोया

जाये, तो भी यह निर्मल होने वाला नहीं है। आज दिन तक शरीर के अंगों को धोने से किसी का भी मन निर्मल नहीं हो सका है।

भावार्थ- जल द्वारा स्थूल शरीर के बाह्य अंगों की ही सफाई हो सकती है। नेती, बस्ती आदि क्रियाओं से शरीर के थोड़े से ही आन्तरिक भाग की सफाई सम्भव है। कुछ समय के पश्चात् पुनः वह मल से भर जाता है। मन, चित्त, बुद्धि आदि कारण शरीर के अन्तर्गत आते हैं, इसलिये इनको निर्मल करने के लिये ध्यान की अनिवार्य आवश्यकता होती है।

आहार के रूप में जल के सेवन से सात्विक अंश की वृद्धि होती है, जिससे अन्तःकरण की कुछ शुद्धि होती है। इसी प्रकार ठण्डे जल से स्नान करने पर भी सात्विक अंश में वृद्धि होती है, किन्तु शरीर को बाहर से स्वच्छ

करके यह मान लेना कि अन्तःकरण भी स्वच्छ हो गया है, बहुत बड़ी भूल है।

धिक धिक नीची चातुरी, विचार न अंतस्करण।

त्रैलोकी इन अंग संग, गई खोए अखंड वतन॥१२॥

उस नीच चतुराई को धिक्कार है, जिसके कारण लोग अपने अन्तःकरण में इस बात पर विचार नहीं करते कि बाह्य शरीर को स्वच्छ करने की अपेक्षा हृदय की स्वच्छता अधिक आवश्यक है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड (तीनों लोकों— पृथ्वी, स्वर्ग, और वैकुण्ठ) के प्राणी इसी विचारधारा (शारीरिक स्वच्छता को सर्वोपरि मान लेना) को ही जीवन में विशेष रूप से अपनाते रहे हैं, जिससे वे अखण्ड धाम के आनन्द से वंचित रह गये।

ए सुच क्योंए न होवहीं, जो सौ बेर अन्हाए।

ए तो पिंड नरकै भरयो, देखो अन्तर नजर फिराए॥१३॥

इस शरीर को यदि सौ बार भी स्नान कराया जाये, तो भी यह किसी भी प्रकार से पवित्र होने वाला नहीं है। हे साथ जी! यदि आन्तरिक दृष्टि से विचार करके देखें, तो यह सम्पूर्ण शरीर नर्क तुल्य गन्दगी से भरा हुआ है।

भावार्थ- अन्तर्दृष्टि नहीं मिलने के कारण ही लोग शरीर की बाह्य सजावट पर सारा ध्यान केन्द्रित किये हुए हैं। उन्हें पता ही नहीं होता कि वे जिन सौन्दर्य प्रसाधनों (क्रीम, लिपस्टिक, पाऊडर, सुगन्धित द्रव्य, कीमती साबुन) का प्रयोग करते हैं, उनमें मूक जानवरों की आहें छिपी होती हैं।

विवेक विचार न पाइए, ऊपर टेढ़ी पाग लटकाए।

आप देखे मांहें आरसी, सिर आसमान लों ले जाए॥१४॥

बाह्य दृष्टि रखने वालों में गहन विचार करने की विवेक शक्ति नहीं होती। ये लोग अपने सिर पर टेढ़ी पाग लटकाकर चलते हैं और दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखकर इतने अभिमान में भर जाते हैं कि इनका सिर आकाश तक पहुँचा होता है।

भावार्थ- "आकाश तक सिर पहुँचना" एक अलंकार है, जिसका तात्पर्य होता है- बहुत अधिक अभिमान करना। झूठे शरीर के ऊपर गर्व करना नादानी है।

नहीं भरोसो खिन को, बरस मास और दिन।

ए तो दम पर बांधिया, तो भी भूल जात भजन॥१५॥

जब इस नश्वर शरीर के एक क्षण का भी भरोसा नहीं है,

तो दिन, माह, और वर्ष की बात ही क्या है। यह तो श्वांसों पर ही चल रहा है। पता नहीं, कब श्वांस बन्द हो जायें। इतना जानते हुए भी लोग उस सच्चिदानन्द परब्रह्म की भक्ति करना भूल जाते हैं।

आत्म धनी पेहेचानिए, निरमल एही उपाए।

महामत कहे समझ धनी के, ग्रहिए सो प्रेमें पाए॥१६॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! निर्मल होने का एकमात्र मार्ग है – आत्मा के प्रियतम उस सच्चिदानन्द अक्षरातीत की पहचान करना तथा प्रेमपूर्वक उनके चरण कमलों को अपने हृदय में बसा लेना।

प्रकरण ॥१०६॥ चौपाई ॥१५६३॥

राग श्री

इस प्रकरण में यह बताया गया है कि सच्चिदानन्द परब्रह्म शब्द से परे हैं।

झूठ सब्द ब्रह्मांड में, कहावत याही में सांच।

ए दोऊ झूठे होत हैं, वास्ते पिंड जो कांच॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि सच्चिदानन्द परब्रह्म के ज्ञान के सम्बन्ध में इस ब्रह्माण्ड में जीव सृष्टि द्वारा अब तक जो कुछ भी कहा जाता रहा है, यद्यपि वह स्वप्न की बुद्धि से कहे जाने के कारण झूठ होता है फिर भी उसे सत्य ही माना जाता रहा है। नश्वर शरीर की तरह यहाँ के शब्द और ब्रह्माण्ड दोनों ही झूठे हैं।

भावार्थ— सत्य वह होता है, जिसका स्वरूप सर्वदा एकरस होता है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तथा इसमें प्रयुक्त

होने वाले शब्द भी यथार्थ में झूठे होते हैं। यद्यपि संसार में यही मान्यता है कि जब तक ब्रह्माण्ड दिख रहा है तब तक यह सत्य है और इसके शब्द भी नित्य हैं, किन्तु ऐसा प्रवाह में तो माना जा सकता है, मूल रूप में नहीं। जब मोह सागर (महामाया) ही मिथ्या है, तो उससे उत्पन्न होने वाले शब्द एवं ब्रह्माण्डों को सत्य कैसे माना जा सकता है।

ए लगे दोऊ सुन्य को, निराकार सामिल।

निरंजन या निरगुन, सो भी रहे इन भिल॥२॥

शब्द और ब्रह्माण्ड दोनों की उत्पत्ति शून्य (निराकार) से हुई है। अवयव (अंग-प्रत्यंग या आकृति) से रहित होने के कारण उसे ही निरञ्जन कहते हैं, तथा ब्रह्म के सत्, चित्, आनन्द, अद्वैत आदि गुणों से रहित होने के

कारण उसे निर्गुण कहते हैं।

एकै साइत पैदा हुए, और फना होसी एक बेर।

ए क्यों पावें अद्वैत को, जो ढूँढे मांहेँ अन्धेर॥३॥

निराकार (शून्य) से शब्द और ब्रह्माण्ड एक साथ ही पैदा हुए हैं तथा एक साथ ही लय को प्राप्त हो जायेंगे। जो लोग इस अन्धकारमयी मायावी जगत के कण-कण में स्वलीला अद्वैत सच्चिदानन्द परब्रह्म को ढूँढना चाह रहे हैं, भला वे उसे कैसे प्राप्त कर सकते हैं।

भावार्थ- अद्वैत ब्रह्म तो माया के अन्धकार (तमस्) से सर्वथा परे हैं। संसार के लोग तारतम ज्ञान से रहित होने के कारण रात्रि के घने अन्धकार में सूर्य को खोजना चाह रहे हैं। मोहतत्व (मोहसागर) से ही असंख्य ब्रह्माण्डों तथा शब्द की उत्पत्ति होती है, तथा लय भी उसी में

होते हैं।

ए न्यारे को क्यों पावहीं, पैदास सारी इन।

सत शब्द ब्रह्मांड में आया, पर ए ना छोड़े कोई सुन॥४॥

महाशून्य (महामाया) से ही इस सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। भला इस सृष्टि के प्राणी महाशून्य से परे उस अद्वैत ब्रह्म को कैसे पा सकते हैं। परमधाम का ज्ञान शब्द रूप (श्री कुलजम स्वरूप) में इस ब्रह्माण्ड में आया हुआ है, लेकिन इस संसार के लोग निराकार (शून्य) को छोड़ने के लिये तैयार नहीं हैं।

भावार्थ- कोई भी अपने कारण को उलंघ नहीं पाता। अव्याकृत ही स्वप्न में आदिनारायण के रूप में प्रकट होता है। आदिनारायण से प्रकट होने वाले जीवों के लिये स्वाभाविक है कि वे तारतम ज्ञान से रहित होने पर

साकार-निराकार से भी परे सच्चिदानन्दमय परब्रह्म की अनुभूति नहीं कर सकते। उनकी सारी साधना का फल निराकार या आदिनारायण (ज्योति स्वरूप) का अनुभव होना है।

जीव विष्णु महाविष्णु लों, याके कई विध नाम धरत।

अग्यान ग्यान ले विग्यान, यों कई विध खेल खेलत॥५॥

संसार के जीव अपने विष्णु भगवान या महाविष्णु (आदिनारायण) को ही सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म माना करते हैं। इस प्रकार स्वप्न की बुद्धि के ज्ञान, अज्ञान, और विज्ञान की ओट में अनेक प्रकार के प्रपञ्चों में भटकते रहते हैं।

एक अनेक सब इनमें, इत सांच झूठ विस्तार।

अछर ब्रह्म क्यों पावहीं, भई आड़ी निराकार॥६॥

आदिनारायण (महाविष्णु) के ही संकल्प "एकोऽहम् बहुःस्याम" से असंख्य ब्रह्माण्डों की रचना हुई है। सभी प्राणी इनमें ही समाहित (लीन) हो जाते हैं। इनसे ही सत्य और झूठ का विस्तार होता है। संसार के प्राणी भला अक्षर ब्रह्म को कैसे पा सकते हैं, इनके सामने तो निराकार का पर्दा आ जाता है।

भावार्थ- आदिनारायण ही अव्याकृत के स्वाप्निक स्वरूप हैं। सभी प्राणी आदिनारायण की ही चेतना के प्रतिभास हैं, जिन्हें चिदाभास कहा जाता है। मोह तत्व से ही पञ्चभूतात्मक जड़ ब्रह्माण्डों की रचना होती है। इस प्रकार, जीवों के प्रकटीकरण को सत्य का विस्तार और जड़ जगत के फैलाव को झूठ का विस्तार कहा गया है।

अछर अछरातीत कहावहीं, सो भी कहियत इत सब्द।

सब्दातीत क्यों पावहीं, ए जो दुनियां हद॥७॥

"अक्षर" और "अक्षरातीत" शब्दों का उच्चारण भी इस संसार में केवल समझ में आने के लिये ही किया जाता है, अन्यथा वह तो शब्दों की परिधि से सर्वथा ही परे हैं। भला हद के जीव उस शब्दातीत परब्रह्म को कैसे पा सकते हैं।

पांच तत्व गुन तीनों ही, ए गोलक चौदे भवन।

निरगुन सुन्य या निरंजन, ज्यों पैदा त्योंही पतन॥८॥

पाँच तत्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी), तीन गुण (सत्त्व, रज, तम), चौदह लोकों का यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, तथा महाशून्य (निर्गुण या निरञ्जन) की जिस प्रकार उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार लय भी हो जाते हैं।

भावार्थ— सबसे पहले महाशून्य (मोहतत्व, निरञ्जन,

निराकार, निर्गुण) की उत्पत्ति होती है। उससे सत्व, रज, और तम का प्रकटीकरण होता है। तत्पश्चात् पञ्चभूतात्मक चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड जैसे असंख्य ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति हो जाती है, किन्तु ये सभी महाप्रलय में लीन हो जाते हैं।

ए सुपना नींद सूरत का, खेले अछर आतम।

हम भी आए देखने, खसम के हुकम ॥९॥

स्वप्न का यह ब्रह्माण्ड अक्षर ब्रह्म की सुरत की नींद में बना है, जिसमें अक्षर ब्रह्म की आत्मा खेल रही है। धनी के हुक्म से हम भी इस खेल को देखने के लिये आये हुए हैं।

भावार्थ— अक्षर ब्रह्म के मूल स्वरूप में सृष्टि-सृजन की जो इच्छा होती है, वह सत्स्वरूप, केवल से होते हुए

सबलिक में आती है। अव्याकृत का महाकारण ही सबलिक का स्थूल कहलाता है। इस प्रकार अव्याकृत में स्थित पुरुष (महाकारण) की सुरता को ही सबलिक सुरत कहते हैं, जो स्वप्न में आदिनारायण के रूप में प्रकट होती है। ब्रह्मसृष्टियों के साथ अक्षर ब्रह्म की आत्मा भी इस खेल की द्रष्टा है।

ब्रह्मसृष्ट के कारने, खेल जो रचिया ए।

खेल देखाए सत वतन, महामत आए ले॥१०॥

श्री महामति जी कहते हैं कि ब्रह्मसृष्टियों को खेल दिखाने के लिये ही माया का यह खेल बनाया गया है। धाम धनी सबको माया का खेल दिखाकर परमधाम ले आयेंगे।

प्रकरण ॥१०७॥ चौपाई ॥१५७३॥

राग श्री

इस प्रकरण में कुरआन की हकीकत का वर्णन किया गया है।

फुरमान मेरे मेहेबूब का, ले आया अर्स से रसूल।

भेज्या अपनी अरवाहों पर, साहेब होए सनकूल॥१॥

मेरे धाम धनी ने अपनी आत्माओं पर रीझकर साक्षी के लिये कुरआन को इस संसार में भेजा। उसे परमधाम से लेकर मुहम्मद सल्लिल्लाहो अलैहि वसल्लम् आये।

सोई खोले अपनी इसारते, जो अर्स की अरवाहें।

एही परीछा जाहेर, और काहूं न खोल्या जाए॥२॥

कुरआन में परमधाम एवं ब्रह्मसृष्टियों के सम्बन्ध की गुह्य

बातें संकेतों में लिखी हुई हैं। एकमात्र परमधाम की ब्रह्मसृष्टि ही इन संकेतों के रहस्य को जानती हैं। सृष्टि का अन्य कोई भी प्राणी इन रहस्यों को नहीं जानता। ब्रह्मसृष्टि होने की प्रत्यक्ष में यही परीक्षा है।

बरकत इन रूहन की, भिस्त देसी सबन।

ले दे हिसाब फजर को, ले चलसी रूहें वतन॥३॥

इन ब्रह्मसृष्टियों की कृपा से सभी जीवों को बहिश्तों में अखण्ड मुक्ति मिलेगी। तारतम ज्ञान का उजाला होने पर धाम धनी सबका न्याय करके ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम ले चलेंगे।

मुझे भेज्या कासिद कर, मैं ल्याया फुरमान।

एही जानो तुम तेहेकीक, दिलसों आकीन आन॥४॥

मुहम्मद साहिब कहते हैं कि मुझे अल्लाह तआला ने सन्देशवाहक बनाकर इस संसार में भेजा है। मैं कुरआन का ज्ञान लेकर आया हूँ। तुम निश्चित रूप से इसे सत्य मानो और सच्चे दिल से इस पर विश्वास लाओ।

मैं देत हों खुसखबरी, जो रबानी अरवाहें।

वे उतरे अर्स अजीम से, जो है हमेसगी इमदाए॥५॥

हे संसार के लोगों! मैं तुम्हें एक बहुत आनन्ददायी समाचार सुनाता हूँ। परमधाम में अनादि काल से जो अल्लाह तआला की आत्मायें (रूहें) हैं, वे इस मायावी जगत का खेल देखने के लिये इस संसार में अवतरित होंगी।

रसूल कहे मैं आखिरी, मेरे पीछे न आवे कोए।

कह्या रूह अल्ला की आवसी, और मेंहेदी इमाम सोए॥६॥

मुहम्मद साहिब कहते हैं कि मैं आखिरी पैगम्बर हूँ। मेरे पश्चात् अब कोई भी दूसरा पैगम्बर नहीं आयेगा। अब केवल रूह अल्लाह (श्री श्यामा जी) आयेंगे और वे ही आखरुल इमाम मुहम्मद महदी साहिब्बुज्जमा (श्री प्राणनाथ) के रूप में जाहिर होंगे।

रूह अल्ला दो जामे पेहेरसी, दूसरे ऊपर मुद्दार।

सोई इमाम मेंहेदी, याकी बुजरकी बेसुमार॥७॥

इस संसार में श्यामा जी दो तनों को धारण करेंगी। दूसरे तन पर ही जागनी का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व होगा। इसी स्वरूप को आखरुल इमाम मुहम्मद महदी साहिब्बुज्जमां कहते हैं, जिनकी महिमा अनन्त है।

मैं आया हों अव्वल, आखिर आवेगा खुदाए।

काजी होए के बैठसी, करसी सबों कजाए॥८॥

मुहम्मद साहिब कहते हैं कि मैं पहले सबको सूचना देने के लिये आया हूँ कि कियामत के समय खुद खुदा आखरूल इमाम महदी के रूप में आयेंगे। वे सबके न्यायाधीश (काजी) बनकर सबका न्याय करेंगे।

भावार्थ- सामान्य रूप से यह मान्यता प्रचलित है कि इस संसार में छोटी कियामत (गैब-ए-सुगरा) होगी, जिसमें तन के परदे में ईसा रुह अल्लाह और इमाम महदी लीला करेंगे। बड़ी कियामत (गैब-ए-कुबरा) सातवें दिन की लीला में होगी, जिसमें खुदा का असली स्वरूप न्याय करेगा।

तारतम ज्ञान की दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि इस संसार में इमाम महदी का स्वरूप प्रकट होगा, उसमें

पाँचों शक्तियाँ (जिबरील, रुह अल्लाह अर्थात् श्यामा जी, अक्षर ब्रह्म, धनी की आवेश शक्ति अर्थात् हुक्म, और जाग्रत बुद्धि इस्राफील) होंगी। योगमाया में जो न्याय की लीला होगी, उसमें केवल जिबरील तथा इस्राफील ही होंगे। शेष तीन शक्तियाँ नहीं होंगी, लेकिन श्री राज जी के स्वरूप की नकल होने के कारण सारे प्राणी उस समय उनको अक्षरातीत (खुदा) का रूप मान लेंगे, जबकि वे यथार्थ में खुदा के स्वरूप नहीं होंगे।

इस जागनी ब्रह्माण्ड में पाँचों शक्तियों सहित श्री प्राणनाथ जी (इमाम महदी) के स्वरूप में जो लीला हो रही है, उसको संसार के ज्ञानीजन नहीं पहचान पा रहे हैं। इसी को कहते हैं, अल्लाह का तन के परदे में छिपा होना।

साल नव सै नब्बे मास नव, हुए रसूल को जब।

रुह अल्ला मिसल गाजियों, मोमिन उतरे तब॥९॥

जब रसूल साहिब को अन्तर्धान (देह त्याग) हुए ९९० वर्ष और ९ माह हो गये, तब श्यामा जी अपने साथ उन ब्रह्मसृष्टियों को लेकर इस संसार में आयीं जो धनी पर अपना सर्वस्व न्योछावर करने वाली हैं।

भावार्थ- सामान्यतः "गाज़ी" शब्द का विकृत अर्थ होता है- इस्लाम के प्रचार के लिये जिहाद की ओट में रक्तपात करने के लिये तत्पर रहने वाला। तारतम ज्ञान से इसका वास्तविक अभिप्राय होता है- अपने प्रियतम अक्षरातीत को पाने के लिये अपनी सम्पूर्ण सांसारिक चाहनाओं को समाप्त करके अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने वाला।

गिरो बनी असराइल, सो मिसल गाजियों जान।

होए कबूल बंदगी उनसे, इन विध कहे फुरमान॥१०॥

कुरआन में ऐसा लिखा है कि इब्राहीम के बेटे इसराइल की जमात परब्रह्म के ऊपर अपना सर्वस्व न्योछावर करने वाली होगी। उनकी ही बन्दगी हकीकी (सच्ची) होगी, जो अल्लाह तआला द्वारा स्वीकार की जायेगी।

भावार्थ- इब्राहिम पैगम्बर के दो पुत्र थे- इस्माइल और इसराइल। यहाँ सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी को इब्राहिम कहा गया है। उनके दो पुत्र हैं- १. नसली पुत्र इस्माइल अर्थात् बिहारी जी २. नज़री पुत्र इसराइल अर्थात् श्री मिहिरराज जी। बनी इसराइल का तात्पर्य है- श्री जी के आदेश पर चलने वाला। परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ बनी इसराइल हैं, जो धर्म के ऊपर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती हैं।

एक निमाज की हजार, एही करसी कबूल।

कई कही महंमद आखिर सिफत, सो भी इन बीच होसी रसूल॥११॥

इन मोमिनो (ब्रह्मसृष्टियों) की एक बन्दगी का हजार गुना फल श्री प्राणनाथ जी देंगे। कुरआन-हदीसों में आखिरी मुहम्मद श्री प्राणनाथ जी की महिमा कई प्रकार से कही गयी है। यह भी कहा गया है कि रसूल मुहम्मद साहिब भी इनके साथ होंगे।

भावार्थ- यहाँ यह शंका होती है कि मोमिनो द्वारा की जाने वाली बन्दगी का हजार गुना फल श्री प्राणनाथ जी कैसे देंगे?

इसका समाधान यह है कि यद्यपि आखरूल इमाम महदी श्री प्राणनाथ जी सबको परमधाम में विराजमान युगल स्वरूप का ही ध्यान करायेंगे, "अर्स बका पर सिजदा, करावसी इमाम", किन्तु उनके स्वरूप में ही

पूर्ण ब्रह्म पाँचों शक्तियों के साथ लीला कर रहे हैं। दोनों स्वरूप एक ही हैं। अन्तर केवल इतना है कि परमधाम का स्वरूप "नूरी" है तथा यहाँ का स्वरूप "आवेश स्वरूप" है। धाम धनी ने स्वयं कहा है कि जो इस स्वरूप को रिझायेगा, मैं उसे आनन्द से भर दूँगा—

इंद्रावती के मैं अंगे संगे, इंद्रावती मेरा अंग।

जो अंग सौंपे इंद्रावती, ताए प्रेमें खेलाऊं रंग।

कलस हिंदुस्तानी २३/६६

इस प्रकार श्री प्राणनाथ जी की महिमा परब्रह्म के रूप में गोपनीय रूप से रहेगी। संसार के लोग उन्हें पूरी तरह से पहचान नहीं पायेंगे। वास्तविक पहचान योगमाया में ही होगी।

एही गिरो रबानी, रुहें बीच दरगाह।

कई हजारों सिफतें इन की, माहें बुजरक रुह अल्लाह॥१२॥

परमधाम में रहने वाली ये ब्रह्मसृष्टियाँ अक्षरातीत की अंग स्वरूपा हैं। कुरआन में इनकी महिमा हजारों प्रकार से कही गयी है। इनमें रुह अल्लाह (श्यामा जी) प्रधान (सिरदार) हैं।

जाहेर महंमद पुकारहीं, फुरमान ल्याया मैं।

कई हजारों बातें करी, साहेब की सूरत सें॥१३॥

रसूल मुहम्मद साहिब ने पुकार-पुकार कर कहा है कि मैंने अल्लाह तआला का प्रत्यक्ष रूप से दीदार किया है और उनसे हजारों (९०,००० हरुफ) बातें की हैं। उनके सन्देश के रूप में मैं यह कुरआन की वाणी लाया हूँ।

कई रद बदलें करी साहेब सों, अपनी उमत के वास्ते।

या विध कलाम कई लिखें, सो पढ़े न मानें ए॥१४॥

मैंने खुदा से अपने अनुयायियों के सम्बन्ध में अनेक बातें की हैं। इस प्रकार कुरआन में अनेक प्रकार के वचन लिखे हैं, जिन्हें मौलवी-मुल्ला पढ़ते तो हैं, किन्तु इसे स्वीकार नहीं करते। उनकी स्पष्ट धारणा है कि खुदा निराकार है, जबकि मुहम्मद साहिब कहते हैं कि मैंने उनसे बातें की हैं।

यों लिख्या है कई विध, पर समझे ना बेसहूर।

दुनी पढ़ पढ़ अपनी अकलें, कई करें मजकूर॥१५॥

इस तरह से कुरआन में कई प्रकार की गुझ बातें लिखी हुई हैं, लेकिन गहन चिन्तन न होने के कारण संसार के लोग समझ नहीं पाते। वे अपनी स्वप्न की बुद्धि से

कुरआन को पढ़कर अलग-अलग अर्थ निकालते हैं।

भावार्थ- कुरआन का वास्तविक चिन्तन तारतम ज्ञान के प्रकाश में ही सम्भव है। माँस आदि तामसिक पदार्थों का सेवन करके संकुचित भावनाओं से कभी भी कुरआन का आशय (अभिप्राय) नहीं जाना जा सकता।

बिना आकीने पढ़हीं, अपनी अकलें करें बयान।

सो सुनाए सुनाए दुनी को, कई किए बेईमान॥१६॥

शरीयत की राह अपनाने वाले ये लोग बिना यकीन (विश्वास) के कुरआन को पढ़ते हैं और अपनी स्वप्नमयी बुद्धि से कुरआन का बेढंगा अर्थ करते हैं। अपना उल्टा ज्ञान सुनाकर संसार में अनेक लोगों को बेईमान बनाते हैं।

भावार्थ- कुरआन के सिपार: २८ क़द समिअल्लाहु सूर:

५९ आयत १८ में कल आने का वायदा है।

सिपार: ७ सूर: ६ आयत ३६ में कहा गया है कि क्रियामत के दिन मुर्दे उठेंगे।

सिपार: १७ सूर: २० आयत ४७ में खुदा का एक दिन दुनिया के हजार वर्ष के बराबर है। सिपार: २२ सूर: ३० आयत २९, ३० में क्रियामत आने का वायदा कल के लिये है।

कुरआन में ब्रह्मसृष्टियों के स्वरूपों का सांकेतिक वर्णन है। उसमें कुछ लोगों ने संसार की खूबसूरत स्त्रियों के भाव से भोग-विलास की कल्पना की है। परमधाम के इश्क की शराब को उन्होंने बुद्धि को विकृत करने वाली शराब मान रखा है। हृदय में दया-धर्म की भावना न होने से मौलवी-मुल्ला लोग कुरआन की कुछ आयतों की व्याख्या इस प्रकार तोड़-मरोड़ कर करते हैं कि उससे

सम्पूर्ण विश्व में घृणा की स्थिति बन जाती है। इस कार्य के लिये वे कुरआन में (सिपारः १० सूरः १ आयत १२, १३, १४, ७३, ८७) को प्रस्तुत करते हैं। जब सम्पूर्ण सृष्टि का परमात्मा एक है, तो इस्लाम मत को स्वीकार न करने वालों के प्रति वह घृणा व विनाश की भावना क्यों रखेगा? वह अपने अनुयायियों को दूसरे मतावलम्बियों की हत्या करने के लिये प्रेरित क्यों करेगा? निश्चित रूप से कुरआन की इस प्रकार की व्याख्या उस जेहादी मानसिकता की देन है, जो सारे संसार को विनाश की खाई में ले जा रही है।

एक अचरज ए देख्या बड़ा, कहे बेचून बेचगून।

कुरान देखें पढ़ें यों कहें, बेसबी बेनिमून॥१७॥

मैंने इस संसार में एक बहुत ही आश्चर्य की बात देखी है

कि कुरआन को दिन-रात पढ़ने वाले लोग यही कहा करते हैं कि खुदा बिना रूप का (बेचून), बिना गुण का (बेचगून), बिना आकार का (बेसबी), और किसी भी उपमा से रहित (बेनिमून) है।

**फुरमान जाहेर सूरत देखावहीं, सो माएने न ले दिल अंध।
पढ़ें अपनी अकलें, पाड़ी दुनियां दोजख फंद॥१८॥**

कुरआन में स्पष्ट रूप से अल्लाह की सूरत (स्वरूप) का वर्णन किया गया है, लेकिन दिल के अन्धे लोग नहीं मानते। अपनी स्वप्नमयी बुद्धि से कुरआन पढ़ने वाले इन लोगों ने दुनिया को अग्नि में जलने के लिये मजबूर कर दिया है।

भावार्थ- कुरआन के "मेअराजनामः" में एवं "आना-जाना नूर का" ग्रन्थ में मुहम्मद साहिब द्वारा अल्लाह के

दीदार का प्रसंग है। यदि खुदा का कोई स्वरूप ही नहीं, तो ९०,००० हरुफ बातें किसके साथ की? यदि यह कहा जाये कि दोनों (अल्लाह और मुहम्मद साहिब) के बीच में एक परदा था और नूर से आवाज आती रही, तो प्रश्न यह होता है कि नूर क्या है और कैसा है जिससे बातें होती रहीं? वस्तुतः इल्म-ए-लुदुन्नी (तारतम ज्ञान) के बिना संसार में कोई भी कुरआन के भेदों को नहीं जान सकता।

सिपारे सयकूल में, यों लिख्या जाहेर कर।

देखाऊं माएने मुसाफ, चीन्हो दिल की खोल नजर॥१९॥

कुरआन का दूसरा पारा है सयकूल। इसमें खुदा की सूरत का स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है। मैं कुरआन के भेदों को स्पष्ट करके बताता हूँ। तुम अपने दिल की

आँखों से इसे पहचानो।

ए जानें हरम के मेहेरम, जिनों तेहेकीक करी सूरत।

मुख ना फेरें सूरत सों, सोई बंदगी हकीकत॥२०॥

खुदा की सूरत के इस रहस्य को रंगमहल के जानकार ही जानते हैं, जिन्होंने साक्षात् दीदार किया होता है। वे अपने प्रियतम अक्षरातीत की शोभा से जरा भी अपनी दृष्टि नहीं हटाते। यही हकीकत की बन्दगी है।

एक खूबी चाहें साहेब की, और न कछुए चाहें।

उनकी एही बंदगी, जो सांचे आरिफ अरवाहें॥२१॥

जो सत्य की राह पर चलने वाली ज्ञान से पूर्ण आत्मायें हैं, उनकी यही बन्दगी है कि वे अपने प्रियतम की महिमा का प्रसार चाहती हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें अन्य किसी

वस्तु की इच्छा नहीं होती।

जिनों अर्थ लिया अंदर का, माएने पेहेचाने तिन।

खासों की एही बंदगी, जाने दिल रूह वतन॥२२॥

जिन्होंने कुरआन के प्रसंगों का बातूनी अर्थ लिया होता है, एकमात्र वे ही कुरआन के वास्तविक आशय को पहचानते हैं। ब्रह्मसृष्टियों की यही बन्दगी है। इन रूहों का दिल ही परमधाम की बातों को यथार्थ रूप से जानता है।

आसिक अर्स अजीम की, चाहे मिलना हमेसगी।

चाहे साहेब और उमत, उनकी एही बंदगी॥२३॥

परमधाम की आशिक रूहें हमेशा अपने धनी से मिलन चाहती हैं। उनकी सच्ची बन्दगी यही है कि वे अपने धनी तथा सुन्दरसाथ को चाहती हैं (प्रेम करती हैं)।

एही रूहों की बंदगी, जो कही खास उमत।

एही अहेल किताब हैं, लिख्या दूसरे सिपारे जित॥२४॥

कुरआन के दूसरे पारे में लिखा है कि खास उम्मत ब्रह्मसृष्टि ही कुरआन की वारिस है अर्थात् गुह्य ज्ञान का अधिकार रखने वाली है। धनी और सुन्दरसाथ से प्रेम ही उनकी सच्ची बन्दगी है।

और देखो दुनी की बंदगी, ए भी सयकूल में लिखे।

सो भी देखाऊं बेवरा, जो कर बैठे कबले॥२५॥

कुरआन के दूसरे पारे सयकूल में दुनिया के जीवों की बन्दगी के बारे में लिखा हुआ है। बन्दगी की ओट में ये दुनिया वाले जो बड़े-बड़े धर्म स्थान बनाकर बैठे हैं, उनका भी विवरण देता हूँ।

पातसाहों एही जानिया, मोती जवेर सिर ताज।

इनका एही किबला, चाहें ज्यादा अपना राज॥२६॥

दुनिया के बादशाहों ने अपने सिर पर मोतियों और जवेरों से सजे हुए मुकुटों को ही धारण करने में सबसे बड़ा पुरुषार्थ माना। राज सिंहासन को ही इन्होंने अपनी पूजा का स्थान समझ लिया। ये लोग परमात्मा से भी अपने राज्य की वृद्धि के लिये ही प्रार्थना करते रहे।

सोना रूपा दुनी का, अरथ चाहें भरे भंडार।

इनका एही किबला, कई विध करें विस्तार॥२७॥

दुनिया के लोग अपने घरों में सोना-चाँदी आदि धन-सम्पत्ति के बड़े-बड़े भण्डार रखना चाहते हैं। कई प्रकार से उस धन का विस्तार करने में ही दिन-रात लगे रहते हैं। इन लोगों की यही बन्दगी है।

जिनकी बद-खसलतें, अपना भला मन ल्याए।

इनका एही किबला, औरों का भला न चाहें॥२८॥

जिनकी नीयत बुरी होती है, मन में केवल अपना ही भला सोचते हैं और दूसरों की भलाई की कल्पना भी नहीं करते। संसार के ऐसे लोगों की यही बन्दगी है।

जो जाहेर परस्त हैं, चाहें मिट्टी पानी पत्थर।

इनका एही किबला, जिनकी बाहेर पड़ी नजर॥२९॥

जिनकी दृष्टि बहिर्मुखी होती है और बाह्य कर्मकाण्ड (शरीयत) को ही सब कुछ मानते हैं, उनका सारा ध्यान मिट्टी, पानी, और पत्थरों में बना रहता है, अर्थात् मिट्टी, पानी, और पत्थरों से पीरों की मजारें बनाकर चढ़ावा चढ़ाते हैं तथा पूजा-पाठ करते रहते हैं। इनकी बन्दगी यही है।

मिट्टी पत्थर बनाए के, कहें खुदाए का घर।

मेहेराव को किबला किया, करें निमाज तिन पर॥३०॥

शरीयत की राह पर चलने वाले लोग मिट्टी तथा पत्थरों से मस्जिद बनाते हैं और उसे खुदा का घर कहते हैं। उसमें बनी हुई मेहराब को ही पूज्य स्थान बनाकर नमाज पढ़ते रहते हैं। इनकी यही बन्दगी है।

जो यार हैं अपने तन के, भला खावें सोवें पलंग।

तिनका एही किबला, और न चाहें रंग॥३१॥

जो अपने शरीर के सुखों को ही सब कुछ समझते हैं, वे अच्छा खाते-पीते हैं और कोमल पलंग पर सोते रहते हैं। शारीरिक आनन्द के अतिरिक्त इनके मस्तिष्क में बौद्धिक या आत्मिक आनन्द की कल्पना भी नहीं होती। शरीर का पोषण ही इनकी पूजा है।

आगूँ अपनी दानाई के, और न काहूँ देखत।

इनका एही किबला, अपनी तरफ खँचत॥३२॥

अपनी सांसारिक चतुराई के आगे ये अन्य किसी को कुछ भी नहीं समझते। सबको अपनी बातों के जाल में फँसाकर अपनी ओर खींचने का प्रयास करते हैं। इसी को इन्होंने अपने जीवन की सर्वोत्तम उपलब्धि मान रखा है।

भावार्थ- यद्यपि "किबला" शब्द का अर्थ होता है पूज्य स्थान, किन्तु यहाँ तात्पर्य उस वस्तु से है जिसको अपने जीवन में सबसे अधिक अहमियत दे रखी हो।

जिन जैसा किबला सेविया, आगूँ आया तैसा तिन।

दुनी कारन खोवे दीन को, तो आखिर कही जलन॥३३॥

जिन्होंने जिस प्रकार की बन्दगी की, उसका फल

उनको वैसा ही मिला। दुनिया के झूठे सुखों के लिये इन्होंने धर्म की सच्ची राह छोड़ दी। ऐसे लोगों को अन्त में प्रायश्चित् की अग्नि में जलना ही पड़ेगा।

इन विध फुरमान फुरमावहीं, जाहेर देत बताए।

अंदर बैठा जो दुस्मन, सो देत माएने उलटाए॥३४॥

इस प्रकार कुरआन में ऐसी बातें स्पष्ट रूप से बतायी तो गयी हैं, किन्तु सबके अन्दर शत्रु के रूप में इब्लीश (शैतान) अर्थात् अज्ञान रूपी राक्षस बैठा हुआ है, जो कुरआन के उल्टे अर्थ कराकर लोगों को अधर्म की राह पर ले जाता है।

आरिफ कहावें आपको, होए बुजरक माहें दीन।

कह्या हादी का रद करें, यों खोवत हैं आकीन॥३५॥

ये अपने आपको कुरआन-हदीसों का बहुत बड़ा ज्ञाता कहते हैं और धर्म (दीन) के अन्दर स्वयं को अग्रगण्य सिद्ध करते हैं। मुहम्मद साहिब (हादी) के जो वचन इनके स्वार्थों के प्रतिकूल (विपरीत) होते हैं, उसको मानने से साफ मना कर देते हैं। इस प्रकार खुदा और रसूल के प्रति ये अपने विश्वास को खो देते हैं।

जब जाहेर माने लीजिए, तब खड़े होत हैं घर।

अंदर माने सब उड़त हैं, सो पढ़े लेवें क्यों कर॥३६॥

जब कुरआन के बाह्य अर्थों को लिया जाता है तो सांसारिक सुखों का घर (महल) खड़ा हो जाता है, किन्तु जब आन्तरिक (बातूनी) अर्थों को स्वीकार किया जाता है तो सांसारिक सुखों के महल ध्वस्त हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में शरीयत से जुड़े हुए ये शुष्क ज्ञानी लोग

कुरआन के आन्तरिक (हकीकत एवं मारिफत) अर्थों को क्यों लेंगे।

भावार्थ— घर खड़ा होना आलंकारिक वर्णन है, जिसका तात्पर्य होता है लौकिक सुखों में डूब जाना। कुरआन की हकीकत और मारिफत का ज्ञान होने पर चौदह लोक के सुखों से भी कोई मोह नहीं रह जाता।

पढ़े सो भी पेट कारने, और पालने कबीले।

दुनियां को देखावहीं, आगूं चल के ए॥३७॥

ये लोग कुरआन की पढ़ाई भी करते हैं, तो अपने और अपने परिवार के भरण-पोषण के लिये। इनके अन्दर आत्म-कल्याण की कोई भावना नहीं होती। जिस संकुचित भावना से इन्होंने शिक्षा ग्रहण की होती है, उसी भावना से आगेवान होकर संसार को भी वही (शरीयत)

राह दिखाते हैं।

जब लीजे अंदर के माएने, तब न कछू साहेब बिन।

साहेब बिना सब दोजख, चौदे तबक अगिन॥३८॥

यदि कुरआन के आन्तरिक अर्थों को लिया जाये, तो यही लगता है कि धाम धनी अक्षरातीत के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है। एक प्रियतम अक्षरातीत के बिना सब कुछ दोजक के समान लगता है। यहाँ तक की वैकुण्ठ सहित चौदह लोकों का सुख भी उसे अग्नि की लपटों के समान कष्टकारी लगता है।

दीन इसलाम से जात हैं, कारन सुख सुपन।

बुजरक आगे होए के, राह मारें औरन॥३९॥

मायावी सुखों की तृष्णा में ये सच्चे धर्म (दीन-ए-

इस्लाम) की राह से भटक जाते हैं। धार्मिक क्षेत्र में आगेवान बनकर स्वयं तो भटकते ही हैं, औरों को भी भटकाते हैं।

कही गरीबी बुजरक, पढ़ कर सो न ले।

कई बंध फंद कर मारहीं, लई मुल्लां गरीबी ए॥४०॥

कुरआन में विनम्रता (गरीबी) को बहुत श्रेष्ठ माना गया है। मौलवी-मुल्ला लोग इसे पढ़ते तो हैं, किन्तु आचरण में नहीं लाते। वे अनेक प्रकार के प्रपञ्च –जाल रचकर दूसरों को मारते हैं, इसी को वे गरीबी धारण करना कहते हैं।

भावार्थ- सभी मतों की यह सार्वकालिक मान्यता है कि जिसके पास विनम्रता और सहनशीलता का अस्त्र है, वह निश्चित रूप से महान होता है। मौलवी-मुल्ला शरीयत के

बन्धनों में इतने जकड़े होते हैं कि गैर-मुस्लिमों के प्रति इनका व्यवहार बहुत कठोर होता है। जेहादी मानसिकता वाले लोगों से विनम्रता और सहनशीलता की आशा करना सूर्य के पश्चिम में उगने जैसा है।

कोई सीधा सब्द जो केहेवहीं, तो तोरा देखावें ताए।

जो गरीब सामें बोलहीं, तो तिनको सूली चढ़ाए॥४१॥

यदि कोई कुरआन की बात सीधे शब्दों में कहता है, तो उसे शरीयत का डर दिखाते हैं। यदि कोई उनसे विनम्रतापूर्वक धर्म के सम्बन्ध में बातें करने की कोशिश करता है, तो उसे फाँसी पर चढ़ा देते हैं।

कहे मुखथें हम मोमिन, और हमहीं पढ़े सरे-दीन।

हमहीं अहेल किताब हैं, हमहीं में आकीन॥४२॥

अपने मुख से वे स्वयं को मोमिन कहते हैं। वे यह भी कहते हैं कि दीन-ए-इस्लाम की शरीयत के नियमों का हमने बहुत गहराई से अध्ययन किया है। कुरआन के सच्चे वारिस भी हम हैं। अल्लाह तआला तथा मुहम्मद रसूल पर सच्चा यकीन रखने वाले भी हम हैं।

यों हम हम करते कई गए, अजूं योंहीं जाए रात दिन।

यों करते आखिर आए गई, बांधी तोबा लगी अगिन॥४३॥

इस प्रकार शरीयत के आधार पर अपनी श्रेष्ठता को थोपने की मानसिकता लिये हुए अनेक लोग इस संसार से चले गये और अभी भी दिन-रात इस दुनिया से विदा होते जा रहे हैं। ऐसा करते-करते कियामत का समय आ गया। यदि इस समय इन्होंने अपनी भूलों पर प्रायश्चित्त (तोबा) करके धनी की शरण में हकीकत की राह नहीं

ली, तो अन्ततोगत्वा न्याय के दिन इन्हें घोर पश्चाताप की अग्नि में जलना पड़ेगा।

किया टोना लड़की महंमद पर, दर्ई गाँठ अग्यारे तिन।

सो हर सदी गाँठे खुलीं, तब महंमद ले चले मोमिन॥४४॥

एक यहूदी की लड़की ने मुहम्मद साहिब के बालों में टोना किया और उसमें ग्यारह गाँठें लगा दी। हर सदी में एक-एक गाँठ खुलती गयी। इस प्रकार ग्यारहवीं सदी में नूरी मुहम्मद श्री प्राणनाथ जी ने ब्रह्मसृष्टियों को निज घर परमधाम की राह दिखायी।

भावार्थ- यह व्यवहारिक घटना है कि एक यहूदी की लड़की मुहम्मद साहिब के बालों को ठीक करने के भाव से आयी। उसके मन में खोट था। बालों को कँघा करते समय उसने टूटा हुआ बाल ले लिया और उसमें ग्यारह

गाँठे लगाकर एक कुएं में पत्थर के नीचे दबा दिया। वह टोने द्वारा मुहम्मद साहिब का बुरा करना चाहती थी। जिबरील द्वारा मुहम्मद साहिब को सारी बातों का पता चल गया और उन्होंने अली को कुएं के अन्दर उस बाल को निकाल लाने के लिये भेजा। हज़रत अली ने पत्थर के नीचे से उस बाल को निकाला और उसमें लगायी हुई ग्यारह गाँठों को खोल दिया। इस प्रकार उस टोने का दुष्प्रभाव समाप्त हो गया।

इस घटना का आन्तरिक भाव यह है कि जिस प्रकार ग्यारह गाँठों के खुलने से टोने का दुष्प्रभाव समाप्त हो गया, उसी प्रकार ग्यारहवीं सदी में श्री प्राणनाथ जी के प्रकट हो जाने पर कलियुग रूपी अज्ञान का दुष्प्रभाव समाप्त हो गया तथा सबने मृत्यु के कुएं रूपी इस भवसागर से परे अखण्ड परमधाम की राह अपनायी।

ए आयत देख्या चाहे, ताए देखाऊं बेसक।

इनमें जो सक ल्यावहीं, सो जलसी आग दोजक॥४५॥

जिसे कुरआन की इस आयत को देखने की इच्छा हो, उसे मैं निश्चित रूप से दिखाने के लिये तैयार हूँ। इस आयत के अर्थ में भी जो संशय करेगा, निश्चित रूप से वह दोजक की अग्नि में जलेगा।

भावार्थ— कुरआन के—

१. सिपार: २८ सूर: ५९ आयत १८

२. सिपार: १७ समर: २२ आयत ४७

३. सिपार: २२ सूर: ३० आयत २९, ३०

४. सिपार: ०७ सूर: ०६ आयत ३६

५. सिपार: १६ सूर: १९ आयत ७ में यह प्रसंग वर्णित है। कुरआन के इस कथन के अनुसार ग्यारहवीं सदी में आखरूल इमाम (श्री प्राणनाथ जी) का प्रकटन सिद्ध

होता है। इस कथन के ऊपर जो विश्वास नहीं लायेगा, निश्चित रूप से वह प्रायश्चित (दोजक) की अग्नि में जलेगा।

जब तमाम सदी अग्यारहीं, ए महंमद उमत आकीन।

जबराईल मुसाफ ले आए, और बरकत दुनियां दीन॥४६॥

जब ग्यारहवीं सदी पूर्ण हो गयी, तो आखिरी मुहम्मद श्री प्राणनाथ जी ने ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम के ऊपर पूर्ण विश्वास दिलाया। जिबरील कुरआन की शक्ति, दीन, और दुनिया की बरकत (लाभ) हिन्दुस्तान में ले आया।

भावार्थ— वि.सं. १७४५ में ग्यारहवीं सदी पूर्ण हो गयी। उस समय श्री जी पन्ना जी में विराजमान थे। उस समय खिलवत, परिक्रमा, सागर, तथा श्रृंगार ग्रन्थ के अवतरण से सुन्दरसाथ की आत्मा जाग्रत हो गयी और परमधाम

के प्रति उनका विश्वास पूर्ण रूप से दृढ़ हो गया।

जिबरील द्वारा कुरआन के हिन्दुस्तान में लाने का भाव प्रत्यक्ष में ग्रन्थ रूपी कुरआन को लाना नहीं है, बल्कि कुरआन द्वारा एक अल्लाह तआला पर पूर्ण ईमान की जो शक्ति थी, वह अरब से उठकर भारतवर्ष में आ गयी। जहाँ अक्षरातीत के प्रति अटूट ईमान होता है, वहीं धर्म और संसार की भी उन्नति होती है। अब सारी शोभा भारतवर्ष की है।

ए तीनों उठाए दुनी से, जबराईल ले आया अपने मकान।

खड़ा किया झंडा दीन का, ल्याए लाखों खलक ईमान॥४७॥

कुरआन, दीन, और दुनिया की बरकत को जिबरील अरब से श्री पन्ना जी (हिन्दुस्तान) में ले आया और श्री निजानन्द सम्प्रदाय (दीन) के तारतम ज्ञान का नूरी

झण्डा खड़ा किया। तारतम ज्ञान के प्रकाश में लाखों लोग अक्षरातीत के चरणों में अटूट विश्वास ले आये।

वसीयत नामे साहेदी, आए लिखे बड़ी दरगाह।

सो मिलाए दिए कुरान से, महामत हुकम खुदाए॥४८॥

मक्का-मदीने से आने वाले वसीयतनामों में इस बात की पूरी साक्षी है कि जिबरील फरिश्ता कुरआन, दीन, और दुनिया की बरकत को आखरूल इमाम (श्री प्राणनाथ जी) के पास हिन्दुस्तान में ले गया है। अक्षरातीत धाम धनी के आदेश से श्री महामति जी ने आखरूल इमाम महदी तथा कियामत के जाहिर होने सम्बन्धी बातों का स्पष्टीकरण भी कुरआन से दे दिया।

प्रकरण ॥१०८॥ चौपाई ॥१६२१॥

राग श्री

मासूक मेरे रूह चाहे सिफत करूं, सो मैं जाए न कही।

जब देख्या बेवरा कर, तब तामें उरझ रही॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरे माशूक श्री राज जी! मेरी आत्मा आपकी महिमा का गायन करना चाहती है, लेकिन कह नहीं पा रही है। जब मैं आपकी मेहर और अनन्त महिमा का ब्योरा (विवरण) करती हूँ, तो उसमें उलझ जाती हूँ।

सब थें बड़ी मुझे करी, ऐसी और न दूजी कोए।

जो मेहेर करी मुझ ऊपर, सो सिफत जुबां क्यों होए॥२॥

मेरे धाम धनी! आपने सब सुन्दरसाथ में मुझे सबसे बड़ी शोभा दी। इतनी बड़ी शोभा और किसी को भी नहीं

दी है। आपने मेरे ऊपर इतनी बड़ी मेहर की है, जिसका वर्णन इस मुख से नहीं हो सकता।

किन विध मैं तुमको कहूँ, क्यों कर दिल धरूँ।

ले एहेसान तुमारे दिल में, मैं गुजरान क्यों करूँ॥३॥

आपकी अपार मेहर के बारे में मैं आपसे क्या कहूँ। न कहकर कैसे अपने दिल में सन्तोष रखूँ, अर्थात् यदि आपकी मेहर के विषय में मैं कुछ भी नहीं कहती हूँ तो मुझे सन्तोष नहीं होता। आपके एहसानों के विषय में जब मैं दिल में विचार करती हूँ, तो मैं सोचती हूँ कि मैं आप पर बलिहारी तो हो नहीं सकी, अब कैसे जीवन व्यतीत करूँ।

मैं चलते देखे मजहब, और सबके परमेश्वर।

सो सारे बीच फना मिने, नूर बका न काहू नजर॥४॥

मैंने इस दुनिया में प्रचलित अनेक मत-पन्थों तथा उनमें अलग-अलग मान्यताओं में घोषित परमात्मा के बारे में देखा-सुना। अन्त में यही निष्कर्ष निकला कि इन सभी मत-पन्थों का ज्ञान महाप्रलय में लय हो जाने वाले निराकार से आगे का नहीं है। अखण्ड अक्षर ब्रह्म की ओर किसी की भी दृष्टि नहीं गयी।

फना छोड़ इन परमेश्वरों, नूर बका न पाया किन।

तिन पर नूर बिलंद, सो किया तुम मेरा वतन॥५॥

महाप्रलय में लीन हो जाने वाले वैकुण्ठ-निराकार के परमेश्वरों को छोड़कर संसार के लोगों ने आज तक अक्षर ब्रह्म का ज्ञान नहीं पाया। अक्षर ब्रह्म से भी परे अक्षरातीत

का वह परमधाम है, जो मेरा घर है। यह बात आपने ही मुझे बतायी है।

भावार्थ- बेहद में अक्षर ब्रह्म तथा परमधाम में अक्षरातीत की लीला होती है। अक्षर ब्रह्म परमधाम के अन्दर अक्षर धाम में ही रहते हैं, लेकिन यहाँ अक्षर ब्रह्म को न जानने का संकेत अक्षर ब्रह्म के मूल स्वरूप से है। वर्तमान में अक्षरातीत एवं सखियों का मूल स्वरूप रंगमहल के अन्दर मूल-मिलावा में है, जिसका ज्ञान तारतम ज्ञान के बिना किसी को भी नहीं हो सकता।

खेल किया मेरे कारने, दुनियां चौदे तबक।

मेरे हाथ तिनकी हैयाती, भिस्त पाई मुतलक॥६॥

आपने चौदह लोकों की इस दुनिया का यह खेल मेरे लिये ही बनाया है। निश्चित रूप से आपने मेरे ही हाथों

इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्राणियों को अखण्ड मुक्ति भी दिलायी है।

खेल कर मोहे बैठाई माहें, मुझ पर भेज्या फुरमान।

माहें लिखी हकीकत मारफत, मुझ बिना न काहूं पेहेचान॥७॥

आपने माया का यह खेल बनाकर मेरी सुरता को इसमें उतारा। सभी को साक्षी दिलाने के लिये मेरे पास कुरआन और भागवत भेजा। इसमें हकीकत और मारफत का ज्ञान तो है, किन्तु मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी इसके भेदों को नहीं जानता।

कुंजी दई मुझको, और मेरै सिर खिताब।

सास्त्र चौदे तबक के, सब मैं ही खोलों किताब॥८॥

धाम धनी ने तारतम ज्ञान की कुञ्जी मुझे दी और चौदह

लोक में जो भी धर्मग्रन्थ हैं, उनके गुह्य रहस्यों को खोलने की शोभा मुझे दी। इस प्रकार धनी की मेहर से सभी ग्रन्थों के अनसुलझे रहस्यों को मैं ही उजागर करूँगी।

राह देखाऊं सबन को, ऐसो बल दियो खसम।

सब को फना से बचाए के, लगाए तुमारे कदम॥९॥

मेरे प्राणवल्लभ! आपने मुझे तारतम ज्ञान की ऐसी शक्ति दी है, जिससे मैं सभी को परमधाम की राह दिखाऊँगी। सभी को नश्वर वैकुण्ठ एवं निराकार के बन्धन से छुड़ाकर आपके चरणों में लगाऊँगी।

खेल बनाया मेरे वास्ते, मोहे भेज के आए आप।

पट खोल इलम समझाइया, मोसों नीके कियो मिलाप॥१०॥

आपने मेरे लिये ही इस खेल को बनाया। मुझे इस संसार में भेजकर स्वयं भी सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के धाम हृदय में पधारे। धर्मग्रन्थों के रहस्यों को स्पष्ट करके आपने मुझे निराकार से परे स्वलीला अद्वैत परमधाम का ज्ञान दिया। मेरी इच्छा पूर्ण करने के लिये आपने हब्शा में मुझे बहुत अच्छी तरह से दीदार भी दिया।

भावार्थ- यह प्रश्न होता है कि इश्क -रब्द तो श्री राजश्यामा जी एवं सब सुन्दरसाथ के बीच हुआ था, किन्तु श्री महामति जी बारम्बार यह क्यों कह रही हैं कि यह खेल मेरे कारण ही बना है, जबकि वाणी में अन्यत्र कहा है- "ए खेल हुआ महंमद वास्ते, महंमद आया वास्ते रुहन" अर्थात् यह खेल श्यामा जी के वास्ते बनाया गया है। इस प्रकार का विरोधाभास क्यों?

वस्तुतः प्रेम और विरह की अभिव्यक्ति सामूहिक न

होकर व्यक्तिपरक होती है। परमधाम तो वाहिदत की भूमिका है, वहाँ एक या अनेक की समस्या नहीं है। कालमाया के इस ब्रह्माण्ड में विरह और प्रेम के क्षेत्र में दावे (हुज्रत) से इसी प्रकार व्यक्तिपरक अभिव्यक्ति की जाती है।

बका न चौदे तबक में, न पाया त्रैलोकी त्रैगुन।

सेहेरग से नजीक देखाइया, ऐसा इत इलमें किया रोसन॥११॥

चौदह लोक में कहीं भी अखण्ड स्थान नहीं है। चौदह (तीनों) लोक में आज तक किसी भी प्राणी, या ब्रह्मा, विष्णु, शिव तक ने उस परमधाम का ज्ञान नहीं पाया। धाम धनी ने तारतम ज्ञान का ऐसा प्रकाश किया है, जिससे यह अनुभव होता है कि वह परमधाम तो शाहरग (प्राणनली) से भी अधिक नजदीक है।

ऐसा बेसक चौदे तबक में, कोई न हुआ कबूं कित।

इन नुकते सब बेसक हुए, ऐसी बेसकी आई इत॥१२॥

परब्रह्म के धाम, स्वरूप, तथा लीला सम्बन्धी ज्ञान के क्षेत्र में आज दिन तक चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में कहीं भी कोई भी व्यक्ति बेशक नहीं हो सका। धनी के हृदय में स्थित इल्म के सागर से निकली एक बूँद रूपी तारतम वाणी ने सभी को बेशक कर दिया। परब्रह्म के सम्बन्ध में सभी के हृदय में बेशकी आ गयी।

ए भी बड़ाई मुझ को दर्ई, जो सबों देख्या नूर पार।

सबों सेहेरग से नजीक, कुंजिएं देखाया निरधार॥१३॥

तारतम ज्ञान के प्रकाश में, सभी ने अक्षर से भी परे उस अक्षरातीत को शाहरग से भी अधिक नजदीकी में अनुभव किया। धाम धनी ने सबको इस स्थिति में

पहुँचाने की शोभा भी मुझे ही दी।

ए दिल की बातें कासों कहूँ, रूह की जानो सब।

बोलन की कछू न रही, जो कहो सो करुँ मैं अब॥१४॥

हे मेरे धनी! अब मैं अपने दिल की बातें किससे कहूँ।
आप मेरी अन्तरात्मा की सब बातें जानते ही हैं। अब तो
आपसे कुछ भी कहने की कोई आवश्यकता ही नहीं है।
अब आप मुझसे जो कुछ भी कहेंगे, मैं वही करूँगी।

मोहे करी सबों ऊपर, ऐसी ना करी दूजी कोए।

अजूँ रूह मांग्या चाहे, ए तुम कैसी बनाई सोए॥१५॥

आपने ब्रह्मसृष्टियों में मुझे सबसे अधिक शोभा दी। आज
दिन तक किसी भी आत्मा को ऐसी शोभा नहीं मिली है।
न जाने, आपकी यह कैसी लीला है, जिसमें मेरी आत्मा

आपसे कुछ माँगना चाहती है।

भावार्थ- ब्रज, रास, और अरब में अक्षर ब्रह्म की आत्मा के साथ धनी ने लीला की। श्री देवचन्द्र जी के तन में श्यामा जी के अन्दर लीला की और वर्तमान में श्री इन्द्रावती जी के अन्दर लीला कर रहे हैं। ब्रज का ब्रह्माण्ड पूरी नींद का था। रास का ब्रह्माण्ड कुछ नींद तथा कुछ जाग्रति का था। अरब वाला स्वरूप दूज का चन्द्रमा, सदगुरु धनी श्री देवचन्द्र जी का स्वरूप पूर्णमासी का चन्द्रमा, तथा श्री प्राणनाथ जी का स्वरूप दोपहर का सूरज है। कलश हिन्दुस्तानी के शब्दों में-

एक सुख सुपन के, दूजे जागते ज्यों होए।

तीन लीला पेहेली ए चौथी, फरक एता इन दोए॥

एक सुख स्वप्न का होता है, जो यथार्थ में नहीं होता। दूसरा जाग्रति का होता है, जो वास्तव में सच होता है।

इसी प्रकार ब्रज, रास, तथा श्री देवचन्द्र जी के तन से होने वाली लीला स्वप्न के समान है, तथा श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप से होने वाली जागनी लीला प्रत्यक्ष सुखों की है।

मन में यह संशय हो सकता है कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने तो साक्षात् यमुना जी की जलधारा प्रवाहित कर दी थी जिसमें सुन्दरसाथ ने स्नान भी किया था, तथा साक्षात् श्री राज जी श्री कृष्ण जी के रूप में प्रकट होकर लीला करते थे, ऐसी स्थिति में इस लीला को स्वप्न के समान कहना निराधार है?

इस सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि "ब्रज रास और धाम की, पर जागनी की सुध नांहे।" निःसन्देह सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के तन से आड़ीका लीलाएँ हुईं, लेकिन उससे कोई जाग्रत नहीं हो सका। जिन

३१३ आत्माओं ने तारतम ज्ञान ग्रहण किया था, वे भी पुनः सो गयीं। खिलवत, परिक्रमा, सागर, तथा श्रृंगार के अवतरित हुए बिना किसी की भी आत्मा के जाग्रत होने की बात सम्भव ही नहीं थी। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने जागनी करनी चाही, लेकिन वाणी के अवतरित न होने से जागनी का सुख किसी को नहीं मिल सका—

सो लछ ल्याए अव्वल को रुह अल्ला, पर न था आखिरी इलम पूरन।
स्पष्ट है कि युगल स्वरूप को दिल में बसाये बिना जागनी का दावा अधूरा है। जागनी की वास्तविक लीला वि.सं. १७३५ के पश्चात् ही प्रारम्भ होती है।

बैठाई आप जैसी कर, सो खोल देखाई नजर।

अजूं मांगत मेरे धनी, और ऐसे तुम कादर॥१६॥

मेरे अक्षरातीत धनी! आपने इस संसार में भी मुझे अपने

जैसा ही (अक्षरातीत) बना दिया और मेरी आत्मिक दृष्टि को खोलकर अपनी लीला की सारी पहचान करा दी। इतना होने पर भी मैं आपसे माँग ही रही हूँ और आप भी देने में हर प्रकार से समर्थ हैं।

जो तुम बड़े करे खेल में, ताकी दुनी करे सिफत।

सो बड़े गिरो के पाउं की, खाक भी न पावत॥१७॥

आपने इस माया के खेल में ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव को बहुत बड़ा बनाया है। संसार के लोग भी उनकी महिमा गाते हैं, लेकिन ये तीनों देवता ब्रह्मसृष्टियों की चरण – धूलि भी नहीं प्राप्त कर पाते।

द्रष्टव्य— विनम्रता ही महानता का विज्ञापन है। सुन्दरसाथ की गरिमा तो सर्वोपरि है, किन्तु त्रिदेवों को कटु वचन के शब्द बोलना या उन्हें तुच्छ समझना

उनकी महान गरिमा के प्रतिकूल है।

तिन गिरो में सिरदारी, तें मुझे दर्ई मेरे खसम।

ऐसी बड़ी करी मोहे खेल में, अब इत उरझ रह्या मेरा दम॥१८॥

मेरे प्रियतम! आपने मुझे उन ब्रह्मसृष्टियों में भी अग्रणी बना दिया। आपने इस माया के खेल में मुझे इतनी बड़ी शोभा दे दी है कि मेरा जीव इसमें उलझा जा रहा है।

दुनी सिफत पोहोंचे मलकूत लो, सो फरिस्ते खाक भी पावत नाहें।

तिन गिरो में बुजरक, मोहे ऐसी करी खेल माहें॥१९॥

इस झूठे संसार के लोग वैकुण्ठ के देवी-देवताओं की महिमा गाते हैं और वे देवगण ब्रह्मसृष्टियों की चरण-रज भी नहीं पाते। आपने मुझे इन ब्रह्मसृष्टियों में भी सर्वोपरि बना दिया।

मैं भटकी बीच दुनी के, घर घर मांगी भीख।

लौकिक दर्ई मोहे साहेबी, अंतर में अपनी सरीख॥२०॥

मैं ब्रह्मसृष्टियों को जगाने के लिये संसार में भटकती रही। घर-घर से मिली हुई भिक्षा को मैंने अपने भोजन का आधार बनाया। इसके विपरीत आपने बातूनी रूप में मुझे अक्षरातीत की शोभा दे दी तथा अपने समान बना लिया।

भावार्थ- मन्दसौर में सब सुन्दरसाथ सहित श्री जी को लगभग आठ माह तक भिक्षा में मिला हुआ भोजन ही करना पड़ा। इसके अतिरिक्त औरंगाबाद से रामनगर की राह में भी भिक्षा का सहारा लेना पड़ा। श्री मिहिरराज जी के तन में विराजमान अक्षरातीत को किसी-किसी ने ही पहचाना।

नर नारी बूढ़ा बालक, जिन इलम लिया मेरा बूझ।

तिन साहेब कर पूजिया, अर्स का एही गुझ॥२१॥

चाहे कोई स्त्री हो या पुरुष, बालक हो या वृद्ध, जिसने भी मेरी इस श्रीमुखवाणी को समझ लिया, उसने मुझे अक्षरातीत का ही स्वरूप मानकर पूजा की है। यह परमधाम की गोपनीय बात है, अर्थात् परमधाम में श्री राज जी अपने नूरी स्वरूप से विराजमान हैं, तो मेरे इस पञ्चभौतिक तन में अपने आवेश स्वरूप से विराजमान हैं।

जब हकें मोहे इलम दिया, तब मोसों कही निसबत।

सो निसबत बका हक की, ताकी होए ना इत सिफत॥२२॥

जब धाम धनी ने मेरे तन से ब्रह्मवाणी का अवतरण किया, तब मुझे निस्बत की वास्तविक पहचान दी। धनी से मेरा मूल सम्बन्ध (निस्बत) परमधाम का ही है,

जिसकी महिमा इस दुनिया के शब्दों से नहीं हो सकती।

जिन बंदगी मेरी करी, लिया निसबत हिस्सा तिन।

पाउं खाक मांगी बुजरकों, ए सोई फकीर मोमिन॥२३॥

जिन्होंने मुझे अक्षरातीत का स्वरूप माना और मेरी प्रेमपूर्वक भक्ति (बन्दगी) की, उन्होंने भी श्री राज जी से अपनी निस्बत जोड़ी अर्थात् उनका भी सम्बन्ध धनी के चरणों से हो गया। इस संसार में ब्रह्ममुनि कहे जाने वाले ये फकीर वही हैं, जिनकी चरण-रज पाने की इच्छा त्रिदेवों को भी रही है।

भावार्थ- ब्रज के स्वरूप पर समर्पित होने वाले जीव पाँचवी बहिश्त, रास के स्वरूप पर प्रेम भाव रखने वाले चौथी बहिश्त, तथा अरब के स्वरूप पर अपना सर्वस्व न्योछावर करने वाले जीव यदि तीसरी बहिश्त के

अधिकारी बनते हैं, तो श्री प्राणनाथ जी को अक्षरातीत का स्वरूप मानकर रिझाने वाले जीव सत्स्वरूप की पहली बहिश्त के अधिकारी होंगे। इस पहली बहिश्त में परमधाम की प्रेममयी लीला की झलक मिला करेगी। कलस हिन्दुस्तानी में धनी ने स्वयं कहा है—

जिन जीवें संग किया, ताको करुं न मेला भंग।

रंगे रमाडूं वासना, वासना सत को अंग॥

अर्थात् जो मेरे आवेश स्वरूप (श्री जी का स्वरूप) या मूल स्वरूप की सान्निध्यता (नजदीकी पना) को प्रेम, सेवा, और समर्पण द्वारा प्राप्त करेगा, उस जीव को भी मैं अपनी छत्रछाया से अलग नहीं करूँगा। उसको भी ब्रह्मसृष्टियों को मिलने वाले आत्मिक आनन्द का कुछ हिस्सा अवश्य प्राप्त होगा।

ए बुध ना चौदे तबक में, सो अपनी दर्ई अकल।

समझी सब मैं अर्स की, जो सिफत तेरी असल॥२४॥

हे धनी! आपने मुझे अपनी वह निज बुद्धि दी, जो चौदह लोकों में भी नहीं है। उसके द्वारा ही मैंने आपकी परमधाम की उस वास्तविक महिमा को समझा, अर्थात् आपकी वाहिदत, खिलवत, निस्बत आदि की हकीकत एवं मारिफत के भेदों को समझा।

मैं बातून तुमारी समझी, तुम अपना दिया इलम।

अब इत केहेना कछू ना रह्या, होसी अर्स में आगूं खसम॥२५॥

आपने मुझे अपना इल्म दिया, जिससे मैं आपके दिल के बातूनी (गुझ) भेदों को समझ गयी। अब इस संसार में मुझे आपसे कुछ भी नहीं कहना है। जो कुछ भी कहना है, वह परमधाम में ही कहूँगी।

ऐसी बड़ाई केती कहूं, जो करी अलेखे अपार।

सो नेक कही मैं गिरो समझने, समझेगी रूह सिरदार॥२६॥

आपने मेरे ऊपर जो अनन्त मेहर की है, उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता, मैं उसे कहाँ तक कहूँ। ब्रह्मसृष्टियों के समझने के लिये मैंने थोड़ा सा कह दिया है। ब्रह्ममुनियों में भी जो अग्रणी होंगे, वे ही इस बात को समझ सकते हैं।

महामत कहे मेहेबूब जी, मोहे खेल देखाया बुजरक।

करो मीठी बातें मुझसों, मेरे मीठे खसम हक॥२७॥

श्री महामति जी कहते हैं कि माधुर्यता के अनन्त सागर! मेरे प्राणवल्लभ! आपने मुझे बहुत बड़ा रहस्यमयी खेल दिखाया है। मेरी यही इच्छा है कि आप मुझसे हमेशा ही प्रेम भरी मीठी बातें करते रहिए।

प्रकरण ॥१०९॥ चौपाई ॥१६४८॥

राग श्री

यह प्रकरण उदयपुर से मन्दसौर जाते समय रास्ते में उस समय उतरा, जब सब सुन्दरसाथ सहित श्री बाई जी एवं श्री जी ने भी वैरागी वेश धारण कर लिया था। सच्चा वैराग्य वही है, जिसमें सांसारिक सुखों का मोह समाप्त हो जाये और केवल प्रियतम परब्रह्म के प्रेम में आत्मा डूबी रही। धनी के प्रति सच्चे प्रेम को ही इस प्रकरण में "कारी कामरी" अर्थात् काले रंग वाली कम्बली के दृष्टान्त से वर्णित किया गया है।

कारी कामरी रे, मोको प्यारी लागी तूं।

सब सिनगार को सोभा देवै, मेरा दिल बांध्या तुझ सों॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे प्रेम रूपी काली कम्बली! तू मुझे बहुत प्यारी लगती है। ज्ञान, वैराग्य,

श्रद्धा, समर्पण, सेवा, सन्तोष आदि गुणों से आत्मा का श्रृंगार होता है, किन्तु इन सबकी शोभा तुमसे ही है, अर्थात् यदि हृदय में प्रेम नहीं तो इन सभी गुणों की शोभा महत्वहीन हो जाती है। मेरा दिल तो तुझसे ही बँध गया है।

तू नाम निरगुन कहावहीं, सब सरगुन के सिरे।

सब नंग मोती तेरे तले, कोई नाहीं तुझ परे॥२॥

तुम्हारा नाम निर्गुण है। तू सभी सगुण पदार्थों से परे है। सभी नगों और मोतियों की शोभा भी तुझसे छोटी है। तुझसे श्रेष्ठ कोई भी नग नहीं है।

भावार्थ— इस कार्य जगत के सभी पदार्थ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध आदि गुणों से युक्त हैं। यह शरीर भी इन पाँचों गुणों से युक्त है, किन्तु प्रेम का वास्तविक

स्वरूप इस सगुण शरीर या पञ्चभूतात्मक ब्रह्माण्ड से परे विशुद्ध निर्गुण एवं त्रिगुणातीत है। वस्तुतः प्रेम शरीर का नहीं, बल्कि आत्मा का विषय है। शील, सन्तोष, क्षमा, दया, विद्या, विवेक आदि गुण रूपी नगों और मोतियों से आत्मा, जीव, और हृदय का श्रृंगार तो होता है, किन्तु प्रेम की शोभा इन सबसे ऊपर है। प्रेम की तुलना में ब्रह्माण्ड की कोई भी वस्तु नहीं ठहरती।

कामरी पेहेरी बृजवधू, और सुंदरवर स्याम।

भी पेहेरी महंमद ने, और पेहेरी इमाम॥३॥

ब्रज लीला में इस प्रेम रूपी काली कम्बली को गोपियों ने और श्री कृष्ण जी ने धारण किया। मुहम्मद साहिब और इमाम महदी ने भी इस काली कम्बली को धारण किया।

भावार्थ- यद्यपि जनसामान्य में "श्याम सुन्दर" या "श्याम" शब्द का प्रयोग श्री कृष्ण जी के लिये होता है, किन्तु श्रीमुखवाणी में जागनी ब्रह्माण्ड के लिये इन शब्दों का प्रयोग श्री राज जी के लिये ही होता है, जैसे-

श्री स्याम सुन्दरवर छोड़ के, संसार सो कियो सनेह।

प्रकास हिंदुस्तानी २२/९

सतगुर मेरा स्याम जी।

किरंतन ५२/९

कृपा निध सुन्दर वर स्यामा, भले भले सुन्दरवर स्याम॥

किरंतन ५७/९

"श्याम" शब्द सौन्दर्य बोधक होता है। इसी आधार पर सीता जी को भी "श्यामा" शब्द से सम्बोधित किया जाता है। वाल्मीकिय रामायण में हनुमान जी द्वारा स्पष्ट कहा गया है- "सा श्यामा ध्रुवमेव आगमिष्यति।"

अपने-अपने प्रसंग के अनुकूल कहीं पर "सुन्दरवर

श्याम" का अर्थ श्री कृष्ण, तो कहीं पर श्री राज होगा। जागनी ब्रह्माण्ड के प्रसंग में हर जगह "श्याम" या "सुन्दरवर श्याम" का अर्थ श्री राज जी ही होगा, किन्तु ब्रज और रास के प्रसंग में इसका अर्थ श्री कृष्ण किया जाता है, जैसे—

इत खेलत स्याम गोपियां, ए जो किया अर्स रूहों विलास।

सनंध ३८/१३

स्यामा जी स्याम के संग, जुवती अति जोर जंग।

किरंतन १२३/१

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि "श्यामा-श्याम" आदि शब्दों का प्रयोग प्रसंग, लीला, और आवेश के आधार पर किया जाता है। इसमें संकुचित विचारों का कोई स्थान नहीं।

मोल नहीं इन कामरी को, याको ले न सके कोए।

मोमिन कहे सो लेवहीं, जो रूह अर्स की होए॥४॥

यह काली कम्बली अनमोल है। इस ब्रह्माण्ड में इसको खरीदने का सामर्थ्य किसी में भी नहीं है। एकमात्र परमधाम की ब्रह्मसृष्टि ही इस प्रेम रूपी कम्बली को खरीद सकती है।

भावार्थ- प्रेम त्रिगुणातीत होता है। सत्व, रज, और तम के बन्धन में फँसे हुए प्राणी प्रेम रूपी इस काली कम्बली को नहीं अपना पाते। प्रेम के त्रिगुणातीत मार्ग पर तो मात्र परमधाम की ब्रह्मसृष्टि ही चल पाती है।

गोवरधन को ढांपिया, एक बूंद न हुआ दखल।

आग लोहा पानी प्रले के, सोस लिया सब जल॥५॥

व्रज की प्रेममयी लीला में श्री राज जी ने इन्द्र के कोप

से ब्रज की रक्षा के लिये गोवर्धन पर्वत को अपनी अँगुली पर उठा लिया। प्रलयकालीन विद्युत और मूसलाधार वर्षा के जल को गोवर्धन पर्वत ने ही सोख लिया। ब्रज में जल की एक बूँद भी प्रवेश नहीं कर सकी।

द्रष्टव्य— पौराणिक मान्यता है कि धाम धनी के आदेश से गोवर्धन पर्वत के ऊपर विष्णु भगवान का सुदर्शन चक्र घूम रहा था, जिसके तेज से सम्पूर्ण जल सूख जाता था।

अहीर किए धन धन, और आरब कुरेंस।

मारु भी धन धन हुए, है सोई हमारा भेस॥६॥

ब्रज में अक्षरातीत प्रेम का स्वरूप लेकर यदुवंश में प्रकट हुए और उन्होंने यदुवंशियों को धन्य-धन्य कर दिया। इसके पश्चात्, रास लीला करके, वही स्वरूप अरब के कुरेश घराने में मुहम्मद मुस्तफा के स्वरूप में

उजागर हुआ, जिससे कुरेश घराना भी धन्य-धन्य हो गया। मारवाड़ के उमरकोट ग्राम में मत्तू मेहता के सुपुत्र श्री देवचन्द्र जी के तन में श्यामा जी की आत्मा आयी, जिसमें धनी ने लीला की। इस प्रकार मारवाड़ की धरती भी धन्य-धन्य हो गयी। श्री महामति जी कहते हैं कि प्रेम ही हमारी वेश-भूषा है।

रूह अल्ला पेहेरी अन्दर, हुई नहीं जाहेर।

दुनियां हिरदे अंधली, सो देखे नजर बाहेर॥७॥

श्री श्यामा जी ने इस प्रेम रूपी काली कम्बली को आन्तरिक रूप से धारण किया, लेकिन यह बात जाहिर नहीं हो सकी (प्रकाश में न आ सकी)। संसार के लोगों की दृष्टि बहिर्मुखी होती है। आत्मिक दृष्टि न होने के कारण वे अन्धे होते हैं।

भावार्थ- सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र ने श्याम जी के मन्दिर में दर्शन होने से पूर्व कर्मकाण्ड (शरीयत), उपासना (तरीकत), एवं प्रेम मार्ग भी अपनाया, किन्तु संसार के लोगों ने केवल उनके कर्मकाण्ड और उपासना मार्ग को ही देखा, जैसे- अपने हाथों से भोग तैयार करना, बर्तन धोना, दूसरों की परछाई से भोग को बचाना, नियमपूर्वक कथा श्रवण, जप, तप, साधना इत्यादि। इन सभी क्रियाओं के साथ ही वे एकान्त में भाव-विह्वल होकर किस प्रकार अपने प्रियतम का ध्यान करते हैं, यह बहुतों ने नहीं जाना। इसलिये इस चौपाई में यह बात कही गयी है कि श्यामा जी ने अपने पहले जामें में प्रेम रूपी काली कम्बली को अन्दर से पहना, जिसके कारण वह छिपी रही। आपके दूसरे जामे में प्रेम की वह कम्बली पूर्ण रूप से जाहिर हो गयी, जब हब्शा में श्री इन्द्रावती जी ने

विरह के आँसुओं से धनी को दीदार देने के लिये विवश कर दिया।

पट पेहेर खाए चीकना, हेंम जवेर सिनगार।

हक लज्जत आई मोमिनोँ, तिन दुनी करी मुरदार॥८॥

संसार के लोगों को अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनना, घी से बने हुए स्वादिष्ट व्यञ्जनों का सेवन करना, तथा स्वर्ण और ज्वाहरातों से अपने शरीर को सजाना अच्छा लगता है। इनसे विपरीत ब्रह्मसृष्टियों को प्रियतम के प्रेम में ही आनन्द आता है। उन्होंने संसार को सारहीन (मुर्दा) समझकर छोड़ दिया होता है।

सोहाग दिया साहेब ने, कामरी सोहागिन।

आगूं बोले बुजरक, सराही साधू जन॥९॥

धाम धनी अक्षरातीत ने सुहागिन कही जाने वाली ब्रह्मसृष्टियों को प्रेम रूपी काली कम्बली सुहाग के चिह्न के रूप में दी है। इस जागनी लीला से पहले भी बड़े-बड़े ज्ञानी एवं साधू-सन्तों ने इस प्रेम रूपी काली कम्बली की महिमा गायी है।

भावार्थ- ब्रह्ममुनियों के सुहाग के चिह्न रूप में कण्ठी - तिलक की बात मात्र कर्मकाण्ड है और वेदों में इसका कहीं भी उल्लेख नहीं है। धनी के प्रति एकनिष्ठ प्रेम ही उनका सुहाग-चिह्न है, जिसकी महिमा सृष्टि के प्रारम्भ से ही मनीषीजन गाते रहे हैं। जिस प्रकार काले रंग पर कोई भी रंग नहीं चढ़ता, उसी प्रकार प्रेम रूपी काली कम्बली को ओढ़ लेने पर माया का रंग नहीं चढ़ सकता।

हमारे ताले मिने, लिखे अल्ला कलाम।

महामत कहे सब दुनी को, प्यारी होसी तमाम॥१०॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हम सुन्दरसाथ के भाग्य में प्रियतम अक्षरातीत की वाणी है, जो सबको जगाने के लिये आयी है। इस ब्रह्मवाणी के प्रकाश में सारी दुनिया के लोगों को यह प्रेम रूपी कम्बली बहुत प्यारी लगेगी, अर्थात् ब्रह्मवाणी को आत्मसात् करने वाला प्रत्येक व्यक्ति प्रेम की राह अवश्य अपनायेगा।

प्रकरण ॥११०॥ चौपाई ॥१६५८॥

राग श्री

इस प्रकरण में आत्म-जाग्रति के लिये प्रेरित किया गया है।

फरेबी लिए जाए, मेरी रूह तू आँखें खोल।

बीच बका के बैठके, तें किनसों किया कौल॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा ! अब तू सावधान हो जा। अब तक तू इस झूठी माया (फरेब) में फँसी रही है। अखण्ड परमधाम में अपने धनी के सम्मुख तूने माया में न फँसने के लिये जो वायदा किया था, क्या वह तुझे याद नहीं है?

अर्स की खिलवत में, हक की वाहेदत।

बैठ के बातें जो करी, सो कहां गई मारफत॥२॥

परमधाम के अन्दर मूल मिलावा में, धनी की वाहिदत के स्वरूप ब्रह्मसृष्टियों के सामने, अपने धनी से जो तुमने उनकी पहचान (मारिफत) से सम्बन्धित बातें की थीं, वह कहाँ चली गयीं? क्या तुम उन्हें भूल गयी हो?

भावार्थ— आशिक का दिल ही वह खिलवत है, जिसमें माशूक की शोभा बसी होती है। परमधाम में सभी एक-दूसरे के आशिक हैं। इस प्रकार सबका दिल ही बातूनी रूप में खिलवत है। श्यामा जी को केवल बाह्य रूप से ही खिलवत का स्वरूप माना जाता है, किन्तु यदि आन्तरिक दृष्टि से देखा जाये तो सखियाँ, खूब खुशालियाँ, पशु-पक्षी, सभी धनी को रिझाते हैं, इसलिये इन सभी का दिल खिलवत है। इसे केवल मूल मिलावे की परिधि में ही नहीं बाँधा जा सकता।

इसी प्रकार रूहें वाहिदत का स्वरूप अवश्य हैं, किन्तु

बातूनी रूप से परमधाम का कण-कण वाहिदत का स्वरूप है, जिसमें श्यामा जी सहित सखियाँ, महालक्ष्मी, खूब खुशालियाँ, पशु-पक्षी, सभी आ जायेंगे। इस प्रकार खिलवत और वाहिदत दोनों ही एक-दूसरे में ओत-प्रोत हैं। इन दोनों की मारिफत अक्षरातीत का दिल है।

इश्क रब्द के समय सखियों ने श्री राज जी से कहा था- "हे धनी! यदि आप सौ बार भी परीक्षा करके देखिए तो भी हम आपको नहीं भूलेंगी, क्योंकि हम आपकी अंग स्वरूपा हैं।" उस स्वलीला अद्वैत परमधाम में सभी एक स्वरूप हैं। अक्षरातीत का दिल ही मारिफत का वह स्वरूप है, जिसकी हकीकत का प्रकट स्वरूप परमधाम के २५ पक्ष, अक्षर ब्रह्म, श्यामा जी, सखियाँ, और महालक्ष्मी आदि हैं। इश्क रब्द के समय सखियाँ इन्हीं तथ्यों की तरफ संकेत कर रही थीं, इसलिये इस

चौपाई में कहा गया है कि मारिफत की वे बातें कहाँ चली गईं, जो तुम माया में भूल गई हो।

हकें कह्या रूहन को, जिन तुम जाओ भूल।

इस्क ईमान ल्याइयो, मैं भेजोंगा रसूल॥३॥

श्री राज जी ने आत्माओं से कहा कि तुम माया में जाकर मुझे भूल मत जाना। मेरे प्रति इश्क और ईमान बनाए रखना। तुम्हें साक्षी देने के लिए मैं रसूल (मुहम्मद साहिब) को भेजूँगा।

उतरते अरवाहों सों, कह्या अलस्तो बे-रब-कुंम।

मैं लिखूंगा रमूजें, सो जिन भूलो तुम॥४॥

परमधाम से माया के खेल में आते समय श्री राज जी ने सखियों से पूछा था कि क्या मैं तुम्हारा खावन्द नहीं हूँ?

रुहों द्वारा यह कहने पर कि आपके अतिरिक्त हमारा अन्य कोई भी प्रियतम है ही नहीं, श्री राज जी ने उनसे कहा कि तुम मुझे भूल नहीं जाना। मैं तुम्हें साक्षियाँ देने के लिये संकेतों में सारी बातें लिखवाकर भेजूँगा।

साहेद किए हैं सब को, जेती अर्स अरवाहें।

आप भी हुए साहेद, अपनी आप जुबाँए॥५॥

परमधाम की जो भी आत्मायें हैं, उन सबको मैंने साक्षी बनाया है तथा मैं स्वयं अपनी वाणी (जबान, कथन) से भी साक्षी हूँ।

मैं भेजी रुह अपनी, सब दिल की बातें ले।

तुमें अजूं याद न आवहीं, हाए हाए कैसी फरेबी ए॥६॥

मैंने अपने दिल की सभी बातों को श्यामा जी के माध्यम

से तुम्हारे पास भेजा है। हाय! हाय! माया का यह कैसा बल है कि तुम्हें आज भी उसकी (इश्क-रब्द और परमधाम की) जरा भी याद नहीं है।

सब बातें मेरे दिल की, और सब रूहों के दिल।

सो सब भेजी तुम को, जो करियां आपन मिल॥७॥

हम सबने इश्क रब्द के समय आपस में जो बातें की थीं, वह सब श्यामा जी द्वारा तुम्हारे पास भेज दी हैं। उसमें मेरे दिल की भी सारी बातें हैं तथा तुम्हारे दिल की भी सारी बातें हैं।

भावार्थ- कुरआन में विशेष रूप से शरीयत और तरीकत का ज्ञान है। हकीकत की बात कहीं-कहीं पर ही है, इसलिये कुरआन में इश्क रब्द का सम्पूर्ण प्रसंग विस्तारपूर्वक होना सम्भव नहीं है। श्रीमुखवाणी को

श्यामा जी की रसना कहा जाता है। इश्क रब्द का विस्तारपूर्वक वर्णन खिलवत ग्रन्थ में है और इसका प्रारम्भ खुलासा ग्रन्थ के अन्तिम प्रकरण से होता है। इस प्रकार धाम धनी ने श्यामा जी के दूसरे जामें (श्री इन्द्रावती जी के तन) से जो ब्रह्मवाणी उतरवायी है, यह उसी प्रसंग में घटित होता है।

फुरमान ल्याए महंमद, किन खोली न इसारत।

तब रूहें आई न थी, तो पीछे फेर करी सरत॥८॥

मुहम्मद साहिब कुरआन लेकर आये, लेकिन उसमें छिपे हुए रहस्यों को किसी ने भी नहीं खोला। उस समय परमधाम की आत्मायें अवतरित नहीं हुई थीं, इसलिये मुहम्मद साहिब ने यह वायदा किया कि कियामत के समय मैं इमाम महदी के साथ पुनः आऊँगा तथा

कुरआन के गुह्य भेद भी उसी समय खुलेंगे।

कहे महंमद मसी आवसी, ले कुंजी लाहूत से।

एक दीन सब करसी, सब कायम होसी कुंजिए॥९॥

मुहम्मद साहिब ने यह बात कही कि श्यामा जी परमधाम से तारतम लेकर आयेंगे। वे दूसरे जामे में इस तारतम ज्ञान से सभी मतों का एकीकरण करेंगे और सारी दुनिया एक परब्रह्म की पहचान करके अखण्ड मुक्ति को प्राप्त होगी।

बका ऊपर बंदगी, करावसी इमाम।

हक गिरो हम आए के, करें कजा तमाम॥१०॥

इमाम महदी सभी को अखण्ड परमधाम की बन्दगी (ध्यान) करायेंगे। उस समय ब्रह्मसृष्टियों तथा खुदा के

स्वरूप इमाम महदी के साथ मैं भी रहूँगा, और इमाम महदी सारे संसार का न्याय करेंगे।

आगूं आए जाहेर किया, आवने को ईमान।

खासी गिरो के वास्ते, कई कहे निसान॥११॥

सबको श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप पर ईमान लाने के लिये ही मुहम्मद साहिब ने ११०० वर्ष पहले सारी बातें बता दी थीं। ब्रह्मसृष्टियों के लिये कई बातें संकेतों में कहीं।

ए बातें सब अर्स की, जब याद आवे तुम।

तब इस्क तुमें आवसी, उड़ जासी तिलसम॥१२॥

धाम धनी कहते हैं कि जब परमधाम की ये सारी बातें तुम्हें याद आयेंगी, तो तुम्हारे हृदय में स्थित माया का

अन्धकार दूर हो जायेगा तथा मेरे प्रति इश्क आ जायेगा।

कौन है तेरा मासूक, किनसों है निसबत।

देख अपना वतन, अब तू आई कित॥१३॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा! अब तू इस बात पर विचार कर कि तेरा माशूक (प्रियतम) कौन है? किससे तुम्हारी अखण्ड निस्बत (सम्बन्ध) है? अब तुम अपने उस मूल घर को देखकर यह सोचो कि वहाँ से तुम इस जगत में किसलिये आयी हो?

हकें रूहों को दर्ई, अपनी जो न्यामत।

इन नासूतें भुलाए दर्ई, हक की हकीकत॥१४॥

श्री राज जी ने परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों को अपनी न्यामत (बख्शीश) के रूप में परमधाम की वाणी दी,

किन्तु इस मृत्युलोक की माया ही ऐसी है जिसने सुन्दरसाथ को श्री राज जी की हकीकत, अर्थात् श्यामा जी, सखियाँ, २५ पक्ष, और अष्ट प्रहर की लीला, भी भुलवा दी।

मूल मिलावा खिलवत का, अजूं न आवे याद।

ए झूठी जिमी जो दोजख, इत कहा लग्यो तोहे स्वाद॥१५॥

हे मेरी आत्मा! यह झूठी दुनिया नरक के समान कष्टकारी है। इस मायावी संसार में तुझे कैसा आनन्द मिल रहा है कि तुम्हें मूल मिलावा खिलवतखाने की अब याद ही नहीं आती।

भावार्थ— वस्तुतः सुन्दरसाथ को सिखापन देने के लिये ही इस प्रकार का कथन है। यह चौपाई श्री महामति जी के ऊपर कदापि घटित नहीं होगी।

मासूकें इत आए के, कैसा दिया इलम।

सक तोहे कोई ना रही, अजूं याद न आवे खसम॥१६॥

हे मेरी आत्मा! धाम धनी ने इस संसार में आकर हमें ऐसी ब्रह्मवाणी दी है, जिससे तुम्हारे मन में किसी भी प्रकार का संशय नहीं रह गया है। फिर भी, माया का ऐसा प्रभाव है कि अब तुम्हें प्रियतम की याद ही नहीं आती।

महामत कहें ए मोमिनों, ऐसी क्यों चाहिए रूहन।

ए मेहेर देखो मेहेबूब की, अर्स जिनों वतन॥१७॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी! अपने प्रियतम अक्षरातीत की अनन्त मेहर को पहचानिए। जिन ब्रह्मसृष्टियों का मूल घर परमधाम है, उन्हें माया में लिप्त होकर अपने धनी को पीठ नहीं देनी चाहिए।

प्रकरण ॥१११॥ चौपाई ॥१६७५॥

राग सिंधुड़ा

प्रकरण १११-११७ तक के कीर्तन श्री ५ पद्मावतीपुरी धाम में उतरे हैं। इसमें श्री राज जी की शोभा के वर्णन के साथ-साथ मारिफत के ज्ञान की चर्चा की गयी है।

सरूप सुन्दर सनकूल सकोमल, रूह देख नैना खोल नूर जमाल।

फेर फेर मेहेबूब आवत हिरदे, किया किनने तेरा कौल फैल ए हाल॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा ! तू अपने नेत्रों को खोलकर अपने प्रियतम का दीदार कर, जिनका स्वरूप अति सुन्दर, प्रफुल्लित, और कोमल है। तू इस बात का भी विचार कर कि तेरी कथनी, करनी, और रहनी किसने ऐसी कर दी है कि बार-बार तेरे हृदय में प्रियतम की छबि अंकित हो रही है (बस रही है)।

जामा जड़ाव जुड़या अंग जुगतें, चार हारों करी अंबर झलकार।

जगमगे पाग ए जोत जवेर ज्यों, मीठे मुख नैनों पर जाऊं बलिहार॥२॥

श्री राज जी ने जो जामा पहन रखा है, वह उनके अंगों से इस प्रकार सटा हुआ है कि वह अंगों जैसा ही प्रतीत हो रहा है। हृदय-कमल पर चार हारों की शोभा आयी है, जिनकी झलकार आकाश में फैल रही है। सिर के ऊपर जगमगाती हुई पाग से निकलने वाली ज्योति जवेरों की ज्योति के समान शोभा दे रही है। मैं अपने प्रियतम के अति माधुर्य रस से भरपूर मुख और नेत्रों की शोभा पर बलिहारी जाती हूँ।

भावार्थ- जामा एक प्रकार का राजसी वस्त्र होता है, जिसमें नीचे का हिस्सा चुन्नटों से युक्त और घेरदार होता है। सागर ग्रन्थ में जहाँ एक जगह पाँच हारों का तो दूसरी जगह छः हारों का वर्णन है, किन्तु इस कीर्तन ग्रन्थ में

चार हारों का वर्णन है। पाग में इतने जवाहरात जड़े हुए हैं कि पाग की ज्योति और जवैरों की ज्योति में कोई भी अन्तर प्रतीत नहीं होता।

लाल अधुर हंसत मुख हरवटी, नासिका तिलक निलवट भौंहें केस।

श्रवन भूखन मुख दंत मीठी रसना, ए देख दरसन आवे जोस आवेस॥३॥

श्री राज जी के होंठ लालिमा से भरपूर हैं। उनके मुखारविन्द तथा टुड्डी (हरवटी) पर हमेशा मुस्कान खेलती रहती है। नासिका, माथे पर तिलक, काली भौंहों, तथा घुँघराले बालों की बहुत सुन्दर शोभा है। कानों में आभूषण (कर्णफूल) लटक रहे हैं। अति सुन्दर मुखारविन्द में अनार के दानों की तरह दाँतों की शोभा है। रसना (जिह्वा) माधुर्यता के रस से परिपूर्ण है। आत्म-चक्षुओं से इस अलौकिक शोभा को देखने पर

बारम्बार दर्शन करने का जोश आता है एवं प्रियतम का आवेश आता है।

भावार्थ- श्री राज जी की मनोहारिणी शोभा को देखने पर ऐसी तीव्र उमंग उठती है कि मुझे पल-पल धनी का दीदार होता ही रहे और यह शोभा एक पल के लिये भी मुझसे अलग न होने पाये। इसे ही "जोश" शब्द से सम्बोधित किया गया है। जिसके हृदय में धनी की शोभा बस जाती है, उसे ऐसा प्रतीत होता है कि साक्षात् धाम धनी मेरे हृदय में विराजमान हैं, इसे ही आवेश का आना कहते हैं। कभी-कभी यह लीला क्रियात्मक रूप में भी दृष्टिगोचर होती है। जब श्री महामति जी को आवेश आता था, तो वाणी के अवतरण के साथ-साथ युगल स्वरूप का दर्शन भी होता था। धारा भाई के साथ भी कुछ दिनों तक ऐसी लीला हुई। उन्होंने स्पष्ट कहा है- "तहां आवे

मोको आवेश" (बीतक)।

बाहें चूड़ी बाजू बंध सोहे फुमक, पोहोंची कांड़ों कड़ी हस्त कमल मुंदरी।
 नख का नूर चीर चढ़या आसमान में, ज्यों हक चलवन करें सब अंगुरी॥४॥
 श्री राज जी के जामें की बाँहों में चुन्नटें शोभायमान हैं।
 दोनों बाजुओं में बाजूबन्द शोभा दे रहे हैं, जिनमें फुम्मक
 लटक रहे हैं। दोनों कलाइयों में पोहोंची हैं, जिनमें कड़ा
 और कड़ी की शोभा है। दोनों हस्त-कमल की आठ-
 आठ अँगुलियों में मुँदरियों की शोभा है। जब धाम धनी
 अपनी अँगुलियों को हिलाते हैं, तो उनके नखों का नूर
 आकाश में फैल जाता है।

भावार्थ- "पोहोंची" एक आभूषण है, जो कलाई में
 पहना जाता है। उससे सम्बन्धित कड़ा और कड़ी हैं।
 कड़े का तात्पर्य कँगन से है। इसी प्रकार कड़ी की भी

शोभा है।

रोसनी पटुके करी अवकास में, चरन भूखन जामें इजार झांई।

कहें महामती मोमिन रूह दिल को, मासूक खैंचें तोहे अर्स माहीं॥५॥

श्री राज जी की कमर में बँधे हुए नीले-पीले रंग के पटुके की रोशनी आकाश में चारों ओर फैल रही है। चरण-कमलों में स्थित झांझरी, घुंघरी, कांबी, तथा कड़ला के आभूषणों में जामें तथा इजार का प्रतिबिम्ब झलकता रहता है। श्री महामति जी कहते हैं कि ब्रह्मसृष्टियों की आत्माओं के दिल को माशूक श्री राज जी की ऐसी अलौकिक शोभा परमधाम की ओर खींचती है।

भावार्थ- ब्रह्मसृष्टियों के मूल तन तो परमधाम में हैं। उनकी सुरता ही आत्मा कहलाती है, जिसके दिल में श्री राजश्यामा जी की शोभा बसती है। सागर ग्रन्थ में स्पष्ट

कहा गया है- "तार्थें हिरदे आतम के लीजिए, बीच साथ सरूप जुगल।" इसी तथ्य के आधार पर इस चौपाई के तीसरे चरण में कहा गया है- "कहें महामती मोमिन रूह दिल को।"

प्रकरण ॥११२॥ चौपाई ॥१६८०॥

चतुर चौकस चेतन अति चोपसों, कूवत कर सब अंग कमर कसे।

सुंदर सेज्या सनकूल तन रूह रची, मासूक दिल मोमिन मोहोल माहें बसे॥१॥

आशिक श्री राज जी के सभी अंग इश्क की लीला में चतुर, सावधान, चेतन, और बहुत अधिक उमंग से भरपूर हैं। वे दृढ़तापूर्वक सौन्दर्य के मूर्तिमान स्वरूप में प्रेम के लिये पल-पल प्रस्तुत हैं। अपने माशूक श्री राज जी को दिल में बसाने के लिए ब्रह्मसृष्टियों ने अपने इस तन के धाम हृदय में बहुत सुन्दर सेज्या तैयार कर रखी है। माशूक श्री राज जी तो ब्रह्मसृष्टियों (मोमिनों) के दिल रूपी महल में ही रहते हैं।

भावार्थ- "कमर कसना" एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है तैयार होना। श्री राज जी के सभी अंग प्रेम के लिये पल-पल प्रस्तुत हैं।

मन तन जोबन चढ़ता नौतन, आया अमरद आसिक इस्क गंज ले।

अधुर अमृत मुख दंत रसना रस, नित नए सुंदर सब देखे चढ़ते॥२॥

श्री राज जी का तन, मन, और यौवन पल-पल नित्य नूतन ही रहता है। किशोर स्वरूप वाले आशिक श्री राज जी इस्क का भण्डार लेकर ब्रह्मसृष्टियों के धाम हृदय में विराजमान हो गये हैं। उनके अमृत के समान सुन्दर होंठ, अनार के दानों की तरह मुख में स्थित सुन्दर दाँत, तथा प्रेम के रस में डूबी हुई जिह्वा नित्य हैं एवं पल-पल अधिक से अधिक सुन्दर दिखायी देते हैं।

निलवट बंके नैन नासिका श्रवन, कौल फैल हाल नित नवले देखाए।

रूह भी रंग रस चंचल चपल गत, मोहन मोही मोहनी मह हो जाए॥३॥

श्री राज जी का मस्तक अति सुन्दर है। उनके तिरछे नेत्र, नासिका, और कानों की शोभा वर्णन से परे है।

उनकी वाणी, प्रेममयी लीला, और आनन्दमयी स्थिति में नित्य ही नवीनता बनी रहती है। आत्मा भी धनी के प्रेम और आनन्द के रस में डूबने के लिये चञ्चल और चपल अवस्था वाली हो जाती है। सबको सम्मोहित करने वाले श्री राज जी के सम्मोहन से सम्मोहित होकर वह एकरूप हो जाती है।

भाखती महामती अर्स रूहें उमती, पूरन कर प्रीत प्रेमें पोहोंचाई।

अर्स वाहेदत खिलवत खसम की, हुजत निसबत लिए इत आई॥४॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे परमधाम की आत्माओं! ब्रह्मसृष्टि होने के कारण तुम धाम धनी से पूर्ण प्रेम करो। प्रेम द्वारा ही तुम परमधाम पहुँचोगी (दीदार करोगी)। तुम परमधाम की वाहिदत के स्वरूप हो। श्री राज जी के मूल मिलावे में तुम्हारे मूल तन हैं, जिसके कारण धनी से

अखण्ड सम्बन्ध का दावा लेकर ही तुम इस संसार में
आयी हो।

प्रकरण ॥११३॥ चौपाई ॥१६८४॥

प्रायः जन सामान्य में नूर का अर्थ तेज , ज्योति, या प्रकाश से लिया जाता है। यदि नूर का यही अर्थ है , तो यह प्रश्न होता है कि क्या श्री राज जी का स्वरूप सूर्य , चन्द्रमा , या विद्युत की ज्योति, या प्रकाश के समान है?

तारतम ज्ञान के प्रकाश में विवेचना करने पर यह स्पष्ट होता है कि श्रीमुखवाणी में जिसे नूर कहा गया है , वह प्रकृति के तेज , ज्योति, रोसनी, या प्रकाश से सर्वथा अलग है।

नूर नाम रोसन का, दुनी जानत यों कर।

सो तो रोसनी जिद अंधेर की, दुनी क्या जाने लदुन्नी बिगर॥

सागर १/५४

"नूर" अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ होता है— अलौकिक या दिव्य। परब्रह्म त्रिगुणातीत हैं। इस कार्य जगत में दिखायी देने वाली सभी ज्योतियाँ त्रिगुणात्मक

तथा नश्वर हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि त्रिगुणातीत ज्योति या प्रकाश का अलग ही स्वरूप होगा। अरबी भाषा के शब्द "नूर जलाल" का अर्थ है— अलौकिक रूप से सामर्थ्यवान। इसी प्रकार "नूर जमाल" का अर्थ है— अलौकिक, दिव्य, या त्रिगुणातीत शोभा, छटा, कान्ति, और सौन्दर्य इत्यादि।

कुरआन में सूरे नूर २४ पार: १८ आयत ३५ में स्पष्ट किया गया है कि नूर से अभिप्राय त्रिगुणात्मक प्रकाश या ज्योति से नहीं है।

इसी प्रकार वेद में "नूर" के लिये शुक्र शब्द का प्रयोग किया गया है— "शुक्र ज्योतिश्च चित्र ज्योतिश्च सत्य ज्योतिश्च ज्योतिष्माँश्च शुक्रश्च ऋतपाश्चात्यमहा।"

यजुर्वेद १७/८०

इस मन्त्र में ब्रह्म का स्वरूप नूरी ज्योति वाला , अद्भुत

ज्योति वाला , सत्य ज्योति वाला , तथा त्रिगुणातीत ज्योति वाला कहा गया है। गायत्री मन्त्र में प्रयुक्त होने वाला "भर्गः" शब्द शुक्र (नूर) का ही एकार्थवाची है।

इसी भाव को उपनिषदों में "तदेव शुक्रं तदं ब्रह्म तदेव अमृतं उच्यते" कहा गया है।

अब प्रश्न यह होता है कि श्रीमुखवाणी के शब्दों में नूर क्या है?

यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि जो हृदय में होता है, वही मुखारविन्द पर भी होता है। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी का कथन है—

जो गुन हक के दिल में, सो मुख में देखाई देत।

सो देखें अरवाहें अर्स की, जो इत हुई होए सावचेत॥

३०/३४

मुख बोले पीछे पाइए, जो दिल अन्दर के गुन।
पर मुख देखे पाया चाहे, जो अन्दर गुझ रोसन॥

२०/३५

जो गुन हिरदे अन्दर, सो मुख देखे जाने जाए।
ऊपर सागरता पूरन, तार्थें दिल की सब देखाए॥

२०/३६

अक्षरातीत का हृदय मारिफत का सागर है। परमधाम के २५ पक्षों तथा श्यामा जी, सखियों, अक्षर ब्रह्म, और महालक्ष्मी के रूप में जो कुछ भी दिखाई दे रहा है, वह हकीकत स्वरूप है, जो मारिफत से अनादि काल से प्रकट है। इसी प्रकार आठों सागरों में जो कुछ भी है, वह सब हकीकत का ही स्वरूप है, और हकीकत के रूप में जो कुछ भी दिखायी दे रहा है, वह सब कुछ नूर है। नूर की व्याख्या में कुछ इस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया

जा सकता है—

"नूर ही शाश्वत—परम प्रेम है, आनन्द है, सौन्दर्य है, और जीवन है। वह अक्षरातीत के हृदय का उल्लास है, प्रफुल्लता है, दयालुता है, नेत्रों का आकर्षण है, मुखारविन्द की कान्ति है, छटा है, आभा है, स्वच्छता है, चमक है, और उजालापन है।"

नूर की विशेष व्याख्या परिक्रमा ग्रन्थ के प्रकरण ३५, ३६, और ३७, तथा सागर ग्रन्थ के पहले प्रकरण में है।

उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत है—

बड़ी रूह रूहें नूर में, ले अर्स नूर आराम।

नूर जमाल के नूर में, नूर मगन आठों जाम॥

परिकरमा ३५/१

नूर खाना नूर पीवना, नूर मुख मजकूर।

इस्क अंग सब नूर के, सब नूर पूर नूर॥ परि. ३४/१५

कहें हक नूर बैठ नासूत में, करें नूर लाहूत के काम।

नूर रुहें जिमी दुख में, लेवें नूर लाहूती आराम॥

परिकरमा ३५/२३

होत नूर थें दूजा बोलते, दूजा नूर बिना कछू नाहें।

एक वाहेदत नूर है, सब हक नूर के मांहें॥

परिकरमा ३५/३०

नूर कहे महामत रुहें, देखो नजरों नूर इलम।

वाहेदत आप नूर होए के, पकड़ो नूर जमाल कदम।

परिकरमा ३५/३१

नूर द्वार नूर ऊपर, नूर बड़ी बैठक नूर भर।

कर दीदार नूर जमाल का, फेर आए नूर कादर॥

परिकरमा ३७/३५

नूर खेलत नूर देखत, और नूरै नूर बरसत।

रुहें आइयां जो इत नूर से, सो नूर नूरै को दरसत।

परिकरमा ३७/४८

आगूं नूर मकान की कंकरी, देखत ना कोट सूर।

तिन जिमी नंग रोसनी, सो कैसो होसी नूर॥

सागर १/२६

रुहें बड़ी रुह नूर से, नूर हक के सदा खुसाल।

हक नूर निसदिन बरसत, नूर अरस परस नूरजमाल॥

सागर १/५०

मन में यह संशय होता है कि यदि नूर का अर्थ तेज , ज्योति, या प्रकाश नहीं है, तो श्री मुखवाणी में यह बार-बार क्यों कहा जाता है कि परमधाम के नूर के एक कण में करोड़ों सूर्यों का प्रकाश छिप जाता है ? इसी प्रकार

श्री राजश्यामा जी के नखों के सामने करोड़ों सूर्यों का प्रकाश फीका पड़ जाने की बात क्यों कही जाती है?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि नूरमयी स्वरूप में तेज, ज्योति, प्रकाश, रोशनी सब कुछ है, किन्तु वह सत्य, चेतन, आनन्दमयी, सुगन्धिमयी, आत्ममयी, और अति कोमल है। यदि वह अपने अन्दर अनन्त सूर्यों के प्रकाश को समाये हुए है, तो उसमें अनन्त चन्द्रमा की शीतलता भी है। वह पूर्णतया त्रिगुणातीत, अनादि, अखण्ड, और साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है, जबकि सूर्य, चन्द्र, विद्युत आदि का प्रकाश, तेज, या ज्योति पूर्णतया नश्वर है, जड़ है, दाहकारक है, और त्रिगुणात्मक है। यही कारण है कि "नूर" को प्रकृति के सभी रूपों से भिन्न सच्चिदानन्द परब्रह्म का स्वरूप माना गया है।

नूर को रूप सरूप अनूप है, नूर नैना निलवट नासिका नूर।

नूर श्रवन गाल लाल नूर झलकत, नूर मुख हखटी नूर अधूर॥१॥

श्री राज जी का स्वरूप उपमा से रहित नूरमयी है। उनके नेत्र, मस्तक, और नासिका भी नूरी छवि वाले हैं। उनके सुन्दर कानों तथा लाल गालों से हमेशा नूर झलकता रहता है। उनका मुखारविन्द, ठुड्डी, तथा लाल होंठ भी नूरमयी हैं।

नूर मुख चौक मांडनी अति नूर में, नूर वस्तर नूर भूखन जहूर।

नूर जोवन रोसन नूर नौतन, नूर सब अंगों उद्योत नूर पूर॥२॥

श्री राज जी के भरे हुए मुखारविन्द का किनारा बहुत अधिक नूर से सुशोभित है। उनके वस्त्रों और आभूषणों से नूरी छटा निकल रही है। उमंग से भरा हुआ उनका यौवन पल-पल नूतन (नया) रहता है। उनके सभी अंगों

में नूरी प्रकाश ओत-प्रोत है।

नूर चरन कमल नूर हस्तक, नूर सोभा सबे नूर सिनगार।
 नूर सिर पाग नूर कलंगी दुगदुगी, नूर हिये हार नूर गंज अंबार॥३॥
 श्री राज जी के चरण-कमल नूरी हैं और अति कोमल
 हाथ भी नूरमयी हैं। उनके सिर पर आयी हुई पाग
 नूरमयी है तथा उसमें लगी हुई कलङ्गी तथा दुगदुगी भी
 नूर के हैं। उनके हृदय-कमल पर आये हुए नूरी हारों से
 बेशुमार नूर की छटा निकल रही है।

नूर हक सहूर मजकूर नूर महामत, नूर ऊग्या बका नूर का सूर।
 सब नूर रूहें नूर हादी नूर में, नूर नूर में खँच लई हकें हजूर॥४॥
 श्री महामति जी कहते हैं कि नूरमयी शोभा वाले श्री
 राज जी के सम्बन्ध में किया जाने वाला सहूर (आत्म-

चिन्तन) और बातें भी नूरमयी हैं। नूरमयी परमधाम का तारतम ज्ञान रूपी सूर्य अब उग गया है। सम्पूर्ण परमधाम के पच्चीस पक्ष, श्यामा जी, तथा सखियों का स्वरूप भी नूरमयी है। नूरमयी शोभा वाले श्री राज जी ने नूरमयी सखियों को खींचकर अपने से एकाकार कर लिया है।

प्रकरण ॥११४॥ चौपाई ॥१६८८॥

हुब मेहेबूब की आसिक प्यास ले,

चाहे साफ सराब सुराई सका।

पीवते पीवते पिउ के प्याले सों,

हुई हाल में लाल पी मस्त बका॥१॥

प्यारे प्रियतम से मिलन की प्यासी मेरी रूह यही चाहती है कि इश्क रूपी स्वच्छ शराब को स्वयं साकी (श्री राज जी) पिलायें। धनी द्वारा दिये हुए प्रेम के प्याले को पीकर मेरी आत्मा अखण्ड आनन्द में डूब गयी है और उसकी अवस्था प्रेम का प्रत्यक्ष स्वरूप बन गयी है।

भावार्थ- इस चौपाई में जिस शराब का वर्णन है, वह इस नश्वर जगत की दुर्गन्ध और तमोगुण को उत्पन्न करने वाली शराब नहीं, बल्कि परमधाम की प्रेम रूपी शराब है। प्रेम रूपी शराब को पीकर लाल हो जाने का भाव एक भक्त कवि की इन पक्तियों से स्पष्ट हो जाता है-

लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।

लाली देखन मैं गयी, हो गयी लालै लाल॥

अर्थात् प्रियतम के स्वरूप में एकरूप हो जाना ही
"लाल" हो जाना है।

दिल परस सरस भयो अस इलाही,

दोऊ चुभ रहे दिल सों दिल मिल।

न्यारी ना होए प्यारी आप मारी,

चल विचल ना होए वाहेदत असल॥२॥

उस प्रेम रूपी शराब के स्पर्श मात्र से मेरा हृदय प्रेम के
रस से सराबोर हो गया और धनी का अखण्ड धाम बन
गया। अब मेरा दिल और धनी का दिल दोनों ही आपस
में मिलकर एकरूप हो गये हैं। प्रियतम की प्यारी मेरी
रूह उनके इश्क में डूबी हुई है, इसलिये अब वह कभी

भी उनसे अलग नहीं हो सकती। परमधाम की अखण्ड वाहिदत कभी भी डाँवाडोल (भंग) नहीं होती।

भावार्थ- आत्मा के हृदय में धनी का प्रेम आते ही उनकी शोभा बस जाती है। ऐसे स्थिति में उसे धनी का अर्श (परमधाम) कहते हैं। धनी के दिल में तो आत्मा की छवि अंकित है ही क्योंकि वे सदा जाग्रत हैं, किन्तु जब आत्मा भी अपने दिल में धनी की शोभा को बसा लेती है तो इसे दोनों दिलों का "चुभना" अर्थात् एक-दूसरे में स्थित हो जाना कहते हैं। इसी को एकाकार की संज्ञा दी जाती है। दिल के अर्श होते ही आत्मा को इसी संसार में अखण्ड वाहिदत की लज्जत (स्वाद) मिलने लगती है।

लगी सो लगी आतम अंदर लगी,

यों अंतर आतम जगी जुदी न होए।

सरभर भई पर आतम यों कर,

यों तेहे दिली मिली छोड़ सके न कोए॥३॥

मेरी आत्मा के अन्दर प्रेम की ऐसी लगन लग गई कि उसने अपने दिल में धनी को बसा लिया और जाग्रत हो गयी। अब वह अपने प्रियतम से कभी भी अलग नहीं हो सकेगी। इस प्रकार आत्मा और परात्म की स्थिति एक समान हो गयी है, तथा अब आत्मा और परात्म में कभी अलगाव की स्थिति नहीं हो पायेगी।

भावार्थ— परात्म के दिल में तो श्री राज जी की शोभा अखण्ड रूप से विराजमान है ही, वही स्थिति जब आत्मा के हृदय में भी हो जाये, तो इसे दोनों का एकरूप होना कहते हैं। सागर ग्रन्थ में इसे इस प्रकार कहा गया

है—

अन्तस्करन आत्म के, जब ए रहयो समाए।

तब आत्म परआत्म के, रहे न कछु अन्तराए॥

आत्मा अपने धाम हृदय में श्री राज जी के जिस अंग की शोभा को बसाती जाती है, आत्मा का वह अंग खड़ा होता जाता है। एक ऐसी भी स्थिति आती है, जब आत्मा परात्म की तरह अपने पूर्ण स्वरूप में स्थित हो जाती है। ऐसी अवस्था को प्राप्त कर लेने के पश्चात् वह अपने उसी स्वरूप में रहती है। इसे ही आत्मा और परात्म का एक स्वरूप में स्थित होना कहते हैं, अर्थात् बिम्ब (परात्म) और प्रतिबिम्ब (आत्मा) एकरूप रहें, जिसे कभी अलग न होने (न छोड़ने) के रूप में वर्णित किया गया है।

महामत दम कदम न छूटे इन खसम के,
हुआ मोहोल मासूक का मेरे दिल मांहीं।
एक अव्वल बीच आई सो एक हुई,
आखिर एक का एक मोहोल बीच और नाहीं॥४॥

श्री महामति जी कहते हैं कि अब मुझसे धनी के चरण – कमल एक पल के लिये भी अलग नहीं हो सकते, क्योंकि अब मेरा दिल ही मेरे प्रियतम (माशूक) श्री राज जी का महल हो गया है। परमधाम की वाहिदत में मेरा और धनी का स्वरूप एक ही था। रास में प्रेम के विलास में मैं एक हो गयी, और आखिर में इस माया के ब्रह्माण्ड में जब मैं आयी तो अपने दिल में धनी को बसाकर पुनः एक हो गयी। जिस प्रकार प्रेम में एक और एक को जोड़ने पर एक ही रह जाता है, उसी प्रकार मैं और धनी भी एकरूप हो गये हैं। अब हमारे और धनी के बीच में और

कोई (माया) नहीं है।

प्रकरण॥११५॥ चौपाई ॥१६९२॥

नूर नगन चेतन भूखन रचे,

अंग संग देखे सब चढ़ते रोसन।

यों खैंच खड़ी करी इलम खसम के,

लई जोस फरामोस से होस वतन॥१॥

श्री राज जी के आभूषण तथा उनमें जड़े हुए नग, दोनों ही चेतन हैं और नूरमयी हैं। उनकी शोभा अंगों के साथ-साथ प्रतीत होती है, अर्थात् आभूषण या नग शरीर के अंगों से अलग प्रतीत नहीं होते। सबकी शोभा पल-पल बढ़ती रहती है, यानि नित्य नवीन बनी रहती है। धनी की तारतम वाणी ने आत्मा को माया की फरामोशी से खींचकर ईमान पर खड़ा कर दिया। अब आत्मा ने अपने अन्दर प्रेम का जोश भरा और फरामोशी छोड़कर अपनी नजर परमधाम की ओर कर दी।

सब अंग आसिक के इस्क सों रस बसे,

बढ़त बढ़त बीच आए बका।

यों आई उमत इस्क भरी अर्स में,

पीवे साफ सुराई साई हाथ सका॥२॥

आशिक रूहों के अंग-अंग में धनी के लिये इश्क ही इश्क भरा होता है। जैसे-जैसे उनके हृदय में प्रेम (इश्क) बढ़ता गया, वैसे-वैसे उनकी आत्मिक दृष्टि परमधाम में पहुँचती गयी। इस प्रकार इश्क से भरी हुई ब्रह्मसृष्टियाँ ध्यान द्वारा परमधाम पहुँची। अक्षरातीत का दिल ही वह सुराही है, जिसमें इश्क का अथाह सागर भरा पड़ा है। वे साकी के रूप में अपना प्रेम रूहों को पिलाते हैं। अब ब्रह्मसृष्टियाँ अक्षरातीत के निर्विकार हृदय रूपी सुराही से प्रेम का रस पी रही हैं।

हकें अब लिए फेर अंधेर से इन बेर,

रूहें मोमिन पोहोंचियां अर्स मांहें तन।

बृज रास जागनी तीनों सुख देय के,

मोमिन तन किए धन धन॥३॥

धाम धनी ने अब जागनी के इस ब्रह्माण्ड में ब्रह्मसृष्टियों को माया के अन्धकार से निकाला और ब्रह्मसृष्टियों की आत्मायें परमधाम के अपने मूल तनों को देखने लगीं। प्राणवल्लभ अक्षरातीत ने ब्रज-रास और जागनी के इस ब्रह्माण्ड में अपनी आत्माओं को पूरा सुख दिया है तथा उनके धाम हृदय में विराजमान होकर उनके तनों को भी धन्य-धन्य कर दिया है।

भावार्थ- अपने मूल तनों में सबकी सुरता एकसाथ ही पहुँचेगी क्योंकि श्रीमुखवाणी का कथन है "पौढ़े भेले जागसी भेले।" इस चौपाई के दूसरे चरण में कथित "रूहें

मोमिन पोहोंचियां अर्स मांहें तन " का भाव यह है कि सुन्दरसाथ ने अपनी आत्मिक दृष्टि से मूल मिलावा में बैठे हुए अपने मूल तनों को देखा।

भनत महामती हक दिल मारफत की,
पोहोंचाई इन न्यामतें उमत खिलवत।
क्यों कहूं सिफत बरकत वाहेदत की,
लज्जत आई इमामत कयामत॥४॥

श्री महामति जी श्री राज जी के दिल की मारिफत के ज्ञान की बातें कह रही हैं। इस मारिफत के ज्ञान की न्यामत ने ही सुन्दरसाथ (ब्रह्मसृष्टियों) को मूल मिलावा में पहुँचाया है। इस संसार में भी वाहिदत के रस की अनुभूति करने वाली ब्रह्मसृष्टियों की मेहर की महिमा को मैं कैसे व्यक्त करूँ, क्योंकि इनके द्वारा ही आखरूल

इमाम महदी श्री प्राणनाथ जी के अखण्ड करने वाले
तारतम ज्ञान का रसास्वादन करने का सबको अवसर
मिला है।

प्रकरण ॥११६॥ चौपाई ॥१६९६॥

इस प्रकरण में प्रियतम के दीदार के बाद की स्थिति का वर्णन किया गया है।

मिली मासूक के मोहोल में माननी,

आसिक अंग न माहें अंग।

जानूं जामनी बीच जुदी हुती हक जात सें,

पेहेचान हुई प्रात हुए पिउ संग॥१॥

आशिक (रुह) का दिल ही माशूक श्री राज जी का महल (अर्श) है। श्री महामति जी कहती हैं कि मैं अपने प्रियतम से अपने अर्श-दिल में मिली। अब मेरे दिल में आनन्द की कोई सीमा नहीं है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं माया की अन्धकारमयी रात्रि में अपने प्रियतम तथा सुन्दरसाथ से अलग हो गयी थी, और अब तारतम ज्ञान के उजाले में प्रातःकाल हो गया है जिसमें मैंने

अपने धनी की पहचान करके उन्हें अपने दिल में बसा लिया है।

द्रष्टव्य— यद्यपि चितवनि के समय मूल मिलावे में ही धारणा की जाती है, किन्तु निस्वत के सम्बन्ध से दीदार अर्श दिल में ही होता है।

मन सुकन तन भए सब एकै,

एकै जात सिफात सब बात।

एक अंग संग रंग सब एकै,

सब एक मता अर्स बका बिसात॥२॥

प्रियतम के दीदार के पश्चात् मेरे मन, वचन, और शरीर सब एक हो गये हैं, अर्थात् धनी की प्रेरणा से मेरे मन में जो आता है, मुख से वही वाणी निकलती है और शरीर वैसा ही कार्य करता है। मेरी सारी बातें एकमात्र

ब्रह्मसृष्टियों (हक जात) की महिमा पर ही केन्द्रित हो गयी हैं कि हम सब सुन्दरसाथ धनी के अंग हैं। वे पल – पल हमारे साथ हैं और हम सभी एक ही प्रेम के रंग में रंगे हुए हैं। अखण्ड परमधाम की शोभा एवं लीला के सम्बन्ध में भी सबका एक ही मत है।

नाहीं जुदा कांही जांही अर्स मांहीं,

मिले रूह भेले दिल एक हुए।

तो कलूब किबला भया मकबूल अल्लाह कहया,

अव्वल आखिर मिले एक हुए न जुए॥३॥

स्वलीला अद्वैत परमधाम के अन्दर कहीं भी जुदायगी नहीं है। मेरी आत्मा ने जब धनी का दीदार किया, तो दोनों (मेरे और धनी) के दिल मिलकर एकाकार हो गये। मेरे दिल में धनी के विराजमान हो जाने से मेरा दिल

पूज्य स्थान बन गया। धाम धनी अक्षरातीत ने मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर लीला करने के लिये मेरे हृदय को स्वीकार किया। परमधाम में मैं और धनी अनादि काल से एक थे। इस जागनी ब्रह्माण्ड में भी दोनों मिलकर एकरूप हो गये। इस प्रकार हमारे बीच कभी जुदायगी रही ही नहीं।

भावार्थ- यहाँ यह प्रश्न खड़ा होता है कि व्रज लीला में ५२ दिन तक, रास में अन्तर्धान लीला के समय, तथा जागनी ब्रह्माण्ड में हब्शा या सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के धामगमन से पूर्व, श्री महामति जी की वह स्थिति नहीं थी जो इस प्रकरण में वर्णित है। क्या इसे जुदायगी नहीं कह सकते?

निःसन्देह इन घटनाक्रमों में बाह्य रूप से जुदायगी थी, लेकिन "अन्त भला तो सब भला" की कहावत यहाँ

चरितार्थ होती है। जब जागनी ब्रह्माण्ड में श्री इन्द्रावती जी ने धनी से एकाकार होने की स्थिति प्राप्त कर ली, तो यही कहा जायेगा कि दोनों में यथार्थ रूप से जुदायगी थी ही नहीं।

हक अरस परस सरस सब एक रस,

वाहेदत खिलवत निसबत न्यामत।

महामत अलमस्त होए आवें उमत लिए,

पीवत आवत हक हाथ सरबत॥४॥

तारतम ज्ञान के प्रकाश में आने वाले सभी ब्रह्ममुनि प्रेम में एकरस हो गये हैं। धाम धनी से परस्पर मिलन के पश्चात् उनका हृदय आनन्द रस से ओत-प्रोत हो गया है। धाम धनी इस संसार में भी उन्हें अपनी वाहिदत, खिलवत, तथा निस्बत आदि न्यामतों के सुख की पूरी

लज्जत दे रहे हैं। श्री महामति जी अपने प्रियतम अक्षरातीत के हाथों से इश्क का शर्बत पीते हुए आनन्द में मग्न हैं तथा ब्रह्मसृष्टियों को भी अपने साथ लेकर परमधाम आ रहे हैं।

भावार्थ- श्री महामति जी द्वारा युगल स्वरूप तथा परमधाम का दीदार करके सुन्दरसाथ को भी उस राह पर चलाना ही सबको परमधाम लेकर आना है।

प्रकरण ॥११७॥ चौपाई ॥१७००॥

राग श्री

यह प्रकरण श्री ५ पद्मावती पुरी धाम में अवतरित हुआ है। यह प्रकरण उस प्रसंग में उतरा है, जब मेड़ता से राजाराम भाई ने महाराजा छत्रसाल जी को पत्र लिखा था, जिसमें श्री पन्ना जी आने की इच्छा व्यक्त की गयी थी।

मोमिन लिखे मोमिन को, कहो तो आवें इत।

ए अचरज देखो मोमिनों, कैसा समया हुआ सखत॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! इस बात पर विचार कीजिए कि अब कितना कठिन समय आ गया है। यह कितने आश्चर्य की बात है कि एक सुन्दरसाथ (राजाराम भाई) दूसरे सुन्दरसाथ (छत्रसाल जी) को पत्र लिखकर यह बात पूछते हैं कि यदि आपकी

स्वीकृति हो, तो मैं भी धनी की सेवा में पन्ना जी आ जाऊँ।

दम दिल तन एकै, बिछुर के भूली वतन।

जानू के सोहोबत कबूँ न हुती, तो यों कहावें सुकन॥२॥

परमधाम में सबके दिल एक जैसे हैं, तन एक जैसे हैं, यहाँ तक कि मुख से निकलने वाले शब्द भी एक जैसे ही हैं। परमधाम से आने के पश्चात् माया में यह एक-दूसरे को इस प्रकार भूल गयी हैं कि जैसे इनमें कोई परिचय या मेल-मिलाप ही न रहा हो, तभी तो एक-दूसरे को इस प्रकार परायेपन जैसा पत्र लिख रही हैं।

द्रष्टव्य- यद्यपि "दम" शब्द का मुख्य अर्थ प्राण, जीव, या जीवन होता है, किन्तु परमधाम में जन्म-मरण की प्रक्रिया न होने से इन शब्दों के प्रयोग की कोई सार्थकता

नहीं है।

मोमिन रखे मोमिन सों, जो तन मन अपना माल।

सो अरवा नहीं अर्स की, न तिन सिर नूर जमाल॥३॥

यदि कोई सुन्दरसाथ दूसरे सुन्दरसाथ के प्रति तन , मन, या धन के आधार पर भेदभाव की दीवारें बनाता है, तो यह समझ लेना चाहिए कि उसके अन्दर न तो परमधाम की आत्मा है और न उसके ऊपर धाम धनी की मेहर है।

भावार्थ— सबके मन में एक ही प्रकार की बात हो, यह तो बहुत ही अच्छी बात है, किन्तु दूसरों के तन और धन को अपने स्वार्थ के लिये उपयोग करना अपराध है। तन और धन के प्रति अपनेपन का भाव यह है कि यदि किसी सुन्दरसाथ के शरीर में पीड़ा है तो उसे अपनी ही

पीड़ा समझकर दूर करने का पूर्ण प्रयास करना चाहिए, तथा दूसरों के धन की क्षति को अपनी ही क्षति समझकर उसकी रक्षा के लिये प्रयत्नशील होना चाहिए। हमें भारतीय संस्कृति का यह उद्घोष हमेशा याद रखना चाहिए कि "मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्", अर्थात् दूसरों की पत्नी को माता के समान और दूसरों के धन को भोग दृष्टि से मिट्टी के समान मानना चाहिए।

मता मोमिन का काफर, ले न सके क्योंकर।

दिल मोमिन का अर्स कहया, दिल काफर अबलीस घर॥४॥

मोमिनों के आध्यात्मिक तत्व ज्ञान को काफिर लोग किसी भी प्रकार से ग्रहण नहीं कर सकते हैं। मोमिनों का दिल जहाँ धनी का अर्श होता है, वहीं काफिरों के दिल में शैतान की बैठक होती है।

भावार्थ- शैतान का तात्पर्य है- कलियुग या अज्ञान रूपी राक्षस। इसे किसी व्यक्ति रूप में मानना सत्य को झुठलाना है।

जब मेला होसी मोमिनों, तब देखसी सब कोए।

और न कोई कर सके, जो मोमिनों से होए॥५॥

जब ब्रह्मसृष्टियों की जागनी होगी, तब सभी लोग उनकी महिमा को समझेंगे। ब्रह्मसृष्टि धनी के इश्क व ईमान की जो राह अपना सकती है, उस पर जीवसृष्टि कदापि नहीं चल सकती।

जब लग भूली वतन, तब लग नहीं दोस।

जब जागी हक इलमें, तब भूली सिर अफसोस॥६॥

तारतम ज्ञान न मिलने के कारण जब तक ब्रह्मसृष्टि

परमधाम को भूली रहती है, उतने समय तक यदि कोई अपराध हो जाता है तो कोई दोष नहीं है। किन्तु तारतम ज्ञान से जाग्रत (ज्ञान दृष्टि से) होकर भी यदि वह कोई अपराध करती है, तो यह निश्चित है कि उसके सिर पर प्रायश्चित् का दण्ड होगा।

हकें जगाए मोमिन, अपनी जान निसबत।

अर्स किया दिल मोमिन, बैठाए बीच खिलवत॥७॥

धाम धनी ब्रह्मसृष्टियों को परमधाम के मूल सम्बन्ध के कारण ही जाग्रत कर रहे हैं। उन्होंने ब्रह्ममुनियों के दिलों में अर्श किया है तथा उनकी सुरता को परमधाम के मूल मिलावा में पहुँचा दिया है।

जाकी तरफ न पाई किनहूं, इन माहें चौदे तबक।

ताको ले बैठे दिल में, किया ऐसा अपने हक॥८॥

चौदह लोक की इस दुनिया में आज तक ऐसा कोई व्यक्ति (ऋषि, मुनि, देवी, देवता) नहीं हुआ, जिसने परमधाम के बारे में ज्ञानार्जन किया हो। धाम धनी ने सुन्दरसाथ के ऊपर ऐसी मेहर (कृपा) की है कि इस मृत्यु लोक में बैठे-बैठे ब्रह्ममुनियों ने अपने सूक्ष्म दिल में ही अनन्त परमधाम को बसा रखा है।

और दुनी के दिल पर, किया अबलीस पातसाह।

सो गुम हुए बीच रात के, क्यों ए न पावें राह॥९॥

धाम धनी ने संसार के जीवों के ऊपर इब्लीश अर्थात् शैतान (अज्ञान रूपी राक्षस) की बादशाहत कर दी है। यही कारण है कि संसार के जीव अज्ञानमयी रात्रि के

अन्धकार में भटक जाते हैं और उन्हें परमधाम की सच्ची राह नहीं मिलती।

भावार्थ— यहाँ यह प्रश्न होता है कि अक्षरातीत परब्रह्म के न्याय में भेदभाव क्यों है? जीवों के ऊपर अज्ञान रूपी शैतान का दबदबा बनाना और ब्रह्मसृष्टियों को माया से निकालने के लिये परमधाम की वाणी का अवतरण करना क्या यह सिद्ध नहीं करता है कि न्याय का सिंहासन निष्पक्षता के धरातल पर नहीं खड़ा है?

प्रेम, आनन्द, और दया के अनन्त सागर सच्चिदानन्द परब्रह्म के न्याय में रञ्जमात्र भी भेदभाव नहीं है। सूर्य का प्रकाश आतशी शीशे पर भी पड़ता है, पत्थर पर भी पड़ता है, और कीचड़ पर भी पड़ता है। सूर्य के प्रकाश के संयोग से आतशी शीशे से अग्नि की ज्वाला निकलने लगती है, पत्थर गर्म हो जाता है लेकिन लपट नहीं छोड़

सकता, और कीचड़ मात्र सूख ही सकता है।

इन तीनों प्रक्रियाओं में एक ही सूर्य की धूप समान रूप से पड़ती है, लेकिन लाभ अलग-अलग रूपों में होता है। यदि कीचड़ पर धूप पड़ने से उससे ज्वाला नहीं प्रकट होती तो इसमें सूर्य का क्या दोष। सूर्य तो निष्पक्ष रूप से तीनों के ऊपर समान रूप से अपनी किरणों की वर्षा कर रहा है।

इसी प्रकार अक्षरातीत की मेहर सबके लिये है। "मेहेर सब पर मेहेबूब की, पर पावें करनी माफक।" ब्रह्मसृष्टि अक्षरातीत की अँगरूपा होने से सर्वथा ही माया से परे है। वह वाणी का प्रकाश पाते ही तुरन्त संसार से नाता तोड़ लेती है। इसके विपरीत जीवसृष्टि का उद्भव आदिनारायण से होता है, जो स्वयं मोह सागर में प्रकट होती है। ऐसी स्थिति में यह कैसे सम्भव है कि खारे जल

की मछली (जीव) अपने खारे जल के महासागर (महामाया) को छोड़े। इस प्रकार इस लीला में अक्षरातीत के न्याय पर स्वप्न में भी अँगुली नहीं उठायी जा सकती।

ऐसा हकें जाहेर किया, ऊपर रूहों मेहेर मुतलक।

कई बिध बताई रसूलें, पर क्या करे हवाई खलक॥१०॥

इस प्रकार धाम धनी ने ब्रह्मसृष्टियों के ऊपर निश्चित रूप से अपनी मेहर की वर्षा की है। रसूल मुहम्मद साहिब ने इस बात को कई प्रकार से बताया भी है, लेकिन निराकार की जीवसृष्टि भला कैसे समझें।

भावार्थ— जिस प्रकार घड़े में छिद्र होने पर उसमें वर्षा का पानी नहीं टिक पाता, उसी प्रकार यदि जीव के हृदय में निर्मलता नहीं है तो वह इल्म, ईमान, या इश्क की

राह नहीं अपना सकता। ऐसी अवस्था में वह धनी की पूरी मेहर का अधिकारी नहीं बन पाता। परमधाम की ब्रह्मसृष्टि मूल सम्बन्ध से ही अपने हृदय में इश्क लिये होती है, इसलिए धनी की मेहर का उसे पूर्ण अधिकार प्राप्त हुआ रहता है।

मोमिन सुकन सुन जागसी, जाको अर्स वतन।

जब नूर झंडा खड़ा हुआ, पीछे रहें न रूहें अर्स तन॥११॥

जिनका घर ही परमधाम है, ऐसे ब्रह्ममुनि ब्रह्मवाणी के वचनों को सुनकर जाग्रत हो जायेंगे। जब तारतम ज्ञान का नूरी झण्डा ही हिन्दुस्तान में गड़ गया, तो ब्रह्मसृष्टि धनी के चरणों में आने में जरा भी पीछे नहीं रहेंगी क्योंकि उनके मूल तन तो मूल मिलावा में प्रियतम के चरणों में ही बैठे हैं।

एह किताबत पढ़ के, रूहें रहे न सके एक खिन।

झूठी सों लग न रहे, जो रूह होए मोमिन॥१२॥

इस श्रीमुखवाणी को पढ़कर परमधाम की ब्रह्मसृष्टि एक पल भी माया में नहीं रह सकेगी। जिसके अन्दर ब्रह्मसृष्टि का अँकुर होगा, वह किसी भी स्थिति में हमेशा झूठी माया में नहीं फँसा रहेगा।

सखत बखत ऐसा हुआ, ईमान छोड़या सबन।

तब अरवाहें करें कुरबानियां, मह होवें मोमिन॥१३॥

माया के प्रभाव से ऐसा कठिन समय आ गया है कि जीवसृष्टि के प्रायः सभी लोगों का धर्म या परब्रह्म के प्रति ईमान (विश्वास) हट गया है। ऐसे समय में परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ धनी पर न्योछावर होकर अपनी श्रेष्ठता को स्पष्ट करेंगी।

जीव देते ना सकुचें, मोमिन राह हक पर।

दुनियां जीव ना दे सके, अर्स रूहों बिगर॥१४॥

परमधाम की ब्रह्मसृष्टि धाम धनी की राह पर अपने जीव को न्योछावर करने में जरा भी संकोच नहीं करेंगी। इन ब्रह्ममुनियों के अतिरिक्त संसार के जीव स्वयं को कुर्बान कर ही नहीं सकते।

भावार्थ- इस चौपाई में "जीव देने" का तात्पर्य प्राण छोड़ने से नहीं है, बल्कि अपने प्रियतम के प्रेम में इस प्रकार डूब जाने से है कि सारे संसार का सुख उसे मोह में न डाल सके। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर जीवित ही मृत्यु जैसी स्थिति मानी जाती है। यदि यह माना जाये कि धनी पर न्योछावर होने के लिये यहाँ प्राण छोड़ने का ही प्रसंग है, तो यह प्रश्न खड़ा होता है कि जबरन प्राण छोड़ने के लिये कौन सा साधन अपनाया

जाये? जबरन प्राण छोड़ना आत्महत्या मान जायेगा, जो दूसरों की हत्या के बराबर ही पाप है। इसकी स्वीकृति न तो श्रीमुखवाणी में है और न ही किसी अन्य धर्मग्रन्थ में है।

यदि कयामतनामा ग्रन्थ की इस चौपाई का उद्धरण दिया जाये—

सुनत बिछोहा हादी का, पीछे साबित राखे पिंड।

धिक धिक पड़ो तिन अकलें, वह नाहीं वतनी अखंड।।

तो इसका मूल भाव भी धनी के विरह की प्रगाढ़ता को दर्शाने में है। यदि धनी के विरह और प्रेम में शरीर छूटता है तो कोई दोष नहीं है, किन्तु भूख से तड़प-तड़पकर, या मन और शरीर को किसी माध्यम से कष्ट देकर शरीर छोड़ना उचित नहीं है।

अर्स तन रूह मोमिन, लोभ न झूठा ताए।

मोमिन जुदागी न सहें, ज्यों दूध मिसरी मिल जाए॥१५॥

ब्रह्मसृष्टियों के मूल तन परमधाम में है, इस झूठे संसार का लोभ उन्हें नहीं सताता। ब्रह्ममुनि अपने धनी से जरा भी जुदायगी सहन नहीं कर पाते। जिस प्रकार दूध और मिश्री मिलकर एकरूप हो जाते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मसृष्टि और धनी का एक ही स्वरूप होता है।

लिखी फकीरी ताले मिने, अपने हादी के।

कदम पर कदम धरें, मोमिन कहिए ए॥१६॥

सबको परमधाम की राह दिखाने वाले (हिदायत करने वाले) हादी श्री महामति जी के भाग्य में फकीरी (वैरागीपना) ही लिखी है। ब्रह्मसृष्टि वही है, जो श्री महामति जी द्वारा दर्शाये हुए मार्ग का अवलम्बन करे।

एक हक बिना कछू न रखें, दुनी करी मुरदार।

अर्स किया दिल मोमिन, पोहोंचे नूर के पार॥१७॥

ब्रह्ममुनि अपने दिल में श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु को नहीं बसाते। उनके लिये सारा संसार ही नश्वर (मुर्दार) प्रतीत होता है। धाम धनी इनके दिल को धाम बनाकर उसमें विराजमान होते हैं। इनकी आत्मिक दृष्टि अक्षर से भी परे परमधाम पहुँचती है।

महामत कहें ए मोमिनो, ए है अपनी गत।

झूठ वास्ते जुदे ना पड़ें, मोमिन अर्स वाहेदत॥१८॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! आप परमधाम की वाहिदत के रहने वाले हैं, इसलिये अपनी चाल ऐसी होनी चाहिए कि झूठी माया के लिये धनी से या सुन्दरसाथ से कभी भी अलग न हों।

इन महंमद के दीन में, जो ल्यावेगा ईमान।

छत्रसाल तिन ऊपर, तन मन धन कुरबान॥१९॥

श्री छत्रसाल जी कहते हैं कि श्री प्राणनाथ जी (आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिबबुजमां) के बताये हुए धर्म की राह पर जो विश्वास लायेगा, उस सुन्दरसाथ पर मैं अपने तन, मन, धन से न्योछावर हूँ।

प्रकरण ॥११८॥ चौपाई ॥१७१९॥

राग श्री परज

मेड़ता के राजाराम भाई की सुपुत्री थी ललिता। शरीर से कुबड़ी और रंग से काली। भला ऐसी युवती से कौन विवाह करता? जिसका हाथ कोई नहीं पकड़ता, उसके भी साथ पल-पल धनी हैं। श्री जी सुन्दरसाथ की जागनी के लिये मेड़ता में पधारे थे। एक दिन स्नान करते समय उन्होंने जल का छींटा ललिता के ऊपर फेंक दिया। यह क्या! ललिता सर्वांग सुन्दरी बन गयी। उसने पहचान लिया कि यह जल के छींटे फेंकने वाला कोई मानव या देवता नहीं, बल्कि मेरी आत्मा का प्राणवल्लभ है। बस फिर क्या था, अब ललिता ने अपना सर्वस्व श्री जी के चरणों में न्योछावर कर दिया। इसी प्रसंग में "ललिता" के नाम से और श्री महामति जी के तन से यह कीर्तन उतरा है।

वारी रे वारी मेरे प्यारे, वारी रे वारी।

टूक टूक कर डारों या तन, ऊपर कुंज बिहारी॥१॥

परमधाम के कुञ्ज-निकुञ्जों में विहार करने वाले मेरे प्राण प्रियतम! मैं आप पर बारम्बार बलिहारी जाती हूँ। मैं अपने इस शरीर को टुकड़े-टुकड़े करके आप पर न्योछावर करती हूँ।

सुन्दर सरूप स्याम स्यामाजी को, फेर फेर जाऊं बलिहारी।

इन दोऊ सरूपों दया करी, मुझ पर नजर तुमारी॥२॥

युगल स्वरूप श्री राजश्यामा जी का स्वरूप अति सुन्दर है। मैं बार-बार उन पर बलिहारी जाती हूँ। इन दोनों स्वरूपों ने दया करके मेरे ऊपर ऐसी मेहर की है। हे धनी! निसबत के सम्बन्ध से मेरे ऊपर हमेशा ही आपकी मेहर भरी नजर रही है।

भावार्थ- मन में यह संशय होता है कि यहाँ युगल स्वरूप का सम्बोधन किसके लिये है- परमधाम में विराजमान युगल स्वरूप के लिये, या श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान युगल स्वरूप के लिये, या श्री बाई जू राज और श्री जी के लिए?

महाराजा छत्रसाल जी ने वाहिदत के सम्बन्ध से ही श्री बाई जी को श्यामा जी माना और श्री जी के साथ बैठाकर आरती उतारी। वस्तुतः बाई जी के अन्दर तो श्री अमलावती जी की आत्मा थी। श्यामा जी तो महामति जी के धाम हृदय में विराजमान हैं। यहाँ पर ललिता जी द्वारा जिन युगल स्वरूप की बात की गयी है, वे श्री जी और बाई जी नहीं हैं, बल्कि वे युगल स्वरूप हैं जो परमधाम तथा महामति जी के धाम हृदय में विराजमान हैं।

इन जेहेर जिमी से कोई ना निकस्या, अमल चढ़यो अति भारी।

मुझ देखते सैयल मेरी, कैयों जीत के बाजी हारी॥३॥

मायावी विषयों के जहर से भरपूर इस संसार-सागर से आज तक कोई भी नहीं निकल सका। सबके ऊपर माया का नशा बहुत अधिक चढ़ा हुआ है। मेरी आँखों के सामने अनेक सुन्दरसाथ ने जीतते-जीतते भी माया की बाजी हार दी, अर्थात् तारतम ज्ञान द्वारा धनी के ईमान पर तो वे खड़े हो गये थे, किन्तु प्रेम न होने से अपने दिल में धनी को नहीं बसा सके। इसका परिणाम यह हुआ कि माया उन पर हावी हो गयी और वे जीतते-जीतते भी हार गये।

कारी कुमत कूब कुचल, ऐसी कठिन कठोर हूं नारी।

आतम मेरी निरमल करके, सेहेजें पार उतारी॥४॥

हे धनी! मेरा शरीर का रंग काला था, मैं तुक्ष बुद्धि वाली थी, कुबड़ी थी, और अपंग भी थी। इसके साथ ही मैं बहुत कठिन और कठोर हृदय वाली स्त्री थी, किन्तु आपने अपनी मेहर से मुझे सर्वांग सुन्दरी बना दिया। मेरा कुबड़ापन और कालापन भी आपने दूर कर दिया। अब मेरा हृदय प्रेम रस से बहुत ही कोमल हो गया है। आपने मेरी आत्मा को निर्मल करके बहुत ही सरलता से इसे भवसागर से पार कर दिया।

भावार्थ- आत्मा तो परात्म की नजर होने से स्वतः ही निर्मल है। वह जीव के अन्तःकरण के सहयोग से ही माया में स्वयं को फँसा हुआ मानती है। आत्मिक दृष्टि से जब उसका सम्बन्ध परमधाम से जुड़ जाता है, तो उसे निर्मल हुआ मान लिया जाता है।

सुन्दर सरूप सुभग अति उत्तम, मुझ पर कृपा तुमारी।
कोट बेर ललिता कुरबानी, मेरे धनी जी कायम सुखकारी॥५॥
हे मेरे प्रियतम! आपका स्वरूप अति सुन्दर, सुख देने
वाला, और अति उत्तम है। मेरे ऊपर आपकी अपार
कृपा है। आप अखण्ड सुख के देने वाले हैं। मैं (ललिता)
आपके ऊपर करोड़ों बार न्योछावर होती हूँ।

प्रकरण ॥११९॥ चौपाई ॥१७२४॥

राग मारू

यह कीर्तन श्री ५ पद्मावती पुरी धाम में सुन्दरसाथ को सिखापन देने के लिये अवतरित हुआ है। जागनी यात्रा में सुन्दरसाथ को जो कष्ट झेलने पड़े, उसके कारण मन में यह भावना रहती थी कि यदि हमने घर-द्वार नहीं छोड़ा होता तो ज्यादा अच्छा था। यह कीर्तन उसी प्रसंग से जुड़ा हुआ है।

साथ जी ऐसी मैं तुमारी गुन्हेगार॥टेक॥

कर कर बानी सुनाई तुम को, किए खलक खुआर।

अनेक पख देखाए तुम को, छोड़ाए के प्रवार॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे सुन्दरसाथ जी ! मैं आपका बहुत अधिक गुनहगार हूँ। मैंने आपको परमधाम की वाणी क्या सुनायी, संसार में दुःखी ही किया। मैंने

आप सबको परिवार से अलग करके जीवन के अनेक पक्षों को दिखाया।

भावार्थ- सुख-दुःख, मान-अपमान, हानि-लाभ, संयोग-वियोग आदि जीवन के अनेक पक्ष हैं। प्रायः प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवनकाल में इन पक्षों से होकर गुजरना ही पड़ता है।

कुटम कबीले माहें अपने, बैठे हते करार।

साख दे दे भाने सोई, दिए दुख अपार॥२॥

आप अपने परिवार तथा सगे-सम्बन्धियों में आनन्दपूर्वक रह रहे थे। धर्मग्रन्थों की साक्षियों से संसार को नश्वर बताकर, मैंने परिवार से भी आप लोगों को अलग कर दिया। इस प्रकार घर-द्वार छुड़वाकर मैंने आपको अनन्त दुःख दिया है।

अनेक अवगुन मैं किए तुमसों, जिनको नहीं सुमार।

घर घर के किए मैं तुमको, छुड़ाए फिराए राज द्वार॥३॥

हे साथ जी! मैंने आपके प्रति बहुत से अपराध किये हैं, जिनकी कोई सीमा नहीं है। मैंने आपसे मन्दसौर आदि स्थानों में घर-घर भिक्षा माँगवायी तथा राजमहलों के चक्कर लगवाये।

भावार्थ- मन्दसौर में लगभग ८ माह तक सुन्दरसाथ को भिक्षा माँगनी पड़ी, तथा जागनी कार्य हेतु राजा जसवन्त सिंह, खड़कारी नरेश, राजा भाव सिंह आदि के यहाँ सुन्दरसाथ को जाना पड़ा, जिसे राजद्वारों में भटकाना कहा गया है।

जुदे पहाड़ों रूलाए रलझलाए, दे दे सब्दों का मार।

कर उपराजन खाते अपनी, होए घर में सिरदार॥४॥

पहले अपने-अपने घरों के आप मुखिया (प्रधान) थे।
 अर्थोपार्जन करके आनन्दपूर्वक खाते-पीते थे। मैंने वाणी
 चर्चा के ज्ञान से आपका घर-परिवार सब छुड़वा दिया।
 मेरे साथ रहने से आपको पहाड़ों में तरह-तरह के कष्ट
 झेलते हुए भटकना पड़ा।

सुख शीतल सों अपने घर में, कई भांतों करते प्यार।

सो सारे कर दिए दुस्मन, जासों निस दिन करते विहार॥५॥

पहले आप अपने-अपने घरों में हृदय को शीतल करने
 वाले सुखों का उपभोग करते हुए जीवन व्यतीत करते थे
 और अपने सगे-सम्बन्धियों के मधुर प्यार में डूबे हुए थे।
 मेरी चर्चा सुनकर आपको सारा संसार झूठा लगने लगा
 और अपने सगे-सम्बन्धियों को आपने आत्म-कल्याण
 का शत्रु समझकर छोड़ दिया। इन्हीं सगे-सम्बन्धियों के

साथ तो आपका वर्षों का मधुर प्रेम चला आ रहा था।

भावार्थ- इस सम्पूर्ण प्रकरण में श्री जी ने उन सुन्दरसाथ को बहुत प्यार भरी चपत लगायी है, जो घर-द्वार छोड़ने के बाद भी घर की याद करते थे। जिन्होंने श्री जी के स्वरूप को अक्षरातीत के स्वरूप में पहचान लिया, उन्होंने तो एक पल भी धनी से अलग होना अपना दुर्भाग्य समझा, लेकिन जीवसृष्टि के अँकुर वाले सुन्दरसाथ की मानसिकता पूर्व के मोह से जुड़ी रही। उन्हीं को सिखापन देने हेतु यह प्रकरण अवतरित हुआ है।

बाल गोपाल माहें खूबी खुसाली, करते मिल नर नार।

सो जेहेर समान कर दिए तुमको, छुड़ाए मीठो रोजगार॥६॥

आप सभी पति-पत्नी सुन्दरसाथ अपने छोटे-छोटे

बच्चों में बहुत आनन्दपूर्वक रहा करते थे। मेरा यह अपराध है कि मैंने अपनी वाणी चर्चा से माया का मीठा व्यापार आपसे अलग कर दिया, अर्थात् आपको वही परिवार तथा बाल-बच्चे जहर के समान कष्टदायी लगने लगे।

विध विध जीत करत माया में, सो ए देवाई सब डार।

कई दृष्टान्त दे दे काढ़े, कर न सके विचार॥७॥

सांसारिक जीवन (माया) में आप अनेक प्रकार से विजय प्राप्त करते थे, किन्तु मैंने वह सब कुछ छुड़वा दिया। मैंने चर्चा में अनेक प्रकार के दृष्टान्तों से संसार की नश्वरता एवं सारहीनता का बोध कराया तथा आपको घर-द्वार के बन्धनों से निकाला। मेरी बातों के विरोध में आपको सोचने का अवसर ही नहीं मिला।

मीठी माया वल्लभ जीव की, सो छुड़ायो कुटम परिवार।

बड़े घराने सब कोई जाने, उठावते तिनका भार॥८॥

कुटुम्ब-परिवार माया का ऐसा मीठा बन्धन है, जो जीव को बहुत प्रिय लगता है। मैंने इस बन्धन को भी आपसे अलग कर दिया। आप उन बड़े-बड़े घरानों का बोझ उठाते थे, जिनकी प्रतिष्ठा चारों ओर फैली हुई थी, लेकिन मैंने आपको इन सबसे भी छुड़ा दिया।

ऐसे सुख कहूं मैं केते, घर बड़े बड़ो विस्तार।

सो सारे अग्नि होए लागे, जब मैं कहे सब्द दोए चार॥९॥

तुम्हारे घरों के ऐसे बड़े-बड़े सुखों का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ। जब मैंने तुमसे ब्रह्मज्ञान की थोड़ी सी चर्चा की, तो तुम्हें घर-द्वार सहित सब कुछ जलती हुई अग्नि के समान कष्टकारी लगने लगे थे।

ले बड़ाई बैठे थे अपनी, सो छुड़ाए दिए हथियार।

ठीक काहूँ न लगने देऊँ, जाको कछुक अंकूर सुध सार॥१०॥

आप अपने सांसारिक जीवन में मान-प्रतिष्ठा को ही सब कुछ मानकर बैठे थे। मैंने माया के इस हथियार (प्रतिष्ठा) को ही आपसे छुड़वा दिया। जिसे अपने अंकूर की थोड़ी भी सुध हो जाती है, उसे मैं यह संसार किसी भी स्थिति में अच्छा नहीं लगने देता।

भावार्थ- चिन्तामणि, भीम भाई, तथा लालदास जी की गरिमा सर्वत्र फैली हुई थी। प्रतिष्ठा के मोह में फँस जाना आध्यात्मिक जीवन में बहुत बड़ी बाधा है। जब आत्मा जागनी की राह पर कुछ कदम भी चल देती है, तो उसे यह संसार निरर्थक लगने लगता है।

यों कई छल मूल कहूं मैं केते, मेरे टोने ही को आकार।

ए माया अमल उतारे महामत, ताको रंचक न रहे खुमार॥११॥

श्री महामति जी कहते हैं कि माया के बहुत से छल हैं, जिनका वर्णन मैं कहाँ तक करूँ। मैंने अपने स्वरूप पर टोना कर रखा है, अर्थात् मैं अक्षरातीत होते हुए भी ऐसे मानव तन में विराजमान हूँ कि बिना मेरे बताये कोई भी मेरे स्वरूप की पहचान नहीं कर सकता। मैं तारतम ज्ञान तथा प्रेम की राह बताकर माया के नशे को उतार देता हूँ, जिससे उसके अन्दर जरा भी अज्ञानता की खुमारी नहीं रहती।

प्रकरण ॥१२०॥ चौपाई ॥१७३५॥

सिफत तो सारी सब्द में, चौदे तबक के माहें।

कलाम अल्ला न्यारा सबन से, सो क्यों कहूं सिफत जुबांए॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में सच्चिदानन्द परब्रह्म की महिमा धर्मग्रन्थों में गायी गयी है। इन धर्मग्रन्थों में "अल्लाह का वचन" कहा जाने वाला "कुरआन" सबसे अलग है। इसकी महिमा शब्दों में नहीं कही जा सकती।

भावार्थ- यहाँ यह संशय पैदा होता है कि जिस प्रकार कुरआन को "अल्लाह की वाणी" कहते हैं, उसी प्रकार बाइबल को भी "Word of God" कहते हैं। इसी तरह वेदों को "अपौरुषेय" अर्थात् ब्रह्म द्वारा दिया हुआ ज्ञान कहते हैं। वेदों में स्पष्ट कहा गया है-

तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः ऋच सामानि जज्ञिरे।

छन्दांसि ह जज्ञिरे तस्मात् यजु तस्मादजायत्॥

यजुर्वेद ३१/७

अर्थात् उस अविनाशी ब्रह्म से ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, तथा अथर्ववेद का प्रकटन हुआ है। ऐसी स्थिति में कुरआन की महत्ता सर्वोपरि दर्शाना क्या अनुचित नहीं है, जबकि कुरआन के नाम पर जिहाद द्वारा आतंकवाद को बढ़ावा दिया जा रहा है?

वस्तुतः बाइबल में New Testament में जो कुछ लिखा गया है, वह ईसा मसीह के शिष्यों द्वारा उनके वचनों का संकलन मात्र है। Old Testament में अनेक मनीषियों के विचारों का संकलन है। अक्षर ब्रह्म की ज्ञानधारा सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य, और अंगीरा के अन्दर प्रकट हुई। इसमें नाममात्र का भी संशय नहीं है। वेद का ज्ञान सार्वभौम, सार्वकालिक, और अक्षरशः सत्य है, किन्तु उसका मूल

विषय योगमाया का ब्रह्माण्ड और अक्षर ब्रह्म है। कहीं-कहीं पर अक्षरातीत तथा परमधाम का संक्षिप्त वर्णन अवश्य है। किन्तु कुरआन अक्षर (मुहम्मद) और अक्षरातीत के बीच होने वाली वार्ता है, जो ९०,००० हरुफों में पूर्ण हुई। भिन्न - भिन्न प्रसंगों में यह वार्ता मुहम्मद साहिब के तन से जिबरील द्वारा अवतरित होती रही। कुरआन का मूल विषय अक्षरातीत है, इसलिए इसकी महत्ता सर्वोपरि मानी जाती है।

दुर्भाग्यवश कुरआन को सही अर्थों में प्रस्तुत नहीं किया गया। मुहम्मद साहिब के देह-त्याग के पश्चात् ही कुरआन का लेखन कार्य प्रारम्भ हुआ, जिसमें दुष्ट यजीद बिन मुवाईया द्वारा काफी फेरबदल करने का प्रयास किया गया। जिस प्रकार सायण, महीधर, उव्वट आदि ने वेदों का अर्थ मूल आशय के विपरीत किया है, उसी प्रकार

कुरआन की आयतों का भी ऐसा अर्थ किया जाता है जो या तो दंगों को जन्म देता है या दूसरे धर्मावलम्बियों पर हिंसा करने की (इस्लाम स्वीकार न करने पर) स्वीकृति देता है।

निःसन्देह तारतम ज्ञान द्वारा ही वेद और कुरआन के वास्तविक अभिप्राय को जाना जा सकता है। बिना तारतम ज्ञान के कुरआन द्वारा भी शरीयत और तरीकत से परे नहीं हुआ जा सकता।

तामें सिफत सोफी महंमद की, याकी गरीब गिरो की सिफत।
सो करसी कायम त्रैलोक को, एही खावंद आखिरत॥२॥

इस कुरआन में श्री प्राणनाथ जी (ब्रह्म को जानने वाले आखिरी मुहम्मद) और विनम्रता से भरपूर उनके ब्रह्ममुनियों (मोमिनों) की प्रशंसा गायी गयी है। कियामत

के समय में यही सबके लिए परमात्मा के स्वरूप हैं और यही चौदह लोक (तीनों लोक) के इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अखण्ड मुक्ति देंगे।

सो वचन लिखें हैं इसारतों, पाइए खुले हकीकत।

उपले माएने न पाइए, जो अनेक दौड़ाओ मत॥३॥

कुरआन में ये बातें संकेतों में लिखी हैं। इनके रहस्य खुलने पर ही वास्तविकता का पता चलता है। भले अपनी बुद्धि कितनी ही क्यों न दौड़ाई जाये, लेकिन बाह्य अर्थों से कुरआन के आशय को कदापि नहीं समझा जा सकता।

गोस कुतब पैगंमर, ओलिए अंबिए कई नाम।

ताए कई बिध दई बुजरकियां, साहेब के समान॥४॥

कुरआन के जानकार एवं सूफी सन्तों ने गोस, कुतब, पैगम्बर, औलिए, अंबिए आदि नामों की अनेक प्रकार से महिमा गायी है और इन्हें खुदा की शोभा के समान माना है।

भावार्थ- दीन इस्लाम में सूफी सम्प्रदाय के अन्तर्गत मुख्यतः चिश्ती, कादिरी, नक्शबंदी, सुहरावर्दी इत्यादि अनेक उपसम्प्रदाय हैं। इनकी साधना-पद्धति मूलतः अद्वैतवाद के अन्तर्गत प्रेममार्गी उपासना है, जिसमें परब्रह्म के साथ आशिक-माशूक का भाव समाहित होता है तथा इसका मार्ग सद्गुरु को प्रसन्न करके ही प्राप्त होता है। इस मार्ग द्वारा अध्यात्म के चरम आनन्द में लीन हो सकते हैं। इस मार्ग पर चलने वाले को ही फकीर कहा जाता है, एवं इनकी कई श्रेणियाँ ही गौस, कुतुब, औलिया, अंबिया, पैगम्बर इत्यादि नामों से वर्गीकृत हैं।

वेद का स्पष्ट कथन है – "न त्वावां अन्यो" अर्थात् परमात्मा के समान दूसरा अन्य कोई भी नहीं है। इसी प्रकार कुरआन का कथन है – अल्लाह के सिवाय अन्य कोई भी पूज्य नहीं है।

किन्तु जिस प्रकार अग्नि में लोहा डालने पर लोहा भी अग्नि के समान दहकने लगता है, उसी प्रकार ब्रह्म को प्राप्त करने वाला ब्रह्म स्वरूप माना जाता है। उपनिषदों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में इसी स्थिति को "ब्रह्मविदो ब्रह्मेव भवति" (तैत्तिरियोपनिषद) तथा "अहम् ब्रह्मास्मि" (शतपथ) कहा जाता है। इसी प्रकार सूफी परम्परा में इसे "अनहलक" कहा जाता है, क्योंकि इश्क में आशिक (रूह) और माशूक (खुदा) का एक ही स्वरूप होता है।

सो सिफत सब महंमद की, सो महंमद कहा जो स्याम।
अव्वल आखिर दोऊ दीन में, एही बुजरक महंमद नाम॥५॥
उपरोक्त चौपाई में वर्णित सारी शोभा श्री प्राणनाथ जी
(आखिरी मुहम्मद) की है। ये वही मुहम्मद हैं, जिन्हें
"श्याम" के नाम से वर्णित किया गया है। इस्लाम धर्म में
अव्वल के मुहम्मद तथा हिन्दू धर्म में श्री प्राणनाथ जी
(आखिरी मुहम्मद) की महिमा गायी गयी है।

भावार्थ- हिन्दू धर्मग्रन्थों में वर्णित रास विहारी श्याम
ही कुरआन के साम हैं, जिनकी किशती का वर्णन
कुरआन पारा १९ सूरः २६ आयत ११९, १२० तथा
पारा २९ सूरः ६९ आयत ७ में है। गुरुग्रन्थ साहिब में
भी इसका उल्लेख है।

याही बिध गिरोह की, नाम लिखे अनेक।

जुदे जुदे नामों पर सिफत, पर गिरो एक की एक॥६॥

इसी प्रकार ब्रह्मसृष्टियों की भी अनेक प्रकार के नामों से महिमा गायी गयी है। ब्रह्मसृष्टियों (रुहों) की जमात एक ही है, लेकिन नाम अलग-अलग बताये गये हैं।

भावार्थ— कुरआन में ब्रह्मसृष्टि को अँगूर, ईश्वरी सृष्टि को खेती, और जीव सृष्टि को घास-पात करके वर्णन किया गया है। यह प्रसंग कुरआन के सिपार: ३० सूर: कद्र ९७, तथा सिपार: ३ सूर: आले ३ में है। इसी प्रकार रूहें, फरिश्ते, और कुंन की पैदाइश कहकर भी तीनों का वर्णन है।

तिनकी भी है तफसीर, सुनियो गिरो मोमिन।

मारफत दरवाजा खोलिया, दिल दीजो नजर वतन॥७॥

हे सुन्दरसाथ जी! कुरआन में ब्रह्मसृष्टि के अतिरिक्त
अन्य का भी वर्णन है, उनका विवरण सुनिए। अब धनी
ने मारिफत के ज्ञान का दरवाजा खोल दिया है, इसलिए
परमधाम में ध्यान लगाने में अपना दिल लगाना।

गिरो एक बुजरक कही, रूह अल्ला आये तिन पर।

इत जादे पैगंमर दो भए, एक नसली और नजर॥८॥

कुरआन में एक महान सृष्टि का वर्णन है, जिसमें रूह
अल्लाह (श्यामा जी) आये। उनके दो पुत्र पैगम्बर हुए—
एक नसली पुत्र बिहारी जी और दूसरे नजरी पुत्र श्री
मिहिरराज।

तिनसे राह जुदी हुई, गिरो दोए हुई झगर।

एक उरझे दीन जहूद के, उतरी किताबें दूजे पर॥९॥

उनमें झगड़ा होने से अलग-अलग दो रास्ते बन गये। नसली पुत्र बिहारी जी हिन्दुओं के कर्मकाण्ड एवं गादीवाद में उलझ गये, जबकि दूसरे पुत्र श्री मिहिरराज के तन से ब्रह्मवाणी का अवतरण हुआ।

सो भाई न माने किताब को, रोसनाई ढांपे फेर फेर।

तब आया दूजे पर महंमद, सब किताबें ले कर॥१०॥

बिहारी जी ने श्री मिहिरराज जी के तन से अवतरित होने वाली किताबों (रास, प्रकाश, खट्कृतु, तथा कलश) को स्वीकार नहीं किया और बार-बार उसके फैलाव में बाधायें खड़ी करते रहे। तब श्री मिहिरराज जी के अन्दर श्यामा जी (मुहम्मद) परमधाम की सभी किताबों (खिलवत, परिक्रमा, सागर, और श्रृंगार) को लेकर अवतरित हुईं।

भावार्थ- इस चौपाई में मुहम्मद शब्द "श्यामा जी" के लिये प्रयुक्त हुआ है, जैसे- "ए खेल हुआ महंमद वास्ते, महंमद आया वास्ते रूहन।" कलश ग्रन्थ सूरत में पूर्ण हो चुका था। वि.सं. १७३५ से श्यामा जी की बादशाही के ४० वर्ष प्रारम्भ होते हैं। प्रकाश हिंदुस्तानी, कलश हिंदुस्तानी, तथा सनंध ग्रन्थ भी १७३५ के पश्चात् ही उतरे हैं। खिलवत, परिक्रमा, सागर, तथा शृंगार आदि ग्रन्थ भी १७३५ के पश्चात् ही अवतरित हो सकते थे। खुलासा, सिन्धी, मारिफत सागर, तथा कयामतनामा भी बाद में अवतरित हुए। इसी कारण इस चौपाई में कहा गया कि श्यामा जी इन ग्रन्थों को लेकर आयीं, यद्यपि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्तर्धान के पश्चात् ही श्री श्यामा जी श्री इन्द्रावती जी के धाम हृदय में विराजमान हो चुकी थीं।

एही फिरका नाजी कहा, दे साहेदी फुरमान।

एक नाजी नारी बहत्तर, एही नाजी की पेहेचान॥११॥

कुरआन में यह साक्षी है कि यह फिरका नाजी (अखण्ड धाम की राह पर चलने वाला) होगा, शेष बहत्तर फिरके दोजखी होंगे। नाजी की पहचान यही होगी कि वह श्री जी के दर्शाये हुए मार्ग पर चलने वाला होगा।

भावार्थ— कुरआन में यह प्रसंग है कि मुहम्मद साहिब के ७३ फिरके होंगे, जिसमें केवल एक ही सही राह पर चलेगा, शेष ७२ फिरके दोजखी होंगे। वास्तविक नाजी फिरका वही है, जो तारतम ज्ञान से एक अक्षरातीत की पहचान रखता हो तथा हकीकत एवं मारिफत की राह पर चलता हो।

एही गिरो खासी कही, जिनमें महंमद पैगंमर।

हकीकत मारफत खोल के, जाहेर करी आखिर॥१२॥

इस नाजी फिरके को ही खासलखास मोमिनो (ब्रह्ममुनियों) की जमात कहा गया है, जिसमें श्री प्राणनाथ जी का प्रकटन हुआ। उन्होंने हकीकत एवं मारिफत का ज्ञान देकर कियामत के समय का आना स्पष्ट किया।

जब खुली हकीकत मारफत, तब मजहब हुए सब एक।

तब सबके दिल धोखा मिट्या, हुए रोसन पाए विवेक॥१३॥

जब हकीकत एवं मारिफत का ज्ञान प्रकट हो गया, तो संसार के सभी मतों ने शरीयत एवं तरीकत को छोड़कर एक सत्य की राह अपना ली। उन सबके हृदय तारतम ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित हो गये तथा उनकी विवेक

दृष्टि भी खुल गयी। उनके मन में अज्ञानता के कारण जो धोखा था, वह भी मिट गया।

भावार्थ- संसार के सभी मत-पन्थ तारतम ज्ञान के प्रकाश में ही उस परम सत्य का साक्षात्कार कर सकेंगे। हकीकत एवं मारिफत के ज्ञान से ही सारे संसार को सत्य के झण्डे के नीचे खड़ा किया जा सकता है, किन्तु कुरआन के इस अभिप्राय को न समझने के कारण ही जाहिरी मुसलमान आतंक के सहारे अपनी शरीयत को सारे संसार पर थोपना चाहते हैं। हिंसा के सहारे न तो किसी का हृदय-परिवर्तन हो सकता है और न ही किसी को अध्यात्म के सच्चे पथ पर चलाया जा सकता है।

एती बातें कुरान में, बिध बिध करी रोसन।

कई नाम धर दर्ई बुजरकियां, सो बल महंमद और मोमिन॥१४॥

इस प्रकार कुरआन में कई बातें अनेक प्रकार से कही गयी हैं। अलग-अलग नामों और प्रसंगों से श्री प्राणनाथ जी तथा सुन्दरसाथ की महिमा का वर्णन किया गया है।

**कहे महामत मुसाफ उमत की, सिफत न आवे जुबान।
तीनों अर्स अजीम के, ईसे किए बयान॥१५॥**

श्री महामति जी कहते हैं कि कुरआन में वर्णित इन ब्रह्मसृष्टियों की महिमा का शब्दों में वर्णन नहीं हो सकता। श्यामा जी ने कहा है कि वह (रूह अल्लाह), श्री प्राणनाथ जी (इमाम महदी), तथा सुन्दरसाथ (मोमिन) तीनों ही परमधाम से आये हैं।

प्रकरण ॥१२१॥ चौपाई ॥१७५०॥

ब्रह्मसृष्टि बीच धाम के, ए देखें खेल सुपन।

मोहे स्यामाजीएं यों कहा, जो आए धाम से आपन॥१॥

श्री महामति जी कहते हैं कि ब्रह्मसृष्टियाँ परमधाम के मूल मिलावा में बैठकर इस माया के खेल को देख रही हैं। मुझसे श्यामा जी ने कहा कि हम सब परमधाम से इस माया का खेल देखने के लिये आये हुए हैं।

थे हम दोऊ बंदे स्यामाजीय के, एक नसली और नजरी।

झगड़ दोऊ जुदे हुए, देने खबर पैगंमरी॥२॥

मैं और बिहारी जी दोनों ही सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के भक्त (बन्दे) थे। हम दोनों ही उनके ज्ञान का प्रचार करना चाहते थे। इस लक्ष्य को पाने के लिये हम दोनों झगड़कर अलग-अलग हो गये।

भावार्थ- "बन्दगी" का अर्थ भक्ति करना होता है। इस

प्रकार "बंदे" का तात्पर्य है— पुत्र, शिष्य, या सेवक के रूप में श्रद्धापूर्वक सेवा करने वाला।

तब केतिक गिरो उधर भई, और केतिक मेरे साथ।

दई जाहेर मसनंद नसलिएं, दूजी बातून मेरे हाथ॥३॥

तब कुछ सुन्दरसाथ बिहारी जी की ओर हो गये तथा कुछ मेरे साथ हो गये। धाम धनी ने चाकला मन्दिर की जाहिरी गद्दी बिहारी जी को दी तथा बातूनी गद्दी मुझे दी, अर्थात् युगल स्वरूप ने मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर मुझे अध्यात्म जगत् के वास्तविक सिंहासन पर बैठा दिया।

उतरी किताबें हम पे, गिरो नसली न माने सोए।

तब आया पैगंमर हममें, अब कह्या महंमद का होए॥४॥

मेरे तन से परमधाम की सम्पूर्ण वाणी का अवतरण हुआ, किन्तु बिहारी जी के अनुयायियों ने उसे स्वीकार नहीं किया। तब मेरे अन्दर श्यामा जी आकर विराजमान हो गयीं। अब सब कुछ वही घटित होगा, जो वे कहेंगी अर्थात् चाहेंगी।

भावार्थ— इस प्रकरण से पूर्व के प्रकरण (१२१) में कहा गया है कि श्री मिहिरराज जी के अन्दर मुहम्मद अर्थात् श्यामा जी आयीं। इस १२२वें प्रकरण में लिखा है कि पैगम्बर आये। यहाँ पैगम्बर शब्द का भाव अरब के रसूल से न लेकर श्यामा जी से ही लिया जायेगा, क्योंकि वे श्री राज जी के दिल की सारी बात वाणी द्वारा कह रही हैं। यह वाणी श्यामा जी की रसना है। जब पूर्व प्रकरण में श्यामा जी (मुहम्मद) के विराजमान होने का उद्देश्य ग्रन्थों का अवतरण है, तो इस प्रकरण में श्यामा जी के

आने का उद्देश्य निर्देश देना होगा। यहाँ रसूल साहिब का प्रसंग नहीं है।

सो हकीकत सब कुरान में, कई ठौरों लिखी साख।

जो ग्वाही लिखी आप साहेबें, कहूं केती हजारों लाख॥५॥

इस सम्पूर्ण घटनाक्रम की साक्षी कुरआन में अनेक स्थानों पर लिखी हुई है। धाम धनी ने इस प्रकार कुरआन के अन्दर बहुत सी (हजारों-लाखों) साक्षियाँ लिखी हैं, जिनका वर्णन मैं कहाँ तक करूँ।

भावार्थ- हजारों-लाखों साखियों का वर्णन कुरआन में सम्भव नहीं है, क्योंकि हरुफों की संख्या ही एक लाख से कम है। वस्तुतः यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार की काव्यमयी भाषा का प्रयोग हुआ है।

हम दोऊ बंदे रूहअल्लाह के, दोऊ गिरो जुदी भई।

तीसरी सृष्ट जो जाहेरी, सब मजकूर इनकी कही॥६॥

मैं और बिहारी जी दोनों ही सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के भक्त थे। हम दोनों की जमातें अलग-अलग हो गयीं। ब्रह्मसृष्टि तथा ईश्वरीसृष्टि मेरे साथ हो गयीं। गादी को प्राथमिकता देने वाली जीवसृष्टि बिहारी जी के साथ लग गयी। यह सारा वर्णन कुरआन में लिखा हुआ है।

ठौर ठौर दई बड़ाइयां, मिने सब हमारी बात।

केती कहूं मेहेरबानगी, मेरे धनी करी साख्यात॥७॥

मेरे धाम धनी ने जो मेरे ऊपर साक्षात् मेहर की है, उसे मैं कहाँ तक कहूँ। कुरआन में अलग-अलग प्रसंगों में हमारी ही बातें कथानकों के रूप में वर्णित हैं। उनमें हर जगह हमारी ही महिमा गायी गयी है।

महामत कहें कोई दिल दे, ए देखेगा मजकूर।

तिन रूह पर इमाम का, बरसे वतनी नूर॥८॥

श्री महामति जी कहते हैं कि जो भी सुन्दरसाथ इस प्रसंग पर सच्चे दिल से चिन्तन करेगा, उसके दिल में इमाम महदी श्री प्राणनाथ जी की कृपा से परमधाम के ज्ञान की वर्षा होगी।

प्रकरण ॥१२२॥ चौपाई ॥१७५८॥

चरचरी छंद

यह कीर्तन रास लीला से सम्बन्धित है और मेड़ता में अवतरित हुआ है।

स्यामाजी स्याम के संग, जुवती अति जोर जंग।

करती पूरन रंग, परआत्म परे॥१॥

अति सुन्दर किशोर स्वरूप वाली श्यामा जी अपने प्रियतम श्री राज जी के साथ बहुत अधिक उत्साह के साथ रास लीला कर रही हैं। वे अपनी परात्म से परे श्री राज जी के साथ पूर्ण आनन्द का रसपान कर रही हैं।

भावार्थ- जिस प्रकार अक्षर से परे अक्षरातीत हैं, उसी प्रकार आनन्द अंग श्यामा जी एवं सखियों के तनों से परे ही चिद्धन स्वरूप श्री राज जी को माना जाता है। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी में कहा गया है – "केहेनी लीला

अछरातीत की, जो परआतम के पार।" इससे यह स्पष्ट होता है कि इस प्रकरण की पहली चौपाई के चौथे चरण में जो "परआतम परे" कहा गया है, वह "श्री राज जी" के लिये ही कहा गया है।

अंग अंग उछरंग, सखी सखी मन उमंग।

अलबेली अति अभंग, भामनी रस भरे॥२॥

रास लीला के लिये प्रत्येक सखी के अंग-अंग में उत्साह है और मन में उमंग भरी है। सखियों के हृदय में बहुत अधिक प्रेम रस भरा हुआ है और वे अखण्ड मस्ती में ओत-प्रोत होकर लीला कर रही हैं।

छटके छेल कंठ मेल, हांस खेल रंग रेल।

बंध बेल ठमके ठेल, कामनी केलि करे॥३॥

लीला में सखियाँ कभी तो प्रियतम से अलग हो जाती हैं, तो कभी गले से लिपट जाती हैं। वे हँसते हुए आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करती हैं। जिस प्रकार बेल (लता) वृक्ष से लिपट जाती है, उसी प्रकार वे भी धाम धनी से लिपट जाती हैं। कभी वे तुमकती हुई एक-दूसरे को प्रेमपूर्वक धकेलने भी लगती हैं। इस प्रकार वे प्रेम क्रीड़ा का आनन्द लेती हैं।

कंठ हार सजे सिनगार, नैन समार सोभे मुखार।

संग आधार करे विहार, महामती काज सरे॥४॥

श्री महामति जी कहते हैं कि सखियों के गले में हार सुशोभित हैं। वे सभी प्रकार के श्रृंगार से युक्त हैं। नेत्रों में भी अञ्जन आदि का श्रृंगार है। अति सुन्दर मुखारविन्द शोभा ले रहा है। वे अपने प्राणाधार श्री राज जी के साथ

विहार करती हैं और अपने प्रेम की इच्छा को पूर्ण करती हैं।

प्रकरण ॥१२३॥ चौपाई ॥१७६२॥

राग श्री कालेरो

यद्यपि यह कीर्तन श्री महामति जी के तन से उतरा है,
किन्तु छाप "जसिया" सुन्दरसाथ की लगायी गयी है।

हम चडी सखी संग रे, रुड़ा राज सों राखो रंग, सखी रे हमचडी।।टेक।।

सतगुर मारो श्री वालोजी, तेह तणें पाए लागूं।

मूल सगाई जांणी मारा वाला, अखंड सुखडा मांगूं।।१।।

हे सखियों! हमारे अन्दर इस बात की बहुत अधिक चाहना है कि सभी प्यारे श्री राज जी के साथ प्रेम और आनन्द की लीला करें। मेरे सद्गुरु श्री राज जी (वाला जी) हैं। मैं उनके चरणों में प्रणाम करती हूँ। प्रियतम से परमधाम का अपना मूल सम्बन्ध जानकर ही उनसे अखण्ड सुख माँगती हूँ।

सुक जी ना वचन सुणावी काने, ततखिण कीधो अजवास।

आटला दिवस कोणें नव जाण्युं, हवे प्रगट थयो प्रकास॥२॥

मेरे प्रियतम ने शुकदेव जी के वचनों को सुनाकर उसी क्षण मेरे हृदय में ज्ञान का उजाला कर दिया। आज दिन तक किसी ने भी अक्षरातीत परब्रह्म को नहीं जाना था, किन्तु अब तारतम ज्ञान से उनकी स्पष्ट पहचान हो गयी।

आंकडियो माहें छे विस्मी, झीणी गूथण जाली।

जेनो कागल जे पर हुतो, तेणे घूटी सर्वे टाली॥३॥

शुकदेव जी की वाणी (श्रीमद्भागवत्) में बहुत गहन रहस्य वाली गुत्थियाँ हैं, जो बारीक जाली की तरह हैं। यह भागवत ग्रन्थ जिन ब्रह्मसृष्टियों के लिये आया था, उन्होंने ही इसके भेदों को खोला है।

द्रष्टव्य— वर्तमान भागवत ग्रन्थ को शुकदेव या सत्यवती

सुत वेदव्यास जी कृत कहना लोक-श्रुति है। इसी आधार पर श्रीमुखवाणी में इनका नाम आता है।

हवे जेणे ए निध प्रगट कीधी, भली ते बुध प्रकासी।

दीसंतो आकार ज दीसे, पण वेहद पुरनों वासी॥४॥

अब जिन्होंने जाग्रत बुद्धि के तारतम ज्ञान रूपी अखण्ड धन को प्रकट किया है, उनकी ओर देखो! यद्यपि उनका आकार साधारण सा दिखायी पड़ता है, किन्तु वे स्वलीला अद्वैत परमधाम के रहने वाले हैं।

तारतम लई श्री राज पधारया, थयूं ते सर्व ने जाण।

सखियों कहे अमें आवी ने मलसूं, मलिया ते मूल एधाण॥५॥

तारतम ज्ञान का प्रकाश लेकर श्री राज जी स्वयं आये हैं, जिससे सबको परमधाम का ज्ञान हो चुका है।

परमधाम के मूल सम्बन्ध से ही धाम धनी श्री प्राणनाथ जी हमें मिले हैं। सखियाँ कहती हैं कि अब हम सब उनके चरणों में आकर मिलेंगी।

सखियो सर्वे आवी जुजवी, एक बीजीने खोले।

आ लीला केम छानी रेहेसे, सखियो मली सहू टोले॥६॥

इस संसार में सखियाँ अलग-अलग आर्यीं और अब एक-दूसरे को खोज रही हैं। अब सुन्दरसाथ जुत्थबद्ध होकर (समूह में) आ रहे हैं। भला अब यह जागनी लीला कैसे छिपी रह सकती है।

रास रच्यो रमसूं रूडी भांते, प्रगटिया परमाण।

ए सुख सोभा आंणी जिभ्याएं, केम करी करूं वखाण॥७॥

अच्छी तरह से खेलने के लिये ही यह जागनी रास का

खेल बनाया गया है। लीला के लिये स्वयं धाम धनी श्री प्राणनाथ जी भी प्रगट हो गये हैं। जागनी रास की शोभा और सुख का इस जिभ्या से भला मैं कैसे वर्णन कर सकता हूँ।

पेहेली वृन्दावन मां रामत, वली ते आंहीं उत्पन।

आ लीलाओने प्रगट करसे, सुकजी तणें वचन॥८॥

पहले योगमाया के नित्य वृन्दावन में जो रास लीला खेली गयी थी, अब वही जागनी रास के रूप में पुनः प्रकट हुई है। शुकदेव जी के वचनों में इन दोनों लीलाओं के होने की साक्षी मिलेगी।

भावार्थ— पञ्चाध्यायी रास के अन्तर्गत रास लीला का वर्णन है, तथा देवापि और मरु के प्रसंग में यह बात कही गयी है कि जब इन दोनों द्वारा धारण किये गये तनों में

परब्रह्म लीला करेंगे तो कलियुग में ही सतयुग की स्थिति हो जायेगी। वस्तुतः यही जागनी-रास है।

वृज रास आंही तेहज लीला, ते वालो ते दिन।

तेह घड़ी ने तेहज पल, वैराट थासे धन धन॥९॥

इस संसार में होने वाली जागनी लीला में पुनः ब्रज और रास की लीला हो रही है। वही वालाजी (प्रियतम) हैं तथा वही दिन है। वही घड़ी और पल भी वही है। अब तो यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही अखण्ड होकर धन्य-धन्य हो जायेगा।

भावार्थ- जागनी लीला में ब्रज और रास की पुनरावृत्ति का भाव यह है कि इस जागनी ब्रह्माण्ड में हम ध्यान द्वारा योगमाया में अखण्ड होने वाली ब्रज और रास का पूर्ण आनन्द ले सकते हैं। दूसरे शब्दों में ऐसा भी कहा

जा सकता है कि तारतम ज्ञान से जाग्रत होने के पश्चात् ब्रज लीला की तरह संसार के कार्यों को करते हुए हमेशा धनी के प्रेममयी भावों में खोये रहना ही ब्रज लीला का आनन्द है। इसी प्रकार चितवनि (ध्यान) में डूबकर प्रियतम की शोभा के दीदार, तथा चौथी और पाँचवी भोम की लीलाओं आदि में स्वयं को डुबो देना ही रास का आनन्द है।

अमें मांगी रामत राज कनें, ते तां पेहेली दाण देखाडी।

काईक मनोरथ रह्यो मन मांहे, ते रंग भर आहीं रमाडी॥१०॥

हमने श्री राज जी से माया का जो खेल माँगा था, उसे तो उन्होंने पहली बार ब्रज में दिखा दिया, फिर भी मन में कुछ इच्छा रह गयी थी। उस इच्छा को इस जागनी ब्रह्माण्ड में अच्छी तरह दिखाकर पूरा किया है।

श्री श्री जी ने चरण पसाए, जसिया हमची गाए।

थोडा दिनमां चौदे लोकें, आ निध प्रगट थाए॥११॥

बहुत उमंग में भरकर गाते हुए "जसिया" नामक सुन्दरसाथ कहते हैं कि अक्षरातीत श्री जी की कृपा से थोड़े ही दिनों के अन्दर चौदह लोक में इस तारतम वाणी का फैलाव हो जायेगा।

प्रकरण ॥१२४॥ चौपाई ॥१७७३॥

राग मारू

वि. सं. १७१२ से १७१५ के बीच के कीर्तन मेहराज (मिहिरराज) के नाम से उतरे हैं। इन कीर्तनों में अध्यात्म जगत के कड़वे सच को उजागर किया गया है।

वृथा कां निगमो रे, पामी पदारथ चार।

उत्तम मानखो खंड भरथनों, सृष्ट कुली सिरदार॥१॥

श्री मिहिरराज जी कहते हैं कि हे संसार के लोगों! इस ब्रह्माण्ड में चार अनमोल पदार्थ इस प्रकार हैं— १. उत्तम मनुष्य तन २. भरतखण्ड में जन्म मिलना ३. २८वाँ कलियुग ४. ब्रह्मसृष्टियों और उनके प्रियतम अक्षरातीत का सान्निध्य। इन चारों पदार्थों को पाकर भी तुम अपने अनमोल समय को क्यों व्यर्थ में गँवा रहे हो।

भावार्थ— यद्यपि ८४ लाख योनियों में मानव योनि

सर्वोत्तम है, फिर भी इस चौपाई में उत्तम मानव तन मिलने का भाव यह भी है कि मानव योनि में भी ऐसे तन में जन्म मिले, जिसमें आध्यात्मिक संस्कार हों। ज्ञान, संस्कार, और नैतिकता से रहित दुराचारी, मद्यपी, एवं हिंसक मानव का तन पाकर कोई भी लाभ नहीं उठा पाता। उसका जीवन पशुवत् ही होता है। २८वें कलियुग में श्री विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप में अक्षरातीत का प्रकटन होने से ही इसकी महत्ता है।

सेठें तमने सारी सनंधे, सोंप्युं छे धन सार ।

अनेक जवेर जतन करी, तमें लाव्या छो आणी वार॥२॥

उस परब्रह्म ने तुम्हें अच्छी प्रकार से यह चार प्रकार का अमूल्य धन दिया है। हीरे-मोती रूपी बहुत से पुण्यों के संचय से तुम्हें इस बार मानव तन में लाया गया है।

सत वोहोरीने सत ग्रहजो, राखजो रूडी प्रकार।

आणी भोमें रखे भूलतां, पछे सेठ तणो वेहेवार॥३॥

इस संसार में तुम सत्य रूपी धन को ही खरीदना तथा सत्य के स्वरूप परब्रह्म को ही ग्रहण (आत्मसात्) करना। इस सत्य धन को अच्छी प्रकार से सम्भालकर रखना। इस मायावी जगत में तुम उस प्रियतम परब्रह्म को भूल नहीं जाना, क्योंकि बाद में तुम्हें उन्हीं के पास जाना है।

अनेक वार तरफडी मरीने, दुख देखी आव्या छो पार।

लाख चोरासी भमीने आव्या, आहीं मध्य देस वेपार॥४॥

अनेक बार तड़प-तड़पकर मरने के पश्चात् दुःख देखने के लिये इस मानव तन में आए हो। चौरासी लाख योनियों में भटकने के पश्चात् तुम इस मृत्युलोक में संसार

से पार होने के लिये आए हुए हो।

भावार्थ- अन्य योनियों में मात्र दुःखों का भोग करना होता है, जबकि मानव योनि में बुद्धि और विवेक होने से सांसारिक दुःखों को ज्ञान-दृष्टि से कूटस्थ होकर देखा जाता है तथा उससे मुक्त होने का उपाय भी सोचा जाता है। अन्य सभी योनियों में यह सब सोचने का सामर्थ्य ही नहीं है।

हाट पीठ रलियामणा, चौटा चोरासी बाजार ।

मन चितवी वस्त आंही मले, पण खरा जोइए खरीदार॥५॥

इस संसार में मत-पन्थों के सुन्दर-सुन्दर हाट (बाजार), पीठें (बड़े बाजार), और चौबारे (धाम स्थान) हैं, जहाँ चार प्रकार की सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, तथा सायुज्य मुक्ति दिलाने का दावा किया

जाता है, तो चौरासी लाख योनियों में जाने का रास्ता भी खुला हुआ है। यहाँ मनचाही वस्तु मिलती है, परन्तु खरीदने वाला खरा (विवेकवान) होना चाहिए।

एणी बाजारे कूड कपट, छल छे भेद अपार।

चौद भवन नी खरीद आंहीनूं, मांहे कोई कोई छे साहुकार॥६॥

माया के इस बाजार में अपार झूठ, कपट, छल, और भेदभाव है। चौदह लोकों की खरीदारी यहीं पर होती है। इनमें कोई-कोई ही साहुकार होते हैं।

भावार्थ- पृथ्वी लोक को चौदह लोकों की खरीदारी का स्थान कहने का भाव यह है कि यहाँ पर जो जैसा कर्म करता है, उसके अनुसार ही चौदह लोकों में सुख या दुःख भोगने के लिये जाना पड़ता है। इस चौपाई में साहुकार उन लोगों को कहा गया है, जो जीवन भर धर्म

का आचरण करते रहे हैं और जिनके पास पुण्य का बल अधिक होता है। ये लोग ही सत्य के ग्राहक होते हैं।

चौद लोक कमायूं खाय आहींनू, नथी बीजो कोई ठाम।

अधखिण वारो आंहीं पामिंए, ए धन मूल अमान॥७॥

चौदह लोकों में सुख या दुःख भोगने की भूमिका इस पृथ्वी लोक में ही तैयार होती है। इसके अतिरिक्त कर्मभूमि के लिये कोई अन्य स्थान नहीं है, अर्थात् शेष सभी तेरह लोक भोग लोक हैं। यहाँ पर तुम्हें बहुत थोड़ी उम्र (आधे क्षण जैसी) मिली है। अखण्ड सुख को पाने के लिये यह समय असीम मूल्य वाला (अनमोल) है।

खरी वस्त आंहीं गोप छे, जो जो चौटा पीठ हाट।

वोहोरजो पारखूं करी, आवी कुली बेठो छे पाट॥८॥

यहाँ जो-जो चौराहे, हाट, और पीठें हैं, वहाँ यथार्थ सत्य ज्ञान बहुत छिपा हुआ है। यहाँ की सभी दुकानों का मालिक तो कलियुग ही है, इसलिये बहुत निरख-परखकर खरीदारी करना।

भावार्थ- इस चौपाई में चौराहे उन पवित्र स्थानों को कहा गया है, जिन्हें "धाम" की संज्ञा दी जाती है, तथा जहाँ से सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, और सायुज्य इन चारों प्रकार की मुक्तियों के मिलने का दावा किया जाता है। "पीठ" उन मत-पन्थों की श्रेष्ठ पुरियों को कहा जाता है, जहाँ उनके अनुयायियों का विशेष वर्चस्व होता है। उससे कम महत्व के स्थान "हाट" कहलाते हैं अर्थात् छोटे धर्म स्थान।

आ भोम अंधेरी माहें आमला, आंकडियों कोहेडा अनंत।

वस्त खरी माहें अखंड छे, तमें जो जो जवेरी बुधवंत॥९॥

इस संसार में अन्तःकरण में अज्ञानता का अन्धकार छाया हुआ है। धर्मग्रन्थों में गुत्थियों का घना कुहरा छाया है। इन धर्मग्रन्थों में अखण्ड का ज्ञान छिपा हुआ है। आप तो हीरे की परख करने वाले बुद्धिमान जौहरी हैं। विवेकपूर्वक देखकर ही खरीदारी करना।

आ भोम विस्मी सत माटे, वस्त आडी छे पाल।

अनेक रखोपा करी वस्तना, वीटया छे जमजाल॥१०॥

माया के इस संसार में सत्य की खोज बहुत कठिन है। सत्य के सामने अज्ञानता का परदा लगा होता है। सत्य को अनेक प्रकार से छिपाकर रखा गया है। चारों ओर यमराज की जाली गूँथी हुई है।

भावार्थ- यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में कहा गया है कि "हिरण्यमयेन सत्यस्य अपिहितं मुखम्, तत् त्वं पूषन् उपावृषा सत्यं धर्माय दृष्टये" अर्थात् सत्य का मुख (स्वरूप) इस स्वर्ण के समान चमकीले संसार से ढका हुआ है। सत्य की यथार्थ पहचान के लिये हे परब्रह्म! उस आवरणयुक्त मुख को आप खोल दीजिए।

वेद का यही आशय श्रीमुखवाणी की इस चौपाई में भी व्यक्त किया गया है।

खरो खोजी हसे जाण जवेरी, ते जोसे दृढ़ मन धीर।

वस्त अखंड ने तेहज लेसे, जे होसे वचिखिण वीर॥११॥

अखण्ड ज्ञान को वही प्राप्त कर पाता है, जो ऐसा विलक्षण वीर हो, जिसके मन में दृढ़ता और धीरता हो, सत्य का वास्तविक खोजी हो, एवं विवेक दृष्टि रखने

वाला जौहरी हो, जो हीरे रूपी सत्य की पहचान कर सके।

ए धन वोहोरसे ते गोप रहेसे, तेने करसे सहजुन हांस।
 वस्त लई ज्यारे थासे वेगला, त्यारे सहु कोई केहेसे स्यावास॥१२॥
 यदि इस अखण्ड धन को खरीदने वाला छिपा ही रहेगा
 तो सभी कर्मकाण्डी लोग उसकी हँसी करेंगे, किन्तु
 अखण्ड धन (ब्रह्मानन्द) को प्राप्त करके जब वह उन
 लोगों से आगे हो जायेगा तो सभी लोग उसे धन्य-धन्य
 कहेंगे।

वेद वैराट बने कोहेड़ा, फरे छे अवला फेर।

प्रगट कहे मुख पाधरुं, पण तोहे न जाये अंधेर॥१३॥

संसार और धर्मग्रन्थों में कोहरे की धुन्ध है। ये

अन्धकार के उल्टे चक्र में ही घूमते हैं। बाह्य रूप से तो कहते हैं कि हमारा मार्ग सीधा है, फिर भी अज्ञानता का अन्धकार मिटता नहीं है।

भावार्थ- इस चौपाई में "वेद" का तात्पर्य मूल संहिता भाग से नहीं बल्कि अन्य पौराणिक धर्मग्रन्थों से है, जो लोगों को एक परब्रह्म की भक्ति से हटाकर बहुदेववाद, जड़ पूजा, मृतक श्राद्ध आदि अन्धकार में फँसाते हैं। इनका अनुकरण करने वाले लोग भी इन्हीं की तरह झूठ में फँसे रहते हैं, इसलिये इस चौपाई में संसार और धर्मग्रन्थ दोनों को ही कुहरा कहकर वर्णित किया गया है। "सत वाणी छे वेद तणी, जो कोई जुए विचारो" से यह सिद्ध है कि वेद (मूल संहिता भाग) सर्वांश में सत्य है।

साध कोहेडो एने तोहज कहे छे, जो सवले अवलुं भासे।

सत वस्त कोई देखे नहीं, असत ने सहु प्रकासे॥१४॥

साधू-महात्मा संसार तथा धर्मग्रन्थों को कुहरा कहते हैं, क्योंकि इनके अनुसार चलने पर परब्रह्म को पाने की सीधी राह भी टेढ़ी लगती है। सत्य ज्ञान को कोई भी नहीं चाहता। सभी झूठ का ही विस्तार करते हैं।

भावार्थ- यद्यपि धर्मग्रन्थों का मूल उद्देश्य सबको सत्य की राह दर्शाना होता है, किन्तु तारतम ज्ञान का प्रकाश न होने से धर्मग्रन्थों से वास्तविक सत्य का निर्णय नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप कर्मकाण्डों और अन्ध - परम्पराओं का जाल बिछ जाता है। इस प्रकार अन्धविश्वासों एवं कर्मकाण्ड की राह पर चलने वाले झूठ को अंगीकार करने के लिये मजबूर हो जाते हैं।

कोई सत वोहोरे कोई असत वोहोरे, कोई बंधाय बंध।

वेपार एणी पेरे करे वेहेवारिया, ए चौटो एणी सनंध॥१५॥

इस संसार में कोई सत्य का, तो कोई झूठ का ग्राहक है। कोई-कोई माया के बन्धनों में ही बँधा रह जाता है। संसार के लोग सत्य और झूठ का इस प्रकार का व्यापार करते हैं। बड़े-बड़े धर्म स्थानों की भी यही वास्तविकता है।

एणे अंधेर कोहेडे अनेक बांध्या, वस्त खरी नव जुए।

बंध बंधावी बाजार माहें, पछे वारो वछूटे घणू रूए॥१६॥

माया के इस घने अन्धकार में बहुत से लोग बँध जाते हैं। वास्तविक सत्य के प्रकाश को कोई भी नहीं प्राप्त कर पाता। माया के इस बाजार में सभी फँस जाते हैं और मानव तन का अनमोल समय बीत जाने पर बहुत अधिक

रोते हैं।

कोईक करे हजार गणां, केहेने ते मूलगां जाये।

कोई बंधाई पड़े फंद माहें, कोई कोटी धजा केहेवाय॥१७॥

इस संसार में कोई तो अपने पुण्यों को हजार गुना बढ़ा लेता है, तो कोई मूल धन भी खो देता है अर्थात् पुण्य से अधिक पाप का संचय कर लेता है। कोई माया के फन्दे में बुरी तरह फँस जाता है, तो कोई मायावी फन्दों को उलंघकर धर्म क्षेत्र का महारथी माना जाता है।

कोई वोहोरे सत वस्त ने, रास जवेर खरचाय।

अखंड धन तेने अनंत आव्यूं, ते चौद भवन धणी थाय॥१८॥

कोई-कोई ही सत्य का खरीदार होता है। उसे खरीदने में वह आनन्दपूर्वक जवेर रूपी स्वाध्याय, तप, भक्ति

आदि खर्च करता है, जिससे उसे वैकुण्ठ का अखण्ड और अनन्त धन प्राप्त होता है। इस प्रकार वह चौदह लोकों में सर्वोपरि वैकुण्ठ के सुख का भोक्ता (स्वामी) बन जाता है।

भावार्थ- इस प्रकरण की सातवीं चौपाई के पहले चरण में कहा गया है कि "चौद लोक कमायूं खाय आहींनू।" इस प्रकार स्पष्ट है कि चौदहवें लोक वैकुण्ठ का सुख सर्वोपरि नहीं है। इस चौपाई में वैकुण्ठ के सुख को अखण्ड और अनन्त कहने का आशय पृथ्वी के सुखों की अपेक्षा से है। वस्तुतः वैकुण्ठ स्वप्नवत् है। "कोट राज वैकुण्ठ के, न आवें इत खिनके समान" से यह स्पष्ट होता है। चौदह लोकों का धनी होने का भाव वहाँ के सुखों के उपभोग से है, न कि विष्णु भगवान की तरह शासन करने से है।

बीजो फेरो ए स्या ने करे, थया ते सेठ सरीख।

टली वानोतर धणी थयो, ते अखंड सुख लेसे अंत्रीख॥१९॥

वैकुण्ठ में पहुँचकर ये विष्णु भगवान के सारूप्य हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में इनके पुनः जन्म लेने का प्रश्न ही नहीं होता। ये तो संसार के कर्म-भोग रूपी व्यापार को छोड़कर वैकुण्ठ-सुख के अधिकारी बन गये होते हैं। इसके परिणामस्वरूप, ये महाप्रलय तक वैकुण्ठ और निराकार तक का सुख अखण्ड रूप से भोगते रहते हैं।

कोण फेरो करे वली, अखंड धन आवे अपार।

साहुकारी तमे करेने नेहेचल, तो निध पामो निरधार॥२०॥

यदि वैकुण्ठ और निराकार से भी परे बेहद का अखण्ड सुख प्राप्त हो जाये, तो भला जन्म-मरण का चक्र कैसे चलेगा? यदि तुम अखण्ड धाम के अखण्ड सुख की

साहूकारी करो, तो निश्चित रूप से तुम्हें बेहद का अखण्ड सुख प्राप्त हो जायेगा।

भावार्थ- बेहद में धन की साहूकारी करने का तात्पर्य है- बेहद का बोध होना एवं ध्यान द्वारा अनुभूति प्राप्त कर लेना। इस चौपाई में जो "अखण्ड" शब्द है वह बेहद के लिये प्रयुक्त हुआ है, किन्तु इसके पूर्व की चौपाई में जो "अखण्ड" शब्द है वह वैकुण्ठ-निराकार के लिये है। यद्यपि वैकुण्ठ-निराकार का सुख अखण्ड नहीं है, किन्तु उसको अखण्ड कहने का कारण यह है कि महाप्रलय होने से पूर्व तक वैकुण्ठ-निराकार के सुखों को अबाध गति से भोगा जाता है।

खोटा साटे साचू जड़े छे, एवी मली छे बाजार।

लाभ अलेखे आ फेरा तणो, जो राखी सको वेहेवार॥२१॥

यह ऐसा बाजार मिला है, जिसमें झूठे शरीर के बदले बेहद का अखण्ड सुख प्राप्त होता है। यदि बेहद की राह अपना सकते हो तो इस मानव तन में तुम्हें बेशुमार लाभ मिल सकता है, अर्थात् बेहद का इतना आनन्द मिलेगा जिसको शब्दों में नहीं कहा जा सकता।

आ फेरो छे एणी सनंधनो, जो कोई रूदे विचारो।

साध साहुकारो कहूं छूं पुकारी, तमें जीती अखंड कां हारो॥२२॥

यदि आप अपने दिल में विचार करके देखिए तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि इस मानव तन की इतनी अधिक उपयोगिता है। धर्म का व्यापार करने वाले हे साधु सन्तों! मैं आपसे पुकार-पुकार कर यह बात कह रहा हूँ कि आप अखण्ड सुख की जीती हुई बाजी क्यों हारते जा रहे हैं।

आ भोम नी गत सुणो रे साधो, प्रगट कहूं छूं प्रकासी।

आंखें देखी आप बंधाय, पछे खाय सहु जम फांसी॥२३॥

हे साधू-महात्माओं! इस मायावी संसार की वास्तविकता का मैं स्पष्ट रूप से वर्णन करता हूँ। उसे आप सभी सुनिए। इस संसार में लोग अपनी आँखों के सामने ही माया के बन्धनों में बँधते जाते हैं और बाद में उन्हें मृत्यु के फन्दे में फँसना पड़ता है।

भावार्थ- मनुष्य स्वयं अपनी आँखों से ही देखता है कि कभी वह छोटा सा शिशु था। समय के चक्र में वह किशोर, युवा, और अर्द्धवस्था को पार कर वृद्ध हो चुका है। इतना परिवर्तन होते हुए भी वह संसार का मोह छोड़कर प्रियतम अक्षरातीत से प्रेम नहीं कर पाता। इसे ही कहते हैं- "आंखें देखी आप बंधाय।"

वणजे ते आवे सहु एकला, आणी भोमे आवी करे संग।

रास खरीद सर्वे वीसरी, पछे लागी रहे तेसूं रंग॥२४॥

इस संसार में व्यापार करने के लिये सभी अकेले ही आते हैं, किन्तु बाद में अपने नये-नये सम्बन्धी बना लेते हैं। भोग के साधनों को एकत्र करने के पश्चात् वे परब्रह्म के ज्ञान, ध्यान आदि सबको भूल जाते हैं। वे मात्र विषय सुखों और सांसारिक सम्बन्धियों के ही पीछे लगे रहते हैं।

एणे स्वांगे संसार बांध्यो, कोई कपट कारण रूप।

बीजा तो आमला अनेक छे, पण आंकडी आ अदभूत॥२५॥

इसी प्रकार झूठे नाटक में सारा संसार बँधा हुआ है। इसका कारण छल रूप माया ही है। यद्यपि इस संसार में घुमावदार बन्धन बहुत से हैं, किन्तु पारिवारिक मोह की

गाँठ सबसे अधिक विचित्र है।

आप तणी सुध वीसरी, कोई ओलखाय नहीं पर।

तेमां सगा समधी थई ने बेठा, कहे आ अमारो घर॥२६॥

इस मायावी संसार में जब अपनी ही सुधि नहीं रहती, तो भला अन्य किसी की पहचान कैसे हो सकती है। इसी संसार में अपरिचितों में से किसी को अपना सगा – सम्बन्धी बनाकर बैठ जाते हैं और कहते हैं कि यही हमारा घर है।

आपोपूं तिहां बांधीने आपे, सर्वा अंगे द्रढ़ मन।

रात दिवस सेवा करे, एम बंधाणां सहु जन॥२७॥

स्वयं को उस सांसारिक सम्बन्ध से दृढ़ मन, अन्तःकरण, और इन्द्रियों द्वारा बाँध लेते हैं और रात –

दिन उसकी सेवा करते हैं। इस प्रकार सारे संसार के लोग माया के बन्धनों में बँधे हुए हैं।

भावार्थ— सभी अंगों से बँधने का तात्पर्य है कि मनुष्य में परिवार के सदस्यों के प्रति इन्द्रियों और अन्तःकरण में लगाव हो जाता है जो बन्धन का कारण होता है, जैसे— पत्नी का सौन्दर्य आँखों को, मधुरभाषिता कानों को, और कोमलता त्वचा को आकर्षित किये रहती है। यही आकर्षण हृदय में स्थित होकर बहुत मजबूत बन्धन का कार्य करता है।

चीठी आवे चाले ततखिण, जाये ते करता रूदन।

झाझुं सेवा जेहनी करता, ते दिए छे हाथ अगिन॥२८॥

मृत्यु का समय आते ही जीव उसी क्षण अपने शरीर को रोते हुए त्याग देता है। जो पुत्र बहुत अधिक सेवा किया

करता था, वही उस शरीर को जला देता है।

माहें तो कोई नव ओलखे, ओलखाण ने खोरी बाले।

ए सगाई आ भोम तणी, ते सनमंध एणी पेरे पाले॥२९॥

शरीर के अन्दर स्थित चेतना को तो कोई पहचानता नहीं है। उनकी पहचान केवल शरीर तक होती है, जिसे खोर-खोर कर जला देते हैं। माया के रिश्तेदार इतना ही सम्बन्ध निभाते हैं। इस मायावी जगत का रिश्ता ऐसा ही मिथ्या होता है।

आणी भोमे तमने भूलव्या, सुध गई सरीर।

पडया ते फंद अंधेर माहें, तेणे चितडू न आवे धीर॥३०॥

हे संसार के लोगों! इस मायावी जगत में तुम स्वयं को भूल गये हो। यहाँ तक कि तुम्हें अपने तन की भी सुध

नहीं है कि आत्म-कल्याण में इसकी क्या उपयोगिता है। माया के घने अन्धकार में तुम इतने अधिक फँस गये हो कि तुम्हारे चित्त में जरा भी धैर्य नहीं रह गया है।

भावार्थ- शरीर धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष का साधन है। जिस प्रकार अध्ययन, ध्यान आदि क्रियाओं में शरीर का ध्यान नहीं रहता, उसी प्रकार भोगों में फँसने के बाद भी शरीर का ध्यान नहीं रहता कि यह दिन-प्रतिदिन निर्बल होता जा रहा है। इस चौपाई में "सुध गई सरीर" का यही अभिप्राय है।

साथी हता जे माहेला, तेणे दीठां आप अचेत।

जेणी जे जतन करतां, तेणे बांध्या बंध विसेक॥३१॥

इस शरीर के अन्दर जो साथी जीव रहा, उसे तुमने माया में बेसुध हुए देखा। जिन झूठे सगे-सम्बन्धियों की

तुम सेवा करते रहे, उन्होंने तुम्हें विशेष रूप से माया के बन्धनों में उलझा दिया।

भावार्थ- इस चौपाई में यह जानने की जिज्ञासा पैदा होती है कि शरीर में स्थित जीव किसका साथी है?

स्थूल शरीर को साथी मानना उचित नहीं, क्योंकि वह जड़ है और उसमें चिन्तन-मनन की प्रक्रिया नहीं है। वस्तुतः आत्मा को भी जीव का साथी नहीं कहा जा सकता। यहाँ अन्तःकरण को ही सम्बोधित करके जीव को उसका मित्र कहा गया है, क्योंकि उसमें चिन्तन, मनन, विवेचन, और अहंकार की प्रवृत्ति है। यद्यपि अन्तःकरण भी कारण शरीर है, किन्तु जीव के सम्बन्ध से उसमें चेतनता होती है। मन या बुद्धि द्वारा जीव के स्वरूप (निज स्वरूप) का चिन्तन किया जाता है। चिन्तन करने वाले में "अहम्" की प्रवृत्ति होती है। इस

प्रकार अन्तःकरण को जीव का मित्र ठहराना उचित है।

घर मंदिर सहु वीसरया, वीसरया सेठ समरथ ।

माल लुसानूं जाए मूरखो, तमें कां निगमो ए ग्रथ॥३२॥

हे संसार के लोगों! तुमने अपने जीव के मूल घर और सर्वशक्तिमान परमात्मा को ही भुला दिया। हे मूर्खों! तुम्हारा यह अनमोल धन (मानव तन) लुटा जा रहा है। इस धन को तुम क्यों गँवा रहे हो?

भावार्थ- षड् रिपु (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद्, तथा मत्सर) तो शरीर और जीव को लूटते ही हैं, किन्तु इनके मूल में अज्ञान ही निहित होता है। अज्ञान में फँसा हुआ जीव अपनी अनमोल उम्र को व्यर्थ में गँवा देता है।

धन पोतानूं नव साचवो, लूसे छे चोर चंडाल।

अधखिण माटे आप बंधावो, हमणां वही जासे ततकाल॥३३॥

अपने धन (मनुष्य जीवन) को क्यों नहीं सम्भालते ?
इसे चोर और चाण्डाल (विषय सुख और अज्ञान) लूट रहे हैं। तुम आधे क्षण अर्थात् अति अल्प समय के लिये ही इस संसार में आकर माया के बन्धन में बँध गये हो। यह नश्वर शरीर तो अभी तुरन्त नष्ट हो सकता है।

बांध्यो संसार एणी पेरे, लागे नहीं कोई लाग।

जाये बंधाणां सहु जमपुरी, केहने नथी टलवानो माग॥३४॥

इस तरह से यह संसार माया के बन्धन में बँधा हुआ है। किसी को इससे मुक्त होने का उपाय नहीं मिलता है। माया के बन्धन में फँसकर सभी यमपुरी जाते हैं, जिसको टालने का मार्ग किसी के पास नहीं है।

लेखूं देसे जम दूत ने, जे कीधूं छे आहीं वेपार।

साचूं झूठूं तरत जोसे, ए धरमराज वेहेवार॥३५॥

मनुष्य यहाँ जो कुछ भी शुभ-अशुभ व्यवहार करता है, उसका हिसाब यम के दूत देंगे। धर्मराज के सामने जाने पर सत्य और झूठ सभी कुछ स्पष्ट हो जायेगा।

भावार्थ- गरुड़ पुराण में जो यमदूतों का वर्णन किया गया है, वह काल्पनिक और मिथ्या है। "यम" नाम सब पर शासन करने वाले ब्रह्म का है। ब्रह्म की अनन्त सत्ता में प्राणियों के शुभ-अशुभ कर्मों का लेखा स्वतः होता रहता है। उसके लिये कागज और लेखनी की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती।

वेपार करतां जे बंध बांध्या, ते लेखूं लेसे सहु तंत।

एक ना सहस्र गणां करतां, मारया अनेक जीव जंत॥३६॥

मृत्यु के पश्चात् धर्मराज के सामने जीवन के शुभ-अशुभ सभी कर्मों का हिसाब लिया जायेगा। धन को हजार गुना करने की कोशिश में तुमने अनेक जीव-जन्तुओं की हत्या की है।

लांचे तो तिहां नव छूटिए, सगा न ओलखाण कोय।

मार भूंडा छे जमदूत ना, दया ते पिंड ने न होय॥३७॥

वहाँ घूस देकर छुटकारा नहीं मिल सकता। पहचान करने वाला कोई सगा-सम्बन्धी भी वहाँ नहीं मिलेगा। यमदूतों की मार बहुत भयंकर होती है। उनके अन्दर दया नहीं होती।

भावार्थ- भागवत आदि पुराणों में वर्णित नर्क के ८४ कुण्ड ८४ लाख योनियाँ हैं, जिनमें जीव को तरह-तरह की भयंकर पीड़ा भोगनी पड़ती है। इस चौपाई का कथन

भागवत के अनुसार है। इसका अक्षरातीत के कथन से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। यमदूतों द्वारा दी जाने वाली यातना वेदादि ग्रन्थों को मान्य नहीं है। अगली चौपाई वेद के कथन की ओर संकेत करती है।

धरम तणां सुख भोगवो, पाप तणां ल्यो दुख।

अग्नि चोरासी लाख भोगवी, अंते आव्या मनुख॥३८॥

हे संसार के लोगों! तुम धर्म का आचरण करके सुख भोगोगे तथा पाप का व्यवहार करके दुःखी होओगे। बुरे कर्मों के कारण चौरासी लाख योनियों में दुःख भोगकर, अन्त में मानव तन की प्राप्ति होती है।

भावार्थ— जीव किस योनि में जायेगा, यह उसके कर्मों और चित्त की वासना के ऊपर निर्भर करता है। यह आवश्यक नहीं है कि ८४ लाख योनियों को भोगने के

पश्चात् ही मानव योनि मिलेगी। प्राणियों की योनियाँ तो अनन्त हैं, ८४ लाख गणना का एक आधार है। जातक कथाओं में बुद्ध जी के ५०० से अधिक जन्मों की कथाएँ हैं, जिनमें बहुत से जन्मों में उन्हें मानव योनि की प्राप्ति हुई है। प्रत्यक्ष में भी पुनर्जन्म की कई घटनाओं में मनुष्य योनि के पश्चात् तुरन्त मनुष्य योनि में ही जाने का वर्णन मिलता है। इस चौपाई में ८४ लाख योनियों को भोगने के पश्चात् मानव योनि मिलने का कथन इस आशय से किया गया है कि यदि उसके शुभ और अशुभ कर्म बराबर मात्रा में नहीं हुए, केवल पाप का ही बोलबाला रहा तो उसे ८४ लाख योनियों में नर्क रूपी दुःख भोगने के बाद मोक्ष प्राप्ति के लिये मानव तन की प्राप्ति होगी।

एके वोहोरया भगवान जी, ते जाये नहीं जमपुर।

संगत कीधी तेणे साध तणी, जई बैकुंठ कीधां घर॥३९॥

जिसने भी भगवान को पा लिया, वह यमपुरी नहीं जाता। वह साधु-सन्तों की संगति से भक्ति मार्ग द्वारा वैकुण्ठ की प्राप्ति कर लेता है।

एणी पेरे वेपार थाय, हाट पीठ बाजार।

आ भोमनी अनेक आंकड़ी, तेनो केटलो कहूं विस्तार॥४०॥

इस संसार में इस प्रकार धर्म का व्यापार होता है, जिनके मुख्य-मुख्य केन्द्र छोटे-बड़े धर्म स्थान हैं। इस मायावी जगत की बहुत सी गुत्थियाँ हैं, जिनका वर्णन मैं कहाँ तक करूँ।

झाझुं कहे दुख सहने लागे, सत वचन ना सेहेवाय।

सत सहुए उथापियूं, असत ब्रह्मांड न समाय॥४१॥

सत्य वचन सहन नहीं होता। बहुत अधिक कहने से सबको दुःख लगता है। प्रायः सबके हृदय से सत्य निकल गया है और झूठ इतना फैल गया है कि वह ब्रह्माण्ड में नहीं समा रहा है।

हवे जे हेत वांछे आपणुं, ते सुणजो सत दृढ़ मन।

वाट लेजो वैकुंठ तणी, रखे जाता पुरी जम॥४२॥

अब जो भी अपना भला चाहता हो, वह सत्य ज्ञान को दृढ़ मन से सुने। तुम सत्य को अपनाकर वैकुण्ठ की राह पर चलो और यमपुरी का रास्ता छोड़ दो।

भावार्थ- इस चौपाई में यह संशय पैदा होता है कि परमधाम की इस ब्रह्मवाणी में वैकुण्ठ की राह अपनाने

की बात क्यों कही गयी है?

यह प्रकरण तारतम ज्ञान से रहित लोगों को प्रबोधित करने के लिये उतरा है। वैकुण्ठ और यमपुरी (नरक) में वैकुण्ठ श्रेष्ठ है, इसलिये श्रेष्ठता के आधार पर उन लोगों को प्रसंगवश वैकुण्ठ की राह अपनाने की बात कही गयी है, अन्यथा श्रीमुखवाणी का मूल विषय तो परमधाम का लक्ष्य करना है। वाणी ने तो चौदह लोक को ही अज्ञानता के अन्धकार में भटकने वाला कहा है—

मूल प्रकृती मोह अहं थे, उपजे तीनों गुन।

सो तीनों पांचों में पसरे, हुई अंधेरी चौदे भवन॥

श्रीमुखवाणी ने सबको परमधाम की ही राह दिखायी है।
ब्रह्मसृष्टि के लिये तो—

कई कोट राज बैकुण्ठ के, न आवे इतके खिन समान।

किरंतन ७८/२

दुखने साटे अखंड सुख आवे, अधखिण माहें आज।

साहुकारो साधो वेहेवारियो, एम सुणो कहे मेहेराज॥४३॥

श्री मिहिरराज जी कहते हैं कि धर्म का व्यापार करने वाले हे साधू-सन्तों! मेरी यह बात आप अवश्य सुनिये। अति अल्प समय (आधे क्षण) के लिये मिले हुए इस तन से यदि सच्चिदानन्द परब्रह्म के प्रेम में कुछ कष्ट उठाया जाता है, तो उसके बदले अनन्त और अखण्ड सुख की प्राप्ति होती है।

प्रकरण ॥१२५॥ चौपाई ॥१८१६॥

किरंतन पुराने

तमें जो जो रे मारा साध संघाती, आ विश्व तणी जे वाट।
 हार कतार चाले केडा बेडी, भवसागर नों घाट।।टेक।।१।।
 श्री मिहिरराज जी कहते हैं कि हे मेरे प्रिय सन्तजनों!
 यह संसार जिस राह पर चल रहा है, उसकी
 वास्तविकता को देखिए। इस संसार रूपी सागर में लोग
 एक-दूसरे की देखा-देखी "चींटी हार ऊँट कतार" की
 तरह चल रहे हैं।

स्वाथी मारग चाले संजमपुरी, भार भरी रे अलेखे।
 कुटम परिवार लादा सहु लादे, आगली अजाडी कोई न देखे।।२।।
 यहाँ से यमपुरी के लिये सीधा रास्ता जाता है। उस पर
 चलने वाली गाड़ी कुटुम्ब-परिवार और सगे-सम्बन्धियों

के बहुत अधिक बोझ से दबी हुई है। आगे का रास्ता कितना उबड़-खाबड़ और वीरान है, यह किसी को दिखायी ही नहीं पड़ता।

भावार्थ- यमपुरी के लिये सीधा रास्ता कहने का भाव यह है कि ज्ञान और भक्ति से रहित सामान्य जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति अखण्ड मुक्ति प्राप्त नहीं कर पाता और मृत्यु का शिकार हो जाता है।

दुस्तर दोख न विचारे मद माता, लडसडती चाल चाले।

उनमद थका अभिमान करे, अने कंठ बांहोंडीयो घाले॥३॥

इस संसार के लोग अपने अहंकार में डूबकर यमपुरी के भयंकर दुःखों के बारे में विचार नहीं करते। वे माया के नशे में धुत्त होकर लड़खड़ाते हुए चलते हैं। प्रमाद के वशीभूत होकर वे व्यर्थ का अभिमान करते हैं और अपने

जैसे लोगों के गले में हाथ डालकर चला करते हैं, अर्थात् अपनी समान विचारधारा वाले लोगों से वे गहरी घनिष्ठता रखते हैं।

उत्तम आगल वाट देखाड़े, मधम अधम सहु वासे।

भार करम नूं लेखूं रे अलेखे, मनमां विचारी कोई नव त्रासे॥४॥

इस संसार में उत्तम लोग दूसरों को सत्य का रास्ता दिखाते हैं, और मध्यम तथा छोटी (अधम) बुद्धि वाले लोग उनका अनुकरण करते हैं। सभी के ऊपर कर्मों के भार का हिसाब बेशुमार (अनन्त) है, फिर भी कोई अपने बुरे कर्मों के दण्ड का विचार करके डरता नहीं है।

भावार्थ— शुभ-अशुभ कर्म का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। यह बात प्रायः सभी धर्मग्रन्थों में लिखी हुई है, किन्तु प्रमादवश लोग परम सत्य को ग्रहण करने में

हिचकिचाते हैं और बुरे कर्मों की पुनरावृत्ति (बार-बार करने) में जरा भी डर नहीं रखते।

बलिया बीक न आणे केहेनी, सांभले न कांई देखे।

साचा ए सूर धीर कहिए, जे ए दोख ने न लेखे॥५॥

यमपुरी की राह पर बहादुरी से चलने वाले व्यक्ति को किसी के कहने का कोई भी डर नहीं होता। न तो वह किसी की कोई बात सुनता है, और न ही किसी की ओर देखता है कि कोई उसके बारे में कोई क्या सोचता होगा। वह यमपुरी की राह पर चलने वाला सच्चा बहादुर है, जो अपने अन्दर किसी भी प्रकार का कोई दोष देखता ही नहीं है।

भावार्थ— एक शराबी, माँसाहारी, या दुराचारी व्यक्ति अपने बुरे कर्म का इतना अभ्यस्त हो जाता है कि उसे

यह चिन्ता ही नहीं होती कि लोग उसके विषय में क्या कहते होंगे। वह अपने बारे में कोई बुराई सुनना भी पसन्द नहीं करता, क्योंकि उसे पूर्ण विश्वास होता है कि वह कोई भी बुरा कार्य नहीं कर रहा है। उसे किसी की कोई परवाह नहीं होती। श्री मिहिरराज का आशय यह है कि जन्म-मरण की राह में चलने वाले लोग अपने क्षेत्र के महारथी होते हैं। विषय-भोग और अज्ञान में भटकना ही इनकी नियति है। ये कभी भी आत्म-निरीक्षण करना पसन्द नहीं करते और किसी के उपदेश या बदनामी का भी इनके ऊपर कोई असर नहीं पड़ता।

कायर केम चाले एणी वाटे, जेने लागे ते जम नो त्रास।

रात दिवस रूए कलकले, सूकाय ते लोही मांस॥६॥

मृत्यु के भय से डरने वाले कायर लोग भला इस जन्म-

मरण की राह पर कैसे चल सकते हैं। वे तो इस भवसागर से मुक्त होने के लिये दिन-रात प्रियतम परब्रह्म के विरह में तड़प-तड़पकर रोते हैं और साधनाओं से अपने रक्त और माँस को सुखाते रहते हैं।

वैकुंठनी पण विस्मी वाट, ते जेम तेम सेहवाय।

संजमपुरी ना दुख घणूं दोहेला, ते जिभ्याएं न केहेवाए॥७॥

लेकिन वैकुण्ठ को पाने के लिये अपनायी जाने वाली भक्ति की राह कठिन है। वह तो जैसे-तैसे सह भी ली जाती है, किन्तु यमपुरी के दुःख तो बहुत अधिक भयंकर हैं। उनका वर्णन इस जिह्वा से नहीं हो सकता।

आ सुपन तणां सुख सहु को वांछे, ओल्या साख्यात दुख कोई न जाणें।

संजमपुरी नी वाट छे वस्ती, ते माटे सहु कोई ताणे॥८॥

मायावी सुख को प्रत्येक व्यक्ति पाना चाहता है, लेकिन किसी को भी यह पता नहीं है कि इसको भोगने के पश्चात् साक्षात् दुःख ही भोगना पड़ेगा। यमपुरी की राह में बस्ती होती है, इसलिये प्रायः हर कोई उसी राह पर चलता है।

भावार्थ— भवसागर से पार होने के लिये सगे-सम्बन्धियों का मोह तोड़कर परब्रह्म के एकनिष्ठ प्रेम में खोना होता है। इसके विपरीत यमपुरी की राह में प्रियतम परब्रह्म से पीठ मोड़कर परिवार एवं सगे-सम्बन्धियों के मीठे स्नेह-जाल में फँसे रहना होता है। बहिर्मुखी जीव सांसारिक सम्बन्धों को अधिक प्रमुखता देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप वे यमपुरी की ही राह पकड़ते हैं।

उज्जड मारग वैकुंठ केरो, ते माटे कोई न चाले।

बेहेतल नहीं माहें चोर मले, दूथा मां पग कोई न घाले॥९॥

वैकुण्ठ की राह वीरानगी से भरी है, इसलिये इस पर कोई भी नहीं चलता। वैकुण्ठ की राह में बस्ती न मिलने से चोर मिलते हैं, इसलिये उस सूने मार्ग पर कोई भी चलना पसन्द नहीं करता।

भावार्थ- वैकुण्ठ की राह को वीरानगी से भरा हुआ कहा गया है क्योंकि उसमें सबको भुलाकर एक परमात्मा से प्रेम करना होता है। जब जीव भक्ति की राह पर चलता है, तो माया की शक्तियाँ (आकर्षण) उसे अपनी तरफ खींचकर परब्रह्म से दूर कर देती हैं। इसे ही भक्ति रूपी धन का हरण करने वाले चोर कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति में माया से टकराने का आत्मिक बल नहीं होता। इसलिये इस प्रकार की विचारधारा वाले लोग मजबूरीवश यमपुरी की राह अपना लेते हैं।

वस्ती बिना लिए चोर लूसी, आडा दोख घणां रे दुकाल।

लोही मांस न रहे अंग माहीं, आडी खाइयो पर्वत पाल॥१०॥

वैकुण्ठ की राह में बस्ती न होने से चोर लूट लेते हैं। सामने भयंकर अकाल की स्थिति दिखायी देती है, अर्थात् हरियाली का नामोनिशान नहीं होता। उस पर चलते-चलते शरीर के अंगों में खून और माँस तो रहता ही नहीं। उस राह में सामने तो पाल के रूप में ऊँचे – ऊँचे पर्वत और नीचे गहरी-गहरी खाइयाँ होती हैं।

भावार्थ- यह चौपाई बहुत ही आलंकारिक भाषा में कही गयी है। वैकुण्ठ को पाने के लिये जो भक्ति की राह अपनायी जाती है, उसमें पत्नी आदि लौकिक सम्बन्धों का साथ छूट जाने से यह भय भी बना रहता है कि हृदय में छिपा हुआ मोह कहीं ज्वालामुखी की तरह न फूट जाये और कोई भूल न हो जाये जो सामाजिक एवं नैतिक

दृष्टि के विपरीत हो। जिस प्रकार अकाल में हरियाली नहीं होती, उसी प्रकार सांसारिक सम्बन्धों के न रहने से जीवन में उदासीनता छायी रहती है। वह बच्चों की किलकारी, पत्नी के मीठे वचन, एवं भाइयों के सौहार्द से वंचित हो जाता है। निरन्तर भक्ति-भाव में खोये रहने से शरीर बहुत निर्बल हो जाता है। यदि वह भक्ति की राह से विचलित हो गया तो भोगों की खाई में गिरने का भय बना रहता है, किन्तु यदि अपने मार्ग पर चलता रहा तो पर्वत के समान ऊँचा उठकर लोक-परलोक में सुख-शान्ति एवं सम्मान का अनुभव करता है।

ते माटे सहु चाले संजमपुरी, ऊवट कौंणे न अगमाय।
 संजमपुरी न दोख जाग्या पछी, श्रवणाँँ न संभलाय॥११॥
 इसलिये प्रायः सभी यमपुरी की राह पर चलते हैं।

वैकुण्ठ के उबड़-खाबड़ रास्ते पर कोई भी नहीं चलना चाहता। जाग्रत होने पर पता चलता है कि यमपुरी के दुःख इतने भयंकर हैं कि वे कानों से सुने नहीं जा सकते।

**वैकुंठ वाट न दुख जो सहिए, तो आगल सुख अखंड।
वेद पुराण भागवत कहे छे, भाई जिहां लगे छे ब्रह्माण्ड॥१२॥**

वैकुण्ठ की राह पर चलने से यदि थोड़ा दुःख भोगना भी पड़ता है, तो बाद में वैकुण्ठ का सुख अखण्ड रूप से तब तक भोगने को मिलता है जब तक चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड का अस्तित्व है। ऐसा वेद और भागवत आदि पुराणों में लिखा हुआ है।

पण बंध छूटा विना न चलाय, भाई ए छे करम नी काणी।
मन माहें जाणे अमें सुख भोगवसुं, पण जाए बंधाणां जमपुरी ताणी॥१३॥
लेकिन मोह के बन्धनों से छूटे बिना वैकुण्ठ की राह पर
नहीं चला जा सकता। हे भाइयों! यह तो कर्मों की
कहानी है, अर्थात् शुभ कर्मों की अधिकता से ही स्वर्ग,
वैकुण्ठ आदि लोकों का सुख प्राप्त होता है। संसार के
लोग तो अपने मन में यही सोचते हैं कि वे संसार का
सुख भोग रहे हैं, लेकिन वे अपने बुरे कर्मों के कारण
यमपुरी को प्राप्त होते हैं।

करम तणां बंध छे रे वज्र में, वेद पुराण एम बोले।
दया नहीं जीव हिंसा करे, ते करम चंडाल नहीं तोले॥१४॥
कर्मों का बन्धन अमिट होता है, ऐसा वेद-पुराण कहते
हैं। जिनके अन्दर दया की भावना नहीं होती और जीवों

की हिंसा करते हैं, उनका कार्य चाण्डाल की तरह निम्न होता है, फिर भी वे अपने बुरे कर्मों का विचार नहीं करते।

वली जो जो रे तमें सास्त्र संभारी, एणी पेरे बोले वाणी।

कुंजर कथुआ मेरु माणस माहीं, सर्वे एकज प्राणी॥१५॥

तुम फिर से शास्त्रों की वाणियों को देखो जो इस प्रकार बोलती हैं। हाथी जैसे विशालकाय जानवर, कथुआ जैसे सूक्ष्म कीट, सुमेरु जैसे विशाल पर्वत, तथा मनुष्य आदि सभी प्राणियों में एक ही चैतन्य की सत्ता कार्य कर रही है।

भावार्थ- इस चौपाई में प्रयुक्त "प्राणी" शब्द का अर्थ जीव से नहीं लिया जायेगा, क्योंकि सुमेरु पर्वत में चैतन्य जीव का होना सम्भव नहीं है। "प्राणी" का अर्थ

होता है प्राण, अर्थात् जीवन को धारण करने वाला। सम्पूर्ण जीवों के जीवन का आधार एकमात्र ब्रह्म है , इसलिये उसे "प्राणी" शब्द से सम्बोधित किया गया है। इसकी झलक अगली चौपाई में भी मिलती है।

अन उदक वाए कीट पतंगमां, सकल कहे छे ब्रह्म।

देखीतां आंधला थाय, पछे बांधे अनेक पेरे करम॥१६॥

संसार के लोग अन्न, जल, वायु, कीट, पतंग आदि सबमें ब्रह्म का अस्तित्व तो मानते हैं , किन्तु इन सब पदार्थों को देखते हुए भी अन्धे बने रहते हैं अर्थात् जब इन पदार्थों में ब्रह्म का स्वरूप है तो इन्हें बुरे कर्म नहीं करने चाहिए। यह उनका अज्ञान ही है, जो जगत को ब्रह्मरूप मानने पर भी कर्मों का बन्धन उनका पीछा नहीं छोड़ता।

पांच मलीने काया परठी, ते माहें जीव समाणो।

थावर जंगम सकल व्यापक, एणी पेरे पथराणो॥१७॥

पाँच तत्वों के मिलने से शरीर का निर्माण होता है और उसमें जीव प्रवेश किये होता है। इस प्रकार जीव, स्थिर रहने वाले (स्थावर) और चलने फिरने वाले (जंगम), सभी शरीरों में स्थित रहता है तथा उसकी चेतना का फैलाव सम्पूर्ण शरीर में होता है।

हवे वरण वेख थया जुजवा, एक उत्तम मधम।

वस्त खरी थी विमुख थया, पछे चलवे ते अधमा अधम॥१८॥

इस समय संसार के लोग वर्ण और भेष के आधार पर अलग-अलग वर्गों में बँट गये हैं। उनमें कुछ लोग उत्तम, तो कुछ मध्यम विचार वाले हैं। जो लोग सत्य ज्ञान से विमुख हो गये, वे नीच से भी नीच कर्म करने लगे।

हूं रे गेहेलो एवा वचन तोज कहूं छूं, पण न थाय बीजा कोई गेहेला।
विस्मी वाटे चाली न सके, तेने लागसे वचन घणां दोहेला॥१९॥

इस प्रकार के कठोर वचन मैं इसलिये कह रहा हूँ
क्योंकि मैं अपने प्रियतम का दीवाना हूँ। तुम लोग भी
मेरी तरह दीवाना न बनना। जो दीवानेपन की इस कठिन
राह पर नहीं चल सकेगा, उसको मेरी बातें बहुत अधिक
कठोर लगेंगी।

एक जीवने आहार देवरावे, तेमां अनेक जीव संघारे।

एणी पेरे दान करे रे दयासों, ए धरम ते कां नव तारे॥२०॥

एक जीव को भोजन देने के लिये अनेक जीवों की हत्या
की जाती है। इसी तरह वे दयापूर्वक दान देने की बातें भी
करते हैं। इस प्रकार का धर्माचरण उन्हें भवसागर से पार
नहीं कर सकेगा।

भावार्थ- समुद्र, नदियों, एवं जलाशयों के पास रहने वाले लोग मछली आदि का सेवन इस भावना के साथ करते हैं कि यह तो हमारा मुख्य आहार है, हम इसके बिना जी ही नहीं सकते। अपने सम्पूर्ण जीवन में वे हजारों मछलियों का भक्षण कर जाते हैं। इसी प्रकार दूसरों का धन लूटकर किसी पर दया करने की भावना से दान देने में कोई भी लाभ नहीं है। इससे मुक्ति प्राप्त नहीं होगी।

अनेक संघवी संघज काढे, धन खरचे थाय मोटा।

बांधी करम करावे जात्रा, जाणे करम सुं करसे ए खोटा॥२१॥

तीर्थयात्रा का आयोजन करने वाले लोग तीर्थयात्रा का संघ निकालते हैं और इस कार्य में बहुत अधिक धन खर्च करते हैं। वे यात्रा कराकर जीव को कर्मों के बन्धन में

बाँध देते हैं और यह मान लेते हैं कि बुरे कर्म हमारा क्या बिगाड़ लेंगे।

भावार्थ- तीर्थयात्रा करने से पूर्व के पाप समाप्त नहीं होते। तीर्थयात्रा से पाप-क्षय होने की झूठी मान्यता के कारण ही लोगों को पाप करने का अवसर मिलता है।

मन माहें जाणे अमें धरम भोगवसुं, प्रगट पाप न देखे।

सुभ असुभ बंने भोगववा, ए धरम राज सर्वे लेखे॥२२॥

वे अपने मन में यही सोचते हैं कि हम धर्म कर रहे हैं, किन्तु वे अपने किये हुए पापों पर विचार नहीं करते। शुभ और अशुभ दोनों ही कर्मों का फल सुख और दुःख के रूप में अलग-अलग भोगना पड़ता है। धर्मराज के पास इन सबका हिसाब रहता है।

भावार्थ- धर्मराज द्वारा जीवों के कर्मों का हिसाब होना

पौराणिक मान्यता है। वैदिक सिद्धान्त के अनुसार अद्वितीय परब्रह्म ही सब कुछ है। सत्य स्वरूप होने के कारण वह धर्म का साक्षात् स्वरूप है या धर्मराज है।

तीरथ ते जे एक चित कीजे, करम न बांधिए कोय।

अहनिस प्रीते प्रेमसूं रमिए, तीरथ एणी पेरे होय॥२३॥

सच्चा तीर्थ वह है, जिसमें अपने चित्त को एकाग्र कर प्रेम-प्रीति से सच्चिदानन्द परब्रह्म को रिझाया जाये। इसमें कर्मों का कोई बन्धन नहीं लगता और वास्तविक तीर्थ यात्रा का लाभ मिलता है।

भावार्थ- "जनाः यैः तरन्ति तानि तीर्थानि " अर्थात् मनुष्य जिससे भवसागर से पार हो, वही तीर्थ है। प्रेमपूर्वक परमात्मा की भक्ति ही वास्तविक तीर्थ है। निरर्थक इधर-उधर भटकते रहना तथा नदियों के जल

में डुबकी लगाकर जड़ पदार्थों की परिक्रमा करना तीर्थ नहीं है।

दान करे सहु देखा देखी, बांधे ते करम अनेक।

मन तणी आंकडी न लाधे, तेणें बंधाय बंध विसेक॥२४॥

एक-दूसरे की देखा-देखी सभी दान तो करते हैं, लेकिन स्वयं को अनेक प्रकार के कर्मों के बन्धन में बाँध लेते हैं। वे अपने मन की गुत्थियों को नहीं सुलझा पाते अर्थात् मन की सांसारिक इच्छाओं को समाप्त नहीं कर पाते, जिससे वे कर्मों के बन्धन में विशेष रूप से बँध जाते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में सम्यक् दान की नहीं, बल्कि पुण्य की इच्छा से देखा-देखी किये जाने वाले दान की खण्डनी की गयी है। दान एक शुभ कार्य है, जिससे होने

वाले पुण्य के बदले सुख भोगने के लिये संसार में जन्म लेना पड़ता है। ब्रह्मज्ञान के प्रचार एवं मानवता के कल्याणमयी कार्यों में निष्काम भाव से अवश्य दान करना चाहिए। इसकी प्रशंसा श्रीमुखवाणी एवं बीतक में अनेक स्थानों पर है— १. सेवा समान बीजो पदारथ नथी २. नहीं कोई सुख इन सेवा समान, जो दिल सनकूल करे पहिचान ३. तमे प्रेम सेवाएं पामसो पार। राजाराम और झांझनभाई का सिर धन की निष्काम सेवा के कारण ही ऊँचा है।

जीव संघारता मन न विमासे, जाग करे नामनाय।

करम बंधातां कोई नव देखे, पण लेखूं लेसे जम राय॥२५॥

जो जीवों की हत्या करने में अपने मन में जरा भी नहीं डरते तथा झूठी प्रतिष्ठा पाने के लिये यज्ञों का आयोजन

करते हैं, ऐसे लोग अपने को कर्मों के बन्धन में बाँध लेते हैं लेकिन वे जान नहीं पाते। उनके कर्मों का सम्पूर्ण हिसाब तो यमराज के पास रहता ही है।

अनेक देरा परबो ने परवा, धन खरचे मोटाई।

प्रसिद्ध प्रगट थाय पाखंडें, जेम माहें भांड भवाई॥२६॥

अनेक लोग मन्दिर, प्याऊ, और धर्मशाला का निर्माण करवाते हैं। इस कार्य में वे बहुत अधिक धन खर्च करते हैं। जिस प्रकार नौटंकी में भाँड लोग जोर-जोर से चिल्लाते हैं, उसी प्रकार ये भी प्रसिद्धि पाने के लिये सबके बीच में प्रत्यक्ष रूप से चिल्लाने का पाखण्ड रचते हैं।

दान दया सेवा सर्वा अंगे, कीजे ते सर्वे गोप।

पात्र ओलखीने कीजे अरचा, सास्त्र अर्थ जोड़ए जोप॥२७॥

दान, दया, और सेवा आदि सच्चे हृदय से गोपनीय रूप में करना चाहिए। इस सम्बन्ध में यदि हम शास्त्रों के अभिप्राय को देखें, तो यह स्पष्ट होगा कि पात्रता की पहचान करके ही पूजा करनी चाहिए।

आगे प्रगट कीधूं रे जनके, दाधो पग अगिन।

त्यारे घणी खंडनी कीधी नव जोगी, रखे वृथां जाये साधन॥२८॥

पूर्व काल में राजा जनक ने अपनी विदेहावस्था का प्रदर्शन करने के लिये जब अग्नि में अपना पैर रखा, तो वह जलने लगा। उस समय वहाँ उपस्थित नौ योगियों (ऋषियों) ने उनकी बहुत अधिक खण्डनी की। यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि किसी भी प्रकार के

अभिमान से साधना व्यर्थ न हो जाये।

सत व्रत धारणसों पालिए, जिहां लगे ऊभी देह।

अनेक विघन पड़े जो माथे, तोहे न मूकिए सनेह॥२९॥

जब तक शरीर है, तब तक सत्य व्रतों का दृढ़ निष्ठा से पालन करना चाहिए। भले ही सिर पर कितनी ही आपदायें क्यों न आएँ, अपने कार्य से मुँह नहीं मोड़ना चाहिए।

भावार्थ- इस चौपाई में व्रत का तात्पर्य उपवास से नहीं, बल्कि उस शाश्वत सत्य का आचरण करने से है जो वेदों और महान पुरुषों को स्वीकार्य है।

भागवत वचन जो जो रे विचारी, सार अखर जे सत।

जीवने जगावो वचन प्रकासी, रदे उघाडो मत॥३०॥

भागवत के वचनों को देखकर उन पर विचार करो।
उनमें सार रूप में सत्य बात यही है कि ज्ञान के वचनों
से अपने हृदय के द्वार खोलो और जीव को जाग्रत करो।

ए माथे लेसे तेने कहूं छूं, बीजा मां करजो दुख।

तमें तमारी माया माहें, सेहेजे भोगवजो सुख॥३१॥

मैं यह बात मात्र उन्हीं के लिये कह रहा हूँ जो इसे
स्वीकार करें। दूसरे लोगों को दुःखी होने की
आवश्यकता नहीं है। तुम अपनी मीठी माया में बहुत
आराम से सुख भोगते रहो।

कोई एम मां केहेजो जे निंदया करे छे, वचने कहूं छूं देखाडी।

साध पुरुख नी निद्रा भाजे, आंखडी देऊं रे उघाडी॥३२॥

मेरी इस प्रकार की बातों को सुनकर कोई यह न कहे

कि मैं किसी की निन्दा करता हूँ। मैं शास्त्रों के अनुकूल ही कोई भी बात कहता हूँ। इन वचनों से साधु पुरुषों के ज्ञान-चक्षु खुल जायेंगे और उनके अन्दर की अज्ञानता हट जायेगी।

वचन केहेतां कोई दुख मां करसो, सांभलजो सहु कोय।
 सत केहेतां कोई वांकू विचारसे, तो सरज्यूं हसे ते होय॥३३॥

मेरे इन वचनों से किसी को अपने मन में दुःख नहीं करना चाहिए। सबको चाहिए कि मेरी बातों को ध्यान से सुनें। मेरे द्वारा सच्ची बात कहने पर भी यदि कोई उल्टा सोचता है, तो सोचता रहे। जो होना है, वह होगा ही। मुझे कोई चिन्ता नहीं है।

विप्र तणों वेपार भाजे छे, भाई भागवत हाट न चाले।

तोज फरी फरी ने मूलगां, सब वचन जई झाले॥३४॥

हे भाइयों! यदि मैं सत्य बातें कहता हूँ, तो भागवत सुनाकर अर्थोपार्जन करने वाले ब्राह्मणों की दुकानें बन्द हो जायेंगी और उनका सारा व्यापार नष्ट हो जायेगा। इसलिये प्रारम्भ से ही वे अन्धकार में भटकाने वाले कर्मकाण्ड के वचनों को बार-बार सुनाते हैं।

विप्र कुलीमां थया रे जोरावर, सत वचन उबेखे।

पाखंडे खाय सर्वे पृथ्वी, लोभ बिना नव देखे॥३५॥

कलियुग में जन्म के ही आधार पर ब्राह्मण कहलाने वाले लोगों की शक्ति बढ़ गयी है। वे धर्मग्रन्थों के सत्य वचनों को भी उल्टे रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनके पाखण्डों ने तो सम्पूर्ण पृथ्वी को ही विनाश की अग्नि में झोंक दिया

है। इन्हें तो लोभ के बिना और कुछ दिखायी ही नहीं पड़ता है।

ए रे लोभ घणों दोहेलो लागसे, पण लाग्या स्वादे चित न आवे।
नीला बंध बांधता सुख उपजे छे, पण सूक्या पछी रोवरावे॥३६॥

धन का यह लोभ बहुत अधिक दुःखदायी होगा, लेकिन जिन ब्राह्मणों को इसका स्वाद लग गया है, उनके चित्त में इसके अतिरिक्त अन्य कोई बात समाती ही नहीं है। जिस प्रकार किसी घाव पर पानी से भीगा हुआ गीला कपड़ा बाँधने पर पहले तो ठण्डक के कारण बहुत अच्छा लगता है किन्तु बाद में जल के सूख जाने के पश्चात् वह पीड़ा का कारण बन जाता है, उसी प्रकार सबको कर्मकाण्ड में फँसाकर उनका धन लूटना पहले तो अच्छा लगता है किन्तु बाद में वही दुःख का कारण

बनता है।

उनमद उत्तम असार जाग्या रे मांहें थी, साध आपने कहावे।

कुकरम मांहें कहिए जे कुकरम, बंध वज्र में बंधावे॥३७॥

जन्म के आधार पर अपनी जातिगत श्रेष्ठता के अभिमान में ये अपने को सर्वोत्तम मानते हैं और इस सारहीन जगत में स्वयं को साधू कहते हैं। ये अधम से भी अधम कर्मों का आचरण करते हैं तथा कर्मों के अमिट बन्धन में अपने को बाँध लेते हैं।

दोष विप्रों ने कोई मां देजो, ए कलजुग ना एधांण।

आगम भाख्यूं मले छे सर्वे, वैराट वाणी रे प्रमाण॥३८॥

हे भाइयों! इन जन्मना ब्राह्मणों को दोष मत दो। इनका ऐसा होना ही तो कलियुग की पहचान है। इस संसार के

धर्मग्रन्थों में यह भविष्यवाणी पहले से ही लिखी है कि कलियुग में ब्राह्मण नीच कर्म करेंगे।

भावार्थ- कलियुग में ब्राह्मणों का आचरण बहुत दूषित हो जाएगा, ऐसा माहेश्वर तन्त्र में भारद्वाज ऋषि द्वारा दिये गये श्राप में वर्णित है।

असुर थकी सम खाधा भभीखणे, आगल श्री रघुनाथ।

तमसूं कपट करूं तो कुली माहें, ब्राह्मण थांउं आप।।३९।।

असुर वंश में उत्पन्न विभीषण ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के सामने यह शपथ खायी कि हे प्रभो! यदि मैं आपके साथ छल-कपट करूँ, तो इस पाप के परिणामस्वरूप मुझे कलियुग में ब्राह्मण का जन्म मिले।

त्यारे वारयो श्री रघुपतिराय, एवा कठण सम कां खाधा।

तमें छो अमारा हूं नेहेचे जाणूं, मन मां म धरजो बाधा॥४०॥

तब भगवान श्री राम चन्द्र जी ने विभीषण को ऐसा कहने से रोका कि तुमने इतनी कठिन सौगन्ध क्यों खाई। मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि तुम मेरे भक्त हो, इसलिये तुम अपने मन में किसी भी प्रकार का संशय मत रखो।

ए वचन आगम छे प्रगट, ते तां सहु कोई जाणे।

उत्तम करे असुराई ते माटे, ए कुली व्यापक एधाणे॥४१॥

यह बात भविष्य का कथन करने वाले ग्रन्थों में पहले से लिखी हुई है, जिसे हर कोई जानता है। यही कारण है कि उत्तम ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर भी आसुरी कर्म करते हैं। यह कलियुग की स्पष्ट पहचान है।

श्रोता जाये सांभलवा ने चाल्या, जाणें आंधला नो संग।
बाहेरनी फूटी कांने बेहेरा, रदे तणां जे अंध॥४२॥

एक बहरा कथा सुनने के लिये जा रहा था, रास्ते में एक अन्धे से उसकी भेंट हो गयी। एक की बाहर की आँखें नहीं और दूसरा कानों से बहरा है। इस प्रकार दोनों ही दिल से अन्धे हैं, अर्थात् दोनों का हृदय ज्ञान चर्चा के वास्तविक आनन्द से तृप्त नहीं हो सकता।

भावार्थ- आँखों से वक्ता को देखने तथा कानों से सुनने पर हृदय में आनन्द आता है। सम्पूर्ण इन्द्रियों का राजा मन अन्तःकरण (हृदय) का अंग है। इन्द्रियों से ही जिस वस्तु की अनुभूति न हो, उसके आनन्द का अनुभव हृदय कैसे कर सकता है। यही कारण है कि दोनों को ही दिल से अन्धा कहा गया है। बहरा व्यक्ति समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, जो ज्ञान से रहित है। इसी

प्रकार अन्धा व्यक्ति श्रद्धाहीन वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। ज्ञान और श्रद्धा से हीन व्यक्ति के हृदय में कभी भी अध्यात्म का रस प्रवाहित नहीं हो सकता।

भट जी कथा करवानें बेसे, केणे आंसू पात न आवे।

भांड तणी पेरे वचन वांका कही, श्रोताने हंसावे॥४३॥

भट्ट जी जब श्रीमद्भागवत् की कथा करने बैठते हैं, तो भाँडों की तरह किस्से-कहानियों के लुभावने वचन सुनाकर श्रोताओं को हँसाते हैं। उनके मुख से कथा सुनकर किसी को भी विरह के आँसू नहीं आते।

हंसी रमी कतोल करीने, श्रोता किवता उठे।

मनमां जाणें अमें ग्यान कथूं छूं, पण बंध माहेंना नव छूटे॥४४॥

सभा स्थल से हँसी-मजाक का आनन्द लेते हुए श्रोता

और वक्ता दोनों ही उठ जाते हैं। कथाकार के मन में यही बात होती है कि मैं शुद्ध ज्ञान की बातें सुनाता हूँ, लेकिन स्वयं उनके ही मन से माया का बन्धन नहीं छूटता।

दुष्टे दुष्ट मले मद माता, ए कलजुगना रंग।

सत पंडित कहावे साध मंडली, ए करमोंना बंध॥४५॥

अभिमान में डूबे हुए दुष्ट की जब दुष्ट से गहरी घनिष्ठता हो जाये, तो यह समझ लेना चाहिए कि कलियुग का पूरा प्रभाव है। केवल साधुओं की मण्डली में रहने और सच्चे पण्डित कहलाने मात्र से ही कर्मों के बन्धन से मुक्त नहीं हुआ जा सकता।

तेम तेम कामस चढती जाये, जेम जेम जराबल आवे।

एम करतां जम किंकर आवे, पछे जीत्यूं रतन हरावे॥४६॥

जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे मन का मैल (मनोविकार) भी बढ़ता जाता है। इसी स्थिति में रहते-रहते मृत्यु का समय आ जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि जीता हुआ रत्न भी हारना पड़ता है, अर्थात् अनमोल मानव तन को गँवाना पड़ता है।

चरचा कथा तेहेने कहिए, जे आप रूए रोवरावे।

दिन दिन त्रास वधतो जाये, ते बंध रदेना छोडावे॥४७॥

ब्रह्मज्ञान की कथा या चर्चा उसको कहते हैं, जिसमें वक्ता भावविह्वल होकर स्वयं रोए और श्रोताओं को भी रुला देवे। दिन-प्रतिदिन दोनों को मृत्यु का डर बढ़ता जाये, जिससे हृदय में स्थित माया के बन्धन खुल जायें अर्थात् हृदय में कोई भी मायावी विकार न रहे।

वस्तु थई अगोचर माहीं, जीव चाले आणे आचार।

एणी चाले जो फल लाधे, तो पामसे सहु संसार॥४८॥

सच्चिदानन्द परब्रह्म मन और इन्द्रियों से परे है। संसार के जीव बाह्य कर्मकाण्डों का पालन करते हैं। ऐसी चाल चलने से यदि अखण्ड फल की प्राप्ति हो जाती, तो सारा संसार ही उसे पा लेता।

साध रह्या पंथ जोई जोई, पण केणे न लाध्यो सेर।

अनेक उपाय करी करी थाक्या, पण न टले ते भोमनों फेर॥४९॥

बहुत से साधू-महात्मा इस राह पर देख-देख कर चले, लेकिन किसी को भी वास्तविक सत्य मार्ग नहीं मिल सका। वे अनेक उपाय कर-कर थक गये, लेकिन उनके जन्म-मरण का चक्र नहीं छूटा।

भावार्थ- आध्यात्मिक मार्ग में देख-देख कर चलने का

तात्पर्य है – आत्मनिरीक्षण करते हुए सावधानीपूर्वक साधना मार्ग पर बढ़ते जाना। जब तक वैकुण्ठ-निराकार से परे का ज्ञान नहीं प्राप्त होता और परब्रह्म का साक्षात्कार नहीं होता, तब तक शाश्वत समय के लिये जन्म-मरण का चक्र नहीं छूट सकता। स्वर्ग, वैकुण्ठ, और निराकार की प्राप्ति अखण्ड मुक्ति नहीं है।

ए अमल तणो फेर जिहां नव जाये, तिहां फरे छे विकलना जेम।

ए अटकलें वन वन जई वलगे, ते फल पांमे केम॥५०॥

जब तक माया का यह नशा समाप्त नहीं होता, तब तक यह जीव व्याकुल होकर जन्म-मरण के चक्र में घूमता रहता है। संशय में डूबा हुआ जीव यदि शरीर रूपी भिन्न-भिन्न जंगलों में जाकर साधना में भटकता भी है, तो वह मुक्ति रूपी फल को कैसे प्राप्त कर सकता है।

भावार्थ- ध्यान-समाधि में सफलता के लिये भी सत्य ज्ञान की प्राप्ति आवश्यक है, अन्यथा यहाँ गीता का कथन चरितार्थ हो जायेगा कि "संशयात्मा विनश्यति"।

बिरिख तणी ओलखाण न उपजे, जे ए फलनूं छे आ वन।
 केम फल लाधे सोध विना, जेनूं विकल थयूं छे मन॥५१॥

अटकलों से संसार रूपी वृक्ष की पूरी पहचान नहीं होती, जिसका फल शरीर रूपी यह वन है। यह शरीर ही मुक्ति प्राप्ति का साधन है। जिसका मन ही व्याकुल है, वह बिना परमात्मा की खोज किये मुक्ति रूपी फल को कैसे पा सकता है।

भावार्थ- जिस प्रकार वृक्ष से फल पैदा होता है, उसी प्रकार संसार में इस मानव तन की उत्पत्ति होती है। इसी कारण इस चौपाई में शरीर को संसार रूपी वृक्ष का फल

कहा गया है, जो मुक्ति का एकमात्र साधन है।

उनमाने फल जोवा जाये, सामां वीटे करमना जाल।

मनमां जाणें हूं बंध छोड़ूं छूं, पण बंधाई पड़े तत्काल॥५२॥

वह अनुमान के सहारे ही मुक्ति रूपी फल को पाना चाहता है, किन्तु उसके ऊपर कर्मों की जाली लिपटी होती है। वह अपने मन में सोचता है कि मैं माया के बन्धनों को छोड़ रहा हूँ, किन्तु माया छोड़ने के लिये वह जो भी साधन अपनाता है, वही तत्काल बन्धन का कारण बन जाते हैं।

भावार्थ- यदि कोई व्यक्ति माया छोड़ने के लिये गृह त्यागकर जंगल में जाता है और वहाँ ध्यान करने के लिये कुटिया बनाता है, तो भी वह किसी न किसी बन्धन में बँध ही जाता है। जब तक पूर्ण ज्ञान न हो और ब्रह्म का

साक्षात्कार न हो, तब तक प्रत्येक वस्तु बन्धन का कारण है, चाहे वह भिक्षा में मिला हुआ दो मुट्ठी अन्न हो या कमर में लिपटी हुई जीर्ण-शीर्ण कौपीन (लंगोट)।

जई ने जुए फल जुआ थईने, अनेक कीधी उनमान।

एक माहेंथी चौरासी बुधे बोल्या, पण पांम्या नहीं पराधान॥५३॥

कुछ लोगों ने कर्मकाण्ड को छोड़कर मुक्ति रूपी फल को पाना चाहा, तो अनेक ने अनुमान के सहारे ही उसकी कल्पना कर ली। मात्र एक वैष्णव पन्थ के अन्दर चौरासी ज्ञानी वैष्णवों ने इस विषय पर गहन विवेचना की है, लेकिन वे भी परम तत्व तक नहीं पहुँच सके।

भावार्थ— जैन मत में २४ तीर्थंकर हैं। उनमें ८४ सिद्ध पुरुषों का कोई प्रसंग नहीं है। इसी प्रकार नाथ पन्थ में भी ९ नाथ योगियों का प्रसंग है। वैष्णव सम्प्रदाय में ८४

वैष्णवों की वार्ता प्रसिद्ध है। इस सम्प्रदाय में ८४ का अंक बहुत महत्वपूर्ण है, जैसे— ब्रज मण्डल ८४ कोश में है और वल्लाभाचार्य मत में ८४ पीठ हैं।

इहां अनेक बुधे बल कीधां, अने अनेक फराया मन।

फल थयूं अगाध अगोचर, साथ रहया जोई जोई अनू दिन॥५४॥

परब्रह्म को पाने के लिये अनेक ज्ञानी जनों ने अपनी शक्ति लगायी और अनेक ने अपने मन को पूर्ण रूप से निर्विकार करके माया से अलग करना चाहा, लेकिन परमात्मा का दर्शन या मुक्ति रूपी फल उनके लिये अनन्त और अप्राप्त (अगोचर) ही रहा। वे इस विषय में स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं जान सके। उनके साथ रहने वाले लोग इसी दिन की राह देखते रहे।

भावार्थ— अनेक ज्ञानियों और तपस्वियों ने परब्रह्म का

साक्षात्कार करने के लिये अपनी सारी शक्ति लगा दी, लेकिन वे सफल नहीं हो सके। उनके शिष्यगण श्री प्राणनाथ जी के प्रकटन की राह देखते रहे, ताकि तारतम ज्ञान से वे परब्रह्म के धाम, स्वरूप, तथा लीला को जान जायें।

वली जे साध पुरुख कोई कहावे, ते कामस टालवा जाये।

सो मन साबू घसी पछाडे, निरमल तोहे नव थाय॥५५॥

फिर जो इस संसार में साधू पुरुष कहलाते हैं, वे अपने मन के विकारों को हटाने का प्रयास करते हैं। यह मन ऐसी बला है, जो सौ मन साबुन लगाने पर भी पूर्ण रूप से निर्मल नहीं हो पाता।

भावार्थ— "सौ मन साबुन घिसना" एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है— निर्मल होने के लिये बहुत अधिक

प्रयास करना। कर्मकाण्ड और नवधा भक्ति के संस्कारों में फँसकर चाहे कितना भी प्रयास क्यों न किया जाये, मन कदापि स्वच्छ नहीं हो सकता।

सो रे वरसनी जटा बंधाणी, ते केम छोडी जाये।

अंतकाल सुरझावा बेठा, लेई कांकसी हाथ माहें॥५६॥

सौ वर्ष तक बालों की जटा बढ़ाने के बाद उससे ऐसा लगाव हो जाता है कि उसका त्याग करना कठिन होता है। अन्त में उसको सुलझाने के लिये हाथ में कँधी का सहारा लेना ही पड़ता है।

ए करमना बंध जोरावर, छूटे नहीं केणी पर।

बलिया बल करी करी थाक्या, निगमिया अवसर॥५७॥

कर्मों का बन्धन बहुत बलवान है। यह किसी भी प्रकार

से छूटता नहीं है। ज्ञान और भक्ति के क्षेत्र के बड़े-बड़े महारथी वीर भी सारा प्रयास करके थक गये, किन्तु वे कर्मों का बन्धन नहीं टाल (तोड़) सके। उन्होंने अपना वह अनमोल अवसर गँवा दिया।

भावार्थ- बिना ब्रह्म-साक्षात्कार के किसी भी साधन से कर्मों का बन्धन नहीं टाला जा सकता। यह कथन मुण्डकोपनिषद् में स्पष्ट रूप से वर्णित है - "क्षीयन्ते चास्य कर्माणि।"

बंध छोडे जई आकार ना, मोटी मत धणी जे कहावे।
पण बंध बंधाणां जे अरूपी, ते तां दृष्टें केहेनी न आवे॥५८॥

जो लोग बहुत बड़े ज्ञानी कहलाते हैं, वे शरीर के बन्धनों को तो छोड़ देते हैं, लेकिन उनके हृदय में जो सूक्ष्म व अदृश्य बन्धन होते हैं, वे न तो किसी को आँखों

से दिखायी देते हैं और न ही कहने में आते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में उन विरक्त लोगों की ओर संकेत किया गया है, जो बचपन में ही सन्यास धारण कर पूर्ण वैराग्यवान बन जाते हैं। वे धर्मशास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान होते हैं। लोग उन्हें माया से मुक्त, आत्मद्रष्टा विद्वान, और अपना आदर्श मानते हैं, किन्तु वास्तविकता यह होती है कि इस प्रकार की महान विभूतियाँ भी ब्रह्म-साक्षात्कार से वंचित रह गयी होती हैं। उनके हृदय में भी अति सूक्ष्म रूप से माया का प्रवेश होता है, जो लोकेषणा और दारेषणा (शिष्यों की संख्या बढ़ाने की आसक्ति) के रूप में छिपी रहती है। एक कवि ने कहा है कि "मोटी माया सब तजे, झीनी तजी न जाये।"

गुरुगम टाली बंध न छूटे, जो कीजे अनेक उपाय।

जेणी भोमें रे आप बंधाणां, ते भोम न ओलखी जाये॥५९॥

भले ही कोई कितने भी उपाय क्यों न कर लेवे, लेकिन बिना गुरु-कृपा के माया के बन्धन नहीं छूटते। माया के जिस बन्धन में वह बँधा होता है, उसकी पहचान बिना सद्गुरु की कृपा के नहीं हो सकती।

भावार्थ- इस चौपाई में लौकिक गुरु, कान में मन्त्र फूँकने वाले गुरु, और शास्त्रों का शब्द-ज्ञान देने वाले गुरु का कोई प्रसंग नहीं है, बल्कि उस सद्गुरु का वर्णन किया है जो क्षर व अक्षर से परे अक्षरातीत परब्रह्म की पहचान कराये।

आप न ओलखे बंध न सूझे, करम तणी जे जाली।

खोलतां खोलतां जे गुरुगम पांम्यो, तो ते नाखे बंध बाली॥६०॥

कर्मों की जाली ऐसी विकट है कि उससे न तो स्वयं की और न माया के बन्धनों की पहचान हो पाती है। सद्गुरु की खोज करते-करते जब उनकी कृपा प्राप्त होती है, तो माया के बलशाली बन्धन कट जाते हैं।

केम ओधरिया आगे जीव, जेणे हता करमना जाल।

गुरगम ज्यारे जेहेने आवी, ते छूटया तत्काल॥६१॥

जो जीव कर्मों के बन्धन में था, उसका उद्धार कैसे हुआ? जीव को जैसे ही सद्गुरु की कृपा प्राप्त हुई, वह उसी समय कर्मों के बन्धन से मुक्त हो गया।

भावार्थ- सद्गुरु-कृपा का तात्पर्य बाह्य रूप से उनका निकटस्थ होना नहीं है, बल्कि उनके तारतम ज्ञान द्वारा सर्वप्रथम अक्षरातीत के धाम, स्वरूप, तथा लीला का सम्यक् बोध होना है। इसके पश्चात् सद्गुरु की

अन्तःप्रेरणा रूपी कृपा हृदय में विरह की ऐसी अग्नि पैदा कर दे जिसमें विषय-विकार भस्मीभूत हो जायें तथा जीव और आत्मा दोनों ही जाग्रत हो जायें। ज्ञान, प्रेम, और विरह के अभाव में कोई भी कृपा वास्तविक कृपा नहीं है। बिहारी जी पुत्र होते हुए भी सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के कृपा-पात्र नहीं बन सके थे।

आणे वचने खरे बपोरे, बोध तमारे पास।

भरथ खंड माहें जनम मानखे, कां न करो प्रकास॥६२॥

तुम्हें भरत खण्ड में उत्तम मानव तन मिला है। सौभाग्यवश तुम्हें ऐसे सद्गुरु की सामीप्यता भी प्राप्त है, जिनका ज्ञान तपती दोपहरी के प्रकाश के समान है। उनके संशय रहित वचनों से अपने हृदय में सच्चे ज्ञान का प्रकाश क्यों नहीं भर लेते हो।

आ जोगवाई सघली सनंधे, कां न करो वस्त हाथ।

आ वेला वली वली नहीं आवे, जीती कां जाओ रे निरास॥६३॥

तुम्हें सभी प्रकार के साधन (मानव तन, भरत खण्ड, अट्टाइसवाँ कलियुग, और ब्रह्म स्वरूप सद्गुरु) मिले हैं। उस अखण्ड वस्तु (परब्रह्म, धाम, और मुक्ति) को क्यों नहीं प्राप्त कर लेते। यह शुभ घड़ी बार-बार नहीं आने वाली है। जीती हुई बाजी को हार में बदलकर क्यों निराश होना चाहते हो।

तमें जैन महेश्वरी सहुए सुणजो, आदे धरम छे एक।

रिखभ देव चल्या पछी मारग, वेहेचाणां विवेक॥६४॥

जैन एवं माहेश्वर पन्थ के अनुयायियों! आप सभी मेरी बात सुनिए। प्रारम्भ में तो एक ही धर्म था। ऋषभदेव के निर्वाण-प्राप्ति (देह त्याग) के पश्चात् यह पन्थ टुकड़ों-

टुकड़ों में बँट गया।

भावार्थ- परम सत्य ही धर्म है, जो सृष्टि के पूर्व भी था और महाप्रलय के पश्चात् भी रहेगा। जिसने धर्म रूपी अनन्त सागर में से सत्य की मणियों को जितना आत्मसात् किया, उससे उनके मत या पन्थ का प्रकटन हुआ। इस प्रकार सभी मत-पन्थों का मूल एक ही शाश्वत सत्य है, जिसे धर्म कहते हैं। धर्म वस्तुतः एक है, किन्तु मत-पन्थ अनेक हैं। महेश्वर (शिव) के उपासकों को माहेश्वरी कहते हैं। जैनियों और शैवों के विरोध को देखते हुए इस चौपाई में धर्म के नाम पर होने वाली लड़ाई को मिटाकर वास्तविकता का आभास कराया गया है।

मुझवण विध करो छो धर्मनी, माहों माहें अगाध।

वस्त खोल्या विना विमुख थाओ छो, लई जाये गुण कहावो साध॥६५॥

धर्म के सम्बन्ध में अपने संकीर्ण विचारों के कारण ही तुम आपस में बहुत अधिक लड़ रहे हो। शाश्वत सत्य को न जानने के कारण ही तुम धर्म के वास्तविक स्वरूप से विमुख हो गये हो। इतना भटकाव होने पर भी तुम स्वयं को साधू कहलवाते हो।

जीव चंडाल कठण एवो कोरडू, कां रे करो छो हत्यारो।

वृथा जनम करो कां साधो, आवो रे आकार कां मारो॥६६॥

जीव तो स्वभाव से ही चाण्डाल, कठिन, और खाँगडू है। तुम इसकी हत्या करने का काम क्यों कर रहे हो। हे साधू जनों! अपने इस शरीर को मारकर इस जन्म को निरर्थक क्यों खो रहे हो।

भावार्थ— इस चौपाई में जीव और शरीर की हत्या करने की जो बात कही गयी है, वह काव्यगत सौन्दर्य है। गीता

के कथन "नैनं छिन्दन्ति शास्त्राणि" के आधार पर जीव की हत्या होनी सम्भव ही नहीं है। हत्या तो शरीर की होती है, उसे ही जीव-हत्या की संज्ञा दे दी जाती है। जीव की हत्या करने का भाव यह है कि यदि जीव ने अपने स्वभाव में परिवर्तन करके अपने अन्दर निर्मलता, कोमलता, और प्रेम-विह्वलता का भाव नहीं भरा, तो उसे जन्म-मरण के चक्र में भटकना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में शरीर के स्वाभाविक त्याग को भी "हत्या" कह दिया गया है। इसी प्रकार शरीर को अनावश्यक रूप से कष्ट देना ही शरीर को मारना है। इसका मूल भाव यह है कि शुद्ध ज्ञान एवं विशुद्ध प्रेम से ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है, न कि मात्र शरीर को हठयोग की कठिन साधनाओं में सताने से।

लाख चौरासी हत्या बेससे, एवो आ जनम तमारो।

बीजी हत्यानों पार नथी, जो ते तमें नहीं संभारो॥६७॥

यदि तुम अपने को नहीं सम्भालते हो, तो तुम्हें चौरासी लाख हत्याओं का पाप लगेगा, क्योंकि चौरासी लाख योनियों में भटकने के पश्चात् ही तुम्हें यह मानव तन मिला है। इन योनियों में भटकते हुए तुमने जो दूसरी हत्यायें की हैं, उनकी तो कोई सीमा ही नहीं है।

भावार्थ- मानव योनि में ब्रह्म-साक्षात्कार न होने पर उसे जन्म-मरण के चक्र से गुजरना पड़ेगा। इस प्रकार चौरासी लाख योनियों में गुजरने को ही चौरासी लाख जीवों की हत्या करना कहा गया है।

आगल तिमर घोर अंधारूं, बूडसे जीव जल माहें।

लेहेरा मारे अवला पछाडे, मछ गलागल ताहें॥६८॥

आगे मोहसागर का घना अन्धकार है। उस मोहजल में जीव डूब जायेगा। उसमें प्रगट होने वाली तृष्णा की लहरें उल्टी दिशा में पछाड़ेंगी। उसमें काम, क्रोध रूपी बड़े-बड़े मगरमच्छ होंगे, जो जीव को निगल लेंगे अर्थात् उसे भवसागर में डुबा देंगे।

भावार्थ- कभी भी जीर्ण न होने वाली तृष्णा ही सभी दुःखों का कारण है। इसी के कारण जीव चौरासी लाख योनियों में भटकता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, और अहंकार रूपी घड़ियाल जीव को पतन की गर्त में ढकेल देते हैं।

बुध बिना जीव बेसुध थासे, माथे पडसे मार।

बांधेल बंध ताणसे बलिया, विसमसे नहीं खिण वार॥६९॥

जाग्रत बुद्धि के ज्ञान बिना जीव मोह सागर में बेसुध हो

जायेगा। उसके सिर पर मृत्यु की मार पड़ेगी। अपने ही बाँधे हुए शक्तिशाली बन्धनों से वह माया में खिंचता जायेगा। उसे क्षण भर के लिये भी शान्ति नहीं मिलेगी।

ए दुस्तरनों क्याहें छेह नहीं आवे, कलकलसो करसो पुकार।
 त्रास पांमी ने जीव कां न जगवो, आ विसमूं घणुं संसार॥७०॥
 कठिनता से पार की जाने वाली इस माया में कहीं भी शान्ति मिलने वाली नहीं है। इस माया में फँसकर तुम विलख-विलखकर रोओगे। ऐसे भयानक कष्टों को जानकर भी तुम अपने जीव को क्यों नहीं जगा लेते हो। यह संसार बहुत कठिन है, अर्थात् रहने योग्य नहीं है।

दिस एके नहीं सूझे सागर माहें, भवसागर जम जाल।
 अनेक वार तडफडसो मरसो, तोहे नहीं मूके काल॥७१॥

यह भवसागर मृत्यु का बन्धन है। इससे बाहर निकलने के लिये जीव को कहीं भी कोई रास्ता नहीं दिखायी पड़ता। अनेक बार तुम तड़प-तड़प कर मरोगे, फिर भी तुम्हें मृत्यु से छुटकारा नहीं मिलेगा।

त्यारे तेवा मांहे सूं सोध थासे, आज आव्यो अवसर।

साध पुरुख तमें जो जो संभारी, बीजी नथी छूटवा पर॥७२॥

ऐसी स्थिति में भला परमात्मा की खोज क्या होगी। इस समय तुम्हें सुनहरा अवसर मिला है। हे साधु पुरुषों! यदि आप विचार करके देखें तो यह स्पष्ट होगा कि तारतम ज्ञान के बिना भवसागर से पार होने का कोई भी दूसरा मार्ग नहीं है।

गुरुगम टाली ए गाँठ न छूटे, केमे न थाय रे नरम।

माहेंली कामस केमें न जाये, जो कीजे अनेक श्रम॥७३॥

बिना सद्गुरु की कृपा के माया की गाँठ नहीं खुलने वाली है। किसी भी प्रकार से यह थोड़ी ढीली भी नहीं हो सकती। चाहे तुम कितने ही प्रयास क्यों न करो, लेकिन अन्दर का मैल किसी भी प्रकार से नहीं जा सकता।

भावार्थ— बाह्य शरीर को जल आदि से स्वच्छ किया जाता है। आन्तरिक अंगों (फेफड़ा, यकृत, रक्त वाहिनी नाड़ियों आदि) को प्राणायाम आदि से स्वच्छ किया जा सकता है, किन्तु कारण शरीर (चित्त, मन, आदि) को कैसे शुद्ध किया जाये? चित्त में जन्म-जन्मान्तरों की वासनाओं के संस्कार भरे हैं। उन्हें हटाने के लिये यदि अष्टांग योग का आश्रय लें तो चित्त के निर्विकार होने के पश्चात् निर्बीज समाधि की ही प्राप्ति होगी, किन्तु परम

गुहा में प्रविष्ट हुए बिना ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं होगा। परमगुहा में प्रविष्ट होने के लिये सद्गुरु कृपा, तथा प्रेम एवं समर्पण की गहन स्थिति में पहुँचना अनिवार्य है। निर्बीज समाधि से भी निराकार से परे बेहद या परमधाम की अनुभूति नहीं हो सकती। अक्षर ब्रह्म की पञ्चवासनाओं के ज्ञान का आधार लेकर योगमाया के ब्रह्माण्ड की अनुभूति तो की जा सकती है, किन्तु परमधाम की नहीं। ऐसी स्थिति में यही कहना पड़ता है कि तारतम्य ज्ञान का आश्रय लिये बिना पूर्ण रूप से निर्मल होना और परब्रह्म का साक्षात्कार करना असम्भव है।

बाहेर थकी गाँठ एक छोड़िए, तिहां बीजी बंधाय अपार।
 ए विसमा बंध नों नथी रे उपाय, बीजो आणें संसार॥७४॥
 बाहर से जब एक गाँठ खोली जाती है, तो कर्म बन्धन

की दूसरी कई और गाँठे बँध जाती हैं। इस संसार में कर्मों के कठिन बन्धनों से छूटने के लिये सद्गुरु कृपा के अतिरिक्त अन्य कोई भी दूसरा उपाय नहीं है।

आ आकार माहें जीव बंधाणों, ते पण नव ओलखाय।

तो पारब्रह्म जे पार थयो, ते केणी पेरे खोलाय॥७५॥

इस पञ्चभूतात्मक शरीर में जीव कई बन्धनों में बँधा होता है जिनकी पहचान नहीं हो पाती, तो अक्षरातीत परब्रह्म तो इस नश्वर ब्रह्माण्ड से सर्वथा ही परे हैं, भला यह संसार उनकी पहचान कैसे करेगा।

जीव थयो माहें निराकार, ते केणी पेरे बांध्यो बंध।

रूप रंग वाए तेज नहीं, तमें साधो जुओ रे सनंध॥७६॥

जीव निराकार के अन्दर प्रकट हुआ है अर्थात् वह

आदिनारायण की चेतना का प्रतिभास है। उसका रूप-रंग वायु और तेज (अग्नि) के समान भी नहीं है। हे साधू जनों! आप इस रहस्य को देखिए कि ऐसा जीव किस प्रकार बन्धनों में बँध गया?

जीव बंधाणों अगनाने, ते अगनान निद्रा जोर।

जेहेर चढयूं घेन भोम तणुं, ते पडयो तिमर मांहें घोर॥७७॥

जीव अज्ञानवश बन्धनों में बँध गया है। अज्ञान ही गहन निद्रा है। जिसको इस मायावी जगत का जहर ज्यादा चढ़ जाता है, वह अज्ञानता के घने अन्धकार में फँस जाता है।

भावार्थ— विष वह पदार्थ है, जिसके सेवन से मृत्यु को प्राप्त हुआ जाये। मायावी सुखों की तृष्णा; शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषय; काम, क्रोध, लोभ, मोह,

मद, तथा मत्सर (ईर्ष्या) आदि षड् विकार; सभी विष के अन्तर्गत आते हैं। इनका आंशिक या पूर्ण रूप से भोग या चिन्तन भी विषतुल्य है, जो जीव को जन्म-मरण के चक्र में भटकाये रखता है।

आणे आकारे जो नव छूटो, तो छूटसो केही पर।

साधो साध नी संगत करजो, खिण खिण जाये अवसर॥७८॥

हे साधु जनों! इस मानव तन को पाने के पश्चात् भी यदि माया के बन्धनों से नहीं छूटे, तो भला कब छूटेंगे। इस सुनहरे अवसर का एक-एक क्षण बीता जा रहा है। भवबन्धन से छूटने के लिये आपको ऐसे सन्त की संगति करनी होगी, जो परम तत्व (अक्षरातीत परब्रह्म) के द्रष्टा हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में "साधू" शब्द दो बार आया है,

किन्तु उनके भावों में गहन अन्तर है। एक साधू वह है जो माया के बन्धनों में बँधा तो है, किन्तु सच्चे हृदय से उससे मुक्त होना चाहता है और इस राह पर चलने के लिये उसने कमर कस ली है। दूसरा साधू (सन्त) वह व्यक्ति है, जो अपने हृदय धाम में प्रियतम अक्षरातीत को बसाकर मायाजन्य समस्त बन्धनों को काट चुका है और वह इस संसार में रहते हुए भी नहीं रहता है।

साध संगते आ जेहेर उतरसे, रुदे ते करसे प्रकास।

घेन निद्रा सर्व उडीने जासे, अंधकार नों नास॥७९॥

ब्रह्म तत्त्व को जानने वाले सच्चे सन्त की संगति से ही माया का जहर उतरेगा और हृदय में ज्ञान का प्रकाश होगा। जीव के निज स्वरूप को भुलाने वाली माया की गहरी नींद भी उड़ जायेगी, जिससे हृदय में स्थित

अज्ञान का नाश हो जायेगा।

त्यारे जीव जई आप ओलखसे, ओलखसे आ ठाम।

घर पोताना दृष्टे आवसे, त्यारे पामसे विश्राम॥८०॥

तब जीव को अपने निज स्वरूप तथा अपने अखण्ड घर की वास्तविक पहचान होगी। निज घर तथा अपने स्वरूप का बोध होने पर ही जीव को परम शान्ति मिलेगी।

भावार्थ- इस चौपाई से तारतम ज्ञान की महत्ता स्पष्ट होती है। तारतम ज्ञान के अभाव में अब तक किसी ने भी परब्रह्म के धाम, स्वरूप, लीला, तथा अपने निज स्वरूप के बारे में यथार्थ रूप से नहीं कहा है।

ज्यारे जीवनी मोरछा भागी, त्यारे उडी गयूं अगनान।

करम नी कामस केम रहे, ज्यारे भलयो श्री भगवान॥८१॥

जब जीव के अन्दर की बेहोशी समाप्त हो जायेगी, तब उसके हृदय में स्थित अज्ञान भी समाप्त हो जायेगा। जब प्रियतम परमात्मा से ही मिलन हो जायेगा, तो उस समय भला कर्मों का बन्धन (मैल) कैसे रह सकता है।

भावार्थ- बेहोशी का कारण नशा होता है। नशा माया के जहर के सेवन से होता है। बेहोशी में अज्ञान हावी रहता है, जिसके कारण जीव को ८४ लाख योनियों का कष्ट भोगना पड़ता है। प्रियतम का साक्षात्कार ही कर्मों के बन्धन, अज्ञान, और बेहोशी से शाश्वत मुक्ति दिलाता है।

भ्रांत भरम सर्वे भाजी जासे, उडी जासे आसंक।

अगम अगोचर सहु सोध थासे, रमसे माहें वसंत॥८२॥

परमात्मा से साक्षात्कार होते ही हृदय की भ्रान्तियाँ मिट जायेंगी तथा सभी प्रकार के भ्रम और संशयों का नाश हो जायेगा। मन-बुद्धि से परे रहने वाली और दृष्टि में न आने वाली सभी चीजों की जानकारी हो जायेगी एवम् जीव शाश्वत आनन्द में विहार करेगा।

भावार्थ- जिस प्रकार अहंकार में अस्मिता तथा सौन्दर्य में शोभा का अस्तित्व बीज रूप से होता है, उसी प्रकार भ्रम में भ्रान्ति का अस्तित्व होता है। रात के समय अन्धेरे में जाते समय रस्सी को सर्प समझ लेना भ्रम है, जबकि संशय की स्थिति में अज्ञान की मात्रा बहुत ही कम होती है, जैसे- किसी विषय में ९९ प्रतिशत सही जानकारी है, किन्तु १ प्रतिशत की जानकारी न होने से मन में दृढ़ता नहीं है तथा उसके झूठा होने की मन में कल्पना उठती है, तो इसे संशय कहते हैं।

दोष मा दीजे रे वैराट वाणी ने, मुख थी बोले सहु सत।

बोल्या ऊपर चाली न सके, त्यारे फरी जाये छे मत॥८३॥

हे साधू जनों! इस संसार के धर्मग्रन्थों को दोष मत दीजिए। इन ग्रन्थों का अध्ययन करने वाले तो अपने मुख से सत्य ही बोलते हैं, किन्तु जो बात कहते हैं उसको आचरण में नहीं लाते। इसका परिणाम यह होता है कि उनकी बुद्धि भटक जाती है।

मोटो अवतार श्री परसराम जी, तेना हजी लगे बंध न छूटे।

कष्ट करे छे आज दिन लगे, पण तोहे ते ताणां न ढूटे॥८४॥

विष्णु भगवान के २४ अवतारों में से एक परशुराम जी हैं। उनके कर्मों के बन्धन आज तक नहीं छूटे। वे आज दिन तक कष्टसाध्य तप में लगे हैं, फिर भी उनके कर्मों के बन्धन की रस्सियाँ अभी तक नहीं टूटी हैं।

अनेक देह दमें पंच अग्नी, तोहे न बले करम।

अनाद काल ना जे बंध बांध्या, ते थाय नहीं जीव नरम॥८५॥

बहुत से लोग पञ्चाग्नि-तप द्वारा अपने शरीर को कष्ट देते हैं, तो भी कर्मों का बन्धन समाप्त नहीं होता। अनादि काल से जो कर्मों का बन्धन लगा हुआ है, उसके कारण ही जीव कोमल (स्वच्छ) हृदय का नहीं हो पाता।

भावार्थ- पौराणिक मान्यता में, वैशाख-ज्येष्ठ (मई-जून) मास की तपतपाती दोपहरी में पाँच स्थानों पर अग्नि जलाकर उनके बीच में बैठना तथा मन्त्र आदि का जप करना पञ्चाग्नि-तप कहलाता है, किन्तु यह कठोपनिषद् में वर्णित पञ्चाग्नि विद्या के विपरीत है। वास्तव में, श्रद्धापूर्वक पञ्च यज्ञों का करना ही पञ्चाग्नि तप है।

इस चौपाई में जीव के साथ कर्मों के बन्धन को अनादि

मानने से कई प्रश्न उठते हैं—

१. इस आधार पर क्या जीव भी अनादि और अविनाशी सिद्ध होता है?

२. श्रीमुखवाणी के इन कथनों से यह सिद्ध है कि जीव अनादि नहीं है—

उपजे मोह अहंकार से, सो मोहे में समाय। किरंतन

ब्रह्मा विष्णु महेश लो, सो भी पैदा माया मोह अहंकार।

किरंतन ३०/४

जीव का घर है नींद में, वासना घर श्री धाम।

कलस हिंदुस्तानी २३/६२

ए ख्वाबी दम सब नींद लों, दम नींद के आधार।

जो कदी आगे बल करे, तो गले नींद में निराधार॥

सनंध ५/४९

तब जीव को घर कहां रहयो, कहां खसम वतन।

किरंतन २१/३

ईश्वर फिरे न रहे त्रिगुन, त्रिगुन चले जीव भेले।

किरंतन ३१/५

प्रश्न कियो श्री जू तबे, तुम में नहीं विचार।

ईस्वर जीव विनास है, तुम्हारे वचन मंझार।।

बीतक ३७/१५

इन कथनों से यदि जीव अनादि सिद्ध नहीं होता है, तो ब्रह्मवाणी के कथनों में विरोधाभास क्यों?

३. महाप्रलय में जब कारण प्रकृति (सात शून्य) तथा महाकारण (मोह तत्व) का भी लय हो जाता है, तो चित्त के लय हो जाने से उसमें निहित संस्कार जब रहेंगे ही नहीं तो कर्म बन्धन क्यों रहेंगे?

४. जब महाप्रलय में जीव आदिनारायण में लीन हो जाता है तथा आदिनारायण भी अपने मूल स्थान सुमंगला पुरुष (अव्याकृत के महाकारण) को प्राप्त हो जाते हैं, तो यह प्रश्न खड़ा होता है कि जीव का अस्तित्व क्या है? क्या नये ब्रह्माण्ड में वही जीव पुनः प्रकट होगा और अपने पूर्व वाले सारे संस्कार लायेगा, जो कर्म-बन्धन के रूप में उसके साथ जुड़ जायेंगे, जैसा कि इस चौपाई में कहा गया है?

५. अनादि काल से जीव के साथ कर्म-बन्धन होना क्या आलंकारिक कथन है या यथार्थ?

इनके समाधान में संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है—

वेदों एवं शास्त्रों का चिन्तन करने वाले मनीषियों का कथन है कि जब महाप्रलय होता है, उस समय पञ्चभूत,

अहंकार, महत्तत्त्व इत्यादि कुछ भी नहीं रहता। चारों तरफ केवल गहन अन्धकार ही होता है ("तम् आसीत तमसा गुढमग्रे" - ऋग्वेद १०/१२९/३)। उस समय जीव गहन निद्रा की तरह घोर सुषुप्ति की अवस्था में ऐसे रहता है, जैसे कि उसका कोई अस्तित्व ही न हो। ऋग्वेद १०/१२९/२ में इस सम्बन्ध में कहा गया है कि "न मृत्युः आसीत अमृतं न", अर्थात् उस समय जीव की सत्ता और जीवन का लोप दोनों ही नहीं थे। जीव को अनादि अविनाशी मानने वाली विचारधारा यही बात कहती है।

किन्तु यदि हम श्रीमुखवाणी के दार्शनिक तथ्यों पर ध्यान देते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि जीव का स्वरूप महाप्रलय तक अविनाशी है। वस्तुतः वह आदिनारायण की चेतना का प्रतिभास है, जिसे वेदान्त की भाषा में

"चिदाभास" कहते हैं। महाप्रलय में सभी जीव आदिनारायण में वैसे ही समाहित हो जाते हैं, जैसे बिम्ब में प्रतिबिम्ब समाहित हो जाता है। आदिनारायण भी अपने मूल स्वरूप अव्याकृत के महाकारण स्थान को प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार महाप्रलय में किसी भी जीव का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रहता।

यदि हम ऐसा कहें कि चेतन तत्त्व कभी भी नष्ट नहीं होता, चाहे वह बिम्ब हो या प्रतिबिम्ब। वह मात्र समाहित (लीन) हो सकता है तथा महाप्रलय के पश्चात् सृष्टि रचना के समय पुनः प्रकट हो जाता है, तो हमें कोई आपत्ति नहीं। जिस प्रकार हम कहते हैं कि "ए माया आदि अनादि की" अर्थात् अनादि ब्रह्म की लय हो जाने वाली यह आदिमाया प्रवाह से अनादि है, उसी प्रकार चिदाभास रूप जीव भी प्रवाह से अनादि है। महाप्रलय में

अन्तःकरण के लय हो जाने पर चित्त के सारे संस्कार भी लय हो जायेंगे। नयी सृष्टि में जब पुनः चैतन्य जीव प्रकट होगा, तो उसका अन्तःकरण भी नया होगा और उसके पूर्व वाले संस्कार भी नहीं रहेंगे। इतना अवश्य होगा कि चेतन में कर्म की प्रवृत्ति शाश्वत होने से कर्मों का संस्कार पुनः उसके साथ जुड़ने लगेगा। इसे ही कर्मों का अनादि काल से जीव से सम्बन्ध माना गया है। अक्षरातीत की वाणी अक्षरशः सत्य है, आवश्यकता है उचित समायोजन की, जो एकमात्र धाम धनी की कृपा से ही सम्भव है।

प्रगट बेठा बंध छोडवा, ते आपण माटे थाय।

अवतार ते पण करमें बंधाणां, रखे कोई देखी बंधाय॥८६॥

परशुराम जी कर्मों के बन्धन से अलग होने के लिये

अभी भी सारे प्रयास कर रहे हैं। यह हमारे लिये सिखापन है कि जब वे विष्णु भगवान के अवतार होते हुए भी कर्मों के बन्धन में बँधे हुए हैं, तो दूसरे लोग कर्मों के बन्धन से यथासम्भव दूर रहने का प्रयास करें।

आ ब्रह्मांड विखे कोई एम मा केहेसो, जे अमने सूं करे बंध।

ब्रह्मांड धणी पोते आप बंधावी, देखाडे छे सनंध॥८७॥

इस ब्रह्मांड में किसी को भी ऐसा नहीं कहना चाहिए कि कर्मों के बन्धन हमारा क्या कर लेंगे। इस ब्रह्माण्ड के स्वामी कहे जाने वाले ब्रह्मा, विष्णु, और शिव भी कर्मों के बन्धन में बँधे हुए हैं और सारे संसार को कर्म-बन्धन की अनिवार्यता दर्शा रहे हैं।

तेज आकास वाए जल पृथ्वी, रवि ससि चौदे भवन।

ए फरे सर्व करम ना बांध्या, तो बीजी तो एहेनी उत्पन॥८८॥

पाँचों तत्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी), सूर्य, चन्द्रमा, तथा चौदह लोक का यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भी जब कर्मों के बन्धन में है, तो दूसरे तो इससे उत्पन्न हुए हैं। भला वे कर्मों के बन्धन से रहित कैसे हो सकते हैं।

प्रगट वैराट थयो जे दाडे, एणा बंध पेहेला ना बंधाणां।

बाल्या बले नहीं ते माटे, सहुए ते जाये तणाणां॥८९॥

जिस दिन इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई, उससे पहले ही कर्मों के बन्धन बाँध दिए गये। इसलिये ये कर्म जलाने पर भी नहीं जलते और सभी को अपनी ओर खींचते हैं।

भावार्थ— ब्रह्माण्ड के बनने से पूर्व कर्म के बन्धन का सिद्धान्त लागू होने का तात्पर्य यह है कि क्रिया—स्थल

और क्रिया से पूर्व सिद्धान्त का होना अनिवार्य है।

मानखो जनम पांम्यो बंध छोड़वा, वली रे वसेखे भरथ खंड।
 कुली माहें उत्तम आकार पामी, सामा बांधे छे अधका बंध॥९०॥
 कर्मों के बन्धन से छूटने के लिये ही तुम्हें यह मानव तन मिला है। पुनः विशेष रूप से तुम्हारा यह जन्म परम पवित्र भरत खण्ड में हुआ है। इसके अतिरिक्त २८वें कलियुग में ही तुमने यह उत्तम मानव तन पाया है, फिर भी तुम कर्मों के बन्धन में और अधिक क्यों बँधते जा रहे हो।

माहें अंधारू माहें अजवालू, रुदे ते कोई न संभारे।
 पर वस बांध्यो करम करे, अवतार अमोलक हारे॥९१॥
 हृदय के अन्दर ही माया का अन्धकार होता है, तथा

स्वाध्याय एवं प्रेम लक्षणा भक्ति द्वारा हृदय में ही शुद्ध ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। ऐसे हृदय को कोई भी नहीं सम्भालता। लोग तृष्णा के वशीभूत होकर कर्मों के बन्धन में फँसते हैं तथा अनमोल मानव जीवन को खो देते हैं।

कोई वेद विचार न करे, भाई सहु को स्वादे लाग्युं।

अनल एणी पेरे चाले ते माटे, सांचू ते सर्वे भाग्युं॥९२॥

इन कर्मकाण्डी लोगों में कोई वेद वाणी का विचार नहीं करता। सभी को माया का स्वाद लगा हुआ है। झूठ और प्रमाद की ऐसी हवा चल गयी है कि हर कोई सत्य को स्वीकार करने से बचना चाहता है।

साचूं बोल्युं गमे नहीं केहने, सहुने ते लागसे दुख।

वेद तणां वचन विचारो, जे कहे छे पोते मुख॥९३॥

इस संसार में सत्य बोलना किसी को भी अच्छा नहीं लगता। असत्य की राह पर चलने वाले सभी लोगों को सत्य सुनने में कष्ट होता है। आप सभी लोग वेद के वचनों का विचार करके देखें, जो स्वयं अपने मुख से कहते हैं कि...

वेद कहे मारा मूल आकासें, साखा छे पाताल।

तोहे न समझे मूढ़मती, अने फरी फरी पडे माहें जाल॥९४॥

वेद कहते हैं कि हमारी जड़ें आकाश में और शाखायें पाताल में हैं। इतना कहने पर भी अति मूर्ख बुद्धि वाले लोग वास्तविकता को नहीं समझते और बार-बार कर्मों के बन्धन में बँधते हैं।

भावार्थ— श्रीमद्भगवद् गीता अध्याय १५/१ में संसार की तुलना एक वृक्ष से की गयी है, जिसकी जड़ें आकाश

में तथा शाखायें पाताल में हैं। यह एक आलंकारिक वर्णन है, जिसमें सृष्टि के कारण (मूल) रूप सूक्ष्म को आकाश में तथा कार्य (स्थूल) को पाताल में अर्थात् दृश्यमान जगत में दर्शाया गया है।

वेद तणुं तां बिरिख नथी, भाई ए छे प्रगट वाणी।

अवली के सबली विचारो, ए आंकडी न कलाणी॥९५॥

हे भाई! वेद कोई वृक्ष तो है नहीं। यह तो अव्याकृत की ज्ञानधारा है, जो आदिनारायण के माध्यम से ऋषियों के हृदय में प्रकट हुई है। इसका उल्टा-सीधा कैसे भी विचार किया जाये, किन्तु बिना तारतम ज्ञान और परब्रह्म की कृपा के इसकी गुत्थियाँ नहीं खुलती हैं।

सत वाणी छे वेद तणी, जो ते कोई जुए विचारी।

ए कोहेडो रचियो रामतनो, सघला ते माहें अंधारी॥९६॥

यदि कोई विचार करके देखे तो यह स्पष्ट होगा कि वेद सत्य वाणी है। कोहरे के समान अन्धकारमयी यह खेल ही ऐसा रचा गया है। यही कारण है कि यहाँ के सभी लोग अज्ञानता के अन्धकार में भटकते रहते हैं।

कोई दोष मां देजो रे वेद ने, ए तो बोले छे सत।

विश्व पडी भोम अगनान माहें, ए भोम फेरवे छे मत॥९७॥

कोई वेदों को दोष न देवे! वेद तो सर्वदा सत्य ही बोलते हैं। माया के इस संसार में सभी लोग अज्ञानता के अन्धकार में भटक रहे हैं। इस मायावी जगत में सबकी बुद्धि ही उल्टी हो जाती है।

अर्थ जुए सहू उपली वाटनो, माहेंलो ते माहें नव संभारे।

वैराट पूर वहे वेहेवटे, दुख सुख कोई न विचारे॥९८॥

लोग वेदों के अर्थ बाह्य दृष्टि से करते हैं। उसके अन्दर छिपे हुए रहस्यों पर कोई भी विचार नहीं करता। पूरा ब्रह्माण्ड ही मायावी अन्धकार के बहाव में बह रहा है। सुख-दुःख के रहस्यों पर विचार करने की किसी की भावना ही नहीं है।

वेद विचार करी करी वलया, पारब्रह्म नव लाध्या।

वली वलिया उलटा त्यारे पाछा, बंध विश्वना बांध्या॥९९॥

वेदों ने अक्षरातीत परब्रह्म के विषय में बहुत अधिक विचार किया, किन्तु उनकी प्राप्ति नहीं कर सके। तब वेद पीछे की ओर उल्टा लौट पड़े और सबको कर्मों के बन्धन में बाँध दिया।

भावार्थ- वेदों द्वारा परब्रह्म की खोज के लिये जाना एक आलंकारिक वर्णन है। इसका मूल अभिप्राय यह है कि वेदों की ज्ञानधारा कहाँ तक पहुँचती है। वेदों का मूल विषय अक्षर ब्रह्म है। अक्षरातीत के बारे में संकेत रूप से थोड़ा सा ही वर्णन है, इसलिये इस चौपाई में यह बात कही गयी है कि वेद अक्षरातीत परब्रह्म की खोज नहीं कर सके।

चेतन तत्त्व कदापि निष्क्रिय नहीं होता। सम्यक् ज्ञान द्वारा ही शुद्ध एवं निष्काम कर्म हो सकता है। ऋग्वेद में जहाँ ज्ञान की धारा बहती है, तो यजुर्वेद में यही दर्शाया गया है कि वास्तविक ज्ञान को प्राप्त करने के पश्चात् कर्म कैसे करना है। निष्काम कर्म करने के लिये प्रियतम के प्रेम में डूबना अनिवार्य है। यही कारण है कि सामवेद में भक्ति रस का अखण्ड प्रवाह है, तो अथर्ववेद में संशय

रहित ज्ञान है।

ऋग्वेद तथा सामवेद का यही मुख्य उद्देश्य है कि जीव को कर्म-बन्धन में नहीं फँसने देना , अर्थात् निष्काम कर्म की प्रेरणा देना। यदि रावण जैसा कोई व्यक्ति तमोगुण से ग्रसित होने के कारण प्रकाण्ड वेदज्ञ होते हुए भी कर्म-बन्धनों के जाल में फँसता है, तो इसमें वेद का कोई दोष नहीं। वेद मनुष्य को कर्म-बन्धन से मुक्त होने के निष्काम कर्म की शिक्षा देते हैं, जिसका वर्णन यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के मन्त्र "कुर्वन् इह कर्माणि न कर्म लिप्यते नरः" में वर्णित है। इस चौपाई में जो वेदों द्वारा कर्म-बन्धन में बाँधने की बात कही गयी है, वह श्रीमद्भागवत् का कथन है, जो अगली चौपाई से स्पष्ट हो जाता है।

आ तां व्यास जी नो कहयूं कहूं छूं, तमे मानजो साधो संत।

न मानो ते जई सुक जी ने पूछो, आ बेठा छे माहें भागवत॥१००॥

यह बात मैं वेद व्यास जी का कहा हुआ कह रहा हूँ। हे साधू सन्तों! मेरी इस बात को मान लीजिए। यदि आपको मेरी यह बात स्वीकार नहीं है, तो उन श्री शुकदेव जी से पूछिए जो ज्ञानमय शरीर से श्रीमद्भागवत् में विराजमान हैं।

द्रष्टव्य— वेद व्यास जी एवं शुकदेव जी को भागवत का रचनाकार मानना मात्र लोक-परम्परा की ही अभिव्यक्ति (कथन) है, यथार्थ सत्य नहीं।

वेद पुराण भारथ सहू बांध्या, त्यारे दाझ रुदे मा समाणी।

ततखिण आव्या गुर जी पासे, बोल्या नारदजी वाणी॥१०१॥

वेद व्यास जी ने वेदों का व्याख्यान किया और पुराणों

तथा महाभारत ग्रन्थ की रचना की, फिर भी उनके मन में अशान्ति ही बनी रही। शान्ति पाने के उद्देश्य से वे तुरन्त अपने गुरु नारद जी के पास आये और उन्हें अपनी सारी बातें सुनायीं।

भावार्थ- १८ पुराण "व्यास" की उपाधि वाले भिन्न-भिन्न विद्वानों की रचना है। श्रीमद्भागवत् के कथनानुसार ही इस चौपाई में वेद व्यास जी को इन ग्रन्थों का रचनाकार कहा गया है। वेद तो अपौरुषेय हैं। कोई भी ऋषि-मुनि उनकी मात्र व्याख्या ही कर सकता है, रचना नहीं।

घणी खंडनी कीधी व्यासजी नी, पूरी वचनोने श्रवणा न दीधी।
वाणी सर्वे नाखी उडाडी, अवतारनी लाज न कीधी॥१०२॥
नारद जी ने वेद व्यास जी की तीखे शब्दों में बहुत

अधिक खण्डनी की, जो उनसे पूरी तरह सुनी भी नहीं गयी। वेद व्यास जी अवतारों की श्रेणी में आते हैं, लेकिन नारद जी ने उनकी गरिमा का जरा भी ध्यान नहीं रखा। नारद जी ने व्यास जी के सभी ग्रन्थों को निरर्थक घोषित कर दिया।

सवला रोस भराणां रिखी जी, जोई व्यास वचन।

सास्त्र सर्वे बांधीने, ते वोल्या बूडता जन॥१०३॥

व्यास जी के ग्रन्थों को देखकर नारद जी को बहुत क्रोध आ गया। उन्होंने वेद व्यास जी से कहा कि तुमने इन ग्रन्थों की रचना करके भवसागर में डूबने वाले लोगों को और अधिक डुबो दिया।

भावार्थ— यद्यपि १८ पुराणों की रचना वेद व्यास जी ने नहीं की है, किन्तु पुराण निश्चित रूप से भवसागर में

डुबोने वाले हैं। नवग्रह पूजा, झूठे एवं काल्पनिक देवी-देवताओं, वृक्षों, नदियों, और पत्थरों की पूजा, मृतकों का श्राद्ध और तर्पण, यज्ञों में पशु-बलि और नरबलि तक का समर्थन और प्रचार, इन पुराणों की ही देन है। निःसन्देह इनका अनुकरण करने वाला भवसागर में डूब जायेगा।

वैराट धणी ज्यारे नव लाध्यो, त्यारे कां ना रह्यो तूं गोप।

विश्व विगोई स्या माटे, तें उलटा वचन कही फोक॥१०४॥

देवर्षि नारद जी ने व्यास जी से कहा कि जब तक तुम्हें ब्रह्माण्ड के स्वामी का साक्षात्कार न हुआ हो, तब तक तुम्हें गोपनीय ही रहना चाहिए था। तुमने पुराणों में व्यर्थ की उल्टी बातें लिखकर संसार को अन्धेरे में क्यों डुबो दिया।

विसमां वचन देखी व्यासजीना, पूरी ते दृष्ट चढ़ावी।

श्री कृष्ण जी विना बीजूं सर्वे मिथ्या, एम कह्यूं समझावी॥१०५॥

व्यास जी के लिखे हुए ग्रन्थों में संसार को उलझाने वाले टेढ़े वचन लिखे थे, जिन्हें देखकर नारद जी ने उन्हें कोप दृष्टि से देखा। पुनः समझाकर कहा कि ब्रज-रास की लीला करने वाले श्री कृष्ण के बिना सब कुछ मिथ्या है।

भावार्थ- इस चौपाई में कथित "श्री कृष्ण जी बिना बीजूं सर्वे मिथ्या" का भाव कुछ लोग शरीर और नाम के रूप में लेते हैं, तो कुछ लोग अन्दर बैठकर लीला करने वाले आवेश पर लेते हैं। निःसन्देह आवेश स्वरूप की पहचान ही सर्वोपरि है। शरीर और बाह्य नाम की पहचान तो समाज को कर्मकाण्ड और भटकाव की राह में ले जाती है। ब्रज विहारी या रास विहारी श्री कृष्ण इस समय

योगमाया के ब्रह्माण्ड (सबलिक ब्रह्म) में लीला कर रहे हैं। इस चौपाई में प्रयुक्त "श्री कृष्ण जी" का सम्बोधन उन्हीं के लिये है, अक्षरातीत के लिये नहीं।

वचन तणों अहंमेव व्यासजीनों, नाख्यो ते सर्व उडाडी।

दया करीने खंडनी कीधी, दीधी आंख उघाडी॥१०६॥

व्यास जी के अन्दर ग्रन्थों की रचना का जो अभिमान था, उसे पूर्ण रूप से नारद जी ने अपने कठोर शब्दों से उड़ा दिया। सच्चे गुरु के रूप में उन्होंने व्यास जी के ऊपर दया की और खण्डनी के तीखे शब्दों से उनकी आँखें खोल दीं।

भावार्थ— पुत्र या शिष्य के सामने उसकी झूठी प्रशंसा कभी नहीं करनी चाहिए, बल्कि उसके कल्याण के लिये सिखापन के कठोर शब्द कहने में जरा भी शिथिल नहीं

होना चाहिए। नारद जी ने इसी नीति का पालन किया।

तेणे समें कह्युं नारदजीएं, न वले जिभ्या मारी एम।

कठण वचन कहा व्यासजीने, में केम केहेवाय तेम॥१०७॥

उस समय नारद जी ने वेद व्यास जी को जिन कठोर शब्दों से सम्बोधित किया, मैं उसे कैसे कहूँ। मेरी जिह्वा उसको कहने में समर्थ नहीं है।

आटलूं पण हूं तोज कहूं छूं, रखे केणे अजाण्युं जाये।

आ दुनियां भेला साध तणाय, त्यारे सूं करूं में न रहेवाय॥१०८॥

इतनी बात भी मैं इसलिये कह रहा हूँ, ताकि कोई व्यक्ति इससे अनभिज्ञ (अनजाना) न रह जाये। जब साधू-महात्मा भी इस दुनिया के साथ कर्म के बन्धन में खिंचे जा रहे हैं, तो मैं क्या करूँ। यह दृश्य देखकर

मुझसे रहा नहीं जाता।

हाकली गुरुगम दीधी नारदजीएं, ते लई व्यास घर आव्या।

सार वचन लई ग्रन्थ सघलाना, रदे ते माहें समाव्या॥१०९॥

नारद जी ने वेद व्यास जी के ऊपर खण्डनी द्वारा शीघ्र कृपा की। उनका सिखापन लेकर वेद व्यास जी अपने निवास (आश्रम) पर आये। वहाँ उन्होंने सभी ग्रन्थों का सार लेकर अपने हृदय में रख लिया।

सार तणो विचार करीने, बांध्या द्वादस स्कंध।

त्यारे ठरयो रदे एणे वचने, मन पाम्यो आनन्द॥११०॥

इसके पश्चात् उन सार वचनों का विचार करके उन्होंने बारह स्कन्धों में श्रीमद्भागवत् ग्रन्थ की रचना की। इसके पश्चात् उनको हृदय में अपार शान्ति मिली तथा मन

आनन्दित हो गया।

भावार्थ- श्रीमद्भागवत् के अन्दर अक्षरातीत द्वारा की गयी ब्रज और रास लीला का वर्णन है, जिसको आत्मसात् करने पर हृदय में प्रेम का अँकुर फूटने लगता है, जो अन्ततोगत्वा शान्ति और आनन्द का द्वार खोल देता है।

उदर सुकजी उपना, अने आंहीं उपनूं भागवत।

व्यासे वचन कही प्रीछव्या, ग्रही परसव्या संत॥१११॥

वेद व्यास जी के पुत्र के रूप में श्री शुकदेव जी उत्पन्न हुए और इनसे ही भागवत ग्रन्थ प्रकट हुआ। व्यास जी ने भागवत के वचनों को शुकदेव जी को समझाया और उसे सन्तों को सुनाने के लिये कहा।

भावार्थ- वेद व्यास जी भागवत के रचनाकार अवश्य

हैं, किन्तु संसार में भागवत का रस शुकदेव जी से ही फैला है, इसलिये यह बात प्रचलित हो गयी कि शुकदेव जी से ही भागवत प्रकटी है (फैली है)।

सारनूं सार थयूं भागवत, वचन थया विवेक।

वली अमृत सीच्यूं सुकदेवें, तेणे थयूं रे विसेक॥११२॥

वेदों का आध्यात्मिक रस उपनिषदों में वर्णित है तथा उपनिषदों का सार रूप भागवत है, क्योंकि इसमें आत्मा और परमात्मा के अलौकिक प्रेम का विशद वर्णन है। सबके सार रूप वचनों का विवेकपूर्वक संग्रह ही भागवत है। फिर उसे शुकदेव जी ने प्रेम रूपी अमृत से सिंचित किया, जिससे उसमें और अधिक विशेषता आ गयी।

सकल सार नूं सार निपनूं, सहु को ते मुखथी भाखे।

पण वचन भारी विचार न थाय, त्यारे विप्र वाणी पेहेला नी दाखे॥११३॥

सभी ग्रन्थों के सार के भी सार रूप में यह श्रीमद्भागवत् है, ऐसा हर कोई अपने मुख से कहता है, लेकिन ब्राह्मण लोग भागवत के गम्भीर रहस्यों को नहीं समझ पाते, इसलिये वे अपने कर्मकाण्डपरक ग्रन्थों में ही उलझे रहते हैं।

सुकजी केरा वचन समझी, जो कोई रदे विचारो।

सात दिवस माहें परीछित वैकुंठ, वचनें पार उतारयो॥११४॥

शुकदेव जी के अमृतमयी वचनों को समझकर अपने हृदय में विचार करें। उनके वचनों को आत्मसात् करके सात दिन के अन्दर ही राजा परीक्षित ने वैकुण्ठ की प्राप्ति कर ली।

तेज वचन वांचता सांभलता, जाये जम वारो बांध्यो।

अर्थ तणी ओलखाण न आवे, प्रेम वचन नव लाध्यो॥११५॥

यह कितने आश्चर्य की बात है कि उन्हीं वचनों को पढ़ने और सुनने पर भी लोग यमराज के बन्धनों से नहीं छूटते। श्रीमद्भागवत् के परम गुह्य रहस्यों की पहचान न होने से ही वे प्रेम का मार्ग प्राप्त नहीं कर पाते।

अहनिस अर्थ करे समझावे, केहनो रंग न पलटो थाय।

बेहेराने कालो संभलावे, बांध्या ते माटे जाये॥११६॥

भागवत के कथाकार दिन-रात उसका अर्थ करके सबको समझाते हैं, किन्तु किसी के भी जीवन में परिवर्तन नहीं होता। इनकी कथा भी ऐसी है, जैसे गूँगा बहरे को कथा सुनाये। यही कारण है कि इन लोगों के कर्मों के बन्धन नहीं छूटते।

भावार्थ- इस चौपाई में गूँगा व्यक्ति उस कथावाचक का प्रतीक है, जो आध्यात्मिक आनन्द व प्रेम से कोशों दूर है। वह शब्द ज्ञान को रटकर केवल मुख से कहता भर है। हृदय से उसका सम्बन्ध मूलतः कम ही होता है। यही कारण है कि उसके कथनों का प्रभाव नहीं पड़ता। इसी प्रकार बहरा व्यक्ति उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, जो माया में गले तक इतना डूबा हुआ कि चिकने घड़े की तरह धर्मोपदेशों का उस पर कोई असर ही नहीं पड़ता।

आंकडी कोई न जुए रे उकेली, वचन तणां जे विवेक।

गुरगम टाली खबर न पड़े, ए अर्थ भारे छे विसेक॥११७॥

हृदय में विवेक जाग्रत करने वाले भागवत के वचनों की गुत्थियों को कोई भी खोलकर नहीं देखता। इसके रहस्य इतने अधिक गहरे हैं कि बिना सदगुरु की कृपा के कोई

भी नहीं जान सकता।

ए रे अर्थ माहें छे अजवालूं, जे कोई जोसे रे विचारी।

रूदया माहें थासे प्रकास, ज्यारे जागसे जीव संभारी॥११८॥

यदि कोई विचारपूर्वक देखे तो यह स्पष्ट होता है कि भागवत के रहस्यों के स्पष्ट होने पर सच्चे ज्ञान का प्रकाश होता है। जब जीव भागवत के रहस्यमयी वचनों के भावों को समझ लेगा, तो उसके हृदय में यथार्थ ज्ञान का प्रकाश होगा और वह जाग्रत हो जायेगा।

जीव जाग्यो त्यारे नथी वस्त वेगली, आतम परआतम जोड़।

त्यारे वांसो दर्इने विश्वने, सनमुख रेहेसे कर जोड़॥११९॥

जब जीव जाग्रत हो जायेगा, तो अखण्ड का धन उससे अलग नहीं रहेगा। उसकी आत्मा परात्म से जुड़ जायेगी।

उस समय यह जीव सम्पूर्ण विश्व को पीठ दे देगा तथा प्रेम-भक्ति से हाथ जोड़कर सच्चिदानन्द परब्रह्म के सामने खड़ा रहेगा (सम्मुख रहेगा)।

विध सघली समझी वैराटनी, माया करसे सत।

स्वामी सेवक थासे संजोग, त्यारे उडी जासे असत॥१२०॥

जब जीव उस सच्चिदानन्द परमात्मा का साक्षात्कार कर लेगा, तो उसके हृदय से झूठ का अन्धकार समाप्त हो जायेगा। उसे इस जगत की सारी वास्तविकता समझ में आ जायेगी और वह शरीर से माया में रहने पर भी सत्य की ही राह पर चलेगा।

थासे संजोग त्यारे बंध छूटा, करम नहीं लवलेस।

निहकर्म तणां निसान ज वागा, अखंड सुख पांमसे वसेक॥१२१॥

जब जीव का सम्बन्ध परमात्मा से हो जायेगा, तब माया का बन्धन छूट जायेगा और नाममात्र के लिये भी कर्म-बन्धन नहीं होगा। उस समय संसार से निष्कर्म होने का डँका बज जायेगा और निश्चित रूप से जीव को अखण्ड सुख प्राप्त हो जायेगा।

**बीजा केहेने दोष न दीजे रे भाई जी, ए माया विकराल।
करोलिया जेम गूंथी गूंथे, मुझाई मरे माहें जाल॥१२२॥**

हे भाइयों! किसी को भी दोष मत दो। यह माया बहुत भयंकर है। जिस प्रकार मकड़ी अपना जाल बनाती है और स्वयं उसमें उलझकर मर जाती है, वैसे ही संसार के जीव भी अपने लिये बन्धन स्वयं पैदा करते हैं जिनसे वे जीवन पर्यन्त निकल नहीं पाते।

जे जीव होय जल तणों, ते न रहे विना जल।

अनेक विध ना सुख देखाडो, पण मूके नहीं पाणी-वल॥१२३॥

जो जल के जीव (मछली आदि) होते हैं, वे जल के बिना नहीं रह सकते। चाहे उन्हें कितना भी सुख क्यों न दिया जाये, लेकिन वे एक पल के लिये भी जल को नहीं छोड़ते।

तेम जीव होय सागर तणो, ते मूके नहीं भवसागर।

अखंड सुख जो अनेक देखाडो, पण मूके नहीं पोते घर॥१२४॥

इसी प्रकार जो भवसागर के जीव होते हैं, वे भवसागर को नहीं छोड़ सकते। भले ही उन्हें अखण्ड सुख का कितना भी ज्ञान क्यों न दिया जाये, वे अपने भवसागर को छोड़ने के लिये राजी नहीं होते।

खरो हसे जे खरी भोम तणों, आ वचन विचारसे जेह।

अगिन झाला देखीने छाडसे, अखंड सुख लेसे तेह॥१२५॥

जो अखण्ड धाम (बेहद या परमधाम) का साथी (ईश्वरी या ब्रह्मसृष्टि) होगा, वह ही इन वचनों का विचार करेगा और इस संसार को अग्नि की लपटों के समान कष्टकारी समझकर त्याग देगा। ऐसा ही व्यक्ति अखण्ड सुख को प्राप्त करने का अधिकारी होगा।

मन करम ने ठेलसे, जेथी प्रगट थाय सर्वा अंग।

साथी बोध संघाती बोले, जीव मन एकै रंग॥१२६॥

अखण्ड ज्ञान द्वारा जाग्रत हुआ जीव अपने मन को कर्मों की प्रवृत्ति से अलग करेगा। इसका परिणाम यह होगा कि मन के अधीन रहने वाले अन्य अंगों (इन्द्रियों) में भी यही स्थिति बन जायेगी। जब जीव अपने साथी

मन को जाग्रत करेगा, तब मन भी जीव की भाषा बोलने लगेगा। इस प्रकार जीव और मन एक ब्रह्मानन्द के रंग में रंग जायेंगे।

भावार्थ— जब जीव को ब्रह्म का बोध होता है, तो विषयों में भटकने वाला मन भी इससे अछूता नहीं रहता। मन ही इन्द्रियों का राजा है। ब्रह्मानन्द की रसधारा मन को कर्म-बन्धन से अलग कर देती है। उस समय जीव और मन एक ही आनन्द के रंग में डूब जाते हैं।

हवे गोप वचन केहेवासे गुरगम, ते केम प्रगट होय।

विष्णु-संग्राम करीने लेसे, साध हसे जे कोय॥१२७॥

अब सद्गुरु की कृपा से अध्यात्म के छिपे हुए गुह्य रहस्य मेरे हृदय से उजागर किये जायेंगे। पर प्रश्न यह है कि संसार के सामने उसे कैसे प्रकट किया जाये? जो भी

सच्चे साधू-महात्मा होंगे, वे शास्त्रार्थ (धर्मयुद्ध) करके इस अखण्ड सम्पदा को ले सकेंगे।

भावार्थ- जिस प्रकार विष्णु भगवान असुरों से युद्ध करके धर्म की स्थापना करते हैं, उसी प्रकार शूरवीर क्षत्रिय भी आतताइयों से संघर्ष करके धर्म की रक्षा करते हैं, इसे विष्णु-संग्राम कहते हैं। विद्वानों द्वारा ज्ञान बल से अज्ञान रूपी असुर को हटाने की प्रक्रिया शास्त्रार्थ (विष्णु-संग्राम) कहलाती है।

आतां अनुमाने बाण नाख्या उडाडी, बीजा भारी उडाडया न जाये।
सनमुख मले नहीं जिहां सूरों, ते हथू का विना न चोडाय॥१२८॥
यह तो अभी तक मैंने अनुमान से ही थोड़े से ज्ञान रूपी वचनों का तीर खींचकर मारा है, ताकि इस ज्ञान के जिज्ञासुओं का पता चल जाये। जब तक सामने बेहद या

परमधाम का साथी (शूरवीर) नहीं मिलता, तब तक गम्भीर ज्ञान के तीर नहीं छोड़े जाते। अखण्ड ज्ञान के वचन रूपी तीरों को बिना सही निशाने के छोड़ना उचित नहीं होता।

साध ओलखासे वचने, अने करसे समागम।

साध वाणी साध एम ओचरे, संगत छे साध रतन॥१२९॥

मेरे इन वचनों को बेहद का साथी (सच्चा साधू) ही पहचान सकेगा और वही मुझसे सत्संग करेगा। साधू-महात्मा तथा उनकी वाणी का कथन है कि सत्संग अनमोल रत्न के समान है।

प्रकरण ॥१२६॥ चौपाई ॥१९४५॥

यह प्रकरण श्री मिहिरराज जी के नाम से संसार के लोगों को प्रबोधित करने के लिये उतरा है। इस प्रकरण का सुन्दरसाथ एवं अक्षरातीत से कोई भी सम्बन्ध नहीं।

पर न आवे तोले एकने, मुख श्री कृष्ण कहंत।

प्रसिद्ध प्रगट पाधरी, किवता किव करंत॥१॥

श्री मिहिरराज जी कहते हैं कि यदि योगमाया में ब्रज – रास लीला करने वाले श्री कृष्ण जी का नाम अपने मुख से एक बार भी लिया जाये, तो उसकी बराबरी में संसार का कोई भी कर्म नहीं है। बड़े – बड़े प्रसिद्ध कवियों ने कविता करके इस बात को स्पष्ट रूप से कहा है।

भावार्थ- इस प्रकरण में ब्रज एवं रास के लीलाधर श्री कृष्ण जी की महिमा गाई गयी है। इस सम्पूर्ण प्रकरण को परमधाम में विराजमान अक्षरातीत के साथ जोड़ना

कदापि उचित नहीं है। संस्कृत के महान कवि-महर्षि वेद व्यास जी ने भीष्म पितामह द्वारा योगेश्वर श्री कृष्ण जी की स्तुति में इस प्रकार का कथन किया है-

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामः दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।

दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्ण प्रणामी न पुनर्भवाय॥

यह श्लोक महाभारत के शान्ति पर्व ४७ / ९२ में है। इसका भाव यह है कि इस वैकुण्ठ-विहारी योगेश्वर श्री कृष्ण को एक बार भी प्रणाम करने का फल दश अश्वमेध यज्ञ के बराबर है। दश अश्वमेध यज्ञ करने वाले का पुनर्जन्म हो सकता है, किन्तु इन विष्णु स्वरूप योगिराज श्री कृष्ण को प्रणाम करने वाले का पुनर्जन्म नहीं हो सकता। वैकुण्ठ विहारी, ब्रज विहारी, तथा रास विहारी श्री कृष्ण की महिमा में मधुसूदन, सरस्वती, मीरा, सूर, रसखान, रहीम, एवं नरसैयाँ आदि ने अति उत्तम

कविताओं की रचना की है।

कोट करो नरमेध, अश्वमेध अनंत।

अनेक धरम धरा विखे, तीरथ वास वसंत॥२॥

भले ही तुम करोड़ों नरमेध यज्ञ कर लो , अनन्त अश्वमेध यज्ञ भी कर लो , पृथ्वी पर प्रसिद्ध धर्मों का पालन करो, प्रसिद्ध तीर्थों में भी वास करो , लेकिन यह सब एक बार श्री कृष्ण का नाम लेने के बराबर भी नहीं है।

भावार्थ— वेदों में नरमेध यज्ञ के रूप में नरबलि , या अश्वमेध, गोमेध, गर्दभेज्या यज्ञों में क्रमशः घोड़ा , गाय, गदहे की बलि का संकेत मात्र भी वर्णन नहीं है। दुष्ट , स्वार्थी, तथा आसुरी प्रवृत्ति वाले वाममार्गियों ने वेद मन्त्रों का मिथ्या अर्थ करके पशुओं की हिंसा का विधान

किया है, जो पूर्णतया त्याज्य है।

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि "आज्ययं मेधः" अर्थात् मरे हुए मनुष्य का दाह संस्कार करना नरमेध यज्ञ है। "राष्ट्र वा अश्वमेधः" अर्थात् राष्ट्र का धर्मानुसार शासन अश्वमेध यज्ञ है। "अन्नं हि गौः" अर्थात् अन्न, इन्द्रियों, पृथ्वी, किरण आदि को पवित्र रखना गोमेध यज्ञ है। कठोर ब्रह्मचर्य के लिये गदहे की तरह अल्प भोजन, स्वाध्याय, ध्यान आदि में अधिक परिश्रम करना गर्दभेज्या यज्ञ है।

सिद्ध करो साधन, विप्र मुख वेद वदंत।

सकल क्रियासूं धरम पालतां, दया करो जीव जंत॥३॥

साधनाओं द्वारा तरह-तरह की सिद्धियाँ प्राप्त कर लो, मेधावी (विप्र) बनकर अपने मुख से वेदों पर व्याख्यान

दिया करो, सभी कर्म धर्मानुसार ही करो, और जीव-जन्तुओं पर दया किया करो, फिर भी इन सभी श्रेष्ठ कर्मों का फल एक बार श्री कृष्ण का नाम लेने के बराबर भी नहीं है।

व्रत करो विध विधना, सती थाओ सीलवंत।

वेख धरो साध संतना, गनानी गनान कथंत॥४॥

तरह-तरह के व्रतों का पालन करो, पतिव्रता धर्म का पालन करने वाली शील से भरपूर सती हो जाओ, साधू-सन्तों का भेष धारण करो, या ज्ञानी बनकर ज्ञान वधारते रहो, फिर भी यह सब एक बार श्री कृष्ण नाम के बराबर नहीं है।

भावार्थ- उपवास को व्रत कहना पौराणिक मान्यता है। वस्तुतः शुभ कार्यों को करने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञा होना ही

व्रत है। सच्चा साधू या सन्त हृदय की पवित्रता से बना जाता है, वेश-भूषा से नहीं। वेद का ज्ञान कथनी की अपेक्षा आचरण में लाना अधिक श्रेयस्कर है।

तपसी बहु बिध देह दमो, सर्वा अंग दुख सहंत।

पर तोले न आवे एकने, मुख श्री कृष्ण कहंत॥५॥

तुम तपस्वी बनकर अनेक प्रकार से देह दमन करो अर्थात् शरीर को बहुत कमजोर बना लो। ऐसे कठोर तप से यदि शरीर के अंग-अंग में पीड़ा होने लगे, तो भी यह उपलब्धि अपने मुख से एक बार श्री कृष्ण का नाम लेने के बराबर नहीं है।

मेहेराज कहे मुख ए धन, जो वली रूदे रमंत।

चौदे भवन ते जीतियो, धन धन ए कुलवंत॥६॥

श्री मिहिरराज जी कहते हैं कि ऐसा मुख धन्य है, जो बारम्बार श्री कृष्ण का नाम लेता रहे। पुनः जिसने अपने हृदय में उस ब्रज विहारी या रास विहारी श्री कृष्ण को बसा लिया है, उसका क्या कहना। वह तो चौदह लोकों से परे बेहद के अनन्त आनन्द में विहार करता है। ऐसा पवित्र हृदय वाला व्यक्ति धन्य-धन्य है।

प्रकरण ॥१२७॥ चौपाई ॥१९५१॥

इस प्रकरण में कलियुग के वर्तमान साधुओं को सिखापन दिया गया है।

हारे मारा साध कुलीना सांभलो।

माया कोहेडो अंधेर केहेवाय, मांहे साध बंधाणां जाये।

तमने हजी लगे सोध न थाय, काल ताकी ऊभो माथे खाय॥१॥

श्री मिहिरराज जी कहते हैं कि इस कलियुग के मेरे प्रिय साधु जनों! आप मेरी यह बात सुनिये। यह माया अज्ञान रूपी घने कोहरे के अन्धकार जैसी है। इस माया के बन्धन में सब साधु-महात्मा भी बँधे हुए हैं। आपको अभी तक इस बात की सुध नहीं हुई है कि सिर पर मौत खड़ी होकर पल-पल उम्र को खाये जा रही है।

साध वाणी तमें सांभली रे, कां न विचारो मन।

आणे अजवाले मानखे, तमें कां रे भूलो साधू जन॥२॥

आपने बड़े-बड़े ज्ञानी-महात्माओं की वाणी सुनी है, लेकिन आप उस पर विचार नहीं करते। मानव तन पाकर ज्ञान के उजाले में, अर्थात् वाणी-चर्चा सुनते रहने पर, भी तुम भटके हुए क्यों हो?

खिण माहें अर्थज लीजे रे, जे वचन कहया वेद व्यासे।

दीपक वा मा खमे नहीं, हमणां धवक अंधारुं थासे॥३॥

वेद व्यास जी ने श्रीमद्भागवत् में जो बातें कही हैं, उसके अभिप्राय को एक क्षण में ही समझ लीजिए, क्योंकि जीवन तो क्षणभंगुर है। जिस प्रकार हवा से दीपक बुझ जाया करता है, उसी प्रकार इसी क्षण जीवन का दीप बुझ सकता है और अन्धेरा हो सकता है अर्थात् मृत्यु हो

सकती है।

कथता सांभलता ए गिनान रे, जम वारो आवसे रे।

अध वचे सर्व मुकावी, तरत बांधीने जासे रे॥४॥

यदि तुम श्रीमद्भागवत् के ज्ञान को केवल कहने और सुनने में ही सारा समय व्यतीत कर दोगे, तो यमदूत आयेंगे और कथा के बीच में से ही तुम्हें, सबके बीच में से, बाँधकर ले जायेंगे।

सांचु कहे दुख लागसे, सांचु ते केहेने न सुहाय।

प्रगट कहिए मोंहों ऊपर, त्यारे दोहेला ते सहुने थाय॥५॥

मेरे सत्य कहने पर तुम्हें दुःख लगेगा और सच्ची बात किसी को अच्छी भी नहीं लगती। यदि किसी के सामने कटु सत्य बोल दिया जाये, तो सभी को बहुत बुरा लगता

है।

अवलूं देखी हूं न सकूं, त्यारे सूं करूं में न रहेवाय।

वेख धरी लजवो साधने, एम ते माटे केहेवाय॥६॥

मैं सत्य के विपरीत कोई भी उल्टी बात नहीं देख सकता। इसलिये मैं क्या करूं, मुझसे नहीं रहा जाता। मुझे इस तरह की बातें इसलिये कहनी पड़ रही हैं, क्योंकि तुम साधू का वेश धारण कर साधू समाज को ही कलंकित कर रहे हो।

दुष्ट थई अवगुण करे, ते जई जमपुरी रोय।

पण साध थई कुकरम करे, तेणूं ठाम न देखूं कोय॥७॥

यदि कोई दुष्ट व्यक्ति अपराध करता है तो वह रोते हुए यमपुरी जाता है, लेकिन जो साधू होकर कुकर्म करता है

तो उसका कहीं ठिकाना ही नहीं दिखायी देता।

क्रोध अहंमेव समें नहीं, अने वेख धरो छो साध।

लोभ लज्या नमे नहीं, माहें मोटी ते ए ब्राध॥८॥

तुम्हारे रोम-रोम में इतना अधिक क्रोध और अहंकार है कि वह समाता नहीं है। तुमने वेश-भूषा तो साधुओं की ले रखी है, किन्तु तुम्हारे अन्दर लोभ कूट-कूटकर भरा हुआ है। तुम विनम्रता और लज्जा से रहित हो अर्थात् बेशर्म हो। तुम्हारे अन्दर यही बहुत बड़ा रोग है।

उत्तम कहावो आपने, अने नाम धरावो साध।

साध मल्यो नव ओलखो, माहें अवगुण ए अगाध॥९॥

तुम अपने आपको साधू तो कहलाते हो, किन्तु अपनी श्रेष्ठता का दावा स्वयं करते हो। जब कोई सच्चा साधू

मिलता है, तो तुम उसे पहचानते ही नहीं। तुम्हारे अन्दर यह बहुत बड़ा अवगुण है।

न करो संगत साधनी, मन न धरो विश्वास।

संजमपुरी न दुख सांभलो, पण तोहे न उपजे त्रास॥१०॥

न तो तुम सच्चे साधुओं की संगति करते हो और न ही अपने मन में किसी के प्रति विश्वास रखते हो। यमपुरी के दुःखों का तुम वर्णन सुनते हो, लेकिन तुम्हें जरा भी डर नहीं लगता कि हमें ये दुःख भोगने भी पड़ेंगे।

छेतरवां हींडो जगदीस ने, ते छेतरया केम करो जाये।

पास बीजा ने मांडिए, जई आपोपूं बंधाय॥११॥

तुम भगवान को ही ठगने की कोशिश करते हो, लेकिन यह नहीं सोचते कि तुम उनको कैसे ठग सकते हो। जो

दूसरों के लिये जालसाजी करता है, वह स्वयं उसमें फँस जाता है।

भावार्थ- पौराणिक आडम्बरों के कारण विरक्त वर्ग अज्ञानता के अन्धकार में फँस गया। इसका परिणाम यह हुआ कि दूसरों को शिक्षा देने वाला सन्यासी वर्ग स्वयं ही पाप की राह पर चल पड़ा। इस प्रकरण की चौपाइयों में इन्हीं विषयों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है।

अस्नान करी छापा तिलक देओ, कंठ आरोपो तलसी माल।

गिनानी कहावो साध मंडली, पण चालो छो केही चाल॥१२॥

तुम स्नान करके अपने शरीर पर चन्दन की छाप और तिलक लगाते हो। अपनी भक्ति का प्रदर्शन करने के लिये गले में तुलसी की माला पहनते हो। साधुओं की मण्डली में ज्ञानी कहलाते हो, लेकिन तुम कभी इस बात पर

विचार नहीं करते कि तुम्हारा व्यवहार किस प्रकार का है।

भावार्थ- तिलक तथा तुलसी आदि की माला का धारण सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में कहीं भी नहीं। वस्तुतः ये निरर्थक चीजें हैं, जो सबको कर्मकाण्ड के अन्धेरे में फँसाती हैं।

वेख उत्तम तमें धरो, पण माहेलो ते मैल नव धुओ।

पंथ करो छो केही भोमनों, रिदे आंख उघाडी जुओ॥१३॥

तुम अपनी वेश-भूषा तो बहुत अच्छी बनाते हो, लेकिन अपने अन्दर की मैल को नहीं धोते। अपने हृदय की आँखें खोलकर देखो कि तुम जिस रास्ते पर चल रहे हो, वह तुम्हें कहाँ ले जायेगा।

मन मैला धुओ नहीं, अने उजला करो आकार।

आकार तिहां चाले नहीं, चाले निरमल निराकार॥१४॥

तुम अपने मन की मैल को तो धोते नहीं, केवल शरीर को ही स्वच्छ करने में लगे रहते हो। उस अखण्ड धाम में तो यह पाँच तत्व का शरीर जायेगा नहीं। वहाँ तो मात्र निर्मल निराकार जीव ही जाता है।

वैकुंठ ऊंचूं सिखर पर, ऊवट चढतां उचांण।

मोह जल लेहेरां मारे सामियो, इहां वाए ते वा उधांण॥१५॥

चौदह लोकों में वैकुण्ठ वैसे ही सबसे ऊपर है, जैसे किसी पर्वत के शिखर पर हो। वहाँ पहुँचने का मार्ग उबड़-खाबड़ और चढ़ाई वाला है। सामने से माया की लहरें प्रहार करती हैं। यहाँ की मायावी हवा भी चलने के विपरीत दिशा में उल्टी बहती है।

भावार्थ- इस चौपाई में आलंकारिक रूप से बताया गया है कि जिस प्रकार किसी ऊँचे पर्वत शिखर पर पहुँचने के लिये उबड़-खाबड़ रास्तों से होकर चढ़ाई चढ़नी होती है, उसी प्रकार वैकुण्ठ की प्राप्ति करने के लिये भी साधना के उस मार्ग का अवलम्बन करना पड़ता है जिसमें कदम-कदम पर कठिनाइयाँ आती हैं किन्तु धैर्य रखकर आगे बढ़ते ही जाना होता है।

चढवूं ऊंचूं चीरक थई, वाटे दुख दिए घणां दुष्ट।

परवाह उतरता सोहेलूं, पण दोहेलूं ते चढतां पुष्ट॥१६॥

संसार के क्षणिक सुखों से विरक्त होकर ही वैकुण्ठ की राह पर चलना होता है। मार्ग में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, तथा मत्सर (ईर्ष्या) रूपी दुष्ट बहुत अधिक दुःखी करते हैं। ढलान में उतरना तो सरल है, किन्तु चढ़ाई पर

चढ़ना कठिन है।

भावार्थ- संसार के लोग विषय-सुखों का भोग करते हुए सरलतापूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर देते हैं, इसे ही ढलान पर उतरना कहते हैं। इसके विपरीत संसार के सुखों से पूर्ण रूप से मुख मोड़कर, अपने हृदय को सच्चिदानन्द परब्रह्म के प्रेम में लगा देना ही पहाड़ की चढ़ाई पर चढ़ने की तरह है। इस मार्ग में चढ़ने पर कष्ट तो होता है किन्तु मन्जिल पर पहुँचकर अपार सुख होता है, जबकि सरलता से नीचे उतर जाने पर ८४ लाख योनियों में कष्ट भोगना पड़ता है।

सोहेलूं देखी कां उतरो रे, आगल दोख अनेक।

चढ़तां घणुंए दोहेलूं, पण वैकुण्ठ सुख वसेक॥१७॥

ढलान पर उतरने में सरलता देखकर क्यों उतर रहे हो,

अर्थात् सांसारिक सुखों का मार्ग क्यों अपना रहे हो ? भविष्य में इस मार्ग में बहुत कष्ट भोगने होंगे। यद्यपि चढ़ाई के मार्ग में बहुत कष्ट हैं , किन्तु बाद में वैकुण्ठ आदि का बहुत सुख है।

सपन तणां सुख कारणें, केम खोइए अखण्ड सुख।

सुख सुपने देखी करी, केम लीजे साख्यात दुख॥१८॥

तुम संसार के झूठे सुखों के लिये अखण्ड सुखों को क्यों खोते हो? संसार के नश्वर सुखों में फँसकर जन्म-मरण के प्रत्यक्ष दुख को क्यों ले रहे हो?

चीरक थई तमें न सको रे, मायामां थया मोटा।

वाणी विचारी नव जुओ, पछे सास्त्र करों कां खोटा॥१९॥

तुम संसार में महन्त या मठाधीश आदि का सम्मानित

पद प्राप्त करके यथार्थ में सच्चे विरक्त के रूप में नहीं रह सकते। वेद व्यास जी की वाणी का गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं करते, बल्कि उसे झूठा कहने में ही अपनी सारी शक्ति लगा देते हो।

भावार्थ- महन्त या मठाधीश का जीवन आधा गृहस्थ ही होता है। संसार में प्रतिष्ठा, आश्रम, या मन्दिर में अधिक से अधिक चढ़ावे, और शिष्यों की संख्या में बढ़ोतरी की इच्छा उन्हें गृहस्थों के समकक्ष कर देती है। अध्यात्म का वास्तविक रूप से रसपान करने के लिये इन पदों को कभी भी ग्रहण नहीं करना चाहिए।

दुखडा खमी तमे न सको, माया सुखे रहया माणो रे।
चढ़ाए नहीं एणी उवटे, पाछां चढताने कां ताणो रे॥२०॥
हे साधु जनों! तुम माया के सुखों में ही मस्त हुए जा रहे

हो। तुम अखण्ड सुख की प्राप्ति के लिये थोड़ा भी कष्ट उठाने के लिये तैयार नहीं हो। जब तुमसे अखण्ड सुख के उबड़-खाबड़ (साधनामयी) मार्ग पर नहीं चला जाता, तो उस मार्ग पर चलने वालों को पीछे क्यों खींचते हो।

ताण्यूं तमारूं सुं करे, जेने लाग्यो छे चोलनो रंग।

साध कहावी असाध थाओ छो, करो छो भजनमां भंग॥२१॥

जिस पर प्रेम-भक्ति का रंग चढ़ गया हो, उसको तुम्हारी खींचातानी क्या करेगी। वेश-भूषा से साधू कहलाकर भी तुम दुष्टों जैसे कर्म करते हो और भक्तिभाव में डूबे रहने वालों से लड़ाई-झगड़ा करके उनके भजन में बाधाएँ खड़ी करते हो।

भावार्थ- ताली एक हाथ से नहीं, बल्कि दोनों हाथों से

बजा करती है। साधना करने वालों से भी भूलें अवश्य होती होंगी जिनके कारण विवाद खड़े होते हैं, तो इनके विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इनकी संगति बेर और केले जैसी होती है। केला जब अपनी मस्ती में झूमता है, तो बेर अपने काँटो से उसे चीर डालता है। यदि हृदय में कटुता और द्वेष ने पैर जमा लिये हों, तो विवाद करने के सैंकड़ो बहाने निकल आते हैं। तामसिक और रजोगुणी भोजन करने वालों का स्वभाव भी वैसा ही होता है। कर्मकाण्डी, रुढ़िवादी, और मठाधीश लोगों में स्वभावतः रजोगुण की प्रवृत्ति होती है। इन्हें साधना में लीन रहने वाले कभी भी अच्छे नहीं लगते, जिसका परिणाम विवाद के रूप में दृष्टिगोचर होता है।

पगला पोताना जुओ नहीं, अने बीजाने देओ छो दोष।

सास्त्र अर्थ समझया नथी, तां जातो नथी रिदे रोष॥२२॥

हे साधु जनों! तुम अपनी राह (व्यवहार या चाल-चलन) तो देखते नहीं, केवल दूसरों को ही दोष देने में लगे रहते हो। तुम शास्त्रों का अभिप्राय भी नहीं समझते। यही कारण है कि तुम्हारे हृदय से क्रोध नहीं जाता।

सास्त्रें मारग बे कहा, त्रीजो न कहा कोय।

एक वाट वैकुण्ठ तणी, बीजी स्वर्ग जमपुरी जोय॥२३॥

शास्त्रों में दो ही मार्ग बताये गये हैं। इनसे अलग तीसरा मार्ग नहीं है। एक राह वैकुण्ठ की है और दूसरी राह स्वर्ग या यमपुरी (नरकपुरी) की है।

वली एक वाट कही करी, ते ततखिण कीधी लोप।

तिहांना हता ते चालया, पण रहा ते मायामां गोप॥२४॥

इसके अतिरिक्त शास्त्रों में एक और राह बतायी तो गयी है, किन्तु उसे तुरन्त ही छिपा दिया गया है। जो वहाँ के थे, वही उस मार्ग पर चले, लेकिन वे माया में छिपकर रहे।

भावार्थ— हृद की राह (वैकुण्ठ-निराकार) से परे बेहद की राह है, जो प्रेम-भक्ति की है। पाप करने वाले नरक में जाते हैं, पुण्य करने वाले स्वर्ग में, तप करने वाले वैकुण्ठ में, और योगाभ्यास करने वाले निराकार में पहुँचते हैं। अनन्य-प्रेम का मार्ग अपनाने वाले बेहद और परमधाम की प्राप्ति करते हैं, किन्तु इस राह पर चलने वाले विरले ही लोग होते हैं। वे हमेशा संसार के इन कर्मकाण्डी लोगों से छिपकर रहते हैं।

तमे रे जुओ पोते आप संभारी, केही रे लीधी छे वाट।

केही रे भोमना बंध बांधो छो, उतरसो कीहे रे घाट॥२५॥

हे साधु जनों! तुम अपने आपको सावचेत करके देखो कि तुमने कौन सी राह पकड़ी है? तुमने कहाँ जाने की तैयारी (भक्ति) कर रखी है और किस स्थान (घाट) पर पहुँचोगे— यमपुरी, स्वर्ग, वैकुण्ठ, निराकार, बेहद, या परमधाम?

गुण पचवीसे बांधया रे, बांधया ते नवे अंग।

इंद्री पखे गुणे बांधया, कोई दृढ़ करी माया संग॥२६॥

तुमने अपने को पच्चीस तत्वों (५ सूक्ष्म भूत + ५ स्थूल भूत + १० इन्द्रिय + ४ अन्तःकरण + जीव), नौ अंगों (२ हाथः + २ पैर + २ कान + २ आँख + नासिका), इन्द्रियों के दोनों पक्षों (प्रवृत्ति तथा निवृत्ति),

तथा तीन गुणों (सत्व, रज, तम) से बाँध रखा है। इस प्रकार तुमने दृढ़तापूर्वक माया के साथ संगति कर रखी है।

बंध प्रभुसों न बांधया रे, त्यारे केणी पेरे आवे तेह।

रदे विचारी जोइए जो, बांध्यों छे केसुं नेह॥२७॥

जब तुमने प्रभु से अपना सम्बन्ध ही नहीं जोड़ा, तो वह कैसे तुम्हारे पास आयें? यदि तुम अपने हृदय में विचार करके देखो, तो पता चलेगा कि तुमने किससे प्रेम किया है— प्रभु से या माया से?

जेरे गामनी वाटज लीजे, आवे तेहज गाम।

जाणी ने जमपुरी जाओ छो, त्यारे न आवे अखंड विश्राम॥२८॥

तुम जिस गाँव की राह पकड़ोगे, वही गाँव आयेगा। जब

तुम जान-बूझकर यमपुरी की राह पर जा रहे हो, तो तुम्हें अखण्ड सुख नहीं मिलेगा।

सूथी वाट जाणी संजमपुरी, कां सहुए उजाणां जाओ।

वेद पुराण तमें सांभली, एम रूदे फूटा कां थाओ॥२९॥

यमपुरी की राह को सरल समझकर तुम उस पर क्यों भागे जा रहे हो? तुमने वेदों और पुराणों को सुना है, फिर भी तुम्हारे हृदय के नेत्र फूटे हुए क्यों हैं?

भावार्थ- सामान्य रूप से मनुष्य आहार, निद्रा, और प्रजनन में फँसा हुआ है। इसी को वह सुख समझे बैठा है। इसको छोड़कर वह तप, त्याग, और साधना के जीवन को बहुत कठिन मानता है, जिसका परिणाम होता है कि वह आँख मूँदकर यमपुरी की राह पर चल देता है, जिसमें भोगमय जीवन की ही प्रधानता होती है।

आध्यात्मिक जीवन इस राह में उपहास की वस्तु माना जाता है।

देखा देखी पंथ करो छो, रदे नथी विचार।

सास्त्र वाणी जो सत करो, तो भूलो केम आवार॥३०॥

तुम्हारे हृदय में जरा भी सद्विचार नहीं हैं। एक-दूसरे की देखा-देखी तुम अपनी संकीर्ण साम्प्रदायिक मान्यताओं का पोषण कर रहे हो। यदि तुम शास्त्रों की वाणी को सत्य मानते, तो इस अनमोल मानव तन को पाकर भी माया में इतना अधिक क्यों भूलते-भटकते।

ढोलतां ढोलाने सोहेलूं, पण आगल ऊंडी खाड।

लोही मांस सर्वे सूकसे, पछे घरट दलासे हाड॥३१॥

नीचे गिरना तो सरल है, लेकिन आगे नरक रूपी बहुत

गहरा खड्डा है। उसमें गिर जाने पर तुम्हारे शरीर के खून और माँस सभी सूख जायेंगे। बाद में तुम्हारी हड्डियों को चक्की में पीसा जायेगा।

भावार्थ- नीचे गिरने का मूल भाव है- साधना का मार्ग छोड़कर सांसारिक सुखों में डूब जाना जिसके परिणामस्वरूप जन्म-मरण रूपी नर्कों में तरह-तरह के कष्ट भोगने पड़ते हैं।

केस त्वचा जासे चरमाई, नसों त्रूटसे निरवाण।

विध विधना दुख देखसो, पण तोहे नहीं छोडे प्राण॥३२॥

उन नरकों की यातना में तुम्हारे बाल उखड़ जायेंगे और त्वचा फट जायेगी। निश्चित रूप से नसों भी टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगी। इन नर्कों में तरह-तरह के दुःख देखोगे, फिर भी तुम्हारे प्राण नहीं छूटेंगे।

भावार्थ- नर्कों में जिस प्रकार के कष्टों का वर्णन है , प्रायः उस प्रकार के सभी कष्ट विभिन्न योनियों में जीवों को भोगने पड़ते हैं। काटने, जलाने आदि की पीड़ा स्थूल शरीर में ही सम्भव है, सूक्ष्म शरीर में नहीं। इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से सिद्ध है कि ८४ लाख योनियाँ ही ८४ नर्क के कुण्ड हैं।

जमपुरी ना दुख दारुण, तेसूं नथी तमें माण्या।

पुराण ते माटे कहे पुकारी, केणे जाये रखे अजाण्या॥३३॥

यमपुरी के दुःख बहुत भयंकर हैं, इसे तुम क्यों नहीं स्वीकार करते? पुराणों में यह बात बार-बार कही गयी है, ताकि कोई भी यह न कहे कि मुझे तो पता ही नहीं था।

कुंड अठावीस कह्या सुकदेवे, एक बीजा थी चढता जाये।

त्यारे पडयो परीछित दुख सुणी, स्वामी बीजा तो न संभलाय॥३४॥

शुकदेव जी ने नर्क के २८ कुण्डों का वर्णन किया , जिसमें एक से दूसरे में दुःख बढ़ता ही गया। उस समय दुःखों का वर्णन सुनकर राजा परीक्षित मूर्छित हो गये और बोले कि हे स्वामी जी! अब आगे के नर्कों का वर्णन मुझसे नहीं सुना जा सकेगा।

छप्पन रह्या विन सांभल्या, तेतां सुणी न सक्यो राय।

कलकली कंपमान थया, ते तां कह्या न सुण्या जाये॥३५॥

राजा परीक्षित नर्क के शेष छप्पन कुण्डों का वर्णन सुन ही नहीं सके। वे दुःखी होकर काँपने लगे। इस प्रकार शेष छप्पन कुण्डों का वर्णन न तो कहा गया और न सुना गया।

दैव तो दोष लिए नहीं, ते माटे कीधा पुराण।

देखी पड़ो कां खाडमां, आ तां सहुने करे छे जाण॥३६॥

भगवान अपने ऊपर कोई भी दोष नहीं लेते, इसलिये पुराणों में ऐसी बातें लिखवा दी गयीं। इतना होते हुए भी तुम जान-बूझकर खाई में क्यों गिरते हो? भगवान तो ग्रन्थों के माध्यम से सबको बता ही रहे हैं।

स्वादे लाग्या सुख भोगवो, पण पछे थासे पछताप।

व्यास वचन जोता नथी, पछे घससो घणुं बने हाथ॥३७॥

तुम्हें विषय सुखों को भोगने का स्वाद लग चुका है, लेकिन तुम्हें बाद में बहुत अधिक पश्चाताप करना पड़ेगा। क्या तुम श्रीमद्भागवत् में व्यास जी के कहे हुए वचनों को देखते नहीं हो? यदि तुमने अपनी भूल नहीं सुधारी, तो पश्चाताप में तुम अपने दोनों हाथों को मलते ही रह

जाओगे।

भावार्थ- "हाथ मलते रह जाना" एक मुहावरा है जिसका प्रयोग उस समय किया जाता है, जब सब कुछ लुट चुका हो और समझ में न आता हो कि क्या किया जाये। उस समय लज्जावश आँखें ऊपर नहीं उठतीं।

**भट जी चोखूं तमने केम कहे, जेणे माडयुं ए ऊपर हाट।
सूथी देखाडे संजमपुरी, तमे अपगरो एणी वाट॥३८॥**

भागवत की कथा सुनाने वाले भट्ट जी तुम्हें सच्ची बात क्यों सुनायेंगे। उन्होंने तो धर्म को व्यापार बना रखा है। वह अपने शब्द-जाल में फँसाकर तुम्हें सीधे ही यमपुरी का रास्ता बता रहे हैं। तुम भी उन्हीं के बताये हुए रास्ते पर चल रहे हो।

बुध तमारी किहां गई, पछे आवसे ते कीहे काम।

वचन जुओ सुकदेवना, तेमां प्रगट पराधाण॥३९॥

तुम्हारी बुद्धि कहाँ चली गयी है? बाद में वह किस काम आयेगी? तुम शुकदेव जी के वचनों को देखो, जिसमें परम तत्त्व का वर्णन है।

अर्थ लई सास्त्र तणो, तमें ओलखजो आ ठाम।

बीहो छो छाया थकी, जुओ करे छे कोण संग्राम॥४०॥

तुम शास्त्रों के वास्तविक अभिप्राय को समझकर इस संसार को पहचानो। तुम माया से डरते हो। अब देखो कि कौन इससे युद्ध करता है।

कोण तमसूं जुध करे, बीजो ऊभो सामो कीहो चोर।

आप बंधाणां आप सूं, माहेली गमा तिमर घोर॥४१॥

और तुमसे प्रत्यक्ष रूप में कौन युद्ध कर रहा है? तुम्हारे सामने अब दूसरा चोर कौन खड़ा है? तुम स्वयं ही अपने चित्त की वासनाओं (इच्छाओं) से बँध गये हो। यही कारण है कि तुम्हारे हृदय में अज्ञानता का अन्धकार छाया हुआ है।

भावार्थ- इस चौपाई से पूर्व की चौपाई में जीव को माया से लड़ने के लिए प्रेरित किया गया है कि उससे लड़कर ही छुटकारा पाया जा सकता है। अज्ञान में भटकने वाला अन्तःकरण (मन, चित्त, बुद्धि, और अहंकार) उस चोर के समान है, जो जीव के आत्मिक सुख को चुरा लेता है।

संसार सूतो घारण करी, ते तां केणी पेरे जागे रे।

पण साध कहावो निद्रा करो, मूने दुख ते तेनुं लागे रे॥४२॥

संसार तो माया की गहरी नींद में सो रहा है, भला वह किस प्रकार जागेगा? उसका जाग्रत होना बहुत कठिन है। मुझे इस बात का बहुत दुःख है कि तुम साधू कहलाकर भी माया की गहरी नींद में सो रहे हो।

निद्रा परी नाखी देओ, उठीने ऊभा थाओ रे।

बीजी ते वात मूकी करी, तमे ग्रहो प्रभूना पाओ रे॥४३॥

तुम इस ठगिनी माया की नींद को छोड़ दो और उठकर खड़े हो जाओ। कर्मकाण्ड के सभी साधनों को छोड़कर प्रेमपूर्वक भगवान के चरणों को पकड़ लो।

पतिव्रता पणे सेविए, न थाय वेस्या जेम ।

एक मेलीने अनेक कीजे, तेणी थाय धणीवट केम॥४४॥

उस परमात्मा की भक्ति पतिव्रता भाव से ही होती है।
वेश्या की राह अपनाने पर उसकी प्राप्ति असम्भव है।
इसलिये वेश्या की तरह तुम्हें अनेक देवताओं की भक्ति
नहीं करनी चाहिए। जो एक परब्रह्म रूपी प्रियतम को
छोड़कर अनेक देवताओं को अपना इष्ट-स्वामी मानेंगे,
उन पर उस परब्रह्म की कृपा का प्रेम कैसे बरसेगा।

गेहेन घारण तमे परहरो, टालो ते तिमर घोर।

उठीने अजवाले जुओ, त्यारे देखसो माहेला चोर॥४५॥

तुम माया की इस गहरी नींद को दूर कर दो। जब तुम
अपने हृदय में स्थित अज्ञानता के घोर अन्धकार को
हटाकर ज्ञान के उजाले में देखोगे, तो तुम्हें अपने अन्दर

बैठे हुए चोर का भी पता लग जायेगा।

ज्यारे अर्थ लेसो वाणी तणो, त्यारे अर्थमा छे अजवास।

अजवाले जीव जागसे, त्यारे थासे टली चोर दास॥४६॥

जब तुम शुकदेव जी की वाणी के वास्तविक अर्थ को समझ जाओगे, तब उसमें छिपे हुए ज्ञान को भी पा जाओगे। जब उस ज्ञान के उजाले में जीव जाग्रत हो जायेगा, तो तुम्हारा आत्मिक धन चुराने वाला चोर भी तुम्हारा दास बन जायेगा।

वैरी टली वोलावा थासे, जो ए करसो जतन।

एणी पेरे ए पामसो, अमोलक ए रतन॥४७॥

यदि तुम इस प्रकार से प्रयत्न करते हो, तो तुम्हारे मन, चित्त आदि शत्रु अपनी शत्रुता छोड़कर तुम्हारे सहयोगी

बन जायेंगे। इस प्रकार तुम इस संसार में परब्रह्म रूपी अनमोल रत्न को प्राप्त कर लोगे।

भावार्थ- अन्तःकरण के चारों अंग (मन, चित्त, बुद्धि, और अहंकार) अज्ञान में फँसे होने के कारण ही जीव को माया में भटकाते हैं। अन्तःकरण कारण शरीर के अन्तर्गत है, इसलिये उसके बिना सूक्ष्म या स्थूल शरीर में कोई भी प्रक्रिया हो ही नहीं सकती। जब ज्ञान के प्रकाश में अन्तःकरण ही मित्रवत् होकर सही मार्ग पर चलने लगेगा, तो यह स्वाभाविक है कि जीव तुरन्त ही अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा।

जनम मानखो खंड भरथनो, अने सृष्ट कुली सिरदार।

ए वृथा कां निगमो, तमे पामी उत्तम आकार॥४८॥

तुमने यह उत्तम मनुष्य तन, भरत खण्ड, अट्टाइसवाँ

कलियुग, और ब्रह्मसृष्टियों के प्रियतम अक्षरातीत परब्रह्म के चरणों को पाया है। उत्तम मानव तन को पाकर भी इस अनमोल अवसर को माया में क्यों गँवा रहे हो?

चार पदारथ पामिया रे, ए थी लीजिए धन अखंड।

अवसर आ केम भूलिए, जे थी धणी थाय ब्रह्माण्ड॥४९॥

हे साधु जनों! तुम्हें ये चारों अनमोल पदार्थ मिले हैं। इनसे तुम अखण्ड बेहद और परमधाम का आनन्द प्राप्त करो। इस अवसर का लाभ उठाने से तुम क्यों चूक रहे हो? अखण्ड धन की प्राप्ति हो जाने पर तुम्हारी शोभा ब्रह्माण्ड के स्वामी की तरह ही हो जायेगी।

भावार्थ— यह प्रकरण वैष्णव पन्थ के साधु लोगों को प्रबोधित करने के लिये अवतरित हुआ है। वैष्णव साधु अज्ञान में भटकने के कारण जड़ मूर्तियों, पीपल आदि

वृक्षों, तथा गंगा आदि नदियों की पूजा करते हैं, और जन्म-मरण के चक्र में भटकते हैं। कदाचित् यदि ये इस अवसर का लाभ उठा लें, तो बेहद का रसपान करते ही इनकी शोभा इनके इष्ट जैसी ही हो जायेगी। यद्यपि आदिनारायण भी वर्तमान समय में अखण्ड सुख से वंचित हैं, किन्तु ऐसा कहना इन चारों पदार्थों का लाभ उठाने की प्रक्रिया को महत्ता देना है।

चौदे भवन जेने इछे, कोई विरला ने प्राप्त होय।

ए पांमी केम खोइए, तूं तां रतन अमोलक जोय॥५०॥

चौदह लोक के प्राणी जिन चारों पदार्थों की इच्छा करते हैं, वे किसी विरले को ही प्राप्त होते हैं। तुम अनमोल रत्न के रूप में इन चारों पदार्थों को पाकर भी व्यर्थ में क्यों गँवा रहे हो?

भावार्थ- मानव तन की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में सत्य ही कहा गया है-

गायन्ति देवाः किल गीतकानि, धन्यास्तुते भारत भूमि भागे।
स्वर्ग अपवर्ग पदमार्ग भूते, भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥
स्वर्ग में स्थित देवता भी यह गाया करते हैं कि भारत में रहने वाले मनुष्य धन्य हैं। वे स्वर्ग के सुख को छोड़कर पृथ्वी पर भारतवर्ष में ही मानव तन धारण करते हैं।

**रतन ते आने केम कहिए, पण आ भोम उपमा एह रे।
कई कोट रतन जो मेलिए, आणे तोले न आवे तेह रे॥५१॥**
इस मानव तन को रत्न कैसे कहा जाये, परन्तु इस संसार में इसकी यही उपमा दी जा सकती है। यदि करोड़ों रत्न भी मिल जायें, तो भी इसकी बराबरी नहीं कर सकते।

हवे सुधर सो संगत थी, जो मलसे एहवो साध।

सास्त्र अर्थ समझावसे, त्यारे टलसे सघली बाध॥५२॥

यदि तुम्हें सन्त रूप में ऐसे सद्गुरु मिल जायें जो शास्त्रों के वास्तविक अभिप्राय को समझावें, तो तुम्हारे सम्पूर्ण भव-रोग मिट जायेंगे। निश्चित ही तुम उनकी संगति से सुधर जाओगे।

संगत करसो साधनी, ए रूदे करसे प्रकास।

त्यारे ते सर्वे सूझसे, थासे अंधकारनो नास॥५३॥

जब तुम ऐसे सद्गुरु स्वरूप सन्त की संगति करोगे, तो वे तुम्हारे हृदय में भव से पार कराने वाले तारतम ज्ञान का प्रकाश करेंगे। उस समय तुम्हें सब कुछ समझ में आने लगेगा और अज्ञान रूपी अन्धकार का पूर्णतया विनाश हो जायेगा।

ज्यारे अंध अगनान उडी गयुं, त्यारे प्रगट थया पारब्रह्म।
रंग लाग्यो ए रस तनो, ते छूटे वलतो केम॥५४॥

जब अज्ञान रूपी अन्धकार मिट जायेगा, तो सच्चिदानन्द परब्रह्म की शोभा हृदय में प्रकट हो जायेगी। जब प्रियतम के प्रेम का रंग लग जायेगा, तो वह छुड़ाने पर भी नहीं छूटेगा।

वस्त खरीनो जे रंग लाग्यो, ते थाय नहीं केमे भंग।
भलयो जे भगवान सों, तेनो दीसे एकज रंग॥५५॥

जब सच्चिदानन्द परब्रह्म के प्रेम का रंग हृदय पर चढ़ जाता है, तो माया के किसी बन्धन से छुड़ाने पर भी नहीं छूटता। जिनका मिलन भगवान से हो जाता है, उन्हें एकमात्र भगवान ही दिखते हैं, अर्थात् उनकी दृष्टि में भगवान के अतिरिक्त अन्य किसी की भी महत्ता नहीं

रहती है।

सुख अखंड एणी पेरे, तमें लेजो संगत साध।

अधखिण विलम न कीजिए, आ आकार खोटो साज॥५६॥

हे साधु जनों! इस प्रकार सन्त स्वरूप सद्गुरु की संगति से अखण्ड का सुख प्राप्त कीजिए। यह शरीर नश्वर है, इसलिये इस कार्य में आधे क्षण की भी देरी न कीजिए।

खोटा थी खरो लीजिए, अवसर एवो आज।

आ वेला अमृत घडी, प्रबोध कहे मेहेराज॥५७॥

श्री मिहिरराज जी सबको प्रबोधित करने के लिये यह बात कहते हैं कि इस नश्वर शरीर से सच्चिदानन्द परब्रह्म को प्राप्त करने का इस समय सुनहरा अवसर है। यही वह अमृतमयी घड़ी है, जिसमें प्रियतम की प्राप्ति हो सकती

है।

साध जो जो तमें सांभली, वचन म करजो लोप।

प्रगट कह्युं आ पाधरुं, बीजी गुरगम थासे गोप॥५८॥

हे साधु जनों! आपने जिन वचनों को मुझसे सुना है, उस पर विचार कीजिएगा। इन वचनों का आप अपने हृदय से त्याग मत दीजिएगा। यह बातें तो मैंने स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष कही हैं, किन्तु अध्यात्म की जो दूसरी अति गोपनीय बातें हैं वे सद्गुरु की कृपा से ही आपको प्राप्त होंगी।

बीजा वचन भारी केम कहिए, ते तां अर्थी बिना न अपाय।

केसरी दूध कनक ना रे, पात्र बिना न समाय॥५९॥

मारा साध कुली ना सांभलो।

हे मेरे प्रिय कलियुग के साधु जनों! मेरी इस बात को आप सुनिये। शेरनी का दूध इतना कीमती होता है कि वह एकमात्र सोने के बर्तन में ही सुशोभित होता है। इसी प्रकार अध्यात्म के गूढ़ रहस्य की बातें पात्रता (योग्यता) आये बिना किसी को भी नहीं दी जातीं।

प्रकरण ॥१२८॥ चौपाई ॥२०१०॥

यह प्रकरण भी पूर्व प्रकरण की भांति है, जिसमें साधु जनों को सम्बोधित करके कहा गया है।

हांरे मारा साध कुली ना जो जो॥ टेक॥

कोहेडा अंधेर मोह मांहे, मलवो छे साधो संत।

जेने रदे मा वस्या वालो जी, मारा जनम संघाती ते मित्र॥१॥

हे मेरे प्रिय कलियुग के साधु जनों! मेरी इस बात पर विचार कीजिए। मोह सागर के इस घने अन्धकार वाले संसार में मुझे उन साधु-सन्तों से मिलना है, जिनके हृदय में वाला जी विराजमान हैं। वे मेरे प्रारम्भ के ही सच्चे मित्र हैं।

भावार्थ- इस चौपाई में "जनम संघाती" मित्र का वर्णन किया गया है, जिसका तात्पर्य है जन्म-जन्म का मित्र। यद्यपि श्री इन्द्रावती जी का जन्म होना सम्भव नहीं है,

किन्तु यहाँ जीव भाव से सम्बोधन किया गया है। यहाँ उनके लिये सम्बोधन है, जिनके हृदय में वाला जी विराजमान हैं।

आ कोहेडा मां साध सुं करे, जेणे बांध्यो चरण सुं चित।
रात दिवस रमे रिदे मां, तेने सुं करे प्रपंच॥२॥

माया के इस घने अन्धकार में साधु जन क्या करें? जिन्होंने वाला जी के चरणों से अपना चित्त बाँध रखा है और जिनके हृदय में प्राण-प्रियतम दिन-रात विराजमान रहते हैं, माया का यह प्रपञ्च उनका क्या कर लेगा।

गोप रेहेसे साध एणे सगें, ते प्रगट केणी पेरे थाय।
वेख वधारया बहु विध तणां, ते खोल्या केम करी जाये॥३॥
ऐसे सच्चे साधु जन संसार में छिपकर ही रहेंगे। वे किसी

भी प्रकार से प्रकट नहीं होंगे, अर्थात् सबको अपना आन्तरिक परिचय नहीं देंगे। आजकल तो बहुत से अयोग्य व्यक्ति भी साधुओं के वेश में घूमा करते हैं। उनके बीच में से सच्चे साधुओं को कैसे खोजा जाये?

**सरखा सरखी सर्वे पृथ्वी, माहें विध विध ना वहे नारायण।
नहीं आकार फरे साध तणो, प्रगट नहीं एधाण॥४॥**

इस संसार में सब लोग एक-दूसरे की देखा-देखी भगवान नारायण के भक्त बनकर घूमा करते हैं। निरर्थक घूमते रहना साधुओं का काम नहीं है। घूमना उनकी वास्तविक पहचान नहीं है।

भावार्थ- ज्ञान प्राप्ति की खोज में तो घूमना ठीक है, किन्तु केवल जड़ मूर्तियों के दर्शन एवं नदियों में स्नान करके पुण्य कमाने की इच्छा से घूमना व्यर्थ है।

आ भोम अंधेर मांहें आमला, जीव वेध्यो सघली ब्राध।

जेने ते जई ने पूछिए, ते मुख थी कहे अमें साध॥५॥

माया के घने अन्धकार वाले इस संसार में जीव सभी प्रकार के रोगों से बँधा हुआ है। जिस किसी से भी पूछा जाये, तो यही कहता है कि मैं साधू हूँ।

भावार्थ— जीव अपने मूल स्वरूप में तो शुद्ध है, किन्तु अन्तःकरण और इन्द्रियों के संयोग से वह मायावी विकारों में फँस जाता है। जीव शारीरिक और मानसिक रोगों से ग्रस्त होता है, जो उसके लिये दुःखदायी हैं।

खोजो खरा थई ते माटे, आ रचियो मायानो फंद।

दुनी मुझाणी फेरा दिए, माहें पडया रदे न अंध॥६॥

यह संसार माया का फन्दा है, इसलिये इसमें सच्चे पारखी के रूप में सद्गुरु स्वरूप सन्त की खोज करनी

चाहिए। संसार के जीव चौरासी लाख योनियों में भटकते-भटकते घबरा गये हैं और उनके हृदय में अज्ञानता का अन्धकार छा गया है।

आप न ओलखे दुनियां पोते, सूझे नहीं भोम गत।

ए फेर भोम अंधेर तणो, तेणे रदे न आवे मत॥७॥

इस संसार के लोगों को न तो अपने स्वरूप की और न ही इस मायावी जगत की पहचान हो पाती है। यह सारा संसार ही अज्ञान रूपी अन्धकार से उत्पन्न हुआ है, इसलिये किसी के हृदय में शुद्ध ज्ञान का प्रकटीकरण नहीं होता।

देखा देखी पंथ करे, अने चालता सहु कोई जाये।

जाणी साधन करे संजमपुरी ना, मनमां चिंता न थाय॥८॥

विवेक का प्रयोग किये बिना ही लोग एक-दूसरे की देखा-देखी भिन्न-भिन्न पन्थों में जाते हैं और आँख मूँदकर अनुकरण करने लगते हैं। यद्यपि वे जानते हैं कि उनकी साधना यमपुरी तक की है, फिर भी उनके मन में कोई चिन्ता नहीं होती।

सूने रिदे दीसे सहु कोई, सुध बुध नहीं विचार।

देखी कही रे दोख जमदूत ना, ए कोहेडा तणां अंधार॥९॥

यहाँ सबके हृदय ज्ञान और प्रेम से सूने दिखायी देते हैं। इन्हें न तो सत्य की सुध (सुधि) है और न विवेचना करने की बुद्धि है। सत्य के अनुकूल दृढ़ विचार भी नहीं है। यहाँ माया के अज्ञान रूपी कुहरे का ऐसा अन्धकार छाया हुआ है कि नरक में यमदूतों द्वारा दी जाने वाली भयंकर यातनाओं को पढ़-सुनकर भी इन्हें चिन्ता नहीं

होती।

कोई कोने पूछे नहीं, छे कोई बीजो सेर।

साध पुकारे पाधरा, पण आ अजाणो अंधेर॥१०॥

इस संसार में कोई किसी से यह नहीं पूछता कि क्या इस भवसागर से पार होने का कोई अन्य रास्ता भी है? सच्चे साधु जनों ने तो सीधा ही मार्ग बताया है, लेकिन ये नासमझ लोग अज्ञानता के अन्धकार में ही भटकते रहते हैं।

कोट उपाय करे जो कोई, तो सूझे नहीं सनंध।

कोहेड़ा तणी आंकडी न लाधे, तो छूटे नहीं बंध॥११॥

करोड़ों उपाय करने पर भी माया से निकलने का वास्तविक मार्ग नहीं मिल पाता। जब तक माया के कुहरे

का रहस्य विदित न हो जाये, तब तक माया के बन्धन नहीं छूट सकते।

एणे समें आप झलावी, अने साध थया माहें सन्त।

संगत कीजे तेह तणी, जेणे चोकस कीधुं छे चित॥१२॥

ऐसे समय में यदि तुम अपने आत्मसंयम द्वारा सन्तों के बीच साधू बन गये हो, तो ऐसे सन्त की संगति करो जिसने अपने चित्त को माया से सावधान कर लिया है अर्थात् निर्मल कर लिया है।

भावार्थ- साधू और सन्त में बहुत अन्तर होता है। विरक्त जीवन की पहली अवस्था साधू की है। साधू वह है, जो अपने मन एवं इन्द्रियों को सही राह पर चलाने की साधना करता है। साधू का परिपक्व स्वरूप सिद्ध होता है। केवल आत्मदर्शी या ब्रह्म तत्व की अनुभूति

करने वाला व्यक्ति ही सन्त कहलाने का अधिकारी होता है। कहीं-कहीं बहुत निर्मल हृदय वाले व्यक्ति को भी सन्त शब्द से सम्बोधित कर दिया जाता है।

सत जोऊं सन्तो तणो, अने साध तणी सिधाई।

बाहेर चेन करे कई साधना, मांहे ते भांड भवाई॥१३॥

मुझे सन्तों की सत्यता तथा साधुओं के सीधेपन को देखना है। बहुत से साधु तो ऊपर से साधना का दिखावा करते हैं, किन्तु अन्दर से भाँड की तरह नाटक (भवार्थ) करते हैं।

भावार्थ- इस चौपाई से यह स्पष्ट है कि जो सत्य (परमात्मा) में स्थित होता है, वही सन्त कहला सकता है। छल-कपट से रहित, शुद्ध हृदय वाला व्यक्ति ही साधू है।

चोकस चित केणी पेरे लाधे, बाहेर देखाडे अनंत।

ते माटे आ कोहेडो अंधेर, मारे जाई ने संगत संत॥१४॥

जो लोग बाहर से इतना अधिक (अनन्त) आडम्बर दिखाते हैं, वे अपने चित्त को निर्विकार कैसे बना सकते हैं। इस प्रकार यह माया रूपी कुहरे का अन्धकार है, जिसमें साधू-सन्त भी भटक जाया करते हैं।

साध सनंध केम जाणिए, जेणे जीती छे जोगवाई।

प्रगट चेहेन करे नहीं पाधरा, ते माहें रहे समाई॥१५॥

सच्चे साधू की वास्तविकता कैसे जानी जाये? सच्चे साधू वे हैं, जिन्होंने अपने अन्तःकरण और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है। वे कोई भी बाहरी दिखावा नहीं करते। उनका मार्ग सीधा होता है और वे अपने आन्तरिक आनन्द में ही मग्न रहते हैं।

मुख थी बोलावी ज्यारे जोड़ए, तो गलित चित विश्वास।

फेर नहीं अंधेर तणो, तेना रदे मांहे प्रकास।१६॥

ऐसे साधु-सन्तों को जब मुख से बोलते हुए देखिए, तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि वे परमात्मा के प्रेम में गलितगात हैं और उनके चित्त में अटूट विश्वास है। वे माया के अन्धकार से परे होते हैं तथा उनके हृदय में ज्ञान का प्रकाश होता है।

साध तणी गत दीसे निरमल, रात दिवस ए रंग।

मोहजल लेहेरां मांहे मारे पछाडे, पण केमे न थाय भंग॥१७॥

साधू की आन्तरिक अवस्था निर्मल होती है। प्रेम की यह निर्विकार अवस्था रात-दिन बनी रहती है। यद्यपि माया की लहरें उन पर भी प्रहार करती हैं, किन्तु उनके हृदय की शान्ति भंग नहीं होती अर्थात् वे कूटस्थ होकर

माया के प्रहारों को झेल लेते हैं।

साध तणी सनंध प्रगट, लेहेरा लागे आकार।

भेदे नहीं ते भीतर रंग ने, ए साध तणी प्रकार॥१८॥

सच्चे साधू का यही प्रमाण है कि जब माया के थपेड़े उनके शरीर पर लगते हैं, तब उनकी आन्तरिक स्थिति (मन की निर्विकारिता, प्रेममयी भाव) में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो पाता। यही सच्चे साधू की पहचान है।

आ तिमर घोर अंधेर माहें, वेख धरे बहु जन।

एणे सहु ने सत भास्यो, ए साध ने थयो सुपन॥१९॥

अज्ञानता के घने अन्धकार में बहुत से लोगों ने साधुओं का भेष धारण कर लिया है। इन आडम्बरी साधुओं को

इस संसार के सुख सच्चे लगते हैं, जबकि सच्चे साधुओं के लिये ये सुख स्वप्नवत् झूठे हैं।

तो वैकुण्ठ नथी कांई वेगलूं, जो दृढाविए मन।

सत चरण भास्यो रदे माहें, त्यारे असत थयुं सुपन॥२०॥

यदि मन में दृढ़तापूर्वक भक्ति एवं विश्वास है, तो वैकुण्ठ दूर नहीं है अर्थात् वैकुण्ठ की प्राप्ति कठिन नहीं है। जब परमात्मा के चरण हृदय में आ जाते हैं, तो यह संसार झूठा (सारहीन) प्रतीत होने लगता है।

भावार्थ— गुजराती भाषा में मिहिरराज की छाप से जो कीर्तन उतरे हैं, उनमें जो बार-बार वैकुण्ठ की प्राप्ति का वर्णन है, वह मात्र प्रवाही समाज के वैष्णव लोगों के लिये है। वैकुण्ठ का वर्णन करने के पश्चात् बेहद और परमधाम का भी संक्षिप्त वर्णन अवश्य है। इस प्रकरण से पूर्व

प्रकरण की अन्तिम चौपाई ५९वीं में स्पष्ट रूप से कह दिया गया है कि जिस प्रकार शेरनी का दूध सोने के बर्तन में ही रखा जा सकता है, उसी प्रकार बेहद-परमधाम का ज्ञान बिना पात्रता के नहीं कहा जा सकता।

अखंड सुख कोई रखे मूकतां, जेणे दृढ़ कीधुं छे घर।

अधखिण ना सुपनातर माटे, रखे निगमता ए अवसर॥२१॥

जिन्होंने अपने मूल अखण्ड घर की पहचान कर ली होती है, वे किसी भी स्थिति में अखण्ड सुख को नहीं छोड़ते। वे इस स्वप्नमयी संसार के आधे क्षण के सुख के लिये ब्रह्म प्राप्ति के सुनहरे अवसर को नहीं खोते।

सास्त्रे संसार कहयूं सुपना, तो ते करी बेठा सहु सत।

साध वाणी रे जोता नथी, तो लई जाये छे असत॥२२॥

शास्त्रों में संसार को स्वप्न के समान नश्वर और परिवर्तनशील कहा गया है, लेकिन लोगों ने इसे सत्य बना रखा है। लोग साधु-सन्तों की वाणी का चिन्तन नहीं करते, इसलिये वे इस झूठे संसार को ही सब कुछ मानकर इसी में फँसे रहते हैं।

भावार्थ- ऋग्वेद के दसवें मण्डल में नासदीय सूक्त में सृष्टि-रचना का प्रसंग है, जिसमें बताया गया है कि सृष्टि से पूर्व आकाश, परमाणु, प्रकाश आदि कुछ भी नहीं था। इसका तात्पर्य यह है कि महाप्रलय में संसार का पूर्णतया विनाश हो जाता है। संसार को स्वप्नवत् मिथ्या कहने का तात्पर्य यह है कि यह संसार सच्चिदानन्द परब्रह्म के गुणों के विपरीत है। इसी कारण आदिशंकराचार्य जी ने अपने ग्रन्थ विवेक चूड़ामणि में कहा है – "ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या।"

एणे कोहेडे ते अवला फेरा, सहु फरे छे एणी भांत।

सुध बुध सर्वे विसरी, ए रच्यो माया दृष्टांत॥२३॥

इस प्रकार सभी लोग माया के अन्धकार में उल्टी राह में भटक रहे हैं। माया ने ऐसा नाटक रूपी संसार रचा है, जिसमें सभी अपनी सुध-बुध खो देते हैं।

आ रे वेला एवी नहीं आवे, साध ना सके पुकारी।

वचन ते अवला विचारसे, केहेसे निंदया करे छे अमारी॥२४॥

जागनी की यह अमृत बेला बार-बार नहीं आयेगी और न ही साधू-सन्त बार-बार प्रबोधित करेंगे। अज्ञानी लोग मेरे वचनों को उल्टे रूप में लेकर विचारेंगे और कहेंगे कि हमारी निन्दा करते हैं।

साध हसे ते विचारसे, सवला रूदे वचन।

ए वाणी प्रकासूं ते माटे, म्हारे मलवा ते साधू जन॥२५॥

जो सच्चा साधू होगा, वह अपने हृदय में मेरे वचनों का सीधा अर्थ लेगा। मैंने उनके लिये ही इस प्रकार की वाणी कही है, क्योंकि मुझे तो सच्चे साधू-सन्तों से मिलना है।

प्रगट प्रकास न कीजे, आपण देखी बाज।

गोप रही न सकुं ते माटे, सनमंधी मलवा साध॥२६॥

बेहद और परमधाम का ज्ञान वहाँ की अपनी आत्माओं को देखकर ही देना चाहिए। हृद के अन्य जीवों के सामने प्रत्यक्ष रूप से इस अनमोल ज्ञान को नहीं कहना चाहिए। मुझे तो अपने अखण्ड के सम्बन्धी साधू जनों से मिलना है, इसलिये मैं चुप भी नहीं रह सकता। मुझे प्रत्यक्ष रूप से कहना ही होगा।

भावार्थ- ब्रह्मज्ञान तो सम्पूर्ण मानव मात्र के लिये कल्याणकारी होता है, किन्तु इस चौपाई में जीवों के सामने इस ज्ञान को प्रत्यक्ष रूप से न सुनाने के कथन का कारण यह है कि वे इसकी गरिमा नहीं समझते। जिस प्रकार ऊसर भूमि में अच्छे से अच्छे बीज बोना भी निरर्थक होता है, उसी प्रकार जीवसृष्टि यदि इस ज्ञान को सुनकर ग्रहण भी कर लेती है तो आचरण में पूरी तरह उतार नहीं पाती। जड़ की पूजा में लगे हुए जीवों द्वारा ब्रह्मज्ञान को नकारने पर ही श्री मिहिरराज जी के धाम-हृदय से इस प्रकार की बात निकली है, अन्यथा श्री पन्ना जी में पाँच हजार की जमात में जीवसृष्टि की संख्या ३०००, ईश्वरीसृष्टि की १५००, और ब्रह्मसृष्टियों की संख्या ५०० थी।

जेणे दरसने नेत्र ठरे, अने वचन कहे ठरे अंग।

अनेक विघन जो उपजे, पण मूकिए नहीं साध संग॥२७॥

जिनके दर्शन मात्र से नेत्रों में शीतलता आ जाये और जिनकी अमृतमयी वाणी से हृदय में शान्ति रूपी ठण्डी बयार बहने लगे, ऐसे साधू-सन्त की संगति अनेक संकट आने पर भी नहीं छोड़नी चाहिए।

भावार्थ- नेत्रों का शीतल होना एक मुहावरा है जिसका अर्थ होता है, अपने प्रिय का दीदार पाकर बहुत प्रसन्न होना। कहीं पर अपमानित होने, घृणा सहने, या दुःख में क्रोध से आँखे लाल हो जाया करती हैं। उस समय आँखों से गर्म आँसू बहते हैं। किन्तु जिसके हृदय से प्रेम, भक्ति, और माधुर्यता की तरंगें प्रवाहित होती हैं, उसके दर्शन से हृदय में जो प्रसन्नता होती है वह आँखों से प्रगट होती है, जिसे नेत्रों का ठण्डा हो जाना कहते हैं।

साध संतो मली सांभलो, वली विलम न करो लगार।

अधखिण मेलो संत तणो, जेथी जीतिअ अखंड अपार॥२८॥

हे साधु-सन्तों! आप सभी मेरी बात सुनिये। अब सत्य की राह पर चलने में थोड़ी भी देर न करो। अखण्ड धाम का रसपान करने वाले सच्चे सन्त की आधे क्षण की सत्संगति भी अखण्ड धाम के अपार सुख को दिला सकती है।

भावार्थ- केवल दर्शन मात्र से ही अखण्ड का सुख प्राप्त नहीं होगा। यदि दर्शन के पश्चात् उनसे आधे क्षण अर्थात् अति अल्प समय के लिये भी भगवान दास पण्डा की तरह सत्संग मिल जाये, तो उसको आचरण में उतारकर अखण्ड सुख को निश्चित रूप से पाया जा सकता है।

अखंड पार सुख अति घणूं, जेने सब्द न लागे कोय।

ए जाणी सुख केम मूकिए, ए साध संगते सुख होय॥२९॥

बेहद से परे परमधाम के सुख अनन्त हैं, जिनका वर्णन शब्दों से होना सम्भव नहीं है। धाम के ऐसे सुखों का ज्ञान होने पर उसे कैसे छोड़ा जा सकता है। इस प्रकार का सुख सच्चे साधु-सन्तों की संगति में ही प्राप्त होता है।

ए सुख केम प्रकासूं प्रगट, वेहद सुख केहेवाय।

ए ब्रह्माण्ड सर्वे रामत, उपनी छे एनी इछाय॥३०॥

परमधाम का सुख अनन्त (बेहद) कहा जाता है। इसे मैं प्रत्यक्ष रूप से कैसे कहूँ? यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड माया का खेल है, जो ब्रह्मसृष्टियों की माया देखने की इच्छा के कारण बना है।

ए रे वल्लभसूं वालपणे, कर दिए साध संग।

ए रे संगत केम मूकिए, मारा मूल तणो सनमंध॥३१॥

हमारे प्रियतम ने हमें बहुत प्यार से सद्गुरु स्वरूप सन्त से मिला दिया है, जिनसे हमारा परमधाम का सम्बन्ध है। अब इनकी संगति भला कैसे छोड़ी जा सकती है, कदापि नहीं।

सारनों सार ते संगत, जो ते साध मेलो थाय।

वेहद तणी निध लईने आपे, मूकिए ते केम पाय॥३२॥

सार का सार सत्संग है, जो सद्गुरु स्वरूप सन्त से मिलने पर ही प्राप्त होता है। उनसे परमधाम का ज्ञान प्राप्त होता है, इसलिये किसी भी स्थिति में उनके चरणों को नहीं छोड़ा जा सकता।

भावार्थ— मन में यह संशय पैदा होता है कि इसी कीर्तन

ग्रन्थ के प्रकरण ५२/१ में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "सतगुर मेरा स्याम जी", किन्तु इस प्रकरण में सद्गुरु का स्वरूप एक सच्चे साधू-सन्त के रूप में दर्शाया जा रहा है। आखिर इस प्रकार का स्पष्ट विरोधाभास क्यों है?

हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि कोई भी बात प्रसंग के अनुकूल ही अच्छी लगती है। "सतगुर मेरा स्याम जी" का कथन सुन्दरसाथ से जुड़ा हुआ है, जबकि मिहिरराज की छाप वाले अधिकतर कीर्तनों- विशेषकर प्रकरण १२५, १२६, १२७, १२८, १२९, १३१, तथा १३२- में उन प्रवाही लोगों को सम्बोधित किया गया है, जो विशेष रूप से वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं। इन साम्प्रदायिक लोगों की भावनाओं के अनुसार सद्गुरु को सच्चे सन्त या साधू के रूप में दर्शाया गया है, किन्तु यहाँ ध्यान देने योग्य मुख्य बात यह है कि यहाँ सद्गुरु रूप में

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी या श्री प्राणनाथ जी की ओर ही संकेत किया गया है। किसी भी मानव तन में यदि अक्षरातीत का आवेश नहीं है, तो उसे सद्गुरु के रूप में सम्बोधित नहीं किया जा सकता। इस प्रकरण की चौपाई २७, २८, २९, ३१, ३२ में सद्गुरु के रूप में श्री प्राणनाथ जी की ओर ही संकेत है। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं समझना चाहिए श्री प्राणनाथ जी को "सन्त" या "साधू" शब्द से सम्बोधित किया जाये। सन्त या साधू वेश को सद्गुरु के रूप में दर्शाने का भाव केवल वैष्णवों को श्री जी के स्वरूप की पहचान कराने से था।

सनमंधी ज्यारे साचो मल्यो, त्यारे जीवने थयो करार।

मेहेराज कहे धन धन ए घड़ी, धन धन कोहेडो अंधार।।३३।।

जब परमधाम के अपने सच्चे साथी मिल गये, तो जीव

को चैन मिला। श्री मिहिरराज जी कहते हैं कि इस मिलन के कारण यह घड़ी (समय) भी धन्य-धन्य हो गयी तथा यह मायावी संसार भी धन्य-धन्य हो गया, जिसमें ब्रह्मसृष्टियों का आगमन हुआ है।

प्रकरण ॥१२९॥ चौपाई ॥२०४३॥

राग धना श्री

यह कीर्तन उस समय उतरा है, जब श्री जी समुद्र के किनारे धोराजी में उतरते हैं और वहाँ से बैलगाड़ी द्वारा सुहाली होते हुए सूरत के लिए प्रस्थान करते हैं। प्रेम जी और थावर भाई बैलगाड़ी लेकर आते हैं और श्री जी को उस पर बिठाते हैं। रेतीला मार्ग होने के कारण गाड़ी के पहिए रेत में धँस जाया करते हैं, फिर भी गाड़ीवान बैल को आरा चुभोता है। श्री मिहिरराज जी के धाम हृदय से यह कीर्तन फूट पड़ता है, जिसका भाव बहुत ही मर्मस्पर्शी है।

धोरीडा मा मूके तारी धूसरी।

वाटडी विस्मी गाडी भार भरी, धोरीडा मा मूके तारी धूसरी॥टेक॥

धोरीडा आरे मारे रे, हारे तूने गोधे घणे रे।

तूं तां नाके नथाणों रे, तूं तां बंध बंधाणो गुण आपणे रे॥१॥

यह रेतीला रास्ता बहुत कठिन है। गाड़ी पर बहुत अधिक भार है। हे बैल! तू अपने जुए को मत छोड़। गाड़ीवान तुझे आरे मार रहा है और बहुत ज्यादा चुभो भी रहा है। तुम्हारी नाक भी रस्सी से नथी हुई है, लेकिन हे बैल! तू अपने बोझ ढोने के गुण के कारण बँधा हुआ है।

भावार्थ— श्री मिहिरराज जी कहते हैं कि हे मेरे जीव ! धर्म का रास्ता बहुत कठिन है। सबको परमधाम की राह पर ले चलने की जो जिम्मेदारी तुझे दी गयी है, उसे छोड़ना नहीं। गादीपति बिहारी जी महाराज तुम्हें कदम – कदम पर कष्ट देंगे, क्योंकि वे धर्म की ओट में अत्याचार ही करते हैं। सद्गुरु को दिये हुए वचनों के कारण तुम कुछ

भी प्रतिरोध नहीं कर सकते। चाहे कितना भी कष्ट क्यों न हो, तुम तो सुन्दरसाथ को धाम की राह पर ले चलने के उत्तरदायित्व से बँधे हुए हो।

धोरीडा अवाचक थयो रे, मुख थी न बोलाय रे।

कल ने वेलूं रे धोरी, उवट ऊंचाणे स्वास मा खाय रे॥२॥

हे बैल! तू तो गूँगा है, अपने मुख से कुछ भी नहीं बोल सकता। मार्ग में कीचड़ और रेत है। इस उबड़-खाबड़ राह में चलने से तू हाँफ रहा है।

भावार्थ- हे मेरे जीव! गुरुपुत्र का सम्मान करने की भावना से तू बिहारी जी को कुछ भी नहीं कह सकता। बिहारी जी ने वाणी के प्रसार में जो रोक लगा दी, उसका परिणाम यह हुआ कि अज्ञान रूपी कीचड़ मार्ग में फैला हुआ है। परमधाम की राह में जागनी रूपी गाड़ी के

पहियों को चलाने में यह कीचड़ बहुत बाधा कर रहा है।

बिहारी जी गादीपति के पद पर प्रतिष्ठित होकर व्यक्तिवाद की मानसिकता से ग्रसित हैं। सुन्दरसाथ के संघात्मक स्वरूप से उन्हें कुछ लेना-देना नहीं है। उस व्यक्तिवाद की आँधी ने राह में बहुत अधिक रेत रूपी संकीर्णता डाल दी है, जो गाड़ी के पहियों को चलने नहीं दे रही। धारा भाई का निष्कासन, रामजी भाई का प्रणाम स्वीकार न करना, फूलबाई का देह त्याग, खम्भालिया के राजा को उकसाने आदि की घटनाओं ने परिस्थिति को इतना विषम बना दिया है कि पूरा मार्ग ही उबड़-खाबड़ हो गया है। हे मेरे जीव! तू अपने धनी की छत्रछाया के नीचे जागनी की गाड़ी को खींच तो रहा है, किन्तु कदम-कदम पर आने वाली मायावी बाधाओं के कारण तू हॉफ़ रहा है।

धोरीडा घणूं दोहेलूं छे रे, कीधां भोगवे रे।

तारे कांधे चांदी रे, दुखडा सहे रे॥३॥

हे बैल! यह मार्ग बड़ा कठिन है। तू अपने किये का फल भोग रहा है। जुए के दबाव से तुम्हारे कन्धे पर घट्टा (ठेला, सूजन) पड़ गया है, जिसके कारण गाड़ी खींचने में तुम्हें बहुत अधिक दर्द हो रहा है।

भावार्थ— हे मेरे जीव! इस मायावी संसार में परमधाम की राह पर चलना बहुत कठिन है। तूने अपने पूर्व जन्म में यह कामना की थी कि अक्षरातीत तुम्हारे तन से लीला करें। अब जागनी के लिये धनी ने जब तुम्हारे तन को चुन लिया है, तो इस कार्य में आने वाली सभी कठिनाइयों को तुम्हें सहना ही होगा। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी रास्ता नहीं है। जागनी कार्य में आने वाली कठिनाइयों तथा बिहारी जी के दुर्व्यवहार के कारण

तुम्हारे दिल में बड़े-बड़े घाव हो गये हैं। खम्भालिये का राजा तुम्हारे प्राणों का शत्रु है। यह जानकर बिहारी जी ने राजा को इस भावना से उकसाया था कि वह तुम्हें पकड़कर मार डाले। गुरुपुत्र की इस दुर्भावना के कारण तू मर्माहत है, फिर भी जागनी की गाड़ी को तो तुझे खींचना ही पड़ेगा।

धोरीडा जाये रे उजाणी, द्रोडा द्रोड तूं आवे।

दया रे विना रे, बेठा मारडी पडावे॥४॥

हे बैल! तू भूखा है, फिर भी मन्जिल तक पहुँचने के लिये दौड़-दौड़कर चल रहा है। इतना होने पर भी गाड़ीवान निर्दयी है। वह तुझे बारम्बार मारता जा रहा है।

भावार्थ— हे मेरे जीव! सामान्यतः सुन्दरसाथ की श्रद्धा गादी पर होती है। गादी पर बैठने वाले को वह अपना

सर्वस्व मानने की भूल करते हैं। सुन्दरसाथ की इस कमजोरी को देखते हुए बिहारी जी ने बालबाई के माध्यम से गादी पर अधिकार कर लिया। काफी सुन्दरसाथ उनके समर्थन में भी हैं। व्यक्तिवाद की आँधी में तुम एक सामान्य सुन्दरसाथ की तरह बन गये हो, लेकिन धनी की मेहर से तुम जागनी कार्य में अपना शत-प्रतिशत योगदान कर रहे हो। बिहारी जी बहुत अधिक कूप-मण्डूकता एवं क्रूरता की प्रवृत्ति के शिकार हैं। उन्हें किसी भी स्थिति में यह स्वीकार नहीं है कि जागनी कार्य में तेजी हो। परिणामस्वरूप, वे कदम-कदम पर तुम्हें शारीरिक व मानसिक प्रताड़ना देने में कोई कसर नहीं छोड़ रहे हैं।

धोरीडा वही ने छूटे रे, करम आपणां रे।

मेहेराज कहे एम, कीधा छे घणा रे॥५॥

श्री मिहिरराज जी कहते हैं कि हे बैल! अब तो तू अपनी मन्जिल पर पहुँचकर ही अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो सकेगा। तूने अपने कर्तव्य के पालन में बहुत अधिक समर्पण युक्त पुरुषार्थ किया है।

भावार्थ— हे मेरे जीव! तू कठिनाइयों से न घबरा। अक्षरातीत ने तुझे इस परम पुनीत कार्य में मनोनीत किया है। सब सुन्दरसाथ को परमधाम की राह पर ले चल। इस कार्य में यदि आपत्तियों के पहाड़ भी आ जायें, तो भी तुझे चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। जिस तरह तूने अब तक अपना कर्तव्य निभाया है, उसी तरह आगे बढ़ता चल। जागनी कार्य की वृद्धि ही धनी के प्रति तुम्हारे सर्वस्व समर्पण और त्याग की कहानी

कहेगी।

प्रकरण ॥१३०॥ चौपाई ॥२०४८॥

राग श्री बेराडी

पूर्व के प्रकरण १२८ व १२९ की तरह, इस प्रकरण में भी प्रवाही समाज के लोगों को सिखापन दिया गया है।

आवो अवसर केम भूलिए, कारण एक कोलिया अन।

एटला माटे आप मुझाई, केटला करो छो कई कोट विघन॥१॥

श्री मिहिरराज जी कहते हैं कि हे संसार के लोगों! इस अनमोल मानव तन को पाकर मात्र एक घास (कौर) अन्न के लिये तुम इस सुनहरे अवसर को क्यों गँवा रहे हो? मात्र इतने ही अन्न के लिये तुम स्वयं को माया में उलझाते जा रहे हो और करोड़ों आपत्तियाँ उठा रहे हो।

प्रगट वचन सुणो उत्तम मानखो, तमें वोहोरवा आव्या छो सुख।

पण आंणी भोमे मुझ वण घणूं विसमी, सुखने आड़े अनेक छे दुख॥२॥

गुण, कर्म, और स्वभाव की दृष्टि से श्रेष्ठ हे मनुष्यों! मेरी यह बात स्पष्ट रूप से सुनो। तुम इस नश्वर संसार में सुख लेना चाहते हो, लेकिन इस संसार में बहुत कठिन उलझने हैं। सुख के बदले अनेक दुःखों को भोगना पड़ता है।

भावार्थ- हर प्राणी की स्वाभाविक प्रवृत्ति सुख प्राप्त करने की होती है, किन्तु जिन पदार्थों से वह सुख पाना चाहता है, उनसे ही वह ज्यादा दुःख भोगने के लिये विवश हो जाता है। वस्तुतः इस संसार में सुख थोड़ा है और दुःख ज्यादा है।

सुखने रखोपे दुख वीटया छे, लेवाए नहीं केणे काचे जन।

सूरधीर हसे खरो खोजी, ते लेसे दृढ़ करी मन॥३॥

सुख की रक्षा के लिये चारों ओर दुःख का पहरा है।

कोई साधारण व्यक्ति तो सांसारिक सुख भी प्राप्त नहीं कर पाता। जो सच्चा खोजी और धैर्यशाली वीर होगा, वह ही अपने मन को दृढ़ करके सुख की प्राप्ति कर सकेगा।

एकी गमां सुख वैकुंठ गरजे, बीजीएं दुख गरजे जमपुर।
 ए बने माहें थी एक लई वलसो, रखे भूलता तमे आ अवसर॥४॥
 इस संसार में एक ओर जहाँ वैकुण्ठ में सुखों की बाहुल्यता है, तो दूसरी ओर यमपुरी में दुःख ही दुःख हैं। इन दोनों में से तुम्हें किसी एक को चुनना है। इसलिये तुम इस स्वर्णिम अवसर को व्यर्थ में नहीं गँवाना।

चौद लोक इछे आ वेला, जोगवाई तमे पाम्या छो जेह।
 अहनिस कष्ट करे कई देवता, तोहे न आवे अवसर एह॥५॥
 तुम्हें जो यह मानव तन मिला हुआ है, इसकी इच्छा तो

चौदह लोक के सभी प्राणी करते हैं। इस मानव तन की प्राप्ति के लिये बहुत से देवता दिन-रात कष्टसाध्य तप करते हैं, फिर भी उन्हें मानव तन की प्राप्ति नहीं होती।

भावार्थ- यद्यपि वैकुण्ठ-स्वर्ग में जन्म, मृत्यु, रोग, और बुढ़ापे का कष्ट नहीं है, किन्तु आवागमन का चक्र तो वहाँ भी है। वहाँ रहने वाले इस भावना से कठोर तप करते हैं कि उन्हें मानव तन की प्राप्ति हो जाये, जिससे वे ज्ञान और ध्यान की राह अपनाकर शाश्वत ब्रह्मानन्द व शान्ति को पा सकें।

घणूं रे दोहेली छे जम जाचना, तमें मूको रे परा छल छद्रम।
 वार वार वारूं छूं तमने, विस्मी रे जमपुरी विखम॥६॥
 यमपुरी की यातना बहुत भयंकर है, इसलिये इस माया में छल-कपट की राह छोड़ दो। मैं छल-कपट की राह

पर चलने से तुमको बार-बार मना करता हूँ क्योंकि
यमपुरी के कष्ट बहुत दुःखदायी हैं।

आणें रे आकारे कां नथी देखता, जेवडो लाभ तेवडो जोखम।

आणें रे समें अखंड सुख भूल्या, बलसो रे लाख चौरासी अग्नि॥७॥

इस मानव तन को पाने के बाद क्या तुम्हें दिखायी नहीं
पड़ता कि जितना बड़ा लाभ लेना होता है, उतना ही
अधिक उसमें जोखिम भरा होता है। इस समय यदि
तुमने अखण्ड सुख को पाने का अवसर गँवा दिया, तो
नर्क रूपी चौरासी लाख योनियों की दुःखमयी अग्नि में
जलना पड़ेगा।

अखंड सुख लीधानी आ वेला, कां न करो सवला साधन।

परमेश्वर ने परा करी रे, मा करो रे एवा करम अधम॥८॥

अखण्ड सुख को प्राप्त करने का यही स्वर्णिम अवसर है। उसे प्राप्त करने के लिये तुम सीधी और सच्ची राह क्यों नहीं अपनाते हो ? सच्चिदानन्द परमात्मा से अपने को दूर कर अधम कार्य क्यों करते फिरते हो ?

मंदिर मालिया अनेक निपाओ, पण भरवूं एक तेहज दो भरी।

अनेक उपाय करो कई बीजा, ए साधन सर्वे जमपुरी॥९॥

भले ही तुम बहुत से मन्दिर-महल क्यों न बना लो, लेकिन ध्येय तो उस पेट को भरना होता है जो कभी भी पूर्ण रूप से नहीं भरता। सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिये तुम कितने भी साधन इकट्ठे क्यों न कर लो, लेकिन ये सभी यमपुरी ही ले जाने वाले हैं।

कुटम सगा कीधा कई समधी, अने घोलीका ने करी बेठा घर।

आपोपूं तिहां बांधीने आपे, वृथा निगम्या आ अवसर॥१०॥

तुमने यहाँ अपने कुटम्ब तथा सगे-सम्बन्धियों से मोह का सम्बन्ध बना लिया है। घरौंदे को घर मान लिया है। स्वयं को इन झूठी चीजों के बन्धन में बाँधकर व्यर्थ में ही इस सुनहरे अवसर को गँवा रहे हो।

भावार्थ- छोटे-छोटे बच्चे अपने पैर पर मिट्टी रखकर गुफा जैसी आकृति का घर बनाते हैं, उसे ही घरौंदा कहते हैं। इस मायावी जगत के नश्वर घरों को "घरौंदा" कहना पूर्णतया सार्थक है।

ए घर जाणो छो अखंड अमारू, ऊपर ऊभो न देखो रे काल।

तमारी दृष्टे कई रे जाये छे, तो तमें रेहेसो केटलीक ताल॥११॥

तुम इस झूठे घर को ऐसा समझ बैठे हो कि यही हमारा

अखण्ड घर है। अपने ऊपर मण्डराने वाले काल को नहीं देखते हो। तुम्हारे सामने ही बहुत से लोग मृत्यु के मुख में चले गये, तो यह विचार करो कि तुम कितने दिनों तक इस संसार में रहने वाले हो?

ऊंचा वस्त्र पेहेरी आकासे, अंत्रीख राखे छे आकार।

भोम ऊपर पग भरता नथी, एणी पेरे बांध्यो ए संसार॥१२॥

यह संसार इस प्रकार अज्ञानता के बन्धन में बँधा हुआ है कि कीमती वस्त्र पहनकर लोग अपने शरीर को आकाश में स्थित हुआ समझते हैं, अर्थात् अपने नश्वर शरीर के अहंकार में डूब जाते हैं। अहंकार में मग्न होने से ऐसे लोगों के पैर जमीन पर ही नहीं पड़ते हैं।

आप पछाडी ल्याओ छो धन, उंचा थावा रब्दे करो छो दान।
 नहीं रे आवे ते अरथ जीवने, लई जाये छे वचे अभिमान॥१३॥
 तुम स्वयं कठोर परिश्रम करके धन कमाते हो और
 संसार में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये दान करके झगड़ा
 करते हो। इस प्रकार के दान का फल जीव को नहीं
 मिलता, क्योंकि उसमें अहंकार भरा होता है।

असुभ करम जेम लिए निंदा, सुभ करम नामना लई जाये।
 गोप साधन कीजे ते माटे, जेम सुख जीवने पोहोंतू थाय॥१४॥
 जिस प्रकार किसी की निन्दा करने से उसके बुरे कर्मों
 का फल समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार प्रशंसा करने से
 शुभ कर्मों का फल भी समाप्त हो जाता है। इसलिये दान
 आदि पुण्य के साधनों को हमेशा गोपनीय रूप से ही
 करना चाहिए, जिससे जीव को सुख प्राप्त हो।

एके बंध एणी पेरे बांध्या, बीजा नी ते केटली कहूं रे सनंध।

साध वाणी सांभलीने सहु कोय, देखीने बंधाणा रे अंध॥१५॥

इस प्रकार जब एक प्रशंसा में ही मनुष्य के लिये इतने अधिक बन्धन हैं, तो और दूसरे बन्धनों की यथार्थता कहाँ तक कहूँ। साधु-सन्तों की अमृतमयी वाणी को तो सभी सुनते हैं, फिर सब कुछ देखते हुए भी अन्धों की तरह माया के बन्धन में बँधते जाते हैं।

बंध चोवीस बीजा एनी जोड़े, वली पंच इंद्रीने नव अंग।

त्रणे पख त्रणे गुण करी रे, ए बंध बांधी दुख लीधा रे अभंग॥१६॥

जीव इस जगत में प्रकृति के चौबीस बन्धनों (१० इन्द्रिय + ५ सूक्ष्म भूत + ५ स्थूल भूत + ४ अन्तःकरण) में पड़ा हुआ है। पुनः वह पाँच इन्द्रियों, नव अंगों, तीन पक्षों (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति), और तीन

गुणों के बन्धन में पड़कर बहुत अधिक दुःखी हो रहा है।

एणी पेरे बंध बांध्या रे वज्र में, चसकावी न सके पाय।

होंस करे सुख वैकुंठ केरी, एणी सिखरे एम केम चढ़ाय॥१७॥

इस प्रकार जीव प्रकृति के इन कठोर बन्धनों में बँधा हुआ है। इन बन्धनों के कारण वह अपने पाँव खिसका भी नहीं सकता, फिर भी वह वैकुण्ठ के सुखों की इच्छा करता है। इस प्रकार बन्धनों में रहकर चौदह लोक में शिखर की तरह सर्वोपरि स्थित उस वैकुण्ठ को कैसे पा सकता है?

जे बंध बांध्या जोड़ए रे चरणसुं, ते बंध बांध्या लई पंपाल।

अखंड सुख आवे केम तेने, जे रे पडे जई जमनी जाल॥१८॥

जिस अन्तःकरण और इन्द्रियों को परमात्मा के चरणों

से बँधना चाहिए था, वे इस झूठे जगत के बन्धन में फँस गये। उस व्यक्ति को अखण्ड सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है, जो यमराज के जाल में फँसा हुआ है।

जाणीने पडिया जम जाले, आ देखो छो मायानो फंद।

जे कारण तमें आप बंधावो, तेसुं नथी रे तमारो सनमंध॥१९॥

तुम प्रत्यक्ष रूप से देखते हो कि यह माया का फन्दा है, फिर भी जानबूझकर यमराज के जाल में फँसते हो। जिन सगे-सम्बन्धियों और कुटुम्ब वालों के लिये तुम अपने को माया के बन्धनों में फँसाते हो, उनसे तुम्हारा कोई भी सच्चा सम्बन्ध नहीं है।

भावार्थ— पूर्व जन्म के संस्कारों के आधार पर ही पारिवारिक सम्बन्ध बनते हैं। इन सम्बन्धों को शाश्वत मानकर सच्चिदानन्द परब्रह्म के प्रेम से विमुख हो जाना,

स्वयं को ८४ लाख योनियों में भटकाना है। विवेकवान पुरुष परिवार में वैसे ही रहता है, जैसे किसी धर्मशाला (सराय) में रात गुजारी जाती है।

उत्तम जनम एवो पामी रे मानखो, कां रे पडो पसुना जेम पास।
 बीजा पसु सहुए बंधावे, पण केसरी केम बंधावे रे आप॥२०॥
 हे मनुष्यों! तुम इतना उत्तम मानव तन पाकर यमराज की मृत्यु रूपी रस्सी (पाश) से पशुओं की तरह क्यों बँधते हो, अर्थात् जन्म-मरण के चक्र में क्यों पड़ते हो? दूसरे सामान्य पशु तो रस्सियों से बँध जाया करते हैं, किन्तु केशरी सिंह जानबूझकर स्वयं रस्सी से नहीं बँधता।

भावार्थ- इस चौपाई में ज्ञान दृष्टि से जाग्रत होने वाले जीव की तुलना उस केशरी सिंह से की गयी है, जो कभी

भी रस्सी से नहीं बन्ध सकता। सम्यक् ज्ञान, प्रेम लक्षणा भक्ति, विवेक, वैराग्य से सुशोभित जीव को कभी भी यमराज के पाश (रस्सी) से नहीं बाँधा जा सकता।

सुं रे बल केसरी नूं तम आगल, तम समान नथी बलवंत।

छल करी छेतरे छे तमने, रखे रे लेवाओ आंणे प्रपंच॥२१॥

तुम्हारे सामने केशरी सिंह की भी क्या शक्ति है? वह तुम्हारे समान बलवान नहीं है। इस माया ने छल करके तुमको ठग लिया है, इसलिये अब इसकी चाल में मत फँसो।

भावार्थ- जिसके पास बुद्धि और विवेक होता है, वही यथार्थ में बलशाली माना जाता है। सिंह के पास मात्र शारीरिक शक्ति है, किन्तु मनुष्य के पास ज्ञान, विवेक, वैराग्य, श्रेष्ठ बुद्धि, श्रद्धा, समर्पण का बल है, जिसके

सामने माया कुछ नहीं कर सकती। यही कारण है कि मनुष्य को सिंह की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली माना गया है।

आ देखीती बाजी मायानी, प्रगट पोकार करे छे साध।

माहें रही आप अलगा थाजो, जेमने छूटो ए बंध अगाध॥२२॥

माया के इस लुभावने खेल को देखकर साधू-सन्त प्रत्यक्ष रूप से सावधान करते हैं। तुम इसमें बाह्य रूप से रहते हुए भी आन्तरिक रूप से अलग रहो, जिससे तुम्हें माया के अथाह बन्धनों से छुटकारा मिल सके।

वली वली आ वेला नहीं आवे, वली वली न सांभलो पुकार।

बोध संघाते जागी परियाणी, तमे लेजो रे सघलानो सार॥२३॥

बार-बार इस प्रकार का उत्तम समय नहीं आने वाला है

और न कोई तुम्हें इस प्रकार बोल-बोलकर समझायेगा।
ज्ञान द्वारा प्रबोधित होने के पश्चात्, तुम सबके सत्य
कथनों के सार तत्व को ग्रहण करो।

सारना सारसूं बंध बांधजो, करजो रे नित नवलो रंग।

नहाजो माया माहें कोरा रहेजो, छूटता आयस जेम न आवे रे अंग॥२४॥

उस सार का भी सार यह है कि उस सच्चिदानन्द परब्रह्म
के चरणों से ही अपना अटूट बन्धन बाँधो और उनके
अखण्ड प्रेम तथा आनन्द में हमेशा डूबे रहो। माया के
कार्यों को करते हुए भी माया में लिप्त न हो। इसका
परिणाम यह होगा कि संसार को छोड़ते समय हृदय में
माया की चाहना नहीं रहेगी।

दुख दावानल दुरगत मेलो, रदे माहें चरण करो प्रकास।
 अखंड सुख एणी पेरे आवे, मेहेराज कहे जीव जाणो विश्वास॥२५॥
 भाई रे आवो अवसर केम भूलिए।

श्री मिहिरराज जी कहते हैं कि हे जीव! मेरे इस कथन पर विश्वास करो। माया की दुःखमयी दावाग्नि से अपनी दुर्दशा मत कराओ। अक्षरातीत परब्रह्म के चरणों को अपने हृदय में धारण करो। इस प्रकार तुम्हें अखण्ड सुख की प्राप्ति होगी। हे प्रिय भाइयों! मनुष्य तन पाने के इस स्वर्णिम अवसर को क्यों गँवाते हो।

प्रकरण ॥१३१॥ चौपाई ॥२०७३॥

यह प्रकरण आत्म-जाग्रति से सम्बन्धित है। इसमें स्वयं को सम्बोधित करते हुए श्री महामति जी ने परोक्ष रूप से सुन्दरसाथ को आत्म-जाग्रति के लिये प्रेरित किया है।

अंदर नहीं निरमल, फेर फेर नहावे बाहेर।

कर देखाई कोट बेर, तोहे ना मिलो करतार॥१॥

हे मेरी आत्मा! यदि तुम्हारे जीव का हृदय निर्मल नहीं है, तो शरीर को बार-बार जल से नहलाने से कोई लाभ नहीं है। शरीर को स्वच्छ रखकर यदि तुम दिखावे वाली कर्मकाण्ड की भक्ति करोड़ों बार भी करोगी, तो भी प्रियतम परब्रह्म से मिलन नहीं होगा।

भावार्थ- आत्मा परात्म का प्रतिबिम्ब है, अतः उसके विकारग्रस्त होने का प्रश्न ही नहीं है। वह तो जीव पर बैठकर दृष्टा के रूप में इस खेल को देख रही है। आत्मा

का दिल अलग है और जीव का दिल अलग है। जन्म-जन्मान्तरों से जीव का दिल मायावी विकारों से ग्रसित है, इसलिये उसके दिल को ही निर्मल होने की आवश्यकता है। आत्मा या उसके दिल को निर्मल करने का प्रश्न ही नहीं है, क्योंकि वह स्वभाव से ही निर्मल है, केवल आवश्यकता है जगत से आत्मिक दृष्टि को हटाकर युगल स्वरूप की ओर लगा देने की।

कोट करो बंदगी, बाहेर हो निरमल।

तोलों ना पिउ पाइए, जोलों ना साधे दिल॥२॥

भले तुम करोड़ों बार कर्मकाण्ड की भक्ति (बन्दगी) करो तथा जल आदि से अपने बाह्य शरीर को शुद्ध भी रखो, लेकिन जब तक हृदय निर्मल नहीं होता तब तक प्रियतम से मिलन (दीदार) नहीं हो सकेगा।

अहनिस तूं भेली रहे, अपने पिउ के संग।

पीठ दे तिन पिउ को, करे ऊपर के रंग॥३॥

हे मेरी आत्मा! तू स्वलीला अद्वैत परमधाम के अन्दर अपने प्रियतम के साथ दिन-रात एकरूप होकर रहती रही है। अब तूने अपनी नजर प्रियतम से हटाकर झूठे संसार की ओर कर दी है तथा यहाँ के लोगों की देखा-देखी कर्मकाण्ड वाली दिखावे की भक्ति कर रही है।

भावार्थ- श्री राज जी के हुक्म की ऐसी लीला है कि जो सखियाँ पहले अपने धाम धनी को देखा करती थीं, वे अब संसार को देख रही हैं, किन्तु श्री राज जी के दिल के माध्यम से देख रही हैं, साक्षात् परात्म की नूरी नजरों से नहीं।

जैसा बाहेर होत है, जो होए ऐसा दिल।

तो अधखिन पिउ न्यारा नहीं, माहें रहे हिल मिल॥४॥

जिस तरह तुमने अपने बाह्य शरीर को निर्मल कर लिया है, उसी तरह यदि अपने हृदय को भी स्वच्छ कर लो तो आधे क्षण के लिये भी प्रियतम तुमसे दूर नहीं हैं। तू अपने प्राणवल्लभ को पाकर उनसे एकाकार हो जायेगी।

तूं आपे न्यारी होत है, पिउ नहीं तुझ से दूर।

परदा तूं ही करत है, अंतर न आड़े नूर॥५॥

हे मेरी आत्मा! तू इस झूठे संसार को देख रही है, इसलिये तुम्हारे और धनी के बीच अलगाव का आभास हो रहा है। वस्तुतः वे तो तुमसे रंचमात्र भी अलग नहीं हैं, बल्कि शाहरग (प्राण नली) से भी अधिक निकट हैं। माया की इच्छा के कारण, तुमने ही अपने और धनी के

बीच में पर्दा कर लिया है। तारतम ज्ञान के प्रकाश ने यह स्पष्ट कर दिया है कि आत्मा और धनी के बीच किसी भी प्रकार का भेद नहीं है।

प्रकरण ॥१३२॥ चौपाई ॥२०७८॥

कुतबनुमा (दिशा सूचक) यन्त्र का सिन्धी भाषा में कीर्तन

इस प्रकरण में आलंकारिक भाषा में आत्म-जागनी के ऊपर प्रकाश डाला गया है।

किरंतन हुकाको सिन्धी भाखा में

विसराई गिन्यो वंजे, सूंजी संघारयो वंजे।

रिणायर रेल्यो वंजे मालम कर मोहाड, छाला पुजे बंदर पार॥१॥

हे मल्लाह! सागर की भूल-भूलैया तुझे भुला रही है। नींद तुम्हारी यात्रा में बाधा डाल रही है (संहार कर रही है)। सागर तुझे बहाकर ले जा रहा है। अब तू सम्भल जा। परमात्मा की कृपा से तू सागर को पार करके बन्दरगाह तक सुरक्षित पहुँच जायेगा।

भावार्थ- भवसागर ही ऐसा सागर है, जिसको मल्लाह रूपी जीव पार करना चाहता है। उसका शरीर ही जहाज (जलयान) है। अथाह मोहसागर में जीव को पता नहीं चल पा रहा है कि वह सुरक्षित बन्दरगाह (अखण्ड धाम) तक पहुँचने के लिए किधर जाए। अज्ञान रूपी नींद उसकी यात्रा में बहुत बड़ी बाधा है। मोहसागर की लहरें उसे बहाकर ८४ लाख योनियों में भटकाती रही हैं। सच्चिदानन्द परब्रह्म की कृपा से ही वह इस संसार-सागर से पार हो सकेगा।

हुको नी तोहिजे हथ में, तूं नीचा उनूडे निहार।

चुके म चमक ध्रुय जी, से तूं पाण संभार॥२॥

हे मल्लाह! तेरे हाथ में दिशासूचक यन्त्र है। तू नीचे झुककर इसमें देख। तू ध्रुव तारे के प्रकाश को देखने से

मत चूक और अपने आपको सम्भाल।

भावार्थ- हे जीव! तुम्हारे पास परमधाम की राह बताने वाली तारतम वाणी है। तुम अपने अन्तःकरण में प्रियतम की छवि को देखो (बसाओ)। तुम अपने मन को धाम धनी के चरणों से मत हटाओ। अपने आपको माया की लहरों से बचाओ।

हे सफर जे सई थेई, से बेडी न चढया बी आर।

हिन जोखे में लाभ अलेखे, तूं अंखडी मंझ उघार॥३॥

इस यात्रा में यदि तुमने समुद्र को पार कर लिया , तो दोबारा नाव में नहीं चढ़ना पड़ेगा। हे मल्लाह ! तू अपनी आँखें खोलकर देख। इस जोखिम वाले काम में अनन्त (बहुत) लाभ हैं।

भावार्थ- हे जीव! यदि तुम इस बार भवसागर से पार

हो जाओगे, तो दोबारा मानव तन में नहीं आना पड़ेगा। तुम सावधान होकर इस बात पर विचार करो। यद्यपि भवसागर से पार होना कठिन है, किन्तु पार हो जाने पर अनन्त सुख मिलेंगे।

जा तूं रिणायर विच में, अंख ढंकीए की।

हिन रिणायर ज्यों रामायणूं, किन कंने न सुण्यो कडी॥४॥

हे मल्लाह! जब तक तुम सागर के बीच में चल रहे हो, तब तक अपनी आँखें कैसे बन्द कर सकते हो? इस सागर में डूबने वालों की बहुत सी कथाएँ हैं। कोई इसे पार करके निकल गया हो, ऐसा कभी भी किसी ने नहीं सुना।

भावार्थ— हे जीव! जब तक तुम इस भवसागर को पार नहीं कर लेते, तब तक तुम्हें माया से पल-पल सावधान

रहना होगा। इस भवसागर को पार करके कोई
(पञ्चवासनाओं को छोड़कर) अखण्ड धाम में गया हो,
ऐसा कभी सुनने में नहीं आता।

जिंजी जाणी वंजे सायरें, से की निद्र कन।

हिन सूंजी घणां संघारिया, तूं मालम धिरिए न मन॥५॥

जिसको संसार रूपी समुद्र के पार जाना है, वह अज्ञान
रूपी नींद में कैसे सो सकता है। इस अज्ञानमयी नींद के
कारण बहुत से लोग इस भवसागर में डूब गये। हे जीव
(मल्लाह)! तू इस मन का भरोसा मत कर।

बेडी पुराणी बखर भारी, लगे वा डुबां।

सार सुखाणी गोस के, तूं उथिए न निद्र मंझां॥६॥

तुम्हारी नाव पुरानी है और बोझ भारी है। जहाज को

डुबाने वाली हवा बह रही है। हे मल्लाह! तू सावधानी से पतवार (चप्पू) चला। तू नींद छोड़कर क्यों नहीं उठता।

भावार्थ- हे जीव! तुम्हारे द्वारा धारण किये गये शरीर की उम्र ज्यादा हो गयी है। लौकिक कार्यों का उत्तरदायित्व भी बहुत अधिक है। विषय-विकारों की ऐसी तेज हवा बह रही है, जो अपने झोंकों से मन को अशान्त बना रही है। ऐसी अवस्था में तू प्रियतम परमात्मा के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित हो जा। समर्पण (पतवार) के सहारे ही तू परब्रह्म की कृपा का पात्र बनेगा और भवसागर से पार होगा। तू शीघ्र-अति शीघ्र अपनी अज्ञानता की नींद को छोड़कर प्रियतम के प्रेम में दौड़ लगा।

वा लगी जा विच में, सभ थेई उंधाई।

मालम डिस मोहाडियो, रहयो मुझाई॥७॥

यदि सागर के बीच में ही आँधी का झोंका आ गया, तो सब कुछ उलट जायेगा। हे मल्लाह! तुम अपनी दृष्टि सामने रखो और समुद्र की उठती हुई लहरों को देखकर निराश न हो।

भावार्थ— हे जीव! यदि भवसागर के पार होने से पहले ही तुम्हारे अन्दर विषय-विकारों की आँधी तेज हो गयी, तो तुम्हारे शरीर के छूटने का खतरा हो जायेगा। माया की कठिनाइयों को देखकर निराश मत हो और प्रियतम परब्रह्म की छत्रछाया में रहते हुए एकमात्र भवसागर को पार करने का लक्ष्य बना लो। इसके अतिरिक्त अपने मन को व्यर्थ की (इधर-उधर की) बातों में न भटकने दो।

पिंजर मथे पिंजरी, रिणे कारी रात।

हिन पवने घणां पछाडिया, तूं तरसी करिए न तात॥८॥

इस काली अन्धेरी रात में जहाज के ऊपर बाँस गड़ा हुआ है। इस तीव्रगामी पवन ने बहुतों को पछाड़ दिया है। हे मल्लाह! तू इस समुद्र से पार होने का उपाय क्यों नहीं करता।

भावार्थ— इस संसार में अज्ञानता का इतना घना अन्धकार छाया हुआ है कि किसी को कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता। इस शरीर में मन है, जो सभी कार्यों का पथ-प्रदर्शक है। सांसारिक विषय सुखों का मोह इतना प्रभावशाली होता है कि बड़े-बड़े ज्ञानी एवं तपस्वी भी इसके जाल में फँस जाते हैं। हे जीव! तू इस भवसागर से पार होने का उपाय क्यों नहीं करता।

हाजानी करिए हेठडा, सिड पुराणी पांध।

हिन आंधिए घणां उंधा विधां, तूं मालम भाए म रांद॥९॥

हे नाविक! पाल का कपड़ा पुराना हो गया है, इसलिये बाँस की रस्सी को नीचे खींच लो। इस आँधी ने बहुत से जहाजों को उलट दिया है। तुम इसे साधारण खेल मत समझो।

भावार्थ— जब सामान्य सी हवा चलती है तो पाल के सहारे नाव उचित गति से चलती रहती है, किन्तु आँधी में पाल के तने रहने से नाव के उलट जाने और पाल के फट जाने का खतरा हमेशा बना रहता है। इस चौपाई में बाँस मन है, पाल चित्त है, और रस्सी बुद्धि है। जब विषय सुखों का बहुत अधिक आकर्षण सामने होता है, तो बुद्धि द्वारा उनकी विवेचना कोई सार्थक फल नहीं देती, क्योंकि यदि हृदय के अन्दर (अहं में) निज स्वरूप

का बोध नहीं है, तो चित्त (पाल) में तो जन्म – जन्मान्तरों के विषय सुखों के संस्कार भरे पड़े हैं। कुसंस्कारों के जाग्रत होने का कारण पाप में डूबने में जरा भी देर नहीं लगेगी।

हे जीव! इस भवसागर से सुरक्षित निकल जाने का एक ही मार्ग है कि तू अपने प्रियतम के प्रेम में चलते हुए समर्पण का मार्ग अपना। अब इस भयानक स्थिति में शुष्क हृदय से मन, चित्त, और बुद्धि से होने वाला मनन, चिन्तन, और विवेचन भवसागर से पार नहीं करा पायेगा। जिस प्रकार भयानक आँधी में रस्सी खींचकर पाल को निष्क्रिय कर दिया जाता है, उसी प्रकार विषय-विकारों की प्रबलता में केवल समर्पण और प्रेम का अस्त्र ही काम आयेगा। बुद्धि की अधिक चतुराई तुम्हें समर्पित नहीं होने देगी, जिसका परिणाम यह होगा कि भवसागर को पार

करने से पहले ही नाव डूब जायेगी।

मथां अंबर हेठ जर, नखत्र न डिसे कोए।

रिणे रूप घटाइयूं, मालम सुध न पोए॥१०॥

ऊपर आकाश है और नीचे जल (मोह सागर) है।
विकार रूपी बादलों के छाये रहने से अज्ञान रूपी
अन्धकार इतना अधिक फैला हुआ है कि आकाश में
प्रकाश का संकेत देने वाले नक्षत्र भी नहीं दिखायी देते,
अर्थात् कहीं से भी ज्ञान की झलक मिलने की सम्भावना
नहीं है। हे जीव (नाविक)! क्या तुम्हें इसकी जरा भी
सुध नहीं है।

बडर वंजे वीटियो, डिस न डिसे कांए।

मालम मतू मुझियूं, झूडे मींह मथांए॥११॥

चारों ओर घने बादल घिर गये हैं। किसी को भी दिशा का पता नहीं चल पा रहा है। हे मल्लाह! ऐसी स्थिति में तुम्हारी बुद्धि चकरा गयी है। बादलों से आपत्तियों की बरसात हो रही है।

भावार्थ- हे जीव! तुम्हारे हृदय में विषय-विकारों के प्रविष्ट हो जाने से अज्ञानता का इतना घना अन्धकार छा गया है कि पता ही नहीं चल पा रहा है कि कौन सी राह अपनायी जाये। ऐसी स्थिति में तुम्हारी बुद्धि कुण्ठित हो गयी है, जिसका परिणाम यह हो रहा है कि चारों तरफ कष्ट ही कष्ट दिखायी पड़ रहा है। विकारों में फँसने के कारण संकटों में फँसना स्वाभाविक है।

लेहेरूं डूंगर जेडियूं, हियडे डिन धका।

हांणे हथे नीहणण नाखवा, वंजे गाल हथां॥१२॥

इस मोहसागर में तृष्णा की लहरें पर्वतों के समान ऊँची उठकर हृदय को (तोड़ने के लिये) धकेल रही हैं। हे जीव! अब दृढ़तापूर्वक धैर्य का लँगर डालकर अपना ध्यान प्रियतम परब्रह्म की ओर लगा, अन्यथा बनी बनाई बात बिगड़ जायेगी अर्थात् जहाज के डूबने से तुम भी इस भवसागर में डूब जाओगे।

बेडी बंध ढीरा थेया, त्रूटन संधो संध।

अजां अंख न उपटिए, पाणीनी पूरो मंझ॥१३॥

हे नाविक! जहाज का एक-एक पुर्जा ढीला पड़ गया है। उसके जोड़ भी टूट-टूट कर बिखर गये हैं। जहाज में पानी का प्रवाह भी बह रहा है। ऐसी विकट स्थिति में भी तुम अपनी आँखें क्यों नहीं खोल रहे हो।

भावार्थ— हे जीव! तुम्हारा शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया है।

शरीर के अंगों-प्रत्यंगों में नाम मात्र की शक्ति नहीं है ,
 रोग जनित पीड़ा अवश्य है। तुम्हें इस भवसागर में डुबोने
 के लिये सांसारिक विषय सुखों की इच्छा ने तुम्हारे हृदय
 में अपना स्थाई निवास बना लिया है। इस स्थिति में भी
 तुम सावधान नहीं हो पा रहे हो।

हिलोडे नीर लेखूं कियां, अने कुओ पछाडू खाए।

पोए तूं कडे उथीने पापी, पाणी फिरंदे मथांए॥१४॥

जल की बेशुमार लहरें तुम्हारे जहाज को हिचकोले देते
 हुए पछाड़ रही हैं। हे पापी मल्लाह! जब पानी तुम्हारी नाव
 में भर जायेगा और तुम्हारे ऊपर से निकल जायेगा, क्या
 तभी तुम उठोगे।

भावार्थ- हे जीव! तृष्णा की लहरें तुम्हारे हृदय को
 अपने आगोश (बन्धन, आलिंगन) में लिये बैठी हैं। इसी

तृष्णा के परिणामस्वरूप तुम्हारे जीवन का अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है। क्या तुम अपने विवेक से तृष्णा के जाल से निकल नहीं सकते हो।

विसराई वंजी ओतड ओलवे, चुआं पुकारे सच।

कपर कंदिए कुटका, गच न मिडंदे गच॥१५॥

हे जीव! तुम्हारी यह भूल उबड़-खाबड़ रास्ते, अर्थात् चौरासी लाख योनियों, में भटकाने वाली है। मैं पुकार-पुकार कर यह सत्य बात कह रहा हूँ कि विषय सुख से तुम्हारे इस शरीर रूपी जहाज के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे, जो खोजने पर भी नहीं मिलेंगे।

विसराईनी कपर ओडडी, तूं सूम म सुखाणी।

ही ककी कंधीयजी, तूं पसे न पाणी॥१६॥

हे जीव! भवसागर का किनारा भले ही पास में क्यों न दिखायी पड़ रहा हो, तो भी तुम अज्ञान रूपी नींद में सो नहीं जाना। किनारे के गन्दे जल को ही तुम स्वच्छ जल मत समझ लेना, अर्थात् तुम नश्वर सुखों को ही अखण्ड सुख न मान लेना।

करे कडाका कपरी, गजे गोकाणी।

तीखोनी ताणिए तेहडा, तूं सारिए न सुखाणी॥१७॥

हे जीव! अज्ञान रूपी बादल गरज रहे हैं, जिसमें विषय सुख की कामना रूपी बिजलियाँ चमक रही हैं। मोहसागर में तृष्णा की तीखी लहरें तुम्हें डुबोने के लिये अपनी ओर खींचने का प्रयास कर रही हैं। तुम अपने को सम्भालते क्यों नहीं हो।

कंधी पस्सी म कोडजा, सेहेर बजारी हट।

नेई घर कां वंजे, विकण दमड़ी वट॥१८॥

मात्र भवसागर का किनारा देखकर तू प्रसन्न मत हो ,
अर्थात् केवल मानव तन को पाकर ही स्वयं को कृतकृत्य
मत मान लो। इस भवसागर में बड़े-बड़े नगर हैं, जिनमें
हाट और बाजार हैं। इन हाट-बाजारों में माया की ही
वस्तुएँ मिलती हैं। यदि तुमने कोई आध्यात्मिक सम्पदा
नहीं कमायी, तो अपने साथ क्या ले जाओगे।

तुम्हारे सगे-सम्बन्धी तो तुम्हें एक ही दमड़ी (पैसे का
आठवाँ भाग) में बेच देंगे, अर्थात् वे तुमसे लाभ तो बहुत
ज्यादा लेंगे लेकिन उनकी दृष्टि में तुम्हारी कीमत बहुत
कम रहेगी।

साहे डींनी चाईन पाण के, बोलीन मोहं मिठां।

जीरे मुआं न छुटो मंझां, जे इनी डिठां॥१९॥

हे जीव! इस संसार के सगे-सम्बन्धी उस साहूकार के समान हैं, जो तुमसे ऊपरी दिल से मीठी बातें करके स्नेह का दिखावा करते हैं। यदि तुम मोह से ग्रसित होकर जीवन पर्यन्त इनकी ओर ही देखते रहोगे, तो मृत्यु के बाद भी इनके बन्धन से छूटना कठिन है।

जे तूं सजण भाइए, से डुझण संजो डेह।

मिठडो गालाए मारीन, हथडा विंजन कलेजे॥२०॥

हे जीव! जिन सगे-सम्बन्धियों को तुम अपना हितैषी समझते हो, वे ही तुम्हारे प्राणों के शत्रु हैं। वे दिखावे के लिये तुमसे मीठी-मीठी बातें बोलते हैं और तुम्हारा कलेजा निकाल लेते हैं।

भावार्थ- "कलेजा निकालना" एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है - बहुत संकट में डालना। सांसारिक सम्बन्ध स्वार्थ पर टिके होते हैं। सभी व्यक्तिगत स्वार्थों के लिये ही एक-दूसरे के साथ जुड़े रहते हैं। मोहग्रस्त मनुष्य सच्चिदानन्द परब्रह्म के प्रति प्रेम करना छोड़ देता है और अपनी सारी आयु झूठे रिश्तों को रिझाने में लगा देता है, जिसका परिणाम अन्ततोगत्वा पश्चाताप् में दृष्टिगोचर होता है। इस चौपाई में मुख्यतः यही भाव दर्शाया गया है।

हे कूडी कंधी उचक सिंधी, तूं हेडा हंड म न्हार।

रात डींह जागी जफा से, तूं पांहिजो पाण संभार॥२१॥

हे सिन्ध की सखी इन्द्रावती के जीव! तू इस संसार के काल्पनिक किनारों-ठिकानों (वैकुण्ठ आदि) की ओर

मत देख। तू इनको उलंघकर बेहद से भी परे परमधाम में पहुँच जा। तू दिन-रात जागकर परिश्रमपूर्वक प्रियतम के ध्यान में लग जा। तू अपने आपको सम्भाल, अर्थात् माया से अपना ध्यान हटाकर धाम धनी की ओर लगा।

ही तागा पाणी पसे तरे, तूं मुडदम हथां छड।

हित घणो खेडा जागी जफा से, तांही कोईक निग्यो मंड॥२२॥

हे मल्लाह! तू पानी मापने वाले मुडदमयन्त्र से जल की गहराई देख। वास्तविक जाँच होने पर ही तुम अपने हाथों से जहाज का लँगर डालना। यहाँ किनारे पर बहुत से लोग अपना जहाज डुबो देते हैं, क्योंकि उन्हें पता नहीं चल पाता कि जल की गहराई कितनी है। कोई विरला व्यक्ति ही सावधानी रखकर यहाँ से निकल पाता है।

भावार्थ— हे जीव! तू तारतम रूपी यन्त्र से इस

मोहसागर की पहचान करने के पश्चात् ही शान्ति से बैठने की बात सोचना, अन्यथा यह माया कभी भी अपने जाल में फँसा सकती है। प्रियतम अक्षरातीत की कृपा से ही माया की पूर्ण पहचान होती है और उसके बन्धनों से छुटकारा मिलता है। उस अवस्था में पहुँचने से पहले ही अनेक ज्ञानीजनों ने अपने को कृत्कृत्य समझ लिया, जिसके परिणामस्वरूप वे पुनः माया के शिकार बन गये। कोई विरला ही ऐसा होता है, जो तारतम ज्ञान, समर्पण, और प्रेम के सहारे धनी को भी पा लेता है तथा माया से भी पार हो जाता है।

पिरी पुकारे पंजसे, मिडंदा लख हजार।

डुख मंझाए न चोंदा मूंहजी, ई कडई कोए पुकार॥२३॥

हे जीव! प्रियतम अक्षरातीत अपनी पाँचों शक्तियों सहित

मेरे धाम हृदय में विराजमान होकर तुम्हें बुला रहे हैं। इस सम्बन्ध में तुम्हें इस संसार में हजारों-लाखों (बहुत सी) साक्षियाँ मिलेंगी। इस दुःखमयी जगत् में तुमको पुकार-पुकारकर जगाने वाला मेरी तरह का कोई और व्यक्ति नहीं मिलेगा।

काया बेडी समझ समर, सायर लख संसार।

मालम जीव जगाए साथी, मेहेराज पुनों पार॥२४॥

श्री मिहिरराज जी कहते हैं कि यह संसार ही सागर है, शरीर ही जहाज है, तथा उसमें रहने वाला जीव ही मल्लाह (नाविक) है। उस पर द्रष्टा रूप से विराजमान होकर आत्मा खेल को देख रही है। ऐसे जीव को जाग्रत कर सभी को इस भवसागर से पार हो जाना चाहिए।

प्रकरण ॥१३३॥ चौपाई ॥२१०२॥

॥ किरंतन सम्पूर्ण ॥